समयसा

मूल प्राकृतग्रंथ रचयिता

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

संस्कृत टीका-तात्पर्यवृत्ति रचयिता

श्री जयसेनाचार्य जी

हिन्दी रूपान्तर

मुनिवर श्री वीरसागरजी

सम्पादक व प्रस्तावना लेखक
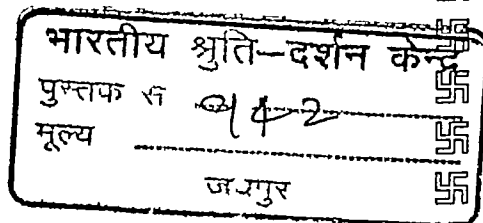
मन्नूलाल जैन वकील, सागर

प्रकाशक

चंकेश्वरा परिवार पंढरपुर, अकलूज, फलटण, पुणे, सोलापुर (महाराष्ट्र)

अद्वैत नमस्कार

स्वज्ञानानदस्वभाव को ज्ञान का विषय बनाकर प्रमाणात्मक मति-श्रुतज्ञान से जानना, अतीन्द्रिय आनद लूटना ही 'अद्वैत नमस्कार' है। यहाँ वद्य-वदक भाव है ही नही स्व को जानने की शुद्धदशा/शुद्धोपयोग है।

प्राप्ति स्थान

वीतराग स्वाध्याय मडल,
द्वारा-अजित मशिनर्स,
अकलूज, जि सोलापूर
महाराष्ट्र पिन ४१३ १०१
फोन-२२११९(०२१८५)

स्वाध्याय मडल(पढरपूर),
द्वारा- चकेश्वरा ऑटो पार्टस्,
पढरपूर, जि सोलापूर
महाराष्ट्र पिन ४१३ ३०४
फोन २३४१८,२२५१८(०२१८६)

मन्नूलाल जैन वकील,
द्वारा- अनिल ॲन्ड क ,
कटरा बाजार, सागर
मध्य प्रदेश, पिन-४७० ००२
फोन-२४३२१(०७५८२)

श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मदिर,
शुक्रवार पेठ,
सोलापूर, महाराष्ट्र
पिन-४१३ ००२

तृतीय आवृत्ति	द्वितीय आवृत्ति	प्रथम आवृत्ति
ई स २०००	१९८७	१९८३
वीर निर्वाण स २५२६	२५१३	२५०९

मूल्य २५ रूपये (लागत कीमत का चौथाई)

लेजर कम्पोजिग, सैटिग

एक्टिव कम्प्यूटर्स

कटरा, नमक मडी, सागर (म प्र) 470002

✆ (07582) 25445

मुद्रक

विनंद आफसेट प्रिंटर्स

१०८, शुक्रवार पेठ, सोलापुर 413002

✆ (0217) 724468

प. पू. १०८ अध्यात्मयोगी वीरसागरजी महाराज

अद्वैत नमस्कार

स्वज्ञानानंदस्वभाव को ज्ञान का विषय बनाकर प्रमाणात्मक मति-श्रुतज्ञान से जानना, अतींद्रिय आनंद लूटना ही 'अद्वैत नमस्कार' है। यहाँ वंद्य-वंदक भाव है ही नहीं स्व को जानने की शुद्धदशा/शुद्धोपयोग है।

प्राप्ति स्थान

वीतराग स्वाध्याय मडल,	स्वाध्याय मडल(पढरपूर),	मन्नूलाल जैन वकील,	श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मदिर,
द्वारा-अजित मशिनर्स,	द्वारा- चंकेश्वरा ऑटो पार्टस्,	द्वारा- अनिल ॲन्ड क ,	शुक्रवार पेठ,
अकलूज, जि सोलापूर	पढरपूर, जि सोलापूर	कटरा बाजार, सागर	सोलापूर, महाराष्ट्र
महाराष्ट्र पिन ४१३ १०१	महाराष्ट्र पिन ४१३ ३०४	मध्य प्रदेश, पिन-४७० ००२	पिन-४१३ ००२
फोन-२२११९(०२१८५)	फोन २३४१८,२२५१८(०२१८६)	फोन-२४३२१(०७५८२)	

तृतीय आवृत्ति	द्वितीय आवृत्ति	प्रथम आवृत्ति
ई स २०००	१९८७	१९८३
वीर निर्वाण स २५२६	२५१३	२५०९

मूल्य २५ रूपये (लागत कीमत का चौथाई)

लेजर कम्पोजिग, सेटिग

एक्टिव कम्प्यूटर्स

कटरा, नमक मडी, सागर (म प्र) 470002

✆ (07582) 25445

मुद्रक

विनंद आफसेट प्रिंटर्स

१०८ शुक्रवार पेठ, सोलापुर 413002

✆ (0217) 724468

प. पू. १०८ अध्यात्मयोगी वीरसागरजी महाराज

शुद्धात्मानुभव का प्रयोग (PRACTICAL)

हम जो विचार (ज्ञान) करते हैं, वह हम जानते हैं। याने प्रत्येक जीव खुद (स्वय) कौन सा विचार कर रहा है याने प्रत्यक्षज्ञान से अथवा परोक्षज्ञान से जान रहा है, यह भी खुद (स्वय) जानता है।

इसलिये मैंने किस विषय का-ज्ञेय का विचार किया, यह अपने आप को समझ में आता है। और मैंने उस विषय को प्रत्यक्ष जाना अथवा परोक्ष जाना, यह भी अपने आपको समझ में आता है। तथा अपने को सशयादिरूप ज्ञान हुआ अथवा निणयरूप सच्चा ज्ञान हुआ, यह भी अपने आपको समझ में आता है। अर्थात् अपनी ज्ञानपर्याय सम्यग्ज्ञान पर्याय है अथवा मिथ्याज्ञान पर्याय है, यह निर्णय भी अपने आपको हो सकता है।

तथा ज्ञान-विचार ही ध्यान है। इसलिये प्रशस्त ध्यान (शुद्ध ध्यान) अथवा अप्रशस्त ध्यान (अशुद्ध ध्यान) मैंने किया, यह भी अपने आपको समझ में आता है। इसलिये शुद्धात्मानुभव करना सुलभ हो गया। इन सभी कारणों से तथा एक अपेक्षा से ज्ञानपर्याय को द्रव्यानुयोग में महत्व दिया गया है।

- अध्यात्म न्यायदीपिका पृ १६५

मेरे जीव का निर्दोष लक्षण-भेद विज्ञान की विधि

'ज्ञानदर्शनानन्द' यह जीव द्रव्य का लक्षण है। इस लक्षण को जानने से अन्य द्रव्यों से जीव भिन्न किये।

उसके पश्चात **निजज्ञानदर्शनानन्द-निजज्ञानदर्शनानन्द** यह मुझ जीवद्रव्य का लक्षण है, इस प्रकार कहने से अनन्त जीवों में से अपना जीव अलग किया।

प्रत्येक जीवद्रव्य ध्रुवपर्याययुक्त, गुणपर्याययुक्त है। तब **'निजध्रुवशुद्धात्मा'** यह लक्षण करने से अपनी भूतपर्याय, वर्तमानपर्याय और भाविपर्याय इनसे निजात्मा को अलग याने व्यावृत्य किया।

याने अन्यक्षणवर्ती अशुद्धपर्याय, एकदेश शुद्धपर्याय तथा पूर्णशुद्धपर्याय इनसे निज ध्रुवात्मा को अलग याने व्यावृत्य किया।

याने विचार (ज्ञान) में निज ध्रुवात्मा का विषय लिया। इसलिये निजध्रुव शुद्ध ज्ञानदर्शनानन्दात्मा का भोग किया। वह सम्यक् भोग है, वह सम्यक् आननद है। - अ न्या दी पृ १८३। वही नियमसार गाथा १०२ में कहा है - **एगो मे सासदो अप्पा णाणदसण लक्खणो। सेसा में बाहिरा भावा सव्वे सजोग लक्खणा।।**

सम्यग्ज्ञान के द्वारा सम्यग्दर्शन का निर्णय

एक अपेक्षा से सम्यक्त्व सीधे अपने अस्तित्व को नहीं सूचित करता, लेकिन ज्ञान के द्वारा उसका अस्तित्व अवश्य जाना जाता है, क्योंकि जीव को **यह मैं शाश्वत ज्ञानानन्दात्मा** हूँ, ऐसा प्रामाण्यसहित प्रत्यक्षज्ञान होता है, अर्थात ज्ञान से अपने सम्यग्ज्ञान के अस्तित्व का निर्णय हो जाता है। यह खुद के (अपने) समझ में आता है। यही कारण है कि यहाँ स्वानुभव और सम्यग्दर्शन की व्याप्ति बतलाई है। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के समय स्वात्मानुभव प्रत्यक्षज्ञान नियम से होता है। - अध्यात्म न्यायदीपिका पृ १६७

दो शब्द

- सम्पादकीय

श्री समयसार ग्रन्थाधिराज की आचार्य श्री जयसेन की तात्पर्यवृत्ति टीका का हिन्दी भाषानुवाद मुनिवर श्री वीरसागर जी ने किया हे। यह प्रस्तुत ग्रन्थ उसी का **अद्यतन सस्करण** पाठकों के समक्ष उपस्थित है। पूर्व सस्करण के आधार मे ही यह सस्करण तैयार किया गया हे। ग्रन्थ की अधिक माग होने से यह पुन प्रकाशन किया जा रहा है।

इस सस्करण के सम्पादन का मुझे अवसर प्रदान करने का श्रेय **चकेश्वरा परिवार** अकलूज-पढरपुर-सोलापुर-फलटण-वारामती-पुणे को है। इस ग्रन्थ के सपादन से मुझे ग्रन्थ एव टीका का अत्यधिक सूक्ष्मता से अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ हे, जिसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ।

समयसार ग्रन्थ आचार्यवर **कुन्दकुन्ददेव** की जैन अध्यात्म की सर्वोत्तम रचना मानी जाती है। इसकी आचार्य **अमृतचन्द्र** रचित आत्मख्याति टीका सस्कृत वाङ्मय की सर्वश्रेष्ठ कृति है जो अध्यात्म पिपासुओं को अत्यन्त प्रिय है, जिसे भरतक्षेत्र का **अजोड चक्षु** भी कहा जाता है।

इस आचाय **जयसेन** रचित तात्पर्यवृत्ति टीका एव समयसार ग्रन्थ के विषय में आगे **समयसार के साथ न्याय** नाम के आलेख मे विस्तार से विचार किया गया है। यहॉ पर प्रस्तुत सस्करण के **सम्पादन** के सवध में कुछ कहा जा रहा है।

समयसार ग्रन्थ मूलरूप से आचार्य **कुन्दकुन्द** द्वारा प्राकृत भाषा में रचा गया है। प्राकृत भाषा के भी शोरसेनी, महाराष्ट्री, पेशाची, मागधी, अर्न्द्रमागधी, आर्ष, चूलिका, अपभ्रश आदि भेद हैं। अत स्वाभाविक रूप से ही प्रश्न उठता हे कि मूलग्रन्थ वास्तव में किस प्राकृत में है ? शोधों के आधार पर दिगम्बर जैन समाज के प्राकृत भापा के विद्वानों ने यह घोपित किया हे कि दिगम्वर जैन आगम ग्रन्थों की भाषा **शौरसेनी** प्राकृत ही हे।

फलत इस ग्रन्थ के अनेक स्थानों से प्रकाशित अनेक सस्करणों के अवलोकन से यह निर्णीत हुआ कि आचार्य श्री विद्यानन्द मुनिराज के निर्देशन में **श्री कुन्कुन्दभारती,** नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित समयसार की गाथाओं को मूल गाथाओं के अधिकतम निकट माना जाना चाहिये। चूकि मैं हस्तलिखित या ताडपत्रीय प्रतियों मे स्वय गाथाओं का मिलान नहीं कर पाया हूँ, अत अतिम निर्णय शोधकर्ताओं के ऊपर छोडता हूँ।

सर्वप्रथम मेंने सपादन में मूल गाथाओं को लिया और उन्हें ७ प्रतियों - **कुन्दकुन्दभारती, सोनगढ, सोलापुर, अगास, मेरठ, जबलपुर, दिल्ली दरियागज**-से मिलान कर यथासभव अपनी भापागत योग्यता के आधार पर सशोधित किया हे, अर्थात् उक्त सभी प्रतियों में कुन्दकुन्द भारती और सोनगढ से प्रकाशित प्रति के अनुसार प्राकृत गाथा का चुनाव कर इस सस्करण में स्थान दिया गया है।

गाथाओं में प्राय उ को दु, य को द, ओ को गो, इ को दि, इ को ए मानकर ध्यान दिया गया है। जैसे-णायव्वो को णादव्वो, अकारओ को अकारगो, उप्पज्जइ को उप्पज्जदि, अहमिक्को को अहमेक्को, घित्तव्वो को घेत्तव्वो, चेया को चेदा, भणइ को भणदि, भणिय को भणिद, सुइकेवली को सुदकेवली, गइ को गदि मानकर गाथा में सशोधन रखा गया है। पूर्वोक्त सभी सस्करणों में से किसी में भी एक दूसरे से समस्त गाथाओं में समानता नहीं दिखाई देती है। विद्वत्जगत को इस सबध में अवश्य कुछ सर्वमान्य निर्णय लेना चाहिये। पाठान्तर को फुटनोटों में स्थान दिया गया है।

इसी प्रकार गाथाओं की सख्या के विषय में भी एकरूपता नहीं है। आत्मख्याति टीका मे तो सभी प्रतियों में ४१५ गाथायें प्राप्त होती हैं। किन्तु तात्पर्यवृत्ति टीका में सर्वत्र सख्यायें अन्य-अन्य है। आचार्य जयसेन ने पातनिका में ग्रन्थ के अत में लिखा हे कि इस ग्रन्थ में ४३९ गाथायें हैं, किन्तु सोलापुर (नातेपुते) सस्करण मे ४३७ तथा जबलपुर सस्करण में ४३९ गाथायें हैं। दोनों ही सस्करणों में बीच में कुछ गाथाये और सम्मिलित हैं किन्तु उन पर क्रमाक नहीं डाले गये हैं। मैंने आगे लिखे आलेख में इस पर कुछ विचार किया है और उक्त सभी गाथाओं को इस सस्करण में समाहित किया गया है।

सोलापुर (नातेपुते) तथा अगास सस्करण में गाथा ४१२ से ४२६ तक की १५ गाथाओं की समुदाय रूप टीका में आत्मख्याति टीका तथा दो कलश २३५,२३६ को शामिलकर तथा आगे तपश्चरण के बाद शेष आशिक तात्पर्यवृत्ति को शामिल किया गया है। किन्तु जबलपुर प्रति में पूर्ण तात्पर्यवृत्ति टीका प्राप्त होती है। अत इस सस्करण में आत्मख्याति टीका, दोनों कलश, एव पूर्ण तात्पर्यवृत्ति टीका को शामिल कर लिया गया है।

पूर्व सस्करण में जिन आत्मख्याति की ५ गाथाओं पर क्रमाक दिये बिना दो गाथाओं को कर्ताकर्म अधिकार में तथा तीन गाथाओं को बध अधिकार में शामिल किया था उन पर यहाँ अलग से क्रमाक दिये जा रहे हैं, तथा मोक्ष अधिकार की तीन गाथायें जबलपुर सस्करण के आधार पर इस सस्करण में शामिल कर उन पर भी अलग से क्रमाक दिये जा रहे हैं। इस प्रकार इस सस्करण में कुल ४३७+५+३=४४५ गाथायें प्राप्त हो रही हैं।

मुनिवर वीरसागर का अनुवाद गाथाओं की सस्कृत टीका के अनुसार ही है। विशेप स्पष्टीकरण कोष्टक में तथा भावार्थ रूप से दिया गया है। भावार्थ तथा स्पष्टीकरण गाथाओं के अधिक अनुरूप है , किसी पूर्वाग्रह से रहित और वीतरागता का पोषक ही है। अनेक जगह स्पष्टीकरण तो आचार्य जयसेन ने स्वय ही किच कहकर किये हैं। आचार्य जयसेन अनेक स्थानों पर प्राकृतभाषा की विशेषतायें भी स्पष्ट करते जाते हैं। जेसे-कारक व्यभिचार, लिग व्यभिचार, वचन व्यभिचार आदि प्राकृत में होते हैं।

आचार्य जयसेन ने न्यायस्थल-अन्वय व्यतिरेक, पक्ष-हेतु-साध्य, अन्यथाअनुपत्ति हेतु आदि का अच्छा दिग्दर्शन कराया हे। नयों का भी अनेक स्थानों पर स्पष्टीकरण किया गया हे। जैसे-गाथा में लिखा है शुद्धनय से, तो आचार्य जयसेन ने स्पष्ट किया कि अशुद्ध निश्चयनय से, एकदेशशुद्ध निश्चयनय से, पूर्ण शुद्ध निश्चयनय से किस प्रकार अर्थ होता है।

गाथाओं का क्रम भी अनेक स्थानों पर अलग-अलग दिखाई देता है। गाथा ३०५ आ ख्या में मोक्ष अधिकार में है, तो तात्पर्यवृत्ति में वह सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकार मे ३३७ नवर पर आई हे। इसी प्रकार अनेक गाथाओं में क्रमाक में अतर है। इसीलिये प्रत्येक्र गाथा की **प्रथम पक्ति के अत में आत्मख्याति का क्रमाक और दूसरी पक्ति के अत में तात्पर्यवृत्ति का क्रमाक** दिया गया हे। ग्रन्थ के अत में सभी गाथाओं की दोनों टीकाओं के अनुसार **गाथा क्रमाक मिलान सूची** भी दी गई है।

इस हिन्दी अनुवाद में भापा की शुद्धि तथा भावों के स्पष्टीकरण के प्रयोजन से यत्किंचित् सशोधन किये गये हैं, मुनिवर वीरसागर के सभी अभिप्राय कोष्टकों के अतर्गत कर दिये हें, जिससे मूल विषय मूल टीकाकार का ही स्पष्ट जानने में आवे।

अनेक सिद्धान्त वाक्यों, महत्वपूर्ण वाक्यों, प्रयोजनसाधक वाक्यों को उभारकर स्पष्ट दिखाने का प्रयास भी किया गया है। आचार्य जयसेन ने अनेक स्थानों पर **अनुभूति, ध्यान** आदि का वहुत ही स्पष्ट विवेचन किया हे।

ग्रन्थ के प्रारभ में तथा प्रत्येक अधिकार के अत मे मुनिवरश्री वीरसागरजी द्वारा सपादित-अनुवादित तथा विश्लेशित **अध्यात्म न्यायदीपिका** (टीका) के आधार से तथा आत्मानुभूति करने में सहायक जानकर कुछ **न्याय के प्रकरण एव चार्ट** इस ग्रन्थ में परिशिष्ट रूप से दे दिये गये हें जिससे पाठको को न्याय के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की आवश्यक प्रारभिक जानकारी प्राप्त हो जाय ओर समयसार ग्रन्थाधिगज का मर्म ग्रहण हो सके।

विषयसूची भी विशिष्ट पद्धति से बनाई गई हे। जिसमें आचार्य जयसेन की **वैज्ञानकि सूझ-बूझ** से लिखी गई पातनिकाओ, गाथाओं के शीर्पक, स्थल और स्थल में गाथाओं का समूह को ध्यान मे रखा गया है। कोई भी पाठक केवल इस विपयसूची को पढकर ही समयसार ग्रन्थ की प्राथमिक-प्रारभिक जानकारी प्राप्त कर सकता है ओर इस ग्रन्थ की विपयवस्तु से परिचित हो सकता है।

इसी प्रकार परिशिष्टों के रूप में दिये गये न्याय के (४५) प्रकरणो को पढकर एव विभिन्न (३०) चार्ट देखकर न्यायग्रन्थों को पढे विना ही समस्त न्याय के प्रकरणों का परिचय प्राप्त कर सकता है जो इस ग्रन्थ के स्वाध्याय में अत्यन्त उपयोगी होगा।

इस सपादन के पूर्व मुझे समयसार ग्रन्थ अत्यन्त कठिन ओर श्रमसाध्य जान पडता था। किन्तु सपादन के अनुभव से समयसार ग्रन्थ का पूर्ण मर्म स्पष्ट हो गया है तथा गाथा का भाव व्यक्त करना विलकुल ही सरल और वोधगम्य हो गया है। यह मुझे अपूर्व लाभ प्राप्त हुआ है, अत प्रकाशक परिवार का आभारी हूँ। इस सस्करण के सम्पादन में मुझसे जो भी त्रुटियॉ हुई हों, विद्वान पाठक मुझे सूचितकर अनुगृहीत करेंगे।

महावीर सास्कृतिक भवन,
सोलापुर (महाराष्ट्र)
२६ ०१ २०००

मन्नूलाल जैन, वकील
सागर (म प्र)

समयसार प्रकाशन का वक्तव्य

- द्वितीय आवृत्ति से, श्री समयसार प्रकाशन समिति, नातेपुते (महाराष्ट्र)

अध्यात्मयोगी प पू श्री १०८ वीरसागरजी महराज

"परम पुरुष प्रभु सद्गुरु परम ज्ञान सुखधाम। जेणे आप्यु मान निज, तेने सदा प्रणाम।।
जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दु ख अनत। समजाव्यु ते पद नमु, श्री सद्गुरु भगवत।।"

अध्यात्म योगी परम पूज्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज की भवतापनाशक वाणी के प्रताप से अनेक जीवों को दिगबर जिनधर्म का वास्तविक रहस्य उद्घाटित हुआ। वहुत लोगों को शास्त्र स्वाध्याय की रुचि उत्पन्न हुई। जब तक हम हमें प्राप्त हुई सापत्तिक वारसा (इस्टेट) प्रत्यक्ष नही देखते तब तक हमें हमारी वास्तविक इस्टेट की कल्पना नहीं हो सकती, उसी प्रकार पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित ग्रथों का अवलोकन, वाचन, मनन जब तक हम स्वय नहीं करते तब तक हमें अपना निज वैभव क्या है ? दिगबर जिनधर्म क्या चीज है? यह हमारी समझ में नहीं आ सकता। बस प पू महाराजजी की एक ही लगन, एक ही धुन है कि हर एक को शास्त्र स्वाध्याय करना चाहिये। अगर प्रत्येक व्यक्ति शास्त्र स्वाध्याय करेगा, मनन-विचार करेगा तो अपना सुख अपना आनद अपने पास ही है।

स्वाध्याय कहो या धर्म वह तो वर्तमान जीवन आनदमय जीने की कला है ।

प पू महाराजजी के प्रवचन के प्रभाव से समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति को यथार्थ दिशा मिल रही है। नय विवक्षापूर्वक जिनवाणी का भावार्थ ग्रहण करने वाली स्वाध्याय परपरा का विकास हो रहा है। न्याय, व्याकरण ओर अध्यात्म के गूढ रहस्यों का सागोपाग विवेचन, यह उनके प्रवचन की विशेषता है। अध्यात्म के विना, आत्मानुभूति के विना, अपने ध्रुव स्वभाव की पहिचान और अवलवन के विना ससार ताप मिटनेवाला नहीं है। आत्मा को पहिचाने बिना धर्म कहाँ से होगा ? उन्होंने हमारी आँखें खोल दी हैं। किसी भी अनुयोग का स्वाध्याय करो प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग अथवा द्रव्यानुयोग-चारों ही अनुयोगों के स्वाध्याय का प्रयोजन एक ही है - आत्मानुभूति ओर आत्मरमणता।

प पू वीरसागरजी महाराज का हम नातेपुते वासियों पर अनत-अनत उपकार है। जिन्होंने साक्षात् उनके मुख द्वारा समयसार सुना, प्रवचन सुने, उन्हें उनके वचन के वारे में यत्किंचित् भी शका उत्पन्न होने वाली नहीं है। हर एक गाथा और उस पर लिखी दोनो सस्कृत टीकाओं का शब्दश भाषातर करके प्रवचन करनेवाला वक्ता ढूँढकर भी मिलना अशक्य है। प पू महाराजजी एक-एक शब्द का अर्थ खोलकर वताते हैं। निश्चय के प्रतिपादन के साथ-साथ व्यवहार का प्रतिपादन करने की अलौकिक शेली महाराजजी के पास है। जिन्होंने निश्चय का सार जाना उनका लोकिक जीवन भी केसा आनदमय होता है, यह प पू महाराजजी अनेक उदाहरणों के माध्यम से समझा देते हैं।

वास्तव में देखा जाय तो M B B S (डॉक्टर) यह वाह्य लौकिक पदवी लेकर के **परभणी** में अपनी प्रॅक्टीस करने वाले गृहस्थ को लाखों रुपये कमाकर ऐश-आराम से रहना यह कोई कठिन वात नहीं थी। परतु जिस व्यक्ति को इस ससार की क्षणभगुरता ध्यान में आयी, सुख अथवा आनद पर (वाह्य) वस्तु में नही, पर वस्तु में आनद मिलना ही अशक्य है। एक ध्रुवधाम की आराधना ही शाश्वत सुख का कारण है, धन्य उस आत्मा को। उम्र की ऐन तारुण्य ऐन जवानी अवस्था में जिसके ज्ञान में वास्तविक सच्चे सुख का मार्ग भासित हुआ। ससार की और सयोग की दु खरूपता भासित हुई। धन्य है उस ज्ञान को, धन्य है वह जीवात्मा - **''चद्रकात''**।

चद्रकात यह उनका जन्म नाम था। श्री **चद्रकात** का जन्म भावुर्डी गाव में (तालुका मालशिरस) (जि - सोलापूर) भद्रेश्वर गोत्र में धर्मवत्सल श्री गुलावचद खेमचद दोशी जी के यहॉ हुआ। उनकी माता का नाम चचला वाई है।

५ मई १९४०, शके १८६२ चेत्र वद्य १३, रविवार के दिन उनका जन्म हुआ। लौकिक शिक्षण प्राथमिक और माध्यमिक शाला, अकलूज में होने के वाद उच्च शिक्षण पूना में हुआ। वी जे मेडीकल कालेज, पूना से M B B S यह वेद्यकीय ज्ञान की उच्च पदवी पाने के वाद उन्होंने अपनी प्रॅक्टीस परभणी से शुरु की। उनकी पत्नी का नाम **'अनघा'** था।

प्रॅक्टीस करते-करते अनेक ग्रथों का शास्त्रोक्त अध्ययन उन्होंने शुरु किया। रुचि वढती गयी। अध्ययन में साथ देने वाली और रुचि रखने वाली सुयोग्य पत्नी के कारण धार्मिक अभ्यास से उनका उत्साह वढता गया, वाचन-मनन-चितन से ज्ञानशक्ति के साथ-साथ वैराग्यशक्ति का भी विकास होने लगा।

एक दिन कुथलगिरि आने का प्रसग आया। वहॉ श्री १०८ भव्यसागर जी महाराज मिले, उनके पास चद्रकात जी ने प्रथम व्रत **'रात्रि भोजन त्याग'** व्रत लिया। उस वक्त श्री चद्रकान्त जी को अल्सर के कारण भस्मक रोग जैसी व्याधि होने से आधे-आधे घटे में खाना लगता था। रात में भी खाना पडता था। लेकिन दृढ निश्चय के साथ दस दिन का रात्रिभोजनत्याग व्रत लिया ओर वह आजन्म बन गया, वह इतना ही नहीं महाव्रत में पलट गया।

एक दिन आनद की खवर मिली। श्री चद्रकात जी और सो अनघा दोनों को दीक्षा का दिन निश्चित हुआ। अक्षय तृतीया वीर सवत २५०१, १४ मई, १९७५ अकलूज में स्व गुरुवर्य आदिसागरजी महाराज के सानिध्य में श्री चद्रकात जी निर्ग्रन्थ मुनि और सौ अनघा क्षुल्लिकारूप में गृहस्थ दशा का त्याग करके दीक्षित हुए।

प्रथम चातुर्मास शिरड शहापुर में होने के वाद सोलापुर, कुथलगिरि, अक्कलकोट, करमाळा, पढरपुर के चातुर्मास होने के वाद ध्यान-अध्ययन में मग्न तपस्वी मुनिराज वीरसागरजी का अध्ययन अध्यापन करते सन् १९८६ में - समयसार की अद्भुत महिमा आज वताऊँ भली-भली, सुन लो सच्चे सुख के वाच्छक इस सुमधुर गीत के निनाद में यहॉ नातेपुते में स्वागत हुआ।

जिनअध्यात्म के प्रतिष्ठापक आचार्य कुन्दकुन्द का स्थान अध्यात्म जगत मे सर्वोपरि है। आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रथों पर उनके रहस्य को उदघाटित करने वाली अद्भुत टीकाए आचार्य अमृतचन्द्र और आचार्य जयसेन ने आज से लगभग एक हजार वर्ष पहले सस्कृत भाषा मे लिखी थी। तथापि इन ग्रथों का इस युग में प्रचार और प्रसार नगण्य ही था। आज नातेपुते (जि सोलापुर) नगरी में प पू १०८ वीरसागर जी महाराज ने "समयसार" जन-जन की वस्तु बना दी है। प पू कुन्दकुन्द आचार्य देव का समयसार और उस पर लिखी दोनो टीकाओं का सरल भाषा में गभीर और सूक्ष्म प्रवचन का लाभ सैकडों लोगो को प्राप्त हो रहा है।

"हे जीवो ! यदि वास्तविक सुख-आनद प्राप्त करना चाहते हो तो आत्मानुभव करके सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिये सर्व प्रकार से परिपूर्ण राग रहित, ज्ञायक स्वभावी अपनी आत्मा का निर्णय करना चाहिये। वस्तु स्वरूप का विचार करके अपने आत्मस्वरूप की पहिचान करने से प्रत्येक जीव अपने जीवन का वर्तमान क्षण सुख और आनदपूर्वक विता सकता है। इसके लिए परम औषधि है प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारक अनादि अनिधन वस्तु आप जो ध्रुव तत्त्व है उसकी पहिचान करना"। यही है भवलिंगी मुनिराज के प्रवचन का सार।

ऊँचा उदार पावन, सुख शातिपूर्ण प्यारा। यह धर्म वृक्ष सवका, निज का नहीं तुम्हारा।।

रोको न तुम किसी को, छाया में बैठने दो। कुल जाति कोई भी हो, सताप मेटने दो।।

अर्हन्त के दर्शन करते समय ज्ञानी का विचार और ध्यान

भो अर्हन्त प्रभु ! आप महान हैं, आपको नमस्कार ! आपकी जय हो।

भो अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनतअतीन्द्रियानद, अनन्तवीर्यवाले अर्हन्तप्रभु ! त्रिवार नमोस्तु ! नमोस्तु !! नमोस्तु !!! आप एक जीव द्रव्य है, आपके पास ज्ञानगुण है और ज्ञानगुण की सर्वज्ञ अवस्था है। आपके पास दर्शनगुण है और दर्शनगुण की अनतदर्शन अवस्था है। आपके पास श्रद्धागुण है और श्रद्धागुण की क्षायिक सम्यग्दर्शन अवस्था है। आपके पास आनदगुण है और आनदगुण की अनत अतीन्द्रिय आनद अवस्था है। आपके पास चारित्रगुण है और चारित्रगुण की वीतरागचारित्र अवस्था है। परमौदारिक शरीर है। आपके जीव द्रव्य में अन्य जीव नही हें तथा आकाशद्रव्य धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य, पुद्गलद्रव्य नहीं हैं। आप अकेले हें।

मेरे पास यह औदारिक शरीर हे, मेरी अशुद्ध अवस्था है। मैं भी आपके जैसा जीव द्रव्य हूँ। मेरे पास आपके जैसे श्रद्धागुण, ज्ञानगुण, दर्शनगुण, आनदगुण, चारित्रगुण आदि अनतगुणों का पिडवाला जीवद्रव्य है। भविष्यकाल में में अहन्त, सिद्र वनूगा। अभी मैं अर्हन्त नहीं हू, में कार्य-सिद्र नही हूं। व्यवहारनय से ससारी हूँ। निश्चयनय से मैं अभी ससारी नहीं हूँ तथा मोक्ष-पर्यायवाला नही हूँ, प्रमत्त नहीं हूं, अप्रमत्त नहीं हूँ, अन्य द्रव्यरूप नहीं हूँ, पर्यायभेदरूप नहीं हूँ, गुणभेदरूप नही हूँ। मैं ध्रुवशुद्धात्मा हूं। मैं एक हूँ। मैं अन्य जीव तथा आकाशादि द्रव्यरूप नहीं हूँ। मे पहले भी था, अभी भी हूँ, आगे भविष्यकाल में भी रहूँगा। भो प्रभु ! आपका जैसा ध्रुवशुद्धचिदानदात्मा है, वैसा ही मेरा ध्रुवशुद्धचिदानदात्मा है।

यह मैं ध्रुवशुद्धज्ञान आनद आत्मा हूँ।

भो अर्हन्त प्रभु ! आप महान हैं , आपको नमस्कार ! आपकी जय हो।

समयसार के मुखपृष्ठ के बारे में कुछ सकेत

– पूर्व सस्करण से

समयसार के मुखपृष्ठ को जानने के लिए पूरी जिनवाणी पढना चाहिये, तो भी आग्रहवश लिखते हैं। यह मुखपृष्ठ जिनवाणी का हार्द वताता है, तथा समयसार तात्पर्यवृत्ति का भी हार्द वताता है।

यहॉ यह सकेत सर्व अवस्थाओं में रहनेवाला जीव का शुद्ध पारिणामिकस्वभाव (शाश्वत शुन्द्र ध्रुव स्वभाव) के लिये है।

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुदरो लोए। वधकहा एयत्ते तेण विसवादिणी होदि।।३।।
णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो। एव भणति सुद्धा णादा जो सो दु सो चेव।।६।।
जो पस्सदि अप्पाण अबद्धपुट्ठ अणण्णमविसेस। अपदेससुत्तमज्झ पस्सदि जिण सासण सव्व।।१७।।

" ------ सर्वत्रैकेंद्रियाद्यवस्थासु शुद्धनिश्चयनयेन सुन्दर उपादेय इति। ता वृ गाथा ३

– शुद्धजीवत्व शक्तिलक्षण यत्पारिणामिकत्व ।" ता वृ गाथा ३४१

"ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ वधु ण मोक्खु करेइ। जिउ परमत्थे जोइया जिणवरु एउँ भणेइ।। प प्र ६८

"सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" ता वृ गा ३७०, द्रव्यसग्रह गाथा १३

यहॉ लाल वर्ण का सकेत सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी शुद्धात्मानुभूति लेनेवाला आनदी जीव है, ऐसा वताता हे।

जीवो चरित्तदसणणाणट्ठिद त हि ससमय जाण। पुग्गलकम्मपदेसट्ठिद च त जाण परसमय।।२।। स ता वृ
सुद्ध तु वियाणतो सुद्धमेवप्पय लहदि जीवो। जाणतो दु असुद्ध असुद्धमेवप्पय लहदि।।१९४।। स ता वृ

प्रथमोपशम सम्यक्त्वसहित अव्रती से लेकर कार्य सिद्ध परमात्मा तक के सभी जीव शुद्धात्मानुभव वाले हैं।

व्यवहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ। भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।।१३।।

यहॉ नीला वर्ण का सकेत-मिथ्यादृष्टि-मिथ्याज्ञानी दु खी जीव है, यह वताने के लिये है।

असंयम और संयमाभास – मिथ्यात्वी, ससारी, दुःखी

(१) और (२) "एकेंद्रियविकलेंद्रियपचेंन्द्रियसज्ञि पर्याप्त मनुष्य " ता वृ गा २५२। निगोद से शुरु करके सज्ञी पचेंद्रिय अवस्था तक की प्रगति का सकेत है।

(३) "इद्रियपटुत्व निर्व्याध्यायुष्कवरवुद्धि " आगे चलकर यदि वह क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि प्राप्त करता है। ता वृ गाथा २५२ ।

(४) 'तत्व समझने के लिये उत्सुक जीव' यह सकेत वताता है कि –

(अ) कोई **अव्रती मिथ्यादृष्टि** क्षयोपशमलव्धि, विशुद्धिलव्धि, देशनालव्धि, प्रायोग्यलव्धि प्राप्त करता है।

(ब) कोई **देशव्रती मिथ्यादृष्टि अथवा महाव्रती मिथ्यादृष्टि** क्षयोपशमलव्धि, विशुद्धिलव्धि, देशनालव्धि, प्रायोग्यलब्धि प्राप्त करता है।

(४) "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि [illegible]" ऐसे अव्रती मिथ्यादृष्टि अथवा देशव्रती मिथ्यादृष्टि अथवा महाव्रती मिथ्यादृष्टि जीव [illegible] है। [illegible]

समयसार गाथा नं. २१२, २१८ और २७५ [illegible]

(५) देशसयमी आभासी - [illegible] मिथ्यादृष्टि [illegible] करता है लेकिन ऐसा मानता है कि पुण्य से मोक्षमार्ग (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) [illegible] आत्मा [illegible] अभिनिवेश [illegible]। वह मिथ्यात्वी, दुःखी, संसारी है। समयसार गाथा - १६०, [illegible], १६६, २७४, ४३५ [illegible]।

(६) आगमी [illegible] मोक्षमार्ग [illegible] - [illegible] मिथ्यादृष्टि सकल संयम धारण करता है, लेकिन पुण्य से [illegible] (अर्थात सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) होता है ऐसा मानता है। इसलिये वह मिथ्यात्वी दुःखी संसारी है।

समयसार की अद्भुत महिमा

समयसार की अद्भुत महिमा, आज बताऊँ गली-गली।
सुन लो सच्चे सुख के वाँछक, धूम मचाऊँ गली-गली।। टेक।।
समयसार ही तीन लोक में, परम तत्त्व बताया है।
सुखी हुए हैं [illegible] जिन-जिन ने, समयसार निज-ध्याया है।।
समयसार बिन दुःख न मिटेगा, चाहे [illegible] गली-गली।
सुन लो सच्चे सुख के वाँछक, धूम मचाऊँ गली-गली।।१।।
सर्व छन्द साहित्य पढ़े अरु, बहु आगम अभ्यास किया।
पंडित भी कहलाये पर नहीं, समयसार का ध्यान किया।।
समयसार पहिचान किये बिन, घूमे जग की गली-गली।
सुन लो सच्चे सुख के वाँछक, धूम मचाऊँ गली-गली।।२।।
तन, कर्मों से न्यारा जाना, रागादि में अटक गया।
रागादि भी भिन्न कहे, पर्याय भेद में अटक गया।।
समयसार में भेदों से भी, भिन्न आत्मा शुद्ध कही।
सुन लो सच्चे सुख के वाँछक, धूम मचाऊँ गली-गली।।३।।
ज्ञानमात्र ध्रुवधाम शुद्ध, सुखमय चिन्मूरत आतमराम।
समयसार कारणपरमातम, शक्ति अनंतों का गुणधाम।।
उपादेय आश्रय करने योग्य, कही आतमा शुद्ध यही।
सुन लो सच्चे सुख के वाँछक, धूम मचाऊँ गली-गली।।४।।

जीवन की सबसे श्रेष्ठ निधि

- स्व श्री १०५ क्षु चन्द्रमती माताजी

कोई भी जीव हो वह सुख शांति से ही जीवन जीना चाहता है। **सम्यक् आनद** का मतलब ही निराकुल आनद है और जो नित्य/हमेशा/सदैव आनदरूप ही रहे, आकुलता जिसका फल कभी भी न हो, यही सच्चे आनद की पहचान/लक्षण है।

अतींद्रिय आनद और **वैषयिक आनद** इन दोनो में यहाँ जमीन-आसमान का मूलभूत भेद अत्यत प्रखरता से है। वैषयिक सुख सदैव अनाकुलता याने सच्ची सुख-शाति देने मे नियम से असमर्थ है। पूरे के पूरे पचेंद्रिय भोगों का फल नियम से थकान ही मिलता है। सच्चा निराकुल सदैव सुखशाति देनेवाला अतींद्रिय सुख का फल सदैव एकमात्र आनद ही है। अत अपना कल्याण चाहनेवाले जीव को वैषयिक और अतींद्रिय आनद इन दोनों की परीक्षारूप पहचान अवश्य करनी चाहिये।

उसी तरह से अतींद्रिय आनद से जीने का निर्णय करने पर भी शुद्धात्मानुभव का **विषय** सच है या झूट, इसकी परीक्षा करनी होगी और अपना यह शुद्ध अनुभव का हुआ **ध्यान** सच है या झूट, इसकी भी परीक्षा करनी होगी।

यदि परीक्षा न की जाय तो आनदाभास अर्थात् असत्य आनद में और असत्य ध्यान में ही उलझना होगा, और जीवन की बरबादी मात्र हाथ आयेगी। लौकिक व्यवहार में भी हम देखते हैं कि, जब सत्य-असत्य की परीक्षा नहीं करते तो घाटे से नहीं बचते। अगर परीक्षा के बगैर भी कभी अनायास ही सत्य का पक्ष भी लिया गया हो तो भी सुनिश्चित **साध्य-साधन के अविनाभाव का यथार्थ/सच्चा ज्ञान** न होने से हमेशा के लिए घाटे से नहीं बच पाते। दूसरी बार तो गलती हो ही सकती है। अत जब अनायास सत्य का पक्ष भी लेना हुआ हो तो भी सुनिश्चित **गम्य-गमक भाव का ज्ञान** न होने से शाति/सुख का तो लाभ नियम से नहीं होता और इसी वजह से मात्र अपने अज्ञान से दुनिया में अशाति का साम्राज्य फैला है। अत सम्यक् शाति/सुख का तो एकमात्र यही उपाय है कि सुनिश्चित **कार्य-कारणभाव का ज्ञान** अवश्य करना चाहिये।

यह सुनिश्चित कार्य-कारणभाव का (अविनाभाव का) बोध कराने में न्यायदीपिका पूरी तोर से समर्थ है, जिससे सम्यक् आनद का भोग हरेक जीव अवश्य लूट सकता है। इसमें शका की कोई गुजाईश ही नहीं रहती। न्यायदीपिका के इस कार्यकारणभाव की कुजी से लौकिक तथा आध्यात्मिक जीवन शाति/सुख से आपूर्ण हो ही जाता है, इस विधान की सत्यता का निणय **प्रत्यक्ष अपने अनुभव के बल से** ही करना योग्य होगा। किसी के कहने से क्या मतलब !

सम्यक् आनद से, पूर्ण शाति से जीवन बिताना हो तो निम्नोक्त ३ बातों का ज्ञान होना परम आवश्यक है -

(१) सम्यक् आनद का योग्य भोग्य **विषय**

(२) सम्यक् आनद लूटने का योग्य **साधन** (उपाय)

(३) सम्यक् आनद के ही फल की प्राप्ति होने का **सुनिश्चित व्याप्तिज्ञान**

सम्यक् आनद का भोग्य **विषय तो** अनत चतुष्टय की नित्य सामर्थ्य रखने वाला स्वाधीन **निजध्रुवभगवान** आत्मा-यह एकमेव है।

सम्यक् आनद लूटने का एकमात्र **साधन तो** हर एक जीव की अपनी-अपनी आत्मसन्मुख होनेवाली **शुद्धोपयोगरूप स्वाधीन ज्ञानपर्याय** है।

और उपरोक्त साध्य-साधन का **फल** नियम से **सम्यक् आनद** की प्राप्ति होना ही है। इसमें शका के लिये कोई गुजाईश ही नही है।

अपनी **ज्ञानपर्याय** ही तो **ध्यान** है। इससे अलग कोई ध्यान ही नही है। देखो इसके लिये प्रमाण **श्लोकवार्तिक अ ९, सूत्र २७, कारिका ४ की टीका "सर्वस्य ध्यानस्य ज्ञानात्मकत्वप्रसिद्धे ।"**

अत यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान के ही एकार्थक नाम ध्यान, प्रमाण, विचार है। ज्ञान विषयी है। ध्येय के या ध्यानयोग्य विषय के एकार्थक नाम ही तो प्रमेय, ज्ञेय है। विषयरूप आत्मतत्त्व है।

अत शुद्धात्मा के ध्यान का मतलव ही शुद्धात्मा का ज्ञान है, और शुद्ध ज्ञान से **शुद्ध आत्मा की प्राप्ति, सम्यक् आनद की प्राप्ति नियम से होती है,** ऐसा तो **समयसार - १८६** गाथा में भी साक्षात् कुन्दकुन्द जैसे शुद्धात्म-अनुभवी जेन जगत के सर्वमान्य भावलिगी मुनि ने वताया है, और वैसी ही वास्तव में **अविनाभावी कार्य-कारणभाव की** व्यवस्था होने से आरातीय सर्व न्याय (परीक्षक) मर्मज्ञों ने एक मुख से मान्य भी किया है, इसके लिए पूरा जैनआगम प्रमाण है। उसी में जैन न्यायग्रथों की शाखा तो एकमात्र इसी **प्रमेय-प्रमाण-प्रमिति** को उजागर करने मात्र के लिये है।

अत **सम्यक् आनद का जीवन में प्रतिसमय भोग लेना अत्यत स्वाधीन तथा आसान वात है।** सम्यक् आनद में ज्ञानानद, निर्विकल्प, शाश्वत शुद्ध विषय को ज्ञानपर्याय **अनुभवशील** होने से आत्मसिद्धिस्वरूप मोक्षफल की अवश्यमेव प्राप्ति होती है। निर्विकल्पदशा होने से मोहरागद्वेष परिणति वहाँ रहती ही नहीं है, अत मोहरागद्वेष मिट जाते हैं, उन्हें मिटाने का अलग पुरुषार्थ नही करना पडता।

आनद याने हित की प्राप्ति और अहित का/मोहरागद्वेष का अभाव युगपत् ही होता है। मोहरागद्वेष मिटाने के लिए कोई स्वतत्र परिश्रम नहीं करने पडते। अत सम्यक् आनद लूटने की कला कष्ट/परिश्रम से एकदम परे है और प्रतिसमय में करने के लिए शक्य है।

अगर सम्यक् आनद इतना आसान और नियम से फलदायी ही है, तो इस मौके को गमाना कोई वुद्धिमानी तो है नहीं। अत न्यायदीपिका दिखने में भले ही छोटी हो परतु सम्यक् आनद का प्रति पल प्रकाश उजागर करने में पूर्ण समर्थ है। अत सम्यक् आनद का तत्र उस न्यायदीपिका से सीखने के लिये उसका अवश्य लगन से अभ्यास करना ही चाहिये और यह अपूर्व अवसर हाथ से नहीं खोना चाहिये। इतना ही क्यों? यदि ऐसा कहा जाय तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि **तद् ज्ञान यत् प्रतिसमये सम्यक् आनन्दायते।** अर्थात् ज्ञान वही है जो जीवन को प्रतिपल सम्यक् आनद की वरसात से तृप्त करे, इससे रहित ज्ञान, ज्ञान ही नहीं हे।

इति अलम् विस्तरेण।

❖❖❖

ग्रथाधिराज श्रीसमयसार

नृत्यकुतूहल तत्त्वका, मर्ग्पिचि देखो धाय।
निजानन्दरस को छको, आन सवे छिटकाय।।

- श्री १०५ क्षु सुशीलमती माताजी

अध्यात्म-प्रतिष्ठापक, आचार्य परपरा में शिरोमणी माने गये **आचार्य कुन्दकुन्ददेव और जिनवाड्मय में शिरमौरस्वरूप, शुद्धात्मा का प्रतिपादक ग्रथाधिराज समयसार जगत का अद्वितीय, अनुपम, अनुत्तर, अक्षयचक्षु है।** यह सहज, सुलभ, सत्य अतींद्रिय आनद की दिव्यकला, सजीवनी विद्या-सम्यक् जीवन की विद्या सिखानेवाला परमागम हे। **परमागम** = पर+म+आ+गम = उत्कृष्ट+ज्ञानलक्ष्मी को+चहुँ ओर से+जानना निश्चय परमागम हे। समयसार को कामधेनु कल्पवृक्ष की उपमा देना अनुचित है। उपमा = उप+मा = जिसकी तुलना के लिए निकट की वस्तु हो वह उपमा। ओर जिस का महत्त्व आका ही नहीं जा सकता ऐसी यह अनुपम रचना छटे-सातवें गुणस्थान में झूलने वाले आत्मानुभवी मुनिराज की विकल्प की भूमिका का ही परिपाक है।

समयप्राभृत का व्युत्पत्ति अर्थ देखिए। **समय = समयते एकत्वेन युगपत् जानाति गच्छति च।** याने जो पदार्थ को एकसाथ जाने, गुण-पर्यायरूप परिणमे वह समय हे। छ द्रव्यों को समय कहा जाता है लेकिन यहाँ प्रकरणवश आत्मा अर्थ लिया हे। **समय याने जीव नामक पदार्थ** और **प्राभृत = (प्रकर्षेण आ समन्तात् भृतम् इति प्राभृतम्) प्र+आ+भृत = प्रकृष्टरूपसे + चहुँ ओर से+भरा हुआ परिपूर्ण स्वभाव।** अनतगुणस्वरूपी वेभव से युक्त आत्मस्वभाव ही प्राभृत हे।

प्राभृत का दूसरा अर्थ भेट, नजराणा, उपहार कहा जाता है। जैसे राजा की भेट लेते समय लोग उन्हें उत्तम वस्तु भेट देते हें, उसी तरह आ कुन्दकुन्ददेव ने भव्य जीवों को शाश्वत आनद की कला वतानेवाला शात रस से **सराबोर** यह **समयसार** भेट दिया हे, जिससे वस्तुनिष्ठ विज्ञान समझकर जीव परमानद, पूर्णानद को प्राप्त हो सके। यह **द्वितीय श्रुतस्कन्ध** में समाविष्ट ग्रथ **ज्ञानप्रधान कथन** करनेवाला है। प्रथम श्रुतस्कध में समाविष्ट धवलादि जीव ओर कर्म के सयोगज ससार-पर्याय के विस्तार का, गुणस्थानादि, मार्गणास्थानादि का सक्षेप में वर्णन करते हैं। अस्तु।

समयसार की रचना नाटकरूप में करने में आचार्यदेव उत्तम मानसशास्त्रज्ञ (PSYCHOLOGIST) थे, यह सहज ही निर्विवाद सिद्ध होता है। ससारी प्राणी का २४ घटे नाटक चल रहा है। ओर नाटक की तीव्र रुचि होने से नाटकरूप से रचना हो गयी हे। नाटक शब्द ही बताता है, **नाटक = न+अटक = इसमें** मत अटकना और मत भटकना, क्योंकि, कहा भी है - अटके सो भटके। अनादिकाल से हम पर में अटकने से भटक रहे हें। यह ससार का नाटक सत्य नहीं है, क्षणिक स्वाग है, सत्यस्वरूप ज्ञानानदस्वभाव को जानने से यह अटकना, दु खरूप चतुर्गति में भटकना सहज ही नष्ट हो जाता है।

यह ग्रथ अलकार द्वारा नाटकरूप में वर्णन किया है। सो नाटक में रगभूमि की रचना, देखनेवाले, नायक, सभा और नृत्य करने वाले होते हैं जो अनेक स्वाग रचते हैं तथा शृगारादिक आठ रसों का रूप दिखलाते हैं। लौकिक नाटक में शृगार, हास्य, रौद्र, करुण, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत इन आठ लौकिक रसों का अधिकार रहता है। लोकोत्तर नवमा शातरस का नृत्य में अधिकार नहीं है। ज्ञान में आये ज्ञेय से ज्ञान तदाकार होना, याने ज्ञेयार्थ परिणमन करना, पुरुप का भाव उसमें लीन होकर अन्य ज्ञेयों की इच्छा न रहे, वह 'रस' कहलाता है।

यहाँ रगभूमि स्थल कहा है, देखनेवाला प्रेक्षक सम्यग्दृष्टि है और अन्य मिथ्यादृष्टि पुरुपों की सभा है। (प्रेक्षक = प्र+ईक्ष+क = प्रकर्प से देखनेवाला, स्वभाव को जाननेवाला, और **सभा = स+भा = ज्ञान तेज सहित हरेक जीव है** और उनका समूह यह आध्यात्मिक अर्थ हुआ।) नृत्य करनेवाले जीव-अजीव पदार्थ हैं और दोनों की एकरूपता से ही कर्तृकर्मत्व आदि अनेक स्वाग हैं। उनमें वे परस्पर अनेकरूप होते हैं, आठ रसरूप होकर परिणमित होना ही नृत्य है। वहाँ भेदविज्ञानी सम्यग्दृष्टि प्रेक्षक जीव-अजीव का भिन्न-भिन्न स्वरूप जानता है, उसे स्वभाव की महिमा होने से सयोगजनित स्वाग में अटकता नहीं है और शातरस में परिणत होता है। लेकिन अज्ञानी भेदज्ञान न होने से स्वाग को ही सच्चा मानकर उसमें ही फॅस जाता है। ज्ञानी उस अज्ञानी के भ्रम को नष्ट करके आत्म महिमा वताता है।

अभेदवृत्ति के विषयरूप निजज्ञानानद अखड स्वभाव को विषय वनाकर प्रमाणात्मक मति-श्रुत-ज्ञान साधन से स्वय को जानने से ही अतींद्रिय आनद/मोक्षमार्ग प्राप्त हो जाता है। नवरत्नों के हार की तरह शोभायमान नवाधिकार सपन्न यह समयसार जिन-अध्यात्म का अद्वितीय प्रतिष्ठापक आगम ४१५ प्राकृत गाथाओं में निवद्ध है। इस का मूल प्रतिपाद्य नवतत्त्वों के निरूपण के माध्यम से नवतत्त्वों में छिपी परमशुद्धनिश्चयनय की विपयभूत, एकत्वस्वरूपी आत्मज्योति को दिखाकर उसके आश्रय से ही अभेदरत्नत्रय की प्राप्ति होती है, और एकत्व-विभक्त आत्मवैभव की महिमा जागृत हो जाती है। कहा भी है -

नवतत्त्वों में छुपी हुई जो ज्योति उसे वतलाती।
चिदानद ध्रुव ज्ञायक घन का दर्शन सदा कराती।
माता तेरे दर्शन से, निजातम दर्शन होता है, कि सम्यग्दर्शन होता है।।
धन्य धन्य जिनवाणी माता शरण तुम्हारी आए।
परमागम का मथन करके, शिवपुर पथ पर धाए।
माता दर्शन तेरा रे, भविक को आनद देता है, हमारी नैया खेता है।।

इसलिए हरेक आनदार्थी को इसका योग्य अध्ययन पद्धति से A to Z स्वाध्याय करना ही चाहिए। इस तरह शुद्ध ज्ञानमार्ग और शिथिलाचार के विरुद्ध कथन डके की चोट पर कहकर के परमसत्य का उद्घाटन करने वाले कुदकुदाचार्य के प्रति आ देवसेन ने तो 'दर्शनसार' में जो यह कहा है, वह सार्थक ही है। देखिये-

जइ पउमणदिणाहो सीमधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विबोहइ तो समणा कह सुमग्ग पयाणति।।४३।।

अर्थ - यदि पद्मनदिनाथ, सीमधरस्वामी द्वारा प्राप्त दिव्यज्ञान से बोध न देते तो श्रमण-मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते ?

इस तरह समयसार दृष्टिप्रधान ग्रथ होने पर भी द्रव्यानुयोग की शैली के अनुसार इस में ज्ञानप्रधान कथन किया है। **'प्रतिभातविषयाव्यभिचारी'** याने प्रतिभासित होनेवाला जैसा विषय है, वैसा जानने से ज्ञान प्रमाण/समीचीन कहा जाता है, ऐसा न्यायदीपिका के कहे हुए सिद्धान्तानुसार प्रामाण्य व अप्रामाण्य की व्यवस्था ज्ञान में ही है। इस तरह निर्णय करनेवाला ज्ञान ही होने से द्रव्यानुयोग ज्ञानप्रधान शैली से कथन करता है। ज्ञान का विषय निज ज्ञानानद ध्रुवस्वभाव होने पर ही दर्शन की समीचीनता का याने सम्यग्दर्शन का निर्णय हो जाता है।

निजात्मा की अनतगुण स्वरूप अक्षय निधि बतानेवाला यह समयसार ज्ञान का अक्षयकोष है। इसलिए समयसार की स्तुति में कहा हुआ निम्न कथन सार्थक ही है -

बनाऊँ पत्र कुदनना, रत्नोना अक्षरो लखी।
तथापि कुदसूत्रोना अकाये मूल्य ना कदी।।

इस तरह पचमकाल में तीर्थंकरों के विरह को भुला देनेवाले कुन्दकुन्ददेव को कलिकाल सर्वज्ञ कहना अत्युक्ति नहीं होगी।

समयसार के अधिकारों की रचना का क्रम भी सौष्ठवपूर्ण है। प्रथम **जीवाजीवाधिकार** में अज्ञानी जीव-अजीव में एकत्वबुद्धि, ममत्वबुद्धि करके रगभूमि पर प्रविष्ट होता है और अत में भेदविज्ञान होने पर दोनों भिन्न-भिन्न होकर निकल जाते हैं। इसके बाद **कर्तृकर्माधिकार** में जीव और अजीव दोनों एक कर्ता-कर्म का वेष धारण करके प्रवेश करते हैं। भेदविज्ञानी ज्ञान से दोनों का लक्षण भिन्न-भिन्न है ऐसा जानता है, तब वे वेष छोडकर रगभूमि से बाहर निकल गये। ज्ञानी जानता है, मोह नाचे तो नाचो परतु वस्तु का स्वरूप जैसा है वैसा ही है। जीवाजीवाधिकार के वाद प्रथम ही कर्ताकर्माधिकार क्यों लिया है ? ऐसा सवाल खडा हो जायेगा तो इसका समाधान यह है कि अनादि से जीव कर्तृत्व और भोक्तृत्व बुद्धि में फॅसा है।

करिष्यामि करिष्यामि करिष्यामि इति चितया।
मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामि इति विस्मृतम्।।

करुँ-करुँ की बुद्धि में मरुँ-मरुँ का स्मरण नहीं रहता है। मैंने किया, मैंने किया, ऐसा कर्तृत्व का भूत सवार होने से मैं-मैं करके अज्ञानी **'जैसी मति वैसी गति'** इस न्याय से बकरी हो जाता है। जैसे कोई स्वयसेवक रेल से गाँव को जाते समय रेल का डिव्वा खाली होने पर भी सामान का बोझ सिर पर लेकर के बैठा है और

में मेरी ड्यूटी अच्छी तरह निभा रहा हूँ ऐसा मानता है। उसे तो हम झट कह देते हैं 'मूरखचद'। लेकिन उससे सौ गुना बढकर २४ घटे हम हमारे ऊपर कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि चिंताओं का बोझा लेकर बैठे हैं। इसलिए वस्तुव्यवस्था दिखलाकर टेंशनलेस/भार रहित होने के लिए प्रथम ही कर्तृत्वबुद्धि और भोक्तृत्वबुद्धि छुडायी है।

इस के बाद अज्ञान से अच्छे माने हुए पुण्य का आकर्षण और अज्ञान से बुरे माने हुए पाप का विकर्षण करने की विषम बुद्धि से छुटकारा पाने के लिए **पुण्यपापाधिकार** कहा है। पुण्यपाप दोनों ही स्वभाव, हेतु, आश्रय, और अनुभव की अपेक्षा से समान होने से ससार के कारण हैं, कुशील हैं। पुण्य सोने की बेडी है और पाप लोहे की बेडी है। है तो बेडी ही ! पारतन्त्र्य ही है ! **शुद्धोपयोग ही मोक्षमार्ग है।**

इसके बाद आस्रवाधिकार लिया है। **आस्रव = आ+स्रव = चहुँ ओर से+स्रवना/झरना।** उसके आगे आस्रव का विरोधी **सवराधिकार** लिया है। **सवर = स+वर = ध्रुव निजनाथ का सम्यक् वरण करना है। सवरपूर्वक निर्जरा मोक्षमार्ग के लिए कार्यकारी है इसलिए निर्जराधिकार लिया है। निर्जरा = निर्+जरा = नि शेषत कर्म जीर्ण - शीर्ण होते हैं।** इसके आगे **बधाधिकार** और बध का विरोधी **मोक्षाधिकार** लिया है। जैसे लौकिक में अपराधी निरतर सशक होता है और निरपराधी पूर्ण नि शक होता है, वैसे ही अज्ञानी स्वात्मा की आराधना न करने से निरतर कर्मबध की शका से ग्रस्त होता है और आत्मा की आराधना करनेवाले निरपराधी ज्ञानी को कर्मबधन की शका नहीं होती है। यह ही सार है **मोक्षाधिकार** का। अत में उक्त-अनुक्त का समुच्चय करनेवाला **चूलिकास्वरूप सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार** लिया है। यहाँ शुद्ध ज्ञान का विशेषरूप से वर्णन किया है।

धीर, उदात्त, अनाकुल ये तीन विशेषण शातरूप नृत्य के आभूषण जानना चाहिए।

इस तरह पाँचवी गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि एकत्वविभक्त आत्मा को मैं आत्मा के निजवैभव द्वारा दिखाऊँ तो उसे प्रमाण/स्वीकार करना और कहीं पर चूक जाऊँ तो छल नहीं ग्रहण करना। इसमें सरलता का दिग्दर्शन होता है। इसकी टीका में अमृत बरसानेवाले अमृतचद्राचार्य देव कहते हैं - **'स्वानुभवप्रत्यक्षेण परीक्ष्य प्रमाणीकर्तव्यम्'।** स्वानुभवप्रत्यक्ष से परीक्षा करके प्रमाण करना याने स्वय प्रयोग करके निजानद रस चखकर देखना। इससे **परीक्षाप्रधानी शिष्य ही मोक्षमार्गस्थ होता है,** यह दिखलाया है। ज्ञानी के पास प्रज्ञाछैनी है, जिससे आत्मा और बध भिन्न-भिन्न जाने जाते हैं। समयसार नाटक, मोक्षद्वार, छंद ४ में कहा भी है -

जैसे छैनी लोह की, करै एकसौ दोइ।
जड चेतन की भिन्नता, त्यौं सुबुद्धिसौं होइ।।

इस तरह प्रज्ञा से भेदज्ञान करके प्रज्ञा के द्वारा ही निजात्मवैभव को ग्रहण भी किया जाता है। तीसरी गाथा में **ध्रुव स्वभाव की सुदरता** कही है। स्वसमय और परसमय पर्यायरूप होने से सुदर नहीं है।

सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार का सार यह है कि, जिस प्रकार आँख परपदार्थों को मात्र देखती ही है, उन्हें करती या भोगती नहीं, उसी प्रकार ज्ञान भी पुण्यपापरूप अनेक कर्मो को, उनके बध, उदय, फल, निर्जरा, मोक्ष को केवल जानता ही है, करता नहीं। वस्तुस्थिति बतानेवाले अमृतचद्रदेव कलश ६२ में कहते हैं -

आत्मा ज्ञान स्वय ज्ञान ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽय व्यवहारिणाम्।।

आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है, स्वय ज्ञान ही करता है, वह ज्ञान के अतिरिक्त ओर क्या कर सकता है ? आत्मा परभावों का कर्ता है ऐसा मानना, कहना व्यवहारविमुग्धो का मोह ही है, अज्ञान ही है। भेदविज्ञान उदित होते ही कर्ताकर्म बुद्धि छूट जाती हे। कलश २०० में कहा हे - **नास्ति सर्वोऽपि सबध परद्रव्यात्मतत्त्वयो ।** परद्रव्यों के साथ सवध न रखनेवाला आत्मा परपदार्थो का कर्ता-भोक्ता केसे हो सकता है ? जहॉ एक ही द्रव्य में अतर्व्याप्य-व्यापक सवध हो वहॉ ही कर्ता-कर्म सवध होता हे, न कि दो द्रव्यों में।

पचेंद्रियों के विपयभूत स्पर्शरसादि से परिणमित पुद्गल आत्मा से यह नही कहते हे कि **'तुम हमें जानो'** और आत्मा भी अपने स्थान को छोडकर उन्हे जानने के लिए कहीं नहीं जाता हे। दोनों अपने-अपने स्वभावानुसार स्वतत्रता से परिणमित होते हैं। इस तरह वस्तुव्यवस्था होने पर भी अज्ञानी उन्हें इष्ट-अनिष्ट मानकर मोही, रागी, द्वेपी होकर आकुलित, दु खी होता है। लेकिन स्वतत्र, स्वाधीन वस्तुव्यवस्था जानकर ज्ञानी सच्चे धर्म को प्राप्त होकर स्वावलवी हो जाता है। कहा भी हे -

पराधीनतामा सपनेहु सुख नथी - पराधीनता में सपने में भी सुख नहीं हे। पर के ऊपर निर्भर रहने से सव कार्य का नाश हो जाता हे। शास्त्र में ज्ञान नहीं है, क्योंकि शास्त्र कुछ जानते नहीं हैं, इसलिए ज्ञान अन्य है, शास्त्र अन्य है। इसी प्रकार अचेतनरूप शव्दादि से लेकर अध्यवसानादि भाव ज्ञान से भिन्न हैं। परपदार्थ एव अध्यवसानभावों से निजात्मवैभव का भेदविज्ञान कराया है।

अत में आचार्यदेव कहते हें, लिग/वाह्यभेप मोक्षमार्ग है ही नहीं। मोक्षमार्ग तो अभेदरत्नत्रय की प्राप्ति है। इसके लिए आत्मा की आराधना करनी चाहिए। ४१२ गाथा में करुणा से आप्लावित आचार्य कहते हैं -

मोक्खपहे अप्पाण ठवेहि त चेव झाहि त चेय।
तत्थेव विहर णिच्च मा विहरसु अण्णदव्वेसु।।४१२।।

हे आत्मन्। तू स्वय को निजात्मा के अनुभवरूप मोक्षमार्ग में स्थापित कर, निजात्मा का ही ध्यान धर, निजात्मा में ही चेत्, निजात्मा का ही अनुभव कर एव निजात्मा के अनुभवरूप मोक्षमार्ग में ही नित्य विहार कर, अन्य द्रव्यों में विहार मत कर, उपयोग को अन्यत्र मत भटका। सपूर्ण समयसार का यही सार है, और यही शास्त्र का तात्पर्य है।

अत में अमृतचद्राचार्य ने अनत शक्तियों से परिपूर्ण, समृद्ध आत्मा की ४७ शक्तियॉ नमूनारूप से SAMPLE रूप से कही हें। एक शक्ति की महत्ता जानने से महिमावत अनत शक्तियों के पिडस्वरूप निजकारणपरमात्मा की महिमा-वहुमान अपने आप प्रकट हो जाता है, रत्नत्रय की प्राप्तिरूप आराधना प्रकट हो जाती है। मधुर अमृतमयरस से ओतप्रोत वाणी से कहनेवाले अमृतचन्द्राचार्य किसी जगह **आत्मपसन् ! रे दुरात्मन ! पशु !** ऐसा सवोधन करते हुए भी उसमें उनकी कटुता प्रदर्शित नहीं होती है। प्रत्युत सरल भाषा से नहीं समझनेवाले का भी कल्याण हो जाय, ऐसा करुणाभाव ही प्रगट होता है।

ख्याति, कीर्ति, प्रसिद्धि के अभिलाषी जीव को आत्मा की सच्ची ख्याति याने निजवैभव का पर्याय में प्रगटीकरण करो, न कि जड की ख्याति, ऐसा आशय बतानेवाली अमृतचद्राचार्य की समयप्राभृत की आत्मख्याति टीका में जो बेजोड सिद्धात कहे हैं, उनसे ज्ञानचक्षु उद्बोधित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए देखिये -

(१) **न हि स्वतो असति शक्ति कर्तुम् अन्येन पार्यते।** जिस वस्तु में जो शक्ति नहीं है वह अन्य के द्वारा नहीं की जा सकती है।

(२) **कारणानुविधायीनि कार्याणि** - जैसा कारण हो वैसा ही कार्य होता है।

(३) **न हि वस्तुशक्तय परमपेक्षन्ते।** वस्तु की शक्तियॉ पर की अपेक्षा नहीं करती हैं।

(४) वस्तुव्यवस्था बताते हुए १८४, १८५ गाथा की टीका में बताया है कि, **'कारणसहस्रेणापि स्वभावस्यापोढुमशक्यत्वात्, तदपोहे तन्मात्रस्य वस्तुन एवोच्छेदात्। न चास्ति वस्तूच्छेद सतो नाशासभवात्।'** हजारों कारणों के इकट्ठे होने पर भी स्वभाव को छोडना शक्य नहीं है, स्वभाव को छोड देने पर स्वभावमात्र वस्तु का ही उच्छेद हो जायेगा और वस्तु का उच्छेद तो होता नहीं है क्योंकि सत् का नाश होना असभव है।

इसी तरह सरल भाषा में तत्त्व का जीवन में कैसे लाभ होता है ? तत्त्व की केवल पंक्ति मत पढना, तो READ BETWEEN THE LINES, तत्त्व पढकर जीवन में सत्यानद के लिए उपयोग / APPLICATION करना चाहिए, ऐसा भावार्थ/तात्पर्य बताने वाली समयसार की जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति भी अपने में वैशिष्ट्यपूर्ण, बेजोड है। स्वच्छदादि की झूठी दोषकल्पना करके अध्यात्मशास्त्रों को पढने का निषेध नहीं करना चाहिए। कोई चारपाई पर मर जाता है या मिश्री खाकर मर जाता है तो हम उनका प्रयोग करना नहीं छोडते हैं। मोक्षमार्ग का मूल उपदेश तो यहॉ भरा हुआ है। तो A to Z याने इसका आद्योपान्त अध्ययन अध्ययनपद्धति से जरूर करना चाहिए।

हरेक जीव का लक्ष्य अतींदिय आनद प्राप्ति का है, तो इसकी कुजी बतानेवाली गाथा २०६ देखिए -

एदम्हि रदो णिच्च सतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तम सोक्ख।।

हे भव्य प्राणी ! तू इस ज्ञानानद स्वभाव में नित्य रत अर्थात् प्रीतिवाला हो, इसमें नित्य सतुष्ट हो, और इससे तृप्त हो, ऐसा करने से तुझे उत्तम सुख होगा। इस तरह निजध्रुवज्ञानानद स्वभाव को ज्ञान का विषय बनाकर प्रमाणात्मक मतिज्ञान, श्रुतज्ञान से जानने पर हम सहजता से अतींद्रियानद को प्राप्त हो सकते हैं। इसका प्रयोग कर के ही देखें, इस पवित्र भावना के साथ **इति अलम् विज्ञेषु।**

शुद्धोऽह शुद्धोऽह शुद्धोऽह। ॐ शाति शांति शांति ।

❖❖❖

समयसार के साथ न्याय

- मन्नूलाल जैन वकील, सागर

जो जानकर शुद्धात्म को, ध्यावे परम निज आत्मा।
सागार या अनगार हो, क्षय करे वह मिथ्यात्व का।। प्रव गाथा १९४

ग्रन्थाधिराज समयसार जैन साहित्य की **अनुपम निधि** है, आचार्यवर श्री **कुन्दकुन्द** का **श्रेष्ठ परमागम** है, जैनदर्शन की **अमूल्य धरोहर** है, मुक्ति का मार्ग दिखलानेवाला **सर्वोच्च वाड्मय** है, द्रव्यानुयोग का **उत्कृष्ट ग्रन्थ** है, परमशुद्ध निश्चयनय याने अभेदवृत्तिनय का विषय निजध्रुव परमपारिणामिकभावरूप कारणपरमात्मा याने शुद्ध-अखण्ड-अभेद-नित्य निजपरमात्म तत्त्व का दिग्दर्शन करानेवाला **अद्‌भुत शास्त्र** है।

महिमा जीवों को अपने आत्मस्वरूप का अनुभव, प्रतीति, और अतीन्द्रिय आनन्द का साक्षात् अमृतपान कराकर अर्हन्त-सर्वज्ञ-केवली, अशरीरी-सिद्धदशा प्राप्त कराने में उत्कृष्ट निमित्तभूत यह ग्रन्थराज श्री समयसार **अलौकिक शास्त्र** है।

भवतापनाशक जिन-अध्यात्म का सार आचार्यवर श्री कुन्दकुन्ददेव ने आज से २००० वर्ष पहिले श्री समयसार शास्त्र में भरकर हम सभी जीवों पर महान उपकार किया है। यह ग्रन्थराज ऐसा **अपूर्व ग्रन्थ** है जिस पर अनेक टीकायें, प्रवचन, कलश, वचनिका, पद्यानुवाद आदि लिखे गये हैं फिर भी लेखकों को सतोष नहीं हो पा रहा है, फलस्वरूप आज भी अनुशीलनरूप से यह क्रम चल रहा है।

सर्वप्रथम **श्री अमृतचन्द्र आचार्य** ने **आत्मख्याति** नामवाली टीका लिखी, जिसमें २७८ सरस सस्कृत पद्य-कलश भी समाहित हैं। इस टीका में श्री आचार्य कुन्दकुन्ददेव का हार्द समयसार की रचना होने के लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् विद्वत् जगत के सामने उजागर हुआ और इस ग्रन्थराज की महिमा अपनी विशेषता के साथ प्रसिद्ध होने लगी। ऐसा अनुमान होता है जैसे कि एक हजार वर्ष तक यह ग्रन्थ **आत्मख्याति** टीका के अभाव के कारण ही प्रसिद्धि से वचित रहा हो। उद्‌भट् आचार्य श्री अकलकदेव, प्रभाचन्द्र, माणिक्यनन्दि, विद्यानन्दि आदि के लेखन का विषय भी समयसार साक्षात् नहीं बन सका।

प्रसिद्धि **श्री आचार्य जयसेन** की **तात्पर्यवृत्ति** टीका ने तो जैसे इस ग्रन्थराज को सरल सस्कृत भाषा में स्पष्टतया जन-जन तक पहुचाने का सफल-सार्थक प्रयास समुचित और समीचीन ही कर दिया। फलत हम देखते हैं कि राजमलजी पाण्डे की **कलशटीका** (प हेमराज की प्रवचनसार की वालबोधिनी), पण्डित वनारसीदासजी का **नाटक समयसार**, भट्टारक शुभचन्द्रजी की परम **अध्यात्म तरगिणी**, पण्डित जयचन्द्रजी की **भाषा वचनिका** आदि अनेक रचनायें आने लगीं। इसी क्रम में **क्षुल्लक श्री गणेशप्रसादजी वर्णी, क्षु सहजानदजी वर्णी, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, आध्यात्मिक सत्पुरुष पण्डित श्री कहानजी, मुनिवर श्री ज्ञानसागरजी, मुनिवर श्री वीरसागरजी,** आदि ने भी अपनी लेखनी और वाणी द्वारा इस ग्रथराज को जन सामान्य के स्वाध्याय की विषय वस्तु बनाने में अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य किया है। **डॉ हुकमचन्द भारिल्ल** की

अनुशीलन को भी इसी क्रम में शामिल करना चाहिए। यहॉ पर यह तो शोध का विपय है कि अपने-अपने व्याख्यान में कौन कहॉ तक ग्रन्थाधिराज के मर्म को खोलने में सफल हुआ हे। प्रामाणिक सदर्भ, स्पप्टता, आगम परपरा, विस्तार और स्वाध्याय के सफलीकरण की दृष्टि से **प्रवचन रत्नाकर** सर्वाधिक प्रसिन्द्र हुआ हे।

स्पष्टीकरण **समयसार** शव्द के अर्थ पर जव हम विचार करते हैं तो देखते हैं कि समयसार का अर्थ जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्य तो हे ही, साथ ही इसका अर्थ शुन्द्रात्मा, द्रव्य, गुण, पर्याय, शास्त्र, समय, शव्द, अर्थ, ज्ञान, शास्त्र का सक्षेप, जीव का ध्रुव अश, पदार्थ का सारभूत अश, जिनवाणी का सार आदि और भी अनेक अर्थ होते हैं। आत्मानुभूति, अतीन्द्रिय सुख, शुन्द्र, शुद्धि, द्रव्य की शुद्धता, पर्याय की शुद्धता, मत, धर्म, सफलता, मोक्ष, उपदेश, पॉचों परमेष्ठी, रत्नत्रय इत्यादि भी समयसार का अर्थ होता है।

न्याय शव्द का अर्थ उचित निर्णय, तर्क युक्त कथन, युक्ति शास्त्र, आत्मानुभूति, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, ईमानदारी, सत्य पर आधारित आत्मा को वास्तव में जानना (अनुभव करना) तो होते ही हैं किन्तु, न्यायालय का आदेश, वस्तुस्वरूप, पदार्थों की भिन्नता और स्वाधीनता, स्वरूप की प्राप्ति, दूध का दूध और पानी का पानी कर देना, सत्य कथन, योग्य कथन, समीचीन कथन, उत्तम कार्य, योग्यता, युक्ति, तर्क, सिद्धात इत्यादि अन्य अनेक अर्थ भी होते हैं। न्याय = नि+अय = निश्चय से स्वभाव में आना, जाना, जानना।

इसी प्रकार **समयसार के साथ न्याय** इस वाक्य के भी निम्न अर्थ किये जा सकते हैं -

(१) समयसार शास्त्र के साथ न्यायशास्त्र पढना चाहिए,

(२) शुद्धात्मा का अनुभव अवश्य करना चाहिए,

(३) समयसार शास्त्र के शव्दों का अर्थ करते समय योग्य कथन ही करना चाहिए,

(४) समयसार शास्त्र के शव्दों, गाथा-वाक्यों और टीका-वाक्यों का अर्थ करते समय न्यायशास्त्र की युक्तियों को ध्यान में रखते हुए ही अर्थ करना चाहिए,

(५) शुद्धात्मा का अनुभव करने के पहिले न्यायशास्त्र का ज्ञान अवश्य होना चाहिए,

(६) शुद्धात्मा का अनुभव करने के पहिले अन्य मतों का स्वरूप जानना चाहिए,

(७) समयसार शास्त्र का अध्ययन करने के पहिले अन्य मतों का स्वरूप अवश्य जान लेना चाहिए,

(८) द्रव्यानुयोग की दृष्टिपूर्वक न्यायशास्त्र एव करणानुयोग के प्रमुख शास्त्र, व नयज्ञान विषयक ग्रन्थ पढकर फिर समयसार पढने पर ही समयसार का अध्ययन न्यायपूर्ण कहलाता है,

(९) लोक में समयसार शास्त्र के शव्दों का अर्थ मनमाना-अन्यायपूर्ण किया जा रहा है, वह अब नहीं किया जाना चाहिए,

(१०) समयसार शास्त्र के अध्ययन का निषेध करना ही उसके साथ अन्याय करना है जो नहीं किया जाना चाहिए, इसी प्रकार अनेक अन्य भी अर्थ किये जा सकते हैं।

उपरोक्त तीनों - **समयसार, न्याय, समयसार के साथ न्याय** - शब्दो - वाक्यों के उपरोक्त में से कुछ अर्थो के सदर्भ में इस आलेख में विचार किया जावेगा।

श्री आचार्य जयसेन ने प्रारभ में मगलाचरण में तात्पर्यवृत्ति कहने की प्रतिज्ञा की है, तथा अतिम मगलाचरण में कहा है - ''जिन **महाऋषि पद्मनन्दि** (कुन्दकुन्द आचार्य) ने अपनी बुद्धिरूपी सिर से महातत्त्वपाहुड (समयसार) रूप पर्वत को उठाकर भव्य जीवों के लिए अर्पण कर दिया वे पद्मनन्दि महर्षि जयवत हों।

जिसका आश्रय लेकर भव्यजीव अनतससार सागर से पार हो जाते हैं वह सभी जीवों को शरणभूत होनेवाला जिनशासन चिरकाल तक जयवत रहे।

आत्मरस के रसिक पुरुषों द्वारा यह प्राभृतशास्त्र तात्पर्य नाम से वर्णन किया गया हे। जो कोई इसको आदरपूर्वक अभ्यास करता है, सुनता हे, पढता है, व्याख्यान करता है, प्रभावना करता है वह जीव शाश्वतरूप अमल, अद्भुत, सकल ज्ञानात्मक केवलज्ञान प्राप्त करके सदा के लिए मुक्ति ललना में लीन रहेगा।

इस प्रकार **श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव** विरचित समयसार प्राभृत नाम के ग्रन्थ सवधी **श्री जयसेन** आचार्य द्वारा दश अधिकारों (एव चूलिका) में ४३९ गाथाओं द्वारा की गई तात्पर्यवृत्ति समाप्त हुई।''

प्रत्येक अधिकार के अत में अधिकार की समाप्ति की सूचना देते समय श्री जयसेनाचार्य यह शब्द अवश्य लगाते गये हैं "शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाया तात्पर्यवृत्तो अधिकार समाप्त।" अर्थ है - **"शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाली तात्पर्यवृत्ति में यह अधिकार समाप्त हुआ।"**

इसी प्रकार प्रत्येक अधिकार और अतराधिकार के प्रारभ में पातनिका लिखते समय श्री जयसेनाचार्य यह अवश्य लिखते जाते हैं कि इस अधिकार में -

(१) कितनी गाथायें हैं,

(२) कितने अतराधिकार या स्थल हैं,

(३) प्रत्येक स्थल या अतराधिकार किस गाथा से प्रारभ होता है,

(४) प्रत्येक अतराधिकार में कितनी गाथायें हें,

(५) प्रत्येक अतराधिकार या स्थल में किस विषय का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार गाथाओं की सख्या, अधिकार, स्थल, अधिकार प्रारभ और विषय सुनिश्चित करते हुए टीका करते गये हैं।

उनके द्वारा यही सव वातें प्रत्येक अधिकार के समाप्त होने पर पुन लिखित भी प्राप्त होती हैं। इससे यह वोध हो जाता हे कि उन्हें यह भलीभाति ज्ञात हो गया था कि समयसार में आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने ४३९ या ४४१ या ४४५ या कुछ ओर अधिक गाथायें लिखी हैं, ४१५ मात्र नहीं, जैसा कि आचार्य अमृतचन्द्र की

आत्मख्याति टीका से ज्ञात होता है। कोई व्यक्ति भविष्य में गाथाओं की सख्या को कम या अधिक नहीं कर दे, इसलिए आचार्य जयसेन ने प्रत्येक अधिकार की पातनिका में प्रारभ में एव अधिकार के अत में दो वार गाथाओं की सख्या आदि उपरोक्त पॉचों वातें लिखी हैं। प्रवचनसार की गाथा २३५ के पश्चात् लिखी गई दूसरे अतराधिकार की समुदाय पातनिका में ये शव्द भी लिखे हें - "और वे गाथायें अमृतचन्द्र की टीका में नहीं हैं"।

इस ग्रन्थ में अधिकार, स्थल व गाथा सख्या इस प्रकार प्राप्त होती है

क्रम	अधिकार का नाम	कहाँ से कहाँ तक	कुल गाथायें	स्थल सख्या
१	(१) पीठिका	१ से १४ तक	१४	५
	(२) अधिकार गाथा	१५	१	१
	(३) जीव अधिकार	१६ से ४२ तक	२७	७
	(४) उपसहार गाथा	१	१	१
२	अजीव अधिकार	४४ से ७३ तक	३०	३
३	कर्त्ता-कर्म अधिकार	७४ से १५२ तक	८१	९
	दो गाथाओं पर गाथा १२५ के वादक्रम सख्या ही नहीं है। पातनिका के अनुसार ७८ गाथायें हैं।			
४	(१) पुण्य अधिकार	१५३ से १६२ तक	१०	२
	(२) पाप अधिकार	१६३ से १७१ तक	९	१
५	आस्रव अधिकार	१७२ से १८८ तक	१७	५
६	सवर अधिकार	१८९ से २०२ तक	१४	६
७	निर्जरा अधिकार	२०३ से २५२ तक	५०	६
८	वध अधिकार	२५३ से ३०८ तक	५९	८
	गाथा २६४ के वाद **दो** तथा गाथा २६५ के वाद **एक** गाथा पर क्रम सख्या नहीं है।			
९	मोक्ष अधिकार	३०९ से ३२७ तक	१९(+३)	४
	गाथा ३१३ के वाद **दो** तथा गाथा ३२० के वाद **एक** गाथा पर क्रम सख्या नहीं है।			
१०	सर्व विशुद्धज्ञान अधिकार	३२८ से ३४१ तक	१४	३
११	चूलिका	३४२ से ४३७ तक	९६	१३
		जोड	४८५	७४

गाथा सख्या आगे कुछ ओर विषयों पर विचार करने के पूर्व हमें सक्षेप में समग्ररूप से श्री समयसार जी ग्रन्थाधिराज की **विषयवस्तु** पर एक विहगम दृष्टि डाल लेना अपेक्षित है। यह ग्रन्थ श्रेष्ठ दिगम्बर आचार्य **श्री कुन्दकुन्ददेव** की आध्यात्मिक श्रेष्ठतम रचना है। इसमें विभिन्न टीकाकारों तथा प्रकाशकों और सम्पादकों के अनुसार ४१५ से ४४५ गाथायें हें। आचार्य अमृतचद्र के अनुसार ४१५ गाथायें हैं, किन्तु आचार्य जयसेन के अनुसार ४३९ गाथायें हैं। कुछ प्रकाशकों या सम्पादकों के अनुसार ४४५ गाथायें भी मानी गई हैं। **श्री आचार्य अमृतचन्द्र** ने तो अपनी टीका पूर्ण करते समय इसके सवध में कुछ भी नहीं लिखा है। उन्होंने तो अतिम कलश क्रमाक २७८ में अपनी निरभिमानता दिखलाते हुए कहा है कि इस समय (सार) की व्याख्या वस्तुतत्त्व को कहनेवाले शब्दों ने की है, स्वरूप में गुप्त (लीन) रहनेवाले अमृतचन्द्रसूरि द्वारा इसमें कुछ भी कार्य नहीं किया गया है। प्रस्तुत सस्करण में ४४५ गाथायें सम्मिलित की गई हैं। क्रम सख्या ४३७ ही रखी है। ८ गाथाओं पर अलग 1 से 8 तक क्रम सख्या लिखी है।

इस सस्करण में प्रत्येक गाथा पर प्रथम पक्ति के अत में आचार्य अमृतचद्र की आत्मख्याति के अनुसार क्रम सख्या लिखी है तथा द्वितीय पंक्ति के अत में आचार्य जयसेन की तात्पर्यवृत्ति के अनुसार क्रम सख्या लिखी है।

अधिकार तथा स्थलों के अनुसार विपय को ग्रन्थ की विस्तृत विपय सूची में देखें।

सावधानी यहॉ पर हम आत्मख्याति टीका की पण्डित जयचन्द्रजी छाबडा द्वारा लिखित **प्रस्तावना** में से कुछ वाक्यों का उल्लेख करना अति आवश्यक समझकर उन्हें नीचे उद्धृत कर रहे हैं जिससे पाठकों को इस समयसार ग्रन्थ को पढने में किसी प्रकार का मतिभ्रम उत्पन्न नहीं हो। पण्डित जयचन्द्र जी लिखते हैं -

"१ **इस जीव को जब तक पर्यायबुद्धि रहती है, तव तक ससार रहता है।** जव इसे शुद्धनय का उपदेश पाकर द्रव्यवुद्धि होती है तथा अपने आत्मा को अनादि-अनन्त, एक, सर्व परद्रव्यों, परभाव व परभावों के निमित्त से उत्पन्न हुए अपने भावों से भिन्न जानता हे और अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव करके शुद्धोपयोग में लीन होता है, तव यह जीव कर्मो का अभाव करके निर्वाण को प्राप्त करता है।

२ कालदोप से जीवों की वुद्धि मद होती जा रही है, उसके निमित्त से प्राकृत, सस्कृत के जाननेवाले भी विरले रह गये हैं, तथा गुरुओं की परपरा का उपदेश भी विरल हो गया है।

३ जो भव्यजीव इस ग्रन्थ का वाचन करेंगे, पढेंगे, सुनेंगे तथा उसका तात्पर्य हृदय में धारण करेंगे, उनके मिथ्यात्व का अभाव होगा तथा सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होगी - ऐसा अभिप्राय है, अन्य पण्डिताई तथा मान-लोभादि का अभिप्राय नहीं है।

४ जो आपने कहा कि इसमें शुद्धनय का ही कथन है - सो सत्य है। परन्तु इसमें जहॉ-तहॉ अशुद्धनयरूप व्यवहारनय की गौणता का भी कथन है। वहॉ पर आचार्य यह भी कहते हैं कि यह व्यवहारनय पहली अवस्था (पूर्व भूमिका) में हस्तावलम्बनरूप है, ऊपर चढने के लिए (उच्च भूमिका प्राप्त करने के लिए) सीढी के समान है, अत कथचित् कार्यकारी है।

५ इस (व्यवहारनय) को गौण करने से ऐसा मत मानना कि आचार्य व्यवहार को सर्वथा ही छुडाते हैं। आचार्यदेव तो ऊपर चढने के लिए नीचे की सींढी छुडाते हैं, और **जब अपने स्वरूप की प्राप्ति हो जावेगी तब तो शुद्ध व अशुद्ध दोनों नयों का ही अवलम्बन छूट जायेगा।** नय का अवलम्बन तो साधक (विकल्पात्मक) अवस्था में हे। ऐसे कथन इस ग्रन्थ में यत्र-तत्र विद्यमान हें, उनको यथार्थ समझने से विपर्यय नहीं होगा। जो यथार्थ समझेंगे उन्हें व्यवहार चारित्र से अरुचि नहीं आवेगी, और जिनकी होनहार ही खोटी होगी वे तो शुद्धनय सुनकर या अशुद्धनय सुनकर विपर्यय ही समझेंगे, उन्हें तो सर्व ही उपदेश निष्फल (अकार्यकारी) है।

६ स्वरूप की प्राप्ति दो प्रकार से होती हे।

(१) प्रथम तो, यथार्थ ज्ञान होकर (अनुभव होकर) श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन होना-

सो यह तो अविरत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवाले के भी होता है। वहॉ वाह्य व्यवहार तो अविरतरूप ही हे, वहॉ व्यवहार का आलम्वन भी है ही, और अन्तरग में सब नयों के पक्षपात रहित अनेकान्त तत्त्वार्थ की श्रद्धा होती है। तथा -

(२) दूसरे, जव सयम धारण करके प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि होता है, वहॉ भी जव तक **साक्षात् शुद्धोपयोग** की प्राप्ति न हो, श्रेणी न चढे तब तक शुभरूप व्यवहार का वाह्य आलम्वन रहता है।

७ दूसरी वात यह है कि **साक्षात् शुद्धोपयोगरूप वीतराग चारित्र** होना, सो **अनुभव में साक्षात् शुद्धोपयोग की प्राप्ति होती है,** उसमें (विषय शुद्धनयात्मक है और साधन में) व्यवहार का भी आलम्वन नहीं रहता है और शुद्धनय का भी आलम्बन नहीं रहता।

जब स्वय शुद्धोपयोगरूप हुआ, तब नय का आलम्बन क्यों ? नय का आलवन तो जव तक राग अश था, तव तक ही था। इस प्रकार अपने स्वरूप की प्राप्ति होने के वाद सर्वप्रथम तो श्रद्धा सबधी नयपक्ष मिटता है, तत्पश्चात् साक्षात् वीतराग होने पर चारित्र सवधी पक्षपात भी मिटता हे। ऐसा नहीं है कि साक्षात् वीतराग तो हुआ नहीं, ओर शुभरूप व्यवहार को छोडकर स्वच्छन्द प्रमादी होकर प्रवर्तन करे। यदि स्वच्छद होकर प्रवर्तन करे तो नय विभाग तो समझा नहीं, उल्टा मिथ्यात्व ही दृढ हुआ।"

समयसार ग्रन्थ के सवध में **जैन समाज** में जेसी उसकी महिमा और महत्व के वारे में प्रतिष्ठा है, उसी प्रकार उसकी विषय वस्तु का नयों के द्वारा प्रतिपादन करने की शैली के सवध में एव उसका अध्ययन कौन-कव-कैसे करे, इसके सवध में भी अनेक-विभिन्न मान्यतायें प्रचलित हैं।

यदि हम व्याकरण, न्याय, करणानुयोग और नयों का प्राथमिक ज्ञान करने के पश्चात् **मूल गाथाओं** और **मूल टीकाओं** का आधार लेकर अन्य विद्वानों-लेखकों के अनुवाद, व्याख्यान, चिन्तन, अनुशीलन आदि को पढते हैं - अध्ययन, मनन, स्वाध्याय करते हैं तो समयसार ग्रन्थ के द्वारा दिखाये गये शुद्धात्म तत्त्व का

प्रत्यक्ष अनुभव करने में पूर्णरूप से सफल हो सकते हैं, ओर यदि हम उपरोक्त क्रम से विपरीत पद्धति से अध्ययनादि करते हें तो आत्मानुभवरूपी सफलता प्राप्त करने में शकित ही रहेंगे।

सात तत्वों ओर नो पदार्थो का व्याख्यान करना तो द्रव्यानुयोग के सभी ग्रन्थों का प्रयोजन है, किन्तु समयसार ग्रन्थ में इन्ही नो पदार्थो या नौ तत्त्वों के व्याख्यान करने की पद्धति विशिष्ट है, जो अन्य ग्रन्थों में नहीं प्राप्त होती है। यहॉ पर न्यायग्रन्थों में प्रतिपादित **विषय, साधन** और **फल** की **परीक्षा पद्धति** अपनाई गई है। सम्यग्दर्शन का **विषय**[1] निज त्रिकाली ध्रुव है। सम्यग्दर्शन का **साधन**[2] (उपाय) वर्तमान प्रमाणात्मक मति-श्रुत ज्ञानपर्याय है। सम्यग्दर्शन का **फल**[3] अतीन्द्रिय-निराकुल आनन्द का प्रत्यक्ष प्रामाण्य सहित अनुभव करना-वेदन करना है। शास्त्र तात्पर्य वीतरागता की प्रगट प्राप्ति करना हे।

प्रासगिकता विभिन्न विद्वान समयसार की कुछ विशिष्ट गाथाओं पर ही अनेक प्रकार से व्याख्यान करते दिखाई देते हैं, किन्तु निम्न ७ प्रश्नों के सबध में कोई स्पष्ट समाधानकारक उत्तर नहीं मिलता है।

१ आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने वह कोई विशिष्ट गाथा, किसी विशिष्ट अधिकार के किसी विशिष्ट अन्तराधिकार में, विशिष्ट स्थल पर ही क्यों रखी है ?

२ उसे समझने से हमें कौन सी विशिष्ट जानकारी प्राप्त होती है जो किसी अन्य गाथा या अन्य किसी शास्त्र से नहीं मिलती हे?

३ उस गाथा का पॉच प्रकार से केसे शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, भावार्थ रूपं अर्थ किया जाता है ?

४ उस गाथा द्वारा किस **मत** विशेष की किस मिथ्या मान्यता का खण्डन होता है और जैनदर्शन की किस विशेष मान्यता का मण्डन होता है ?

५ उस गाथा को समझने से हमें अपने वर्तमान जीवन में क्या लाभ है ?

६ उस गाथा को समझ लेने से हमें शुद्धात्मानुभव ओर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

७ उस गाथा का अभिप्राय जान लेने से हमें अतींद्रिय आनद और वीतरागता कैसे प्रकट हो सकती है ?

आचार्य जयसेन तो प्रत्येक गाथा के पहले तथा पातनिकाओं में भी गाथाओं के प्रयोजन और भावार्थ, मतार्थ आदि को **शीर्षक** आदि के रूप में कहते हुए ही आगे वढते हैं। आचार्य अमृतचद्र जी ने भी उपरोक्त प्रश्नों के समाधान के लिये ही प्रत्येक गाथा को **शीर्षक** लगाकर टीका लिखी है। **इन बातों का कथन करना ही पातनिका का लक्षण**[4] है।

भेद विज्ञान इसी प्रकार समयसार शास्त्र के स्वाध्याय का फल भेदविज्ञान और वीतरागता आना चाहिए, किन्तु लगातार ५०-६० वर्षो तक श्रवग ओर अध्ययन के वाद भी वह फल नहीं मिल रहा है, फिर भी पाठक विचार नहीं करता हे कि इसका क्या कारण हे ?

---

[1] गाथा ६   [2] गाथा १०, १५२   [3] गाथा १२   [4] गाथा २ की टीका

समयसार में तो निम्न प्रकार से **भेदविज्ञान** और भिन्नता करना कहा है -

१ छह द्रव्यों से **निज** द्रव्य की चतुष्टयरूप भिन्नता।

२ छह द्रव्यों के गुणों से **निज द्रव्य** के गुणों की भिन्नता।

३ छह द्रव्यों की पर्यायों से **निज द्रव्य-गुण-पर्याय** की भिन्नता।

४ **निज द्रव्य** में ही कथचित् द्रव्य-गुण-पर्याय की अतद्भावरूप भिन्नता।

५ **निजध्रुव** अभेद अखण्ड तत्त्व की पर्यायमात्र से प्रयोजनवश कथचित् भिन्नता।

६ **निजध्रुवतत्त्व** की द्रव्यकर्मो से और उनके समस्त १४८ प्रकृति भेदों से भिन्नता।

७ **निजध्रुवतत्त्व** की नोकर्म-शरीर से और उसकी समरत अवस्थाओं से भिन्नता।

८ **निजध्रुवतत्त्व** की समस्त भावकर्मो-रागादि विकारी भावों से भिन्नता।

९ **निजध्रुवतत्त्व** की शरीर की समस्त क्रियाओं से भिन्नता।

१० **निजध्रुवतत्त्व** की समस्त औदयिक-ओपाधिक-सोपाधिक-आस्रव भावों से भिन्नता।

११ **निजध्रुवतत्त्व** की समस्त उदयरूप वधक भावों से भिन्नता।

१२ **निजध्रुवतत्त्व** की सवररूप उपशमभावरूप एकदेश शुद्धपर्याय से कथचित् भिन्नता।

१३ **निजध्रुवतत्त्व** की निर्जरारूप क्षायोपशमिकभाव/वृद्धिगत शुद्धपर्याय से कथचित् भिन्नता।

१४ **निजध्रुवतत्त्व** की क्षायिकभावरूप पूर्ण शुद्धपर्याय से कथचित् भिन्नता।

१५ **निजध्रुवतत्त्व** की साधकदशा के पूर्व स्थिरता प्राप्त करते समय होनेवाले विकल्पों से भिन्नता।

१६ **निजध्रुवतत्त्व** की निर्णय करते समय होने वाले गुणभेद के विकल्पों से भिन्नता।

१७ **निजध्रुवतत्त्व** की प्रमाण-नय-निक्षेप के विकल्पों से भिन्नता।

१८ **निजध्रुवतत्त्व** की गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवसमास आदि २० प्ररूपणाओं के विषय से भिन्नता।

१९ **निजध्रुवतत्त्व** की अन्य समस्त नयों और उनके विषयों से-नौ तत्त्वों आदि से भिन्नता।

२० **निजध्रुवतत्त्व** की बद्धस्पृष्टादि पॉच भावों से भिन्नता।

२१ **निजध्रुवतत्त्व** की समरत प्रत्याख्यान आदि १४७ भावों से भिन्नता।

२२ **निजध्रुवतत्त्व** की अध्यवसानादि आठ भावों से भिन्नता।

२४ **निजध्रुवतत्त्व** की वर्णादि आठ भावों से भिन्नता।

२४ **निजध्रुवतत्त्व** की रागादि से गुणस्थानान्त २१ भावो से भिन्नता।

२५ **निजध्रुवतत्त्व** की मिथ्यात्व, कषाय, अविरति, प्रमाद, योगादि विभावभावों से ओर उनके भेद-प्रभेदों से भिन्नता।

२६ निजध्रुवतत्त्व की समस्त शुभ, अशुभ और शुद्ध भावों से भिन्नता।

२७ निजध्रुवतत्त्व की रत्नत्रय, केवलज्ञान और मोक्ष पर्याय से कथंचित् भिन्नता।

२८ निजध्रुवतत्त्व की अनुभूतिरूप प्रमाणज्ञान पर्याय से भिन्नता।

२९ निजध्रुवतत्त्व की द्रव्यश्रुतज्ञान और भावश्रुतज्ञान से भिन्नता।

३० निजध्रुवतत्त्व की प्रत्येक पर्याय के समस्त अविभागी प्रतिच्छेदों से भिन्नता।

३१ निजध्रुवतत्त्व से मोक्षमार्ग पर्याय और मोक्ष पर्याय की भिन्नता।

३२ ज्ञानपर्याय और निजध्रुवतत्त्व की भिन्नता।

(मैं)	(यह निज ध्रुव शुद्धात्मा हूँ)

३३ प्रमाणज्ञानरूप मति-श्रुतज्ञान की पर्याय के तीन प्रकार के अविभागी प्रतिच्छेद हो जाना याने वह पर्याय एक प्रकार के अविभागी प्रतिच्छेदों से स्वय का भाव प्रमेयरूप से, तथा दूसरे प्रकार के अविभागी प्रतिच्छेदों द्वारा निजध्रुवतत्व का बाह्य/अर्थ/ पर प्रमेयरूप से, अनुभव करनेरूप पारमार्थिक भेदविज्ञान करना, और तीसरे प्रकार के अविभागी प्रतिच्छेदों द्वारा प्रामाण्य करना।

(मैं)	(यह निज ध्रुव शुद्धात्मा हूँ)	(यह मेरा ज्ञान सत्य ही है)

३४ ज्ञानपर्याय और समस्तज्ञेयों की भिन्नता।

३५ ज्ञानपर्याय ओर राग पर्याय की भिन्नता।

३६ ज्ञानपर्याय और अन्य सभी पर्यायों की भिन्नता।

३७ ज्ञानपर्याय की प्रत्यक्षता और परोक्षतारूप भिन्नता।

३८ ज्ञानपर्याय की प्रमाण और प्रामाण्यरूप भिन्नता।

३९ ज्ञानपर्याय की इद्रियजन्यता और अतींद्रियजन्यतारूप भिन्नता।

४० ज्ञानपर्याय की पारमार्थिक और अपारमार्थिकरूप भिन्नता।

४१ ज्ञानपर्याय की आत्मानुभूति के काल में निजध्रुवतत्त्व को जाननेवाले अविभागी प्रतिच्छेद, और अतींद्रिय आनद, सम्यक्प्रतीति, वीतरागता, निराकुलता को जाननेवाले इत्यादि प्रकार के अविभागी प्रतिच्छेदों से कथंचित् भिन्नता।

पूर्व भूमिकारूप अध्ययन ·

समयसार ग्रन्थ का स्वाध्याय उस जीव को ही लाभदायक (शुद्धात्मानुभूति के प्राप्त होने में निमित्त कारण) हो सकता है जिसने द्रव्य-गुण-पर्याय तथा विषय-साधन-फल समझकर ससार, शरीर और भोगों से अरुचि लाकर चारों गतियों के दुखों से छूटने का दृढ निर्णय किया हो।

व्याकरण शास्त्र का ज्ञान किये विना समयसार ग्रन्थ की गाथाओं और टीकाओं में प्रयुक्त व्युत्पत्ति, वाक्यों, शब्दों, समासों, विभक्तियों आदि का यथार्थ-सम्यक् (उचित) अर्थ का ज्ञान नहीं हो सकेगा।

न्यायशास्त्र का ज्ञान किये विना समयसार ग्रन्थ में आये **प्रत्यक्ष, अनुमान और परोक्ष ज्ञान** सवधी, लक्षण और परीक्षा सबधी, साध्य और साधन सवधी, पक्ष, साध्य और हेतु सवधी, अन्यथाऽनुपपत्तिरूप अविनाभाव सबधी, व्याप्यव्यापक सबधी, अन्यमतों में साख्य, वैशेषिक, नैयायिक, मीमासक, बौद्ध, योग, सदाशिव, माडलिक, भाट्ट, प्रभाकर, जैमिनी, चार्वाक, नास्तिक आदि सबधी, विधि-निषेध सवधी, **प्रमाण और प्रामाण्य** सबधी, कार्य-कारण भाव सवधी, **साधकतम-यथार्थ साधन** और साधनाभास सवधी, युक्तियॉ और उदाहरण सबधी, अनैकान्तिक दोष, अकिचित्कर दोष, अव्याप्ति दोष, अतिव्याप्ति दोष, असभव दोष, असिद्ध दोष, विरुद्ध दोष इ सबधी, प्रकरणसमदोष, कालात्ययापदिष्ट दोष, सकर, व्यतिकर, अनवस्था, अभाव, अदृष्ट कल्पना, दृष्ट हानि, वैयधिकरण, विरोध दोष, चार प्रकार के अभाव सवधी, **प्रतिभात विषय निर्दोष होना**, सर्वज्ञ की सिद्धि आदि अनेक प्रकार से कथन किये गये हैं, उनका सम्यक् अर्थज्ञान नहीं हो सकेगा।

करणानुयोग का ज्ञान किये विना तीन लोक, कृत्रिम-अकृत्रिम रचना, छह द्रव्यों की अनादि-अनतता, आठ कर्म और उनकी १४८ प्रकृतियों की दस प्रकार की वध-उदय आदि करणों-अवस्थाओं का जीव के भावों के साथ निमित्त-नैमित्तक सबधरूप वस्तु व्यवस्था, कर्मों के साथ जीव के वध और मोक्ष का सवध, जीव के भावों की स्वाधीनता और पराधीनता, **पुरुषार्थ का स्वरूप** और उसकी उपादेयता, **क्रमनियमित पर्याय** और वस्तु व्यवस्था, **वीतरागता और सर्वज्ञता,** दो द्रव्यों की पारमार्थिक भिन्नता, अशुभ शुभ और शुद्ध भावों का स्वरूप और उनकी हेय-उपादेयता, **वस्तुमात्र की स्वतत्रता और पर्यायगत योग्यता,** गुणस्थानादि २० प्ररूपणाओं का स्वरूप, ऊर्ध्व-मध्य-अधोलोक की व्यवस्था, तीन काल का निर्णय, द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप, **विषय-साधन-फल का निर्णय** इत्यादि को नहीं समझ सकने के कारण समयसार ग्रन्थ का मर्म ज्ञान में ग्रहण नहीं हो सकेगा।

नयों का यथोचित ज्ञान किये बिना **अभेदवृत्तिनय,** अभेद उपचारनय, भेद उपचारनय, **भेदवृत्तिनय,** परमशुद्ध निश्चयनय, शुद्धनिश्चयनय, एकदेश शुद्धनिश्चयनय, अशुद्धनिश्चयनय, शुद्धद्रव्यार्थिकनय, अशुद्ध द्रव्यर्थिकनय, शुद्ध पर्यायार्थिकनय, अशुद्ध पर्यायार्थिकनय, व्यवहार नय, उपचरितनय, अनुपचरित नय, सद्भूत व्यवहारनय, असद्भूत व्यवहारनय, इत्यादि नयों का तथा **प्रमाण-नय-निक्षेप** का यथार्थ अर्थ भावभासित हुए बिना समयसार ग्रन्थ के स्वध्याय से विशेष ज्ञान अर्जित नहीं हो सकेगा।

श्रोताओं द्वारा वक्ता या लेखक के स्तर तक का ज्ञान स्वयं प्राप्त किये बिना उसके यथार्थ अभिप्राय को ग्रहण नहीं किया जा सकता है। अतएव समयसार ग्रन्थराज का गभीर शुद्धात्मानुभूति प्रयोजक भाव ग्रहण करने के लिए हमें प्राथमिक जिनागम का व्याकरण, न्याय, करणानुयोग और नयज्ञान पूर्वक **वस्तुनिष्ठ विज्ञान पद्धति** से ज्ञान होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। आगम भाषा और आध्यात्म भाषा, **अग बाह्य पद्धति** और **अग प्रविष्ट पद्धति,** स्वपर के भेदविज्ञान और निज **आत्महित ज्ञापक पद्धति** का स्वरूप समझकर समयसार

ग्रन्थ का स्वाध्याय, पठन, श्रवण और मनन विशेष कार्यकारी होता है। **लौकिक ख्याति-लाभ आदि प्रयोजन रखने से कोई भी उद्देश्य प्राप्त नहीं होता है।**

समयसार ग्रन्थधिराज के अध्ययन का **प्रयोजन** तो अभेदवृत्तिनय-परमशुद्ध निश्चयनय के विषयरूप चैतन्य **निजध्रुवतत्त्व पूर्ण** ज्ञानानद अखण्ड एक शुद्ध टकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव को **ज्ञेय-विषय** बनाकर अपने मति-श्रुत-प्रमाणात्मक **ज्ञान साधन** के द्वारा **प्रत्यक्ष प्रामाण्य सहित** स्वसवेदन पूर्वक वीतरागता सहित परम आल्हादरूप फल-अतींद्रिय आनद का निर्विकल्प अनुभव करना है।

समयसार ग्रन्थ में विषय के रूप में तो नौ पदार्थ मुख्य रूप से हैं ही। प्रत्येक अधिकार की प्रत्येक गाथा और उसकी टीका हमें किसी न किसी प्रकार से स्व-पर का भेदविज्ञान करने और मिथ्यात्व की मान्यता छोडने की प्रेरणा देती ही दिखाई देती है। श्री जयसेनाचार्य जी तो इसीलिए प्रत्येक गाथा की टीका के अन्त में **तात्पर्य** या भावार्थ या अर्थ के रूप में हमें निज शुद्धात्मानुभूति प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं। वे अनेक जगह लिखते हैं कि ससार से भयभीत मोक्षार्थियों को समस्त रागादि विभाव भावों से रहित **शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय** स्वरूप अभेद निज परमात्मा की भावना, ध्यान, अनुभूति, दर्शन, अवलोकन, उपलब्धि, सवित्ति, प्रतीति, ख्याति, सवेदन, निर्विकल्प सामायिक, अनुभव, वीतराग सम्यक्त्व, निश्चय सम्यक्त्व, शुद्धात्म का सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरण करना चाहिए। अभेद रत्नत्रयात्मक स्वसवेदन, परमसमाधि, शुद्धात्मोपलब्धि, धर्मलब्धि, शुद्धात्मानुभव, निश्चय प्रत्याख्यान, वीतराग स्वसवेदन, सम्यग्ज्ञान, भेदज्ञान, शुद्धात्मा की भावना आदि और भी अनेक शब्दों द्वारा एक निज भगवान आत्मा का अनुभव करने की ही बार-बार प्रेरणा देते हैं।

प्रत्येक अधिकार की समाप्ति पर वे लिखते हैं - "समयसार की व्याख्या करने वाली **शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाली तात्पर्यवृत्ति टीका** में यह   अधिकार समाप्त हुआ।"

इसी प्रकार प्रत्येक अधिकार में पग-पग पर भेदविज्ञान कराना ही उनका प्रयोजन है। शुद्धात्मानुभवी धर्मात्मा सम्यग्ज्ञानी जीव की सदा यही भावना रहती है कि जिस प्रकार **मैंने प्रत्यक्ष प्रामाण्य सहित** निज ध्रुव चेतन्य शुद्ध ज्ञायकभगवान कारणपरमात्मा, परमपारिणामिक भाव स्वरूप ज्ञानानद **स्वभाव** का अपनी **प्रमाणात्मक ज्ञान पर्याय में अनुभव कर लिया है,** उसी प्रकार तीनों लोकों के समस्त जीव अपने **स्वभाव** का अवलम्बन लेकर अतींद्रिय आनद के रस का आस्वादन कर पर्याय में पूर्ण सुखी होने का ज्ञानात्मक पुरुषार्थ प्रारम्भ करके, सदाकाल के लिये सिद्ध वनकर अनन्त **सुखी** हो जावें। **वे सभी जीवों को सदा द्रव्यदृष्टि से ही देखते हैं,**-इसी प्रकार उनकी पर्याय में राग की उत्पत्ति क्रमश कम होती हुई समाप्त हो जाती है और वे भी अल्पकाल में मुक्त होकर लोकाग्र में विराजमान हो जाते हैं।

विषय वस्तु   **जीव अधिकार** में व्यावहारिक नौ तत्त्वों से भिन्न निज ध्रुवशुद्ध ज्ञानानद **स्वभाव** प्रत्यक्ष दिखाकर, **परसमयपना** छोडकर **स्वसमयपना** प्रकट करने की पावन प्रेरणा दी है। यह ध्रुव स्वभाव अपने अनत गुणों से एकरूप अभेद है, और द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से रहित है। वह निज ध्रुवस्वभाव पर्यायों और

गुणभेदों से रहित हे। ध्रुवस्वभाव का अनुभवन करनेवाला **निश्चयश्रुतकेवली**[1] कहलाता है। अभेदवृत्ति-शुद्धनिश्चयनय का विषय ही अनुभूति का विपय हे। **आत्मानुभूति कर लेना ही सम्पूर्ण जिनशासन का उपदेश-सार है।**[2] **आत्मानुभूति का पुरुषार्थ ज्ञानात्मक ही होता है।** जव तक इस जीव की द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म आदि परद्रव्यों में कर्तृत्त्ववुन्द्रि, भोक्तृत्त्ववुद्धि, एकत्ववुद्धि और ममत्व वुद्धि रहती है तव तक वह अज्ञानी हे, आत्मानुभूति रहित है। शुद्धात्मानुभूति को स्वसवेदन ज्ञान, भेदज्ञान, भावना या ज्ञान शव्द से ही बार-वार कहा गया है।

गाथा क्रमाक ४१ (आत्मख्याति - ३६) के शीर्षक में आचार्य जयसेन इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप में लिखते हें कि -

प्रश्न - "शुद्धत्मानुभूति (कारणपरमात्मा) का अनुभव किस प्रकार होता है ?"(भावक-भाव विवेक की विधि)

उत्तर - मोहादि का परित्याग इस प्रकार होता है", **"मोह मेरा कोई भी नहीं है। मैं तो एक उपयोग ही हूँ।"** उसे मोह से निर्ममत्व कहते हैं।

अजीव अधिकार में रागादि भावों को अजीव कहते हैं। अध्यवसान को, कर्म को, अध्यवसानों में तीव्र-मद अनुभाग को, नोकर्म को, कर्म के उदय को, तीव्रता-मदतारूप कर्म के अनुभाग (अनुभव) को, आत्मा ओर कर्म दोनों के मिलने से हुई अवस्था को, और कर्म के सयोग को - इन्हें ही मोही (अज्ञानी) लोग जीव कहते हैं - ऐसा मूल ग्रन्थकार कहते हैं, किन्तु ये सभी भाव तथा वर्णादि आठ भाव और रागादि इक्कीस भाव में ज्ञान नहीं होने से पुद्गल स्वभाव कहे गये हैं। उन्हें तो जहॉ पर जिनवाणी में जीव कहा गया है, वहॉ तो वह व्यवहारनय दिखाया हे। **वास्तव में तो जीव अरस, अवर्ण, अगन्ध, अव्यक्त, अलिगग्राह्य, अनिर्दिष्ट सस्थान, अशब्द और चेतनागुणवाला है।** वहॉ पर शुद्धात्मा को **अनुभूति**[3] कहा गया है।

कर्त्ता-कर्म अधिकार में कहते हें कि जव तक यह जीव अपने को क्रोधादि आस्रवभावों से भिन्न अनुभवरूप भेदविज्ञान (स्वसवेदन) नहीं कर लेता है तव तक वह अज्ञानी आत्मानुभव रहित होने से क्रोधादि भावों में कर्तृत्व-भोक्तृत्व-एकत्व-ममत्ववुद्धि सहित प्रवर्तता है और कर्मो का बध करता हुआ ससार में परिभ्रमण करता हे। जव इस जीव को **प्रत्यक्ष स्वानुभूतिरूप धर्मलब्धि**[4] प्राप्त हो जाती है, तब आत्मा और आस्रवभावों का भिन्न लक्षणरूप भेदज्ञान हो जाने से सम्यग्ज्ञानी हो जाता है, फलस्वरूप वध का निरोध हो जाता है और ससार सीमित रह जाता है। इस प्रकार आत्मज्ञान कर लेने से वध होना रुक जाता है। यहाँ **साख्यमत** में प्रवेश (निश्चयाभासी) होने का प्रसग नहीं आता है। इस अधिकार में तथा आगे भी **ज्ञान करना** का अर्थ **शुद्धात्मानुभूति** करना हे।

---

१ गाथा १० प्रवचनसार गाथा ३३ आ ख्या २ गाथा १७ ३ गाथा ५५-६० ४ गाथा ७६

यह आत्मा जव अपने को **प्रत्यक्ष** शुद्धात्मानुभूति रूप स्वसवेदन ज्ञान में शुद्धचिन्मात्र ज्योतिस्वरूप एक निर्मोह ज्ञान-दर्शनमय जानकर लीन होता है तो कर्मो का क्षय प्रारम्भ हो जाता है। ऐसे कर्म और नोकर्म के परिणाम को नहीं करनेवाले, अकर्ता स्वभाव का अनुभव करनेवाले जीव को **ज्ञानी** (आत्मानुभवी) कहा जाता है।

जीव के परिणाम और पुद्गल कर्म के परिणाम में परस्पर में निमित्त-नैमित्तिक भाव है, कर्ता-कर्मभाव नहीं है और भोक्ता-भोग्यभाव नहीं है। यदि जीव अपने भावों का कर्ता-भोक्ता है और पुद्गल कर्मो का भी कर्ता-भोक्ता है तो ऐसा मानने पर **द्विक्रियावादिता**[१] का प्रसग आता है जो जिनेन्द्रदेव को स्वीकार नहीं है। शुद्धात्मानुभव करते समय नये कर्म नहीं बधते हैं और पुराने बधे हुए कर्म निर्जरा को प्राप्त होते हैं। **कर्मबध का निमित्त कारण तो जीव का अशुद्ध उपयोग है।**

कार्य का होना तीन प्रकार से कहा है - परिणमित होना, ग्रहण करना और उत्पन्न होना।[२] इस प्रकार से कार्यरूप तो स्वय उपादान द्रव्य ही परिणमित होता है, निमित्त नहीं। अत उपादान ही कार्य का वास्तविक कर्ता है। निमित्त को तो व्यवहारनय से कर्ता **केवल कहा जाता है**। कर्मबध के प्रसग में कर्मो का उपादान कर्ता कर्म द्रव्य ही है, जीव के मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग भाव तो निमित्तमात्र हैं। इसी प्रकार जीव के रागादि भाव होने में उपादान कर्ता तो जीव द्रव्य ही है, कर्मो का उदयादि तो निमित्तमात्र है। शुद्धनय से देखा जाये तो ससार के सभी जीव शुद्ध हैं। कर्मो का बधन तो मात्र पर्याय में है, ध्रुव में वधन है ही नहीं। इसीलिये उपदेश भी पर्याय को ही दिया जाता है, पुरुषार्थ भी पर्याय द्वारा पर्याय में ही किया-कराया जाता है, और मोक्ष भी पर्याय में होता है। द्रव्य तो मुक्त ही है।

यहॉ यह सावधानी अवश्य रखनी चाहिए कि पर्याय अपने जीव द्रव्य से सर्वथा भिन्न नहीं है। जब भी पर्याय की भिन्नता (अतद्भावरूप) कही जाये तो कथचित् भिन्नता ही जानना-मानना चाहिए, सर्वथा नहीं। द्रव्य के बिना पर्याय और पर्याय के विना द्रव्य कभी नहीं रहता। द्रव्य को पर्याय से सर्वथा रहित अपरिणामी माननेवाले जीव को आचार्य ने साख्यमतानुसारी शिष्य कहकर पुद्गल तथा जीव द्रव्य का कथचित् परिणामित्व भी सिद्ध किया है[३]।

इसी प्रसग में टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र जी भी कुछ अत्यत महत्वपूर्ण कथन भी कर रहे हैं -

१ **कारणानुविधायिनी कार्याणि**[४] - जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है।

२ **न हि वस्तुशक्त्य परमपेक्षन्ते**[५] - वस्तु की शक्तियॉ पर की अपेक्षा नहीं रखती हैं।

३ **न हि स्वतोऽसति शक्ति कर्तुमन्येन पार्यते**[५] - जिस वस्तु में जो शक्ति नहीं होती है, वह शक्ति किसी अन्य के द्वारा उस वस्तु में नहीं की जा सकती है।

इसी प्रकार आत्मख्याति में **कलश ६२** और **कलश २००** भी अति महत्वपूर्ण होने से दृष्टव्य हैं।

---

१ गाथा ९१ से ११५ २ गाथा ८२ से ८५ ३ गाथा १२३ से १३० ४ आ ख्या गाथा ६८ ५ आ ख्या गाथा १२०, १२५

४ आत्मा ज्ञान स्वय ज्ञान, ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा, मोहोऽय व्यवहारिणाम्।।६२।।

अर्थ - आत्मा ज्ञान स्वरूप है, स्वय ज्ञान करता है। ज्ञान करने के सिवाय वह और क्या करता है ? आत्मा पर भाव (द्रव्य) का कार्य करता है-ऐसा मानना व्यवहारी (अज्ञानी) जीवों का मोह (अज्ञान) है।

५ नास्ति सर्वोऽपि सबध परद्रव्यात्मतत्त्वयो ।
कर्तृकर्मत्वसबधाभावे तत्कर्तृता कुत ।।२००।।

अर्थ - परद्रव्य और आत्मतत्त्व में सभी सबध (कोई भी सबध) नहीं हैं। इस प्रकार कर्तृत्व-कर्मत्व सबध का अभाव होने से आत्मा को परद्रव्य का कर्तृत्व कहाँ से हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता है।

६ आचार्य अमृतचद्रजी ने लिखा है कि **व्याप्य-व्यापकता तत्स्वरूप में ही होती है,**[1] अतत्स्वरूप में नहीं होती है। और व्याप्य-व्यापक भाव के हुए बिना कर्ता-कर्म की स्थिति कैसी? अर्थात् वहाँ कर्ता-कर्म की स्थिति होती ही नहीं।

मिथ्यात्वादि पुराने कर्मों का उदय होना, नवीन पुद्गलों का कर्मरूप परिणमना व बधना, और जीव का अपने अतत्त्व श्रद्धानादि भावरूप परिणमना-यह तीनों ही कार्य एक समय में अपने-अपने में ही होते हैं। सब द्रव्य स्वतत्रतया अपने आप ही परिणमते हैं, कोई किसी का परिणमन नहीं कराता है।

७ जैसे अग्नि और उष्णता का तादात्म्य सबध है, उसी तरह **जीव और ज्ञानदर्शन उपयोग का तादात्म्य सबध है। यह अभिन्नता प्रत्यक्ष अनुभव में आती है।** किन्तु इस प्रकार का तादात्म्य क्रोध का जीव के साथ नहीं है। क्रोध का जीव के साथ एकान्त से तादात्म्य मानने पर जीव (सहज शुद्ध अखण्ड एक ज्ञान दर्शन उपयोगमय) और अजीव (विकारीभाव क्रोध) को एकत्व प्राप्त होता है।

जैसे - "क्रोध जीव से भिन्न है, विशुद्ध ज्ञान दर्शनमय जीव क्रोध से भिन्न है", यह शुद्ध निश्चयनय का कथन सम्मत है। उसी तरह व्यवहारनय से किया गया यह कथन भी सम्मत है कि "जीव क्रोध का कर्ता-भोक्ता है, जीव क्रोध से अभिन्न है"।

प्रश्न- यह दोनों बातें कैसे सम्मत हो सकती हैं ?

उत्तर - निश्चयनय का कथन और व्यवहारनय का कथन परस्पर सापेक्ष होने से।[2] जैसे - किसी ने कहा कि "देवदत्त अपनी दाहिनी ऑख से देखता है।" तब नहीं कहते हुए भी यह सिद्ध होता है कि देवदत्त बायी आख से नहीं देखता है। (याने बायी आख है किन्तु अभी उससे देख नहीं रहा है। उसी तरह ये दोनों नयों के कथन परस्पर सापेक्ष हैं, एकान्त नहीं)।

---

[1] कलश ४९ ● [2] गाथा १२० से १२२

इसी तरह जीव और क्रोध में भिन्नत्व तथा कर्तृत्व-भोक्तृत्व की विवक्षा ध्यान में रहना चाहिए। **जो इस परस्पर-सापेक्ष नय विभाग को नहीं मानते हैं** उनकी मान्यता में जीव को ससार और मोक्ष दोनों ही नहीं बनते हैं, क्योंकि जो सदा भिन्न और सर्वथा अकर्त्ता-अभोक्ता हे उसे कर्मबध का अभाव, ससार का अभाव ओर मोक्ष होने का अभाव का प्रसग आता है। ऐसा सदामुक्त जीव तो **साख्य** और **सदाशिवमत** में माना गया है, जिनमत में नहीं। जीव को कथचित् परिणामी और कथचित् अपरिणामी मानने में ही जिनमत के स्याद्वाद, अनेकात, वस्तु स्वातन्त्र्य, कर्म सिद्धात, ससार, पुरुषार्थ और मोक्ष की सिद्धि होती हे।

इसलिए पुद्गल द्रव्य से भिन्न शुद्ध परमात्म भावना में परिणत अभेद रत्नत्रय लक्षणवाले भेदज्ञान से प्रत्यक्ष अनुभव में आनेवाला चिदानद एक स्वभाव निज शुद्धात्मा ही शुद्ध निश्चयनय से उपादेय है, किन्तु भेद रत्नत्रय स्वरूप को अभेदरत्नत्रय का साधक होने से व्यवहारनय से उपादेय कहा जाता है। इस प्रकार शब्दार्थ, मतार्थ, नयार्थ, आगमार्थ और भावार्थ सभी स्थानों पर जानना चाहिए'।

प्रश्न : जो परमनिरसग साधु वाह्य-अभ्यतर परिग्रह को छोडकर वीतराग चारित्र के अविनाभूत भेदज्ञान से अपने आत्मा को अनुभवता है, उसका अनुभव में आनेवाला आत्मा कैसा है ?

उत्तर · विशुद्ध ज्ञान-दर्शन उपयोगवाला आत्मा है। ऐसे उपयोग स्वभाववाले नोकर्म-द्रव्यकर्म-भावकर्म रहित शुद्ध स्वभाववाले आत्मा को निस्सग साधु अनुभव करते हैं। ऐसे आत्मा का अनुभव करने के कारण उन्हें जितमोह, जितराग, जितद्वेष, जितक्रोध, जितमान, जितमाया, जितलोभ, जितकर्म, जितनोकर्म, जितमन, जितवचन, जितकाय, जितवुद्धि, जितउदय, जित शुभाशुभ परिणाम, जितश्रोत्र, जितचक्षु, जितघ्राण, जितरसना, जितस्पर्शन, जितपरिग्रह आदि कहते हैं[१]।

श्री जयसेनाचार्यजी इस ग्रन्थ की टीका में अनेक स्थानों पर लिखते हैं कि "उपादानकारणसदृश कार्यं" **"उपादान कारण के समान ही कार्य होता है, ऐसा शास्त्र का वचन है।"** इसीलिए अज्ञानी के सभी भाव अज्ञानमय होते हैं, और ज्ञानी आत्मानुभवी जीव के सभी भाव ज्ञानमय होते हैं। जैसे स्वर्ण में से स्वर्ण के आभूषण और लोहे में से लोहे के वर्तन ही होते हैं। ज्वार का वीज वोने से बासमती चावल पैदा नहीं हो सकते हैं।

अज्ञानी शिष्य को सबोधन करने की पद्धति -

वे मिथ्यादृष्टि-अज्ञानी-वहिरात्मा-अप्रतिवुद्ध- शुद्धात्मानुभूति शून्य जीव के सवध में जव कथन करते हैं तो उसे प्राय इस प्रकार से सबोधन करते हें -

१ **शुद्धात्मा ही उपादेय है - इस प्रकार की रुचि नहीं रखनेवाला[१]।**

२ अपनी शुद्धात्मा को **स्वसवेदनज्ञान के द्वारा नहीं जाननेवाला।[१]**

३ अपनी शुद्धात्मा को **परमसमाधि से नहीं अनुभव करनेवाला।[१]**

---

[१] गाथा १२३ से १२५ की टीका ● २ गाथा १३१ ● ३ गाथा १३९

४ अनत ज्ञानादि चतुष्टयरूप शुद्धात्मतत्त्व उपादेय है, उसे छोडकर जिसकी अन्यत्र रुचिरूप उपादेय बुद्धि है।

५ आत्मोत्थ सुखसवेदन का अभाव होने से जो विषय-कषायों से दूर नहीं हुआ है।

६ निश्चय रत्नत्रय लक्षणवाले शुद्धात्मतत्त्व को नहीं जाननेवाला।

७ शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान, सम्यग्ज्ञान ओर शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाले अभेद रत्नत्रय की भावना के विषय में जो अज्ञानी है।

८ सहजानद एक स्वभावरूप निजात्मा में रति नहीं करनेवाला।

९ शुद्धात्मा के प्रतिपक्षभूत मिथ्यात्व रागादि के साथ परिणमन करनेवाला।

१० निर्विकार चैतन्य चमत्कारमात्र निज परमात्मतत्त्व परमपारिणामिक भाव स्वभावसिद्ध में भावभासना नहीं करनेवाला।

१० एक शुद्धात्मा ही अपना स्वभाव है, ये मिथ्यात्व रागादि विभाव भाव अपना स्वभाव नहीं हैं - ऐसा नहीं माननेवाला।

१२ परमसामायिक भावना परिणत अभेद रत्नत्रय लक्षणवाले निर्विकल्प समाधि से समुत्पन्न परमानद सुख समरसी भाव से परिणत शुद्ध जीव ही उपादेय है - ऐसा नहीं माननेवाला।

१३ निर्विकल्प निर्मोह निरजन निज शुद्धात्म समाधि से प्रगट होनेवाले सुखामृत रसानुभूति लक्षणवाले शुद्धात्मा को जानकर शुद्धात्मा का अनुभव करने के लिए ध्यान नही करनेवाला।

१४ निर्मल आत्मानुभूति लक्षणवाले निज शुद्धात्म स्वभाव से भिन्नस्वरूप क्रोधादि भावों में भी मैं ही क्रोध हू, ऐसा अभेदरूप से परिणमन करनेवाला[1]।

१५ स्वसवेदनज्ञान के वल से क्रोधादि आस्रवभावों से भिन्न शुद्धात्म स्वभाव को नहीं जाननेवाला[2]।

१६ श्री धर्मलब्धि के काल में प्रत्यक्ष स्वानुभूति के द्वारा अपने शुद्धात्मा के स्वभाव का और काम क्रोधादि आस्रव का लक्षणरूप भेदविज्ञान का अनुभव नहीं करनेवाला[3]।

१७ चिदानद एक स्वभाववाले शुद्धात्मा को छोडकर कदाचित् विषय-कषायरूप अशुभोपयोग परिणाम को करनेवाला ओर कदाचित् भोगाकाक्षा निदान स्वरूप शुभोपयोग परिणाम को करनेवाला।

१८ निर्विकार चिच्चमत्कारमात्र परिणति रहित जीव उदयागत कर्म पुद्गलों का निमित्त पाकर मिथ्यात्व रागादि भावों से परिणमित होनेवाला।

१९ निर्विकल्प स्वशुद्धात्मा की उपलब्धि से प्राप्त होनेवाले सुखामृत रसास्वाद से रहित जीव।

---

१ गाथा ७४ ● २ गाथा ७५ ● ३ गाथा ७६

२०	स्वशुद्धात्मा की उपादेय रुचिरूप निर्विकार चिच्चमत्कारमात्र लक्षणरूप शुद्ध उपादान कारण से उत्पन्न होनेवाले **निश्चय सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं होनेवाला**[१]।

२१	स्वशुद्धात्मानुभव से उत्पन्न **वास्तविक सुखास्वाद की अनुभूति से रहित** आत्मा।

२२	समस्त रागादि विकल्प रहित **स्वसवेदनज्ञान के अभाव से परमार्थिक भेद को न जाननेवाला।**

इस अधिकार की समाप्ति के पूर्व **गाथा १४० से १४४** तक **श्री कुदकुद** आचार्य द्वारा **मिथ्यात्वादि बध के प्रत्ययों की जो परिभाषायें दी हैं** वे भी स्मरणीय हें, वे आचार्य जयसेन की भाषा में देखिए -

१	अनतज्ञानादि चतुष्टयरूप शुद्धात्मतत्व उपादेय है, उसे छोडकर जीवों की जो **अन्यत्र रुचिरूप उपादेय बुद्धि** होती है वह श्रद्धान **मिथ्यात्व का उदय** है।

२	भेदज्ञान को छोडकर जीवों का जो विपरीत अभिनिवेशरूप से **परद्रव्य के साथ एकत्व** की प्रतीति है, वह **अज्ञान का उदय** है।

३	आत्मोत्थ सुखसवेदन के अभाव होने पर जो **विषय-कषायों से दूर नहीं होना** हे वह ससारी जीवों के **असयम का उदय** है।

४	प्रशात निर्विकल्प आत्मानुभूति लक्षणवाले शुद्धोपयोग को छोडकर जो **क्रोधादि कषायरूप उपयोग परिणाम** है, वह जीवों के **कषाय का उदय** है।

५	जीवों के मन-वचन-काय की वर्गणा के आधार से वीर्यान्तराय के क्षयोपशमजनित कर्मों के आने में हेतुभूत जो **आत्म प्रदेशों का परिस्पदन** लक्षणवाले प्रयत्नरूप से जो व्यापार-उत्साह (चेष्टोत्साह) है वह **योग का उदय** है।

यहॉ पर श्री आचार्य जयसेन भावार्थरूप में लिखते हैं कि उदयागत द्रव्य प्रत्ययों के निमित्त होने पर यदि जीव स्व-स्वभाव को छोडकर **रागादिरूप भावप्रत्ययरूप से परिणमन करता है तब बध होता है, केवल उदयमात्र होने से बध नहीं होता है,** जैसे घोर उपसर्ग होने पर भी पाण्डवों को स्वभाव से चलायमान नहीं होने से बध नहीं हुआ।

यदि उदय होने मात्र से वध होता हो तव तो सदाकाल ही ससार रहेगा, कोई भी जीव मुक्त नहीं होगा, क्योंकि ससारी जीवों को सदा कर्मों का उदय रहता है। तात्पर्य यह है कि उदयागत द्रव्यप्रत्यय के निमित्त से जव मिथ्यात्वादि भावप्रत्ययरूप जीव परिणमन करता है तब वह उदय नये कर्मो का बध का कारण होता है।

वास्तव में प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी अवस्था का स्वय ही कर्ता है, कोई भी परद्रव्य किसी दूसरे द्रव्य की अवस्था का कर्ता नहीं है। जीव के रागादि परिणामों का कर्ता जीव है, पुद्गल की कर्म आदि अवस्था का कर्ता पुद्गल है।

---

[१] गाथा ९१

व्यवहारनय कहता है जीव कर्मो से वद्ध-स्पृष्ट है, शुन्द्रनय कहता है जीव कर्मो से अवद्ध-अस्पृष्ट है। शुन्द्र पारिणामिक परमभावग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से जीव ऊपर कथित दोनों नयों के विकल्पों से ही रहित है। विकल्प जीव का स्वरूप नहीं है। जीव का स्वरूप नयपक्षपातरहित स्वसवेदन ज्ञानी जीव के अभिप्राय के अनुसार तो वद्ध-अवन्द्र मूढ-अमूढादि नय विकल्परहित चिदानद एक स्वभावरूप है। छद्मस्थ जीव की अपेक्षा से व्यवहारनय से जो जीव का स्वरूप कहा जाता है, केवलज्ञान की अपेक्षा से वह शुन्द्रजीव का स्वरूप नहीं है।

श्री आचार्य अमृतचन्द्र ने आत्मख्याति टीका में **कलश ६९ और ७०** में यह वात वहुत ही स्पष्ट करते हुए कहा है कि-जो पुरुप नयों का पक्षपात छोडकर अपने स्वरूप में गुप्त होकर नित्य रहते हैं, वे विकल्प-जाल छोडकर शान्तचित्त होकर **साक्षात्** अमृत का पान करते हैं। एक नय का पक्ष तो ऐसा है कि यह चिन्मात्र जीव कर्मो से वधा है, और दूसरे नय का पक्ष ऐसा है कि जीव में वध नहीं है। ये दो नय पक्ष हैं, पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेदी स्वात्मानुभवी पक्षपात रहित है उसे **निरतर** चित्वरूप जीव चित्वरूप से ही अनुभव में आता है।

सार जो यह नयपक्षपात रहित स्वसवेदन ज्ञानी है वह दोनों नयों के वन्द्र-अवद्ध मूढ-अमृढादि नय विकल्प रहित चिदानद एक स्वभाव को इस प्रकार जानता है **जैसे भगवान केवली** निश्चयनय और व्यवहारनय के द्वारा कहे हुए पदार्थ को द्रव्य-पर्यायरूप जानते हैं, और उसी प्रकार गणधरदेव आदि छद्मस्थ भी दोनों नयों द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप जानते हैं तथापि निर्विकार समाधिकाल में शुन्द्रात्मा के स्वभावरूप से साधन में किसी भी विकल्प को नहीं ग्रहण करते हैं'[1]।

आत्मा निर्विकल्प समाधि में स्थित शुद्धात्मानुभवी पुरुपों द्वारा इद्रिय-अनिद्रिय जनित वाह्य विषयों सवधी समस्त मतिज्ञान के विकल्पों से रहित होकर और (श्रुतज्ञान सवधी) वन्द्र-अवद्धादि विकल्परूप नयपक्षपात से भी रहित होकर समयसार का अनुभव करता हुआ ही देखा और जाना जाता है, इसलिए केवल सकल विमल ज्ञान दर्शन नाम पाता है, वद्ध या अवद्ध नाम नहीं पाता है[2]।

आचार्य अमृतचन्द्र का आत्मख्याति टीका में भी इन्हीं गाथाओं का भाव देखिये - **जैसे भगवान केवली** केवलज्ञान के द्वारा किसी भी नयपक्ष को ग्रहण नहीं करते, इसी प्रकार श्रुतज्ञानी आत्मा अनुभव के समय समस्त नयपक्ष के ग्रहण से दूर हुए होने से वास्तव में समस्त विकल्पों से **अति पर, परमात्मा, ज्ञानात्मा, प्रत्यग्ज्योति, आत्मख्यातिरूप, अनुभूतिमात्र समयसार है**[3]।

इसी के आगे भावार्थ में पण्डित जयचन्द्रजी छावडा लिखते हैं - **जैसे केवली भगवान** सदा नयपक्ष के स्वरूप के साक्षी (ज्ञाताद्रष्टा) हैं, उसी प्रकार श्रुतज्ञानी भी जव समस्त नयपक्षों से रहित होकर शुद्ध चेतन्यमात्र भाव का अनुभवन करते हैं, तव वे नयपक्ष के स्वरूप के ज्ञाता ही हैं। और जव नयपक्ष को छोडकर वस्तुस्वरूप को मात्र जानते ही हैं तव उस समय **श्रुतज्ञानी भी केवली की भाति वीतराग जैसे ही होते हैं,**

---

१ गाथा १५१ ● २ गाथा १५२ ● ३ गाथा १४३ आ ख्या

ऐसा जानना। "जैसे भगवान केवलज्ञान के द्वारा . . आत्मा को आत्मा से आत्मा में अनुभव करने के कारण केवली हैं, उसी प्रकार हम भी ..श्रुतज्ञान के द्वारा आत्मा को आत्मा से आत्मा में अनुभव करने के कारण श्रुतकेवली हैं'।"

जिसका समस्त विकल्पों का व्यापार रुक गया है, ऐसा जो समयसार है इस एक को ही वास्तव में केवल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नाम प्राप्त होता है। जिसने मतिज्ञान तत्त्व को आत्म सन्मुख किया है, तथा श्रुतज्ञान तत्त्व को भी आत्मसन्मुख करता हुआ अत्यन्त विकल्प रहित होकर . . अनाकुल, केवल, एक, सम्पूर्ण विश्व पर ही मानों तैरता हो, ऐसे अखण्ड प्रतिभासमय, अनन्त विज्ञानघन परमात्मरूप समयसार का जब आत्मा अनुभव करता है तब उसी समय आत्मा सम्यकृतया दिखाई देता है और ज्ञात होता है।[२]

हार्द . इस प्रकार प्रत्यक्ष स्वशुद्धात्मा की अनुभूति दिखलाने की प्रक्रिया से भरपूर, कर्ताकर्म की प्रवृत्ति का प्रारभ कैसे होता है और उसका अभाव स्वस्वरूप को जानने से कैसे हो जाता है - इत्यादि प्रमेय बहुल, सिद्धात बहुल, जिनवाणी के सभी अनुयोगों के सभी शास्त्रों में अनुपम और आगे के सभी अधिकारों की पीठिका रूप अनूठा यह कर्ताकर्म अधिकार समयसार का हार्द है। राग और ज्ञान की भिन्नता तथा जीव और कर्म की अनेक प्रकार से भिन्नता तथा एक दूसरे का अकर्तृत्त्व का बोध करानेवाला भेदज्ञान से ओतप्रोत आत्मानुभूति के आनद का आस्वादन करानेवाला यह अधिकार पुण्य-पाप अधिकार के पहिले समाप्त होता है।

इसके स्थान क्रम से यह भी ज्ञात होता है कि पुण्य-पापरूप भावों और तज्जनक बाह्य क्रियाओं का परिवर्तन मात्र या आचरण न तो सम्यग्दर्शन की अनिवार्य भूमिका ही हो सकती है और न ही कर्ताबुद्धिरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यात्व के अभाव का प्रधान कारण हो सकता है। **रागभाव का ज्ञानभाव से भेद जाने बिना न कर्ताबुद्धि मिट सकती है और न राग का अभाव किया जा सकता है।**

पुण्य-पाप अधिकार की आचार्य जयसेन ने **प्रथम १० गाथाओं** को पुण्य अधिकार और **शेष ९ गाथाओं** को पाप अधिकार नाम दिया है। इस अधिकार में आचार्य कहते हैं कि **सभी ८ कर्म हैं, उनमें से कोई भी कर्म धर्म रूप नहीं है।** कर्म से बध ही होता है, मुक्ति नहीं होती। घातिया कर्म तो सभी पापरूप ही हैं, उनमें से मोहनीयकर्म जो सभी का नेता है, बध करने में जिस की सर्वाधिक बलवान और प्रधान भूमिका है, उसका एक भेद चारित्रमोह नाम का कर्म ही पुण्य के रूप में अज्ञानी जीवों को भ्रम से अपने को धर्म के रूप में प्रस्तुत करके ससार में ही घुमाने का कार्य करता है। **मिथ्यात्व के प्रभाव से अज्ञानी जीव इस चारित्रमोह नाम के पुण्य कर्म को धर्म मानकर ठगाये जाते हैं।** प्रवचनसार में तो कहा है कि पुण्य और पाप में अतर नहीं है। जो ऐसा नहीं मानता वह मोहाच्छादित होता हुआ घोर अपार ससार में परिभ्रमण करता है[३]।

---

१ प्रवचनसार गाथा ३३ • २ आ ख्या गाथा १४३ • ३ प्रव गाथा ७७

यहॉ पर हेतु, स्वभाव, अनुभव और आश्रय का दो प्रकार से विचार करके वहुत ही सशक्त युक्तियों के वल से पुण्य और पाप में वधमार्गरूप समानता सिद्ध करके जीवों को पुण्य के तथा पाप के भ्रमजाल में से निकालने के लिये निज शुन्द्रात्मानुभूति को ही यथार्थ मोक्षमार्ग वतलाया हे।[2] एक वहु प्रचलित **सोने की** वेडी ओर लोहे की वेडी का उदाहरण भी इसी अधिकार में आया हे जो शुभभावों ओर अशुभभावों दोनों को वेडियों के समान वधनकारक सिन्द्र करके उनका सग छुडाकर स्वाधीन शुन्द्रात्मा का आश्रय लेने की प्रेरणा देता हे।

एक अन्य **उदाहरण में** आचार्य अमृतचन्द्र ने पुण्य ओर पाप कर्म को अज्ञानरूप **शूद्रा के दो पुत्र** कहकर एक ब्राह्मणी के यहॉ और एक शूद्रा के यहॉ ही पलकर वढना वताया है।[3] किन्तु आचार्य जयसेन ने क्रियाकाण्ड में धर्म माननेवालों को समझाने के लिये इस उदाहरण में एक ही **ब्राह्मणी के दो पुत्र** वतलाकर एक का उपनयन सस्कार हो जाने से ब्राह्मण हो जाना तथा दूसरे का उपनयन सस्कार न हो पाने से शूद्र ही रहना कहा और पुण्य पाप में समानता सिद्ध की है।[4]

आचार्य जयसेन अनेक स्थानों पर प्राकृत भाषा के नियम और अर्थ करने की पद्धति के बारे में भी स्पष्टता करते जाते हैं। वहाँ लिग व्यभिचार, वचन व्यभिचार और कारक व्यभिचार को दोष नहीं माना जाता है।

इसी प्रकार उन्होंने सासारिक सुख, सोभाग्य, ख्याति, पूजा, लाभ आदि के प्रयोजन से किये जाने वाले व्रत, तपश्चरण, दान-पूजादि को उसी प्रकार व्यर्थ कहा है जैसे कि कोई छाछ पाने के लिये रत्न वेचता हे, भस्म पाने के लिये रत्नराशि जलाता है, धागा पाने के लिये मोतियों के हार को तोडता है या कोदों अनाज पाने के लिये चदन के वृक्षों के वन को काट डालता है। परमात्म प्रकाश में कहा हे - किले के लिए मदिर जलाने जेसा विषयभोग भोगना हे।

आचार्य कहते हैं कि पुण्य और पाप दोनों ही कर्म शुद्ध निश्चयनय से केवल वध के कारण हें और निषेध किये जाने योग्य हैं। वे कहते हैं कि जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है कि किसी भी कर्म से राग-प्रीति नहीं करो। यद्यपि अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से द्रव्य-पुण्य-पापों में भेद है, अशुद्ध निश्चयनय से उन दोनों-पुण्य और पाप कर्मो से उत्पन्न सुख-दुख में भेद है, तथापि शुद्ध निश्चयनय से उनमें भेद नहीं है। रागी वधता है और वैरागी छूटता है। शुभ छोडकर अशुभ में जाने का भी निषेध ही किया है।

वास्तव में स्वसवेदनज्ञान ही मोक्ष का कारण है, और अज्ञान तथा अज्ञानपूर्वक की गई समस्त क्रिया मोक्ष का कारण नहीं है। पुण्य का **चाहनेवाला तो** अज्ञानी है, वही उस पुण्य को मोक्ष का कारण मानता है। मोक्ष का मार्ग तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय है। मोक्षमार्ग का कारण शुन्द्रात्मा का स्वसवेदन ज्ञानरूप अनुभव ही है। इस प्रकार पुण्य की चाह का और अज्ञानपूर्वक किये जाने वाले आचरण का निषेध करके शुद्धात्मानुभूति प्रकट करने की पावन प्रेरणा दी है।[6]

---

१ गाथा १५३ २ गाथा १५६ ३ आ ख्या कलश १०१ ४ गाथा १५३ ५ गाथा १५८ ६ गाथा १६२

आस्रव अधिकार मे मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योगो को चेतन और अचेतन दो प्रकार के कहकर दोनों को एक दूसरे का निमित्त भी वतलाया है। किन्तु एक दूसरे को परस्पर में कर्ता नहीं वतलाया है। मोहोदय को अज्ञानी के लिये ही वध का निमित्त कारण कहा है, ज्ञानी के लिये नहीं। वास्तविक वध का कारण तो जीव का अज्ञान-राग भाव ही हे। पुन कहा है कि यदि द्रव्य कर्मो के उदयमात्र से वध होगा तो सर्वदा ससार ही वना रहेगा, क्योंकि ससारी जीवों को सर्वदा ही कर्मो का उदय विद्यमान है।

जहॉ सवर नहीं है वहॉ आस्रव होता है। वे लिखते हैं कि **निश्चय चारित्र और वीतराग सम्यक्त्व में अविनाभाव सबध है**[1]। शुद्धात्मस्वरूप से च्युतजीवों को आठों कर्मों का आस्रव होता है, तथा उस आस्रव का कारण उदयागत द्रव्यकर्म होते हैं। और उन द्रव्यकर्मो के उदय का कारण राग द्वेषादि भाव परिणत जीव है। व्यवहारनय से मोहसहित कर्मोदय को नवीन वध का कारण कहते हैं। अशुद्ध निश्चयनय से जीव के रागादि अज्ञानभावों को वध का कारण (निमित्त) कहा जाता है।

वीतराग स्वसवेदन ज्ञानी जीवो को (स्वानुभवी जीवों को) रागद्वेष-मोहरूप भावास्रवों का अभाव है[2]। आगे गोम्मटसार कर्मकाण्ड की गाथा ९४ का सदर्भ देने के पूर्व वे लिखते हैं कि सराग और वीतराग के भेद मे दो प्रकार के सम्यग्दृष्टि होते हैं। ४ थे से ५ वे गुणस्थान तक के जीव जव स्वानुभूति नहीं ले रहे होते हैं तव उन्हें सरागसम्यक्त्वी ओर जव वे अनुभूति ले रहे होते हें तव उन्हें वीतराग सम्यक्त्वी कहते हैं।

सत्ता में रहे हुए कर्म सम्यग्ज्ञानी जीव को वध के कारण उसी प्रकार नहीं होते हैं जैसे मुट्ठी में रखा हुआ विप जीव को कुछ भी वाधा नहीं पहुचाता है। आचार्य कुदकुद ने सत्ता में रहनेवाले कर्मो की तुलना बाला स्त्री से तथा उदयागत कर्मो की तुलना तरुणी स्त्री से की हे।

सवर अधिकार मे आचार्य कहते हैं जहॉ मिथ्यात्व-रागादि परिणत वहिरात्मभावनामय आस्रव नहीं है वहॉ सवर है। उपयोग शब्द के तीन अर्थ होते हैं- शुद्ध आत्मा, अनुभूति स्वरूप ज्ञानपर्याय और शुद्ध **चारित्रपर्याय**। जिस काल में ज्ञानपर्याय अपने निजध्रुव की अनुभूति करती है उसी काल में चारित्रपर्याय आशिक **लीनता** भी कर लेती है। ऐसी प्रथम अवस्था को सवर कहते हैं। उस अनुभूति के काल में ज्ञानपर्याय तथा श्रद्धापर्याय और चारित्र पर्याय का विपय शुद्धात्मा ही रहता हे अतएव अतींद्रिय आनद प्रकट होता है। तभी सभी गुणों का झुकाव आत्मा की ओर हो जाता है। उपयोगरूप ज्ञानपर्याय उपयोग स्वरूप शुद्धात्मा को विषय वनाती है तो आशिक स्थिरतारूप शुद्धोपयोग भी हो जाता हे। ज्ञानगुण तथा चारित्रगुण की पर्याय स्वसन्मुखतापूर्वक अपना-अपना कार्य अपने-अपने में रहते हुए स्वय ही करती हें।

ज्ञानपर्याय यह जानती है कि यह **मेरा निजध्रुव शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव वाला शुद्धात्मा है**। उसे जानने का नाम वास्तव में भेदविज्ञान हे। उस काल में कोई रागादि भाव उत्पन्न ही नहीं होते हैं, तो उनका भिन्नत्व भी भासित हो जाता हे। शुद्धात्मस्वभाव का अनुभव करनेवाले ज्ञानी जीव को ध्यान करने से-अनुभव करने से

---

१ गाथा १७४ १७५ • २ गाथा १७८

शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है, सवर होता है। जो आत्मा अपने आत्मा को अपने दर्शन-ज्ञानमय नि सग स्वभाव में रोककर, इच्छारहित व पुण्य-पाप के भावों से रहित योगरूप होकर, अपने आत्मा का ध्यान करता है और कर्म नोकर्म का अनुभव नहीं करता है वह जीव अपने आत्मा का ध्यान करता हुआ शीघ्र ही आत्मा को प्राप्त कर लेता है, अर्थात् निजशुद्धात्मस्वभाव का ध्यान करने से-अनुभव करने से निजात्मा प्राप्त होता है, यही भेदविज्ञान है, यही सवर है, यही स्वसवेदन है, यही शुद्धात्मानुभवन है।

यहाँ पर आचार्य श्री जयसेन प्रश्न करते हैं कि-परोक्ष आत्मा का ध्यान कैसे होता है? क्योंकि ध्यान में तो इष्टोपदेश के **श्लोक २७** के अनुसार आत्मा अपने को ऐसा ध्याता हे कि **"मैं एक हूँ, निर्मम हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञानमय हूँ, योगीन्द्रगोचर हूँ, अन्य सभी सयोगज भाव मुझसे बाह्य (भिन्न) हैं, मैं समस्त सयोगों से रहित हूँ।"** वहाँ आचार्य उत्तर देते हैं कि-जैसे उपदेश में देवता का स्वरूप परोक्ष कहा जाने पर भी कोई देवदत्त उस देवता को प्रत्यक्ष जान लेता है, उसी प्रकार शास्त्र में शब्दों द्वारा आत्मा का स्वरूप कहा गया है उससे कोई जीव उसी आत्मा को अपने चित्त में प्रत्यक्ष ग्रहण कर लेता है-प्रत्यक्ष भासित कर लेता है[१]। यही कथन इष्टोपदेश में **श्लोक ३३** में भी किया है कि-जो गुरु के उपदेश से, शास्त्र के अभ्यास से और स्वसवेदन से स्व और पर का भेद प्रत्यक्ष अनुभव में जान लेता है वह निरन्तर मोक्षसुख का अनुभव करता है।

कोई ज्ञानी साधु ही इस वर्तमान पचमकाल में परोक्षज्ञान (मतिश्रुतरूप क्षयोपशमज्ञान) में प्रवर्तता हुआ यह कहेगा कि मुझे प्रत्यक्ष ही आत्मा दिख गया। आचार्य जयसेन प्रश्नोत्तर करते हैं कि-"परोक्षज्ञान में प्रत्यक्ष आत्मा दिखाई देता है।" जो ऐसा मानता है-कहता हे, उसके पास जाकर हम पूँछते हें-कि "ऐसा नहीं है" अर्थात् आत्मा प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता है? यहाँ वास्तव में इस प्रकार से प्रश्न किया है[२] -

प्र "क्या कोई ज्ञानी साधु वर्तमानकाल में ऐसा कहता है कि-आत्मा प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता है"?

उ "कोई भी ऐसा नहीं कहता है।"

प्र "क्या कहा ?"

उ. "कोई भी ऐसा नहीं कहता है, (कि आत्मा प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता है)।"

"किन्तु कोई ऐसा भी तो नहीं कहता है कि यह आत्मा का स्वरूप मैंने चतुर्थकाल के केवलज्ञानी की तरह प्रत्यक्ष ही देख लिया है।"

प्र "तो फिर आपने किस प्रकार यह आत्मस्वरूप प्रत्यक्ष देखा है ?"

उ "केवलज्ञान की अपेक्षा से परोक्ष कहे जाने वाले (किन्तु अपने) श्रुतज्ञान में प्रवर्तमान आत्मस्वरूप को मैंने प्रत्यक्ष देखा है।"

---

१ गाथा १९८, १५९ ● २ गाथा १९९

"इसी का कुछ और विस्तार करते हैं-यद्यपि केवलज्ञान की अपेक्षा से रागादि विकल्परहित स्वसंवेदनरूप भावश्रुतज्ञान को शुद्ध निश्चयनय से परोक्ष कहते हैं, तथापि इंद्रियमनोजनित सविकल्पज्ञान की अपेक्षा से (उसी भाव श्रुतज्ञान को) प्रत्यक्ष कहते हैं। इसी कारण से आत्मा स्वसंवेदन ज्ञान की अपेक्षा से प्रत्यक्ष है, और केवलज्ञान की अपेक्षा से वही आत्मा (जो श्रुतज्ञान में जाना गया है) परोक्ष भी है। किन्तु वह आत्मा सर्वथा परोक्ष ही है, ऐसा नहीं कहा जाता है।

किन्तु चतुर्थकाल में भी क्या केवली आत्मा को हथेली पर रखकर दिखाते हैं ? वे केवली भगवान भी दिव्यध्वनि से कहकर चले जाते हैं। तथापि सुनते समय श्रोताओं का आत्मा परोक्ष ही है, और पश्चात् परमसमाधि के समय में (अनुभूति में) यह आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञात होता है।

उसी प्रकार इस वर्तमान काल में भी है अर्थात् उपदेश सुनते समय या आगम से जानते समय आत्मा परोक्ष है, परमसमाधि याने ध्यान मे स्वानुभूति के काल में आत्मा स्वयं को प्रत्यक्ष है। यह भावार्थ है।

इस प्रकार परोक्ष आत्मा का ध्यान कैसे किया जाता है? इस प्रश्न के परिहाररूप से दो गाथायें हुई' ।"

सर्वज्ञदेवों ने मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति भाव और योग-इन चार अध्यवसानों को रागादि विभावों के आस्रव का कारण कहा है। ज्ञानी के मिथ्यात्वादि अध्यवसानरूप हेतुओं का अभाव होने से नियम से आस्रव का निरोध होता है, आस्रवों के न होने से कर्म का निरोध होता है, कर्म का निरोध होने से नोकर्मो का भी निरोध हो जाता है, और नोकर्म का निरोध होने से संसार का निरोध हो जाता है[२]।

भावकर्म का स्वरूप जीवगत और पुद्गलगत-ऐसा दो प्रकार का जानना चाहिए।

निर्जरा अधिकार में आचार्य जयसेन ने संवरपूर्वक होनेवाली निर्जरा का लक्षण वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप शुद्धोपयोग कहा है। इस अधिकार में चतुर्थ-पंचम गुणस्थानवर्ती जीव को सराग सम्यग्दृष्टि कहा है[३], तथा उससे ऊपर के गुणस्थानवर्ती जीवों को वीतराग सम्यग्दृष्टि कहा है। यहाँ निर्जरा के प्रकरण में जब पहले से तीसरे गुणस्थानवाले जीव को बंधक कहते हैं तो ऊपर के गुणस्थान-चतुर्थादि गुणस्थान के जीव को अबंधक कहते हैं। इसी प्रकार जब चतुर्थ गुणस्थानवाले जीव को बंधक कहते हैं तो आगे के पंचमादि गुणस्थानवाले जीव को अबंधक कहते हैं। और इसी प्रकार जब पंचम गुणस्थानवाले जीव को बंधक कहते हैं तो आगे के छठवें आदि गुणस्थानवाले जीव को अबंधक कहते हैं। छठवें गुणस्थानवाले जीव को जब बंधक कहते हैं तो आगे के १२ वें गुणस्थान तक के जीव को अबंधक कहते हैं। जब उपशम श्रेणीवाले को बंधक कहते हैं तो क्षपक श्रेणीवाले को अबंधक कहते हैं। जब क्षपक श्रेणीवाले जीव को बंधक कहते हैं तब केवली १३ वें १४ वें गुणस्थानवर्ती जीव को अबंधक कहते हैं। जब केवली को बंधक कहते हैं तब सिद्धों को अबंधक कहते हैं। जब कर्म को बंधक कहते हैं तो जीवमात्र को अबंधक कहते हैं। इसी प्रकार ७ से १२ वें गुणस्थान संबंधी और भी अनेक कथन हो सकते हैं।

---

१ गाथा १९८ १९९ ● २ गाथा २०० २०१ २०२ ● ३ गाथा १९३

सिद्धांत का कथन और विवक्षा का कथन - इन दो कथनों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए, नहीं तो जीव एकान्त को ग्रहण करके मिथ्यात्व का पोषण कर लेता है और सर्वज्ञ के यथार्थ अभिप्राय के ग्रहण से दूर ही रह जाता है[१]। यहाँ आचार्य ने भेदज्ञानी की तुलना गारूडी विद्या (विष उतारने की विद्या) के जानकार तथा मद्य का मादकपना दूर करने वाली औषधि के जानकार पुरुष से की है। वे कहते हैं कि-भेदविज्ञानी परमतत्त्वज्ञानी सम्यग्ज्ञानी चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव को पारमार्थिक आत्मोत्थ अतींद्रिय निरुपराग सुख का अनुभव होने के कारण कर्मों के उदय में इंद्रियों के विषयभूत पदार्थों के उपभोग करने से बंध नहीं होता है, किन्तु निर्जरा ही होती है। यह भेदविज्ञानी की ज्ञान और वैराग्य शक्ति की सामर्थ्य का प्रभाव है।

यहाँ पर आगमसम्मत **सामान्य** शब्द की परिभाषा भी कही है-**विवक्षा के अभाव को सामान्य कहते हैं।** यहाँ तक वैराग्यशक्ति का सामान्य कथन हुआ। यहीं पर आचार्यदेव वैराग्य की शक्तियों का विशेष विवरण देनेवाली १० गाथायें लिखते हैं[२]। इन गाथाओं में आचार्य ने वैराग्य पर बहुत अधिक बल दिया है, और वे यहाँ यह लिखकर प्रारभ करते हैं कि-**रागी सम्यग्दृष्टि नहीं होता है।** यहाँ पर यह भी विशेष ध्यान देकर समझने की आवश्यकता है कि आचार्य जयसेन ने आचार्य अमृतचंद्र की इसी अधिकार की गाथाओं के क्रम में भारी उलटफेर कर दिया है जो बहुत ही वैज्ञानिक और प्रकरण के अनुकूल प्रतीत होता है। इन १० गाथाओं का आचार्य जयसेन के अनुसार लगातार क्रमाक २१२ से २२१ है, किन्तु यह क्रम आचार्य अमृतचन्द्र के अनुसार २०१, २०२,२१६, २१७, २०८, २०३, २०७, २०९, २०६, २०४ है।

आचार्य कहते हैं कि जो ध्रुव में परमाणुमात्र भी रागादि है, ऐसा मानता है वह जीव भले ही सर्व आगमों का ज्ञाता हो गया हो तो भी उसे आत्मा का अनुभव नहीं है, और जिसे निजात्मा का ही ज्ञान नहीं है उसे पर द्रव्यों का भी ज्ञान नहीं है। जिसे स्व-पर, आत्मा-अनात्मा का ज्ञान नहीं है वह सम्यग्दृष्टि नहीं होता है।

विषय	साधन	फल
ध्रुवस्वभाव में अणुमात्र राग है	ध्रुव स्वभाव में अणुमात्र राग है	मिथ्यात्व
ध्रुव स्वभाव में अणुमात्र राग नहीं है	ध्रुव स्वभाव में अणुमात्र राग नहीं है	सम्यक्त्व

सम्यग्ज्ञानी जीव को आगामी भोगों की चाह नहीं होती है। आचार्य लिखते हैं कि-हे भव्य ! अपने नियत, स्थिर, एक, प्रत्यक्षीभूत, उपलभ्यमान, अनुभूयमान आत्मस्वभाव को ग्रहण कर-अनुभव कर क्योंकि उपादानकारण सदृश ही कार्य होता है।

इसके पश्चात् आठ गाथाओं में **२२२ से २२९** तक ज्ञानगुण का सामान्य विवरण कहते हैं और फिर आगे १४ गाथाओं में **२३० से २४३** तक ज्ञानगुण का विशेष व्याख्यान करते हैं।

जो स्वसंवेदनज्ञानी जीव उदय से प्राप्त सामग्री में वियोगबुद्धि, हेयबुद्धि और निरीहवृत्ति से प्रवर्तता है वह तो अपने चैतन्य स्वभाव को ही अनुभवता है। अतः वह कर्मों से लिप्त नहीं होता है। कीचड में लोहे को ही जंग लगती है, सोने को नहीं।

---

१ गाथा ३७१ से ३७६ ● २ गाथा २१२ से २२१ ● ३ गाथा २१७

गाथा २३२ के पहले प्रश्न किया है कि "**समस्त कर्मो की जिसके निर्जरा नहीं हुई है उसे मोक्ष कैसे होगा ?**" उत्तर मे गाथा २३२ मे स्वर्ण वनाने का नुस्खा का उदाहरण देकर २३३-२३४ गाथा में दार्ष्टान्त कहते है। वे लिखते हे कि-जेसे नागफनी की जड (नागफनी मूल), हथिनी का मूत्र (नागिनी तोय), सिदूर द्रव्य-गर्भनाग (नागगर्भ) और नागधातु (लोहा या सीसा) इनको धोंकनी से धोंकते हुए अग्नि में तपाने पर **पुण्य का उदय होने पर** स्वर्ण वन जाता हे, उसी प्रकार द्रव्यकर्म (किट्ट), रागादि विभाव परिणाम (कालिमा), जीव (लोहा धातु) को तपश्चरणरूपी धोंकनी के द्वारा ध्यानरूपी अग्नि में परमयोगियों द्वारा धोंकने पर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परम ओषधि तेयार हो जाती हे, वही मोक्ष है।

आगे आचार्य कहते हैं कि सराग परिणाम से वध ओर वीतराग परिणाम से मोक्ष होता है।

फिर ९ गाथाओं मे सम्यग्दृष्टि के नि शकित आदि आठ गुणों का सद्भाव का ओर सात भयों का अभाव का वर्णन करते हैं। सम्यग्दृष्टि सप्तभयों से रहित होने से घोर उपसर्ग, परिषह आदि आने पर भी नि शक होने से अपने शुद्धात्मस्वभाव में निष्कप होकर शुद्धात्मानुभव से उत्पन्न हुए वीतराग सुखानद में तृप्त रहते हुए परमात्मस्वरूप से पाण्डवो के समान च्युत नहीं होते हैं।

गाथा २४५ के पहले आचार्य जयसेन लिखते हैं कि वीतराग सम्यग्दृष्टि के नि शकित आदि आठ गुण नवीन कर्मो का वध निवारण करते हें, इसलिए उसे वध नहीं होता है किन्तु सवरपूर्वक होने वाली निर्जरा ही होती है। इस प्रकार आचार्य जयसेन चतुर्थ गुणस्थानवर्ती आठ गुणों सहित सम्यग्दृष्टि जीव को कभी तो **सराग सम्यग्दृष्टि** ओर कभी **वीतराग सम्यग्दृष्टि** कह देते हे। इसी प्रकार प्रथम गुणस्थानवर्ती सम्यक्त्व के सम्मुख होनेवाले प्रायोग्यलब्धि तक पहुचे जीव को कभी **मिथ्यादृष्टि** ओर कभी **सरागसम्यग्दृष्टि** भी कह देते हैं। यह तो कथन की विवक्षायें हैं, जिन्हें विद्वानों को यथार्थ प्रसग प्राप्त कथन में नयों का प्रयोग समझकर निर्णय अवश्य करना चाहिए। कोई कथन भूत एव भावी नैगमनय की अपेक्षा से और कोई कथन उपचरितनय से किया गया समझना चाहिए।

आचार्य अमृतचन्द्र ने **आत्मख्याति में १२ वीं गाथा** की टीका में जो एक प्राचीन गाथा **जइ जिणमय पवज्जइ** इत्यादि लिखी हे, वह गाथा आचार्य जयसेन की इस तात्पर्यवृत्ति मे गाथा २५२ की टीका में कुछ परिवर्तित रूप में **जइ जिण समइ पउजह** इत्यादि रूप से आई हे। उसका अर्थ इस प्रकार होता हे-यदि तुम जिन शास्त्रो में प्रवेश करना चाहते हो तो व्यवहारनय और निश्चयनय दोनों को ही नहीं छोडो। निश्चयनय को छोड देने पर तीर्थ (उपदेश, मोक्षमार्ग) का नाश हो जायेगा, व्यवहारनय छोड देने पर तत्त्व (शुद्धात्मानुभव, स्वशुद्धात्मा) का नाश हो जायेगा-प्राप्त नहीं होगा। दोनों नयों मे परस्पर में उपचार से साध्य-साधक सवध हे।

यहॉ पर जो सवरपूर्वक निर्जरा का कथन किया हे, वह निर्जरा मुख्यरूप से तो सम्यग्दृष्टि जीव को शुद्धात्मा के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप निश्चयरत्नत्रय याने स्वानुभव से ही होती है, और वह स्वानुभव ही निश्चय रत्नत्रय की प्राप्ति हे, वह स्वानुभव वीतराग धर्मध्यान-शुक्लध्यान में शुभाशुभ वहिर्द्रव्य के आलवन से रहित निर्विकल्प समाधि में होता है। यहीं पर टीका में वारसाणुपेक्खा की गाथा ६४ को उद्‌धृत किया है जिसमें कहा गया है कि **ध्यान** सवर का कारण है-**तम्हा सवरहेदूझाणो त्ति विचितये णिच्च**। ऐसा निरतर विचार करना चाहिए।

वह स्वानुभवरूप समाधि कैसे अति दुर्लभ है? इस प्रश्न के उत्तर में श्री जयसेनाचार्य जी लिखते हैं- क्योंकि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय, सज्ञी, पर्याप्त, मनुष्य, देश, कुल, रूप, इद्रियपटुत्व, निरोगता, दीर्घायु श्रेष्ठबुद्धि, सत्धर्म का श्रवण, सत्धर्म का ग्रहण, सत्धर्म की धारणा, सत्धर्म की श्रद्धा, सयमभाव, विषयसुख से निवृत्ति, क्रोधादि कषायों से निवर्तन, तपकी भावना और समाधिमरण-ये क्रम-क्रम से दुर्लभतर हैं। और इन सवके प्रतिपक्षभूत मिथ्यात्व, विषय, कषाय, ख्याति, पूजा, लाभ, भोगाकाक्षारूप निदानवध के भाव सुलभ हैं। इन सव बातों की दुर्लभ परपरा को जानकर स्वानुभूति प्राप्त करके उसमें प्रमादी नहीं होना चाहिए, वारम्वार समाधि-ध्यान-स्वानुभव का अभ्यास करते रहना चाहिए। **एक स्वानुभव ही श्रेष्ठतम है**[1]।

बध अधिकार में मिथ्याज्ञान को वध का कारणभूत कहा गया है। अपने उपयोग को मिथ्यात्व रागादि परिणामरूप करना ही मिथ्याज्ञान है।

इस बध अधिकार में निम्न बिन्दुओं पर विशेष विचार करना योग्य है -

१ आस्रव अधिकार लिख देने के पश्चात् अव वध अधिकार लिखने की क्यों आवश्यकता हुई ? जवकि सवर और निर्जरा अधिकार भी लिखे जा चुके हैं। अव तो मोक्ष अधिकार ही प्रसग प्राप्त है।

२ जो आस्रव के कारण हैं वे ही तो वध के कारण हैं, कोई अन्य नवीन प्रत्यय तो वध का कारण नहीं हो सकता है ?

३ आस्रव होने पर, केवली को छोडकर सभी ससारी जीवों को वध होता ही है, फिर बध को अलग से क्यों कहा है ?

इसी प्रकार वध अधिकार अवश्य लिखना चाहिए-इस कथन पर निम्न विन्दुओं के आधार पर विशेष विचार करना योग्य है -

१ यदि बध को अलग से नहीं कहेंगे तो साख्यमत और वौद्धमत माननेवाले लोगों के एकान्त का निराकरण नहीं हो सकेगा।

२ वध को मानने से ही जीव को कथचित् परिणामी और कथचित् अशुद्ध कहना वन सकेगा।

३ बध को मानने से ही ससार की सिद्धि और मोक्ष तथा मोक्ष के उपाय की सिद्धि वन सकेगी। अन्यथा सदाशिव मत का प्रसग आने से आत्मा सदैव मुक्त ही माना जाएगा।

---

[1] गाथा २५२

४ वध को मानने पर ही सर्वथा नित्य एकान्त ओर सर्वथा अनित्य एकान्त का खण्डन होकर सर्वज्ञ के स्याद्वादमत की सिद्धि होकर वस्तु के अनेकान्त स्वरूप का कथन वन सकेगा।

यह वध अधिकार आचार्य ने तेल लगाकर आये धूल भरे स्थान पर अनेक प्रकार के शस्त्रों से युक्त होकर व्यायामादि करनेवाले व्यक्ति को धूल किस कारण से चिपकती है - इस प्रश्नात्मक उदाहरण से प्रारम्भ किया है। उत्तर स्वरूप आचार्य स्वय ही कहते हैं कि धूलभरा स्थान, शस्त्रों से युक्त होकर किया गया व्यायाम, अनेक प्रकार के करण और सचित्त-अचित्त वस्तुओं का किया गया घात-उपघात उस व्यक्ति को धूल चिपकने का कारण नहीं हैं, किन्तु उसके द्वारा शरीर में लगाया हुआ **तेल ही धूल चिपकने का कारण है**। यदि वह व्यक्ति तेल लगाये बिना ही वहॉ पर वे सभी कार्य करता है तो उसे धूल नहीं चिपकती है। अत तेल ही धूल चिपकने का कारण है।

इसी प्रकार कोई मिथ्यादृष्टि जीव अपने उपयोग में रागादि भावों को करता हुआ अनेक प्रकार की मन-वचन-काय की चेष्टाओं में प्रवर्तता है तो उसे कर्मवध होता है। आचार्य कहते हें कि उस जीव को कर्मबध होने का कारण उसकी शरीर आदि की चेष्टायें मात्र नहीं हें किन्तु **उपयोग में मिथ्यात्व रागादि परिणाम करना ही उसको कर्मबध का कारण है**। यहॉ पर आचार्य अमृतचन्द्रजी ने भी लिखा हे कि **न्यायबल से यह फलित होता है कि उपयोग में रागादिक करना ही बध का कारण है।**

यहीं पर श्री जयसेनाचार्य कहते हैं कि भेदज्ञान जो **वीतराग सम्यक्त्व** का अविनाभावी है वह मिथ्याज्ञान का प्रतिपेध करनेवाला है। वे यह भी कथन करते हैं कि वीतराग सम्यग्दृष्टि जीव को वध का अभाव है। **श्री मुनिवर वीरसागरजी** ने भी यहॉ गाथा २५८ के पहिले वीतराग सम्यग्दृष्टि को स्वानुभूतिवाला चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव कहा है।

इस अधिकार के प्रारम्भ में पण्डित वनारसीदासजी ने नाटक समयसार में समकित सूर को पहिचानने का चिन्ह अतीन्द्रिय आनन्द का अकुर वताया है। वे एक सवेया में कहते हैं -

सो है समकित सूर आनन्द अकूर ताहि, निरखि बनारसी नमो नमो कहतु है।

वहीं पर पण्डित जयचन्दजी छावडा ने गाथा २३७ से २४१ के भावार्थ में निश्चय नय के साथ कहे जानेवाले **निश्चय** शव्द का अर्थ इस प्रकार किया है - **जहाँ निर्बाध हेतु से सिद्धि होती है वही निश्चय है।**

यहॉ पर आचार्य जयसेन कहते हैं कि हिस्य-हिसक भावरूप से परिणमन करना अज्ञानी जीव का लक्षण हे, और ऐसा परिणमन नही करना ज्ञानी जीव का लक्षण हे[1]।

ससार में जीवों का मरण, जीवन, सुखी-दुखी होना आदि सभी कार्य कर्मोदय के निमित्त से होते हें- ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। यदि कोई जीव ऐसा मानता हे कि मैं दूसरे जीवों को मारता हूँ, जिलाता हूँ, सुखी-दुखी करता हूँ, तथा दूसरे जीव मुझे मारते हैं, जिलाते हें, सुखी-दुखी करते हें तो वह जीव अज्ञानी है,

---

[1] गाथा २६३

क्योंकि वह जीव न तो किसी का आयु कर्म ले सकता है, न किसी को आयुकर्म दे सकता है, न किसी का शुभाशुभकर्म ले सकता है, न किसी को शुभाशुभ कर्म दे सकता है। **इस अज्ञानी जीव की मान्यता जिनेन्द्रदेव के मत से विपरीत तथा वस्तुस्वरूप से विपरीत होने से मिथ्या है, वही मिथ्या अध्यवसान है, अज्ञान है, राग है, हिसा है, बध का कारण है।**

जीवों को मारो या नहीं मारों, कर्मबध तो जीवों को अध्यवसान से होता है - यह निश्चयनय से वध का सक्षेप में कथन किया[1]।

जैसे हिसा और अहिसा में अध्यवसान वताया है उसी प्रकार सत्य-असत्य, अचोर्य-चोर्य, व्रह्मचर्य-कुशील, अपरिग्रह-परिग्रह में भी जो अध्यवसान भाव है वही पुण्य ओर पाप वध का ही कारण है।

यहॉ पर कोई प्रश्न करता है कि **क्या बाह्य वस्तु से बध नहीं होता है ?** तो आचार्य उत्तर में कहते हैं कि बाह्य वस्तु के लक्ष्य से जीव को अध्यवसान होता है, और उस अध्यवसान भाव से वध होता है। वाह्य वस्तु साक्षात् बध का कारण नहीं है, परपरा कारण या उपचरित कारण हे[2]।

फिर प्रश्न हे - **बाह्य वस्तु से बध क्यों नहीं होता है।** श्री जयसेनाचार्य उत्तर में कहते हैं -- वाह्य वस्तु और वध में **अन्वय-व्यतिरेक सबध** का अभाव (व्यभिचार) होने से वाह्य वस्तु से वध नहीं होता हे। जैसे-वाह्य वस्तु का सद्‌भाव होने पर नियम से बध होता है, ऐसा **अन्वय नहीं है,** ओर वाह्य वस्तु के अभाव में नियम से बध नहीं होता है, ऐसा **व्यतिरेक नहीं है**[3]।

फिर प्रश्न है - **यदि बाह्य वस्तु बध का कारण नहीं है तो उसके त्याग का उपदेश क्यों दिया जाता है ?** इसका उत्तर इस प्रकार है - अध्यवसान का निपेध करने के लिये वाह्य वस्तु का त्याग कराया जाता है क्योंकि अध्यवसान होने में वाह्य वस्तु आश्रयभूत (निमित्त) है। वाह्य वस्तु वध का साक्षात् कारण नहीं किन्तु **कारण का कारण अवश्य है।** यदि वाह्य वस्तु को बध का कारण मान लें तो वह कारण **अनैकातिक हेत्वाभास दोष** से दूषित (व्यभिचारी) कारण ठहरता है जो न्यायग्रन्थों में **अन्यथा अनुपपत्तिरूप हेतु** मानने से विरुद्ध पडता है। इस प्रकार निश्चय से वाह्य वस्तु को बध का कारणपना निर्वाधतया सिद्ध नहीं होता है[4]।

आगे कहा गया है कि अध्यवसानभाव अपनी अर्थक्रिया (जैसा मानता हे वैसा कार्य कर देना) इष्टक्रिया करने में असमर्थ होने से मिथ्या है, असत्य है, व्यर्थ है, क्योंकि अध्यवसानभाव करनेवाला जीव दूसरे जीवों के कर्म के उदय को नहीं वदल सकता है। इसलिए एक जीव का अध्यवसानभाव दूसरे द्रव्य में कुछ भी करने में **अकिचित्कर हेतु** हे। सभी जीव अपने-अपने कर्मोदय से अपनी-अपनी योग्यता से ही सुखी-दुखी होते हें, जीवन-मरण को प्राप्त करते हें[5]।

अध्यवसानभाव तीन प्रकार के हैं - १ परद्रव्य और परद्रव्य की पर्यायों में **कर्तृत्वबुद्धि।** जैसे-में जीवों को मारता हूँ, वचाता हूँ, सुखी-दुखी करता हूँ, इत्यादि।

---

१ गाथा २७५ ● २ गाथा २७८ ● ३ गाथा २७८ ● ४ गाथा २७८ ● ५ गाथा २८०

२ कर्मोदयजनित पर्यायों में **एकत्वबुद्धि**। जैसे- मैं मनुष्य हूँ, गोरा हूँ, गर्गी हूँ, इत्यादि।

३ परद्रव्यों में **ज्ञातृत्वबुद्धि**। जैसे-मैं धर्मास्तिकाय को जानता हूँ, आदि।

भेदज्ञान के अभाव के कारण ये तीनों ही प्रकार के अध्यवसान मिथ्याज्ञानरूप, मिथ्यादर्शनरूप और मिथ्याचारित्र रूप हैं। जिन्हें ये अध्यवसान नहीं हैं वे तपोधन ही मुनि हैं[1]।

जब तक यह जीव सकल्प-विकल्प करता है तब तक स्वानुभूति-आत्मस्वरूप की ऋद्धि प्रगट नहीं होती है और जब तक स्वानुभूति प्रगट नहीं होती है तब तक शुभाशुभ भावजनक कर्म करता है[2]।

आगे कहते हैं कि परद्रव्य के लक्ष्य से राग, विकल्प, अध्यवसान, व्यवहार होता है जो व्यवहारनय का विषय है। अत व्यवहारनय का निश्चयनय के द्वारा निषेध किया गया है, और निश्चयनय के विषय को जानकर सुखी होने के लिये **ध्यान करने की प्रेरणा दी है**[3]।

आहार लेने के विषय में सरस-विरस, मान-अपमान आदि चितारूप रागद्वेष के कारणों का अभाव होने से आहार ग्रहण करते हुए भी सम्यग्ज्ञानियों को बध नहीं होता है - ऐसा कहते हैं। यहाँ अध कर्म और औद्देशिक आहार के दृष्टात से परद्रव्य के ग्रहण करने और रागादि भावों के होने की निमित्त-नैमित्तिकता भी दृढ की है।

पॉच स्थावर और त्रस-इन छ काय की हिसारूप आरभादि पाप कर्म को **अध कर्म** कहते हैं, उस अध कर्म से उत्पन्न आहार को भी **अध कर्म** कहते हैं, उपदेश द्वारा दूसरे को कहकर, कराकर, अनुमोदनाकर, स्वय बनाकर सपन्न हुए आहार को भी **अध कर्म** कहते हैं।[4]

उद्दिष्ट आहार के सबध में जगत में भारी भूल चलती है। प्राय लोग **साधु के निमित्त बनाये गये भोजन को ही उद्दिष्ट आहार मान लेते हैं**। यह कथन दातार-श्रावक की अपेक्षा से तो ठीक है, किन्तु साधु की अपेक्षा यह कथन सर्वथा ठीक नहीं है। क्योंकि **एक जीव के भावों का फल दूसरे जीव को नही लगता है**। यदि एक जीव के भावों का फल दूसरे जीव को लगने लगे तो कभी भी किसी भी जीव को मोक्ष नहीं होगा। श्रावक-दातार के भावों का फल साधु-पात्र को नहीं लगता है।

साधु के कहने से साधु के लिये गृहस्थ आदि द्वारा बनाये गये आहार को औद्देशिक आहार कहते हैं, साधु के निमित्त से बनाये गये आहार का, यदि साधु को यह ज्ञात हो जाये कि यह आहार मेरे उद्देश्य से बनाया गया है, तो वह आहार ग्रहण कर लेने पर उसके **औद्देशिक आहार** हुआ कहते हैं। ये दोनों ही आहार के दोष हैं, और वे पुद्गल द्रव्य के दोष हैं, उनको सम्यग्ज्ञानी जीव कैसे कर सकता है ? क्योंकि ये तो सदा ही परद्रव्य-पुद्गल द्रव्य के गुण हैं। इसलिए वे दोनों सदा ही अचेतन होने से जीव के द्वारा कैसे किये, कराये या अनुमोदनारूप हो सकते हैं ? अर्थात् उन्हें जीव नहीं कर सकता है।[5]

---

[1] गाथा २८८ [2] गाथा २८९ [3] गाथा २९१ [4] गाथा २९७, २९८ [5] गाथा २९९, ३००, प्रव रत्ना भाग ८, पृ १९२

इसका अभिप्राय यह है कि पूर्व, पश्चात या वर्तमान काल में निर्दोष-योग्य आहार आदि के विषय में मन, वचन काय, कृत, कारित और अनुमोदना इनके ९ प्रकार के विकल्पों से रहित आहारादि के लेने में सम्यग्ज्ञानी जीवों को बंध नहीं होता, क्योंकि **यदि परकीय परिणामों से बंध होने लगे तो किसी भी काल में किसी भी जीव का निर्वाण नहीं हो सकेगा।**

यहाँ यह बात भी विशेषरूप से ध्यान में रखने की है कि **अध कर्म से बना और ज्ञात औद्देशिक आहार** मुनि के योग्य नहीं है। यदि मुनि ऐसे आहार को ग्रहण करते हैं तो उन्हें पापबंध होने से कोई भी नहीं रोक सकेगा।

तात्पर्य यह है कि **तत्त्वज्ञानी (आत्मज्ञानी-सम्यग्ज्ञानी) जीव स्फटिक मणि के समान शुद्ध रहता हुआ, उपाधि रहित चैतन्य चमत्कार स्वभाव के कारण, रागादि विभावोंरूप परिणमन नहीं करता है।** रागादि भाव कर्मोदय जनित हैं, जीवजनित नहीं हैं। इसलिए जीव कर्मों तथा रागादि का कर्ता नहीं है, कर्म तो पुद्गलमय होने से नित्य अचेतन हैं। उनका कर्ता जीव कदापि नहीं हो सकता है। जो जीव अपने को कर्ममय या रागमय मानता है वह अवश्य उन कर्मों का और रागादि का कर्ता कहलाता है। उसे कर्मों का बंध व उदय भी होता है।

यहाँ पर श्री जयसेनाचार्य गाथा ३०५ की टीका में प्रवचनसार और पंचास्तिकाय की टीकाओं की तरह ही लिखते हैं कि **मोह शब्द से दर्शनमोह-मिथ्यात्व और राग-द्वेष शब्द से चारित्रमोह** कहे जाते हैं।

सम्यग्ज्ञानी जीव रागादि भावों का अकर्ता कैसे है? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य कहते हैं कि आत्मा तो रागादि का अकारक ही है क्योंकि अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान द्रव्यरूप और भावरूप ऐसे दो-दो प्रकार के उपदेशित किये गये हैं[1]। द्रव्यरूप अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान के निमित्त से भाव अप्रतिक्रमण और भाव अप्रत्याख्यानरूप नैमित्तिक भाव होते है-ऐसी निमित्त-नैमित्तिक संबंध की अन्यथा अनुपपत्ति होने से आत्मा रागादि भावों का अकारक ही सिद्ध होता है। इसलिए यह निश्चित हुआ कि परद्रव्य निमित्त और आत्मा के रागादि भाव नैमित्तिक हैं।

यदि कोई इस निमित्त-नैमित्तिक संबंध को मानने से अस्वीकार करता है तो जिनवाणी में यह निमित्त-नैमित्तिक संबंध का कथन व्यर्थ ठहरेगा और अकेला आत्मा ही रागादि भावों का निमित्त होने से उसे रागादि भाव करने का नित्य-कर्तृत्व का प्रसंग उपस्थित होगा तथा रागादि भावों को जीव के स्वभाव भाव माना जायेगा और फलत मोक्ष का अभाव ही सिद्ध होगा। आत्मा कभी भी रागरहित नहीं हो सकेगा और उसे नित्यकर्तृत्व भी आ जायेगा।

दूसरा तर्क और भी है। जब तक जीव निमित्तभूत परद्रव्य का प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान नहीं करता है तब तक रागादि भाव उत्पन्न होते रहते हैं तथा जीव उन भावों का कर्ता भी रहेगा। जब जीव परद्रव्यों का प्रतिक्रमण तथा प्रत्याख्यान कर देता है तो प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान भाव उत्पन्न ही नहीं होते हैं और जीव रागादि भावों का अकर्ता सिद्ध हो जाता है।

---

[1] गाथा ३०६, ३०७, ३०८

मोक्ष अधिकार का प्रारम्भ आचार्य मोक्ष की परिभाषा कहकर करते हैं। वे कहते हैं कि **विशिष्ट भेदज्ञान के अवलम्बन से बध और आत्मा को भिन्न करना सो मोक्ष है।** ऐसा मोक्ष केवल वधनों को जान लेने से नहीं हो जाता है, मोक्ष तो स्वानुभूति द्वारा बधनों को काटने से होता है। वध के स्वभाव और आत्मा के स्वभाव को जानकर स्वानुभूति द्वारा वध से विरक्त होनेवाले को मोक्ष होता है। **जीव का लक्षण शुद्ध चैतन्य है,** और **बध का लक्षण मिथ्यात्व-रागादि है।** उनको भिन्न करने का साधन प्रज्ञा छैनी अर्थात् शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाला भेदज्ञान है। इसलिए भेदज्ञानरूप बुद्धि के द्वारा शुद्धात्मा को ग्रहण करने से वध भिन्न हो जाता है। शुद्धात्मा को ग्रहण करने का उपाय यह है कि ज्ञान में ऐसा सचेतन करे कि यह **चैतन्यमय शुद्ध आत्मा मैं हूँ,** और अन्य सव भाव मुझसे भिन्न हैं। जो देखने-जानने वाला आत्मा है वह मैं हूॅ। मैं, मुझे, मेरे द्वारा, मेरे लिये, मुझसे, मुझमें ही ग्रहण करता हूॅ। मैं द्रव्यकर्म,भावकर्म, नोकर्म रहित शुद्ध हूॅ। ऐसे निज चैतन्य स्वभाव को स्वीकार करने से - ग्रहण करने से कर्मो से मुक्त हो जाता है[1]।

जो पुरुष अपराध नहीं करता है वह नि शक घूमता है, उसे वध जाने की चिन्ता ही नहीं होती है। अपराधी नि शक नहीं घूमता है, उसे हमेशा बध जाने की चिन्ता रहती है। जो जीव निजशुद्धात्मा की आराधना से रहित है वह अपराधी है-सापराध है, उसे वध की चिन्ता होती है, वह वधन में पडता ही है।

यहॉ पर प्रश्न है कि **शुद्धात्मा की आराधना (स्वानुभूति) करने की क्या आवश्यकता है?** क्योंकि प्रायश्चित शास्त्र में लिखा है कि "अप्रतिक्रमण अशुद्धि आदि से लगे हुए दोषों का प्रायश्चित नहीं करना विषकुभ है और उक्त प्रकार से लगे हुए दोषों का प्रायश्चित कर लेना अमृतकुभ है[2]।"

उत्तर में आचार्य कहते हैं कि दोष लगाना तो अशुभ भावरूप विषकुभ है, और दोपों का प्रायश्चित कर लेना शुभभावरूप प्रतिक्रमण आदि विकल्परूप शुभोपयोग है वह वधरूप ही है। अशुभोपयोग को जब विषकुभ कहते हैं तो इस शुभोपयोग को अमृतकुभ कह देते हैं, किन्तु चिदानन्द एक स्वभाव विशुद्ध आत्मा के आलम्वनरूप शुद्धोपयोग की अपेक्षा इसे भी विषकुभ कहते हैं। वास्तविक अप्रतिक्रमण आदि तो वीतराग चारित्ररूप निश्चय प्रतिक्रमण-स्वानुभव है, वही सच्चा अमृतकुभ है। इस शुद्धात्मानुभूतिरूप तृतीय भूमिकारूप अप्रतिक्रमण में समस्त शुभाशुभ आस्रवरूप दोषों का अभाव हो जाता है। इसलिए यह ही यथार्थ अमृतकुभ है, शेष **सभी विभावभाव विषकुभ ही हैं**[3]।

सर्वविशुद्ध ज्ञान अधिकार में प्रथम १४ गाथाओं में - गाथा ३२८ से ३४१ तक - तो मोक्ष अधिकार की ही चूलिका है। उसके आगे ९६ गाथाओं में समयसार की **चूलिका** है। चूलिका का अर्थ है अभी तक शास्त्र में जो नहीं कहा गया हे उसका विशेष व्याख्यान करना, जो कुछ कहा गया है और कुछ नहा कहा गया है उसका व्याख्यान करना और जो कुछ कहा गया है उसी का विशेप व्याख्यान करना[4]।

---

[1] गाथा ३०९ से ३२१ • [2] गाथा ३२५ • [3] गाथा ३२६, ३२७ • [4] द्रव्य सग्रह गाथा २८ की टीका

आत्मा कर्मों का कर्ता नहीं है। जो द्रव्य जिन पर्यायोंरूप परिणमन करता है वह द्रव्य उन पर्यायों से अनन्य-अभिन्न रहता है। जीव अपनी क्रमनियमित पर्यायों से अभिन्न रहता है और अजीव अपनी क्रम नियमित पर्यायों से अभिन्न रहता है। आत्मा किसी से उत्पन्न नहीं हुआ है इसलिए वह किसी का कार्य नहीं है, और आत्मा किसी को उत्पन्न नहीं करता है इसलिए वह किसी का कारण भी नहीं है। पर्यायरूप कर्म को देखकर द्रव्य को कर्ता कहते हैं, और द्रव्यरूप कर्ता को देखकर पर्याय को कर्म कहते हैं। कर्ता-कर्म के कथन की सिद्धि इसी प्रकार है, अन्य प्रकार से नहीं। सभी द्रव्यों का अपनी-अपनी पर्यायों के साथ अनित्य तादात्म्य सबध है, तथा सभी द्रव्यों का अन्य द्रव्यों के साथ व अन्य द्रव्यों की पर्यायों के साथ उत्पाद्य-उत्पादक सबध (कर्ता-कर्म सबध) का अभाव है। इस प्रकार **जीव दूसरे द्रव्यों की पर्यायों का अकर्ता है।**

आत्मा तो शुद्ध ही है, किन्तु उसे जो ज्ञानावरणादि कर्म प्रकृतियों के द्वारा वध होता है वह **अज्ञान का माहात्म्य** है। अज्ञान के कारण अपने आप का ज्ञान न होने से यह जीव शरीर और रागादि भावों में एकत्व और कर्तृत्व का मिथ्याभाव करता हुआ कर्म प्रकृतियों के निमित्त से उत्पत्ति-विनाश को प्राप्त होता है, और आत्मा के परिणामों के निमित्त से कर्म प्रकृतियाँ भी उत्पत्ति-विनाश को प्राप्त होती रहती हैं। इस प्रकार जीव और कर्म प्रकृतियों में परस्पर में कर्ता-कर्म सबध का अभाव है किन्तु निमित्त-नैमित्तिक सबध होने से दोनों में वध देखा जाता है-यही ससार है[1]।

जब तक यह आत्मा शुद्धानुभूति नहीं होने से रागादि को नहीं छोडता है तब तक अज्ञानी रहता है[1]।

आत्मा कर्मों का भोक्ता नहीं है। अज्ञानी जीव शुद्धात्मानुभूति नहीं होने से स्व-पर के एकत्व की भ्रान्ति के कारण कर्मोदय से प्राप्त परद्रव्यरूप सामग्री और अपने विकारी भावों को आत्मा के जानकर उन्हें भोगने का भाव करके उनका भोक्ता बनता है। वास्तव में तो द्रव्यों का चतुष्टय भिन्न होने से जीव उनका भोक्ता हो ही नहीं सकता है क्योंकि दो द्रव्यों में परस्पर में व्याप्यव्यापक सबध न होने से वास्तव में अनुप्रवेश करने का अभाव है। ज्ञानी जीव तो **"मैं शुद्धात्मा हूँ।"** ऐसे अनुभव में स्थित रहता हुआ कर्मोदय को मात्र जानता ही है, भोगता नहीं है।

यहाँ पर प्रश्न है कि **पाँच भावों में से किस भाव से मोक्ष होता है[1]** ?

उत्तर- चार भाव - औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और औदयिक, तो पर्यायरूप हैं, शुद्ध पारिणामिक भाव द्रव्यरूप है। उन **परस्पर सापेक्ष द्रव्यपर्यायद्वय रूप आत्मा पदार्थ है।** शुद्धजीवत्वशक्ति लक्षणरूप जो पारिणामिकभाव है वह निरावरण है तथा वध व मोक्ष पर्याय से रहित है। **शुद्धपारिणामिक भाव अपरिणामी और निष्क्रिय होने से मोक्ष का कारण नहीं है।** शुद्धपारिणामिक भाव के सबध में जो भावना-स्वानुभूति होती है वह पर्याय समस्त रागादि रहित होने से तथा शुद्ध उपादानरूप कारण होने से मोक्ष की कारण है अर्थात् जो औपशमिक सम्यक्त्व या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व या क्षायिक सम्यक्त्व भाव है वह भाव मोक्ष का कारण है।

---

[1] गाथा ३२८ से ३३३ ● २ गाथा ११, ७८, ३३४ ● ३ गाथा ३८[1]

शुद्ध पारिणामिक भाव **ध्येयरूप ध्यान का विषय है, ध्यानरूप नहीं है।** ध्याता पुरुष इस प्रकार स्वानुभूति करता है-"**जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षणवाला निज परमात्म द्रव्य है वही मैं हूँ**" खण्डज्ञानरूप मैं नहीं हूँ।

समयसार चूलिका में आचार्य जयसेन लिखते हैं-असख्यात अवसर्पिणी कालों के बीत जाने पर एक हुण्डावसर्पिणी काल आता है जिसमें जैनेतर मतों की उत्पत्ति होती है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं[1]।

जैसे **ईश्वर को कर्ता माननेवाले अन्य लौकिक मनुष्यों को मोक्ष नहीं होता है,** उसी प्रकार आत्मा को छ काय के जीवों का कर्ता माननेवाले श्रमणों को भी मोक्ष नहीं होता है। **राग-द्वेष-मोहमय परिणमन करना ही कर्तृत्व कहलाता है।** कर्तृत्वबुद्धिवाला जीव रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग से च्युत होता है, अत उसे मोक्ष नहीं होता है[2]।

परमाणुमात्र भी कोई मेरा नहीं है- यह आत्मा मोह से परद्रव्यों को **हमारा है,** कहता है। ऐसा परद्रव्य को अपना माननेवाला जीव नि सदेह मिथ्यादृष्टि है[3]।

यहाँ पर गाथा ३५२ और ३७० के पश्चात् टीकाओं में आचार्य जयसेन ने प्रश्न किये हैं कि **अन्यमत को माननेवाला और जैनमत को नहीं माननेवाला मिथ्यादृष्टि क्यों है ?** तथा **अन्यमतों की मान्यतायें मिथ्याभाव क्यों हैं?** समाधान में वे कहते हैं कि **अन्यमती नय विभाग नहीं जानने से व एकान्ती होने से मिथ्यादृष्टि हैं, तथा उनकी मान्यताओं से कर्ताबुद्धि का पोषण होता है अतएव वे मान्यतायें मिथ्याभाव हैं।**

वे जहाँ ज्ञानी जीव की मुख्यता से कथन करते हैं वहाँ उसे रागादि का नहीं करनेवाला कहते हैं, और जहाँ अज्ञानी जीव की मुख्यता से कथन करते हैं वहाँ उसे रागादि भावों का कर्ता कहते हैं।

चेतना के दो भेद कहे हैं -१ ज्ञान चेतना २ अज्ञान चेतना। अज्ञान चेतना के भी दो भेद हैं- १ कर्म चेतना, २ कर्मफल चेतना। **ज्ञान चेतना में शुद्धात्मानुभव होने से उसे मुक्ति का कारण** और अज्ञान चेतना का नाश करनेवाला कहा गया है। **कर्म चेतना कर्ताबुद्धिरूप होने से तथा कर्मफल चेतना भोक्ता बुद्धिरूप** होने से दोनों को बध का कारण तथा त्याज्य कहा गया है।

आत्मा को आत्मरूप से अनुभव करने पर समस्त छोडने योग्य छोड दिया और ग्रहण करने योग्य ग्रहण कर लिया। **सर्वप्रकार से उपादेयभूत शुद्धात्मतत्त्वरूप ज्ञानस्वभाव है। वही श्रद्धा करने योग्य, वही जानने योग्य, वही ध्यान करने योग्य है।**

शुद्धबुद्ध एक स्वभाववाले परमात्मतत्त्व को देह ही नहीं है तो उसको आहार-कर्माहार, नोकर्माहार, कवलाहार, लेपाहार, ओज-आहार, मानस-आहार, सचित्त-आहार, अचित्त-आहार, सदोष-आहार, निर्दोष-आहार- कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता है।

इसी प्रकार शरीरमय द्रव्यलिग भी शुद्धजीव का स्वरूप नहीं है। जब शरीर ही नहीं है तो शरीर का भेष-लिग मोक्ष का कारण कैसे होगा? नहीं होगा। मोक्ष का कारण स्वानुभवरूप श्रद्धान-ज्ञान-अनुभूतिवाला सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप मोक्षमार्ग है-ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं[4]।

---

१ गाथा ३४८ ● २ गाथा ३४४ ● ३ गाथा ३८, ३४१ ● ४ गाथा ४३२

अतिम शिक्षा के रूप में आचार्य कहते हैं कि द्रव्यलिग और बाह्य क्रिया का पक्ष छोडकर, शुभाशुभ सकल्प-विकल्पों से रहित होकर अपने आत्मा को मोक्षमार्ग में स्थापित कर, उसी का अनुभव कर, उसी का ध्यान कर, उसी में विहार कर। आत्मा पूर्ण कलश के समान परम समरसीभाव से भरितावस्थ है। निज शुद्धात्म तत्त्व को निर्विकार स्वसवेदन प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा अनुभव करनेवाला आत्मा परम अतींद्रिय सुख को प्राप्त करता है। अत इस समयसार शास्त्र को पढकर उस परम सुख को प्राप्त कर उसी में रहो'।

यह समयसार ऐसा शास्त्र हे जहाँ शब्दों को नया अर्थ मिला है, अध्यात्म को नई ऊचाई मिली है, प्राणी को जीवनदायिनी सजीवनी मिली हे, ससारी को मोक्ष मिला है, भटकनेवाले को मजिल मिली है, दुखी को सुख मिला है, मिथ्यादृष्टि को सम्यक्त्व मिला है, दरिद्री को वैभव मिला है, भक्त को भगवान मिला है, दाता को दान मिला है, दानव को इन्सान मिला है, कीचड को स्वर्ण मिला है, नारकी को स्वर्ग मिला हे, अनपढ को सम्यग्ज्ञान मिला है, अनाचारी को आचरण मिला है, कपायी को धर्म मिला है, पापी को पवित्रता मिली है, जैनी को जैनत्व मिला है, ज्ञानी को ज्ञानत्व मिला है, पढनेवाले को पाठ मिला है, अविद्या वाले को सजीवनी विद्या मिली है। **सा विद्या या प्रतिसमये सम्यक् आनदायते।**

इस ग्रन्थराज में **राग** शब्द का अर्थ दुख, अज्ञान, विकल्प, ससार, पुद्गल, कषाय, मिथ्यात्व, अधर्म, पाप, जडत्व आदि किया है। इसी प्रकार **ज्ञानी** शब्द का अर्थ जीव, सम्यग्दृष्टि, साधक, केवली आदि किया है। **अन्यमतों की मान्यताओं को न्याय की परीक्षा प्रधान पद्धति पर कसकर अन्यथा अनुपपत्ति हेतु और अविनाभाव सबध* के आधार पर उन्हें अध्यात्म से बाह्य निष्कासित कर जैनधर्म को नई ऊचाई पर ससम्मान प्रतिष्ठित किया गया है।**

समयसार की विषय वस्तु पर विस्तार से प्रकाश डालने के पश्चात् अव कुछ अन्य विषयों पर भी विचार करते हैं।

'समयसार के साथ न्याय' में मुख्यत दो वातों पर विचार करना है -

१ समयसार शास्त्र के साथ न्यायशास्त्रों का अध्ययन करना।

२ समयसार के साथ न्याय का ज्ञान न होने से समयसार के अध्ययन का **निषेध** करनेरूप अन्याय नहीं करना।

जव हम प्रथम विन्दु अर्थात् हमें समयसार शास्त्र का स्वाध्याय करते समय न्यायशास्त्रों का भी अध्ययन करना चाहिये-इस पर विचार करते हैं तो सहज ही प्रश्न उठता है कि हमें समयसार के साथ **न्याय क्यों पढना चाहिये ?**

समाधान यह है कि समयसार ग्रथराज की गाथायें और आत्मख्याति तथा तात्पर्यवृत्ति टीकायें न्यायपद्धति से रचित हैं, वे गाथायें तथा टीकायें न्याय और युक्तियॉ, नय और प्रमाण, प्रत्यक्ष और परोक्ष, विषय-साधन-फल, लक्षण, परीक्षा और लक्ष्य, साध्य और साधन, हेतु और प्रमाण, कारण और कार्य, अन्य मतों की

---

* गाथा ८३७

मान्यतायें, आदि न्यायवहुल प्रमेय से आकण्ठ भरी हैं। इसलिये समयसार शास्त्र का शव्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ समझने के लिए **थोडा - बहुत न्यायशास्त्र का भी अभ्यास होना चाहिये। न्यायशास्त्रों का अभ्यास किये बिना महान ग्रथों का अर्थ खुलता नहीं है**[1]।

द्रव्यानुयोग में न्यायशास्त्रों की पद्धति मुख्य है, क्योंकि वहाँ निर्णय करने का प्रयोजन है और न्यायशास्त्रों में निर्णय करने का मार्ग दिखाया है। यह बात प श्री टोडरमलजी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक में कही है[२]।

अव आप पूछेंगे कि यह न्याय क्या है, जिससे कि हम समयसार ग्रथ को समझ सकें ?

उत्तर - न्याय की तो अनेक परिभापायें हैं, किन्तु निम्न मुख्य हैं -

१ प्रमाण नयात्मिका युक्ति न्याय ।

२ प्रमाणनयै अर्थपरीक्षण न्याय ।

३ लक्षण-प्रमाण-नय-निक्षेपचतुष्ट्यात्मको न्याय ।

अर्थात् **पदार्थो को जानने का जो उपाय है वह न्याय है।** प्रमाण और नय - यह जानने के उपाय हैं। **प्रमाण** (अर्थात् जानने के साधन) के दो मुख्य भेद हैं - १ प्रत्यक्ष प्रमाण २ परोक्ष प्रमाण। सर्व प्रथम प्रमाण का लक्षण और उसके भेदों के लक्षण देखते हैं।

प्रश्न - **प्रमाण साधन** (ज्ञानपर्याय) किसे कहते हैं ?

उत्तर - सपूर्ण वस्तु या भाव-अभावात्मक पदार्थ को जिस ज्ञानपर्याय के द्वारा जाना जाता है उस ज्ञान पर्याय को **प्रमाण साधन** कहते हैं।

प्रश्न - **प्रत्यक्ष प्रमाण** किसे कहते हैं ?

उत्तर - इद्रिय और मन की सहायता के विना आत्मिक शक्ति के द्वारा भाव-अभावात्मक वस्तु को स्पष्ट जानने वाले ज्ञान को **प्रत्यक्ष प्रमाण** कहते हैं।

प्रश्न - **परोक्ष प्रमाण** किसे कहते हे ?

उत्तर - इद्रिय ओर मन की अपेक्षा सहित जाननेवाली ज्ञानपर्याय को **परोक्ष प्रमाण** कहते हैं। जिस ज्ञानपर्याय को किसी अन्य ज्ञानपर्याय की अपेक्षा होती है वह भी परोक्ष प्रमाण कहलाती है। जेसे - स्मृति, प्रत्यभिमान, तर्क और अनुमान ज्ञानपर्याय।

प्रश्न - **नय** किसे कहते हैं ? ओर उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर - प्रमाण के द्वारा जानी हुई वस्तु के अश में जिस ज्ञान की प्रवृत्ति होती हे उस ज्ञानपर्याय को नय कहते हैं। श्रुत के विकल्प (भेद) को भी नय कहते हैं। ज्ञाता, वक्ता व श्रोता के अभिप्राय को भी नय कहते हैं। उसके दो भेद हैं - १ प्रमाण सप्तभगी वाक्य २ नय सप्तभगी वाक्य। उन दोनों के भी दो-दो भेद हे - द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। आगे देखो चार्ट न ७ पृ २२-२३।

---

[1] मो मा प्र पृ २०' ·२६ ● · वा पृ ·८७

प्रश्न - **प्रमाण सप्तभगी वाक्य** किसे कहते हैं ?

उत्तर - वस्तु में से किसी एक विशिष्ट धर्म को मुख्य (प्रधान) करके सपूर्ण वस्तु का कथन करने वाला वाक्य या जानना प्रमाण सप्तभगी का वाक्य कहलाता है।

प्रश्न- **नय सप्तभगी का वाक्य** किसे कहते है ?

उत्तर - वस्तु में से किसी विशिष्ट धर्म को ही मुख्य (प्रधान) करके उस एक धर्म का ही कथन करनेवाला वाक्य या जानना नय सप्तभगी का वाक्य कहलाता है।

इस प्रकार **न्याय का अर्थ** हुआ प्रमाणादि के द्वारा पदार्थ की परीक्षा करना, सम्यक् प्रकार से जानना-निर्णय करना।

प्रश्न - **यह न्याय समझने से हमारे जीवन में क्या लाभ है ?**

उत्तर - १ अपने आत्मतत्व में अपनापन आ जाता है।

२ शुद्धात्मानुभूति प्राप्त करना सरल हो जाता है।

३ सम्यग्दर्शन हो ही जाता है। पराधीनता समाप्त हो जाती है।

४ स्वय को अपने सम्यग्दर्शन होने का पता चल जाता है, तब उसमें दृढता लाने को पुरुपार्थ करता रहता है।

५ अतीन्द्रिय आनद का भोग का स्वाद चख लेने से अन्य भोगों से अरुचि-विरक्ति हो जाती है।

६ समता, शान्ति, वीतरागता आ ही जाती है।

७ आकुलता का अभाव होकर निराकुलता प्रगट हो जाती है।

८ वस्तु के स्वरूप का यथार्थ (अधश्रद्धा रहित) ज्ञान करने पर अन्य पदार्थो की ओर चाहने का भाव-मागना नष्ट हो जाता है।

अत न्याय समझना आवश्यक है। इसे जान लेने से हम अभी वर्तमान पर्याय में ही अतीन्द्रिय आनन्द, समता, शान्ति, निराकुलता, समाधान भाव से जीवन जी सकते हैं।

न्याय समझने से समयसार की प्रामाणिकता और महिमा पर दृष्टि पहुँच जाती है। वह कैसे ?

उत्तर - समयसार में आचार्य ने जो कथन किये हैं वे प्रत्यक्ष प्रमाण के कथन हैं या परोक्ष प्रमाण के ? यह समझ में आ जाता है। जैसे समयसार गाथा ५ में आचार्य कहते हैं कि मैं अपने निज वैभव से एकत्व-विभक्त आत्मा दिखाऊँगा, श्रोताओ ! तुम भी अपने निज वैभव से प्रत्यक्ष प्रमाण कर लेना।

आचार्य अमृतचद्र तथा आचार्य जयसेन कहते हैं कि वर्णादि से लेकर गुणस्थान तक के सभी भाव जीव नहीं हैं क्योंकि **वे सब पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से अनुभूति से भिन्न हैं।** यहाँ पर अनुभूति शब्द का प्रयोग २९ बार किया गया है, ऐसा क्यों[१] ?

---

[१] गाथा ५५ से ६० (आ ख्या ५० से ५५)

उत्तर - अनुभूति शब्द कहने का प्रयोजन यह है कि यदि आचार्य अमृतचन्द्र सिर्फ ऐसा ही लिखते कि ये सर्व भाव जीव से भिन्न है, तो श्रोता यह समझता कि यह तो आगम में लिखा है, पूर्व आचार्यो ने कहा है, और भगवान ने कहा है इसलिये ये सर्व भाव जीव से भिन्न हैं, और उस कथन में अधिक वजन नहीं होता क्योंकि **यह तो परोक्ष कथन ही होता।** परन्तु अनुभूति शब्द रखने से यह भाव आ गया कि मैने जिस स्वशुद्धात्मा का अनुभव किया है उस अनुभवरूप स्वसवेदन ज्ञान में आये हुए जीव में वर्णादि से गुणस्थान पर्यन्त के सर्व भाव जीव में नहीं होने से वे जीव नहीं हैं, जीव से ये सर्व भाव भिन्न हैं। **ऐसा प्रत्यक्ष प्रामाण्य सहित निर्णय होने से उस में दृढता आ जाती है।** जेसा मैंने अनुभव किया है जीव को, वैसा ही तो आचार्य ने भी कहा है। यह प्रेरणा मिलती है कि हमें **अपने स्वशुद्धात्मा का अनुभव प्रत्यक्ष प्रामाण्य सहित करना ही चाहिये-करते रहना चाहिये।**

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि न्यायग्रथों में परोक्षप्रमाण का जो एक **परार्थ-अनुमान** नामक भेद है और जो नय हैं, उनके द्वारा उनके माध्यम से ही सपूर्ण जिनागम लिपिबद्ध है। आचार्य जब कोई गाथा लिखते है तो उन्हें किसी विशिष्ट साध्य की सिद्धि करना होती है और उसके लिये वे किसी साधन का प्रयोग करते हैं। जैसे-आचार्य कुन्दकुन्द के लिये समयसार में मुख्यरूप से स्वशुद्धात्मा साध्य है, और उसी की सिद्धि करने के लिये उन्होंने ४४५ या ४३९ या ४१५ गाथायें हेतु-साधन रूप से प्रस्तुत की हैं। यदि हमें न्यायशास्त्र में कहे गये **अनुमान प्रमाण** के स्वरूप का ज्ञान नहीं है (साधन से साध्य का ज्ञान करना **अनुमान** कहलाता है) तो हम आचार्यों के किसी भी ग्रन्थ के किसी भी गाथा, श्लोक, छद, वाक्य आदि का भावार्थरूप प्रयोजन नहीं समझ पायेंगे।

सम्पूर्ण जिनवाणी नयों की भाषा में लिपिबद्ध है तो इसका यही अर्थ हुआ कि जिनवाणी नयात्मक है। नयों को समझे विना जिनवाणी समझ में नहीं आवेगी। जितने भी वचनवाद है उतने ही नयवाद हैं[1]।

श्री अमृतचन्द्राचार्य टीका के प्रारभ में ही कलश ४ में लिखते हैं कि सपूर्ण जिनवाणी स्यात् पद से मुद्रित है। वस्तु का स्वरूप अनेकान्तात्मक है। एक ही वस्तु में वस्तुत्व को निपजानेवाली अस्तित्व और नास्तित्व ऐसी परस्पर विरोधी सापेक्ष दो शक्तियों का एक साथ प्रकाशन होना अनेकान्त है और उसका कथन करना स्याद्वाद है। स्याद्वाद अर्थात स्यात् (कथचित्) + वाद (कथन करना) याने अनेकान्तात्मक वस्तु का एक अपेक्षा से कथन करना।

क्रमवर्ती भारती - इस लोकोक्ति के अनुसार यह ज्ञात होता है कि जो भी कथन किया जावेगा वह क्रम से ही किया जावेगा, एक साथ (युगपत्) नहीं। जहॉ पर क्रम है वहॉ अपेक्षा की भी आवश्यकता पडती है जो स्यात् पद बतलाता है। स्यात्पद याने नयवाद, अपेक्षा से कथन करनेवाला।

प्रमाण से जानी हुई सम्पूर्ण वस्तु को - भाव अभावात्मक वस्तु को नय के द्वारा समझाया जाता है। प्रमाणज्ञान के द्वारा जानी हुई वस्तु में ही नयज्ञान प्रवृत्त होता है।

---

[1] धवला पु १ गाथा ६८

सामान्यरूप से अध्यात्म में नय के दो भेद किये जाते हैं - १ निश्चय नय और २ व्यवहार नय। न्यायशास्त्रों में नयों के जो भेद कहे गये हैं वे जिनवाणी समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। नयों के कषायपाहुड (जयधवल) के अनुसार निम्न प्रकार भेद किये गये हैं -
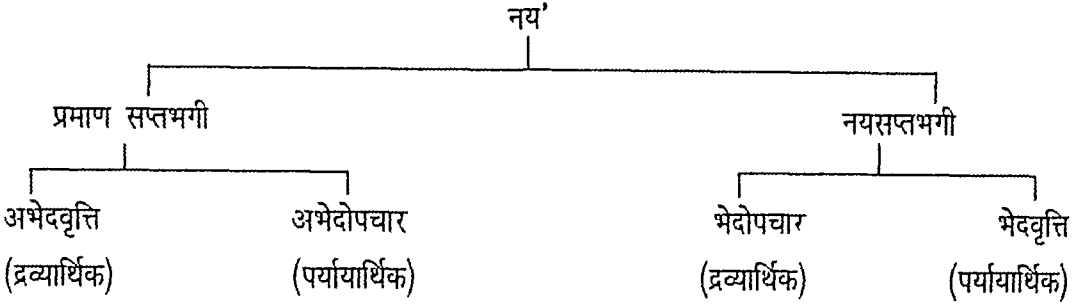
प्रमाणसप्तभर्गी ओर नयसप्तभगी वाक्यों की परिभाषायें पहले लिखी जा चुकी हैं। अव हम उक्त भेदों की परिभाषायें देखेंगे - (चार्ट न ७ तथा चार्ट न १९)

अभेदवृत्ति नय = अभेद + वृत्ति = अभेद से रहना। वस्तु में **गुण** सदा ही अभेदरूप से रहते हैं। एक गुण के द्वारा अखण्ड वस्तु का कथन करना। जैसे - **आत्मा ज्ञानवान** है। यह प्रमाणसप्तभगी का अभेदवृत्ति नयात्मक प्रमाण वाक्य हे।

अभेदोपचार नय = अभेद + उपचार = भेद होते हुए भी अभेद का उपचार करना। वस्तु में पर्यायें सदा ही भेदरूप से रहती हैं। एक पर्याय के द्वारा अखण्ड वस्तु का कथन करना। जैसे - **क्रोधी जीव**। यह प्रमाणसप्तभगी का अभेदोपचार नयात्मक प्रमाण वाक्य है।

भेदोपचार नय = भेद + उपचार = अभेद होते हुए भी भेद का उपचार करना। वस्तु में गुण सदा ही अभेदरूप से रहते हैं, फिर भी भेदरूप से कथन करना। गुण के द्वारा गुण का ही कथन करनेवाला वाक्य। जेसे - **जीव में ज्ञान है, श्रद्धा** है। **यह नय सप्तभगी का भेदोपचार नयात्मक वाक्य है।**

भेदवृत्तिनय = भेद + वृत्ति = भेदरूप से रहना। वस्तु में पर्यायें सदा ही भेदरूप से रहती हैं, उन्हें वैसा ही कहना। एक पर्याय के द्वारा एक पर्याय का ही कथन करना। जैसे - **जीव में मतिज्ञान है। यह नयसप्तभगी का भेदवृत्ति नयात्मक वाक्य है।**

समयसार में इन सभी नयों का प्रयोग किया गया है, किन्तु कुछ लोग केवल निश्चयनय और व्यवहारनय के नाम तथा उन्हीं के भेदों मात्र से परिचित होने से तथा उपरोक्त नय विवेचन से अनभिज्ञ होने के कारण वास्तव में समयसार की गाथाओं का अर्थ करने में भूल करते आ रहे हैं। समयसार की गाथाओं के भावार्थ की जितनी अधिक स्पष्टता इन चार नयों तथा इनके भेदों से हो जाती है, उतनी अधिक स्पष्टता निश्चयनय-व्यवहारनय, द्रव्यार्थिकनय-पर्यायार्थिकनय तथा उनके उपभेदों के द्वारा एव आगम और अध्यात्म के नयों और उनके भेदों के द्वारा नहीं हो पाती हे, क्योंकि इन नयों की तथा इनके भेदों की आगम और अध्यात्म की भिन्न-भिन्न स्थानों पर ग्रथो में भिन्न-भिन्न परिभाषायें होने के कारण सामान्य वक्ता तथा श्रोता-सभी उलझन में पडकर भ्रान्ति में से निकल पाने में असमर्थ ही रहते हैं।

---

[1] अध्यात्म न्यायदीपिका चार्ट न ७ ● [1] द्रव्यस्वभाव प्रकाशक नयचक्र गाथा १८१

इन सप्तभगी के नयों के ज्ञान से अनभिज्ञ व्यक्ति समयसार का स्वाध्याय करते हुए भी निम्न प्रकार का अन्याय करते देखे जाते हैं -

१) समयसार में स्थान-स्थान पर **अभेदवृत्ति** ओर **अभेदोपचार** नय द्वारा ध्यान का ध्येय-अनुभूति की वस्तु-दृष्टि का विषय ज्ञानानदस्वभाव-**निज ध्रुव शुद्ध चिदानन्द आत्मा** वताया गया हे, किन्तु इन नयों से अनभिज्ञ व्यक्ति **शुद्ध पर्याय** या **शुद्ध पर्यायसहित जीव** को ही **विषय** समझकर **स्वय के साथ अन्याय** करता हे। इसी प्रकार जहॉ भेदोपचार नय द्वारा आत्मा के गुण और **भेदवृत्तिनय** द्वारा किसी पर्याय की वात आत्मा की विशेषता वताने के लिये कही गई हे तो उसे ही ध्यान का ध्येय-दृष्टि का विपय-स्वसवेदन योग्य विषय मानकर **स्वय के साथ ही अन्याय करता है।** देखो चार्ट न ८ पृष्ठ ३१२।

२) इन नयों का परिज्ञान न होने के कारण अनेक वर्षो तक समयसार का स्वाध्याय करके भी समयसार शास्त्र के कथनों का सही अर्थ न समझने के कारण **शास्त्र के साथ अन्याय** करता है।

३) इन नयों से अनभिज्ञ होने से महान **आचार्य कुन्दकुन्द तथा टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र एव आचार्य जयसेन के साथ अन्याय करता है।** उनका अभिप्राय तो समझ नहीं पाता ओर कहता है कि शास्त्र वहुत कठिन है, जवकि आचार्यों ने तो टीकायें लिखकर सभी कथन एकदम सरल ही कर दिये हैं।

४) इन नयों से अनभिज्ञ होने के कारण समयसार समझ नहीं पाता है तथा स्वसवेदन ज्ञान से रहित होकर कहता है कि अभी पचमकाल है, सर्वज्ञ का अभाव हे, काल लव्धि नहीं पकी है, केवली के ज्ञान में ऐसा ही देखा गया होगा, क्रमनियमित पर्याय इसी प्रकार की होनी होगी, अभी चारित्र धारण करो अनुभव फिर आगे कर लेगें इत्यादि कथनों द्वारा **अर्हन्त भगवान महावीर और सीमन्धर भगवान के साथ अन्याय करता है** - कि उनकी वाणी को पढने से कोई भी लाभ नहीं हुआ। कहते हैं कि समयसार में तो दो तीर्थंकरों से प्राप्त ज्ञान का भण्डार भरा हुआ हे।

५) इन नयों से अनभिज्ञ रहने से **वस्तु व्यवस्था के साथ भी अन्याय करता है** जव कहता है कि पचमकाल में सम्यग्दर्शन नहीं होता, गृहस्थों को सम्यग्दर्शन नहीं होता, सातवें गुणस्थान या दसवें गुणस्थान तक सम्यग्दर्शन नहीं होता, सम्यग्दृष्टि तो ३-४-५ ही हो सकते हैं, क्या सम्यग्दर्शन होना कोई सरल काम हे-वह तो महाकठिन काम हे, समयसार गृहस्थों को पढना ही नहीं चाहिये, इत्यादि।

इसलिये सभी प्रकार का अन्याय छोडने और स्वसवेदनज्ञान प्रत्यक्ष प्रामाण्य सहित शीघ्र करने के लिये इन नयों का ज्ञान करके समयसार शास्त्र के आगे-पीछे के सभी कथनों का सदर्भ सहित अर्थ समझने से आचार्यों का अभिप्राय ख्याल में लेकर अतींद्रिय आनद प्राप्त करने का मार्ग स्वय के लिये अवश्य ही प्रशस्त करना चाहिये। और वह उपाय इन प्रमाण सप्तभगी और नय सप्तभगी के चारों नयों को जानने का साधन **आध्यात्म न्यायदीपिका** में मुनिवर **श्री वीरसागर जी** ने चार्ट न ७ द्वारा वहुत ही प्रामाणिक पद्धति से दिखाया है।

इन नयों का ज्ञान करके समयसार पढने पर ऊपर कथित सभी प्रकार का अन्याय छूटकर स्वसवेदन ज्ञान की प्राप्ति अवश्य हो जाती है।

समयसार में किस नय की मुख्यता है ? इस पर विचार करते हैं। समयसार में **परमशुद्ध निश्चयनय** की मुख्यता से वर्णन किया हे जिसे **अभेदवृत्तिनय** भी कहा जाता हे। यह अभेदवृत्तिनय निश्चयनय का कथन करता है, शेष तीन नय व्यवहारनय का कथन करते हैं। जो जीव समयसार को पर्यायदृष्टि से पढता हे - समझता है, जानता हे, वह जीव समयसार के साथ अन्याय करता है। समयसार में तो किसी भी जीव की (निगोद से लगाकर सिन्द्र तक) अवस्था नहीं दिखाई देती हे। वहॉ तो सम्पूर्ण जीवों में एक शुन्द्रात्मा ही दिखाई देता है। जैसे धवल पु १ में कहा है - **जीवो मगलम्** अर्थात् सभी जीव द्रव्यदृष्टि से मगल हैं। जिसने अपने कारणसमयसार के साथ हो रहे अन्याय को दूर कर न्याय किया - शुद्धात्मानुभव किया, उसे पर्यायदृष्टि छूटकर निश्चयनय-दृष्टि का विपय निज कारणपरमात्मा का आश्रय अपनी प्रमाणात्मक ज्ञान पर्याय में हो जाता हे।

समयसार में आचार्य ने **शुद्धनय का प्रयोग शुद्ध विषयरूप शुद्धात्मा दिखाने के लिये किया है,** न कि शुन्द्र साधन दिखाने के लिये। किन्तु **यह बात समझ में किसे आयेगी ?** जिन जीवों ने न्यायशास्त्र का अभ्यास अध्यात्मदृष्टि से किया होगा उन्हें ही यह वात समझ में आयेगी, क्योंकि न्याय के अभ्यास से ही यह जानकारी होती है कि कौन सा साधन अखण्ड वस्तु को-त्रिकाली ध्रुव को ग्रहण करता हे और कोन सा साधन खण्डरूप वस्तु-गुण पर्याय (वस्तु के अश को) को ग्रहण करता है।

प्रमाण साधन अखण्ड वस्तु को ग्रहण करता है ओर **नय साधन खण्डित वस्तु (अश) को ग्रहण करता है।** अखण्ड समयसाररूप निज शुद्धात्मा का स्वसवेदन-अनुभवन करने के लिये हमें **प्रमाणज्ञान** साधनरूप अखण्ड साधन का प्रयोग करना होगा तभी हमें हमारा शुद्धात्मा का ग्रहण होगा।

प्रमाण और नय साधनों का सही-सही ज्ञान न होने से अनेक लोग नय साधन को ही अनुभूतिरूप सम्यग्दर्शन प्रगट करने का उपाय मानते हैं। वे आगम के आधार से तर्क और उदाहरण भी देते हैं कि **विषय-**कारण समयसार नयात्मक होने से विपयी-**साधन** भी नयात्मक ही होता है। वे कहते हैं समयसार में **शुद्ध नयायत्त** (कलश ७), **भूदत्थेणाभिगदा** (कलश १३), **शुद्ध नयोभ्युदेति** (कलश - १०), **भूदत्थमस्सिदोखलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो** (गाथा ११), **जो पस्सादि अप्पाण त सुद्धणय वियाणाहि** (गाथा १४), **शुद्ध नयात्मिका** (गाथा १३), व पचाध्यायी (२) ४०३ इत्यादि अनेक उद्धरण देकर कहते हैं कि शुद्धनय से ही अनुभव होता है। उनका यह कथन उपरोक्त चार नयों को नहीं समझने के कारण भूल भरा है।

नय परोक्ष साधन है, प्रत्यक्ष नहीं। अत नयों के द्वारा शुन्द्रात्मा को परोक्षरूप से ही जाना जा सकता है, प्रत्यक्ष रूप से नहीं, अस्पष्ट ही जानना होगा, स्पष्ट नहीं, वचनात्मक ही जान सकेंगे, साक्षात् प्रत्यक्ष प्रामाण्य सहित नहीं। अत अतीन्द्रिय आनद नहीं आवेगा, आनदाभास ही होगा, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नहीं होगा, सम्यक्त्वाभास और सम्यग्ज्ञानाभास ही होगा। उन्हें यह ज्ञान भी नहीं हो सकेगा कि उन्हें सम्यग्दर्शन हुआ या नहीं। वे दूसरों से पूछने जावेंगे कि मुझे सम्यग्दर्शन हुआ या नहीं।

यह भी एक **सत्य तथ्य** हे कि जिसे अभी सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान ही नहीं हुआ है, उसके पास सम्यक् नय हैं ही नहीं, क्योंकि सम्यक् नय तो सम्यग्दृष्टि को अनुभव के पश्चात् जन्मते हैं। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि तथा केवलज्ञानी के नय नही होते हैं। नय तो सम्यक् श्रुतज्ञान के अश हें। सम्यग्ज्ञानरूप प्रमाण से नयों की उत्पत्ति होती है। जो साधन (नय) उसके पास है ही नहीं, उस साधन (नय) से वह अनुभव केसे कर सकेगा ? वास्तव मे वह तो वोद्ध मत की मान्यतावाला हे।

श्रुतभवनदीपक नयचक्र में श्री देवसेनाचार्य लिखते हैं - "**प्रत्यक्षानुभूति नयपक्षातीत** ।" आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति लेने के ३ उपाय हैं जो नय पक्षातीत हैं - १) मतिज्ञान, २) श्रुतज्ञान, ३) केवलज्ञान।

आचार्य अमृतचन्द्र आत्मख्याति के कलश ६९ और ७० मे कहते है कि नय पक्षपात का अभाव होने पर ही विकल्प जाल से रहित चित्त होने पर साक्षात् अमृत का पान किया जाता हे। नय पक्षपात रहित तत्त्ववेत्ता को निरन्तर चित्स्वरूप जीव जेसा है वेसा ही अनुभव मे आता है।

प्रत्येक स्वाध्यायी को समयसार का स्वाध्याय करते समय निम्न वातें अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये -

१) लघु जैन सिन्द्रात प्रवेशिका के आधार से **द्रव्य-गुण-पर्याय** को समझ लेना चाहिये।

२) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्याय का कर्ता नहीं होता है। प्रत्येक द्रव्य की मर्यादा **स्वचतुष्टय** में ही हे।

३) प्रत्येक द्रव्य की प्रतिसमय होनेवाली **पर्याय क्रमनियमित** स्वयमेव होती है।

४) शरीर व इन्द्रियों की क्रिया से आत्मा को कोई लाभ नही होता है।

५) **शुभभाव से बध** होता है, धर्म नहीं।

६) आत्मा के आश्रय से-**स्वसन्मुखता** से धर्म होता है।

७) **विषय-साधन-फल** जाने विना धर्म की शुरुवात नहीं होती हे।

८) प्रमाणज्ञान से आत्मानुभव होता है।

१०) ध्यान में ही आत्मानुभव होता हे, ध्यान के विना नही होता हे।

११) **आत्मा का अनुभव प्रत्यक्ष होता है।**

१२) **नयों से आत्मा का अनुभव नहीं होता है।**

१३) देशना ज्ञानी से लगती है, अज्ञानी से नहीं।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में तर्कपूर्ण शैली से सिद्ध किया गया है कि समयसार के विना सभी शास्त्रों का अध्ययन अधूरा हे, समयसार के विना अध्यात्म निर्जीव हे, समयसार के विना जीवन शून्य हे, समयसार के विना मोक्ष का मार्ग अपूर्ण है, समयसार के विना आगमज्ञान का फल अफल है, समयसार के विना आत्मा की चर्चा कोरी हे, समयसार के विना जीवन असार हे, **समयसार के ज्ञान बिना सम्यक्त्व नहीं**। यह तो सत्य है ही किन्तु यह भी सत्य है कि समयसार समस्त पदार्थो में एक सारभूत तत्त्व है, आधार है, विषय है, चर्या-योग्य है, ध्यान योग्य हे।

इन नयों का ज्ञान करके समयसार पढने पर ऊपर कथित सभी प्रकार का अन्याय छूटकर स्वसवेदन ज्ञान की प्राप्ति अवश्य हो जाती है।

समयसार में किस नय की मुख्यता है ? इस पर विचार करते हैं। समयसार में **परमशुद्ध निश्चयनय** की मुख्यता से वर्णन किया है जिसे **अभेदवृत्तिनय** भी कहा जाता है। यह अभेदवृत्तिनय निश्चयनय का कथन करता है, शेष तीन नय व्यवहारनय का कथन करते हैं। जो जीव समयसार को पर्यायदृष्टि से पढता है - समझता है, जानता है, वह जीव समयसार के साथ अन्याय करता है। समयसार में तो किसी भी जीव की (निगोद से लगाकर सिद्ध तक) अवस्था नहीं दिखाई देती है। वहाँ तो सम्पूर्ण जीवों में एक शुद्धात्मा ही दिखाई देता है। जैसे धवल पु १ में कहा है - **जीवो मगलम्** अथात सभी जीव द्रव्यदृष्टि से मगल है। जिसने अपने कारणसमयसार के साथ हो रहे अन्याय को दूर कर न्याय किया - शुद्धात्मानुभव किया, उसे पर्यायदृष्टि छूटकर निश्चयनय-दृष्टि का विषय निज कारणपरमात्मा का आश्रय अपनी प्रमाणात्मक ज्ञान पर्याय में हो जाता है।

समयसार में आचार्य ने **शुद्धनय का प्रयोग शुद्ध विषयरूप शुद्धात्मा दिखाने के लिये किया है,** न कि शुद्ध साधन दिखाने के लिये। किन्तु **यह बात समझ में किसे आयेगी ?** जिन जीवों ने न्यायशास्त्र का अभ्यास अध्यात्मदृष्टि से किया होगा उन्हें ही यह बात समझ में आयेगी, क्योंकि न्याय के अभ्यास से ही यह जानकारी होती है कि कौन सा साधन अखण्ड वस्तु को-त्रिकाली ध्रुव को ग्रहण करता है और कौन सा साधन खण्डरूप वस्तु-गुण पर्याय (वस्तु के अश को) को ग्रहण करता है।

प्रमाण साधन अखण्ड वस्तु को ग्रहण करता है और **नय साधन खण्डित वस्तु (अश) को ग्रहण करता है।** अखण्ड समयसाररूप निज शुद्धात्मा का स्वसवेदन-अनुभवन करने के लिये हमें **प्रमाणज्ञान** साधनरूप अखण्ड साधन का प्रयोग करना होगा तभी हमें हमारा शुद्धात्मा का ग्रहण होगा।

प्रमाण और नय साधनों का सही-सही ज्ञान न होने से अनेक लोग नय साधन को ही अनुभूतिरूप सम्यग्दर्शन प्रगट करने का उपाय मानते हैं। वे आगम के आधार से तर्क और उदाहरण भी देते हैं कि **विषय-**कारण समयसार नयात्मक होने से विषयी-**साधन** भी नयात्मक ही होता है। वे कहते हैं समयसार में **शुद्ध नयायत्त** (कलश ७), **भूदत्थेणाभिगदा** (कलश १३), **शुद्ध नयोभ्युदेति** (कलश - १०), **भूदत्थमस्सिदोखलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो** (गाथा ११), **जो पस्सादि अप्पाण त सुद्धणय वियाणाहि** (गाथा १४), **शुद्ध नयात्मिका** (गाथा १३), व पचाध्यायी (२) ४०३ इत्यादि अनेक उद्धरण देकर कहते हैं कि शुद्धनय से ही अनुभव होता है। उनका यह कथन उपरोक्त चार नयों को नहीं समझने के कारण भूल भरा है।

नय परोक्ष साधन है, प्रत्यक्ष नहीं। अत नयों के द्वारा शुद्धात्मा को परोक्षरूप से ही जाना जा सकता है, प्रत्यक्ष रूप से नहीं, अस्पष्ट ही जानना होगा, स्पष्ट नहीं, वचनात्मक ही जान सकेंगे, साक्षात् प्रत्यक्ष प्रामाण्य सहित नहीं। अत अतीन्द्रिय आनद नहीं आवेगा, आनदाभास ही होगा, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नहीं होगा, सम्यक्त्वाभास और सम्यग्ज्ञानाभास ही होगा। उन्हें यह ज्ञान भी नहीं हो सकेगा कि उन्हें सम्यग्दर्शन हुआ या नहीं। वे दूसरों से पूछने जावेंगे कि मुझे सम्यग्दर्शन हुआ या नहीं।

सम्यज्ञान ही प्रमाण क्यों ?

- सपादक

स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाणम्। परीक्षामुख अ १ सू १। स्व और अपूर्व पदार्थ के निश्चय करनेवाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। इस सूत्र में 'स्व' शब्द रखने से नैयायिक, साख्य तथा चार्वाक मतो का खण्डन हो जाता है। 'अपूर्व' शब्द रखने से कुमारिलभट्ट-मीमासक मत (धारावाही ज्ञान प्रमाण है) का खण्डन हो जाता है। 'अर्थ' शब्द रखने से बोद्धों के (विज्ञानाद्वैतवाद और चित्राद्वैतवाद) मत का खण्डन हो जाता है। 'व्यवसायात्मक' शब्द रखने से बोद्धों के (निर्विकल्पवाद) मत का खण्डन हो जाता है। 'ज्ञान' शब्द रखने से नैयायिकों के सन्निकर्षवाद का, वेशेपिकों के कारकसाकल्यवाद का तथा साख्यों के इद्रियव्यापार प्रमाणवाद का खण्डन हो जाता है।

बौद्ध कहते है - जो ज्ञान अविसवादि है, वह प्रमाण है। उनके द्वारा प्रत्यक्षज्ञान और अनुमानज्ञान ये दो प्रमाण माने गये हैं। किन्तु उनका यह प्रमाण का लक्षण दोनो प्रमाणों मे नहीं जाता है। अत असम्भव दोष से दूषित होने से अप्रमाण है, यह सम्यक् लक्षण नहीं है।

भाट्ट मीमासक कहते हैं - अनधिगत तथाभूतार्थ निश्चायक ज्ञान प्रमाण है। पहिले नहीं जाने गये यथार्थ पदार्थ का निश्चय कराने वाला ज्ञान प्रमाण माना है। उनके द्वारा माने गये धारावाहिक ज्ञानों में यह लक्षण नहीं जाता है। अत असभवदोष से दूषित होने से अप्रमाण है, यह सम्यक लक्षण नहीं है।

प्रभाकर मीमासक कहते है - अनुभूतिरूप ज्ञान प्रमाण है। उनके द्वारा प्रमाण (अनुभूति) शब्द के दो अर्थ किये जाते हैं - १ ज्ञान याने भावसाधन। २ आत्मा और मन का सन्निकर्ष याने करण साधन। इन प्रकार उनके द्वारा भावसाधन और करणसाधन सर्वथा भिन्न मानने से प्रमाण का लक्षण दोनों साधनों में नहीं जाता अत अव्याप्तिदोप से दूषित होने से अप्रमाण है।

जिनागम में भी अनुभूति को प्रमाण माना गया है, किन्तु वहाँ पर अनुभूति से त्रिकाली ज्ञानदर्शनानन्दात्मा का प्रामाण्य सहित प्रत्यक्षज्ञान होना है। जब यह अनुभूति अवश्य हो जाती है। अर्थात् सम्यग्दर्शन और शुद्धात्मानुभव में अन्तर नहीं - ऐसा क्यों है ?

इस ग्रन्थ की महिमा का वर्णन करने में सच पूछो तो शब्द कम पडते हैं, शब्दों की सामर्थ्य शून्य-सी दिखाई देती है। **समयसार की महिमा तो वास्तव में शुद्धात्मा की अनुभूति करने से ही होती है।**

समयसार की अनुभूति के विना द्रव्य-गुण-पर्याय विषय-साधन-फल प्रमाण-नय-निक्षेप, तत्त्वश्रद्धान-स्वाध्याय-सयम, नय और प्रमाण, लोकव्यवस्था और क्षयोपशमज्ञान की सूक्ष्मता सभी की चर्चा अकार्यकारी है।

समयसार के अध्ययन से अनुयोगों के नये क्षितिज बनते है, दिशाओं को द्वार प्राप्त होते हैं, द्वारों को आयाम प्राप्त होते हैं, प्रमाण को प्रामाण्य प्राप्त होता है, अनुभूति को प्रामाणिकता मिलती है, मिथ्यात्व का अभाव होता है, कषायों का शमन हो जाता है, ज्ञान को ज्योति प्राप्त होती है, विकल्पो का विनाश होता है, साधु को सत्समागम प्राप्त होता है, पण्डितों के दम्भ का अन्त आ जाता है, पाखण्डियों के स्वाग छूट जाते हैं, श्रावक में श्रद्धा-विवेक-क्रिया चेतना प्राप्त कर लेती है, ससारी को सच्ची शान्ति और अक्षय आनन्द के द्वार खुल जाते हैं। **आत्मा का ध्यान करने वाले की मोह ग्रन्थि का विनाश हो ही जाता है।**

इस प्रकार निज शुद्ध चैतन्यरूप ध्रुवतत्त्व के अवलबन पूर्वक अपने मति-श्रुत ज्ञान की प्रामाणात्मक ज्ञानपर्याय में प्रत्यक्ष प्रामाण्य सहित अतींद्रिय आनन्द का अनुभव करना ही **समयसार के साथ न्याय है।**

महावीर सास्कृतिक भवन, सोलापुर — मन्नूलाल जैन (वकील)
९ ०९ १९९९ — सागर (म प्र)

"बाहर भटकनेवाले ज्ञानोपयोग को स्व की ओर लगा देना ही महत्वपूर्ण प्रयोग है।
यह सहज सुलभ सुन्दर प्रयोग इस मानव जीवन की परम आवश्यकता है।"

जब यह जीव समस्त रागादि विभावों से रहित होकर शुद्धात्मानुभूतिमई ध्यान के बल से प्रकृति-प्रदेश-स्थिति-अनुभागरूप चार प्रकार के बध से और समस्त विभावों से बिलकुल छूट जाता है तब यह जीव अपने स्वाभाविक अनत ज्ञान, दर्शन, सुख, बल आदि गुणों से भूषित होता हुआ एक समय में ही सीधा ऊपर को जाकर लोक के अग्रभाग में ठहर जाता है। मुक्त जीवों के सिवाय शेष समस्त ससारी जीव मरण के अत में छहों दिशाओं में जाते हैं।

सम्यग्ज्ञान ही प्रमाण क्यों ?

- सपादक

स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाणम्। परीक्षामुख अ १ सू १। स्व ओर अपूर्व पदार्थ के निश्चय करनेवाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। इस सूत्र में **'स्व'** शब्द रखने से **नैयायिक, साख्य** तथा **चार्वाक** मतों का खण्डन हो जाता है। 'अपूर्व' शब्द रखने से **कुमारिलभट्ट-मीमासक** मत (**धारावाही ज्ञान प्रमाण है**) का खण्डन हो जाता है। **'अर्थ'** शब्द रखने से बौद्धों के (**विज्ञानाद्वैतवाद** ओर **चित्राद्वैतवाद**) मत का खण्डन हो जाता हे। **'व्यवसायात्मक'** शब्द रखने से बोद्धों के (**निर्विकल्पवाद**) मत का खण्डन हो जाता हे। **'ज्ञान'** शब्द रखने से नैयायिकों के **सन्निकर्षवाद** का, वैशेषिकों के **कारकसाकल्यवाद** का तथा साख्यों के **इद्रियव्यापार प्रमाणवाद** का खण्डन हो जाता है।

बौद्ध कहते हे - **जो ज्ञान अविसवादि है, वह प्रमाण है।** उनके द्वारा प्रत्यक्षज्ञान और अनुमानज्ञान, ऐसे दो प्रमाण माने गये हैं। किन्तु उनका यह प्रमाण का लक्षण दोनों प्रमाणो में नही जाता है। अत असभव दोप से दूपित होने से अप्रमाण है, यह सम्यक् लक्षण नहीं है।

भाट्ट मीमासक कहते हैं - **अनधिगत तथाभूतार्थ निश्चायक ज्ञान प्रमाण है।** पहिले नहीं जाने गये यथार्थ पदार्थ का निश्चय कराने वाला ज्ञान प्रमाण माना है। उनके द्वारा माने गये धारावाहिक ज्ञानों में यह लक्षण नही जाता है। अत **असभवदोष** से दूपित होने से अप्रमाण है, यह सम्यक् लक्षण नहीं हे।

प्रभाकर मीमासक कहते हैं - **अनुभूतिरूप ज्ञान प्रमाण है।** उनके द्वारा प्रमाण (अनुभूति) शब्द के दो अर्थ किये जाते हैं - १ ज्ञान याने भावसाधन। २ आत्मा ओर मन का सन्निकर्प याने करण साधन। इस प्रकार उनके द्वारा भावसाधन ओर करणसाधन सर्वथा भिन्न मानने से प्रमाण का लक्षण दोनों साधनों में नहीं जाने से **अव्याप्तिदोष** से दूपित होने से अप्रमाण है।

जिनागम में भी अनुभूति को प्रमाण माना गया है, किन्तु यहॉ पर अनुभूति शब्द का अर्थ शुद्धात्मानुभव याने निजध्रुवज्ञानदर्शनानदात्मा का प्रामाण्य सहित प्रत्यक्षज्ञान होता है। जव यह अनुभृति होती हे तव सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति अवश्य हो जाती हे। अर्थात् सम्यग्दर्शन और शुद्धात्मानुभव में अन्वय तथा व्यतिरेक पाया जाता हे।

शका - ऐसा क्यों हे ?

समाधान - १ जिनागम में भवसाधन ओर करणसाधन को सर्वथा भिन्न-भिन्न नहीं माना है।

२ जिनागम मे ज्ञान शब्द या प्रमाण शब्द का अथ करणसाधन रूप हे।

३ शुद्धात्मानुभव से ही सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति मानी है। पश्चात् सविकल्प दशा (स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क अनुमान, नय जल्प) के काल में होने वाले ज्ञान को भी प्रमाण कहते हैं। इसे समझने के लिये इसी ग्रन्थ मे अनेक चार्ट दिये गये हे, वे देखिये।

चार अभाव

-सपादक

प्रत्येक वस्तु अनेकान्तस्वरूप और भाव-अभावात्मक है। अभाव का अर्थ है न होना, भिन्न रहना, दूर रहना, सत्ता मे नहीं होना, उत्पाद नही होना, व्यय हो जाना, पररूप नहीं होना। भावान्तर सद्भाव एव अभाव ।

चार अभावो को जाने बिना अनेकान्तात्मक वस्तु के स्वरुप का यथार्थ निर्णय नहीं होता। अत उन्हें अवश्य जानना चाहिये क्योंकि अभाव भी वस्तु का स्वभाव है। चार अभावो का कथन जिनवाणी मे साख्यमत, बौद्धमत, चार्वाकमत और निश्चयाभास की मान्यताओ के निषेध के लिए आया है।

जैनदर्शन के अनुसार प्रत्येक पदार्थ अनेकान्तस्वरूप है। जैनदर्शन वस्तु को कथचित् नित्य, अपरिणामी और कथचित् अनित्य, परिणामी मानता है। द्रव्य की अपेक्षा से स्व वस्तु नित्य है,पर्याय की अपेक्षा से वस्तु अनित्य है। अपनी अपेक्षा से स्वरूप है, भावरूप है, पर की अपेक्षा से स्ववस्तु पररूप नहीं है, अभाव स्वरूप है। यह अभाव भी किसी अपेक्षा से वस्तु का सद्भावरूप स्वभाव ही है।

प्रत्येक वस्तु में गुण,स्वभाव,शक्तियॉ और धर्म होते है जिनकी सख्या अनन्त है। भाव याने सद्भावरूप विशेषो को गुण,स्वभाव,शक्ति धर्म कहते है। अभावरूप विशेपो को भी गुण,स्वभाव,शक्ति,धर्म कहते है।

आप्तमीमासा की कारिका ९,१०,११ में चार अभावो का वर्णन प्राप्त होता है। इनका विस्तार आचार्य अकलकदेव ने अष्टशती में, तथा आचार्य विद्यानदि ने अष्टसहस्री में किया है।

आप्तमीमासा में आचार्य समन्तभद्र सर्वप्रथम तीन कारिकाओं मे सच्चे देव की पूज्यता की कसौटी प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि कल्याणको में , सभाओ मे देवो की उपस्थिति, आकाश मे अधरगमन, छत्र-चमरादि से सजावट-सेवा, पुष्प वृष्टि, शरीर मे परम औदारिकपना, पसीना का अभाव, महोदयपना, तीर्थ की प्ररूपणा आदि कार्य पूज्यता के अन्यथा अनुपपत्तिरूप हेतु नहीं है, ये तो मायावियो में भी देखे जाते है ,अनैकान्तिक है। ये हेतु आगमाश्रित दोप युक्त होने से असिद्ध भी है।

वीतरागता, सर्वज्ञता और परमहितोपदेशकता ही आप्तपना और पूज्यता के सच्चे कारण हैं। तत्त्वार्थसूत्र महाशास्त्र के मगलाचरण से नि सृत यह आप्तमीमासा उसमे कहे आप्त के विशेपणो को ही ४ थी से७ वीं तक चार कारिकाओं मे प्रतिपादन करती हुई सर्वज्ञ की सिद्धि करती है।

सर्वथा एकान्त आग्रह से ग्रसित, आप्ताभिमानदग्ध अल्पज्ञ, अन्य साख्य,बौद्ध,चार्वाक आदि मतो को जैनमतरूप अमृत से बाहर घोपित करते हुए चार अभावो के प्रकरण से आचार्य न्यायशास्त्र का प्रारभ करते हैं।

आचार्य समन्तभद्र कहते हैं कि जो एकान्त आग्रह से ग्रस्त हैं वे पदार्थों को सर्वथा नित्य या सर्वथा अनित्य मानते हैं , वे आपस मे एक दूसरे के विरुद्ध-वैरी तो है ही, यथार्थ वस्तु स्वरूप से भी विरुद्ध मान्यतावाले है। उनके मत मे शुभ-अशुभ क्रिया, पुण्य-पाप का फल,स्वर्ग-नरक आदि परलोक, तथा बध और मोक्ष की व्यवस्था नहीं बन सकती है, क्योंकि सर्वथा नित्य तथा सर्वथा क्षणिक पदार्थ मे अर्थक्रिया घटित नहीं होती है। साख्यदर्शन सभी पदार्थो को एकान्त से भावरूप नित्य और कूटस्थ ही मानता है। बौद्धमत वस्तु को सर्वथा अनित्य ही मानता है।

प्रत्येक वस्तु में चार अभाव स्वभावरूप से मौजूद है। यदि पदार्थो को एकान्तरूप से नित्यरूप ही माना जावेगा तो प्रागभाव प्रध्वसाभाव, इतरेतराभाव और अत्यन्ताभावरूप अभाव स्वभावों का नाश हो जाने से सभी वस्तुएँ (पदार्थ)अनादि, अनन्त, सर्वात्मक और अस्वरूप-स्वरूपरहित शून्य हो जावेंगी। प्रागभाव और प्रध्वसाभाव का प्रयोजन अनतर पूर्वक्षणवर्ती और अनतर उत्तरक्षणवर्ती पर्यायो से वर्तमान पर्याय की भिन्नता बतलाना है। अन्योन्याभाव का प्रयोजन पूर्व परिणाम सन्तति, उत्तर परिणाम सन्तति को भिन्न बतलाना है। अत्यन्ताभाव का प्रयोजन प्रत्येक द्रव्य के चतुष्टय को भिन्न करके हर एक पदार्थ की भिन्नता दिखलाता है।

प्रागभाव

प्रश्न : प्रागभाव (प्राक्+अभाव) किसे कहते है

समाधान यद् अभावे हि नियमत कार्यस्य उत्पत्ति स प्रागभाव । जिसका (अनतरपूर्वक्षणवर्ती पर्याय का) अभाव

नैयायिकादि कहते हैं - **प्रमा के प्रति जो करण है, वह प्रमाण है।** उनके यहाँ करणसाधन को ओर अधिकरणसाधन को सर्वथा भिन्न माना है। उनके यहाँ इस तरह के कथन हैं - **तन्मे प्रमाण शिव** याने वह **शिव ईश्वर ही मुझे प्रमाण है,** वह **महेश्वर मुझे प्रमाण** है। और वे ऐसा भी मानते हैं कि महेश्वर प्रमा का अधिकरण तो है, लेकिन करण नहीं है। इस प्रकार यह लक्षण करणसाधन में जाता है, अधिकरणसाधन में नहीं। अत **अव्याप्तिदोष** से दूषित होने से अप्रमाण है।

इसी तरह जो लोग किसी ईश्वर, अल्पज्ञ, छद्मस्थ आदि को प्रमाण मानते हैं, क्षेत्र को प्रमाण मानते हैं, सहनन को प्रमाण मानते हैं वह भी उनकी भूल है। सन्निकर्ष आदि केवल करणसाधन हैं, प्रमाण के अधिकरण नहीं हैं। अत वे भी प्रमाण नहीं हैं, वे भी अप्रमाण ही हैं।

साख्यादि कहते हैं - **इन्द्रियव्यापार प्रमाण है, कारकसाकल्य प्रमाण है।** इन्द्रियाँ तथा कारकान्तर अचेतन होने से जानने के साधकतम साधन नहीं हो सकते। जो अचेतन है, स्वय को नहीं जानता है, वह पर को भी नहीं जान सकता है। जानने का साधकतम साधन ज्ञान ही है।

अत यह सिद्ध हो गया कि स्व तथा पर को जाननेवाला सविकल्प (साकार) और अपूर्वार्थग्राही सम्यग्ज्ञान ही पदार्थों के अज्ञान को नष्ट करने में समर्थ है, इसलिये वह प्रमाण है।

❖❖❖
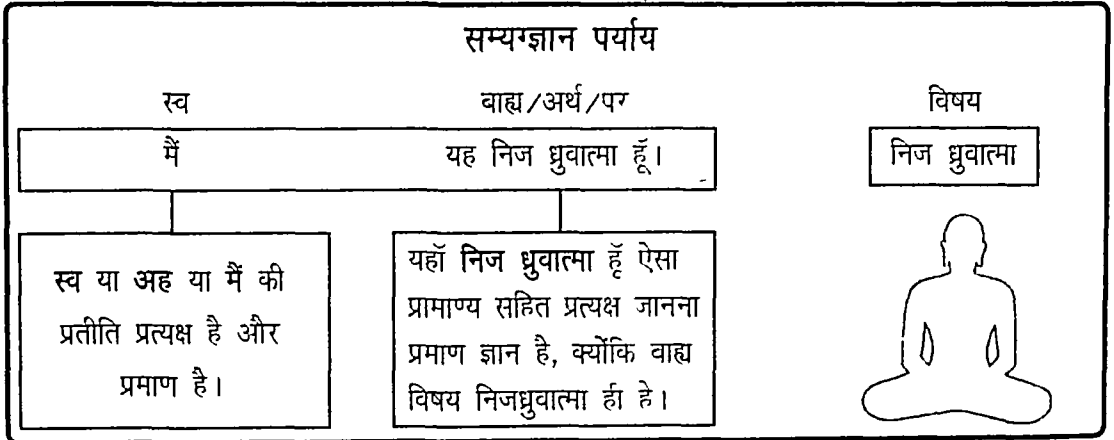
सम्यग्ज्ञान ही प्रमाण क्यों है ?

१ उसमें ज्ञानपना है। वह अज्ञान का विरोधी है।
२ उसमें चेतनपना है। वह चैतन्यरूप है। वह अचेतन नहीं है।
३ वह स्वसवेदी है। वह स्वय को जानता है।
४ उसमें करणपना है। उसे अन्य-भिन्न करण (साधन) की सहायता नहीं चाहिये।
५ उसमें साधकतमपना है। उसके बिना कार्य-जानना नहीं होता।
६ उससे प्रमिति होती है। उससे अज्ञान मिट जाता है।
७ वह अतिशय सहित है। वह प्रति समय नया-नया होता है। स्व-पर प्रकाशक है।

चार अभाव

-सपादक

प्रत्येक वस्तु अनेकान्तस्वरूप और भाव-अभावात्मक है। अभाव का अर्थ है न होना, भिन्न रहना, दूर रहना, सत्ता मे नहीं होना, उत्पाद नहीं होना, व्यय हो जाना, पररूप नहीं होना। भावान्तर सद्भाव एव अभाव ।

चार अभावो को जाने बिना अनेकान्तात्मक वस्तु के स्वरुप का यथार्थ निर्णय नहीं होता। अत उन्हें अवश्य जानना चाहिये क्योंकि अभाव भी वस्तु का स्वभाव है। चार अभावो का कथन जिनवाणी मे साख्यमत, बौद्धमत, चार्वाकमत और निश्चयाभास की मान्यताओ के निषेध के लिए आया है।

जैनदर्शन के अनुसार प्रत्येक पदार्थ अनेकान्तस्वरूप है। जैनदर्शन वस्तु को कथचित् नित्य, अपरिणामी और कथचित् अनित्य, परिणामी मानता है। द्रव्य की अपेक्षा से स्व वस्तु नित्य है,पर्याय की अपेक्षा से वस्तु अनित्य है। अपनी अपेक्षा से स्वरूप है, भावरूप है, पर की अपेक्षा से स्ववस्तु पररूप नहीं है, अभाव स्वरूप है। यह अभाव भी किसी अपेक्षा से वस्तु का सद्भावरूप स्वभाव ही है।

प्रत्येक वस्तु में गुण,स्वभाव,शक्तियाँ और धर्म होते है जिनकी सख्या अनन्त है। भाव याने सद्भावरूप विशेषो को गुण,स्वभाव,शक्ति धर्म कहते है। अभावरूप विशेषो को भी गुण,स्वभाव,शक्ति,धर्म कहते है।

आप्तमीमासा की कारिका ९,१०,११ मे चार अभावो का वर्णन प्राप्त होता है। इनका विस्तार आचार्य अकलकदेव ने अष्टशती में, तथा आचार्य विद्यानदि ने अष्टसहस्री मे किया है।

आप्तमीमासा में आचार्य समन्तभद्र सर्वप्रथम तीन कारिकाओ मे सच्चे देव की पूज्यता की कसौटी प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि कल्याणको मे , सभाओ मे देवो की उपस्थिति, आकाश मे अधरगमन, छत्र-चमरादि से सजावट-सेवा, पुष्प वृष्टि, शरीर मे परम औदारिकपना, पसीना का अभाव, महोदयपना, तीर्थ की प्ररूपणा आदि कार्य पूज्यता के अन्यथा अनुपपत्तिरूप हेतु नहीं है, ये तो मायावियो में भी देखे जाते हैं ,अनैकान्तिक है। ये हेतु आगमाश्रित दोष युक्त होने से असिद्ध भी है।

वीतरागता, सर्वज्ञता और परमहितोपदेशकता ही आप्तपना और पूज्यता के सच्चे कारण हैं। तत्त्वार्थसूत्र महाशास्त्र के मगलाचरण से नि सृत यह आप्तमीमासा उसमे कहे आप्त के विशेषणो को ही ४ थी से७ वीं तक चार कारिकाओ मे प्रतिपादन करती हुई सर्वज्ञ की सिद्धि करती है।

सर्वथा एकान्त आग्रह से ग्रसित, आप्ताभिमानदग्ध अल्पज्ञ, अन्य साख्य,बौद्ध,चार्वाक आदि मतो को जैनमतरूप अमृत से बाहर घोषित करते हुए चार अभावों के प्रकरण से आचार्य न्यायशास्त्र का प्रारभ करते हैं।

आचार्य समन्तभद्र कहते हैं कि जो एकान्त आग्रह से ग्रस्त है वे पदार्थों को सर्वथा नित्य या सर्वथा अनित्य मानते है , वे आपस मे एक दूसरे के विरुद्ध-वैरी तो है ही, यथार्थ वस्तु स्वरूप से भी विरुद्ध मान्यतावाले हैं। उनके मत मे शुभ-अशुभ क्रिया, पुण्य-पाप का फल,स्वर्ग-नरक आदि परलोक, तथा बध और मोक्ष की व्यवस्था नहीं बन सकती है, क्योंकि सर्वथा नित्य तथा सर्वथा क्षणिक पदार्थ मे अर्थक्रिया घटित नहीं होती है। साख्यदर्शन सभी पदार्थों को एकान्त से भावरूप नित्य और कूटस्थ ही मानता है। बौद्धमत वस्तु को सर्वथा अनित्य ही मानता है।

प्रत्येक वस्तु में चार अभाव स्वभावरूप से मौजूद है। यदि पदार्थों को एकान्तरूप से नित्यरूप ही माना जावेगा तो प्रागभाव, प्रध्वसाभाव, इतरेतराभाव और अत्यन्ताभावरूप अभाव स्वभावों का नाश हो जाने से सभी वस्तुएँ (पदार्थ)अनादि, अनन्त, सर्वात्मक और अस्वरूप-स्वरूपरहित शून्य हो जावेगी। प्रागभाव और प्रध्वसाभाव का प्रयोजन अनतर पूर्वक्षणवर्ती और अनतर उत्तरक्षणवर्ती पर्यायो से वर्तमान पर्याय की भिन्नता बतलाना है। अन्योन्याभाव का प्रयोजन पूर्व परिणाम सन्तति, उत्तर परिणाम सन्तति को भिन्न बतलाना है। अत्यन्ताभाव का प्रयोजन प्रत्येक द्रव्य के चतुष्टय को भिन्न करके हर एक पदार्थ की भिन्नता दिखलाता है।

प्रागभाव

प्रश्न प्रागभाव (प्राक्+अभाव) किसे कहते है ?

समाधान यद् अभावे हि नियमत कार्यस्य उत्पत्ति स प्रागभाव । जिसका (अनतरपूर्वक्षणवर्ती पर्याय का) अभाव

होने पर नियम से कार्य की/ वर्तमान पर्याय की उत्पत्ति होती है, वह प्रागभाव है। अ सह पृ १०९। कार्यस्य आत्मलाभात् प्राक्अभवन प्रागभाव । कार्यात् प्राक्अनतरपर्यायस्तस्य प्रागभाव । अ सह पृ ९७। आशय यह है कि कार्यरूप वर्तमान पर्याय (वस्तु) का अनतर पूर्वक्षणवर्ती पर्याय (वस्तु) में अभाव स्वभाव है, और अनतरपूर्वक्षणवर्ती पर्याय (वस्तु) का वर्तमान कार्यरूप (वस्तु) पर्याय में अभाव स्वभाव है। यह इन दो पर्यायों का परस्पर में अभाव स्वभाव ही प्रागभाव है। इसे नही मानने पर कार्य अनादि का ठहरेगा और वस्तु को सर्वथा अपरिणामी-कूटस्थ मानने का प्रसग आ जावेगा।

प्रध्वसाभाव

प्रश्न प्रध्वसाभाव(प्रध्वम+अभाव)किसे कहते हैं ?

समाधान यद् भावे च कार्यस्य नियता विपत्ति स प्रध्वस । जिसके (अनतरउत्तरक्षणवर्ती पर्याय के) सद्भाव में कार्य की (वर्तमान पर्याय की) नियम से विपत्ति (नष्ट) होती है, वह प्रध्वसाभाव है । अ सह पृ १०९।

आशय यह है कि वर्तमान पर्याय का अनन्तर उत्तरक्षणवर्ती पर्याय में अभाव स्वभाव है। वर्तमान पर्यायरूप कार्य का प्रध्वस होने पर नियम से अगली पर्यायरूप कार्य का उत्पाद हो जाता है। यह प्रध्वसाभाव है । इसे नहीं मानने पर वर्तमान कार्य अनन्तकालीन (अनिधन)ठहरेगा और वस्तु को सर्वथा अपरिणामी-कूटस्थ मानने का प्रसग आ जावेगा।

अन्योन्याभाव

प्रश्न अन्योन्याभाव/इतरेतराभाव/अन्यापोह किसे कहते हैं ?

समाधान एक स्वभाव से दूसरे स्वभाव को भिन्न करना ही अन्यापोह है,अन्योन्याभाव है, इतरेतराभाव है । स्वभावान्तरात्स्वभावव्यावृत्तिरन्यापोह । -अष्टशती। सर्वात्मक तदेकस्यादन्यापोह व्यतिक्रमे । आ मी का ११। नच इतरेतराभावस्य अभावे भावे च कार्यस्य उत्पत्ति विपत्ति वा जलस्य अभावे अपि अनलस्य अनुत्पत्ते क्वचित् तद्भावे च तस्य अविपत्ते । इतरेतराभाव(इतर+इतर+अभाव याने अन्य+अन्य+अभाव) याने अन्योन्याभाव के अभाव में कार्य की उत्पत्ति या विपत्ति नहीं होती, और इतरेतराभाव(अन्योन्याभाव)के सद्भाव मे भी कार्य की उत्पत्ति या विपत्ति नहीं होती है। आ विद्यानदि - अ सह पृ १०९।

जैसे - जल का अभाव (नाश) होने पर अनल (अग्नि) की उत्पत्ति नहीं होती है, और जल के सद्भाव में अग्नि की विपत्ति (नाश) नहीं होती है, क्योंकि अग्नि के नाश होने पर भस्म/धूम होता है, जल नहीं होता। जल के पश्चात् अनेक पर्यायों के बाद पेट्रोल, पेट्रोल से गैस, अग्नि, भस्म/धूम होता है । याने पूर्वपर्यायविशिष्टद्रव्य कारण होता है और उत्तरपर्यायविशिष्टद्रव्य कार्य होता है। का अनुप्रेक्षा गाथा-२३०। याने पूर्वपर्याय का व्यय कारण और उत्तर(वर्तमान) पर्याय का उत्पाद कार्य ऐसा जानना-मानना चाहिये। घट और पट मे इतरेतराभाव है क्योंकि घट के नाश होने पर उसका पट नहीं बन जाता और पट के नाश होने पर उसका घट नही बन जाता है। घट से पट या पट से घट बनने में अनेक पर्यायें निकल जाती हैं तब कही वही पुद्गल पट या घट बनते हैं।

आशय यह है कि इस जगत में विद्यमान एक वस्तु के स्वभाव से दूसरी वस्तु के स्वभाव को भिन्न करना अन्योन्याभाव आभावरूप स्वभाव है। इसके अभाव या सद्भाव में कार्य की उत्पत्ति या विनाश का नियम नहीं है। वर्तमान पर्याय होनेरूप कार्य में अनादि पूर्वपरिणाम सन्तति तथा उत्तरपरिणाम सन्तति का परस्पर मे अभाव अन्योन्याभाव है। इसे नहीं मानने से द्रव्य की सर्व पर्यायें एक समान-अभिन्न-सर्वात्मक हो जाने का प्रसग प्राप्त होता है, पर्यायों में भिन्नता की व्यवस्था नही बन सकेगी।

अत्यन्ताभाव

प्रश्न अत्यन्ताभाव किसे कहते है ?

समाधान एक वस्तु में दूसरी वस्तु का त्रिकाल में द्रव्य,क्षेत्र,काल और भावरूप अभाव अत्यन्ताभाव कहलाता है । कालत्रयापेक्षाभावोत्यताभाव । आ विद्यानदि-अष्टसहस्री पृ १०९। इसे नहीं मानने से सभी द्रव्यो का अपना विशिष्ट स्वरूप नहीं रहेगा। अपने स्वभाव से रहित शून्य हो जावेंगें।

पदार्थों के अत्यन्ताभावरूप अभाव स्वभाव के इस अभाव में दो द्रव्यों का अपना विशिष्ट स्वरूप नहीं रहेगा। यह सभी द्रव्यो की चतुष्टयरूप त्रिकाल भिन्नता बतलाता है। इसे नहीं मानने से सभी पदार्थों के स्वभाव का अभाव अर्थात्

अस्वरूपता,स्वरूपरहितता,शून्यग्वभाव का प्रसग आ जाता है। जगत मे साख्य के माने हुए अद्वैतवाद का प्रसग प्राप्त होता है।

चार अभावों को जानने से क्या लाभ है

१ प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्षणिक-एक समयवर्ती क्रमवर्ती होती है-यह ज्ञान हो जाता है ।

२ कोई भी पर्याय अनादि से नहीं चली आ रही है। भूतकाल की पर्यायो का वर्तमान पर्याय मे असत्तारूप अभाव है । प्रगभाव यह बतलाता है कि वस्तु नित्यकूटस्थ नहीं है।

३ कोई भी पर्याय अनन्तकाल तक नहीं रहेगी । वर्तमान का भविष्य की पर्यायों मे व्ययरूप अभाव है, भविष्य की पंर्यायो का वर्तमान पर्याय मे अनुत्पत्तिरूप अभाव है। प्रध्वसाभाव यह बतलाता है कि वस्तु क्षणिक मात्र नहीं है और नित्यकूटस्थ भी नहीं है।

४ एक पर्याय कारण (व्ययरूप पर्याय)और दूसरी(उसी द्रव्य के उसी गुण की)पर्याय(उत्पादरूप पर्याय)कार्य-ऐसी स्वयसिद्ध अनादिअनत वस्तु व्यवस्था है। यहाँ ऐसा नहीं मान लेना कि अभावरूप व्यय मे से उत्पादरूप सद्भाव उत्पन्न हो जाता है। याने प्रत्येक द्रव्य या गुण की प्रत्येक पर्याय पूर्ण स्वतत्रता से ,अपनी स्वकाल की योग्यता से,अपने नियत क्रम से, नियत समय मे, नियत निमित्तो की उपस्थिति में स्वय के द्वारा ही उत्पन्न होती है। उसे उत्पन्न होने के लिए किसी पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की तो अपेक्षा-पराधीनता है ही नहीं , किन्तु अपने ध्रुव द्रव्य,उस पर्याय का निश्चित गुण या अन्य अनत गुण (उसी द्रव्य के)या ठीक पिछली पर्याय या ठीक अगली पर्याय, या पिछली अनत पर्यायों की अपेक्षा नहीं है। भविष्य मे जब भी कार्य होगा तब पिछली पर्याय का अभाव हो जाने पर ही होगा। अन्योन्याभाव यह बतलाता है कि वस्तु की पर्यायें पराधीन नही हैं।

५ परद्रव्यरूप निमित्त से इस द्रव्य का वर्तमान पर्यायरूप कार्य नहीं होता क्योकि उस द्रव्य का और इस द्रव्य का तो चतुष्टय (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) ही भिन्न-भिन्न है । अपने ही त्रिकाली द्रव्य या गुण या गुणो से भी वर्तमान पर्यायस्वरूप कार्य नहीं होता है क्योंकि वे सर्व त्रिकाली है और यह कार्य क्षणिक है। यदि उनसे कार्य होना माना जायगा तो कार्य को भी त्रिकाली होना चाहिये,किन्तु कार्य तो क्षणिक ही होता है। सभी पिछली और अगली पर्यायो से भी कार्य नहीं होता है क्योंकि वे सभी पर्यायें या तो व्ययरूप अभावरूप है या अनुत्पादरूप अभावरूप हैं , और अभाव में से सद्भाव की उत्पत्ति नहीं होती है। इसलिये हीनता की भावना दूर होकर अभी पुरुषार्थ से अपने मतिश्रुत प्रमाणात्मक प्रत्यक्षज्ञान साधन से निजध्रुव शुद्धात्मा को विषय बनाने से स्वसवेदन द्वारा ध्यानपूर्वक आत्मानुभूति करके अज्ञान का नाश करके मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। क्योंकि वास्तव मे वस्तु का स्वरूप तो भावाभावात्मक अनेकान्त स्वरूप है। अत्यन्ताभाव यह बतलाता है कि एक द्रव्य या उसके गुण-पर्याय कभी भी दूसरे द्रव्यरूप नहीं होते है।

यह ज्ञान हो जाता है कि कोई भी पर्याय कब होती है ? क्यों होती है ? आगे या पीछे,पहले या पश्चात क्यो नहीं होती ? उसे कौन कर देता है? दुसरे द्रव्य या दूसरी पर्यायों का हस्तक्षेप क्यो नहीं होता है ? सभी द्रव्यों की सभी कालों की सभी पर्यायें भिन्न क्यो रहती है ? सभी द्रव्यो भिन्न-भिन्न क्यो रहते है? विश्व की (वस्तु की) अनादि से व्यवस्थित क्रमनियमित व्यवस्था क्यो है? आत्मानुभूति करना आवश्य क्यों है ? बध -मोक्ष की व्यवस्था क्यो है? साख्य और बौद्धमतो के कथन मिथ्या कैसे है?

७ वर्तमान काल में शुद्धात्मानुभूति करने में कोई द्रव्य,क्षेत्र,काल, रागादिभाव,द्रव्यकर्म,शरीर,गुरु, पूर्व कर्म का उदय आदि बाधक नहीं है। शुद्धात्मानुभूति करना सुगम है। शुद्धोपयोग की प्राप्ति करना ही मनुष्य पर्याय की सफलता है।

दिव्यध्वनि में परोसे गये न्याय

मुक्ति के मडप में सबको आमन्त्रण है। मुक्ति मडप के हर्षभोज में सर्वज्ञ भगवान के द्वारा दिव्यध्वनि मे परोसे गये न्यायों में से उच्च प्रकार के न्याय परोसे जाते हैं, जिन्हे पचाने से आत्मा पुष्ट होता है। यदि तुझे सर्वज्ञ भगवान होना है तो तू भी इस बात को मान ।जो इस बात को स्वीकार करता है उसकी मुक्ति निश्चित है। लो यह मुक्तिमडप और इसका हर्षभोज, इसे स्वीकार करो।

-ज्ञानस्वभाव- ज्ञेयस्वभाव पृ २५९,२६०

आगम किसे कहते हैं ?

समाधान - आप्तवाक्यनिबधनमर्थज्ञानमागम । न्या दी पृ ११२

आप्तवचनादिनिबधनमर्थज्ञानमागम । प मु अ ३ सू ९५

आप्त के वचनादि जिसमें कारण हैं ऐसे पदार्थ के ज्ञान को आगम कहते हैं।

आगमाभास किसे कहते हैं ?

रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमागमाभासम्। प मु अ ६ सू ५१

राग-द्वेष-मोह से युक्त पुरुष के वचन से उत्पन्न पदार्थ के ज्ञान को आगमाभास कहते हैं।

हेतु (कारण, साधन) किसे कहते हैं ?

समाधान - साध्याविनाभावित्वेन निश्चतो हेतु । साध्य (विषय) के साथ अविनाभाव रूप से रहना जिसका निश्चित हो, उसे हेतु कहते हैं। हेतु अन्यथा अनुपत्तिरूप याने साधकतम होता है। प मु अ ३ सू ११।

हेत्वाभास किसे कहते हैं ?

हेतुलक्षणरहिता हेतुवदवभासमान हेत्वाभासा। हेतु लक्षणरहित हेतु के समान दिखनेवाले असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक और अकिचित्कर - सदोष हेतुओं को हेत्वाभास कहते हैं।

अन्यथाअनुपपत्तिरूप हेतु के भेद
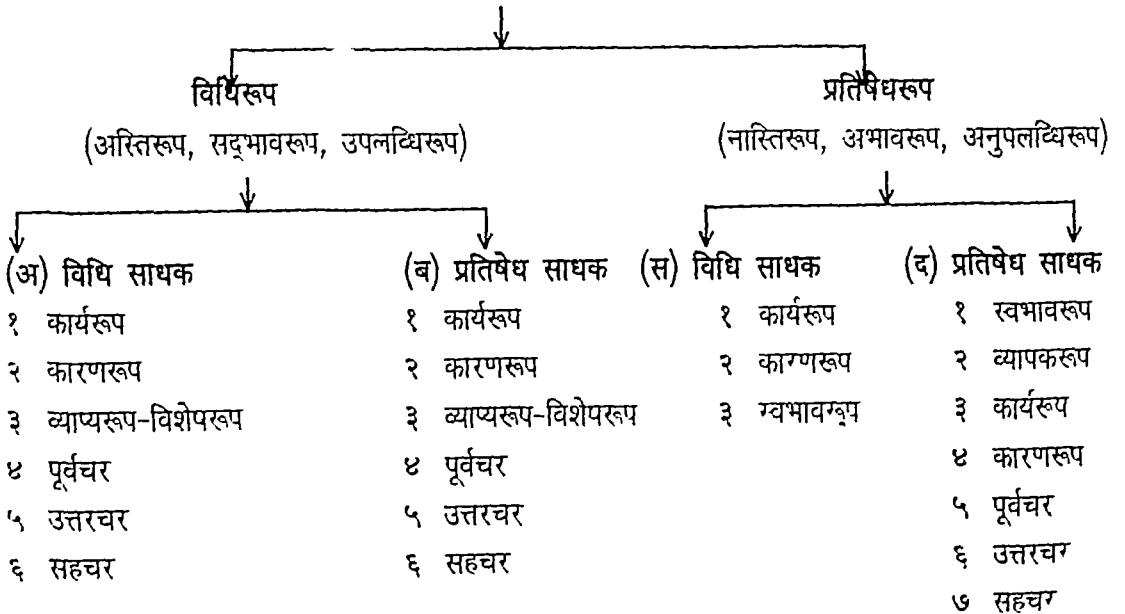
(अ) **विधिरूप-विधिसाधक हेतु -**

१ **कार्यरूप हेतु** - उदा यह पर्वत अग्निमान है, **क्योंकि** धूमवानपना का सद्भाव है।

२ कारणरूप हेतु - अभी बरसात होगी, **क्योंकि** विशिष्ट बादलों का सद्भाव है।

३ व्याप्यरूप-विशेषरूप हेतु - यह वृक्ष है, **क्योंकि** इसमें शिशपापना है।

४ पूर्वचर हेतु - कल मगलवार होगा, **क्योंकि** आज सोमवार है।

५ उत्तरचर हेतु - आज मगलवार है, **क्योंकि** तो कल सोमवार था।

६ सहचर हेतु - यह विजोरा नीवू रूपवान (पीला) है **क्योंकि** रस पाया जा रहा है।

(ब) **विधिरूप-प्रतिषेधसाधक हेतु -**

१ कार्यरूप हेतु - यहॉ ठडा स्पर्श नहीं है, **क्योंकि** धूम का सद्भाव है।

२ कारणरूप हेतु - इस जीव में सुख नहीं है, **क्योंकि** हृदय में शल्य मौजूद है।

३ व्याप्यरूप-विशेषरूप हेतु - यहॉ ठडा स्पर्श नहीं है, **क्योंकि** उष्णता मौजूद है।

४ पूर्वचर हेतु - एक दिन के बाद मगलवार नहीं होगा, **क्योंकि** आज शुक्रवार है।

५ उत्तरचर हेतु - एक दिन के पहले मंगलवार नही था, **क्योंकि** आज शुक्रवार है।

६ सहचर हेतु - यहॉ दीवाल के उस तरफ के भाग का अभाव नहीं है, **क्योंकि** इस तरफ का भाग दिखाई दे रहा है।

(स) **प्रतिषेधरूप-विधिसाधक हेतु -**

१ कार्यरूप हेतु - इस प्राणी में व्याधि विशेष है, **क्योंकि** रोग रहित चेष्टा नहीं पाई जा रही है।

२ कारणरूप हेतु - इस जीव में दुख है **क्योंकि** इष्ट सयोग का अभाव है।

३ स्वभावरूप हेतु - वस्तु अनेकातात्मक होती है, क्योंकि वस्तु का एकान्त स्वरूप नहीं पाया जाता है।

(द) **प्रतिषेधरूप-प्रतिषेधसाधक हेतु -**

१ स्वभावरूप हेतु - यहॉ भूतल पर घट नहीं है, क्योंकि घट पाया नहीं जा रहा है।

२ व्यापकरूप हेतु - यहॉ शीशम नहीं है, क्योंकि वृक्ष नही पाया जा रहा है।

३ कार्यरूप हेतु - यहॉ गीला ईंधन नहीं है, क्योंकि धूम नहीं पाया जा रहा है।

४ कारणरूप हेतु - यहॉ पर धूम नहीं है, क्योंकि अग्नि नहीं पाई जा रही है।

५ पूर्वचर हेतु - एक दिन के बाद मगलवार नहीं होगा क्योंकि आज सोमवार नहीं है।

६ उत्तरचर हेतु - एक दिन के पहले मगलवार नही था, क्योंकि आज बुधवार नहीं है।

७ सहचर हेतु - इस ठीक तराजू में एक ओर ऊचापन नहीं है, क्योंकि दूसरी ओर नीचापन नहीं है।

अनेकान्तस्वरूप वस्तु को जानने से क्या लाभ है ?

१ गृहस्थ को भी इसी पचमकाल में भरतक्षेत्र में अभी सम्यग्दर्शन हो सकता है।

२ वस्तु का वहुआयामी होना अनेकान्त नहीं, वस्तु में भाव और अभावरूप धर्मो का रहना अनेकान्त है।

३ विपश्यना ध्यान, प्रेक्षा ध्यान, समीक्षण ध्यान, टी एम ध्यान, ब्रह्मकुमारी-प्रजापति ध्यान, कन्याकुमारी ध्यान, अरविन्द ध्यान, जे कृष्णमूर्ति ध्यान, रजनीश ध्यान सही नहीं हैं क्योंकि उनमें वस्तुस्वरूप का अनेकान्तरूप निर्णय नहीं है।

४ मेरा ध्रुव अनादिअनत शुद्ध है क्योंकि उसमें पर्याय नहीं है। पर्याय ध्रुव से अतत् रूप है।

५ निजध्रुवशुद्धचिदानदात्मा को प्रामाण्य सहित प्रत्यक्ष ज्ञान से जानने से आत्मानुभूति हो जाती है। अर्थात् सम्यक्ध्यान में सम्यग्दर्शन अवश्य प्राप्त होता है।

शुद्धोपयोग की प्राप्ति (उत्पत्ति) कैसे होती है ?

समाधान यदि विषय निजात्मा शुद्ध हो ओर जानने का साधन प्रामाण्य सहित प्रत्यक्षज्ञान शुद्ध रहे तो उसका फल शुद्धोपयोग (शुद्ध ज्ञान, शुद्ध आनद, शुद्ध सम्यक्त्व, शुद्ध चारित्र आदि) होता है। कहा भी है - **शुद्धात्मावलवनत्वात् शुद्धध्येत्वात् शुद्धसाधकत्वात्, च शुद्धोपयोग परिणाम लभ्यते।** द्र स गाथा ३४ की टीका, प्रव ता वृ गा १९३ की टीका। यहॉ विधिरूप विधिसाधक-कारणरूप हेतु है।

प्रामाण्य सहित प्रत्यक्षज्ञान हेतु और अतीन्द्रिय आनद सहित शुद्धात्मानुभूति की प्राप्ति साध्यरूप कार्य है।

योग्यता ही विषय प्रतिनियमकारण है।

स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति। - परीक्षामुख अ २, सूत्र ९

अपने आवरण कर्म के क्षयोपशम (ज्ञानावरण, वीर्यान्तराय) लक्षणवाली योग्यता से प्रत्यक्ष प्रमाणज्ञान प्रतिनियत पदार्थों को जानने की व्यवस्था करता है। इस ज्ञान का यह पदार्थ ही विषय है, अन्य नहीं, ऐसी व्यवस्था को प्रतिनियत व्यवस्था कहते हैं।

इसके द्वारा प्रत्यक्ष प्रमाण की और क्रमनियमित पर्याय की सिद्धि होती है।

प्रत्यक्षता किसका धर्म है ? पदार्थों का या ज्ञान का ?

"समाधान - **तथा च न प्रत्यक्षता अर्थधर्म** । प्र क मा भाग १, पृ ३२८

अर्थ - प्रत्यक्षता पदार्थ का धर्म नहीं है। यदि वह पदार्थ का धर्म होती तो उस नील आदि धर्म के समान उसी पदार्थ के स्थान पर अन्य समय में भी वह प्रत्यक्षता प्रतीत होती। तथा वह नील पीतादि पदार्थ जैसे ज्ञानकाल से भिन्न समयों में भी प्रतीत होते है, अनेक-अनेक देवदत्तादि पुरुष उन नीलादि पदार्थो को जानते हैं, वैसे ही उस प्रत्यक्षता को भी जानने का प्रसग प्राप्त होता, किन्तु ऐसा होता नहीं है।" पृ ३२८

"प्रत्यक्षता तो ज्ञान के समय ही और आत्मा में ही प्रतीत होती है, तथा वह भी अपने को मात्र असाधारणरूप से प्रतीत होती है। अर्थात् अपने ज्ञान की प्रत्यक्षता तो अपने को ही प्रतीत होती है, अन्य किसी भी पुरुष को वह प्रतीत नहीं हो सकती है। इसलिये अनुमान सिद्ध वात है कि **प्रत्यक्षता पदार्थ का धर्म नहीं है (साध्य)**, क्योकि वह **ज्ञान के समय को छोडकर अन्य समय में प्रतीत नहीं होती, तथा पदार्थ के स्थान पर प्रतीत नहीं होती** ओर न **अन्य पुरुषों को साधारण रूप से वह ग्रहण में आती है, (हेतु)**।" पृ ३२९

"जो पदार्थ का धर्म होता है वह पदार्थ के स्थान पर ही प्रतीत होता है, ज्ञानकाल से भिन्न समय में भी प्रतीत होता है, ओर अनेक व्यक्ति भी उस धर्म को विपय कर सकते हैं। जेसे दीपक स्वय प्रकाश स्वरूप है तभी उसके द्वारा पदार्थ प्रगट किये जाते हैं, नही तो नहीं किये जाते। उसी प्रकार ज्ञान भी जब तक अपने आपको प्रत्यक्ष नहीं करेगा तव तक वह पदार्थो को प्रत्यक्ष नहीं कर सकता हे।" पृ ३२९

" जो कारणस्वरूप करण होता हे वह अज्ञात रहकर भी कार्य में व्यापार कर सकता है, किन्तु जो ज्ञापककरण होता है, वह ऐसा नहीं होता, वह तो ज्ञात होकर ही कार्य में व्यापार करता है। **नाज्ञात ज्ञापक** नाम-अज्ञात वस्तु ज्ञापक नहीं कहलती है, ऐसा सभी परीक्षक विद्वानों ने स्वीकार किया है।" पृ ३३०

" जो सर्वथा परोक्ष ही रहता है वह प्रत्यक्षतारूप धर्म का आधार नहीं हो सकता है।" पृ ३३०

"मैं जीव इस करणज्ञान का आधार हूँ, इत्यादिरूप से जव तक ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं होगा तव तक ज्ञान से जाना हुआ पदार्थ उसके कैसे प्रत्यक्ष होगा ? अर्थात् नहीं होगा।" पृ ३३२

क्रमनियमित पर्याय का स्वीकार होना कब कहा जाता है ?

१ जव सम्यग्दर्शन हो जाता हे।

२ जब दृष्टि स्वभाव पर आ जाती है, आत्मानुभूति हो जाती है।

३ जब सर्वज्ञ स्वभाव का प्रत्यक्ष प्रामाण्य पूर्वक स्वीकार हो जाता है।

४ जव अतींद्रिय आनद का स्वाद आ जाता है।

५ जब पर्याय में वीतरागता धर्म प्रगट हो जाता है।

प्रत्यक्षज्ञान किसे कहते हैं ?

१ **विशद प्रत्यक्षम्।** स्पष्ट ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं। - परीक्षामुख अ २, सूत्र ३

२ **विशद प्रतिभास प्रत्यक्षम्।** - न्यायदीपिका अ २ पृ १

३ **प्रतीत्यान्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासन वैशद्यम्।** प मु २/४ आ माणिक्यनदि।

अर्थ - दूसरे ज्ञान की सहायता के विना जो (जिसमें) विशेपाकार का प्रतिभास हो रहा है वह ज्ञान की विशदता है।

४ **प्रत्यक्ष लक्षण प्राहु स्पष्ट साकारमञ्जसा। द्रव्यपर्याय सामान्य विशेषार्थात्मवेदनम् ।।**

अर्थ - स्पष्ट, यथार्थ और सविकल्पज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। वह सभी परीक्षकों को अनुभव में आता है। - न्यायविनिश्चय का ३ आ अकलकदेव।

५ **केवलात्मप्रतिनियतत्वेन प्रवर्तमान प्रत्यक्षम्।** समयसार कलश ८, आत्मख्याति टीका आ अमृतचन्द्र।

अर्थ - केवल आत्मा से ही प्रतिनिश्चितरूप से जो ज्ञान प्रवृत्ति करे वह प्रत्यक्ष है।

६ **सर्वतो वैशद्य चात्ममात्रसापेक्षत्वात्।** न्या दी अ २ पृ ३६ - आ अभिनव धर्मभूषण यति

अर्थ - उन सभी ज्ञानों में वैशद्य है प्रत्यक्षता है जिनमें आत्ममात्र सापेक्षपना होता है।

७ **आत्मन्येवास्या ज्ञानकाले एव स्वासाधारणविषयतया च प्रसिद्धे ।**

लक्षण का लक्षण जानने से जीवन में क्या लाभ है ?

१ सच्चे और झूठे लक्षण की पहिचान होगी।

२ अपनी ज्ञानपर्याय की पहचान कर सकेंगे कि वह सम्यक् है या मिथ्या है।

३ अपनी ज्ञानपर्याय की पहिचान कर सकेंगे कि वह प्रत्यक्ष है या परोक्ष है।

४ यह ज्ञात कर सकेंगे कि मुझे (स्वय को) प्रत्यक्ष स्वसवेदन हुआ या है आभास मात्र है।

५ अपने सम्यग्दर्शन की पहिचान कर सकेंगे।

६ अपने अतींद्रिय आनद ओर आनदाभास का भेदज्ञान कर सकेंगे।

७ छह द्रव्यों में से जीवद्रव्य की पहिचान कर सकेंगे।

८ अनत जीव द्रव्यों में से निज जीवद्रव्य की पहिचान-भेदज्ञान कर सकेंगे।

९ निज जीवतत्व को पर्यायों से भिन्न कर सकेंगे।

१० अर्थात् शुद्धात्मानुभूति लेना विलकुल सरल और सुलभ हो जायगा। अध्यात्म न्यायदीपिका पृ २७

प्रमाणज्ञान (सम्यग्ज्ञान) और उसका स्वरूप क्या है ?

१ सम्यग्ज्ञान प्रमाणम्। - न्याय दी अ १, पृ ९

२ स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाणम्। - परीक्षामुख अ १, सू १

३ सकलवस्तुग्राहक प्रमाणम्। - आलाप पद्धति

४ तत्वज्ञान प्रमाणम्। - आप्तमीमासा का १०१

५ प्रमाण सकलादेशि। - श्लोकवार्तिक अ २ पृ ३२०

६ सम्यगर्थनिर्णय प्रमाणम्। - प्रमाण मीमासा १-१-१

७ पदार्थयाथात्म्यनिश्चय प्रमाणम्। - प्रमा प्रमेय पृ २

८ सम्यग्ज्ञान प्रमाण प्रमाणत्वान्यथानुपपते । - प्रमाण परीक्षा

९ प्रमितिक्रियाप्रतियत्करण साधकतमत्वेन तत्प्रमाणम्। - न्याय दी अ १ पृ ११

यहाँ 'प्रमाण' लक्ष्य हे ओर 'सम्यग्ज्ञानत्व' उसका लक्षण है। लक्ष्यवचन और लक्षणवचन में शाव्द-समानाधिकरण्य होता है, यह नियम हे। सच्चा लक्षण निर्दोष होता है।

शका - प्रमाणज्ञान का विषय क्या होता है ?

समाधान - सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषय । परीक्षामुख अ ४ सू १

सामान्य-विशेप स्वरूप आत्मा उस प्रमाणज्ञान का विषय है।

शका - प्रमाणज्ञान का फल (लाभ) क्या है ?

समाधान - अज्ञाननिवृत्ति हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्। प मु अ ५ सू १

अज्ञान का नाश, हेय का त्याग, उपादेय का ग्रहण और वीतरागता की उत्पत्ति ये प्रमाणज्ञान का फल है।

लक्षण किसे कहते हैं ?

परस्परव्यतिकरेसति येनाऽन्यत्व लक्ष्यते तल्लक्षणम्। राजवार्तिक अ २ सू ८

व्यतिकीर्णवस्तुव्यावृत्तिहेतुर्लक्षणम्। परस्पर में मिली हुई अनेक वस्तुओं में से किसी एक वस्तु को अलग करने वाने हेतु (साधन) को लक्षण कहते हैं। न्यायदीपिका अ १, पृ ५

श्री जयसेनाचार्य समयसार - स्याद्वादाधिकार में कहते हैं -

इद प्राभृतशाग्त्र ज्ञात्वा कि कर्तव्य ? सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभावोऽह, निर्विकल्पोऽह, उदासीनोऽह । इति निरन्तर भावना कर्तव्या। ता वृ पृ ३८२

अर्थ - शका यह प्राभृतशास्त्र जानकर क्या करना चाहिए ?

समाधान मे सहजशुद्धज्ञानानद एक स्वभावी हूँ, में निर्विकल्प हूँ, मैं उदासीन हूँ । इत्यादि भावना निरतर करनी चाहिए।

परीक्षा किसे कहते हैं ?

विरुद्धनानायुक्तिप्राबल्यदौर्बल्यावधारणाय प्रवर्तमानो विचार परीक्षा। विरोधी नाना युक्तियों की प्रवलता और दुर्वलता का निर्णय करने के लिए प्रवृत्त हुए विचार को परीक्षा कहते हैं। न्यायदीपिका अ १ पृ ८

परीक्षा करना सीखने से क्या लाभ है ?

१ परीक्षा करना सीखने से कहीं पर भी ठगाये नहीं जावेंगे।

२ अपना अनुभव करने की सच्ची विधि में भूल नहीं रहेगी।

३ देव-गुरु-धर्म का, आप्त-आगम-पदार्थो का, द्रव्य-गुण-पर्याय का निर्णय सच्चा होगा।

४ अपने सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र और सम्यक्आनद में भूल नही होगी।

५ भेदविज्ञान करने में भूल नही होगी। प्रामाण्यसहित प्रत्यक्षज्ञान का निर्णय हो जायगा।

६ समस्त पराधीनता छूट जावेगी। राग को धर्म मानना छूट जायेगा।

६ सुख और ज्ञान प्राप्त करने के लिए पर पदार्थो की ओर देखना मिट जावेगा। अन्यथाअनुपपत्तिरूप -सच्चे कारण की पहिचान कर सकेंगे। निमित्त की व पर्याय की दृष्टि छूटकर उपादान दृष्टि हो जायगी।

८ दृष्टि निजात्मा पर अवश्य आ जावेगी। ध्यान की महिमा ज्ञात हो जायेगी।

९ मिथ्या मान्यतायें छूट जावेंगी। विपय, साधन, फल का सम्यक् निर्णय हो जायगा।

१० अपने शुद्धात्मानुभव की पहिचान स्वय कर लेंगे, किसी अन्य से पूछने की या प्रमाणित कराने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

मतिकृतबाल (अज्ञानी) का क्या लक्षण है ?

१ जो कालकृतवाल या शरीरकृतवाल नहीं, किन्तु जो अव्युत्पन्न, सदिग्ध, विपर्यस्त, तत्वज्ञान रहित हैं उन्हें मतिकृत वाल (अज्ञानी) कहते हैं।

२ जो जहॉ जिस विपय में अनिभिज्ञ हैं वे उस विषय में वाल हैं।

३ जो व्याकरण, काव्य आदि में जानकार हैं किन्तु न्यायशास्त्र में अनभिज्ञ हैं इसलिए वे न्यायविषय में वाल हैं।

४ जो ग्रहण-धारण-पटु होकर न्यायशास्त्र को शब्दरूप ग्रहण करके स्मरण रखते हैं, वे तोतारटन्त वाल होते हैं।

५ कुछ लोग ग्रहण-धारण करते हें, उसमें आगम न्याय समझते हैं, किन्तु निजध्रुवचिदानन्द का प्रामाण्यसहित प्रत्यक्षज्ञान करने में असफल रहते हें, वे वाल हैं।

६ कुछ लोग एकत्व-विभक्त निजात्मा के **विषय**-ज्ञेय-प्रमेय-ध्येय-अनुभाव्य-भोग्य को वरावर समझते नहीं हैं, वे वाल हें। अथवा -

७ कुछ लोग विपयी-ज्ञान-प्रमाण-ध्यान-अनुभवरूप **साधन** को अर्थात् शुद्धात्मानुभव याने प्रामाण्यसहित प्रत्यक्षज्ञान को समझते नहीं हें, वे वाल हैं।

८ कुछ लोग जानने के फल/ध्यान के फल/ प्रमाण के फल को समझते नहीं हैं, अर्थात् इनको वरावर समझते नही हैं। इसलिये वे ग्रहण-धारण-पटु होकर भी वाल हैं। अध्यात्मन्यायदीपिका पृ १३४, १३५

ध्यान सूत्र

झाणणिलीणो साहू परिचाग कुणइ सव्वदोसाण।

तम्हा दु झाणमेव हि सव्वदिचारस्स पडिकमण।।नियमसार, गाथा ९३

अर्थ - ध्यान में लीन साधु सर्व दोषों का परित्याग करते हैं। इसलिये ध्यान ही वास्तव में सर्व अतिचार का प्रतिक्रमण है।

आत्मध्यानादपरमखिल घोरससारमूल, ध्यानध्येयप्रमुखसुतप कल्पनामात्ररम्यम्।

बुद्ध्वा धीमान् सहज परमानन्दपीयूषपूरे, निर्मज्जन्त सहजपरमात्मानमेक प्रपेदे।। नि क १२३

अर्थ - आत्मध्यान के अतिरिक्त अन्य सव घोर ससार का मूल है, ध्यान-ध्येयादि के विकल्पवाला सुतप भी कल्पनामात्र रम्य है - ऐसा जानकर वुद्धिमान पुरुष सहज परमानन्दरूपी पीयूष के पूर में डूबते हुए एक सहज परमात्मा का आश्रय करते हैं।

अपना-अपना आसन लगाकर, हाथ पर हाथ रखकर, ऑखे वन्दकर, मौन हो जाओ। ओ म्

विचार करो - सामने असाम समुद्र फैला हे, चारों ओर निर्मल-स्वच्छ-गभीर-शान्त-सिन्धु भग है, पानी-पानी-पानी ही दिखाई दे रहा है। ऊपर निर्मल अनन्त आकाश फैला है। आकाश स्वच्छ-निर्धूल-निर्धूम-निर्गन्ध-नीरव-शान्त है।

समुद्र के वीच मे एक हजार पॉखुडियों का लाल कमल हे। कमल की पीली कर्णिका पर चन्द्रमा की कान्ति के समान उज्जवल स्फटिक मणि का सिहासन है। सिहासन पर चार अगुल अधर निजध्रुव शुद्र चेतन्य आनन्दमय आत्मा विराजमान है। यह मैं जीव हूँ। मैं चेतन हूॅ। मैं ज्ञान हूॅ। मैं आत्मा हूॅ। मैं एक हूॅ। मैं शुद्र हूॅ। मैं पूर्ण हूॅ। मैं ध्रुव हूॅ।

यह मैं अविनाशी हूॅ। मैं अनादिअनन्त हूॅ। मैं अखण्ड हूॅ। में अक्षयस्वरूप हूॅ। मै अरूपी हूॅ। मैं अतीन्द्रिय हूँ। में अमर हूॅ। में अनुपम हूॅ। में आनन्दरसमय हूॅ। मैं आनन्दसागर हूॅ। मैं आनन्दधाम हूॅ। में आनन्दचन्द्र हूॅ।

यह मैं निर्मल हूॅ। में निष्काय हूॅ। मैं निष्कर्म हूॅ। मैं निर्विकार हूॅ। में निर्दोप हूँ। मैं निर्विकल्प हूॅ। मैं नीराग हूॅ। में निष्कषाय हूॅ। मैं निर्मोह हूॅ। में निर्मम हूॅ। मैं निश्शक हूॅ। मैं निष्कलक हूॅ। मैं निर्लेप हूॅ। मैं निष्पाप हूॅ। मैं नित्य हूॅ। में निरजन हूॅ। मैं निष्क्रिय हूॅ। मैं नि स्पृह हूॅ। में निराकुल हूॅ। मैं निर्भय हूँ। मैं साम्यसोख्यनिकेतन हूॅ।

यह में परममगलस्वरूप हूॅ। में परमआनन्दस्वरूप हूॅ। मैं परमशान्त हूॅ। में परिपूर्ण हूॅ। में पचपरावर्तनरहित हूॅ। में परमपारिणामिकभाव हूॅ। मैं परमात्मास्वरूप हूॅ। मैं परमपवित्र हूॅ। में परद्रव्य-परभाव से शून्य हूॅ। मैं परमचैतन्यदेव हूॅ। मैं परमसुख हूॅ। मैं परमज्ञान हूॅ। मैं परमपदार्थ हूॅ। मैं परमवीतगग हूॅ। मैं परमस्वास्थस्वरूप हूॅ।

यह मैं चेतन्यज्योति हूॅ। मैं चैतन्यअमृत हूॅ। मैं चित्कलाग्वरूप हूॅ। में चैतन्यपुञ्ज हूॅ। मैं चैतन्यचमत्कार हूॅ। में चैतन्यचिन्तामणि हूॅ। में चिद्ब्रम्ह हूॅ। मैं चैतन्य रसरसायनस्वरूप हूॅ। मैं चैतन्यामृताहारस्वरूप हूॅ। मैं चैतन्यरत्नाकर हूॅ। मैं चैतन्यसागर हूॅ। मैं चैतन्यनिधि हूॅ। मैं चैतन्यसुखसोधस्वरूप हूॅ। मैं चैतन्यमहल हूँ। में चैतन्यशरीर हूॅ। में चारित्रपुञ्जस्वरूप हूॅ। मैं चारित्रशिखामणिस्वरूप हूॅ। में चेतन्यलोक हूॅ। मैं चैतन्यसुधाशु हूॅ। मैं चेतन्यसम्राटस्वरूप हूॅ। में चेतन्यस्वयभू हूॅ। में चेतन्यमूर्ति हूॅ। मैं चिद्रूप हूॅ। में त्यागोपादानशून्य हूॅ। मैं कारणसमयसार हूॅ। में चिन्मय हूॅ।

यह मैं सहजज्ञान हूॅ। में विज्ञानघनस्वरूप हूॅ। मैं सहजभरितावस्थ हूॅ। मैं सहजविमलवोधस्वरूप हूॅ। मैं सनातन हूॅ। मैं समतामन्दिरस्वरूप हूॅ। मैं सच्चिदानन्दमय हूॅ। मैं सहजज्ञान सुधारसमय हूँ। मैं स्वाधीन वैभव स्वरूप हूॅ। मैं स्वतन्त्र शिवस्वरूप हूॅ। मैं शाश्वत हूॅ। मैं शुद्धचेतन्य हूॅ। मैं शुद्धश्रद्धानीरस्वरूप हूॅ। मैं श्रद्धागुणरत्नस्वरूप हूॅ। मैं शुद्धब्रम्हस्वरूप हूॅ। मैं क्षमागुणस्वरूप हूॅ। में क्षमासागर हूॅ। मैं स्वसवेदनगम्य हूॅ। मैं स्वाभावसिद्ध हूॅ। मैं कृतकृत्य हूॅ।

यह मैं ज्ञायक हूॅ। मैं ज्ञानघनपिण्ड हूॅ। मैं ज्ञानामृत हूॅ। मैं ज्ञानसागर हूॅ। मैं ज्ञानरत्न हूॅ। मैं ज्ञानशरीर हूॅ। मैं ज्ञानपुञ्ज हूॅ। में ज्ञानानन्द स्वरूप हूॅ। मैं ज्ञानकला हूॅ। मैं ज्ञानसमुद्र हूॅ। मैं ज्ञाननिधि हूॅ। मैं ज्ञाननिलय हूॅ। मैं ज्ञानतेज हूॅ। मैं ज्ञानसूर्य हूॅ। में ज्ञाननेत्र हूॅ। मैं ज्ञानगगा हूॅ। मैं ज्ञानरत्नाकर हूॅ। मैं ज्ञानभास्कर हूॅ। मैं ज्ञानलावण्यस्वरूप हूॅ। मैं ज्ञानामृतनिर्झर हूॅ। में ज्ञानकोप हूॅ। मैं ज्ञाननीर हूॅ। में ज्ञानमगलस्वरूप हूॅ। मैं ज्ञानमदिरस्वरूप हूॅ। मैं ज्ञानभूषण हूॅ।

मुझमें समस्त अन्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्य नहीं हैं। मुझमें परद्रव्य नहीं हैं, परगुण नहीं है, परपर्यायें नहीं हैं। मुझमें कषाय नहीं हे, विकार नहीं है, मिथ्यात्व नहीं है, राग नहीं है, पर्याय नहीं है, विभाव नहीं हैं, विकल्प नहीं हैं, भेद नहीं, द्रव्यकर्म नहीं, नोकर्म नहीं, भावकर्म नहीं, गुणस्थान नहीं, मार्गणास्थान नहीं, जीवसमास नहीं हैं।

यह मैं जीवत्वमय हूँ। मैं श्रद्धागुण, दर्शनगुण, ज्ञानगुण, चारित्रगुण, सुखगुण, वीर्यगुण, प्रभुत्वगुण, स्वच्छत्वगुण, प्रकाशत्वगुण, सर्वज्ञत्वगुण, अकर्तृत्वगुण, अभोक्तृत्वगुण, एकत्वगुण, अस्तित्वगुण, वस्तुत्वगुण, अगुरुलघुत्वगुण, प्रमेयत्वगुण, द्रव्यत्वगुण, प्रदेशवत्वगुण, आनंदगुण, चैतन्यगुण आदि अनन्तानन्तगुणमय हूँ। मैं असंख्यात प्रदेशमय हूँ। मैं चिदानन्द अरूपी हूँ।

ॐ ॐ ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

सर्वस्य ध्यानस्य ज्ञानात्मकत्वप्रसिद्धेः

अर्थ - सर्व ध्यान ज्ञानात्मक हे, ऐसा प्रसिद्ध है। - तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक।

श्री जिनसेनाचार्यजी महापुराण - पर्व २१, श्लोक ११ में लिखते हैं -

धीबलायत्तवृत्तित्वाद् ध्यानं तज्ज्ञैर्निरुच्यते।
यथार्थमभिसन्धानादपध्यानमतोऽन्यथा।।११।।

अर्थ - बुद्धिपूर्वक (बुद्धि के आश्रय से) यथार्थ के साथ वस्तुस्वरूप का ज्ञान करके निजस्वभाव शुद्धपरमात्मा (पारिणामिकभाव-कारणपरमात्मा) के साथ अभिसंधान करने पर ध्यान अथवा सत्ध्यान अथवा शुद्धात्मानुभूति होती है, और बुद्धिपूर्वक (बुद्धि के आश्रय से) अन्यथा याने अयथार्थ के साथ (वस्तुस्वरूप का ज्ञान करके या वस्तुस्वरूप का ज्ञान न करके स्वद्रव्य-गुण-पर्याय के साथ) अभिसंधान करने पर जो ध्यान होता है वह अपध्यान (असत् ध्यान अथवा अशुद्धानुभूति) है। इस प्रकार से ज्ञानियों ने कहा है। याने आत्मा का बुद्धिपूर्वक **जो विचार किया वह ध्यान है।**

चार अनुयोगों का और अध्यात्म-न्याय का सूक्ष्मता से अध्ययन, मनन, चिंतन करने से अज्ञानजनित जो निम्न कल्पनायें हैं उन मिथ्या मान्यताओं का सहज ही खंडन हो जाता है -

(१) पंचमकाल में गृहस्थों को ध्यान होता ही नहीं है,
(२) पंचमकाल में मुनि या श्रावक को ध्यान की पात्रता ही नहीं है,
(३) अध्यात्मक्षेत्र में ध्यान की जो हँसी उडाते हैं कि ध्यान सहज, सुलभ नहीं है,
(४) गृहस्थ आत्मानुभूति/ध्यान बार-बार नहीं कर सकता है,
(५) ध्यान की कला कठिन है,

आज तक हमने अणुबॉबस्फोट, गैसस्फोट सुना है लेकिन तत्त्वस्फोट न सुना है न परिचय किया है, न अनुभव किया है। अध्यात्मक्षेत्र में ज्ञान की महिमारूप ध्रुवस्वभाव की लोरियाँ विद्वद्जन गाते तो हैं, किन्तु **आत्मध्यान** के बारे में मिथ्या कल्पनाएँ विकसित हो रही हैं। **भगवान की हरेक प्रतिमा पद्मासन या खड्गासन में ध्यानस्थ ही है।** वह हमें संदेश दे रही है - **स्वभाव को जानना ही ध्यान** है। चारों अनुयोगों का अध्ययन सूक्ष्मता से करने पर **'ध्यान = ज्ञान'** इस समीकरण में संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय रहता ही नहीं है। **प्रायोगिक पद्धति न हो तो ज्ञान की सिर्फ चर्चा करना व्यर्थ है।**

भव्यामृत शतक से[1]

- ब्र. स्व श्री चन्द्रसागर जी वर्णी (कन्नड)

१ हे भव्य जीव ! मै तुझे एक वात समझाता हूँ, उसे तू अत्यत प्यार से सुन और समझ - "यह आत्मा स्वय नित्य-सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है, उसे **तू जान** ले, और फिर कभी मत भूल"। ९

२ इस नित्यरूप परमात्मा को जो जीव मात्र-शास्त्र के द्वारा देख लेने का दावा करता है वह जीव **मूर्ख** है। क्या हाथ में दीपक रख लेने मात्र से अन्धा जम्बूद्वीप को देख सकता है ? नहीं। शास्त्ररूपी दीपक के रहते हुए भी, ज्ञानी गुरु की देशना द्वारा अतर के ज्ञानचक्षु खोले विना, प्रामाण्य सहित-प्रत्यक्ष स्वसवेदन किये विना आत्मा दिखाई नहीं देता। १०

३ प्रतिदिन अपने अतर में जागृत, अत्यत निर्मल, विशुद्ध, सद्भाव परिणामरूप **आत्म वस्तु को पहिचानो**, देखो, अनुभव करो। इसी में सम्पूर्ण आगम के उपदेश का सार समाया हुआ है। ११

४ अरे, देखो तो इस ससार का तमाशा ! यहाँ गिड-गिडाकर मॉगने पर भी एक पैसा तक नहीं मिलता हे ओर अज्ञानी वडे कष्ट से अपना पेट भरता है। वहॉ यदि वह अज्ञान छोडकर ससार से विमुख होकर **आत्मोन्मुख** हो जाये तो विना मागे ही अनत सदगुणो की वृद्धि हो जाती है, सर्व दुखों का सदाकाल के लिए अभाव हो जाता हे। १९

५ ज्ञानीजनों की चित्तवृत्ति में उल्लसित आत्मानद की लहरें सदेव **अनुभव** में आती हें। यही मनुष्य अवतार की सार्थकता हे। इसके समान दूसरा कुछ नहीं है। २०

६ हे भव्य ! लोक मे स्थित विविध पदार्थो की तृष्णा को छोड दो। अपने ही अतर में स्थित आत्मा का **साक्षात्कार** करके आनद से रहो। २४

७ हे भव्य ! यह वात तुम मान लो कि - मात्र युक्तिपूर्वक शास्त्र के चितन मनन से ही जीव को रत्नत्रयरूप सद्गुणो की प्राप्ति होना असभव हे, किन्तु **आत्मभावना** की परिणति याने प्रामाण्य सहित प्रत्यक्षज्ञान द्वारा उसकी प्राप्ति सुगम हे। २७

८ हे भव्य ! अपने अन्तर मे ध्यान में जव तुम स्फटिकमणि की जिनमूर्ति के समान अपने **शुद्धात्मा की भावना** करोगे तव कर्मजाल अपने आप क्षण भर में कट जावेगा और तुम आत्मभावों से परिशुद्ध हो जाओगे। ३८

९ जैसे घास के तिनके की वाड मदमाते हाथी को रोक नहीं सकती, वैसे ही जिसने अकिञ्चन **आत्मा का स्वाद** चख लिया हे उस मुमुक्षु को वाह्य परिग्रहों की वाड आत्म साधना में विघ्न नहीं कर सकती। ४१

१० अधिक क्या कहें ! दर्शनविशुद्धि आदि १६ भावनाये, १२ प्रकार की अध्रुव आदि वैराग्य अनुप्रेक्षायें एव अनेक प्रकार के परीषहों का विजय-ये सभी तभी सभव हें जव निजात्म **तत्व का साक्षात्कार** हुआ हो, इसके विना ये सव असभव जानो। ४३

---

[1] यहाँ प्रत्येक वाक्य के अन्त में दिये गये क्रमाक **"भव्यामृत शतक"** पुस्तक के श्लोक क्रमाक हैं।

११ जो जीव, तत्व की पढी-सुनी वातें करके अपने को तत्वज्ञ मान लेता है वह तो वालक है, और जो ज्यादा वातें करना छोडकर अतर में सदैव **आत्मानुभूति** के आनद का स्वाद लेते हैं वे मुनिनायक हैं। ४७

१२ निज **आत्मतत्व का स्वाद** (अनुभव) सो सम्यग्दर्शन है, निज आत्म स्वरूप का स्वसवेदन ज्ञान सो सम्यग्ज्ञान है, और निज आत्मस्वरूप में दृढ स्थिति सो सम्यक्चरित्र है। ऐसे रत्नत्रयवत जीव तीनलोक में सदा पूज्य हैं। ४८

१३ चाहे कोई ११ अग तक के शास्त्र प्रतिदिन पढ लिया करे, किन्तु यदि आत्मतत्व का वोध नहीं करता तथा जिनदेव के समान निजस्वरूप (निजाकार) को अपने प्रामाण्यसहित प्रत्यक्ष स्वसवेदन ज्ञान में नहीं देखता तो वह जीव कल्याण प्राप्ति के लिये **योग्य** नहीं है। ५२

१४ सन्देहरहित **तत्वज्ञाता** के अतर में जिस सुख की अनुभूति होती है वही सच्चा सुख है। अन्य जो कुछ सुख के नाम का हे वह तो स्वप्न ग इन्द्रजाल जैसा है। ६२

१५ खडे-खडे या वेठे-वैठे प्रतिदिन एक क्षण भर के लिए भी जो **आत्मतत्व का ध्यान** करता है, वह जीव कदाचित् मदवुद्धि हो तो भी अक्षय सुख को पा लेता है। ६९

१६ जैसे मदमत्त हाथी के आक्रमण को देखकर सभी लोग दूर हट जाते हैं, उसी प्रकार धर्मी के द्वारा अतर में **निर्मल आत्मा** को देख लेने से सभी पाप दूर हो जाते हैं। ८१

१७ एकाशन, उपवास, व्रत, शील, तप आदि से जिस फल की प्राप्ति होती है वह फल मुक्त स्वरूप आनदकारी भगवान **आत्मा के ध्यान** से-प्रामाण्यसहित प्रत्यक्षज्ञान से क्षण मात्र में प्राप्त हो जाता है।८२

१८ जिस **आत्मज्ञानी** जीव के अतर में समतारस-शमरस भरा है तथा निर्मल आत्मानुभूति एव सुन्दर सुखद सम्यग्ज्ञान है उसका नाम सुनते ही दुष्ट **मोहराज**, क्रूर **यमराज** वा कुसुमायुधवाले **कामराज** भी दूर भाग जाते हैं। ८५

१९ मोक्षार्थी सज्जन के लिए **'आत्मा'** ये दो अक्षर ही वस-काफी हैं, उसमें तन्मय होने वाले को मोक्ष सुख हाथ में ही है। ८७

२० जीव जव **निज स्वरूप** को निरख लेता हे तव वहुत कष्ट से उपार्जित रत्नादि के वैभवों को भी इस प्रकार छोड देता है जैसे कुत्ती का दूध। ९४

२१ चिकने और ढालू काच पर उडद के दाने जितनी देर ठहरते हैं उतनी देर तक भी जो जीव धर्म-ध्रुव स्वभाव शाश्वत निज ज्ञानदर्शनानद को जानकर आत्मा में निश्चल स्थिति प्रत्यक्ष प्रामाण्यसहित **स्वसंवेदन** रूप ज्ञान-अनुभव करे, उसे नागेन्द्र भी वन्दते हैं और वह सदैव के लिये सुखी हो जाता है। १००

सम्पूर्ण जिनवाणी में न्याय ही न्याय भरा है

१ प्रथमानुयोग न्याय के अनुमानज्ञान प्रमाण के **'दृष्टात'** अश से भरा है।

२ करणानुयोग न्याय के **तर्क** प्रमाण अश से भरा है।

३ द्रव्यानुयोग न्याय के **प्रत्यक्ष** प्रमाण अश से भरा है।

४ चरणानुयोग न्याय के हेतु के **पूर्वचर, सहचर, उत्तरचर** आदि अशों से भरा हे।

विस्तृत विषय सूची

अजीव अधिकार - २ (३० गाथाये, ३ स्थल)

आस्रव अधिकार - ५ (१७ गाथायें, ५ स्थल)

❖

❖

* * * * *

जो जानकर शुद्ध आत्म को, ध्यावे परम निज आत्मा।
सागर या अनगार हो, क्षय करे वह मिथ्यात्व का।।

प्रवचनसार गाथा १९४

रे त्याग वचनोच्चार किरिया, वीतरागी भाव से।
ध्यावे निजात्मा जो परम, होती समाधि है उसे।।

नियमसार गाथा १२२

इंद्रिय सुखाकुल जीव जो, नहिं छेदते भववृक्ष को।
भावलिंगी छेदते भववृक्ष, ध्यान कुठार से।।

भावपाहुड गाथा १२२

श्रुतपचमी पर्व पर करो तत्व का ज्ञान।
आत्मतत्व का ध्यान कर पाओ पद निर्वाण।

आत्मानुभव की विधि

कृपया इसे धैर्यपूर्वक पढ़ें। अब हम आपको छ द्रव्यो के ज्ञान के माध्यम से अतींद्रिय आनन्द प्रगट करने की कला सीखने की ओर से चलते है

१ प्रथम तो ६ द्रव्य,७ तत्व,९ पदार्थ, निश्चय-व्यवहारनय का ज्ञान, स्याद्वाद-अनेकान्त, उपादान-निमित्त का ज्ञान आदि प्राथमिक जिनागाम का ज्ञान 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' के माध्यम से करना आवश्यक है। जिनागम का वस्तुनिष्ठ विज्ञानरूप अध्ययनपद्धति से अध्ययन होना चाहिए।

२ ६ कारक और ४ अभाव के लक्षण-जानना चाहिये।

३ ६ द्रव्यो के सामान्य और विशेप गुण तथा उनकी अर्थपर्याय, व्यजनपर्याय, विकारी पर्याय, निर्मल पर्याय, आशिक निर्मल पर्याय,समानजातीय पर्याय, असमानजातीय पर्याय आदि का ज्ञान कीजिए।

४ १४ गुणस्थान,१४ मार्गणास्थान और १४ जीवसमास का भी ज्ञान होना चाहिये।

५ छह द्रव्यों में से जीवद्रव्य मात्र को अलग करके उसका विचार कीजिए।

६ उन सभी जीवो-अनत जीवों में से अपने निज असख्यातप्रदेशी अस्तित्वगुण आदि सामान्यगुणवाले तथा ज्ञानादि विशेष गुणवाले एक जीवद्रव्य को विचार मे-ज्ञान मे लीजिए।

७ अब उस अपने जीव द्रव्य मे से अपना एक अनतगुणो का अभेद अखण्ड पिण्ड ज्ञान मे लीजिए। यहाँ पर निजद्रव्य और अपनी पर्यायें गौण हो गई है।

८ यहाँ अपने निजध्रुव चिदानन्द आत्मा के बारे मे होने वाले सशय, विपर्यय,अनध्यवसाय और अज्ञान दूर कीजिए।

९ यदि आपने अपने निजध्रुव के सबध मे अपने सशय, विपर्यय,अनध्यवसाय और अज्ञान दूर कर लिये हैं तो अब आपको विषय के बारे मे भूल नहीं है, आपका विषय का निर्णय सत्य है।

१० क्या आपको परोक्षज्ञान साधन (स्मृति, प्रत्यभिज्ञान,तर्क, अनुमान, आगम, नय-जल्प आदि) तथा प्रत्यक्षज्ञान साधन(मति,श्रुत,अवधि, मन पर्यय,केवलज्ञान)के लक्षण मालूम है ? यदि नहीं मालूम है, तो उन्हे तथा उनके भेद - प्रकार आदि जान लीजिए।

११ यदि आपको परोक्षज्ञान साधन और प्रत्यक्षज्ञान साधन के लक्षण मालूम हैं तो आपका साधन का निर्णय सत्य है। अब आप प्रत्यक्षज्ञान साधन से विषय को जानिये। प्रयोग कीजिए। अनुभव कीजिए।

१२ आपको कुछ उलझन सी हो रही है, क्योकि आपने प्रत्यक्षज्ञान साधन का प्रयोग ही नहीं किया है, या परोक्षज्ञान साधनो का क्रम-क्रम से शीघ्रता से ही प्रयोग करते जा रहे हैं या किसी अन्य विचार मे उलझ गये हैं।

१३ अब केवल श्रुतज्ञान प्रमाणसाधन या मतिज्ञान प्रमाणसाधन से जो दोनो ही प्रत्यक्षज्ञान साधन है, उससे अभी ही निजध्रुव चिदानन्द शुद्धज्ञायक को जानो। यहाँ पर आपको आसन लगाकर, ऑखे वद करके,पच-परमेष्टी(णमोकार) मत्र पढते हुए ध्रुवतत्त्व के कुछ गुणो के आधार पर अखण्ड आत्मा जानने के लिये प्रत्यक्षज्ञान साधन का प्रयोग करना है।

१४ पुन आप पूर्व (१३) मे कथित अवस्था मे आवें, प्रत्यक्षज्ञान साधन का निजध्रुव विषय पर प्रयोग करे- अनुभव करे। देख लो,अब आपको अनुभव हो गया है। अब आप यथोचित व्रत धारण कर सकते हैं।

इद्रियो मे ज्ञान क्यो नही होता है ?

१) इद्रियो में ज्ञानत्व नहीं है। वे अज्ञान विरोधी नहीं है।

२) उनमे चेतनपना नहीं है। वे अचेतनरूप है।

३) वे स्वसंवेदी नहीं है। वे स्वय को नहीं जानती है।

४) उनमे करणपना नहीं है। वे सहकारी अन्य करण (साधन) की अपेक्षा रखती है।

५) उनमे साधकतमपना नहीं है। उनके बिना भी जानना हो जाता है।

६) उनसे प्रमिति नहीं होती है। उनसे अज्ञान नहीं मिटता है।

७) उनमे अतिशय नही है। उनसे प्रतिसमय नया-नया कार्य नहीं होता है।

आत्मानुभव की परीक्षा

अब हम अपनी पाँचों बातों सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र,अतींद्रिय आनद और वीतरागता-की परीक्षा करते है। यहाँ यह ख्याल रखें कि अभी आप अपनी ही परीक्षा कर रहे है, वक्ता या लेखक या उपदेशक की नहीं। आपको अत्यधिक ईमानदारी से निष्पक्षता पूर्वक परीक्षक एव परीक्ष्य स्वय ही बनना है। यह समझ लेना कि यह न्याय-विज्ञान-विद्यापीठ-परीक्षाबोर्ड का आत्मानुभूति-विषय का प्रश्नपत्र है। आप स्वय ही विद्यार्थी हैं,स्वय ही निरीक्षक है,स्वय ही परीक्षक है,स्वय ही प्रमाणपत्र देनेवाले हैं, स्वय ही प्रमाणपत्र लेनेवाले है, स्वय ही उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होनेवाले हैं। इस प्रकार यह हमारी ज्ञानपर्याय ही स्वय अभेद स्वयचालित विद्यापीठ है। इस पद्धति से विचार कर आगे बढ़ना है -

१ अनुभव के काल मे आपको जो आत्मा जानने मे-देखने मे आया है, आपने कोई वस्तु वैसी कभी कहीं पर जानी-देखी या अनुभव ही नहीं की है। अर्थात् आपका आत्मा अनुपम है,अतुलनीय है, अकथनीय है,वचन अगोचर है। अपने आत्मा का अनुभव (आ ५) मति-श्रुत प्रत्यक्षप्रमाणज्ञान से करने के बाद अब आपको निजध्रुव शुद्ध ज्ञानानन्द आत्मा की जैसी प्रतीति हो गई है वैसी प्रतीति-श्रद्धान पहले कभी नहीं हुआ था। अर्थात् आपको निश्चय सम्यग्दर्शन हो गया है।

२ आपने जिस ज्ञान साधन से अपने आत्मा का ज्ञान किया है वह (आ२)केवलज्ञान नहीं था,(आ३) मन पर्ययज्ञान नहीं था, (आ४) अवधिज्ञान नहीं था, परपदार्थों को जाननेवाला परोक्ष (आ१) मतिज्ञान-परोक्ष (आ१) श्रुतज्ञान नहीं था, साव्यवहारिकप्रत्यक्ष इद्रियज्ञान नहीं था, स्पर्शन इद्रियज्ञान, रसना इद्रियज्ञान, घ्राण इद्रियज्ञान,चक्षु इद्रियज्ञान,कर्ण इद्रियज्ञान नहीं था , अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणाज्ञान नहीं था , स्मृतिज्ञान नहीं था, प्रत्यभिज्ञान नहीं था, तर्कज्ञान नहीं था, अनुमानज्ञान नहीं था, आगमज्ञान नहीं था, मनोमतिजनित मानसज्ञान नहीं था, नयजल्पज्ञान भी नहीं था, उपरोक्त ज्ञानो में से कोई भी प्रत्यक्ष या परोक्षज्ञान नहीं था। वह तो प्रत्यक्षमतिज्ञान या प्रत्यक्षश्रुतज्ञानरूप आ(५) प्रमाणज्ञान था। अर्थात् वह सम्यग्ज्ञान ही था।

३ अपने आत्मा का अनुभव (आ५)मति-श्रुत प्रत्यक्ष प्रमाणज्ञान साधन से करने के समय जैसा साम्यभाव, समता,शाति का वेदन हुआ है, राग-द्वेष-मिथ्यात्वरहित शाति आई है वैसी पहिले कभी नहीं हुई। अर्थात् आशिक सम्यक्चारित्र प्रगट हो गया है।

४ अपने आत्मा का अनुभव मति-श्रुत प्रत्यक्ष प्रमाणज्ञान साधन से करते समय आपको जैसा आनद आया है-वैसा आनद किसी कठ की-वाद्य की-कठवाद्यकी ध्वनि सुनने से नहीं आया, वैसा आनद किसी वर्ण-आकार,रूप-चित्र-कलाकृति,दृश्य आदि को देखने से नहीं आया, वैसा आनद किसी भी गध से नहीं आया,वैसा आनद किसी भोजन के रस से या साहित्य को पढ़ने के रस से नहीं आया, या किसी अन्य भोग को भोगने से नहीं आया, वैसा आनद किसी भी ८ प्रकार के स्पर्श के विभिन्न भेदों से-भोगों से नहीं आया, वैसा आनद शरीर की किसी भी अवस्था-ख्याति,पूजा,लाभ आदि से नहीं आया, वैसा आनद धन-सम्पत्ति-वैभव आदि किसी भी पर पदार्थ के भोग या सयोग से नहीं आया, वैसा आनद किसी भी रागादि विकारी पर्याय या अविकारी पर्याय या भोग या मन के काल्पनिक विकल्प से नहीं आया। अर्थात् वह सम्यक् अतींद्रिय आनद ही था।

५ अपने निजध्रुवशुद्ध ज्ञानदर्शनानद आत्मा का(आ५) मति-श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाणज्ञानसाधन से अनुभव करने पर जैसी निराकुलता हुई है वैसी निराकुलता किसी मिथ्यात्वभाव के समय, क्रोधादि कषायो को करते समय,नोकषायो को करते समय,पाप भाव करते समय,व्यसन सेवन करते समय ,निन्दा-प्रशसा करते समय,हिंसा-चोरी-झूठ-अब्रह्म-परिग्रहसग्रह आदि भाव करते समय,आठ प्रकार का मद करते समय,भक्ति,दया,दान पूजा,उपदेश आदि शुभभाव करते समय, कर्तृत्व -भोक्तृत्व-एकत्व-ममत्व करते समय, इष्ट-अनिष्ट सकल्प-विकल्प भाव करते समय,सन्निकर्ष करते समय,कारक-साकल्य के समय,इद्रिय-व्यापार करते समय, ज्ञातृ-व्यापार करते समय नहीं हुई है। अर्थात् आपको सम्यक् वीतरागता-निराकुलता प्रगट हुई है।

होनहार जब होने आती है, सब साधन स्वय सजाती है,
क्रमवर्ती पर्याय स्वय ही, अपने आप हो जाती है।
भाव शुभाशुभ बध के हेतु, जिनवाणी यह सिखलाती है,
कोई किसी का है नहिं कर्ता, जिनवाणी यह बतलाती है ॥

पीठिका
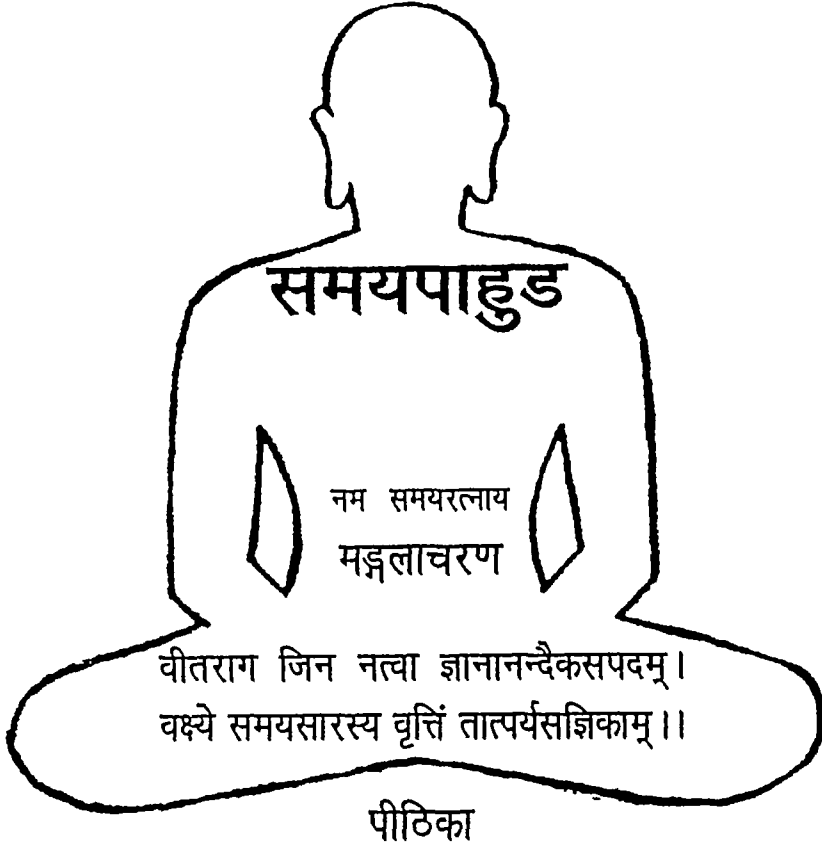
अथ शुद्धपरमात्मतत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन विस्ताररुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थं श्री **कुदकुदाचार्यदेव**-निर्मिते समयसारप्राभृतग्रन्थे अधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन पातनिकासहित व्याख्यान क्रियते। तत्रादौ **'वदित्तु सव्वसिद्धे'** इति नमस्कारगाथामादि कृत्वा सूत्रपाठक्रमेण प्रथमस्थले स्वतत्रगाथापट्क भवति। तदनतर द्वितीयस्थले भेदाभेदरत्नत्रयप्रतिपादनरूपेण **'ववहारेणुवदिस्सदि'** इत्यादिगाथासूत्रद्वय। अथ तृतीयस्थले निश्चयव्यवहार श्रुतकेवलिव्याख्यानमुख्यत्वेन **'जो हि सुदेण'** इत्यादिगाथासूत्रद्वयम्।

श्लोकार्थ - मैं (**श्री जयसेनाचार्य**) वीतरागमय और ज्ञानानद एक सपदा स्वरूप **जिन** को नमस्कार कर के समयसार की तात्पर्य नाम की वृत्ति - टीका को कहता हूँ ।

टीकार्थ - यहाँ शुद्धात्मतत्त्व प्रतिपादन की मुख्यता से विस्तार में रुचि रखने वाले शिष्यों को प्रतिबोधनार्थ श्री कुदकुदाचार्यदेव के वनाये हुए समयसारप्राभृत ग्रन्थ में अधिकार की शुद्धिपूर्वक पीठिकासहित व्याख्यान किया जा रहा है। वहाँ आरभ में **'वंदित्तु सव्वसिद्धे'** इस प्रकार नमस्कार गाथा से प्रारभ कर सूत्रपाठक्रम से प्रथम स्थल में छह स्वतत्र गाथायें हैं। तदनतर द्वितीयस्थल में भेदाभेदरत्नत्रय का प्रतिपादनरूप **'ववहारेणुवदिस्सदि'** इत्यादि दो गाथायें हैं। तृतीयस्थल में निश्चयश्रुतकेवली और व्यवहारश्रुतकेवली के कथन मुख्यत्व से **'जो हि सुदेण'** इत्यादि दो गाथायें हैं।

अत पर चतुर्थस्थले भेदाभेदरत्नत्रयभावनार्थं तथैव भावनाफलप्रतिपादनार्थं च **'णाणम्हि भावणा'** इत्यादिसूत्रद्वयम्। तदनतर पचम स्थले निश्चयव्यवहारनयद्वयव्याख्यानरूपेण **'ववहारोऽभूदत्थो'** इत्यादिसूत्रद्वयम्। एव चतुर्दशगाथाभि स्थलपञ्चकेन समयसारपीठिकाव्याख्याने समुदायपातनिका। तद्यथा-

अथ प्रथमतरस्तावद्गाथाया पूर्वार्द्धेन मङ्गलार्थमिष्टदेवतानमस्कारमुत्तरार्द्धेन तु समयसारग्रथव्याख्यान करोमीत्यभिप्राय मनसि धृत्वा सूत्रमिद प्रतिपादयति -

वदित्तु सव्वसिद्धे, धुवममलमणोवम[१] गदि पत्ते। (१) आ. ख्या
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिद।।१।। ता वृ

तात्पर्यवृत्ति - **'वदित्तु'** इत्यादि पदखडनारूपेण व्याख्यान क्रियते। **वदित्तु**-निश्चयनयेन स्वस्मिन्नेवाराध्याराधकभावरूपेण निर्विकल्पसमाधिलक्षणेन भावनमस्कारेण, व्यवहारेण तु वचनात्मकद्रव्यनमस्कारेण वदित्वा। कान् ? **सव्वसिद्धे**-स्वात्मोपलब्धिसिद्धिलक्षणसर्वसिद्धान्। कि विशिष्टान् ? **पत्ते**-प्राप्तान्। काम् ? **गदि**-सिद्धगति सिद्धपरिणतिम्। कथभूताम् ? **धुव** टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वेन ध्रुवामविनश्वराम्। **अमल** भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममल रहितत्वेन शुद्धस्वभावसहितत्वेन च निर्मलाम्। अथवा **अचल** इति पाठातरे द्रव्यक्षेत्रादिपचप्रकारससारभ्रमणरहितत्वेन स्वस्वरूपनिश्चलत्वेन च चलनरहितामचलाम्।

इसके आगे चतुर्थस्थल में भेदाभेदरत्नत्रय की भावना के लिये और भेदाभेदरत्नत्रय की भावना का फल कथन करने की दृष्टि से **'णाणम्हि भावना'** इत्यादि दो गाथायें हैं। इसके बाद पचमस्थल में निश्चयनय और व्यवहारनय के व्याख्यानरूप से **'ववहारो ऽभूदत्थो'** इत्यादि दो गाथायें हैं। इस तरह चौदह गाथाओं द्वारा पॉचस्थलों से समयसारपीठिका के व्याख्या**ा** में समुदायपानिका है।

उसका विस्तार - अब प्रथम गाथा के पूर्वार्द्ध में मगल के लिये इष्ट देवता को नमस्कार कर और उत्तरार्द्ध में **समयसार ग्रथ का व्याख्यान करने की प्रतिज्ञा का** अभिप्राय मन में धारणकर प्रथमसूत्र कहते हैं -

गाथार्थ - **(धुव)** ध्रुव **(अमल)** अमल-निर्मल **(अणोवम)** अनुपम इन तीन विशेषणों से युक्त **(गदि)** गति को **(पत्ते)** प्राप्त हुए **(सव्वसिद्धे)** सर्व सिद्धों को **(वदित्तु)** नमस्कार करके मैं **(ओ)** हे भव्य ! **(सुदकेवलीभणिद)** श्रुतकेवलियों के द्वारा कथित **(इण)** यह **(समयपाहुड)** समयप्राभृत **(वोच्छामि)** कहूँगा।

टीकार्थ - **'वदित्तु'** इत्यादि पदखडनारूप से कथन किया जा रहा है- **वदित्तु** निश्चयनय से अपने में ही आराध्य-आराधकभाव से, निर्विकल्पसमाधि है लक्षण जिसका ऐसे भावनमस्कार के द्वारा और व्यवहारनय से वचनात्मक द्रव्यनमस्कार द्वारा वदन करके। किनको ? **सव्वसिद्धे** स्वात्मोपलब्धि की सिद्धि है लक्षण जिनका ऐसे सर्व सिद्धों को। **गदि पत्ते** जो सिद्ध गति को प्राप्त हो गये हैं। **धुवम्** वह परिणति कैसी है-टकोत्कीर्णज्ञायक एक स्वभाव होने से ध्रुव है, अविनश्वर है। **अमल** भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममलसे रहित होने से और शुद्धस्वभाव सहित होने से निर्मल है। अथवा **अचल** आत्मख्याति में अचल ऐसा पाठ हे, उसका अर्थ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव ऐसे पॉच प्रकार के ससार भ्रमण से रहित है और स्वस्वरूप में निश्चल होने से चलपने से रहित अचल है।

---

[१] पाठान्तर - धुवमचलमणोवमं

अणोवम निखिलोपमानरहितत्वेन निरुपमामद्भुतस्वस्वभावसहितत्वेन अनुपमाम्। एव पूर्वार्ध्देन नमस्कार कृत्वापरार्ध्देन सवधाभिधेयप्रयोजनसूचनार्थम् प्रतिज्ञा करोति। **वोच्छामि** वक्ष्यामि। किम् ? **समयपाहुड** समयप्राभृत सम्यग् अय बोधो यस्य भवति स समय आत्मा, अथवा सम एकीभावेनायन गमन समय । प्राभृत सार सार शुद्धावस्था समयस्यात्मन प्राभृत समयप्राभृत, अथवा समय एव प्राभृत समयप्राभृतम्। **इण** इद प्रत्यक्षीभूतम्। **ओ** अहो भव्या । कथभूतम् ? **सुदकेवलीभणिद** प्राकृतलक्षण- बलात्केवलीशब्ददीर्घत्वम्। श्रुते परमागमे केवलिभि सर्वज्ञैर्भणित श्रुतकेवलि भणितम्। अथवा श्रुतकेवलिभणित गणधरदेवकथितमिति।

सवधाभिधेयप्रयोजनानि कथ्यन्ते। व्याख्यान वृत्तिग्रन्थ, व्याख्येय तत्प्रतिपादकसूत्रमिति, तयोस्सबधो व्याख्यानव्याख्येयसवध । सूत्रमभिधान, सूत्रार्थोऽभिधेय, तयो सबधोऽभिधानाभिधेयसबध । निर्विकारस्वसवेदनज्ञानेन शुद्धात्मपरिज्ञान प्राप्तिर्वा प्रयोजनमित्यभिप्राय ।।१।।

अणोवम निखिलउपमा से रहित होने से निरूपम अद्भुत स्वस्वभावसहितत्व होने से अनुपम ऐसी सिद्ध अवस्था है । इस तरह पूर्वार्द्ध से नमस्कार कर उत्तरार्द्ध से सवध, अभिधेय, प्रयोजन की सूचना के लिए प्रतिज्ञा करते हैं कि **वोच्छमि** कहूँगा। क्या कहूँगा ? **समयपाहुड** समयप्राभृत याने सम्यक् समीचीन अय-बोध (ज्ञान) जिसको है ऐसा समय याने आत्मा है।

अथवा सम् **सम** याने एकीभावसे अयन-गमन है जिसका, याने जानना ओर परिवर्तन जहाँ होता है ऐसा आत्मा समय है। प्राभृत का अर्थ सार या शुद्ध अवस्था ऐसा है। समय का जो सार या आत्मा का जो सार वह समयप्राभृत है। अथवा समय ही प्राभृत (रत्न वा नजराणास्वरूप मौल्यवान् वस्तु) वह समयप्राभृत है। **इण** यह प्रत्यक्ष हमारे अनुभूत है। **ओ** अहो भव्यजन! **वह समयप्राभृत प्रत्यक्ष** है। यहाँ गाथा में जो 'केवली' शब्द है वह प्राकृत भाषा के नियम अनुसार दीर्घ है। वह आत्मा श्रुत या परमागम, सर्वज्ञ वा श्रुतकेवलि द्वारा अथवा गणधरदेव के द्वारा कथन किया हुआ है।

अब सबध, अभिधेय और प्रयोजन कहते हैं - व्याख्यान याने ग्रथकी टीका, व्याख्येय याने उसका अभिधान-प्रतिपादन करनेवाले सूत्र, इन दोनों का व्याख्यान-व्याख्येय सबध है। सूत्र वाचक है और सूत्र का अर्थ अभिधेय-वाच्य है। इन दोनों का अभिधान-अभिधेय सबध है। इसका प्रयोजन यह है कि निर्विकार स्वसवेदनज्ञान से शुद्धात्मा को जानना अथवा शुद्धात्मा की अनुभूति (प्राप्ति) करना।

भावार्थ - यहाँ यह बात स्पष्ट है कि अपना शुद्ध पचमपारिणामिकभावस्वरूप आत्मा ही आराधना करने के लिये योग्य है और अपना आत्मा ही आराधक है, और शुद्धात्मानूभूति की प्राप्ति करना यह प्रयोजन हे। श्री जयसेनाचार्य जी ने यहाँ अध्यात्मभाषा (निश्चयनय) की और आगमभाषा (व्यवहारनय) की तुलना दिखाकर दोनों में अविरोध दिखाया है।

अथ गाथापूर्वार्द्धेन स्वसमयमपरार्द्धेन परसमय च कथयामीत्यभिप्राय मनसि सप्रधार्य सूत्रमिद निरूपयति-

जीवो चरित्तदसणणाणट्ठिद[1] त हि ससमय जाण। (२)
पुग्गलकम्मपदेसट्ठिद[2] च त जाण परसमय।। २।।

जीवो चरित्त इत्यादि - **जीवो** शुद्धनिश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावनिश्चयप्राणेन तथैवाशुद्धनिश्चयेन क्षायोपशमिकाशुद्धभावप्राणैरसद्भूतव्यवहारेण यथासभवद्रव्यप्राणैश्च जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीव । **चरित्तदसणणाणट्ठिद त हि ससमय जाण** स च जीवश्चारित्रदर्शनज्ञानस्थितो यदा भवति तदा काले तमेव जीव हि स्फुट स्वसमय जानीहि। तथाहि-विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निजपरमात्मनि यद्रुचिरूप सम्यग्दर्शन तत्रैव रागादिरहितस्वसवेदन ज्ञान तथैव निश्चलानुभूतिरूप वीतरागचारित्रमित्युक्तलक्षणेन निश्चयरत्नत्रयेण परिणतजीवपदार्थं हे शिष्य स्वसमय जानीहि।

अध्यात्मभाषा	*आगमभाषा*
(१) अपने ही ध्रुव, निर्मल, अचल, अनुपम पचमपारिणामिकभाव को वदन करके	(१) ध्रुव, निर्मल, अचल, अनुपम पचम गति को प्राप्त सब सिद्धों को वदन करके
(२) अपनी ही शुद्धात्मानुभूति द्वारा प्राप्त हुआ समयपाहुड (समयसार)	(२) सर्वज्ञ, श्रुतकेवलि द्वारा कथन किया हुआ समयपाहुड (समयसार)
(३) स्वानुभूति (समयसार) प्रगट करूँगा।	(३) कथन करूँगा।

आगम भाषा (व्यवहारनय) अभूतार्थ है और अध्यात्मभाषा (निश्चयनय) भूतार्थ हे। जिसको अध्यात्म लक्ष्य में नहीं आया उसकी व्यवहार क्रिया मोक्षमार्ग में कार्यकारी नहीं है।।१।।

अब **गाथा के पूर्वार्द्ध से स्वसमय और गाथा के उत्तरार्द्ध से परसमय का कथन** करता हूँ, ऐसा अभिप्राय मन में धारण करके यह गाथा कहते हैं -

गाथार्थ - हे भव्य ! **(जीवो)** जो जीव **(चरित्तदसणणाणट्ठिद)** चारित्र, दर्शन और ज्ञान में स्थित है **(त)** उसे **(हि)** निश्चय से **(ससमय)** स्वसमय **(जाण)** जानो **(च)** और जो जीव **(पुग्गलकम्मपदेसट्ठिद)** पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित है **(त)** उसे **(परसमय)** परसमय **(जाण)** जानो।

टीकार्थ - जो शुद्धनिश्चयनय से शुद्धबुद्ध एक स्वभावरूप निश्चय प्राण के द्वारा तथा अशुद्धनिश्चयनय से क्षायोपशमिक अशुद्धभाव के द्वारा और असद्भूत व्यवहारनय से यथासभव द्रव्यप्राणों द्वारा जो वर्तमान में जीवित है, आगे जीवित रहेगा और जो पूर्व में जीवित था वह जीव है। और वह जीव जब चारित्रदर्शनज्ञान में-स्वभाव में (अभेदरत्नत्रय में) स्थित है उस समय वही जीव निश्चय से स्वसमय है, ऐसा जानो। उसका विस्तार करते हैं - अपने विशुद्धज्ञानदर्शन स्वभावरूप निजपरमात्मा में जो रुचि वह सम्यग्दर्शन है, और उसीमें जो रागादि रहित स्वसवेदन है वह सम्यग्ज्ञान है और जो निश्चलस्वानुभूति है वह वीतराग चारित्र है, इस प्रकार कहे गये लक्षणवाले निश्चयरत्नत्रय से परिणत जीवपदार्थ को, हे शिष्य ! स्वसमय जानो।

---

[1] पाठान्तर - चरित्तदंसण णाणट्ठिदो   २ पुग्गल कम्मपदेसट्ठिय, पोग्गल कम्मपदेसट्ठिद, पुग्गल कम्मुवदेसट्ठिय

पुग्गलकम्मपदेसट्ठिद च त जाण परसमय पुद्गलकर्मोपदेशस्थित च तमेव जानीहि परसमयम्। तद्यथा-पुद्गलकर्मोदयेन जनिता ये नारकाद्युपदेशा व्यपदेशा सज्ञा पूर्वोक्तनिश्चयरत्नत्रयाभावात्तत्र यदा स्थितो भवत्यय जीवस्तदा त जीव परसमय जानीहीति स्वसमयपरसमयलक्षण ज्ञातव्यम्।।२।।

अथ स्वगुणैकत्वनिश्चयगतशुद्धात्मैवोपादेय कर्मबधेन सहैकत्वगतो हेय इति, अथवा स्वसमय एव शुद्धात्मन स्वरूप, न पुन परसमय इत्यभिप्राय मनसि धृत्वा, अथवास्य सूत्रस्यानतर सूत्रमिदमुचित भवतीति निश्चित्य विवक्षितसूत्र प्रतिपादयतीति पातनिकालक्षण सर्वत्र ज्ञातव्यम्।

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुदरो लोए[1]। (३)
बधकहा एयत्ते तेण विसवादिणी होदि[2]।।३।।

एयत्तणिच्छयगदो स्वकीयशुद्धगुणपर्यायपरिणत, अभेदरत्नत्रयपरिणतो वा एकत्वनिश्चयगत। **समओ** समयशब्देनात्मा। कस्माद्धेतो ? सम्यगयते गच्छति परिणमति। कान् ? स्वकीयगुणपर्यायानिति व्युत्पत्ते। **सव्वत्थसुदरो** सर्वत्र समीचीन। क्व ? **लोए** लोके अथवा सर्वत्रैकेंद्रियाद्यवस्थासु शुद्धनिश्चयनयेन सुन्दर उपादेय इति।

और जो जीव पुद्गलकर्म प्रदेशों में स्थित है उस जीव को ही परसमय जानो। उसका विस्तार पुद्गलकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाली नारकादि सज्ञावाली पर्यायें हैं, पूर्वोक्त निश्चयरत्नत्रय का अभाव होने से उन नारकादिपर्यायों में जव वह जीव स्थित है तब वह जीव परसमय है, ऐसा जानो। इस तरह स्वसमय का लक्षण और परसमय का लक्षण जानना चाहिए।

भावार्थ - जो जीव अपने अभेदरत्नत्रय की अनुभूति में है वह स्वसमय है और जो जीव पर्याय की अनुभूति में है वह परसमय है। चतुर्थ गुणस्थान से सिद्ध तक के जीव अभेद रत्नत्रय स्वसमय- सम्यग्दर्शनवाले हैं। एक से तीन तक के गुणस्थान वाले जीव परसमय मिथ्यादर्शनवाले हैं।।२।।

अव अपने गुणों के साथ एकत्वनिश्चयगत शुद्धात्मा **(पारिणामिकभाव)** ही उपादेय है और कर्मबध के साथ (कथचित्) एकपना को प्राप्त हुआ आत्मा हेय है। अथवा **स्वसमय ही शुद्धात्मा का स्वरूप है,** परसमय यह शुद्धात्मा का स्वरूप नहीं है, यह अभिप्राय मन में धारण कर अथवा इस सूत्र के अनतर यही सूत्र उचित हे ऐसा निश्चय कर विवक्षित सूत्र कहते हैं, ऐसी उत्थानिका सर्वत्र जानना चाहिए।

गाथार्थ - **(एयत्तणिच्छयगदो)** एकत्वनिश्चय में प्राप्त जो **(समओ)** समय है वह **(लोए)** लोक में **(सव्वत्थ)** सर्वत्र **(सुदरो)** सुन्दर है **(तेण)** इसलिए **(एयत्ते)** एकत्व में **(बधकहा)** वधकथा **(विसवादिणी)** विसवाद-विरोध जनक **(होदि)** है।

---

[1] पाठान्तर - लोगे   [2] होई

बधकहा कर्मबधजनितगुणस्थानादिपर्याया। **एयत्ते** एकत्वे तन्मयत्वे या वधकथा प्रवर्तते **तेण** तेन पूर्वोक्तजीवपदार्थेन सह सा **विसवादिणी** विसवादी कोऽर्थ ? विसवादिनी कथा। प्राकृतलक्षणवलात् पुल्लिङ्गे स्त्रीलिङ्गनिर्देश। विसवादिनी असत्या। **होदि** भवति। शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धजीवस्वरूप न भवतीत्यर्थ। तत स्थित स्वसमय एवात्मन स्वरूपमिति।। ३।।

अथैकत्वपरिणत शुद्धात्मस्वरूप सुलभ न भवतीत्याख्याति -

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबधकहा। (४)
एयत्तस्सुवलभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।। ४।।

"**सुदपरिचिदाणुभूदा**" इत्यादि **सुदा** श्रुता अनतशो भवति। **परिचिदा** परिचिता सा पूर्वमनतशो भवति। **अणुभूदा** अनुभूतानतशो भवति। कस्य ? **सव्वस्स** वि सर्वस्यापि जीवलोकस्य। कासौ ? **कामभोगबधकहा** कामरूपभोगा कामभोगा। अथवा कामशव्देन स्पर्शनरसनेंद्रियद्वय भोगशव्देन घ्राणचक्षुश्रोत्रत्रय तेषा कामभोगाना वध सबधस्तस्य कथा। अथवा बधशव्देन प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशवधास्तत्फल च नरनारकादिरूप भण्यते।

टीकार्थ - **एयत्तणिच्छयगदो** अपने ही शुद्धगुणपर्याय में परिणत हुआ अथवा अभेद-रत्नत्रय में परिणत हुआ, निश्चय से एकता को प्राप्त हुआ याने पारिणामिकभाववाला **समओ** यह आत्मा है। यहाँ समय शव्द का अर्थ आत्मा लेना ठीक है क्योंकि उसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है - '**सम्यक् अयते गच्छति परिणमति कान् ? स्वकीयगुणपर्यायान्**' अर्थात् जो जानते हुए अपने ही गुणपर्यायों को (**गुणपर्यायोंमें**) प्राप्त होता है वह समय याने आत्मा है। **सव्वत्थ सुदरो** वह आत्मा सर्वत्र सर्वप्रकार से समीचीन - सुन्दर है। कहाँ ? **लोए** लोक में - ससार में अथवा एकेंद्रिय विकलेंद्रिय असज्ञीपचेंद्रिय सज्ञीपचेंद्रिय आदि सव अवस्थाओं में - पर्यायों में शुद्धनिश्चयनय से सुदर है, उपादेय है। **बधकहा** - कर्मबध के सान्निध्य में उत्पन्न होनेवाली गुणस्थानादि पर्यायें हैं। **एयत्ते** एकत्व स्वभावमें जो वधकथा प्रवर्तती है। पूर्वोक्त जीव पदार्थ के साथ वह (**बधकथा**) **तेण विसवादिणी** उससे विसवाद विरोध पैदा करनेवाली **होदि** होती है अर्थात् असत्य है। क्योंकि शुद्धनिश्चयनय से वह (विसवादिनी कथा) जीव का शुद्ध जावस्वरूप नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि स्वसमय ही आत्मा का स्वरूप है।

प्राकृत लक्षण (**व्याकरण**) के बल से पुल्लिग होने पर भी स्त्रीलिग निर्देश किया है।

भावार्थ - अपने पारिणामिकभाव में स्वसमय और परसमय इनकी कथा नहीं है।। ३।।

अब **एकत्वपरिणत शुद्धात्मस्वरूप सुलभ नहीं है**, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - (**सव्वस्स वि**) सर्व लोक को (**कामभोगबधकहा**) कामभोग सवधी वध की कथा तो (**सुदपरिचिदाणुभूदा**) सुनने में आ गई है, परिचय में आ गई हे, और अनुभव में भी आ गई है इसलिए सुलभ है (**विहत्तस्स**) भिन्न आत्मा के (**एयत्तस्सुवलभो**) एकत्व स्वभाव की प्राप्ति कभी न तो सुनी है, न परिचय में आई है और न अनुभव में आई है, इसलिए (**णवरि**) केवल एकमात्र वही (**ण सुलहो**) सुलभ नहीं है।

कामभोगबधाना कथा कामभोगबधकथा, यत पूर्वोक्तप्रकारेण श्रुतपरिरिचतानुभूता भवति ततो न दुर्लभा किन्तु सुलभैव। **एयत्तस्स** एकत्वस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैक्यपरिणतिरूपनिर्विकल्पसमाधिबलेन स्वसवेद्यशुद्धात्मस्वरूपस्य तस्यैकत्वस्य। **उवलभो** उपलम्भ प्राप्तिर्लाभ। **णवरि** केवल अथवा नवरि किन्तु **ण सुलभो** नैव सुलभ। कथभूतस्यैकत्वस्य ? **विहत्तस्स** विभक्तस्य रागादिरहितस्य। कथ न सुलभ ? इति चेत्, श्रुतपरिचितानुभूतत्वाभावादिति।।४।।

अथ यस्मादेकत्व सुलभ न भवति तस्मात्तदेव कथ्यते -

त एयत्तविहत्त दाएह अप्पणो सविहवेण। (५)
जदि दाएज्ज पमाण चुक्किज्ज छल ण घित्तव्व।।५।।

त तत्पूर्वोक्त **एयत्तविहत्त** एकत्वविभक्त अभेदरत्नत्रयैकपरिणत मिथ्यात्वरागादिरहित परमात्मस्वरूपमित्यर्थ। **दाएह** दर्शयेहम्। केन ? **अप्पणो सविहवेण** आत्मन स्वकीयमिति विभवेन आगमतर्कपरमगुरूपदेश-स्वसवेदनप्रत्यक्षेणेति। **जदि दाएज्ज** यदि दर्शयेय तदा **पमाण** स्वसवेदनज्ञानेन परीक्ष्य प्रमाणीकर्तव्य भवद्भि। **चुक्किज्ज** यदि च्युतो भवामि **छल ण घित्तव्व** तर्हि छल न ग्राह्य दुर्जनवदिति।।५।।

टीकार्थ - सब ससारी जीवों को काम-भाग। बध कथा अनत बार सुनने में आई है, अनत बार परिचय में आई है, अनत वार अनुभव में आई है। यहॉ कामरूपभोग ही कामभोग है। काम शब्द से स्पर्शन रसना इन दो इद्रियों के विषय लिये हैं, और भोग शब्द से घ्राण, चक्षु व श्रोत्र इन तीन इद्रियों के विषय लिये हैं, उन काम-भोगों के सबध की कथा वह कामभोगबध कथा है। अथवा बध शब्द से प्रकृति, स्थिति, अनुभाग व प्रदेश बध और उनका फल जो नरनारकादिरूप कहा जाता है। इस तरह कामभोगबध की जो कथा वह कामभोग-बध-कथा है। इसलिये पूर्वोक्त प्रकार से श्रुत, परिचित और अनुभूत होने से वह कथा दुर्लभ नहीं, किन्तु सुलभ ही है। **एयत्तस्स** एकत्व की याने सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्र की ऐक्य परिणतिरूप निर्विकल्प समाधि के वलसे जो स्वसवेद्य शुद्धात्मस्वरूप के एकत्व की उपलब्धि, प्राप्ति या लाभ होना केवल (अथवा परतु) सुलभ नहीं है।

शका - कैसे एकत्व की प्राप्ति सुलभ नहीं है।

समाधान - विभक्त याने रागादि से रहित (भिन्न) एकत्व की सुलभता नही है।

शका - वह कैसे सुलभ नहीं है ?

समाधान - वह स्वएकत्वरूप स्वानुभूति सुलभ नहीं है क्योंकि वह कभी सुनी नहीं, वह कभी परिचित नहीं और उसका कभी अनुभव किया नहीं है।।४।।

अव **एकत्व सुलभ नहीं** है, इसलिये उसका ही कथन किया जा रहा है -

गाथार्थ - (त) उस **(एयत्तविभत्त)** एकत्व विभक्त आत्मा को (ह) मैं **(अप्पणो)** आत्मा के **(सविहवेण)** निजवैभव से **(दाएह)** दिखाता हूँ, **(जदि)** यदि मैं **(दाएज्ज)** दिखाऊँ तो **(पमाण)** प्रमाण **(स्वीकार)** करना, **(चुक्किज्ज)** और यदि कहीं चूक जाऊँ तो **(छल)** छल (ण) न **(घित्तव्व)** ग्रहण करना।

अथ कोऽय शुद्धात्मेति पृष्टे प्रत्युत्तर ददाति -

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो[1] दु जो भावो। (६)
एव भणंति सुद्धा[2] णादा जो सो दु सो चेव।। ६।।

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुभाशुभपरिणमनाभावान्न भवत्यप्रमत्त प्रमत्तश्च। प्रमत्तशब्देन मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तातानि षड्गुणस्थानानि, अप्रमत्तशब्देन पुनरप्रमत्ताद्ययोग्यतान्यष्टगुणस्थानानि गृह्यन्ते। स क ? कर्ता। **जाणगो दु जो भावो** ज्ञायको ज्ञानस्वरूपो योऽसौ भाव पदार्थ शुद्धात्मा। **एव भणति सुद्धा** शुद्धनयावलबिन, तर्हि कि भवति ? **णादा जो सो दु सो चेव** ज्ञाता शुद्धात्मा य कथ्यते स तु स चैव ज्ञातैवेत्यर्थ ।।६।। इति स्वतत्रगाथाषट्केन प्रथमस्थल गतम्।

टीकार्थ - उस पूर्वोक्त एकत्व विभक्त **(विधिरूप कथन से)** अभेदरत्नत्रयएकपरिणत और **(निषेधरूप कथन से)** मिथ्यात्वरागादि से रहित ऐसा परमात्मा का स्वरूप **(पारिणामिक भावस्वरूप आत्मा)** है। याने औदयिक, ओपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भावस्वरूप आत्मा का यहाँ कथन नहीं है। उस परमात्मस्वरूप को **(एकत्वविभक्त आत्मा के स्वरूप को)** दिखलाता हूँ।

शका - किसके द्वारा परमात्मा का स्वरूप दिखलाते हैं।

समाधान - **अध्यात्मभाषा से**	**आगमभाषा से**
अपने स्वसवेदन प्रत्यक्ष स्वानुभूति के वैभव से दिखाता हूँ।	आगम, तर्क और गुरुउपदेश से दिखाता हूँ।

हे भव्यो ! इसका आप अपने स्वसवेदनज्ञान से **(स्वानुभूति से)** परीक्षा करके प्रमाण करना याने स्वीकार करना चाहिए। यदि कही भूल हो जाय तो दुर्जन की तरह छल नहीं ग्रहण करना।।५।।

तो फिर **'यह शुद्धात्मा कौन है ? याने उसका स्वरूप क्या है ?'** ऐसा प्रश्न पूछने पर श्री आचार्य उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(जो)** जो **(अपमत्तो)** अप्रमत्त **(निर्विकल्पपर्यायस्वरूप)** **(ण)** नहीं और जो **(पमत्तो)** प्रमत्त **(सविकल्पपर्यायरूप)** **(वि)** भी **(ण)** नहीं **(दु)** लेकिन **(जाणगो)** ज्ञायक **(भावो)** भाव है **(एव)** इस प्रकार **(सुद्धा)** उसे शुद्ध **(भणति)** कहते हैं **(च)** और **(जो)** जो **(णादा)** ज्ञाता है **(सो दु)** वह तो **(सो)** वह ज्ञाता **(एव)** ही है **(तु)** अन्य कोई नहीं।

टीकार्थ - शुद्धद्रव्यार्थिकनय से **(पारिणामिकभाव की दृष्टि से अशेषधर्मात्मक)** आत्मा के शुभाशुभ परिणमन का अभाव होने से वह अप्रमत्त और प्रमत्त नहीं है। यहाँ प्रमत्त शब्द से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर प्रमत्तविरत गुणस्थान तक छह गुणस्थान और अप्रमत्त शब्द से अप्रमत्तगुणस्थान से अयोगकेवली तक आठ गुणस्थान ग्रहण किये जाते हैं। ऐसा कर्तारूप कौन है ? **जाणगो दु जो भावो** यह शुद्धात्मा केवल ज्ञायक ज्ञानस्वरूप जो भाव याने पदार्थ है, ऐसा शुद्धनय का अवलवन लेने वाले कहते हें। वह केसा है ? तो उसे ज्ञाता या शुद्धात्मा कहा जाता हे, वह वही है याने ज्ञाता ही है, ऐसा भाव है।

---

[1] पाठान्तर - जाणओ [2] सुद्धं

अथानतर यथा प्रमत्तादिगुणस्थानविकल्पा जीवस्य व्यवहारनयेन विद्यन्ते, शुद्धद्रव्यार्थिकनिश्चयनयेन न विद्यन्ते तथा दर्शनज्ञानचारित्रविकल्पोऽपीत्युपदिशति -

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्तदसण णाण। (७)
ण वि णाण ण चरित्तं ण दंसण जाणगो सुद्धो।। ७।।

ववहारेण सद्भूतव्यवहारनयेन **उवदिस्सदि** उपदिश्यते कथ्यते। कस्य ? **णाणिस्स** ज्ञानिनो जीवस्य। किम्? **चरित्तदसण णाण** चारित्रदर्शनज्ञानस्वरूपम्। **ण वि णाण ण चरित्त ण दसण** शुद्धनिश्चयनयेन न पुनर्ज्ञान न चारित्र न दर्शनम्। तर्हि किमस्तीति चेत् ? **जाणगो** ज्ञायक शुद्धचैतन्यस्वभाव । **सुद्धो** शुद्ध एव रागादिरहित इति। अयमत्रार्थ । यथा निश्चयनयेनाभेदरूपेणाग्निरेक एव पश्चाद्भेदरूपव्यवहारेण दहतीति दाहक पचतीति पाचक प्रकाश करोतीति प्रकाशक इति व्युत्पत्त्या विषयभेदेन त्रिधा भिद्यते। तथा जीवोऽपि निश्चयरूपाभेदनयेन शुद्धचैतन्यरूपोऽपि भेदरूपव्यवहारनयेन जानातीति ज्ञान, पश्यतीति दर्शन, चरतीति चारित्रमिति व्युत्पत्त्या विषयभेदेन त्रिधा भिद्यते इति।। ७।।

भावार्थ - शुद्धद्रव्यार्थिक नय से सविकल्प और निर्विकल्प पर्यायस्वरूप नहीं है। ऐसा ज्ञायकस्वभाववाला सत् द्रव्य, ऐसा जो शुद्ध **(ज्ञाता)** ज्ञात हुआ, याने जाना गया, याने अनुभूति में आ गया, वह (जो ज्ञात हुआ) वह ही है याने ज्ञायक स्वभाव ही है, ऐसा कहते हैं। श्री आचार्यदेव ने गाथा क्रमाक ५ में कहा था कि "स्वानुभूति से एकत्वविभक्त या अभेदरत्नत्रयमय जीव कहूँगा" वह उन्होंने यहाँ कह दिया है।। ६।।

इस प्रकार प्रथम स्थल में छह गाथायें हुईं। इस के वाद जैसे प्रमत्तादि गुणस्थान के (प्रथम गुणस्थान से कार्य सिद्ध तक के) विकल्प (पर्याय और गुणभेद) व्यवहारनय से जीव के हैं, और शुद्ध द्रव्यार्थिक-निश्चयनय से प्रमत्तादि गुणस्थान के विकल्प **(पर्याय भेद)** जीव के नहीं हैं, वैसे **ही दर्शन ज्ञान चारित्र के विकल्प (गुण भेद) भी जीव के नहीं हैं,** ऐसा उपदेश देते हैं -

गाथार्थ - **(णाणिस्स)** ज्ञानी के **(चरित्तदसण णाण)** चारित्र, दर्शन, ज्ञान इस तरह से गुणभेद **(ववहारेण)** व्यवहार द्वारा **(उवदिस्सदि)** कहे जाते हैं। निश्चय से **(ण वि णाण)** ज्ञान भी नहीं है, **(ण चरित्त)** चारित्र भी नहीं है और **(ण दसण)** दर्शन भी नहीं है, ज्ञानी तो एक **(जाणगो सुद्धो)** शुद्ध ज्ञायक ही है।

टीकार्थ - ववहारेण सद्भूत व्यवहारनय से **उवदिस्सदि** कहते हैं उपदेश देते हैं कि **णाणिस्स** जीव का **चरित्तदसणणाण** चारित्र, दर्शन, ज्ञान स्वरूप है। **ण वि णाण ण चरित्त ण दसण** फिर शुद्धनिश्चयनय से कहते हैं कि न ज्ञान जीव का स्वरूप है, न चारित्र जीव का स्वरूप है, न दर्शन जीव का स्वरूप है।

शका - तो ज्ञानी का स्वरूप क्या है ?

समाधान - जाणगो ज्ञायक शुद्ध चैतन्यस्वभाव ज्ञानी का स्वरूप है। **सुद्धो** शुद्ध याने एक-अभेद-भेदरहित तथा रागादिरहित है। इसका अर्थ यह है कि, जैसे निश्चयनय से अभेदरूप से अग्नि एक ही है, लेकिन भेदरूप व्यवहारनय से दहन करनेवाला **दाहक**, पकानेवाला **पाचक**, प्रकाश करनेवाला **प्रकाशक**, ऐसे व्युत्पत्ति के विषयभेद से तीन प्रकार का कहा जाता है। उसी तरह जीव भी निश्चयरूप अभेदनय से शुद्ध चैतन्यरूप एक अभेद होते हुए भी भेदरूप व्यवहारनय से जीव जाननेवाला है इसलिये ज्ञान स्वरूप हे, देखनेवाला है इसलिए दर्शन स्वरूप है, आचरण करनेवाला है इसलिये चारित्र स्वरूप है, ऐसे व्युत्पत्ति के विपयभेद से तीन प्रकार का कहा जाता है।।७।।

अथ यदि शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्य दर्शनज्ञानचारित्राणि न सति तर्हि परमार्थ एवैको वक्तव्यो न व्यवहार इति चेत्तन्न -

जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभास विणा दु गाहेदु। (८)
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्क।।८।।

जह ण वि सक्क यथा न शक्य। कोऽसौ ? **अणज्जो** अनार्यो म्लेच्छ। कि कर्तुम् ? **गाहेदु** अर्थग्रहणरूपेण सबोधयितुम्। कथम् ? **अणज्जभास विणा** अनार्यभाषा म्लेच्छभापा ता विना। तथा दृष्टातो गत। इदानीं दार्ष्टान्तमाह-तह तथा **ववहारेण विणा** व्यवहारनयेन विना **परमत्थुवदेसणमसक्क** परमार्थोपदेशन कर्तुमशक्य इति। अयमत्राभिप्राय - यथा कश्चिद् ब्राम्हणो यतिर्वा म्लेच्छपल्ल्या गत तेन नमस्कारे कृते सति ब्राम्हणेन यतिना वा स्वस्तीति भणिते स्वस्त्यर्थमविनश्वरत्वमजानन्सन् निरीक्षते मेष इव। तथायमज्ञानिजनोप्यात्मेतिभणिते सत्यात्मशब्दस्यार्थमजानन्सन् भ्रात्या निरीक्षत एव। यदा पुनर्निश्चयव्यवहारनयज्ञपुरुषेण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि जीवशब्दस्यार्थम् इति कथ्यते तदा सतुष्टो भूत्वा जानातीति। एव भेदाभेदरत्नत्रयव्याख्यानमुख्यतया गाथाद्वयेन द्वितीय स्थल गतम्।।८।।

फिर शकाकार पूछता है कि यदि शुद्धनिश्चयनय से दर्शन, ज्ञान और चारित्र जीव के नहीं हैं तो एक **परमार्थ का (शुद्धनिश्चयनय का) ही कथन करना योग्य है, व्यवहारनय का कथन नहीं करना चाहिए।** इस प्रकार पूछने पर आचार्य उत्तर देते हैं कि ऐसा नहीं है क्योंकि -

गाथार्थ - (जह) जैसे (अणज्जो) अनार्य को (अणज्जभास) अनार्य भाषा के (विणा) बिना (गाहेदु) वस्तु का स्वरूप ग्रहण कराने के लिए (**ण वि सक्क**) कोई भी समर्थ नहीं है।(तह) उसी प्रकार (ववहारेण) व्यवहार के (विणा) बिना (परमत्थुवदेसण) परमार्थ का उपदेश करना (असक्क) अशक्य है।

टीकार्थ - जह **अणज्जो** जैसे अनार्य व्यक्ति को **अणज्जभास विणा** अनार्य भाषा के विना **ण गाहेदु ण वि सक्क** शब्द का अर्थ ग्रहण कराना अशक्य है। यह दृष्टात है।

अव दार्ष्टान्त इस तरह है, **तह ववहारेण विणा** व्यवहारनय के बिना **परमेत्थुवदेसणमसक्क** परमार्थ का उपदेश ग्रहण कराना अशक्य है।

इसका भावार्थ यह है कि कोई ब्राम्हण अथवा यति म्लेच्छगली में गया, वहाँ किसी म्लेच्छ ने जब उसे नमस्कार किया, उसी समय उस ब्राम्हण ने या यति ने उसे 'स्वस्ति' इस प्रकार आशीर्वादात्मक वचन कह दिया। तो, **'स्वस्ति'** शब्द का अर्थ जो 'अविनश्वरत्व हो कल्याण हो' इसको न जानने से वह मेंढे के समान देखता रहता है **'ये क्या कह रहे हैं ?'** उसी तरह ये अज्ञानीजन भी **'आत्मा'** ऐसा कहने पर आत्मा शब्द का अर्थ नहीं जानते हें, और भ्राति से **(भ्रम से)** देखते रहते हैं कि ये क्या कह रहे हैं ? और जब निश्चयनय और व्यवहारनय को जानने वाले आचार्य कहते हैं कि **आत्मा (जीव)** याने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमय ऐसा द्रव्य है। ऐसा कथन करने के वाद वह सतुष्ट होकर जानलेता है। **(उसे परमानद होता है)**। इस तरह भेद-अभेद रत्नत्रय के कथन की मुख्यता से दो गाथाओं से द्वितीय स्थल हुआ।।८।।

अथ पूर्वगाथाया भणित व्यवहारेण परमार्थो ज्ञायते ततस्तमेवार्थं कथयति -

> जो हि सुदेणभिगच्छदि अप्पाणमिण तु केवल सुद्ध। (९)
> त सुदकेवलिमिसिणो भणति लोयप्पदीवयरा[1]।। ९।।
> जो सुदणाण सव्वं जाणदि सुदकेवलि तमाहु जिणा। (१०)
> णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा।। १०।।

जो य कर्ता। हि स्फुट। **सुदेण** भावश्रुतेन स्वसवेदनज्ञानेन निर्विकल्पसमाधिना करणभूतेन। **अभिगच्छदि** अभि समताज्जानात्यनुभवति। कम् ? **अप्पाण** आत्मानम्। **इण** इम प्रत्यक्षीभूतम्। **तु** पुन। किंविशिष्टम् ? **केवल** असहायम् **सुद्ध** रागादि रहितम् **त** पुरुपम्। **सुदकेवलि** निश्चयश्रुतकेवलिनम्। **इसिणो** परमऋपय। **भणति** कथयति **लोयप्पदीवयरा** लोकप्रदीपकरा लोकप्रकाशका इति। अनया गाथया निश्चयश्रुतकेवलिलक्षणमुक्तम्। अथ **जो सुदणाणमित्यादि जो** य कर्ता। **सुदणाण** द्वादशाग द्रव्यश्रुत। **सव्व** सर्वं परिपूर्णम्। **जाणदि** जानाति। **सुदकेवलि** व्यवहारश्रुतकेवलिनम्। **तमाहु जिणा** त पुरुष आहु ब्रुवति। के ते ? जिना सर्वज्ञा। कस्मादिति चेत् ? **जम्हा** यस्मात्कारणात्। **सुदणाण** द्रव्यश्रुताधारेणोत्पन्न भावश्रुतज्ञानम्। **आदा** आत्मा भवति। कथभूत ? **सव्व** सर्वमात्मसवित्तिविषय परपरिच्छित्तिविषय वा **तम्हा** तस्मात्कारणात्। **सुदकेवली** द्रव्यश्रुतकेवली स भवतीति।

व्यवहार से परमार्थ जाना जाता है (व्यवहार के विना परमार्थ का कथन अशक्य है) ऐसा जो पूर्व गाथा में कहा था, उसी अर्थ को ही दृढ करने के लिए कहते हैं -

गाथार्थ - **(जो)** जो जीव **(हि)** निश्चय से **(वास्तव में)** **(सुदेण तु)** श्रुतज्ञान के द्वारा **(इण)** इस अनुभवगोचर **(केवल सुद्ध)** केवल एक शुद्ध **(अप्पाण)** आत्मा को **(अभिगच्छदि)** सम्मुख होकर जानता है **(त)** उसे **(लोयप्पदीवयरा)** लोक को प्रगट जाननेवाले **(इसिणो)** ऋषीश्वर **(सुदकेवलि)** श्रुतकेवली ऐसा **(भणति)** कहते हैं।

(जो) जो जीव **(सव्व)** सर्व **(सुदणाण)** श्रुतज्ञान को **(जाणदि)** जानता है **(त)** उसे **(जिना)** जिनभगवान **(सुदकेवलि)** श्रुतकेवली **(आहु)** कहते हैं **(जम्हा)** क्योंकि **(सव्व णाण)** सब ज्ञान **(अप्पा)** आत्मा ही है **(तम्हा)** इसलिये **(सुदकेवली)** (वह जीव) श्रुतकेवली है।

टीकार्थ - **जो** जो **हि** निश्चय से भावश्रुत से-स्वसवेदनज्ञान से-निर्विकल्प समाधि साधन से **सुदेण अभिगच्छदि** सर्व प्रकार से जानता है, अनुभवता है। किसको अनुभवता है ? **अप्पाण** जो अपने आत्मा को अनुभवता है। कैसे ? **इण** इस प्रत्यक्षीभूत आत्मा को अनुभवता है। **तु पुन** और कैसे आत्मा को अनुभवता है ? **केवल** एकमात्र या असहाय अपने आत्मा को अनुभवता है। ओर कैसे ? **सुद्ध** रागादिरहित आत्मा को अनुभवता है। **त** उस जीव को **(आत्माको)** **सुदकेवलि** निश्चय श्रुतकेवली, ऐसा **लोयप्पदीवयरा इसिणो भणति** लोक को प्रकाशित करनेवाले परमऋषी कहते हैं। इस गाथा में निश्चयश्रुतकेवली का लक्षण कहा है।

---

[1] पाठान्तर - लोगप्पयास।

अयमत्रार्थ यो भावश्रुतरूपेण स्वसवेदनज्ञानवलेन शुद्धात्मान जानाति स निश्चयश्रुतकेवली भवति। यस्तु स्वशुद्धात्मान न सवेदयति न भावयति वहिर्विषय द्रव्यश्रुतार्थम् जानाति स व्यवहारश्रुतकेवली भवतीति। ननु तर्हि स्वसवेदनज्ञानवलेनास्मिन्काले ऽपि श्रुतकेवली भवति ? तन्न यादृश पूर्वपुरुषाणा शुक्लध्यानरूप स्वसवेदनज्ञान तादृशमिदानीं नास्ति किन्तु धर्मध्यान योग्यमस्तीत्यर्थ। एव निश्चयव्यवहारश्रुतकेवलि व्याख्यानरूपेण गाथाद्वयेन तृतीयस्थल गतम्।। ९-१०।।

अथ गाथाया पूर्वार्द्धेन भेदरत्नत्रयभावनामुत्तरार्द्धेनाभेदरत्नत्रयभावना च प्रतिपादयति -

---

जो सुददाण जो द्वादशाग द्रव्यश्रुत को **सव्व जाणदि** परिपूर्ण जानता है, **त सुदकेवलि** उस पुरुष को व्यवहारश्रुतकेवली ऐसा कहते हैं। कौन कहते हैं ? **जिणा आहु** जिनेन्द्र या सर्वज्ञ कहते हैं। क्योंकि **जम्हा सुददाण** द्रव्यश्रुत के आधार से उत्पन्न **(द्रव्यश्रुत के सान्निध्य में)** भावश्रुतज्ञानवाला **आदा** आत्मा **(होता)** है। कैसे ? **सव्व** आत्मा के सवेदन के सर्व विषय का या पर विषय का ज्ञान उसको होता है। **तम्हा** इसलिये **सुदकेवली** वह द्रव्यश्रुतकेवली है।

इसका भावार्थ यह है कि जो भावश्रुतसे-स्वसवेदनज्ञान के वल से शुद्धात्मा को जानता है वह निश्चयश्रुतकेवली है। जो स्वशुद्धात्मा का स्वसवेदन नहीं करता है, जो स्वशुद्धात्मा की भावभासना नहीं करता है, वाह्यविषयरूप द्रव्यश्रुतार्थ को जानता है वह व्यवहार श्रुतकेवली है। **(नियमसार गाथा क्र १६९)**

लोयालोय जाणइ अप्पाण णेव केवली भगव।
जइ कोइ भणइ एव तस्स य कि दूसण होई।।१६९।।

अर्थ व्यवहारनय से केवली भगवान लोकालोक को जानते हैं, आत्मा को नहीं। इस प्रकार यदि कोई कहता है तो क्या उसको दोष है। अर्थात् कोई दोष नहीं है।

इसलिए निश्चयनय से द्रव्यश्रुतकेवली को आत्मानुभव नहीं है, ऐसा अर्थ कोई निकालेगा तो गलत है। क्योंकि मिथ्याज्ञानी **(आत्मानुभूति से रहित)** जीव ग्यारह अग और नव पूर्व का ही पाठी होता है।

शका - तो फिर इस काल में भी क्या स्वसवेदनज्ञानबल से श्रुतकेवली होता है ?

(5) **समाधान** - इस काल में द्वादशाग पारगामी ऐसे श्रुतकेवली नहीं होते हैं। लेकिन स्वसवेदनज्ञानवाले श्रुतकेवली होते हैं। जैसे पूर्व में पुरुषों को शुक्लध्यानरूप स्वसवेदनज्ञान **(शुद्धोपयोग)** होता था, वैसा अभी नहीं होता है, किन्तु धर्मध्यान योग्य स्वसवेदनज्ञान **(शुद्धोपयोग)** अभी भी होता है, (याने जाति अपेक्षा शुद्धोपयोग तो अभी भी होता है लेकिन विशदता की अपेक्षावाला शुक्लध्यान नहीं होता है)। इस प्रकार तृतीय स्थल में निश्चय श्रुतकेवली और व्यवहार श्रुतकेवली के व्याख्यानरूप से दो गाथाओं में कथन हुआ।।९,१०।।

अव यहाँ गाथा के पूर्वार्द्ध से भेदरत्नत्रय की भावना का और उत्तरार्द्ध से अभेदरत्नत्रय की भावना का प्रतिपादन करते हैं -

णाणम्हि भावणा खलु कादव्वा दसणे चरित्ते य।
ते पुण तिण्णिवि आदा तम्हा कुण भावणं आदे।।११।।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयभावना खलु स्फुट कर्तव्या भवति। तानि पुनस्त्रीण्यपि निश्चयेनात्मैव यत कारणात् तस्मात् कुरु भावना शुद्धात्मनीति।।११।।

अथ भेदाभेदरत्नत्रयभावनाफल दर्शयति -

जो आदभावणमिण णिच्चुवजुत्तो मुणी समाचरदि।
सो सव्वदुक्खमोक्ख पावदि अचिरेण कालेण।।१२।।

य कर्ता आत्मभावनामिमा नित्योद्यत सन् मुनि तपोधन समाचरति सम्यगाचरति भावयति स सर्वदु खमोक्ष प्राप्नोत्यचिरेण स्तोककालेनेत्यर्थ । इति निश्चयव्यवहाररत्नत्रयभावनाभावनाफलव्याख्यानरूपेण गाथाद्वयेन चतुर्थस्थल गतम्। अथ यथा कोऽपि ब्राम्हणादिविशिष्टो जनो म्लेच्छप्रतिबोधनकाले एव म्लेच्छभाषा ब्रूते न च शेषकाले तथैव ज्ञानीपुरुषोप्यज्ञानिप्रतिबोधनकाले व्यवहारमाश्रयति न च शेषकाले।।१२।।

गाथार्थ - **(णाणम्हि)** ज्ञान में **(दसणे)** दर्शन में **(य)** और **(चरित्ते)** चारित्र में **(खलु)** दृढता से **(भावणा)** भावना **(कादव्वा)** करनी चाहिए **(पुण)** और **(ते)** वे **(तिण्णि वि)** तीनों भी **(आदा)** अभेदनय से एक आत्मा ही हैं, **(तम्हा)** इसलिये **(आदे)** आत्मा में **(भावण कुण)** भावना करो।

टीकार्थ - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की दृढता से भावना करनी चाहिए। और निश्चय से तीनों भी **(सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र)** एक आत्मा ही हैं, इसलिये अपने एक शुद्धआत्मा में ही **(शुद्धात्मा की)** अनुभूति करनी चाहिए।।११।।

अब यहाँ भेदाभेदरत्नत्रयभावना का फल दिखाते हैं -

गाथार्थ - **(जो)** जो **(आदभावणमिण)** इस आत्मभावना में **(णिच्चुवजुत्तो)** निरतर शुद्धोपयोगयुक्त होता हुआ **(समाचरदि)** सम्यक् आचरण करता है अर्थात् आत्मभावना में लीन होता है **(सो)** वह **(मुणी)** मुनि **(अचिरेण कालेण)** थोडे ही काल में **(सव्वदुक्खमोक्ख)** सर्व दु खों से मुक्ति को **(पावदि)** प्राप्त करता है।

टीकार्थ - जो मुनि तपोधन निरतर शुद्धोपयोग युक्त होता हुआ आत्मानुभूति का समीचीन आचरण करता है, भावना करता है, वह थोडे ही काल में सब दु खों से मुक्ति को प्राप्त करता है। इस तरह चतुर्थस्थल में दो गाथाओं से निश्चयरत्नत्रय की और व्यवहाररत्नत्रय की भावना व भावना का फल का कथन किया है।

अब जैसे ब्राम्हणादि कोई भी विशेषव्यक्ति म्लेच्छ को समझाने के लिए ही उस समय म्लेच्छभाषा में कथन करते हैं शेष काल में नहीं, उसी तरह **ज्ञानी पुरुष भी अज्ञानी को समझाने के समय व्यवहारनय का (वक्तव्यमात्र) आश्रय करते हैं।** शेष काल में व्यवहारनय का (उपादेय मानकर) आश्रय नहीं करते हैं।।१२।।

कस्मादभूतार्थत्वादिति प्रकाशयति -

ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ। (११)
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।।१३।।

ववहारो व्यवहारनय। **अभूदत्थो** अभूतार्थ असत्यार्थो भवति। **भूदत्थो** भूतार्थ सत्यार्थ। **देसिदो** देशित कथित। **दु** पुन कोऽसौ? **सुद्धणओ** शुद्धनय निश्चयनय। तर्हि केन नयेन सम्यग्दृष्टिर्भवतीति चेत्? **भूदत्थ** भूतार्थम् सत्यार्थम् निश्चयनयम्। **अस्सिदो** आश्रितो गत स्थित। **खलु** स्फुट **सम्मादिट्ठी हवदि जीवो** सम्यग्दृष्टिर्भवति जीव इति टीकाव्याख्यानम्।

द्वितीयव्याख्यानेन पुन **ववहारो अभूदत्थो** व्यवहारोऽभूतार्थो। **भूदत्थो** भूतार्थश्च। **देसिदो** देशित कथित। न केवल व्यवहारो देशित **सुद्धणओ** शुद्धनिश्चयनयोऽपि। **दु** शब्दात् शुद्धनिश्चयनयोऽपीति व्याख्यानेन भूताभूतार्थभेदेन व्यवहारोऽपि द्विधा, शुद्धनिश्चयाशुद्धनिश्चयभेदेन निश्चयनयोऽपि द्विधा इति नयचतुष्टयम्। इत्यत्र तात्पर्यम् - यथा कोऽपि ग्राम्यजन सकर्दम नीर पिबति, नागरिक पुन विवेकीजन कतकफल निक्षिप्य निर्मलोदक पिबति। तथा स्वसंवेदनरूपभेदभावनाशून्यजनो मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामसहितमात्मानमनुभवति, सद्दृष्टिजन पुनरभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिबलेन कतकफलस्थानीय निश्चयनयमाश्रित्य शुद्धात्मानमनुभवतीत्यर्थ ।।१३।।

व्यवहारनय अभूतार्थ कैसे है ? यह दिखाते हैं -

गाथार्थ - (ववहारो) व्यवहारनय (अभूदत्थो) अभूतार्थ है (दु) और (सुद्धणओ) शुद्धनय (भूदत्थो) भूतार्थ है ऐसा (देसिदो) सर्वज्ञभगवान ने बताया है (जीवो) जो जीव (भूदत्थम्) भूतार्थ का (अस्सिदो) आश्रय करता है वह जीव (खलु) निश्चय से (सम्मादिट्ठी) सम्यग्दृष्टि (हवदि) होता है।

टीकार्थ - **ववहारो** (सिद्धांतमें) व्यवहारनय **अभूदत्थो** अभूतार्थ, असत्यार्थ है, **दु सुद्धणओ भूदत्थो** और शुद्धनय भूतार्थ, सत्यार्थ है, ऐसा **देसिदो** कथन किया गया है। तो फिर जीव कौन से नय से सम्यग्दृष्टि होता है ? **भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो** भूतार्थ सत्यार्थ-निश्चयनय का आश्रय करनेवाला जीव निश्चय से सम्यग्दृष्टि है। यह टीका का व्याख्यान है।

दूसरी पद्धति से - व्यवहार भूतार्थ है और अभूतार्थ भी है। केवल व्यवहार भूतार्थ और अभूतार्थ है, ऐसा नहीं, किन्तु निश्चयनय भी भूतार्थ और अभूतार्थ है। यहाँ 'दु' शब्द से निश्चयनय भी भूतार्थ, अभूतार्थ कहे हैं, इस प्रकार के नय व्याख्यान से व्यवहारनय भूतार्थ और अभूतार्थ के भेद से दो प्रकार का है, उसी प्रकार निश्चयनय भी शुद्धनिश्चयनय और अशुद्ध निश्चयनय के भेद से दो प्रकार का है। इस तरह चार प्रकार के नय हैं।

यहाँ यह तात्पर्य है कि जैसे कोई ग्रामीण अविवेकीजन कीचडसहित जल पीता है, किन्तु विवेकी नागरिक उस कीचडसहित जल में निर्मलीद्रव्य डालकर उसे निर्मल बनाकर निर्मल जल पीता है। उसी प्रकार स्वसंवेदनरूप भेदभावना से रहित जो अविवेकी जीव है, वह मिथ्यात्वरागादि विभावपरिणाम सहित आत्मा का (अशुद्ध आत्मा का) अनुभव करता है (वह मिथ्यादृष्टि है)।

अथ पूर्वगाथाया भणित भूतार्थनयमाश्रितो जीव सम्यग्दृष्टिर्भवति। अत्र तु न केवल भूतार्थो निश्चयनयो निर्विकल्पसमाधिरताना प्रयोजनवान् भवति किंतु निर्विकल्पसमाधिरहिताना पुन षोडशवर्णिकासुवर्णलाभाभावे अधस्तनवर्णिकासुवर्णलाभवत् केषाचित् प्राथमिकाना कदाचित् सविकल्पावस्थाया मिथ्यात्वविषयकषायदुर्ध्यानवचनार्थ व्यवहारनयोऽपि प्रयोजनवान् भवतीति प्रतिपादयति -

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहि। (१२)
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।।१४।।

सुद्धो शुद्धनय निश्चयनय। कथभूत ? **सुद्धादेसो** शुद्धद्रव्यस्यादेश कथन यत्र स भवति शुद्धादेश। **णादव्वो** ज्ञातव्य भावयितव्य। कै ? **परमभावदरसीहि** शुद्धात्मभावदर्शिभि।

और विवेकीजन अभेदरत्नत्रयलक्षणरूप निर्विकल्पसमाधि के बल से निर्मलीद्रव्य के समान शुद्ध निश्चयनय का आश्रय करके शुद्धात्मा का अनुभव करता है (वह सम्यग्दृष्टि होता है)।

भावार्थ - शुद्धात्मानुभूति से ही चतुर्थादि गुणस्थान प्रगट होते हैं। अशुद्धात्मानुभूति से मिथ्यात्व, दु ख वा आकुलता होती है।।१३।।

पूर्व गाथा में कहा है कि भूतार्थनय का आश्रय करनेवाला जीव सम्यग्दृष्टि होता है। इस गाथा में कहते हैं कि केवल भूतार्थ निश्चयनय निर्विकल्पसमाधिस्थित जीवों को प्रयोजनवान है ऐसा नहीं है, किन्तु जो निर्विकल्पसमाधि से रहित हैं याने सविकल्प अवस्था में स्थित हैं उन्हें अतिम सोलह तावવाले जातिवत सुवर्ण के लाभ के अभाव में नीचे के तावવाले सुवर्ण के लाभ की तरह प्रयोजनवान है। कोई प्राथमिक अवस्थावाले जीवों को **कदाचित् सविकल्प अवस्था में मिथ्यात्व विषयकषाय भावरूप दुर्ध्यान से बचने के लिए व्यवहारनय भी (तावत्काल) प्रयोजनवान** है। ऐसा प्रतिपादन करते हैं -

गाथार्थ - **(परमभावदरिसीहि सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो)** परमभावदर्शियों को शुद्धतत्त्व का उपदेश करनेवाला शुद्धनय जानने योग्य है **(पुण जे दु अपरमे भावे ट्ठिदा ववहारदेसिदो)** और जो जीव अपरमभाव में स्थित हैं, उनके लिए व्यवहारनय देशित है।

टीकार्थ - **सुद्धो** शुद्धनय निश्चयनय है।

शका - कैसा है शुद्धनय ?

समाधान - **सुद्धादेसो** शुद्धद्रव्यका-परमपारिणामिकभावरूप शुद्ध द्रव्य का कथन जिसमें है, ऐसा शुद्धनय **णादव्वो** जानने योग्य-अनुभव करने योग्य है।

शका - किनके द्वारा ज्ञातव्य है ?

समाधान - **परमभावदरसीहि** शुद्धात्मभाव-परमपारिणामिकभाव दर्शियों को **सुद्धो सुद्धादेसो** केवल शुद्धनय ही अनुभव करने योग्य है।

कस्मादिति चेत् ? यत षोडशवर्णिकाकार्त्तस्वरलाभवदभेदरत्नत्रयस्वरूपसमाधिकाले सप्रयोजनो भवति। नि प्रयोजनो न भवतीत्यर्थ । **ववहारदेसिदो** व्यवहारेण विकल्पेन भेदेन पर्यायेण दर्शित कथित इति व्यवहारदेशितो व्यवहारनय । **पुण** पुन अधस्तनवर्णिकासुवर्णलाभवत्प्रयोजनवान् भवति। केषाम् ? **जे** ये पुरुषा । **दु** पुन । **अपरमे** अशुद्धे असयतसम्यग्दृष्ट्यपेक्षया श्रावकापेक्षया वा **सरागसम्यग्दृष्टिलक्षणे शुभोपयोगे** प्रमत्ताप्रमत्तसयतापेक्षया च भेदरत्नत्रयलक्षणे वा **ट्ठिदा** स्थिता कस्मिन् स्थिता ? **भावे** जीवपदार्थे तेषामिति भावार्थ ।।१४।।

शका - किस कारण से ?

समाधान - क्योंकि सोलह तावावाले सुवर्ण के लाभ की तरह अभेदरत्नत्रयस्वरूप समाधिकाल में शुद्धनय ही प्रयोजनवान है। उनके लिये शुद्धनय निष्प्रयोजन नहीं है।

ववहारदेसिदो पुण तथा व्यवहार-भेद-विकल्प-पर्यायरूप से कथन किया गया व्यवहारनय का उपदेश नीचे के तावावाले सुवर्ण के लाभ की तरह प्रयोजनभूत है।

शका - किनके लिये ?

समाधान - **जे दु अपरमे भावे ट्ठिदा** जो पुरुष अपरमभाव में स्थित हैं, अर्थात् चतुर्थगुणस्थानवर्ती असयत सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से अथवा पचम गुणस्थानवर्ती श्रावक की अपेक्षा से **जो सराग सम्यग्दर्शन लक्षण रूप शुभोपयोग में स्थित है** अथवा षष्ठ-सप्तम गुणस्थानवर्ती प्रमत्त-अप्रमत्त सयत (सकलसयम) की अपेक्षा से भेदरत्नत्रयलक्षणरूप शुभोपयोग में-जीवपदार्थ में स्थित हैं उनके लिये तो व्यवहारनय प्रयोजनवान है।

भावार्थ - भूतार्थनय का आश्रय करने से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। शुद्धात्मा की अनुभूति के इच्छुक सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी पुरुषों को निरतर शुद्धनिश्चयनय का विषय परमपारिणामिक भाववाला निजात्मा ही अवश्य ज्ञातव्य है, अवश्य जानने योग्य है, अवश्य अनुभव करने योग्य है, भावना करने योग्य है। परन्तु निर्विकल्प समाधिलक्षण शुद्धात्मानुभूति में अविचल स्थिर रहने में असमर्थ होकर विकल्प में आये हुए जीव के द्वारा अशुभ से वचने के लिये व्यवहारनय का उपदेश दिया है।

अथवा - इसके पहले वाली गाथा में कहा है कि भूतार्थनय का आश्रय करनेवाला जीव सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाला) होता है। अव इस गाथा में कहते हैं कि निर्विकल्पसमाधि में जो रत हैं उन्हें ही केवल निश्यचयनय भूतार्थ है, ऐसा नहीं, किन्तु जो जीव निर्विकल्पसमाधि से रहित याने सविकल्प अवस्था में हैं उन्हें निर्विकल्प अवस्था प्राप्त करने के लिये निश्चयनय-भूतार्थनय प्रयोजनवान है। जिनको सोलह तावावाला शुद्ध सुवर्ण का लाभ नहीं हुआ उनको शुद्ध सुवर्ण प्राप्त करना चाहिये और शुद्ध सुवर्ण के लाभ के अभाव में अधस्तनवाला सुवर्ण का लाभ होना प्रयोजन है, उन प्राथमिक अवस्थावालों को कभी सविकल्प अवस्था में मिथ्यात्व विषयकषाय दुर्ध्यान से बचने के लिये व्यवहारनय भी प्रयोजनवान है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं -

गाथार्थ - **[परमभावदरिसीहि (जो परिज्ञायमाणो) सुद्धो]** परमभावदर्शिवाले-निर्विकल्प समाधिवाले-शुद्धात्मानुभववाले जीवों के द्वारा जो परिज्ञायमान-अनुभव किया जानेवाला शुद्धात्मा पारिणामिक भाववाला आत्मा है। **[(सो) सुद्धादेसो पुण अपरमे भावे णादव्वो]** और उस शुद्धात्मा का कथन करनेवाला शुद्धनय अपरम भाववाले-सविकल्पभाववाले के द्वारा जानने योग्य है। **[जे दु अपरमे भावे ट्ठिदा ववहार देसिदो]** और जो अपरमभाव में-सविकल्पभाव में स्थित हैं वे व्यवहारदेशित हैं।

टीकार्थ - सुद्धो शुद्धनय, निश्चयनय।

शका - कैसा है वह शुद्धनय ?

समाधान - शुद्धद्रव्य का आदेश अथवा निर्देश अथवा कथन जिस नय से किया जाता है वह शुद्धनय अथवा शुद्धादेश है।

णादव्वो जानना चाहिये, अनुभव करना चाहिये।

शका - किनके द्वारा अनुभव करना चाहिये ?

समाधान - शुद्धात्मानुभूति की प्राप्ति करने की जिनको इच्छा है, उनको शुद्धात्मानुभव करना चाहिये याने सविकल्प अवस्था में जो हैं अभी शुद्धात्मानुभव में रत नहीं हैं लेकिन शुद्धात्मा की प्राप्ती करने की इच्छा (भावना) है उनको शुद्धनय का आश्रय करके शुद्धात्मानुभव करना चाहिये।

शका - ऐसा क्यों ?

समाधान - सोलह ताववाले शुद्ध सुवर्ण के लाभ की तरह अभेद रत्नत्रय स्वरूप समाधिकाल में शुद्धनय का आश्रय है, अपरम भाववालोंको शुद्धनय नि प्रयोजन नहीं है क्योंकि अपरमभाववालों को स्वानुभूति के लिये शुद्धनय प्रयोजनवान है। समाधि में या शुद्धात्मानुभूति में शुद्धनय का आश्रय नहीं है, ऐसा नहीं है (याने शुद्धात्मानुभूति में शुद्धत्मा अनुभव में या जानने में आता है)

ववहारदेसिदो व्यवहार से-विकल्प से-भेद से-पर्यायार्थिकनय से दिखायी हुई या कथन की हुई ऐसी व्यवहारदेशना या ऐसा व्यवहारनय है। और अधस्तनवर्णिकावाले सुवर्ण के लाभ के समान व्यवहारनय प्रयोजनवान है।

शका - यह व्यवहारनय किनको प्रयोजनवान है ?

उत्तर - जो पुरुष अशुद्धभाव में याने विकल्प अवस्था में हैं, असयत सम्यग्दृष्टि, देशसयत और जो प्रमत्ताप्रमत्तसयत (सकलसयमी) विकल्पभूमिका में (सम्यग्दर्शन होते हुए भी बुद्धिपूर्वक विकल्प अवस्थामें)-भेदरत्नत्रय की विचार अवस्था में स्थित हैं उनको अशुभोपयोग से बचने के लिये (दुर्ध्यान न हो इसलिये) व्यवहारनय प्रयोजनवान है।

शका - वे विकल्प की भूमिकावाले जीव कहॉ स्थित हैं ?

समाधान - जीवादिपदार्थों के द्रव्य, गुण और पर्याय के विचार में अथवा विकल्प में स्थित हैं। **तेषाम्** उनको व्यवहारनय का आश्रय लेना पडता है, लेकिन निर्विकल्प अवस्था प्राप्त करने के लिये विकल्पवाले जीवों को **शुद्धनय याने शुद्धात्मा** जानना (अनुभव करना) चाहिये।

एव निश्चयव्यवहारनयव्याख्यानप्रतिपादनरूपेण गाथाद्वयेन पचम स्थल गतम्। इति चतुर्दशगाथाभि स्थलपचकेन पीठिका समाप्ता।

अथ कश्चिदासन्नभव्य पीठिकाव्याख्यानमात्रेणैव हेयोपादेयतत्त्व परिज्ञाय विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाव निजस्वरूप भावयति।

भावार्थ - शका - इस गाथा की टीका में 'प्रमत्ताप्रमत्तसयतापेक्षया च भेदरत्नत्रयलक्षणे' ऐसा क्यों लिखा है ? केवल 'प्रमत्तसयतापेक्षया च भेदरत्नत्रयलक्षणे' ऐसा क्यों नहीं लिखा है ?

समाधान - प्रमत्ताप्रमत्तसयत की याने सकलसयम की अपेक्षा से भेदरत्नत्रयलक्षणवाले छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनि ऐसा ही अर्थ है। क्योंकि

(क) अव्रती सम्यक्त्वी एक ही जीव में दो भेद दिखाना हैं याने अव्रती सम्यक्त्वी का निर्विकल्प दशा का (शुद्धात्मानुभव का) क्षण और अव्रती सम्यक्त्वी का सविकल्प दशा का क्षण, उसी प्रकार से

(ख) देशसयमी में एक ही जीव में दो भेद दिखाना हैं याने देशसयमी का निर्विकल्प दशा का क्षण और देशसयमी का सविकल्प दशा का क्षण है। ऐसे ही

(ग) सकलसयमी एक ही जीव में अप्रमत्तसयतवाले का निर्विकल्प दशा का क्षण और प्रमत्तसयतवाले का सविकल्प दशा का क्षण उक्त कथन से दिखाया है। और

सकलसयमी जीव जिस समय सविकल्प अवस्था में है याने छट्ठे गुणस्थान में है उस समय वह अपरमभाव मे हे याने भेदरत्नत्रय में है, उसी तरह देशसयमी जिस समय सविकल्प अवस्था में है वह उस समय अपरमभाव में (शुभोपयोग में) है, उसी तरह अव्रती सम्यक्त्वी जिस समय सविकल्प अवस्था में है उस समय अपरमभाव में (शुभोपयोग में) है। और

सकलसयमी की निर्विकल्प अवस्था याने सातवाँ गुणस्थान और आठवें गुणस्थान से सिद्ध दशा तक यह परम अवस्था (पारिणामिकभाव को देखनेवाली) है, और देशसयमी की निर्विकल्प अवस्था-परम अवस्था (पारिणामिकभाव को देखनेवाली) है, और अव्रती सम्यक्त्वी की निर्विकल्प अवस्था (पारिणामिकभाव को देखनेवाली) परम अवस्था है।

ऐसा दिखाने के लिए यहाँ 'प्रमत्ताप्रमत्तसयतापेक्षया' ऐसा शब्द लिखा है। इसलिए "प्रमत्ताप्रमत्तसयतापेक्षया च भेदरत्नत्रयलक्षणे" इसका अर्थ 'प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत दोनों भी सविकल्प दशा में हैं ऐसा कहना गलत है, क्योंकि प्रवचनसार गाथा न १९६ (तत्त्वदीपिका) की तात्पर्यवृत्ति टीका में श्री जयसेनाचार्यजं ने ध्यानसतान में दिखाया है कि, अप्रमत्त सयतवाला याने सप्तमगुणस्थानवर्ती निर्विकल्प दशा (ध्यान में) है और प्रमत्तगुणस्थानवर्ती सविकल्प दशा में (तत्त्वचिन्ता में) है। और एक अतर्मुहुर्त अप्रमत्त गुणस्थान, उसके बाद एक अतर्मुहुर्त प्रमत्त गुणस्थान, फिर एक अतर्मुहुर्त अप्रमत्तगुणस्थान फिर एक अतर्मुहुर्त प्रमत्तगुणस्थान, ऐसी सतानधारा धर्मध्यान में चलती है।

इसलिए स्वस्थान अप्रमत्तसयमी जीव निर्विकल्प अवस्थावाला है। स्वस्थान अप्रमत्त सयमी जीव सविकल्प अवस्थावाला नहीं है। इसी कथन को निम्न चार्ट के माध्यम से समझिये -

निर्विकल्प — सविकल्प — निर्विकल्प — सविकल्प — निर्विकल्प — सविकल्प — निर्विकल्प

(१) अव्रती सम्यक्त्वी के दो शुद्धात्मानुभूति के वीच में का सम्यक्त्वसहित सविकल्प का जघन्यकाल अतर्मुहुर्त और उत्कृष्ट काल छ महिना है।
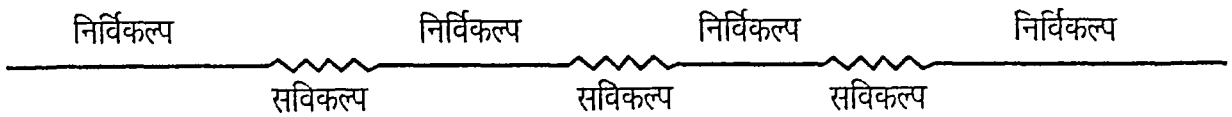
(२) देशव्रती सम्यक्त्वी के दो शुद्धात्मानुभूति के बीच में का सम्यक्त्वसहित सविकल्प जघन्यकाल अतर्मुहुर्त और उत्कृष्टकाल १५ दिन का है।

(३) सम्यकत्वसहित सकलसयमी के दो शुद्धात्मानुभूति के वीच में का सम्यक्त्वसहित सविकल्प का (प्रमत्त गुणस्थान का) उत्कृष्ट

इस प्रकार पचमस्थल में दो गाथाओं से निश्चयनय का कथन और व्यवहारनय का कथन प्रतिपादन किया। इस तरह १४ गाथाओं से पॉच स्थल में **पीठिका** समाप्त हुई। यहॉ कोई आसन्नभव्य जीव पीठिका के व्याख्यानमात्र से हेयतत्त्व (व्यवहारनय हेयतत्त्व) और उपादेयतत्त्व (शुद्धनिश्चयनय उपादेयतत्त्व) को जानकर अपने विशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावरूप निजस्वरूप की भावभासना (स्वानुभूति) कर लेता है।

卐 卐 卐 卐 卐

निज वैभव का जन्म

समयसार गाथा ५ आत्मख्याति टीका में आचार्य अमृतचन्द्रजी कहते हैं कि जो कुछ मेरे आत्मा का निजवैभव है, उस सवसे मैं इस एकत्व-विभक्त आत्मा को दिखाऊँगा, ऐसा मैंने व्यवसाय (उद्यम, निर्णय) किया है -

१ मेरे आत्मा का वह निजवैभव इस लोक में प्रगट समस्त वस्तुओं का प्रकाशक है, और स्यात् पद की मुद्रावाला जो **शब्दब्रह्म-अर्हन्त का परमागम** है उसकी उपासना से उसका जन्म हुआ है।

२ समस्त विपक्ष-अन्यवादियों के द्वारा गृहीत सर्वथा एकान्तरूप नयपक्ष के निराकरण में समर्थ **अतिनिष्तुष निर्वाधयुक्ति** के अवलम्वन से उस निजवैभव का जन्म हुआ हे।

३ परमगुरु सर्वज्ञ से लेकर हमारे गुरु पर्यन्त जो **शुद्धात्मतत्व का उपदेश** पूर्वाचार्यो के अनुसार हे उससे निजवैभव का जन्म हुआ हे।

४ निरन्तर झरता हुआ - स्वाद में आता हुआ जो सुन्दर आनन्द है, उसकी मुद्रा से युक्त प्रचुर **स्वसवेदन स्वरूप सवेदन** से उस निजवैभव का जन्म हुआ है। उसे अपने स्वसवेदन प्रत्यक्ष से प्रमाण करो।

सिद्ध भगवान को आठ विशेषण लगाने का प्रयोजन

१ **सिद्ध भगवान आठ कर्मरहित हैं**- इस विशेषण के द्वारा जीव को सदामुक्त कर्ममल से रहित ईश्वररूप मानने वाले **सदाशिव** मत का निराकरण किया है।

२ यदि कर्मबन्ध नहीं होता हो तो आत्मा को मुक्ति का उपाय करना व्यर्थ ठहरे। अत जीव की मुक्ति नहीं मानने वाले **मीमासक** मत का तथा ससारी जीव की मुक्ति नहीं मानने वाले **याज्ञिक** मत का भी निराकरण किया है।

३ सिद्धों को सहज दुख, शरीरिक दुख, आगुतक दुख व मानसिक दुख नहीं है। उन्हें इन्द्रियजनित, प्रशमजनित, मानसिक सुख नहीं है। उन्हें अतींद्रिय सुख है। **सिद्ध भगवान परम सुखी हैं** - इस विशेषण से मोक्ष में आत्मा को सुख का अभाव मानने वाले साख्य (वेदान्ती-कपिल) मत का निराकरण किया है।

४ **सिद्ध भगवान निरजन हैं, पुन कर्मों से कभी लिप्त नहीं होते** - इस विशेषण से मुक्त होने के बाद पुन कर्मबन्ध होना और ससार में आना मानने वाले **मस्करी सन्यासी** मत का निराकरण किया है।

५ **सिद्ध भगवान नित्य अविनाशी हैं**, वे कभी अपने शुद्ध चैतन्य स्वभाव को नहीं त्यागते हैं - इस विशेषण से द्रव्य को क्षण-क्षयी, क्षणिक ही मानने वाले **बौद्धमत** का निराकरण किया है।

६ **सिद्ध भगवान आठ गुण वाले हैं** - इस विशेषण से ज्ञानादि गुणों का सिद्धों में अत्यन्त अभाव मानने वाले **नैयायिक, वैशेषिक, यौग, साख्यादि** मतों का निराकरण किया है।

७ **सिद्ध भगवान कृतकृत्य हैं**, परम सतुष्ट है, कुछ करना नहीं हे - इस विशेषण से ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता मानने वाले **ईश्वरवादी, ब्रह्मवादी, वेदान्ती** मत का निराकरण किया है।

८ **सिद्ध भगवान लोक के अग्रभाग में निवास करते हैं** - इस विशेषण से **माडलीक** मत का निराकरण किया जो कहता है कि मुक्त आत्मा स्वभाव से सदा ही ऊर्ध्वगमन करता रहता है, कहीं भी विश्राम नहीं लेता।

- सम्यग्ज्ञान चंद्रिका-गाथा ६८

नहीं राग-द्वेष-विमोह जिसको, योगसेवन नहीं रुचे।
प्रगटे शुभाशुभभाव दाहक, ध्यानमय अग्नि उसे।। पचा का १४६
परद्रव्य से हो विमुख जो, ध्याते सदा निजआत्मा।
वे जिनमार्ग में सलग्न हैं, पाते परम निर्वाण को।। मोक्षपाहुड गाथा १९

चार्ट नं. २०

साधन के (ज्ञानपर्याय के) सकल, विकल भेद

विषय

काच सकल (आ)

सूर्य केवलज्ञानपयार्य प्रमाण प्रत्यक्ष क्षायिकज्ञान अतिस्पष्ट

सकल (आ) ६० पॉवर मन पर्ययज्ञानपर्याय प्रमाण प्रत्यक्ष क्षायोपशमिकज्ञान स्पष्ट

सकल (आ) ४० पॉवर अवधिज्ञानपर्याय प्रमाण प्रत्यक्ष क्षायोपशमिकज्ञान स्पष्ट

सकल (आ) १५ पॉवर श्रुतज्ञानपर्याय प्रमाण परोक्ष क्षायोपशमिकज्ञान अस्पष्ट

सकल (आ) २५ पॉवर श्रुतज्ञानपर्याय प्रमाण प्रत्यक्ष क्षायोपशमिकज्ञान स्पष्ट

सकल (आ) १० पॉवर मतिज्ञानपर्याय प्रमाण प्रत्यक्ष क्षायोपशमिकज्ञान स्पष्ट

सकल (आ) ५ पॉवर मतिज्ञानपर्याय प्रमाण परोक्ष क्षायोपशमिकज्ञान अस्पष्ट

विकल (ब) ५ पॉवर श्रुतज्ञानपर्याय नय परोक्ष क्षायोपशमिकज्ञान अस्पष्ट

विकल (ब) ५ पॉवर श्रुतज्ञानपर्याय नय परोक्ष क्षायोपशमिकज्ञान अस्पष्ट

साधन = प्रकाश = ज्ञानपर्याय

पूर्ण श्वेत काच = सकल = प्रमाण = (आ)
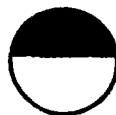
कुछ काली काच = विकल = नय = (ब)
कुछ श्वेत काच = विकल = नय = (ब)

॥ॐ॥

चार्ट नं. ७
प्रमाणनयैरधिगमः।

A

अर्थ-- (आ) प्रमाण और (ब) नय इनके द्वारा वस्तु जानी जाती है।

(आ) प्रमाण-धर्मिधर्मसमूह-सकलादेश

- आ१) मतिज्ञान - कतिपयपर्यायात्मकद्रव्य - सर्वद्रव्यकतिपयपर्याय - स्वार्थ परोक्ष
  श्रुतज्ञान - कतिपयपर्यायात्मकद्रव्य - सर्वद्रव्यकतिपयपर्याय - स्वार्थ परोक्ष
- आ२) केवलज्ञान - सर्वद्रव्यसर्वपर्याय - स्वार्थ पूर्ण-अतींद्रिय प्रत्यक्ष
- आ३) मन पर्ययज्ञान - कतिपयपर्यायात्मकद्रव्य - मूर्तिकविषय - स्वार्थ-एकदेश अतींद्रिय प्रत्यक्ष
- आ४) अवधिज्ञान - कतिपयपर्यायात्मकद्रव्य - मूर्तिकविषय - स्वार्थ-एकदेश अतींद्रिय प्रत्यक्ष
- आ ५) मतिज्ञान - कतिपयपर्यायत्मकद्रव्य-निजध्रुवस्वभावात्मद्रव्य का शुद्धात्मानुभव - स्वार्थ-एकदेश अतींद्रिय प्रत्यक्ष
  श्रुतज्ञान - कतिपयपर्यायत्मकद्रव्य-निजध्रुवस्वभावात्मद्रव्य का शुद्धात्मानुभव - स्वार्थ-एकदेश अतींद्रिय प्रत्यक्ष

B (ब) श्रुतज्ञान- स्वार्थ-परार्थ-परोक्ष- यहाँ (आ) प्रमाण नहीं है, (ब)नय है, (विकलादेश है)

वचन

(क) प्रमाणवाक्य-सकलादेश, वाक्य- प्रमाणसप्तभंगी का वाक्य

(ग) अभेदवृत्ति (द्रव्यार्थिक)
निश्चयनय, परमशुद्ध निश्चयनय, कारण परमात्मा, कारण समयसार, ध्रुवदृष्टि से अशेष धर्मात्मक(अखड) द्रव्य जानना। [illegible] करना वा [illegible] द्वारा अशेष धर्मात्मक (अखड)द्रव्य को जानना, कथन करना ज्ञानवान् टकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव

(घ) अभेदोपचार(पर्यायार्थिक)

(ज) अशुद्ध निश्चयनय — (झ) असद्भूत व्यवहारनय

(ड)	(ठ)	(ट)	(र १)	(र २)	(य)	(ल)	(ह)	(द)	(त)
शुद्ध नय अथवा पूर्णशुद्ध पर्याय के द्वारा अशेष-धर्मात्मक द्रव्य को जानना या कथन करना। शुद्ध निश्चय नय केवली, अर्हत, कार्य समयसार, सिद्ध	एकदेश शुद्ध निश्चयनय, एकदेश शुद्ध पर्याय के द्वारा अशेष धर्मात्मक द्रव्य को जानना या कथन करना। अव्रती सम्यक्त्वी ४ से १२ गुणस्थानवर्ती जीव ४ से १४ गुणस्थानवर्ती जीव	अशुद्ध निश्चय नय, अशुद्ध पर्याय के द्वारा अशेष धर्मात्मक द्रव्य को जानना या कथन करना। ससारी जीव, क्रोधी जीव	परद्रव्य विचार अभेदवृत्ति वा अभेदो-पचार	कालादि के द्वारा गुणों को भेद प्रधान करके अशेष धर्मात्मक द्रव्य का कथन करना	गुण पर्यायवान् अथवा द्रव्य पर्याय अथवा ध्रुव पर्याय, अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय	स्मृति प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान इनको परामर्श करने वाला वचन	इ त्या दि	अनुपरित, देही जीव, शरीरी जीव, नैगमादि सात नय	उपचरित भारतीय, धनवान, मेरा लडका, दण्डीवाला
नैगमादि सात नय	नैगमादि सात नय	नैगमादि सात नय	नैगमादि सात नय		नैगमादि सात नय			नैगमादि सात नय	नैगमादि सात नय

निश्चयनय — व्यवहारनय

(जि) प्रमाण=(निश्चयनय+व्यवहारनय)

॥ॐ॥

प्रमाणनयैरधिगमः।

A

अर्थ-- (आ) प्रमाण और (ब) नय इनके द्वारा वस्तु जानी जाती है।

साव्यवहारिक प्रत्यक्ष — इद्रिय अथवा मनकी अपेक्षा है। अथवा परोक्ष (स्मृति,प्रत्यभिज्ञान,तर्क,अनुमान) — प्रतीत्यन्तरकी अपेक्षा है। यहॉ (आ) प्रमाण है, (ब) नय नहीं है।

मतीज्ञानपूर्वक होता है, इद्रियोंकी अपेक्षा नहीं है। यहॉ (आ) प्रमाण है, (ब) नय नहीं है।

इद्रिय अथवा मन अथवा प्रतीत्यन्तरकी अपेक्षा नही है। यहॉ (आ) प्रमाण है, (ब) नय नहीं है।

इद्रिय अथवा मन अथवा प्रतीत्यन्तरकी अपेक्षा नहीं है। यहॉ (आ) प्रमाण है, (ब) नय नहीं है।

इद्रिय अथवा मन अथवा प्रतीत्यन्तरकी अपेक्षा नही है। यहॉ (आ) प्रमाण है, (ब) नय नहीं है।

इद्रिय अथवा मन अथवा प्रतीत्यन्तरकी अपेक्षा नहीं है। यहॉ (आ) प्रमाण है, (ब) नय नहीं है।

इद्रिय अथवा मन अथवा प्रतीत्यन्तरकी अपेक्षा नहीं हैं। यहॉ (आ) प्रमाण है, (ब) नय नहीं है।

B

(ब)नय है (विकलादेश है)

(ख) नयवाक्य-विकलादेश वाक्य-नयसप्तभंगी का वाक्य

(च)भेदोपचार (द्रव्यार्थिक) — ध्रुव अश का कथन, ध्रुव अश अथवा गुणभेद करना, ज्ञान गुण, दर्शन गुण, आनद गुण सद्भूतव्यवहार

(छ) भेदवृत्ति(पर्यायार्थिक) (पर्याय अश वा उत्पाद वा व्यय वा पर)

(थ) सद्भूत व्यवहार:

(ध)	(प)
एकदेश शुद्ध पर्याय, सम्यक् मतिज्ञान (पर्यायार्थिक) अशुद्ध सद्भूत व्यवहार	पूर्ण शुद्ध केवल ज्ञान (पर्यायार्थिक) शुद्धसद्भूत व्यवहार

(द)असद्भूत व्यवहार:

(फ)	(भ)	(म)	(स)	(द २)
अशुद्ध पर्याय राग, क्रोध(बुद्धिपूर्वक) (अबुद्धिपूर्वक), कुमतिज्ञान पर्याय	नाक, कर्म परमाणु, परमाणु के कुछ अविभाग प्रतिच्छेद स्थिति	चष्मे की कॉच	स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान इनको परामर्श करनेवाला वचन	इ त्या दि

(च)	(ध)	(प)	(फ)	(भ)	(म)	(स)	(द २)
सग्रहनय, व्यवहारनय	नैगमादि सात नय	नैगमादि सात नय	नैगमादि सात नय	नैगमादि सात नय	नैगमादि सात नय		

व्यवहारनय

चार्ट न. १४

निजध्रुवचिदानंदात्मा को जानने की पद्धति

'यह' मैं ध्रुवचिदानदात्मा हूँ	←	यहाँ **'यह'** (इदन्ता) की प्रतीति है, इसलिये यह ज्ञान **'प्रत्यक्षज्ञान'** है, यह **शुद्धात्मानुभव** है, **निर्विकल्पज्ञान** है।
'वह' मैं ध्रुवचिदानदात्मा था	←	यहाँ **'वह'** (तत्ता) की प्रतीति है, इसलिये यह ज्ञान **'स्मरणज्ञान'** है, **परोक्षज्ञान** है, शुद्धात्मानुभव नहीं।
जो मैं पूर्व में ध्रुवचिदानदात्मा था 'वह यह' ध्रुवचिदानदात्मा हूँ।	←	यहाँ **'वह + यह'** के सकलन (इदन्ता और तत्ता के सकलन) की प्रतीति है, इसलिये यह ज्ञान **'प्रत्यभिज्ञान'** है, **परोक्षज्ञान** है, शुद्धात्मानुभव नहीं।
'जो जो' जीव है 'वह वह' ध्रुवचिदानदात्मा है	←	यहाँ **'जो जो + वह वह'** रूप व्याप्ति की प्रतीति है, इसलिये यह ज्ञान **'तर्कज्ञान'** है, **परोक्षज्ञान** है, शुद्धात्मानुभव नहीं।
मैं ध्रुवचिदानदात्मा हूँ, क्योंकि यह पर्याय है साध्य साधन	←	यहाँ **'साधन के द्वारा साध्य की'** प्रतीति है, इसलिये यह ज्ञान **'अनुमानज्ञान'** है, **परोक्षज्ञान** है, शुद्धात्मानुभव नहीं।
मैं ध्रुवचिदानदात्मा हूँ	←	यहाँ **'अन्तर्जल्प'** रूप प्रतीति है, इसलिये यह ज्ञान **'नयज्ञान'** है, **परोक्षज्ञान** है, शुद्धात्मानुभव नहीं।

पर्याय को जानने की पद्धति

'यह' मैं दुखी हूँ	←	यहाँ **'यह'** (इदन्ता) की प्रतीति है, इसलिये यह **'प्रत्यक्षज्ञान'** है।
'वह' मैं दुखी था	←	यहाँ **'वह'** (तत्ता) की प्रतीति है, इसलिये यह **'स्मरणज्ञान'** है, **परोक्षज्ञान** है।
जो मैं पूर्व में दुखी था **'वह यह'** दुखी हूँ	←	यहाँ **'यह + वह'** के सकलन (इदन्ता और तत्ता के सकलन) की प्रतीति है, इसलिये यह **'प्रत्यभिज्ञान'** है, **परोक्षज्ञान** है।
'जो जो' *जीव शल्यसहित होता है* 'वह वह' दुखी होता है	←	यहाँ **'जो जो + वह वह'** रूप व्याप्ति की प्रतीति है, इसलिये यह **'तर्कज्ञान'** है, यह **परोक्षज्ञान** है।
मैं दुखी हूँ, क्योंकि मेरे हृदय में शल्य है साध्य साधन	←	यहाँ **'साधन के द्वारा साध्य की'** प्रतीति है, इसलिये यह **'अनुमानज्ञान'** है, **परोक्षज्ञान** है।
मैं दुखी हूँ	←	यहाँ **'अन्तर्जल्प'** रूप प्रतीति है, इसलिये यह **'नयज्ञान'** है, **परोक्षज्ञान** है।

जीव अधिकार

विस्ताररुचि पुनर्नवभिरधिकारै समयसार ज्ञात्वा पश्चाद्भावना करोति। तद्यथा-विस्ताररुचिशिष्य प्रति जीवादिनवपदार्थाधिकारे समयसारव्याख्यान क्रियते। तत्रादौ नवपदार्थाधिकारगाथाया आर्त्तरौद्रपरित्यागलक्षण-निर्विकल्पसामायिकस्थिताना यच्छुद्धात्मरूपस्य दर्शनमनुभवनमवलोकनमुपलब्धि सवित्ति प्रतीति ख्यातिरनुभूतिरस्तदेव **निश्चयनयेन निश्चयचारित्राविनाभावि निश्चयसम्यक्त्व वीतरागसम्यक्त्व भण्यते**। तदेव च गुणगुण्यभेदरूप-निश्चयनयेन शुद्धात्मस्वरूप भवतीत्येका पातनिका। अथवा नवपदार्था भूतार्थेन ज्ञाता सतस्त एवाभेदोपचारेण सम्यक्त्वविपयत्वाद्व्यवहारसम्यक्त्वनिमित्त भवन्ति, निश्चयनयेन तु स्वकीयशुद्धपरिणाम एव सम्यक्त्वमिति द्वितीया चेति पातनिकाद्वय मनसि धृत्वा सूत्रमिद प्ररूपयति -

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपाव च। (१३) आ. ख्या.
आसवसवरणिज्जरबधो मोक्खो य सम्मत्त।।१५।। ता. वृ.

विस्ताररुचिवाला शिष्य नव अधिकार द्वारा समयसार को जानकर वाद में शुद्धात्मानुभूति करता है। वह इस प्रकार हे, विस्ताररुचिवाले शिष्य को समझाने के लिये जीवादि नवपदार्थ अधिकार के द्वारा समयसार का व्याख्यान किया है। वहाँ प्रथम नवपदार्थ के अधिकार की गाथा द्वारा आर्त्त-रौद्र ध्यान के परित्याग लक्षणवाले **निर्विकल्पसामायिक** में स्थित रहनेवालों का जो शुद्धात्मरूप का दर्शन, शुद्धात्मा का अनुभव, शुद्धात्मा का अवलोकन, शुद्धात्मा की उपलब्धि, सवित्ति, प्रतीति, ख्याति, शुद्धात्मा की अनुभूति है उसी को ही निश्चयनय से निश्चय चारित्र के अविनाभावी निश्चयसम्यक्त्वरूप **वीतराग सम्यक्त्व** कहा जाता हे। और वह ही गुणगुणी के अभेदरूप (**अभेदवृत्ति** से) निश्चयनय से शुद्धात्मा का स्वरूप है- यह प्रथम पातनिका है।

अथवा द्वितीय पातनिका-नवपदार्थ भूतार्थ से जानते रहने पर **अभेदोपचार** से (व्यवहारनय से) सम्यक्त्व का विषय होने से व्यवहार सम्यक्त्व के निमित्त होते हैं। लेकिन निश्चयनय से अपने आत्मा का **शुद्धपरिणाम** (स्वानुभूति) ही **सम्यक्त्व** है। (स्वानुभूति में रहना-आत्मा को सुखमय अनुभवना है) ऐसी दो पातनिकायें मन में धारण करके सूत्र कहते हैं -

गाथार्थ - (**भूदत्थेण**) भूतार्थनय से (**जीवाजीवा**) जीव, अजीव, (**पुण्णपाव**) पुण्य, पाप (**च**) तथा (**आसवसवरणिज्जरबधो**) आस्रव, सवर, निर्जरा, वध (**य**) और (**मोक्खो**) मोक्ष (**य**) और प्रमाण, नय, निक्षेपादि (**अभिगदा**) एक आत्मा रूप से ज्ञात होने पर (**सम्मत्त**) यह आत्ममयता सम्यग्दर्शन है वही शुद्धात्मानुभूति है।

भूदत्थेण भूतार्थेन निश्चयनयेन शुद्धनयेन अभिगदा अभिगता निर्णीता निश्चिता ज्ञाता सत के ते ? **जीवाजीवा य पुण्णपाव च आसवसवरणिज्जरबधो मोक्खो य** जीवाजीवपुण्यपापास्रवसवरनिर्जरा-बधमोक्षस्वरूपा नवपदार्था । **सम्मत्त** त एवाभेदोपचारेण सम्यक्त्वविषयत्वात्कारणत्वात्सम्यक्त्व भवन्ति। निश्चयेनपरिणाम एव सम्यक्त्वमिति। नवपदार्था भूतार्थेन ज्ञाता सत सम्यक्त्व भवन्तीत्युक्त भवद्भिरतत्कीदृश भूतार्थपरिज्ञानमिति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह। यद्यपि नवपदार्था तीर्थवर्त्तनानिमित्त प्राथमिकशिष्यापेक्षया भूतार्था भण्यन्ते तथाप्यभेदरत्नत्रय लक्षणनिर्विकल्पसमाधिकाले अभूतार्था, असत्यार्था, शुद्धात्मस्वरूप न भवन्ति। तस्मिन् **परमसमाधिकाले नवपदार्थमध्ये शुद्धनिश्चयनयेनैक एव शुद्धात्मा प्रद्योतते प्रकाशते प्रतीयते अनुभूयत इति।**

या चानुभूति प्रतीति शुन्द्रत्मोपलब्धि सा चैव निश्चयसम्यक्त्वमिति सा चैवानुभूतिर्गुणगुणिनो-र्निश्चयनयेनाभेदविवक्षाया शुद्धात्मस्वरूपमिति तात्पर्यम्।

किंच, ये च प्रमाणनयनिक्षेपा परमात्मादितत्त्वविचारकाले सहकारिकारण भूतास्तेऽपि सविकल्पावस्थायामेव भूतार्था । परमसमाधिकाले पुनरभूतार्थास्तेषु मध्ये भूतार्थेन शुद्धजीव एक एव प्रतीयत इति नवपदार्थाधिकार गाथा गता।।१५।।

टीकार्थ - **भूदत्थेण** भूतार्थ से-निश्चयनय से शुद्धनिश्चयनय से **अभिगदा** अभिगत होते हैं, निर्णीत होते हैं, निश्चित होते हैं, जाने जाते हैं, ज्ञात होते हैं।

शका - वे कौन ज्ञात होते हैं ?

समाधान - **जीवाजीवा य पुण्णपाव च आसव सवर ण्जिर बधो मोक्खो य** जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, सवर, निर्जरा, बध और मोक्ष स्वरूप नव पदार्थ भूतार्थ से (शुद्धनिश्चयनय से) ज्ञात होते हैं। **सम्मत्त** अभेदोपचार से वे नवपदार्थ ही सम्यक्त्व के विषय के रूप कारण होने से सम्यक्त्व हैं। **निश्चय से स्वपरिणाम ही सम्यक्त्व है।**

शका - भूतार्थनय के द्वारा जाने हुये नवपदार्थ सम्यक्त्व हैं, ऐसा जो आपने कहा है, उस भूतार्थ के ज्ञान का क्या स्वरूप है ?

समाधान - यद्यपि प्राथमिक शिष्य की अपेक्षा से तीर्थ प्रवृत्ति के लिये निमित्तमात्र नवपदार्थ भूतार्थ (प्रयोजनभूत) कहे जाते हैं तथापि अभेदरत्नत्रयलक्षणवाले निर्विकल्पसमाधि के काल में वे नवपदार्थ अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं, अपयोजनभूत हैं, शुद्धात्मस्वरूप नहीं हैं। उस शुन्द्रात्मानुभव में परमसमाधिकाल में नवपदार्थों में शुन्द्रनिश्चयनय से एक शुन्द्रात्मा की ही प्रतीति होती है, शुन्द्रात्मा का ही अनुभव-प्रद्योत-प्रकाश होता है। और **जो यह शुद्धात्मानुभूति, प्रतीति, शुद्धात्मोपलब्धि है वही निश्चयसम्यक्त्व है।** वह स्वानुभूति ही गुण और गुणी में निश्चयनय से अभेद विवक्षा (अभेदवृत्ति नय) में शुद्धात्मा का स्वरूप है, ऐसा तात्पर्य है।

और जो प्रमाण-नय-निक्षेप हैं वे परमात्मादि तत्त्वविचारकाल में सहकारी कारणभूत हैं, वे भी सविकल्प अवस्था में ही तावत्काल भूतार्थ, प्रयोजनभूत हैं, परतु परमसमाधि काल में वे अभूतार्थ हैं प्रयोजनभूत नहीं हैं। उन नवपदार्थों में ओर प्रमाण-नय-निक्षेपों में भूतार्थ से एक शुद्धजीव की ही प्रतीति होती है। इस प्रकार नवपदार्थ के अधिकार की गाथा समाप्त हुई।

तत्र नवाधिकारेषु मध्ये प्रथमतस्तावदष्टाविशतिगाथापर्यन्त जीवाधिकार कथ्यते। तथाहि-सहजानन्दैकस्वभावशुद्धात्मभावनामुख्यतया **जो पस्सदि अप्पाणमित्यादि** सूत्रपाठक्रमेण प्रथमस्थले गाथात्रयम्। तदनतर दृष्टातदार्ष्टान्तद्वारेण भेदाभेदरत्नत्रयभावनामुख्यतया **दसणणाणचरित्ताणि** इत्यादि द्वितीयस्थले गाथात्रयम्। तत पर जीवस्याप्रतिवुद्धत्वकथनेन प्रथमगाथा, वधमोक्षयोग्यपरिणामकथनेन द्वितीया, जीवो निश्चयेन रागादिपरिणामानामेव कर्त्तेति तृतीया चेत्येव **कम्मे णोकम्मम्हि य** इत्यादि तृतीयस्थले परस्परसम्वन्धनिरपेक्षस्वतत्र गाथात्रयम्। तदनतरमिधनाग्निदृष्टातेनाप्रतिवुद्धलक्षणकथनार्थम् **अहमेदमित्यादि** चतुर्थस्थले सूत्रत्रयम्।

अत पर शुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिलक्षणाभेदरत्नत्रयभावनाविषये योऽसावप्रतिबुद्धस्तत्प्रति-वोधनार्थं अण्णाणमोहिदमदी इत्यादि पचमस्थले सूत्रत्रयम्।

अथ निश्चयरत्नत्रयलक्षणशुद्धात्मतत्त्वमजानन् देह एवात्मेति योऽसौ पूर्वपक्ष करोति तस्य स्वरूपकथनार्थम् **जदि जीवो** इत्यादि पूर्वपक्षरूपेण गाथैका। तदनतर व्यवहारेण देहस्तवन निश्चयेन शुद्धात्मस्तवनमिति नयद्वयविभागप्रतिपादनमुख्यत्वेन **ववहारणओ भासदि** इत्यादि परिहारसूत्रचतुष्टयम्।

भावार्थ - "तत्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम्" इस सूत्र का अभिप्राय जीवादि सप्ततत्त्वों का या नव पदार्थो का हेय-उपादेयरूप ज्ञान करना यह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। और इन सात तत्त्वों को अभूतार्थ-अप्रयोजनभूत समझकर इन सात तत्त्वों में अथवा **नव पदार्थों में सदा ध्रुवरूप से रहनेवाला जो एक कारण परमात्मा है उसी को जानना-अनुभव करना इसको निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं।**

निश्चय सम्यग्दर्शन होने पर-शुद्धात्मानुभूति होने पर उसी में दृढ स्थिरता का अभ्यास करने के लिए जो सात तत्त्वों के भेद चितवन का अभ्यास किया जाता है, उसी को व्यवहारनय से सम्यग्दर्शन कहते हैं।

भूतार्थनय से सात तत्त्वों में अन्तर्लीन गूढ शुद्धात्मा की अनुभूति किये विना किया गया जो सात तत्त्वों का चितवन है उसको व्यवहारनय से भी सम्यग्दर्शन नहीं कहते है।।१५।।

वहॉ नव अधिकारों में पहले २८ गाथापर्यन्त जीवाधिकार कहा जाता है। वहॉ सहजानद एक स्वभावमय शुद्धात्मा की भावना की मुख्यता से **'जो पस्सदि अप्पाण'** इत्यादि सूत्रपाठ के क्रम से प्रथम स्थल में तीन गाथायें हैं। उसके पश्चात् दृष्टात ओर दार्ष्टान्तद्वार से भेदरत्नत्रय की भावना और अभेदरत्नत्रय की भावना की मुख्यता से **'दसणणाणचरित्ताणि'** इत्यादि द्वितीयस्थल में तीन गाथायें हैं। इसके वाद जीव की अप्रतिवुद्धता (अज्ञानता) का कथन करनेवाली प्रथम गाथा है। द्वितीय गाथा में वध-मोक्ष योग्य परिणाम का कथन है। निश्चय से (अशुद्धनिश्चयनय से) जीव ही रागादि परिणामों का कर्ता है, ऐसा तृतीय गाथा में कथन है। इस प्रकार **'कम्मे णोकम्मम्हि य'** इत्यादि तृतीयस्थल में परस्परसबधनिरपेक्ष स्वतत्र तीन गाथायें हैं।

उसके वाद अप्रतिवुद्ध का लक्षण कथन करने के लिए इधन और अग्नि के दृष्टात की **'अहमेदमित्यादि'** तीन गाथायें चतुर्थस्थल में हैं।

अथ परमोपेक्षालक्षण शुद्धात्मसवित्तिरूपनिश्चयस्तुतिमुख्यत्वेन **जो इदिए जिणित्ता** इत्यादि सूत्रत्रयम्। एव गाथाष्टकसमुदायेन षष्ठस्थलम्। तत पर निर्विकारस्वसवेदनज्ञानमेव विषयकषायादि परद्रव्याणा प्रत्याख्यानमिति कथनेन **णाण सव्वे भावा** इत्यादि सप्तमस्थले गाथाचतुष्टयम्। तदनतरमनन्तज्ञानादिलक्षणशुद्धात्म- सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरण रूपाभेदरत्नत्रयात्मकस्वसवेदनमेव भावितात्मन स्वरूपमित्युपसहारमुख्यतया **अहमेक्को खलु सुद्धो** इत्यादि सूत्रमेकम्। एव दडकान्विहायाष्टाविशतिसूत्रै सप्तभिरतरस्थलैर्जीवाधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा -

अथ प्रथमगाथायामबद्धस्पृष्टमनन्यक नियतमविशेषमसयुक्त ससारावस्थायामपि शुद्धनयेन बिसिनीपत्र मृत्तिकावार्धिसुवर्णोष्ण्यरहितजलवत्पञ्चविशेषणविशिष्ट शुद्धात्मान कथयति-

जो पस्सदि अप्पाण अबद्धपुट्ठ अणण्णय णियद। (१४)
अविसेसमसजुत्त त सुद्धणय वियाणीहि।।१६।।

इसके बाद पाँचवें स्थल में शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान, सम्यक्ज्ञान और शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाले अभेदरत्नत्रय की भावना के विषय में जो अज्ञानी है उसको समझाने के लिये **'अण्णाणमोहिदमदी'** इत्यादि तीन गाथायें पचम स्थल में हैं। इसके बाद निश्चयरत्नत्रय लक्षण वाले शुद्धात्मतत्त्व को न जाननेवाला (शुद्धात्मानुभूति को न जाननेवाला) जो देह को ही आत्मा कहता है यह जो पूर्वपक्ष है, उसका स्वरूप कथन करने के लिये **'जदि जीवो'** इत्यादि पूर्वपक्षरूप से एक गाथा है। तदनतर देहस्तवन व्यवहार से है, शुद्धात्मस्तवन निश्चय से है, ऐसे नयविभाग के प्रतिपादन की मुख्यता से **'ववहारणओ भासदि'** इत्यादि परिहार स्वरूप से चार गाथायें हैं। इसके बाद परम उपेक्षालक्षणवाली शुद्धात्मानुभूति स्वरूप निश्चयस्तुति की मुख्यता से **'जो इदिये जिणित्ता'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। इसप्रकार आठ गाथाओं में छट्ठा स्थल है।

इसके पश्चात् सातवें स्थल में निर्विकार स्वसवेदनज्ञान को (निर्विकल्प अनुभूति को) ही, विषयकषायादि परद्रव्यों का प्रत्याख्यान कहते हैं, ऐसा कथन करते हुए **'णाण सव्वे भावा'** इत्यादि चार गाथायें हैं।

तदनतर अनतज्ञानादिलक्षणवाले शुद्धात्मा के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक स्वसवेदन की ही भावना करने वाले आत्मा का स्वरूप है - इस प्रकार उपसहार की मुख्यता की अपेक्षा से (मुख्यता से) **'अहमेक्को खलु सुद्धो'** इत्यादि एक गाथा है। इस प्रकार दडकों के विना २८ गाथाओं में सात अतर स्थलों से जीवाधिकार में समुदाय पातनिका है।

यहाँ अब पहली गाथा में यह कहते हैं कि **ससार अवस्था में भी शुद्धनय से आत्मा** (१) अबद्ध अस्पृष्ट, (२) अनन्य, (३) नियत (४) अविशेष, (५) असयुक्त - **इन पाँच विशेषणों से विशिष्ट है,** जैसे कमलपत्र, मृत्तिका, समुद्र, स्वर्ण और उष्णता रहित जल होता है।

गाथार्थ - **(जो)** जो **(अप्पाण)** आत्मा को **(अबद्धपुट्ठ)** अबद्ध, अस्पृष्ट, **(अणण्णय)** अन्यत्व रहित, **(णियद)** नियत याने चलाचलतारहित, **(अविसेसम्)** विशेष रहित **(असजुत्त)** असयुक्त याने अन्य के सयोग से रहित ऐसा **(पस्सदि)** देखता याने अनुभवता है **(त)** उसे **(सुद्धणय)** शुद्धनय **(वियाणीहि)** जानो।

जो पस्सदि य कर्त्ता पश्यति जानाति। कम् ? **अप्पाण** शुद्धात्मानम् कथभृतम् ? **अबद्धपुट्ठ** द्रव्यकर्म नोकर्मभ्यामसस्पृष्ट जले विसिनीपत्रवत्। **अणण्णय** अनन्यक नरनारकादिपर्यायेपु द्रव्यरूपेण तमेव स्थासकोशकुशूल घटादिपर्यायेषु मृत्तिकाद्रव्यवत्। **णियद** नियतमवस्थित निस्तरङ्गोत्तरङ्गवस्थासु समुद्रवत्। **अविसेस** अविशेषमभिन्न ज्ञानदर्शनादिभेदरहित गुरुत्वस्निग्धत्वपीतत्वादिधर्मेपु सुवर्णवत्। **असजुत्त** असयुक्तमसवद्ध रागादिविकल्परूपभावकर्मरहित निश्चयनयेनोष्ण्यरहितजलवदिति। **त सुद्धणय वियाणीहि** त पुरुपमेवाभेदनयेन शुद्धनयविषयत्वाच्छुद्धात्म-साधकत्वाच्छुद्धाभिप्रायपरिणतत्वाच्च शुद्ध विजानीहीति भावार्थ ।।१६।।

टीकार्थ - **जो पस्सदि** जो देखता है, जानता है (अनुभवता है) शका-किसको जानता है ?

समाधान - **अप्पाण** शुद्धात्मा को जानता है।

शका - किस प्रकार जानता है ?

समाधान - (१) **अबद्धपुट्ठ** - अवद्धअस्पृष्ट- जैसे जल में कमलपत्र रहते हुए भी (स्वभाव की दृष्टि से) कमलपत्र जल को स्पर्श नहीं करता, जल से वद्ध नहीं होता, उसी प्रकार ससार में यह आत्मा द्रव्यकर्म-नोकर्म से सस्पर्श नहीं करता है। यहॉ वद्ध से सश्लेपरूप वध और स्पृष्ट शव्द से सयोगमात्र समझना।

(२) **अणण्णय** - अनन्य - स्थास, कोश, कुशूल और घटादि पर्यायों में (स्वभाव से) मृत्तिका मृत्तिका रूप ही वनी रहती है, उसी प्रकार नर नारकादि पर्यायों में द्रव्य रूप से (स्वभाव से) आत्मा शुद्ध ही रहता है।

(३) **णियद** - नियत - जिस प्रकार निस्तरग ओर उत्तरग रूप चचल अवस्थाओं में परिणमता हुआ समुद्र नियत ही हे, उसी प्रकार आत्मा में पड्गुणहानिवृद्धिरूप पर्यायों के होते रहते हुए भी आत्मा द्रव्य रूप से अवस्थित है।

(४) **अविसेस** - अविशेष - जिस प्रकार गुरुत्व, स्निग्धत्व, पीतत्वादि गुणधर्म कथचित् विशेषरूप से सुवर्ण में होते हुए भी एक अभिन्नता (अभेदता) से एक सुवर्ण ही है, उसी प्रकार आत्मा में ज्ञानदर्शनादि गुणधर्म कथचित् विशेष (भेद) होते हुए भी अभेददृष्टि से आत्मा एक ही हे, वहॉ गुणभेद नहीं हें।

(५) **असजुत्त** - असयुक्त - जिस प्रकार तप्त हुए जल की ओर जल के शीतलस्वभाव की दृष्टि से देखे तो जल उष्णता रहित ही है, उसी तरह निश्चयनय से आत्मा रागादि विकल्प रूप भावकर्म रहित ऐसा असयुक्त असबद्ध है। **त सुद्धणय वियाणीहि** - ऐसे पॉचों विशेपणों से विशिप्ट आत्मा को अभेदनय के द्वारा शुद्धनय का विपय होने से, शुद्धात्मा का साधकत्व होने से, शुद्ध अभिप्रायरूप परिणति होने से शुद्ध जानो, ऐसा भावार्थ है।

भावार्थ - चतुर्थ गुणस्थान से सिद्ध दशा तक के जीव अपने आत्मा को अवद्धस्पृष्टादि अनुभव करते हें। यह कथन शुद्धनय का विषय जानो। यहॉ **अबद्ध - अस्पृष्ट** याने द्रव्यकर्म-नोकर्म से अवद्ध - अस्पृष्ट है, **अनन्य** याने अन्यत्वरहित, **नियत** याने षड्गुणहानि - वृद्धि न होनेवाला ऐसा नियत स्वभाव वाला आत्मा है, **अविशेष**-अखड आत्मा की तरफ देखने पर गुणभेद से रहित है और **असयुक्त** याने रागादि विकल्परूप भावकर्म से रहित ऐसा असयुक्त एक अखड आत्मा हे।

अथ द्वितीयगाथाया या पूर्वम् भणिता शुद्धात्मानुभूति सा चैव निर्विकारस्वसवेदनज्ञानानुभूतिरिति प्रतिपादयति-

जो पस्सदि अप्पाण अबद्धपुट्ठ अणण्णमविसेस। (१५)
अपदेससुत्तमज्झ[१] पस्सदि जिणसासण सव्व।।१७।।

जो पस्सदि य कर्त्ता पश्यति जानात्यनुभवति। कम् ? **अप्पाण** शुद्धात्मानम्। किविशिष्ट ? **अवद्धपुट्ठ** अवद्धस्पृष्टम्। अत्र वद्धशब्देन सश्लेषरूपवधो ग्राह्य । स्पृष्टशब्देन तु सयोगमात्रमिति। द्रव्यकर्मनोकर्मभ्यामसस्पृष्ट जले विसिनीपत्रवत्।

अणण्ण अनन्य मृत्तिकाद्रव्यवत्। **अविसेस** अविशेषमभिन्न सुर्णवत्। नियतमवस्थित समुद्रवत्। असयुक्त परद्रव्यसयोगरहित निश्चयनयेनौष्ण्यरहितजलवदिति। नियतासयुक्तविशेषणद्वय सूत्रे नास्ति। कथ लभ्यत इति चेत् ? सामर्थ्यात्। तदपि कथ ? **श्रुतप्रकृतसामर्थ्ययुक्तो हि भवति सूत्रार्थ** इति वचनात्।

ऐसा अवद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असयुक्त स्वभाव आत्मानुभव का विषय है (या शुद्धनय का विषय है अथवा शुद्धात्मानुभूति, निर्विकल्प समाधि है) ।।१८।।

पूर्व गाथा मे जो शुद्धात्मानुभूति का कथन किया है, वह **शुद्धात्मानुभूति ही निर्विकार स्वसवेदनज्ञानानुभूति** है, ऐसा इस गाथा में प्रतिपादन करते हैं -

गाथार्थ - (**जो**) जो (**अप्पाण**) आत्मा को (**अवद्धपुट्ठ**) अवद्धस्पृष्ट (**अणण्ण**) अनन्य (**अविसेस**) अविशेष (तथा उपलक्षण से नियत और असयुक्त) (**पस्सदि**) देखता है, अनुभवता, जानता है वह (**सव्व जिणसासण**) सर्व जिनशासन को (**पस्सदि**) देखता है, अनुभवता है, जानता है (**अपदेससुत्तमज्झ**) क्योंकि **श्रुतज्ञान स्वय आत्मा होने से ज्ञान की अनुभूति ही आत्मानुभूति है।**

टीकार्थ - **जो पस्सदि** जो देखता है, जानता है, अनुभवता है।

शका - किसको अनुभवता है ?

समाधान - **अप्पाण** जो अपने शुद्ध आत्मा को अनुभवता है।

शका - किस प्रकार के शुद्ध आत्मा को अनुभवता है ?

समाधान - **अबद्धपुट्ठ** - यहॉ वद्ध शब्द से सश्लेषरूप वध ग्राह्य है और स्पृष्ट शब्द से सयोग मात्र ग्राह्य है। जैसे जल में कमलपत्र असस्पृष्ट है, उसी तरह आत्मा को द्रव्यकर्म नोकर्म से असस्पृष्ट अनुभवता है।

अणण्ण और जिस तरह स्थास, कोश, कुशूल, घटादि पर्यायों में मृत्तिका द्रव्य अनन्य है, उसी तरह नर-नारकादि पर्यायों में आत्मा द्रव्य रूप से अनन्य है। एक ही है। अन्य-अन्य नहीं है।

अविसेस और जिस तरह गुरुत्वादि गुण सुवर्ण से अभिन्न हैं, उसी तरह ज्ञानदर्शनादि गुणों से आत्मा अभिन्न होने से अविशेष है, अभिन्न है। भिन्न-भिन्न नहीं है।

और जैसे समुद्र में निस्तरग और उत्तरग रूप चचलता होने पर भी समुद्र **नियत** ही है, वैसे आत्मा में षड्गुणहानिवृद्धि होते हुए भी आत्मा **नियत** है। अनियत-वृद्धिहानिरूप नहीं है।

---

१ पाठान्तर - अपदेससातमज्झ

स पुरुष **पस्सदि** पश्यति जानाति। कि तत् ? **जिणसासण** जिनशासन अर्थसमयरूप जिनमतम्। **सव्व** सर्व द्वाद्वशाङ्गपरिपूर्णम्। कथभूतम् ? **अपदेससुत्तमज्झ** अपदेशसूत्रमध्य अपदिश्यतेऽर्थो येन स भवत्यपदेश शब्दो द्रव्यश्रुतमिति यावत्। सूत्र परिच्छित्तिरूप भावश्रुत ज्ञानसमय इति यावत्। तेन शव्दसमयेन वाच्य ज्ञानसमयेन परिच्छेद्यमपदेशसूत्रमध्य भण्यते इति।

अयमत्र भाव यथा लवणखिल्य एकरसोऽपि फलशाकपत्रशाकादिपरद्रव्यसयोगेन भिन्नभिन्नास्वाद प्रतिभात्यज्ञानिनाम्। ज्ञानिना पुनरेकरस एव तथात्माप्यखड ज्ञानस्वभावोऽपि स्पर्शरसगधशब्दनीलपीतादिवर्ण-ज्ञेयपदार्थविपयभेदेनाज्ञानिना निर्विकल्पसमाधिभ्रष्टाना खडखडज्ञानरूप प्रतिभाति। ज्ञानिना पुनरखडकेवल- ज्ञानस्वरूप एव। इति हेतोरखडज्ञानरूपे शुद्धात्मनि ज्ञाते सति सर्वम् जिनशासन ज्ञात भवतीति मत्वा समस्तमिथ्यात्वरागादिपरिहारेण तत्रैव शुद्धात्मनि भावना कर्त्तव्येति। किञ्च, **मिथ्यात्वशब्देन दर्शनमोहो रागादिशब्देन चारित्रमोह इति सर्वत्र ज्ञातव्यम्**।।१७।।

और जिस तरह उष्ण जल भी निश्चयनय से शीत स्वभावमय है, उसी तरह यह आत्मा **परद्रव्यसयोगरहित** (रागादिविकल्परूप भावकर्मरहित) स्वभावरूप असयुक्त है।

शका - नियत ओर असयुक्त शव्द सूत्र में नहीं हैं, अर्थ में कैसे लिये हैं ?

समाधान - "**श्रुतप्रकृतसामर्थ्ययुक्तो हि भवति सूत्रार्थ**"।

याने सूत्र का अर्थ शास्त्र के प्रकरण सामर्थ्य से सहित होता है। ऐसा वचन है। इस आधार से पूर्व गाथा में दिये हुए नियत और असयुक्त इनका भी सकेत यहॉ लेना चाहिए।

पस्सदि ऐसे विशिष्ट आत्मा को देखता है। वह पुरुष देखता है, अनुभवता है।

शका - ऐसा विशिष्ट अनुभव करने वाला वह क्या देखता है (याने क्या अनुभवता है) ?

समाधान - **जिणसासण सव्व** सर्व जिनशासन को द्वादशागपरिपूर्ण जिनशासनको- अर्थसमयरूप जिनमत को देखता है - जानता है- अनुभवता है।

शका - वह अनुभव कैसा (किस तरह) है ?

समाधान - वह अनुभव '**अपदेससुत्तमज्झ**' है याने वह अनुभव ज्ञानानुभूति रूप है।

शका - '**अपदेससुत्तमज्झ**' याने ज्ञानानुभूति यह अर्थ किस तरह हुआ ?

समाधान - '**अपदेससुत्तमज्झ**' याने अपदेशसूत्रमध्य। अपदेस याने शव्द (**अपदिश्यतेऽर्थो येन स भवति अपदेश**) अर्थात् जिस के द्वारा पदार्थ कहा जाय वह अपदेश-शव्द है। याने अपदेश का अर्थ द्रव्यश्रुत है। सूत्र याने परिच्छित्तिरूप ज्ञानमय भावश्रुत अर्थात् ज्ञानसमय अथवा ज्ञानमय आत्मा है। इस प्रकार उस शव्दसमय से जो वाच्य और ज्ञानसमय से जो परिच्छेद्य है उसको '**अपदेससूत्रमध्य**' कहा गया है।

अथ तृतीयगाथाया सम्यग्ज्ञानादिक सर्वम् शुद्धात्मभावनामध्ये लभ्यत इति निरूपयति-

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे सवरे जोगे।।१८।।

इस तरह 'अपदेससुत्तमज्झ' का अर्थ ज्ञानमय आत्मा की अनुभूति याने ज्ञानानुभूति शुद्धात्मानुभूति ऐसा है। क्योंकि सर्व जिनशासन का - जिनवाणी का सार शुद्धात्मानुभूति है।

इसका भाव यह है कि, जिस प्रकार लवण की डली एक (खार) क्षार रसवाली होती हुई भी अज्ञानियों को फलसाग और पत्रसाग आदि परद्रव्य के सयोग से भिन्न-भिन्न स्वादवाली जान पडती है। और ज्ञानियों को वह एक खारी रसवाली ही अनुभव में आती है।

उसी तरह आत्मा भी एक अखड ज्ञान स्वभाववाली होते हुए भी अज्ञानियों को, निर्विकल्पसमाधि से भ्रष्टवालों को स्पर्शरसगधशब्दनीलपीतादिवर्णरूप ज्ञेयपदार्थ के विषय भेद से वह आत्मा अनेक खड-खडज्ञानरूप जान पडती है, और ज्ञानियों को वह ही आत्मा अखड केवल ज्ञानस्वरूप अनुभव में आती है।

इस तरह अखड ज्ञानस्वरूप शुद्धात्मा का अनुभव होने पर सर्व जिनशासन का ज्ञान हो जाता है। यह जानकर मानकर समस्त मिथ्यात्वरागादि से रहित वहाँ ही शुद्धात्मा में (स्वभाव में, शुद्ध पारिणामिक भाव में) भावना (भावभासना याने अनुभव) करना कर्त्तव्य है। और विशेष यह है कि, **मिथ्यात्व शब्द से दर्शनमोह और रागादि शब्द से चारित्रमोह ऐसा अर्थ सर्वत्र जानना चाहिये,** अर्थात् आत्मा का स्वभाव (शुद्ध पारिणामिक भाव) दर्शनमोह से और चारित्रमोह से रहित है, ऐसे शुद्धात्मा की अनुभूति करना कर्तव्य है, ऐसा सर्वत्र जानना चाहिये। (ऐसी शुद्धात्मानुभूति चतुर्थ गुणस्थान से शुरु होती है)।।१७।।

अब इस तृतीय गाथा में **शुद्धात्म भावभासना में (शुद्धात्मानुभूति में) सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि सब की प्राप्ति होती है,** ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(खु)** निश्चय से **(मज्झ णाणे)** मेरे ज्ञान में **(आदा)** आत्मा है, **(मे दसणे)** मेरे दर्शन में **(य)** और **(चरित्ते)** मेरे चारित्र में **(आदा)** आत्मा है, **(पच्चक्खाणे)** मेरे प्रत्याख्यान में **(आदा)** आत्मा है **(य)** और **(मे सवरे जोगे)** मेरे सवर में तथा योग में (शुद्धोपयोग में) **(आदा)** आत्मा है।

टीकार्थ - **आदा खु मज्झ** निश्चय से शुद्धात्मा मेरा है।

शका - किस विषय में मेरा शुद्धात्मा है ?

समाधान - **णाणे आदा मे दसणे चरित्ते य आदा पच्चक्खाणे आदा मे सवरे जोगे** सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र, प्रत्याख्यान, सवर और शुद्धोपयोग की भावभासना में मेरा शुद्धात्मा है।

शका - **'योगे'** इस शब्द का क्या अर्थ है ?

आदा शुद्धात्मा। खु स्फुट। मज्झ मम भवति। क्व विषये ? **णाणे आदा मे दसणे चरित्ते य आदा पच्चक्खाणे आदा मे सवरे जोगे** सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रप्रत्याख्यानसवरयोगभावनाविषये। **योगे** कोऽर्थ ? निर्विकल्पसमाधौ परमसामायिके परमध्याने चेत्येको भाव । भोगाकाक्षानिदानवधशल्यादिभावरहिते शुद्धात्मनि ध्याते सर्व सम्यग्ज्ञानादिक लभ्यत इत्यर्थ । एव शुद्धनयव्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथात्रय गतम्।।१८।।

इत ऊर्ध्वम् भेदाभेदरत्नत्रयमुख्यत्वेन गाथात्रय कथ्यते। तद्यथा-प्रथमगाथाया पूर्वार्द्धेन भेदरत्नत्रयभावनामपरार्द्धेन चाभेदरत्नत्रयभावना कथयति-

दसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्च। (१६)
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाण चेव णिच्छयदो।।१९।।

दसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि सेवितव्यानि साधुना व्यवहारनयेन नित्य सर्वकाल। **ताणि पुण जाण तिण्णि वि** तानि पुनर्जानीहि त्रीण्यपि। **अप्पाण चेव** शुद्धात्मान चैव। **णिच्छयदो** निश्चयत शुद्धनिश्चयत । अयमत्रार्थ - पचेंद्रियविषय क्रोधकषायादिरहितनिर्विकल्पसमाधिमध्ये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र-त्रयमस्तीति।।१९।।

समाधान - निर्विकल्पसमाधि में, परमसामायिक में, परमध्यान में इन सबका एक ही भाव हे। भोग, आकाक्षा, निदान, वध, शल्यादि भाव से रहित (पारिणामिक भावस्वरूप) **स्वशुद्धात्मा का ध्यान करने से सर्व सम्यग्ज्ञानादिक** (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, प्रत्याख्यान, सवर, ओर शुद्धोपयोग) **की प्राप्ति होती है।** इस प्रकार शुद्धनय के (आत्मानुभूति के) कथन की मुख्यता से प्रथम स्थल में तीन गाथायें समाप्त हुई।।१८।।

इसके आगे भेदाभेदरत्नत्रय की मुख्यत्वा से तीन गाथायें कही जाती हें। वह इस प्रकार है- प्रथम गाथा में पूर्वार्द्ध से भेदरत्नत्रय की भावना का और उत्तरार्द्ध से अभेदरत्नत्रय की भावना का कथन किया है-

गाथार्थ '- **(साहुणा)** साधक के द्वारा अथवा साधु पुरुप के द्वारा **(दसणणाणचरित्ताणि)** दर्शन, ज्ञान और चारित्र **(णिच्च)** नित्य अथवा निरतर **(सेविदव्वाणि)** सेवन किये जाना चाहिये, **(पुण)** और **(ताणि तिण्णि वि)** वे तीन हें तो भी **(णिच्छयदो)** निश्चयनय से **(अप्पाण एव)** एक आत्मा ही हे **(जाण)** ऐसा जानो **(च)** और अपने एक आत्मा का ही अनुभव करो।

टीकार्थ - दसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणिसाहुणा णच्चि व्यवहारनय से साधु पुरुप को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का नित्य सेवन करना योग्य है। **ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाण चेव णिच्छयदो** और शुद्धनिश्चय से वे तीनों भी एक शुद्ध आत्मा ही हैं ऐसा जानो। इसका अर्थ यह है कि, पचेंद्रियविपय क्रोधकपायादि से रहित ऐसे निर्विकल्पसमाधि में सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ये तीनों हैं। अर्थात् निर्विकल्पसमाधि याने सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमय आत्मा ऐसा ही हे। (अथवा अभेदरत्नत्रय याने निर्विकल्पसमाधि है।)

अथ गाथाद्वयेन तामेव भेदाभेदरत्नत्रयभावना दृष्टातदार्ष्टान्ताभ्या समर्थयति -

जह णाम को वि पुरिसो रायाण जाणिऊण सद्दहदि। (१७)
तो त अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण।। २०।।
एव हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो। (१८)
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण।। २१।।

जह यथा। **णाम** अहो स्फुट वा। **को वि** कोऽपि कश्चित्। **पुरिसो** पुरुष । **रायाण** राजानम्। **जाणिऊण** छत्रचामरादिराजचिन्हैर्ज्ञात्वा। **सद्दहदि** श्रद्धत्ते अयमेव राजेति निश्चिनोति। **तो** ततो ज्ञानश्रद्धानानतरम्। **त** त राजानम्। **अणुचरदि** अनुचरति आश्रयत्याराधयति।

भावार्थ - इससे यह सिद्ध होता है कि, **शुद्धात्मानुभूति होते समय ही श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र एक ही समय में सम्यक्रूप से परिणमित होते हैं।** याने चतुर्थ गुणस्थान प्रगट होते समय में सम्यक्श्रद्धा सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता है। तभी वह अविरत सम्यग्दृष्टि होता हुआ भी मोक्षमार्गस्थ है। तत्त्वार्थसूत्र में कहा भी है, **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग** ।।१९।।

यहाँ उस ही भेदाभेदारत्नत्रय की भावना का दृष्टात-दार्ष्टान्त से समर्थन करते हैं -

गाथार्थ - (**जह णाम**) जैसे (**को वि**) कोई (**अत्थत्थीओ पुरिसो**) धन का चाहनेवाला पुरुष (**रायाण**) राजा को (**जाणिऊण**) जानकर (**सद्दहदि**) श्रद्धान करता है (**तो**) उसके वाद (**त**) उसकी (**पयत्तेण अणुचरदि**) अच्छी तरह सेवा करता है।

(**एव हि**) इसी तरह (**मोक्खकामेण**) मोक्ष को चाहनेवाले के द्वारा (**जीवराया**) जीवरूप राजा (**णादव्वो**) जानना योग्य है (**पुणो य**) और फिर (**तय**) उसका (**सद्दहेदव्वो**) श्रद्धान करना चाहिये (**दु च**) और उसके वाद (**सो एव अणुचरिदव्वो**) उसका ही अनुचरण करना चाहिए और उसी में तन्मय हो जाये।

टीकार्थ - **जह णाम को वि अत्थत्थीओ पुरिसो रायाण जाणिऊण सद्दहदि** जैसे कोई धन का इच्छुक पुरुष छत्रचामरादि राजचिन्हों से राजा को जानकर श्रद्धा करता है, **"यह राजा है"** ऐसा निश्चय करता है **तो त अणुचरदि पुणो पयत्तेण** उस ज्ञान-श्रद्धान के वाद उस राजा की सर्व प्रयत्न से सेवा करता है।

एव हि जीवराया णादव्वो उसी प्रकार निश्चय से शुद्ध जीवराजा को निर्विकल्प स्वसवेदनज्ञान से जानना चाहिये। **तहय सद्दहेदव्वो** उसी प्रकार **यह नित्यानद एक स्वभाववाला, रागादिरहित शुद्धात्मा है** ऐसा निश्चित करना चाहिये **पुणो सो चेव अणुचरिदव्वो य** और निर्विकल्प समाधि द्वारा अनुभव करना चाहिये कि यह ही शुद्धात्मा है। **दु मोक्खकामेण** इसलिये मुमुक्षु द्वारा शुद्धात्मानुभव करना ही योग्य है।

इसका तात्पर्य यह है कि, भेदाभेदरत्नत्रय की भावनारूप परमात्मा के चिनन से याने **शुद्धात्मानुभव से सब कुछ सिद्धि हो जाती है,** तो फिर विशेष शुभाशुभरूप विकल्पजाल से हमको क्या प्रयोजन है ? याने शुभाशुभविकल्प हेय है। इस तरह भेदाभेदरत्नत्रय के व्याख्यान की मुख्यता से तीन गाथायें द्वितीय स्थल में समाप्त हुई।।२०, २१।।

कथभूत सन् ? **अत्थत्थीओ** अर्थार्थिको जीवितार्थी। **पयत्तेण** प्रयत्नेन सर्वतात्पर्येणेति दृष्टातगाथा गता। एव अनेन प्रकारेण। हि स्फुट। **जीवराया** शुद्धजीवराजा। **णादव्वो** निर्विकारस्वसवेदनज्ञानेन ज्ञातव्य ।

तह य तथैव। **सद्दहेदव्वो** अयमेव नित्यानन्दैकस्वभावो रागादिरहित शुद्धात्मेति निश्चेतव्य । **अणुचरिदव्वो य** अनुचरितव्यश्च निर्विकल्पसमाधिनानुभवनीय । **पुणो** पुन । **सो चेव** स चैव शुद्धात्मा। **दु** पुन । **मोक्खकामेण** मोक्षार्थिना पुरुषेणेति दार्ष्टान्त । इदमत्र तात्पर्यम् भेदाभेदरत्नत्रयभावनारूपया परमात्मचितयैव पूर्यतेऽस्माक। कि विशेषेण शुभाशुभरूपविकल्पजालेनेति? एव भेदाभेदरत्नत्रयव्याख्यानमुख्यतया द्वितीयस्थले गाथात्रय गतम्।।२०,२१।।

अथ स्वतत्रव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रय कथ्यते। तद्यथा- स्वपरभेदविज्ञानाभावे जीवस्तावदज्ञानी भवति। पर किंतु कियत्कालपर्यत इति न ज्ञायते एव पृष्टे सति प्रथमगाथाया प्रत्युत्तर ददाति -

कम्मे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहक च कम्म णोकम्म। (१९)
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव।। २२।।

कम्मे कर्मणि ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मणि रागादिभावकर्मणि च। **णोकम्मम्हि य** शरीरादि-नोकर्मणि च।

आगे स्वतत्र व्याख्यान की मुख्यता से तीन गाथायें कही जाती हैं। अब, **जब तक जीव को स्व आत्मा का और पर का भेदविज्ञान नहीं है तब तक वह अज्ञानी है** यह कथन ठीक है, लेकिन वह कितने कालतक इस भेदविज्ञान को नहीं जानता है, ऐसा पूछने पर श्री आचार्य जी इस गाथा में उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(जा)** जब तक इस आत्मा की **(कम्मे)** ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, भावकर्म **(य)** और **(णोकम्मम्हि)** शरीरादि नोकर्म में **(अह)** यह मैं हूँ **(च)** और **(अहक कम्म णोकम्म इदि)** मुझमें (आत्मा में अथवा आत्मा के स्वभाव में) यह कर्म नोकर्म हैं इस प्रकार **(खलु)** निश्चय से **(एसा बुद्धी)** ऐसी बुद्धि है **(ताव)** तब तक **(अप्पडिबुद्धो)** वह आत्मा अप्रतिबुद्ध **(हवदि)** है।

टीकार्थ - **कम्मे** ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागादि भावकर्म और **णोकम्मम्हि य** शरीरादि नोकर्म में **अहमिदि** 'यह मैं हूँ' और **अहक च कम्म णोकम्म** मुझमें ये द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म हैं, ऐसी प्रतीति करता है। जैसे घट में वर्णादिक गुण हैं, घटाकार परिणत पुद्गलस्कध हैं और वर्णादिक में घट है ऐसा अभेद से (एकत्व से) **जा एसा खलु बुद्धि** जब प्रत्यक्षीभूत कर्म, नोकर्म, भावकर्म के साथ शुद्धबुद्ध एक स्वभावमय निजपरमात्मवस्तु की एकता है, ऐसी एकत्वबुद्धि है **अप्पडि बुद्धो हवदि ताव** तब तक, वह अप्रतिबुद्ध, बहिरात्मा, स्वसवेदनशून्य (शुद्धात्मानुभूति से रहित) है।

यहॉ पर भेदविज्ञानमूलक जो शुद्धात्मानुभूति है, वह स्वयबुद्ध को अपने आप और बोधितबुद्धों को दूसरे के उपदेश द्वारा प्राप्त होती है। इस तरह जो जीव यहॉ भेदविज्ञान मूलक शुद्धात्मानुभूति को प्राप्त करते हैं, वे पुरुष शुभाशुभ बहिर्द्रव्यों के विद्यमान होते हुए भी (ससार अवस्था में द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म विद्यमान होते हुए भी) दर्पण के समान **निर्विकार** रहते हैं, ऐसा भावार्थ है।।२२।।

अहमिदि अहमिति प्रतीति । **अहक च कम्म णोकम्म** अहक च कर्म नोकर्मेति प्रतीति, यथा घटे वर्णादयो गुणा घटाकारपरिणतपुद्गलस्कधाश्च वर्णादिषु च घट इत्यभेदेन। **जा** यावत कालम्। **एसा** एषा प्रत्यक्षीभूता। **खलु** स्फुट। **बुद्धी** तथा कर्मनोकर्मणा सह शुद्धबुद्धैकस्वभावनिजपरमात्मवस्तुन ऐक्यबुद्धि । **अप्पडिबुद्धो** अप्रतिबुद्ध स्वसवित्तिशून्यो बहिरात्मा। **हवदि** भवति। **ताव** तावत्कालमिति। अत्र भेदविज्ञानमूला शुद्धात्मानुभूति स्वत स्वयबुद्धापेक्षया परतो वा बोधितबुद्धापेक्षया ये लभते ते पुरुषा शुभाशुभबहिर्द्रव्येषु विद्यमानेष्वपि मुकुरुन्दवदविकारा भवतीति भावार्थ ।।२२।।

अथ शुद्धजीवे यदा रागादिरहितपरिणामस्तदा मोक्षो भवति। अजीवे देहादौ यदा रागादिपरिणामस्तदा बधो भवतीत्याख्याति -

जीवे व अजीवे वा सपदि समयम्हि जत्थ उवजुत्तो।
तत्थेव बध मोक्खो हवदि समासेण णिदिट्ठो।।२३।।

जीवे व स्वशुद्धजीवे वा। **अजीवे वा** देहादौ वा। **सपदि समयम्हि** वर्तमानकाले। **जत्थ उवजुत्तो** यत्रोपयुक्त तन्मयत्वेनोपादेयबुद्ध्या परिणत । **तत्थेव** तत्रैव अजीवे जीवे वा। **बधमोक्खो** अजीवदेहादौ बधो, जीवे शुद्धात्मनि मोक्ष । **हवदि** भवति। **समासेण णिद्दिट्ठो** सक्षेपेण सर्वज्ञैर्निर्दिष्ट इति। अत्रैव ज्ञात्वा सहजानन्दैकस्वभावनिजात्मनि रति कर्त्तव्या। तद्विलक्षणे परद्रव्ये विरतिरित्यभिप्राय ।।२३।।

जब इस जीव की शुद्धजीव में (स्वभाव में, शुद्धपारिणामिकभाव में) रागादिरहित परिणाम (शुद्धोपयोग परिणामस्वरूप स्वशुद्धात्मानुभव) होता है, तब मोक्ष होता है और जब अजीव में - देहादिक में अशुद्धात्मानुभव याने रागादिपरिणाम होता है तब बध होता है, ऐसा कथन करते हैं -

गाथार्थ - **(सपदि समयम्हि)** वर्तमानकाल में **(जीवे व)** शुद्धपारिणामिक भाव में अथवा **(अजीवे)** शरीरादि अनात्मभाव मे **(जत्थ उवजुत्तो)** जहाँ पर उपयोग युक्त है **(तत्थेव)** वहाँ पर ही **(बधमोक्खो वा)** बध अथवा मोक्ष है ऐसा **(समासेण)** सक्षेप में **(णिद्दिट्ठो)** सर्वज्ञ भगवान ने निर्दिष्ट किया है।

टीकार्थ - जीवे व स्वशुद्ध जीव में (पारिणामिक भाव में) **अजीवे वा** अथवा देहादिक में (अनात्मभाव में) **सपदि समयम्हि** वर्तमान काल में **जत्थ उवजुत्तो** जहाँ उपयोग तन्मय हुआ, उपादेय बुद्धि से परिणत हुआ है **तत्थेव** वहाँ पर ही अजीव में अथवा जीव में **बध मोक्खो हवदि** बध अथवा मोक्ष होता है। याने अनात्म देहादिक में तन्मय होने से बध होता है, स्वभाव में तन्मय होने से मोक्ष होता है, ऐसा **समासेण णिद्दिट्ठो** सक्षेप मे सर्वज्ञ भगवान ने कहा है। यहाँ इस प्रकार जानकर सहजानद एकस्वभावरूप निजात्मा में रति (अनुभूति) करना कर्तव्य है। उसके विपरीत भाव में (पर्याय में या अनात्मा में) परद्रव्य में विरति (रति न) करना, ऐसा अभिप्राय है।।२३।।

अथाशुद्धनिश्चयेनात्मा रागादिभावकर्मणा कर्त्ता अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन द्रव्य कर्मणामित्यावेदयति-

ज कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
णिच्छयदो ववहारा पोग्गलकम्माण कत्तार।।२४।।

ज कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स य करोति रागादिभावमात्मा स तस्य भावस्य परिणामस्य कर्ता भवति। **णिच्छयदो** अशुद्धनिश्चयनयेन अशुद्धभावाना, शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धभावाना कर्तेति, भावाना परिणमनमेव कर्तृत्वम्। **ववहारा** अनुपचरितासद्भूत व्यवहारनयात्। **पोग्गलकम्माण** पुद्गलद्रव्यकर्मादीना **कत्तार** कर्तेति। कर्तार इति कर्मपद कर्तेति कथ भवतीति चेत्, **प्राकृते क्वापि कारकव्याभिचारोलिगव्यभिचारश्च।** अत्र रागादीना जीव कर्तेति भणित ते च ससारकारण तत ससारभयभीतेन मोक्षार्थिना समस्तरागादिविभावरहिते शुद्धद्रव्यगुणपर्याये स्वरूपे निजपरमात्मनि भावना कर्तव्येत्यभिप्राय । एव स्वतत्रव्याख्यानमुख्यत्वेन तृतीयस्थले गाथात्रय गतम्।।२४।।

यहाँ आत्मा अशुद्धनिश्चयनय से रागादि भावकर्म का कर्ता और अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से द्रव्यकर्म का कर्ता है, ऐसा कथन करते हैं -

गाथार्थ - (**णिच्छयदो**) निश्चयनय से (**आदा**) आत्मा (**ज भाव**) जिस भाव को (**कुणदि**) करता है (**सो**) वह आत्मा (**तस्स भावस्स**) उस भाव का (**कत्ता**) कर्ता (**होदि**) होता है, (**ववहारा**) व्यवहारनय से (**पोग्गलकम्माण**) पुद्गल कर्म का (**कत्तार**) कर्ता है।

टीकार्थ - **ज कुणदि भावमादा कत्ता सो हेदि तस्स भावस्स** जो आत्मा जिस रागादि भाव को करता हे वह उस भाव का कर्ता होता है। **णिच्छयदो** (अभेदोपचार से) अशुद्धनिश्चयनय से आत्मा अशुद्ध भावों का कर्ता है। (अभेदोपचार से) शुद्धनिश्चय से आत्मा शुद्ध भावों का कर्ता है। भावों के परिणमन का ही कर्तृत्व है। **ववहारा** (अभेदोपचार से) अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से **पोग्गल कम्माण कत्तार** पुद्गल द्रव्यकर्मादि का कर्ता है। (परमशुद्धनिश्चयनय से जीव अकर्ता[१] है।)

शका - **'कत्तार'** यह द्वितीयविभक्त्यत कर्मपद है, उसका शब्द **'कर्ता'** इस प्रथमात कर्तृपद अर्थ में किस प्रकार प्रयोग किया गया ?

समाधान - **प्राकृत भाषा में कभी-कभी कारकव्यभिचार और लिगव्यभिचार देखा जाता है।**

यहाँ रागादिक का कर्ता जीव है और वे रागादिक ससार के कारण हैं, ऐसा कहा है। इस कारण से ससार से भयभीत मोक्षार्थी (मुमुक्षु) के द्वारा समस्त रागादि विभावों से रहित शुद्ध द्रव्यगुणपर्याय स्वरूप (अभेदवृत्ति) निजपरमात्मा की भावना करनी चाहिए, ऐसा अभिप्राय है। इस तरह स्वतत्रव्याख्यानमुख्यता से तृतीयस्थल में तीन गाथायें हो गयी।।२४।।

---

[१] टीप - वृहद्द्रव्यसग्रह चूलिका "कत्ता" शुद्धपारिणामिक परमभावग्राहकेन शुद्रद्रव्यार्थिकनयेन यद्यपि वधमोक्षद्रव्यभावरूपपुण्यपापघटपटादीना अकर्ता जीव । अर्थ - शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहक शुद्धद्रव्यर्थिकनय से जीव यद्यपि वधमोक्ष द्रव्यभावरूप पुण्यपाप और घटपटादि का अकर्ता है।

अथ यथा कोऽप्यप्रतिबुद्ध अग्निरिंधन भवति इधनमग्निर्भवति अग्निरिंधनमासीत् इधनमग्निरासीत् अग्निरिंधन भविष्यति इधनमग्निर्भविष्यतीति वदति तथा य कालत्रयेऽपि देहरागादिपरद्रव्यमात्मनि योजयति सोऽप्रतिवुद्धो वहिरात्मा मिथ्याज्ञानी भवतीति प्ररूपयति-

अहमेद एदमह अहमेदस्सेव होमि मम एद। (२०)
अण्ण ज परदव्व सचित्ताचित्तमिस्स वा ।।२५।।
आसि मम पुव्वमेद अहमेद चावि पुव्वकालह्मि। (२१)
होहिदि पुणो वि मज्झ अहमेद चावि होस्सामि।।२६।।
एद तु असभूद आदवियप्प करेदि समूढो। (२२)
भूदत्थ जाणतो ण करेदि दु त असमूढो।।२७।।

जैसे कोई अज्ञानी, अग्नि ही इधन है, इधन ही अग्नि है, अग्नि ही पहले इधन था, इधन ही पूर्व में अग्नि थी, भविष्य में अग्नि ही इधन होगा, और इधन ही अग्नि होगी ऐसा कहता है, वैसे ही भूत, वर्तमान और भविष्य काल में जो देह-रागादि परद्रव्य को स्व आत्मा में जोडता है वह अप्रतिबुद्ध, बहिरात्मा, मिथ्याज्ञानी है ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(अण्ण ज परदव्व)** जो पुरुष अपने से अन्य जो परद्रव्य **(सचित्ताचित्त मिस्स वा)** सचित्त स्त्री-पुत्रादिक, अचित्त धन-धान्यादिक अथवा मिश्र ग्राम-नगरादिक हैं, उन्हें यह समझता है कि, **(अहमेद)** मैं यह हूँ **(एदमह)** ये द्रव्य मुझ स्वरूप हैं, **(एदस्सेव अह)** मैं इनका ही हूँ **(एद मम होमि)** ये मेरे हैं।

(एद मम पुव्व आसि) ये मेरे पूर्व में थे **(एदस्स अह पि पुव्वकालम्हि)** इनका मैं भी पहले था **(पुणोवि)** तथा **(एद मज्झ होहिदि)** ये मेरे आगामी काल में होंगे **(अहमेद चावि होस्सामि)** मैं भी इनका आगामी काल में होऊगा।

(एद तु असभूद) ऐसा असद्भूत अथवा झूठा **(आदवियप्प)** आत्म विकल्प **(करेदि)** जो करता है वह **(समूढो)** मूढ है **(दु)** और जो पुरुष **(भूदत्य)** परमार्थ वस्तुस्वरूप को अथवा भूतार्थ को **(जाणतो)** जानता हुआ **(त)** ऐसा झूठा विकल्प **(ण करेदि)** नहीं करता है वह **(असमूढो)** मूढ नहीं है, ज्ञानी है।

टीकार्थ - **अहमेद एदमह** मैं यह परद्रव्य हूँ, यह परद्रव्य है सो मैं हूँ, **अहमेदस्सेव होमि मम एद** मैं इसका सवधी हूँ और यह मेरा सबधी है। **अण्ण जं पर दव्व** देह से भिन्न ऐसे पुत्र-कलत्र आदि जो परद्रव्य हैं **सच्चित्ताचित्त मिस्स वा** वे सचित्त, अचित्त अथवा मिश्र ऐसे तीन प्रकार के हैं। उनमें गृहस्थ की अपेक्षा स्त्री आदि सचित्त, सुवर्णादि अचित्त, और साभरण (अलकारादि सहित) स्त्री आदि मिश्र हैं। अथवा -

तपोधन की (मुनि की) अपेक्षा से छात्रादि सचित्त, पिच्छी कमडलु पुस्तकादि अचित्त और उपकरण सहित छात्रादि मिश्र हैं। अथवा रागादि सचित्त, द्रव्यकर्मादि अचित्त और उभय द्रव्यकर्म-भावकर्मरूप मिश्र हैं। अथवा विषय-कषाय रहित निर्विकल्प समाधिस्थ पुरुष की अपेक्षा से सिद्धपरमेष्ठिस्वरूप (याने दूसरे सिद्धों का

अहमेद एदमह अह इद, परद्रव्य इद अह भवामि। **अहमेदस्सेव हि होमि मम एद** अहमस्य सम्बन्धी भवामि मम सम्बन्धीद। **अण्ण ज परदव्व** देहादन्यद्भिन्न पुत्रकलत्रादि यत्परद्रव्यम्।

सचित्ताचित्तमिस्स वा सचित्ताचित्तमिश्र वा। तच्च गृहस्थापेक्षया सचित्त स्त्र्यादि, अचित्त सुवर्णादि, मिश्र साभरणस्त्र्यादि। अथवा तपोधनापेक्षया सचित्त छात्रादि, अचित्त पिच्छकमडलुपुस्तकादि, मिश्रमुपकरणसहितछात्रादि। अथवा सचित्त रागादि, अचित्त द्रव्यकर्म्मादि, मिश्र द्रव्यभावकर्म्मद्वयम्।

चितवन, अथवा - अपनी भाविकाल की सिद्ध पर्याय का चितवन) सचित्त है, पुद्गलादि पॉचद्रव्यरूप (पुद्गल, आकाश, धर्म, अधर्म, काल ये पॉच द्रव्य अथवा उन पॉच द्रव्यों का चितवन अथवा अशुद्धपर्याय का चितवन) अचित्त है, और गुणस्थान, जीवस्थान, मार्गणादि परिणत ससारी जीवस्वरूप (गुणस्थान, जीवस्थान, मार्गणादि परिणत संसारी जीव अथवा गुणस्थान, जीवस्थान, मार्गणादि पर्याय का स्वरूप) मिश्र है। इस तरह वर्तमानकाल की अपेक्षा से गाथा समाप्त हुई।

अब **आसि मम पुव्वमेद** ये सब मेरे पहले थे, **अहमेद चावि पुव्वकालम्हि** मैं भी इनका पहले था, **होहिदि पुणो वि मज्झ** ये सब आगे भी मेरे होंगे और **अहमेद चावि होस्सामि** मैं भी आगे इनका होऊँगा। इस प्रकार भूत और भविष्यकाल की अपेक्षा से गाथा हो गयी।

एद तु असभूद आद वियप्प करेदि लेकिन इस प्रकार अशुद्धनिश्चयनय से यह जीव भूत, वर्तमान और भविष्य के बारे में परद्रव्य के साथ मिथ्या आत्मविकल्प-जीव का परिणाम करता है, या मिथ्या असद्भूत परिणाम करता है, **समूढो** वह अज्ञानी, बहिरात्मा है, सम्मूढ है - मोही है। **भूदत्थ** भूतार्थनय को, शुद्धनिश्चयनय को **जाणतो ण करेदि दु त** जाननेवाला ये असद्भूत आत्मविकल्प नहीं करता है, और तीन काल के परद्रव्य सवधी मिथ्याविकल्प नहीं करनेवाला **असमूढो** असमूढ-मोहरहित, सम्यग्दृष्टि अतरात्मा ज्ञानी भेदाभेद-रत्नत्रय की भावना में रत है।

और विशेष कहते हैं - जैसे कोई अज्ञानी तीनों कालों में अग्नि ही इधन है और इधन ही अग्नि है ऐसा निश्चय-से एकात-से अभेद से कहता है, उसी तरह (वैसे ही) देह-रागादि परद्रव्य ही मैं हूँ, पहले भी मैं ही परद्रव्य-रागादिरूप था, और आगे भविष्य में भी मैं परद्रव्य-रागादिरूप होऊँगा इत्यादि कहता है, वह अज्ञानी वहिरात्मा है। उसके विपरीत ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, अतरात्मा है। इस प्रकार ज्ञानी, व अज्ञानी जीव का लक्षण जानकर निर्विकार स्वसवेदन है लक्षण जिसका ऐसे भेदज्ञान में स्थित होकर भावना (भावभासना, शुद्धात्मानुभूति) करनी चाहिये। उस भावना को ही दृढ करते हैं - जैसे कोई राजा का सेवक पुरुष राजा के शत्रुओं के साथ ससर्ग रखता है, तो वह राजा का आराधक नहीं है, उसी प्रकार परमात्मा की आराधना करनेवाला पुरुष शुद्धात्मा के प्रतिपक्षभूत (शुद्ध पारिणामिकभाव के प्रतिपक्षभूत) मिथ्यात्व-रागादि के साथ (अशुद्धात्मा के साथ) परिणमन करनेवाला (अशुद्धात्मा का विचार करनेवाला या अशुद्धात्मा का चितवन करने वाला) है तो वह परमात्मा का आराधक नहीं है, ऐसा भावार्थ है। इस प्रकार चतुर्थस्थल में अप्रतिबुद्ध के या अज्ञानी के लक्षण का कथन करनेवाली तीन गाथायें हो गयी।। २५,२६,२७।।

अथवा विपयकषायरहितनिर्विकल्पसमाधिस्थपुरुषापेक्षया सचित्त सिद्धपरमेष्ठिस्वरूप, अचित्त पुद्गलादिपञ्चद्रव्यरूप, मिश्र गुणस्थानजीवस्थानमार्गणादिपरिणतससारिजीवस्वरूपमिति वर्तमानकालापेक्षया गाथा गता। **आसीत्यादि। आसि मम पुव्वमेद** आसीत् मम पूर्वमेतत्। **अहमेद चावि पुव्वकालम्हि** अहमिद चैव पूर्वकाले। होहिदि पुणो वि मज्झ भविष्यति पुनरपि मम। अहमेद चावि होस्सामि अहमिद चैव पुनर्भविष्यामि इति भूतभाविकालापेक्षया गाथा गता। **एदमित्यादि। एद** इम **तु** पुन। **असभूद** असद्भूत कालत्रयपरद्रव्यसबन्धिमिथ्यारूप। **आदवियप्प** आत्मविकल्प अशुद्धनिश्चयनयेन जीवपरिणामम्। **करेदि** करोति। **सम्मूढो** सम्यड्मूढ अज्ञानी बहिरात्मा। **भूदत्थ** भूतार्थम् निश्चयनयम्। **जाणतो** जानन् सन्। **ण करेदि** न करोति। **दु** पुन कालत्रयपरद्रव्यसम्बन्धिमिथ्याविकल्प। **असमूढो** असमूढ सम्यग्दृष्टिरतरात्मा ज्ञानी भेदाभेदरत्नत्रयभावनारत।

किच, यथा कोऽप्यज्ञानी अग्निरिधनम् इधनमग्नि कालत्रये निश्चयेनैकातेनाभेदेन वदति तथा देहरागादिपरद्रव्यमिदानीमह भवामि पूर्वमहमास पुनरग्रे भविष्यामीति यो वदति सोऽज्ञानी बहिरात्मा तद्विपरीतो ज्ञानी सम्यग्दृष्टिरतरात्मेति। एवमज्ञानिज्ञानिजीवलक्षण ज्ञात्वा निर्विकारस्वसवेदनलक्षणे भेदज्ञाने स्थित्वा भावना कार्येति तामेव भावना दृढयति। यथा कोऽपि राजसेवकपुरुषो राजशत्रुभि सह ससर्गम् कुर्वाण सन् राजाराधको न भवति, तथा परमाऽ ऽत्माराधक पुरुषस्तत्प्रतिपक्षभूतमिथ्यात्वरागादिभि परिणममान परमात्माऽऽराधको न भवतीति भावार्थ। एवमप्रतिबुद्धलक्षणकथनेन चतुर्थस्थले गाथात्रय गतम्।। २५, २६, २७।।

अथाप्रतिबुद्धसबोधनार्थम् व्यवसाय क्रियते। -

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिण भणदि पुग्गल दव्व। (२३)
बद्धमबद्ध च तहा जीवो बहुभावसजुत्तो।। २८।।

यहाँ अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) को समझाने के लिए व्यवसाय (यत्न) किया जाता है -

गाथार्थ - (**अण्णाणमोहिदमदी**) जिसकी मति अज्ञान से मोहित है (**बहुभावसजुत्तो**) और जो मोह, राग, द्वेष आदि अनेक भावों से युक्त है ऐसा (**जीवो**) जीव (**भणदि**) कहता है कि (**इण**) यह (**बद्धमबद्ध च तहा**) शरीरादिक बद्ध तथा धनधान्यादिक अबद्ध (**पोग्गल दव्व**) पुद्गलद्रव्य (**मज्झ**) मेरा है। आचार्य कहते हैं-

(**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**) सर्वज्ञ के ज्ञान के द्वारा देखा गया जो (**णिच्च**) नित्य (**उवओगलक्खणो**) उपयोग लक्षणवाला (**जीवो**) जीव है (**सो**) वह (**पुग्गलदव्वीभूदो**) पुद्गलद्रव्यरूप (**कह**) कैसे हो सकता है ? (**ज**) जिससे कि (**भणसि**) तू कहता है कि (**मज्झमिण**) यह पुद्गलद्रव्य मेरा है ?

(**जदि**) यदि (**सो**) वह जीवद्रव्य (**पुग्गलदव्वीभूदो**) पुद्गलद्रव्यरूप हो जाय और (**इदर**) पुद्गलद्रव्य (**जीवत्त**) जीवत्व को (**आगद**) प्राप्त करे (**तो**) तो (**वुत्तु सक्का**) तू कह सकता है (**जे**) कि (**इण पुग्गल दव्व**) यह पुद्गल द्रव्य (**मज्झ**) मेरा है (किन्तु ऐसा तो नहीं होता)।

टीकार्थ - **'अण्णाणेत्यादि'** का व्याख्यान किया जाता है। **अण्णाण मोहिदमदी** अज्ञानमोहितमतिवाला जीव **मज्झमिण भणदि पुग्गलदव्व** "यह पुद्गलद्रव्य मेरा है" ऐसा कहता है।

सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्च। (२४)
कह सो पुग्गलदव्वी भूदो ज भणसि मज्झमिण।।२९।।
जदि सो पुग्गलदव्वी भूदो जीवत्तमागद इदर। (२५)
तो सक्का वुत्तु जे मज्झमिण पुग्गल दव्व।।३०।।

अण्णाणेत्यादि व्याख्यान क्रियते। **अण्णाणमोहिदमदी** अज्ञानमोहितमति । **मज्झमिण भणदि पुग्गल दव्व** ममेद भणति पुद्गल द्रव्य। कथभूत ? **बद्धमबद्ध च** बद्ध सबद्ध देहरूप। **अबद्ध च** असबद्ध देहाद्भिन्न पुत्रकलत्रादि। **तहा** तथा। **जीवे** जीवद्रव्ये। **बहुभावसजुत्तो** मिथ्यात्वरागादिबहुभावसयुक्त । अज्ञानी जीवो देहपुत्रकलत्रादिक परद्रव्य ममेद भणतीत्यर्थ । इति प्रथमगाथा गता। अथास्य बहिरात्मन सबोधन क्रियते-रे दुरात्मन् ! **सव्वण्हु** इत्यादि **सव्वण्हुणाणदिट्ठो** सर्वज्ञज्ञानदृष्ट । **जीवो** जीवो जीवपदार्थ । कथभूतो दृष्ट ?

शका - पुद्गलद्रव्य को वह **मेरा** है, ऐसा कैसे कहता है ?

समाधान - **बद्धमबद्ध च** देह को बद्ध, देह से भिन्न पुत्र-कलत्रादि को अबद्ध कहता है **तहाजीवो** और जीवद्रव्य में **बहुभावसजुत्तो** मिथ्यात्व-रागादिभाव सयुक्त होता हुआ अज्ञानी जीव "यह देह, पुत्र, कलत्र-पत्नि आदि परद्रव्य मेरा है" ऐसा कहता है। इस तरह प्रथम गाथा समाप्त हुई।

इस बहिरात्मा को सबोधन किया जाता है - रे दुरात्मन्। **सव्वण्हु णाणदिट्ठो जीवो** सर्वज्ञ के ज्ञान से देखा हुआ जीव पदार्थ है।

शका - वह जीवपदार्थ कैसा देखा गया है ?

समाधान - **उवओग लक्खणो णिच्च** सर्वकाल में - नित्य केवल ज्ञानदर्शनोपयोग लक्षणवाला जीवपदार्थ है। ऐसा देखा गया है। **कह सो पुग्गलदव्वीभूदो** वह जीव पुद्गल द्रव्यत्व को कैसे प्राप्त होता है ? वह जीव तो पुद्गलद्रव्यत्व को किसी भी प्रकार से प्राप्त नहीं होता है। **ज भणसि मज्झमिण** जिस कारण से तू "यह पुद्गलद्रव्य मेरा है" ऐसा कह सकेगा (याने ऐसा नहीं कह सकता है) इस प्रकार दूसरी गाथा समाप्त हुई।

जदि सो पुग्गलदव्वीभूदो यदि वह जीव पुद्गलद्रव्यत्व को प्राप्त होता है, तथा इतरद्रव्य (पुद्गलद्रव्य) जीवत्व को प्राप्त हो जाये तो इस कारण से 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है' ऐसा कहा जा सकता है लेकिन ऐसा होता नहीं है। जैसे वर्षाकाल में लवण पिघलकर जलरूप हो जाता है और ग्रीष्मकाल में वही जल लवणरूप (डलीरूप) हो जाता है, उसी प्रकार यदि चैतन्यत्व छोडकर जीवद्रव्य पुद्गलरूप से परिणमित होता हो, और पुद्गलद्रव्य मूर्तत्व, अचेतनत्व को छोडकर चैतन्यरूप, अमूर्तरूप होता हो, तो आपका वचन सत्य है। किन्तु रे दुरात्मन् ! उस प्रकार से नहीं होता है, क्योंकि प्रत्यक्ष में विरोध दिखाई देता है। याने जीव मूर्तत्व, अचेतनत्व रूप नहीं होता है और पुद्गल अमूर्तत्व-चेतनत्वरूप नहीं होता है। इसलिये जीवद्रव्य देहादि से भिन्न, अमूर्त-शुद्ध-बुद्ध-एक-स्वभाव वाला सिद्ध होता है।

उवओगलक्खणो केवलज्ञानदर्शनोपयोगलक्षण। **णिच्च** नित्य सर्वकाल। **कह** कथ। **सो** स जीव। **पुग्गलदव्वीभूदो** पुद्गलद्रव्य जात न कथमपि ज येन कारणेन **भणसि** भणसि त्व। **मज्झमिण** ममेद पुद्गलद्रव्य। इति द्वितीया गाथा गता। **जदि** इत्यादि-**जदि** यदि चेत् **सो** स जीव **पुग्गलदव्वीभूदो** पुद्गलद्रव्य जात। **जीवो** जीव। **जीवत्त** जीवत्व। **आगद** आगत प्राप्त। **इदर** इतरत् शरीरपुद्गलद्रव्यम्। **तो सक्का वुत्तु** तत शक्य वक्तु। **जे** अहो अथवा यस्मात्कारणात्। **मज्झमिण पुग्गल दव्व** ममेद पुद्गलद्रव्यमिति। न चैव यथा वर्षासु लवणमुदकीभवति ग्रीष्मकाले जल लवणीभवति। तथा यदि चैतन्य विहाय जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यस्वरूपेण परिणमति, पुद्गलद्रव्य च मूर्त्तत्वमचेतनत्व विहाय चिद्रूप चामूर्तत्व च भवति तदा भवदीयवचन सत्य भवति। रे दुरात्मन! न च तथा, प्रत्यक्षविरोधात्। ततो जीवद्रव्य देहाद्भिन्नममूर्त्तं शुद्धबुद्धैकस्वभाव सिद्धमिति। एव देहात्मनोर्भेदज्ञान ज्ञात्वा मोहोदयोत्पन्नसमस्तविकल्पजाल त्यक्त्वा निर्विकारचैतन्यचमत्कारमात्रे निजपरमात्मतत्त्वे भावना कर्तव्येति तात्पर्य। इत्यप्रतिबुद्धसबोधनार्थं पचमस्थले गाथात्रय गतम्।।२८, २९, ३०।।

अथ पूर्वपक्षपरिहाररूपेण गाथाष्टक कथ्यते, तत्रैकगाथाया पूर्वपक्ष गाथाचतुष्टये निश्चयव्यवहारसमर्थनरूपेण परिहार। गाथात्रये निश्चयस्तुतिरूपेण परिहार इति षष्ठस्थले समुदायपातनिका। तद्यथा-प्रथमतस्तावत् यदि जीवशरीरयोरेकत्व न भवति, तदा तीर्थकराचार्यस्तुतिर्वृथा भवतीत्यप्रतिबुद्धशिष्य पूर्वपक्ष करोति -

जदि जीवो ण सरीर तित्थयरायरियसथुदी चेव। (२६)
सव्वा वि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो।।३१।।

इस प्रकार देह-आत्मा का भेदज्ञान जानकर (आगम भाषा से) मोहोदय से उत्पन्न समस्त विकल्प जाल को छोडना कर्तव्य है, (अध्यात्म भाषा से) निर्विकार चैतन्य चमत्कारमात्र निज परमात्मतत्व में, पारिणामिकभाव में (अथवा स्वभाव सिद्ध में) भावभासना (शुद्धात्मानुभूति) करना कर्तव्य है, यह भावार्थ है। इस तरह पँचमस्थल में अप्रतिवुद्ध (अज्ञानी) को समझाने के लिये तीन गाथायें समाप्त हुई।।२८, २९, ३०।।

आगे पूर्वपक्ष के परिहारूप से आठ गाथायें कही जाती हैं। वहॉ प्रथमगाथा में पूर्वपक्ष का कथन है, उसका परिहार निश्चयव्यवहार के समर्थनरूप चार गाथाओं में है। तीन गाथाओं में निश्चयस्तुति द्वारा उसका परिहार है, इस प्रकार छट्ठे स्थल में समुदाय पातनिका है।

अब प्रथम ही में अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) शिष्य पूर्वपक्ष स्थापन करता है कि, यदि जीव और शरीर में एकत्व नहीं हे तो तीर्थङ्करों की और आचार्यों की जो स्तुतियॉ शरीर को आधार लेकर की गयी हैं वे वृथा (व्यर्थ) ठहरती हैं -

गाथार्थ - **(जदि)** यदि **(जीवो)** जो जीव है वह **(सरीर ण)** शरीर नहीं है, तो **(तित्थयरायरियसथुदी च)** तीर्थङ्करों की और आचार्यों की स्तुतियॉ **(सव्वावि)** सब ही **(मिच्छा)** मिथ्या **(हवदि)** होती हैं, **(तेण दु)** इसलिए यह सिद्ध होता है कि **(आदा)** आत्मा **(एव)** ही **(देहो)** देह **(हवदि)** है।

जदि जीवो ण सरीर हे भगवन् ! यदि जीव शरीर न भवति। तित्थयरायरियसथुदी चेव तर्हि "द्वौ कुन्देन्दुतुषारहारधवलावित्यादि" तीर्थकरस्तुति, "देसकुलजाइसुद्धा" इत्याचार्यस्तुतिश्च। सव्वा वि हवदि मिच्छा सर्वापि भवति मिथ्या। तेण दु आदा हवदि देहो तेन त्वात्मा भवति देह । इति ममैकातिकी प्रतिपत्ति । एव पूर्वपक्षगाथा गता।।३१।।

हे शिष्य ! यदुक्त त्वया तन्न घटते यतो निश्चयव्यवहारनयपरस्परसाध्यसाधकभाव न जानासि त्वमिति -

ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को। (२७)
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एक्कट्ठो।।३२।।

ववहारणओ भासदि व्यवहारनयो भाषते ब्रूते। कि ब्रूते ? जीवो देहो य हवदि खलु एक्को जीवो देहश्च भवति खल्वेक । ण दु णिच्छयस्य जीवो देहो य कदावि एक्कट्ठो न तु निश्चयस्याभिप्रायेण जीवो देहश्च कदाचित्काले एकार्थ एको भवति। यथा कनककलधौतयो समावर्त्तितावस्थाया व्यवहारेणैकत्वेऽपि निश्चयेन भिन्नत्व तथा जीवदेहयोरिति भावार्थ । तत कारणात् व्यवहारनयेन देहस्तवनेनात्मस्तवन युक्त भवतीति नास्ति दोष ।।३२।।

टीकार्थ - जदि जीवो ण सरीर हे भगवन् ! यदि जीव शरीररूप नहीं है, तित्थयरायरियसथुदी चेव तो "द्वौ कुदेंदुतुषारहारधवलौ" इत्यादि तीर्थङ्करों की (दो लाल, दो सफेद, दो हरे, दो सावले, १६ पीले) और देस कुल जाइसुद्धा (देश से शुद्ध, कुल से शुद्ध, जाति से शुद्ध) इत्यादि आचार्यों की (शरीर के आधार पर की हुई) स्तुतियाँ सव्वावि हवदि मिच्छा सब ही मिथ्या होती (ठहरती) हैं, लेकिन वह मिथ्या नहीं हैं। तेणदु आदा हवदि देहो इसलिये आत्मा ही देह है अथवा देह ही आत्मा है ऐसी मेरी एकान्तिकी निश्चय से प्रतीति है (श्रद्धा है अथवा विश्वास है) निर्णय है। इस प्रकार पूर्वपक्ष की गाथा हो गयी।।३१।।

श्री आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि, हे शिष्य ! आपने जो कहा है, वह ठीक नहीं है, क्योंकि निश्चयनय का और व्यवहारनय का जो परस्पर साध्य-साधकभाव है उसे आप जानते नहीं हैं -

गाथार्थ - (ववहारणओ) व्यवहारनय तो (भासदि) कहता है कि (जीवो य देहो) जीव और देह (एक्को खलु) एक ही (हवदि) है (दु) लेकिन (णिच्छयस्स) निश्चयनय का कहना है कि (जीवो य देहो) जीव और देह ये दोनों तो (कदावि) कभी भी (एक्कट्ठो) एक पदार्थ (ण) नहीं हैं।

टीकार्थ - ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को व्यवहारनय कहता है कि जीव और देह एक ही है। ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदा वि एक्कट्ठो लेकिन निश्चयनय के अभिप्राय से जीव और देह कभी भी एक पदार्थ नहीं है। जैसे सुवर्ण और चादी मिली हुई अवस्था में व्यवहारनय से एक होते हुए भी निश्चयनय से उसी मिली हुई अवस्था में भी सुवर्ण भिन्न है और चादी भिन्न है। उसी तरह इस ससार अवस्था में देह और आत्मा व्यवहारनय से एक होते हुए भी निश्चयनय से देह भिन्न है, आत्मा भिन्न है। ऐसा भावार्थ है। इसलिये व्यवहारनय से देह के स्तवन से आत्मा का स्तवन मानना दोषयुक्त नहीं है।।३२।।

तथाहि -

इणमण्ण जीवादो देह पुग्गलमय थुणित्तु मुणी। (२८)
मण्णदि हु सथुदो वदिदो मए केवली भयव।। ३३।।

इणमण्ण जीवादो देह पुग्गलमय थुणित्तु मुणी इदमन्यद्भिन्न जीवात्सकाशाद्देह पुद्गलमय स्तुत्वा मुनि। मण्णदि हु सथुदो वदिदो मए केवली भयव पश्चाद्व्यवहारेण मन्यते सस्तुतो वदितो मया केवली भगवानिति। यथा सुवर्णरजतयोरेकत्वे सति शुक्ल सुवर्णमिति व्यवहारो, न निश्चय। तथा शुक्लरक्तोत्पलवर्ण केवलिपुरुष इत्यादि देहस्तवनेन व्यवहारेणात्मस्तवन भवति, न निश्चयनयेनेति तात्पर्यार्थ ।। ३३।।

अथ निश्चयनयेन शरीरस्तवने केवलिस्तवन न भवतीति दृढयति -

त णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो। (२९)
केवलिगुणे थुणदि जो सो तच्च केवलि थुणदि।। ३४।।

गाथार्थ - इसी को फिर स्पष्ट करते हैं - (जीवादो अण्ण) जीव से भिन्न (इण पुग्गलमय देह) इस पुद्गलमयी देह की (थुणित्तु) स्तुति करके (मुणी) मुनि (मण्णदि हु) असल में ऐसा मानता है कि (मए) मैंने (केवली भयव) केवली भगवान की (सथुदो) स्तुति की और (वदिदो) वदना की।

टीकार्थ - इणमण्ण जीवादो देह पुग्गलमय थुणित्तु मुणी जीव से भिन्न इस पुद्गलमय देह की स्तुति करके मुनि व्यवहारनय से ऐसा मानता है कि, मण्णदि हु सथुदो वंदिदो मए केवली भयव मैने केवली भगवान की स्तुति और वदना की। जैसे सोना और चादी एकत्र किया है उसको "सफेद सुवर्ण है" ऐसा व्यवहार से कहते हैं, लेकिन निश्चय से सुवर्ण सफेद नहीं है। उसी प्रकार "केवली भगवान शुक्ल, लाल कमल के वर्ण (रग) वाले हैं।" इत्यादि देह का स्तवन करने पर व्यवहारनय से उनकी आत्मा का स्तवन होता है लेकिन निश्चयनय से वह आत्मा का स्तवन नहीं है। यह तात्पर्य अर्थ है।। ३३।।

यहाँ निश्चयनय से शरीर का स्तवन करने पर केवली का स्तवन नहीं होता है, यह दृढ करते हैं -

गाथार्थ - (त) वह स्तवन (णिच्छये) निश्चय में (ण जुज्जदि) ठीक नहीं है (हि) क्योंकि (सरीरगुणा) शरीर के गुण (केवलिणो) केवली के (ण होंति) नहीं हैं (जो) जो (केवलिगुणे) केवली के गुणों की (थुणदि) स्तुति करता है (सो) वही (तच्च) परमार्थ से (केवलि) केवली की (थुणदि) स्तुति करता है।

टीकार्थ - त णिच्छये ण जुज्जदि पूर्वोक्त प्रकार से देह का स्तवन करते हुए निश्चयनय से केवली का स्तवन नहीं होता है। शका - क्यों ? समाधान - क्योंकि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो जो शुक्ल, कृष्ण आदि शरीर के गुण हैं, वे केवली के गुण नहीं हैं।

शका - तो फिर केवली का स्तवन कैसे होता है ?

त **णिच्छयेण जुज्जदि** तत्पूर्वोक्तदेहस्तवने सति केवलिस्तवन निश्चयेन न युज्यते। कथमिति चेत्? **ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो** यत कारणाच्छरीरगुणा शुक्लकृष्णादय केवलिनो न भवन्ति। तर्हि कथ केवलिन स्तवन भवति ? **केवलिगुणे थुणदि जो सो तच्च केवलि थुणदि** केवलिगुणान् अनन्तज्ञानादीन् स्तौति य स तत्त्व वास्तव स्फुट वा केवलिन स्तौति। यथा शुक्लवर्णरजतशब्देन सुवर्ण न भण्यते, तथा शुक्लादिकेवलि- शरीरस्तवनेन चिदानन्दैकस्वभाव केवलिपुरुषस्तवन निश्चयनयेन न भवतीत्यभिप्राय ।।३४।।

अथ शरीरप्रभुत्वेऽपि सत्यात्मन शरीरस्तवनेनात्मस्तवन न भवति निश्चयनयेन। तत्र दृष्टातमाह -

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि। (३०)
देहगुणे थुव्वते ण केवलिगुणा थुदा होंति।।३५।।

यथा प्राकारोपवनखातिकादिनगरवर्णने कृतेऽपि नैव राज्ञो वर्णना कृता भवति, तथा शुक्लादिदेहगुणे स्तूयमानेऽप्यनतज्ञानादिकेवलिगुणा स्तुता न भवन्तीत्यर्थ । इति निश्चयव्यवहाररूपेण गाथाचतुष्टय गतम्।।३५।।

समाधान - **केवलिगुणे थुणदि जो सो तच्च केवलि थुणदि** जो जीव केवली के अनतज्ञानादि गुणों की स्तुति करता है वह वास्तव में केवली की स्तुति करता है। जैसे शुक्लवर्णवाली चादी का वर्णन करने से सुवर्ण का वर्णन नहीं कहा जाता है, वैसे शुक्ल आदि शब्द से केवली के शरीर का स्तवन करने से निश्चयनय से चिदानद एक स्वभावरूप केवलीपुरुष का स्तवन नहीं होता है, यह अभिप्राय है।।३४।।

आत्मा को शरीर का प्रभुत्व होने पर भी (याने आत्मा और शरीर एक क्षेत्रावगाही होने पर भी) निश्चयनय से शरीर का स्तवन करने से आत्मा का स्तवन नहीं होता है, इसी का दृष्टात कहते हैं -

गाथार्थ - (जह) जैसे (**णयरम्मि**) नगर का (**वण्णिदे**) वर्णन करने पर (**रण्णो**) राजा का (**वण्णणा**) वर्णन (**ण वि कदा होदि**) किया गया ऐसा नहीं होता है, उसी तरह (**देहगुणे थुव्वते**) देह के गुणों का स्तवन होने से (**केवलिगुणा**) केवली के गुणों का (**थुदा ण**) स्तवन नहीं (**होंति**) होता है।

टीकार्थ - जैसे प्राकार, उपवन, और खाई आदि के वर्णन से किसी राजा के नगर का वर्णन करने पर भी - राजा का वर्णन किया है, ऐसा नहीं होता है, वैसे केवली भगवान के शरीर के गुणों की स्तुति करने पर भी केवली के अनतज्ञानादि गुणों का स्तवन नहीं किया गया। इस तरह निश्चयव्यवहाररूप से चार गाथायें समाप्त हुई।।३५।।

अव यदि देह के गुणों का स्तवन करने से निश्चय स्तुति नहीं होती है तो निश्चय स्तुति कैसी होती है ? ऐसा पूछने पर श्री आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि द्रव्येंद्रिय, भावेंद्रिय और पचेंद्रिय के विषयों को स्वसवेदन लक्षणवाले भेद विज्ञान से (शुद्धात्मानुभव से) जीतकर जो शुद्धात्मा को अनुभवता है वह जिन है, जितेंद्रिय है, इस प्रकार निश्चय स्तुति है -

अथानतर यदि देहगुणस्तवनेन निश्चयस्तुतिर्न भवति तर्हि कीदृशी भवतीति पृष्टे सति द्रव्येंद्रियभावेंद्रिय पचेंद्रियविषयान् स्वसवेदनलक्षणभेदविज्ञानेन जित्वा योऽसौ शुद्धमात्मान सचेतयते स जिनो जितेंद्रिय इति सा चैव निश्चियस्तुति परिहार ददाति-

जो इदिये जिणित्ता णाणसहावाधिय मुणदि आद। (३१)
त खलु जिदिदिय ते भणति जे णिच्छिदा साहू।।३६।।

जो इदिये जिणित्ता णाणसहावाधिय मुणदि आद य कर्ता द्रव्येंद्रिय भावेंद्रिय पचेंद्रिय विषयान् जित्वा शुद्धज्ञानचेतनागुणेनाधिक परिपूर्णं शुद्धात्मान मनुते जानात्यनुभवति सचेतयति। **त खलु जिदिदिय ते भणति जे णिच्छिदा साहू** त पुरुष खलु स्फुट जितेंद्रिय भणति ते साधव । के ते ? ये निश्चिता निश्चियज्ञा इति।

किच ज्ञेया स्पर्शादिपचेंद्रियविषया ज्ञायकानि स्पर्शनादिद्रव्येंद्रियभावेंद्रियाणि तेषा योऽसौ जीवेन सह सकर सयोग सवध स एव दोष त दोष परमसमाधिवलेन योऽसौ जयति सा चैव प्रथमा निश्चयस्तुतिरिति भावार्थ ।।३६।।

अथ तामेव स्तुति *द्वितीयप्रकारेण भाव्यभावकसकरदोषपरिहारेण कथयति। अथवा उपशमश्रेण्यपेक्षया* जितमोहरूपेणाह -

जो मोह तु जिणित्ता णाणसहावाधिय मुणदि आद। (३२)
त जिदमोह साहु परमट्ठवियाणया विति।।३७।।

गाथार्थ :- **(जो)** जो **(इदिये)** इद्रियों को **(जिणित्ता)** जीतकर **(णाणसहावाधिय)** ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्यद्रव्य से अधिक **(आद)** आत्मा को **(मुणदि)** जानता है **(त खलु)** उसको नियम से **(जे णिच्छिदा साहू)** जो निश्चयनय में स्थित साधु लोग हैं **(ते)** वे **(जिदिदिय)** जितेंद्रिय ऐसा **(भणति)** कहते हैं।

टीकार्थ - **जो इदिये जिणित्ता णाणसहावाधिय मुणदि आद** जो द्रव्येंद्रिय भावेंद्रिय पचेंद्रिय के विषयों को जीतकर शुद्ध ज्ञानचेतना गुण से अधिक शुद्धात्मा को मानता है, जानता है, सचेतन करता है **त खलु जिदिदिय ते भणति जे णिच्छिदा साहू** उस पुरुष को निश्चय से निश्चयनय के जाननेवाले साधु लोग जितेंद्रिय कहते हैं।

और विशेष कहते हैं - स्पर्शादि पचेद्रिय के विषय ज्ञेय हैं और उनको जाननेवाली द्रव्येंद्रिय भावेंद्रियरूप स्पर्शनादि पाँचों इद्रियाँ (ज्ञायक) हैं, उनका 'जीव के साथ जो सकर-सयोग सवध है' वही ज्ञेयज्ञायक सकर दोष है। उस दोष को परम समाधिवल से (स्वानुभूति से) जो जीत लेता है वही जिन है, जितेंद्रिय है। वह ही पहली निश्चय स्तुति है, ऐसा भावार्थ है।।३६।।

यहाँ उसी निश्चय स्तुति को दूसरे प्रकार से **भाव्य** (रागसहित ससारी जीव) **भावक** (मोहकर्म) इन दोनों में जो भाव्य-भावक सकर दोष है उसका परिहार करनेरूप कथन करते हैं अथवा उपशम श्रेणी की अपेक्षा आत्मा जितमोहरूप है ऐसा कहते हैं -

जो मोह तु जिणित्ता णाणसहावाधिय मुणदि आद य पुरुष उदयागत मोह सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रै-काग्र्यरूपनिर्विकल्पसमाधिबलेन जित्वा शुद्धज्ञानगुणेनाधिक परिपूर्णमात्मान मनुते जानाति भावयति। **त जिदमोह साहु परमट्ठवियाणया विति** त साधु जितमोह रहितमोह परमार्थविज्ञायका ब्रुवति कथयन्तीति। इय द्वितीया स्तुतिरिति।

कि च - भाव्यभावकसकरदोषपरिहारेण द्वितीया स्तुतिर्भवतीति पातनिकाया भणित भवद्भिस्तत्कथ घटते इति भाव्यो रागादिपरिणत आत्मा, भावको रजक उदयागतो मोहस्तयोर्भाव्यभावकयो शुद्धजीवेन सह सङ्कर सयोग सबध स एव दोष । त दोष स्वसवेदनज्ञानबलेन योऽसौ परिहरति स जिन सा द्वितीया स्तुतिरिति भावार्थ । एवमेव च मोहपदपरिवर्त्तनेन राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ कर्म नोकर्म मनो वचन काय सूत्राण्यैकादश पञ्चाना श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणामिद्रियसूत्रेण पृथग्व्याख्याततत्वाद्वयाख्येयानि। अनेनैव प्रकारेणान्यान्यप्यसख्येय-लोकमात्रविभावपरिणामरूपाणिज्ञातव्यानि।। ३७।।

गाथार्थ - (**जो तु**) जो मुनि (**मोह**) मोह को (दर्शनमोह को) (**जिणित्ता**) जीतकर (**आद**) अपने आत्मा को (**णाणसहावाधिय**) ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्यभावों से अधिक (**मुणदि**) जानता है (त) उस (**साहु**) मुनि को (साधक को) (**परमट्ठवियाणया**) परमार्थ के जाननेवाले (**जिदमोह**) जितमोह ऐसा (**विंति**) जानते हैं, कहते हैं।

टीकार्थ - जो पुरुष उदयागत मोह को सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र की एकतारूप, ऐकाग्र्यरूप निर्विकल्प समाधि के बल से जीतकर शुद्ध ज्ञानगुण से अधिक परिपूर्ण अपनी आत्मा को शुद्ध पारिणामिकभाव को अथवा कारणपरमात्मा को अथवा स्वभाव सिद्ध को श्रद्धा करता है, जानता है, अनुभवता है **त जिदमोह साहु परमट्ठवियाणया विति** उस साधु को 'जितमोह' मोह से रहित ऐसा परमार्थ के जाननेवाले कहते हैं। यह द्वितीय स्तुति है। ओर विशेष कहते हैं -

शका - आपने पातनिका में कहा था कि, भाव्य-भावक में परस्पर जो सकर दोष है उसका निराकरण करने से द्वितीय स्तुति होती है, वह यहॉ कैसे घटित होती है ?

समाधान - **भाव्य** याने रागादिरूप परिणत हुआ आत्मा और **भावक**-रजक याने उदय में आया हुआ मोहकर्म है। इन भाव्य-भावकों का जो शुद्धजीव के साथ सकर अर्थात सयोग सबध है वह ही दोष है। उस दोष को जो पुरुष स्वसवेदनज्ञान के बल से (स्वानुभूति से याने शुद्धपारिणामिकभाव का वेदन करने से) नष्ट करता है (परास्त करता है अथवा परिहार करता है) वह जिन है। यह दूसरी स्तुति है।

इसी प्रकार यहॉ मोह पद के स्थान पर राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, ये ग्यारह और श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्शन ये पॉच इद्रिय, सूत्र के द्वारा पृथक्-पृथक् कथन करना चाहिए। इसी प्रकार और भी असख्यात लोकप्रमाण विभाव परिणाम हैं उनको भी जानना चाहिये।। ३७।।

यहॉ भाव्य-भावकभाव के अभावरूप से तीसरी निश्चयस्तुति कही जाती है। अथवा उसको ही क्षपकश्रेणी की अपेक्षा से क्षीणमोहरूप से कथन करते हैं -

अथ भाव्यभावकभावाभावरूपेण तृतीया निश्चयस्तुति कथ्यते। अथवा तामेव क्षपकश्रेण्यपेक्षया क्षीणमोहरूपेणाह-

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स। (३३)
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहि।। ३८।।

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स पूर्वगाथाकथित क्रमेण जितमोहस्य सतो जातस्य यदा निर्विकल्पसमाधिकाले क्षीणो मोहो भवेत्। कस्य ? साधो शुद्धात्मभावकस्य। **तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहि** तदा तु गुप्तिसमाधिकाले स साधु क्षीणमोहो भण्यते। कै ? निश्चयविद्भि परमार्थज्ञायकैर्गणधर देवादिभि । इय तृतीया निश्चयस्तुतिरिति। भाव्यभावकभावाभावरूपेण कथ जाता स्तुतिरिति चेत्-भाव्यो रागादिपरिणत आत्मा, भावको रञ्जक उदयागतो मोहस्तयोर्भाव्यभावकयोर्भाव स्वरूप तस्याभाव क्षयो विनाश सा चैव तृतीया निश्चयस्तुतिरित्यभिप्राय । एव रागद्वेष इत्यादि दडको ज्ञातव्य ।।३८।।

गाथार्थ - **(जिदमोहस्स दु साहुस्स)** जिसने मोह को जीत लिया है ऐसे साधु के **(जइया)** जिस समय **(खीणो मोहो)** मोह क्षीण **(हविज्ज)** होता है **(तइया)** उस समय **(णिच्छयविदूहि)** निश्चय के जाननेवाले **(हु)** निश्चय से **(सो)** उस साधु को **(खीणमोहो)** क्षीणमोह ऐसा **(भण्णदि)** कहते हैं।

टीकार्थ - **जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स** पूर्वगाथा में कहे हुए क्रम से जितमोह को उत्पन्न हुए साधु का (याने शुद्धात्मानुभव करनेवाले साधक का) जव निर्विकल्प समाधिकाल में (स्वानुभव में) मोह क्षीण होता है **तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहि** तव उस गुप्ति समाधिकाल में उस साधक (शुद्धात्मानुभव करने वाले साधक) को क्षीणमोहवाला कहते हैं।

शका - ऐसा कौन कहते हैं ?

समाधान - निश्चयनय को जाननेवाले, परमार्थ को जाननेवाले गणधरादिदेवों द्वारा शुद्धात्मानुभव-साधक को क्षीणमोहवाला कहा जाता हैं।

इस प्रकार तीसरी निश्चयस्तुति हो गयी।

शका - यहाँ भाव्य-भावक के अभावरूप से यह स्तुति कैसे उत्पन्न हुई ?

समाधान - **भाव्य याने रागादिपरिणत आत्मा और भावक-रजक याने उदय में आनेवाला मोह है।** सो यहाँ आत्मा वीतराग परिणत (शुद्धोपयोग परिणत) है और उसको भावक-मोह कुछ नहीं कर सकता, उस मोह की सवरपूर्वक निर्जरा हो जाती है, इसलिये भाव्य-भावक का अभाव हो गया। इस प्रकार भाव्य-भावक का अभाव क्षय अथवा विनाश होता है।

चतुर्थ गुणस्थान प्रगट होते समय वह आत्मा निर्विकल्प समाधि में जाता है उस समय दर्शनमोह का अभाव होता है याने मिथ्यात्व व अनतानुबधी रागद्वेष का अभाव होता है। क्षपकश्रेणी में दशवें गुणस्थान के अत में लोभ नष्ट होता है, बारहवाँ गुणस्थान प्रगट होता है उसको क्षीणमोह गुणस्थान कहते हैं।

इति प्रथमगाथाया पूर्वपक्षस्तदनतर गाथाचतुष्टये निश्चयव्यवहारसमर्थनरूपेण परिहारस्ततश्च गाथात्रये निश्चयस्तुतिकथनरूपेण च परिहार इति पूर्वपक्षपरिहारगाथाष्टकसमुदायेन षष्ठस्थल गतम्।

अथ रागादिविकल्पोपाधिरहित स्वसवेदनज्ञानलक्षणप्रत्याख्यानविवरणरूपेण गाथाचतुष्टय कथ्यते। तत्र स्वसवेदनज्ञानमेव प्रत्याख्यानमिति कथनरूपेण प्रथमगाथा प्रत्याख्यानविषये दृष्टातरूपेण द्वितीया चेति गाथाद्वय। तदनतर मोहपरित्यागरूपेण प्रथमगाथा ज्ञेयपदार्थपरित्यागरूपेण द्वितीया चेति गाथा द्वयम्। एव सप्तमस्थले समुदायपातनिका। तथाहि-तीर्थकराचार्यस्तुतिर्निरर्थिका भवतीति पूर्वपक्षबलेन जीवदेहयोरेकत्व कर्तुं नायातीति ज्ञात्वा शिष्य इदानीं प्रतिबुद्ध सन् हे भगवन् ! रागादीना कि प्रत्याख्यानमिति पृच्छति। "इति पृच्छति" कोर्थ ? इति पृष्टे प्रत्युत्तर ददाति। एव प्रश्नोत्तररूपपातनिकाप्रस्तावे सर्वत्रेति शब्दस्यार्थो ज्ञातव्य ।

यहाँ इस द्रव्यानुयोग ग्रथ में कहा है कि चतुर्थ गुणस्थान प्रगट होने के समय ज्ञानचेतना शुरु होती है और चतुर्थ गुणस्थान से सिद्ध तक सबको ज्ञानचेतना ही होती है। इसलिये शुद्धात्मानुभव लेनेवाले चतुर्थ गुणस्थान से आगे के सभी जीव क्षीणमोह वाले हैं, जिन हैं, प्रभु हैं, जितेंद्रिय हैं। एक से तीन गुणस्थान वाले जीव अज्ञान चेतना वाले हैं। चतुर्थ गुणस्थान की शुद्धात्मानुभूति में चेतनोपयोग शुद्धपारिणामिक भाव से तन्मय हे, शुद्धोपयोग है, पर्याय (अनित्य) होने से शुद्धपारिणामिकभाव से तादात्म्य नहीं है क्योंकि शुद्धपारिणामिकभाव नित्य (ध्रुव) है।

यह तृतीय निश्चय स्तुति है, ऐसा अभिप्राय है। यहाँ पर भी मोह के स्थान पर राग, द्वेष इत्यादि असख्यात विभाव भाव के जो दडक हैं वे लगा लेना चाहिए।। ३८।।

इस तरह प्रथम गाथा में पूर्वपक्ष का कथन किया है। तदनतर चार गाथाओं में निश्चय-व्यवहार के समर्थनरूप से उसका परिहार किया है। और तीन गाथाओं में निश्चयस्तुति के कथनरूप से उसका परिहार किया है। इस तरह पूर्वपक्ष और उसका परिहार करके आठ गाथाओं के समूह से छठा स्थल समाप्त हो गया।

अब रागादि विकल्पों की उपाधि से रहित स्वसवेदनज्ञान (शुद्धात्मानुभव) है लक्षण जिसका ऐसे प्रत्याख्यान के वर्णन से चार गाथायें कही जाती हैं। उनमें स्वसवेदनज्ञान (शुद्धात्मानुभव) ही प्रत्याख्यान है, ऐसे कथनरूप से प्रथम गाथा है, और प्रत्याख्यान के विषय में दृष्टातरूप से दूसरी गाथा है। उसके बाद मोह के परित्यागरूप से प्रथम गाथा है और ज्ञेयपदार्थ के परित्यागरूप से दूसरी गाथा हे। इस प्रकार सातवें स्थल में समुदाय पातनिका है।

यदि जीव और शरीर को एक नहीं माना, तो तीर्थंकर और आचार्य की जो स्तुति की गयी है वह व्यर्थ होगी। इस प्रकार पूर्वपक्ष के बल से जीव और शरीरादि में एकपना मानना ठीक नहीं है। ऐसा जानकर प्रतिबुद्ध (ज्ञानी) होकर शिष्य प्रश्न करता है कि, हे भगवन ! रागादि का प्रत्याख्यान कैसे किया जाय ? तो श्री आचार्यदेव उत्तर देते हैं। इस प्रकार सर्वत्र प्रश्नोत्तर रूप पातनिका में **'इति' शब्द का अर्थ 'प्रश्न पूछने पर उत्तर दिया जा रहा है'** ऐसा जानना चाहिये।

णाण सव्वे भावे[1] पच्चक्खाई परे त्ति णादूण। (३४)
तम्हा पच्चक्खाण णाण णियमा मुणेदव्व ।। ३९।।

णाण सव्वे भावे पच्चक्खाई परे त्ति णादूण जानातीति व्युत्पत्त्या स्वसवेदनज्ञानमात्मेति भण्यते त (तत्) ज्ञान कर्तृ मिथ्यात्वरागादिविभाव परस्वरूपमिति ज्ञात्वा प्रत्याख्याति त्यजति निराकरोति। **तम्हा पच्चक्खाण णाण णियमा मुणेदव्व** तस्मात्कारणात् निर्विकल्पस्वसवेदनज्ञानमेव प्रत्याख्यान नियमान्निश्चयात् मतव्य ज्ञातव्यमनुभवनीयमिति। इदमत्र तात्पर्य-परमसमाधिकाले स्वसवेदनज्ञानबलेन शुद्धमात्मानमनुभवति तदेवानुभवन निश्चयप्रत्याख्यानमिति।।३९।।

अथ प्रत्याख्यानविपये दृष्टान्तमाह -

जह णाम को वि पुरिसो परदव्वमिण ति जाणिदु चयदि[2]। (३५)
तह सव्वे परभावे, णाऊण[3] विमुचदे णाणी।।४०।।

गाथार्थ - (**णाण**) स्वसवेदनज्ञान से (**सव्वे भावे**) सव भावों को (**परे त्ति**) अपने से पर हैं ऐसा (**णादूण**) जानकर उनका (**पच्चक्खाई**) प्रत्याख्यान हो जाता हे (**तम्हा**) इसलिये (**णाण**) स्वसवेदनज्ञान (शुद्धात्मानुभूति) ही (**णियमा**) निश्चय से (**पच्चक्खाण**) प्रत्याख्यान (**मुणेदव्व**) मानना चाहिये (जानना चाहिये)।

टीकार्थ - **णाण सव्वे भावे पच्चकखाई परेत्ति णादूण** 'जानाति इति ज्ञान' इस प्रकार ज्ञान शब्द की व्युत्पत्ति हे। इस व्युत्पत्ति से **स्वसवेदनज्ञान (शुद्धात्मानुभव) ही आत्मा,** इस नाम से कहा जाता है। वह स्वसवेदनज्ञान मिथ्यात्व रागादिभावों को परस्वरूप हें ऐसा जानकर त्यागता है, प्रत्याख्यान करता हे, निराकरण करता है, छोडता है।

तम्हा पच्चक्खाण णाण णियमा मुणे दव्व इसलिये निर्विकल्प स्वसवेदनज्ञान (शुद्धात्मानुभव) ही नियम से प्रत्याख्यान है- ऐसा मानना चाहिये, जानना चाहिये, अनुभव करना चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि, परमसमाधिकाल में स्वसवेदनज्ञान के वल से शुद्धात्मा को (शुद्धपारिणामिक द्रव्य को) अनुभवता है। वह स्वानुभव ही निश्चय प्रत्याख्यान है। (स्वानुभूति लेते समय विकल्पभाव अपने आप नष्ट होते हैं।)।। ३९।।

यहॉ प्रत्याख्यान के वारे में दृष्टात कहते हें -

गाथार्थ - (**जह णाम**) जैसे लोक में (**कोवि पुरिसो**) कोई पुरुष (**परदव्व इण ति जाणिदु**) पर वस्तु को यह **परवस्तु** है ऐसा जानकर (**चयदि**) परवस्तु को त्याग देता हे (**तह**) उसी तरह (**णाणी**) ज्ञानी (**सव्वे**) सव (**परभावे**) परभावों को (**णाऊण**) ये परभाव हैं ऐसा जानकर (**विमुचदे**) उनको छोडता है।

टीकार्थ - **जह णाम को वि पुरिसो परदव्वमिण ति जाणिदु चयदि** जेसे कोई पुरुष वस्त्र-आभरण आदि को यह परद्रव्य है ऐसा जानकर उसका त्याग करदेता है। **तह सव्वे परभावे णाऊण विमुचदे णाणी** उसी प्रकार स्वसवेदन ज्ञानी स्वसवेदन ज्ञानवल से (स्वानुभूति से) सव मिथ्यात्व-रागादि परभावों को पर्यायों को ये

---

१ पाठान्तर - सव्वे भावे जम्हा।   २ मुयदि।   ३ णादूण।

जह णाम को वि पुरिसो परदव्वमिण ति जाणिदु चयदि यथा नाम अहो स्फुट वा कश्चित्पुरुषो वस्त्राभरणादिक परद्रव्यमिदमिति ज्ञात्वा त्यजति। **तह सव्वे परभावे णाऊण विमुचदे णाणी** तथा तेन प्रकारेण सर्वान् मिथ्यात्वरागादिपरभावान् पर्यायान् स्वसवेदनज्ञानबलेन ज्ञात्वा विशेषेण त्रिशुद्धया विमुञ्चति त्यजति स्वसवेदनज्ञानीति।

अयमत्र भावार्थ - यथा कश्चिद्देवदत्त परकीयत्रीवर भ्रात्या मदीयमिति मत्वा रजकगृहादानीय परिधाय च शयान सन् पश्चादन्येन वस्त्रस्वामिना वस्त्राचलमादायाच्छोद्य नग्नीक्रियमाण सन् वस्त्रलाच्छन निरीक्ष्य परकीयमिति मत्वा तद्वस्त्र मुञ्चति। तथाय ज्ञानीजीवोऽप्यतिविज्ञेन निर्विण्णेन गुरुणा मिथ्यात्वरागादिविभावा एते भवदीयस्वरूप न भवन्ति, एक एव त्वमिति प्रतिबोध्यमान सन् परकीयानिति ज्ञात्वा मुचति शुद्धात्मानुभूतिमनुभवतीति। एव गाथाद्वय गतम्।।४०।।

अथ कथ शुद्धात्मानुभूतिमनुभवतीति पृष्टे सति मोहादिपरित्यागप्रकारमाह -

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को। (३६)
त मोहणिम्ममत्त समयस्स वियाणया विति।।४१।।

परकीय हैं (अपने स्वभाव में नहीं हैं) ऐसा जानकर (अध्यात्मभाषा से) याने स्वानुभूति द्वारा (आगमभाषा से) त्रिशुद्धि याने मनवचनकाय की विशुद्धि द्वारा छोड देता है।

भावार्थ यह है कि, जैसे कोई देवदत्त नाम का पुरुष भ्रम से दूसरे के वस्त्र को अपना वस्त्र समझकर धोवी के घर से ले आया और ओढकर सो गया। पश्चात् उस वस्त्र के स्वामी ने आकर उस वस्त्र के आचल को खींचकर उसको नग्न कर दिया तब उस समय उस वस्त्र के लाछन को (चिन्ह को) निरीक्षण करके **यह वस्त्र परकीय है** ऐसा समझकर वह उस वस्त्र को उसी समय छोड देता है। इसी प्रकार यह ज्ञानी जीव भी परम वैरागी ज्ञानी गुरु के द्वारा **'ये मिथ्यात्व रागादि विभाव भाव अपना स्वभाव नहीं है, एक शुद्धात्मा ही अपना स्वभाव है'** ऐसा समझाया जाने पर उन सब परभावों को **परकीय** हैं ऐसा जानकर तत्काल छोड देता है। शुद्धात्मानुभूति को अनुभवता है।

भावार्थ - आत्मा को आत्मा जानना और मानना, परभाव को परभाव जानना और मानना यही आत्मानुभूति कहलाती है। इसी को सम्यग्दर्शन कहते हैं, इसी को मोहका-परभाव का त्याग कहते हैं। परभाव का त्याग और आत्मस्वभाव की प्राप्ति इनका एक ही समय है। आत्मा अपने पुरुषार्थ से आत्मस्वभाव की प्राप्ति करता है। उसी को परभाव का त्याग कहा जाता है। परभाव का त्याग करने के लिये पर में पुरुषार्थ करना नहीं पडता है, क्योंकि आत्मा पर में पुरुषार्थ कर नहीं सकता है।

इस प्रकार दो गाथायें समाप्त हुई।।४०।।

अव (अध्यात्मभाषा से) **शुद्धात्मा की अनुभूति का अनुभव किस प्रकार होता है ?** ऐसा पूछने पर श्री आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि मोहादिक का परित्याग याने शुद्धात्मानुभव इस प्रकार होता है -

णत्थि मम को वि मोहो नास्ति न विद्यते मम शुद्धनिश्चयेन टकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावस्य सतो रागादिपरभावेन कर्तृभूतेन भावयितु रजयितुमशक्यत्वात्कश्चिद्द्रव्यभावरूपो मोह ।**बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को** वुध्यते जानाति। स क ? कर्त्ता ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणत्वादुपयोग आत्मैव। कि वुध्यते ? यत कारणादहमेक ततो मोह प्रति निर्ममत्वोऽस्मि निर्मोहो भवामि। अथवा वुध्यते जानाति। कि जानाति ? विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोग एवाहमेक । **त मोहणिम्ममत्त समयस्य वियाणया विति** त निर्मोहशुद्धात्मभावनास्वरूप निर्ममत्व ब्रुवति, वदति, जानति वा। के ते ? समयस्य शुद्धात्मस्वरूपस्य विज्ञायका पुरुषा इति।

किच विशेष- यत्पूर्व स्वसवेदनज्ञानमेव प्रत्याख्यान व्याख्यात तस्यैवेद निर्मोहत्व विशेषव्याख्यानमिति। एवमेव च मोहपदपरिवर्त्तनेन राग द्वेष क्रोध मानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडशव्याख्येयानि। अनेन प्रकारेणान्यान्यप्यसख्येय- लोकमात्रप्रमितानि विभावपरिणामरूपाणि ज्ञातव्यानि।।४१।।

गाथार्थ - (**मोहो मम को वि णत्थि**) मोह मेरा कोई भी नहीं है (**एक्को**) एक (**उवओग एव अह**) उपयोग ही मैं हूँ ऐसा (**बुज्झदि**) जो अनुभवता है (**त**) उस पुरुष को (**समयस्स**) सिद्धात के अथवा स्व पर के स्वरूप को (**वियाणया**) जाननेवाले (**मोहणिम्ममत्त**) मोह से निर्ममत्व (**विति**) समझते हैं अथवा कहते हैं।

टीकार्थ - णत्थि मम को वि मोहो शुद्धनिश्चयनय से टकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभाववाला जो मैं, इसको रागादि परभाव के कर्तृत्वभाव से रजायमान करने के लिए मोह अशक्य (असमर्थ) है, इसलिये द्रव्य और भावरूप मोह मेरा कोई भी नहीं है। **बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को** ज्ञानदर्शन उपयोग लक्षणवाला होने से उपयोग ही मेरा आत्मा है और ऐसा अनुभवता है कि **"मैं एक हूँ। इसलिये मोह के प्रति निर्ममत्व हूँ, निर्मोह हूँ। अथवा मैं एक विशुद्धज्ञानदर्शन उपयोगवाला ही हूँ"** ऐसा अनुभवता है।

त मोहणिम्ममत्त समयस्स वियाणया विति उस निर्मोही शुद्धात्मा की भावभासना वाले आत्मा को "निर्ममत्ववाला" कहते हैं।

शका - ऐसा कौन कहते हैं ?

समाधान - शुद्धात्मस्वरूप को जाननेवाले पुरुष ऐसा कहते हैं कि "वह शुद्धात्मानुभववाला - निर्ममत्ववाला है।"

और कुछ विशेष कहते हैं- पूर्व गाथा में जिस स्वसवेदनज्ञान ही को **प्रत्याख्यान** कहा था, उसे ही यहाँ **निर्मोहत्व** ऐसा कहा है।

इस प्रकार ही मोह शब्द के स्थान पर राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्शन ये सोलह पद परिवर्तन करके कहना चाहिये। इसी प्रकार अन्य भी जो असख्यात लोकमात्रप्रमाण विभाव भाव हैं वे शब्द परिवर्तन करके (गाथायें) जानना चाहिये।।४१।।

अथ धर्मास्तिकायादिज्ञेयपदार्था अपि मम स्वरूप न भवतीति प्रतिपादयति -

णत्थि मम धम्म आदी बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को। (३७)
त धम्मणिम्ममत्त समयस्स वियाणया विति।।४२।।

णत्थि मम धम्म आदी न सति न विद्यन्ते धर्मास्तिकायादि ज्ञेयपदार्था ममेति। **बुज्झदि** बुध्यते ज्ञानी। तर्हि क्रिमहम् ? **उवओग एव अहमेक्को** विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोग एवाहम् अथवा ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणत्वा- दित्यभेदेनोपयोग एवात्मा स जानाति। केन रूपेण ? यतोऽह टकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभाव एक ततो दधिखण्डशिखिरिणीवत् व्यवहारेणैकत्वेपि शुद्धनिश्चयनयेन मम स्वरूप न भवन्तीति परद्रव्य प्रति निर्ममत्वोऽस्मि। **त धम्मणिम्ममत्त समयस्स वियाणया विति** त शुद्धात्मभावनास्वरूप परद्रव्यनिर्ममत्व समयस्य शुद्धात्मनो विज्ञायका पुरुषा ब्रुवति कथयन्तीति। किञ्च - इदमपि परद्रव्यनिर्ममत्व यत्पूर्वं भणित स्वसवेदज्ञानमेव प्रत्याख्यान तस्यैव विशेषव्याख्यान ज्ञातव्यम्। इति गाथाद्वय गतम्। एव गाथाचतुष्टयसमुदायेन सप्तमस्थल समाप्तम्।।४२।।

यहाँ धर्मास्तिकायादि ज्ञेयपदार्थ भी मेरा स्वरूप नहीं हैं, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(धम्म आदी मम णत्थि)** धर्म आदि ज्ञेय पदार्थ मेरे नहीं हैं और **(एक्को)** एक **(उवओग एव अह)** उपयोग ही मैं हूँ ऐसा **(बुज्झदि)** जो अनुभवता है **(त)** उस पुरुष को **(समयस्स)** आत्मा के अथवा सिद्धात के स्वरूप को **(वियाणया)** जाननेवाल **(धम्मणिम्ममत्त)** धर्मादि परद्रव्यों से निर्ममत्व **(विति)** समझते हैं (कहते हैं)।

टीकार्थ - **णत्थि मम धम्म आदी** धर्मास्तिकायादि ज्ञेयपदार्थ "मेरे नहीं हैं" **बुज्झदि** ऐसा ज्ञानी अनुभवता है। तो मैं क्या हूँ ? **उवओग एव अहमेक्को** मैं विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोग ही हूँ। अथवा अभेद से ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणवाला ही होने से उपयोग ही आत्मा है ऐसा वह जानता है, अनुभवता है।

शका - किस रूप से जानता है ?

समाधान - मैं टकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वभाववाला हूँ एक हूँ उस कारण व्यवहार से धर्म आदि परज्ञेयों के साथ दधि-खाड आदि शिखरिणी के समान भले ही मेरे साथ एकता हो, तो भी शुद्धनिश्चयनय से यह सब मेरा स्वरूप नहीं है, इसलिये मैं सब परज्ञेय पदार्थों के प्रति निर्मम हूँ। **त धम्मणिम्ममत्त समयस्स वियाणया विति** ऐसे उस शुद्धात्मानुभववाले को परद्रव्य से निर्ममत्व है, ऐसा शुद्धात्मा को जाननेवाले आत्मज्ञ पुरुष कहते हैं।

और कुछ विशेष कहते हैं - पूर्व में यह जो **स्वसवेदनज्ञान ही प्रत्याख्यान** है ऐसा कहा था, उसका ही यह **परद्रव्य से निर्ममत्व** का कथन विशेष सपष्टीकरण है ऐसा जानना चाहिये। इस प्रकार दो गाथायें हो गईं। इस तरह चार गाथाओं के समुदाय से सप्तम स्थल समाप्त हुआ।।४२।।

अथ शुद्धात्मैवोपादेय इति श्रद्धान सम्यक्त्व तस्मिन्नेव शुद्धात्मनि स्वसवेदन सम्यग्ज्ञान तत्रैव निजात्मनि वीतरागस्वसवेदननिश्चलरूप चारित्रमिति निश्चयरत्नत्रयपरिणतजीवस्य कीदृश स्वरूप भवतीत्यावेदयन्सन् जीवाधिकारमुपसहरति-

अहमेक्को खलु सुद्धो दसणणाणमइओ सदारूवी। (३८)
णवि अत्थि मज्झ किचि वि अण्ण परमाणुमेत्त पि।।४३।।

अह अनादिदेहात्मैक्य भ्रात्याऽज्ञानेन पूर्वमप्रतिवुन्दोऽपि करतलविन्यस्तसुप्तविस्मृतपश्चान्निद्रा-विनाशस्मृतचामीकरावलोकनन्यायेन परमगुरुप्रसादेन प्रतिवुद्धो भूत्वा शुद्धात्मनि रतो य सोऽह वीतरागश्चिन्मात्र ज्योति। पुनरपि कथभूत ? एक्को यद्यपि व्यवहारेण नरनारकादिरूपेणानेकरतथापि शुद्धनिश्चयेन टकोत्कीर्णज्ञायकैक-स्वभावत्वादेक। खलु स्फुट। पुनरपि किरूप ? सुद्धो व्यावहारिकनवपदार्थेभ्य शुद्धनिश्चयनयेन भिन्न, अथवा रागादिभावेभ्यो भिन्नोऽहमिति शुद्ध। पुनरपि किविशिष्ट ? दसणणाणमइओ केवलदर्शनज्ञानमय। पुनरपि किरूप ? सदारूवी निश्चयनयेन रूपरसगधस्पर्शाभावात्सदाप्यमूर्त्त। णवि अत्थि मज्झ किचि वि अण्ण परमाणुमेत्त पि इत्थभूतस्य सत नैवास्ति ममान्यत्परमाणुमात्रमपि परद्रव्य किमपि। यदेकत्वेन रजकत्वेन ज्ञेयत्वेन वा पुनरपि मम मोहमुत्पादयति। कस्मात् ? परमविशुद्धज्ञानपरिणतत्वात्।।४३।।

यहाँ शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसा श्रद्धान सम्यक्त्व है, उस ही शुद्धात्मा में ही स्वसवेदन सम्यग्ज्ञान है और उसी स्व आत्मा में (स्वभाव में) वीतराग स्वसवेदन निश्चलता ही चारित्र है, इस प्रकार निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय परिणत जीव का स्वरूप किस प्रकार है, यह वताते हुए जीवाधिकार का उपसहार करते हैं -

गाथार्थ - (अह) मैं (एक्को) एक हूँ (सुद्धो) शुद्ध हूँ (दसणणाणमइओ) दर्शन ज्ञानमय हूँ (सदारूवी खलु) निश्चय से सदा अरूपी हूँ (अण्ण) अन्य परद्रव्य (परमाणु मेत्त पि) परमाणु मात्र भी (मज्झ) मेरा (किंचि वि) कुछ भी (ण वि अत्थि) नहीं लगता है, यह निश्चय है।

टीकार्थ - अह अनादिकाल से देह और आत्मा के एकत्व की मान्यता कर भ्रान्ति से अज्ञानभाव से जो पहले अप्रतिवुद्ध (अज्ञानी) था, लेकिन जिस प्रकार कोई हाथ में रखे हुए सुवर्ण को भूल जाता है, या निद्रा में मग्न होकर सो जाता है और फिर निद्रा के दूर हो जाने पर उस सुवर्ण का स्मरण आ जाने से प्रसन्न हो जाता है' ऐसे न्याय से, वैसे ही परमगुरु के प्रसाद से प्रतिवुद्ध होकर जो स्वभाव-शुद्धात्मा में रत हुआ है वह मैं वीतराग चिन्मात्र ज्योति हूँ, ऐसा अनुभवता है।

शका - और कैसा अनुभवता है ?

समाधान - एक्को यद्यपि व्यवहारनय से नर-नारकादि अनेक पर्यायरूप हूँ, तो भी शुद्धनिश्चयनय से टकोत्कीर्णज्ञायक एक स्वभाववाला होने से एक हूँ। खलु सद्धो स्पष्टता से, निश्चय से शुद्ध हूँ। व्यावहारिक

इति समयसारव्याख्याया शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाया तात्पर्यवृत्तौ स्थलसप्तकेन जो पस्सदि अप्पाणमित्यादि सप्त विशति गाथा । तदनन्तरमुपसहारसूत्रमेकमिति समुदायेनाष्टाविशति गाथाभिर्जीवाधिकार समाप्त । इति प्रथमरग ।

नवपदार्थों से शुद्धनिश्चयनय से भिन्न हूँ। अथवा मैं रागादिभावों से भिन्न हूँ ऐसा मैं शुद्ध हूँ। **दसणाणमइओ** केवलदर्शनज्ञानमय हूँ। **सदारूवी** निश्चयनय से रूप, रस, गध, स्पर्शरहित होने से सदैव अमूर्तिक हूँ।

णवि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्ण परमाणुमेत्तपि इस प्रकार परम विशुद्ध ज्ञान से परिणतपना होने से पररूप परमाणुमात्र भी परद्रव्य कुछ भी मेरा नहीं हो सकता है कि जिससे एकत्वबुद्धि से उपरजक होकर अथवा ज्ञेय के साथ एकत्व मानकर उत्पन्न होनेवाला मोह मुझे फिर से उत्पन्न हो जाये (याने मैं निर्ममत्व हूँ)।।४३।।

इस प्रकार श्री जयसेनाचार्यजी के द्वारा बनाई हुई शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाली समयसार की व्याख्यारूप तात्पर्यवृत्ति में सात स्थलों से "जो पस्सदि अप्पाण इत्यादि" २७ गाथा और उपसहार की एक गाथा याने सब मिलकर २८ गाथाओं से जीवाधिकार समाप्त हुआ। इस प्रकार प्रथमरग समाप्त हुआ।

卐 卐 卐 卐 卐

अर्हन्त ही सर्वज्ञ क्यों हैं ?

अर्हन्त ही सर्वज्ञ हैं क्योंकि वे निर्दोष हैं। जो सर्वज्ञ नहीं होता है वह निर्दोष नहीं होता है (केवल व्यतिरेकी हेतु)।

आवरण और रागादि, ये दोष हैं। दोष रहितता को निर्दोषत्व कहते हैं। वह निर्दोषत्व सर्वज्ञता के बिना नहीं हो सकता है। किञ्चिज्ज्ञ के दोषों का अभाव नहीं होता, अत वह निर्दोष नहीं होता है। अतएव अर्हन्त ही निर्दोष हैं, और वही सर्वज्ञ हैं।

अर्हन्त मे ही निर्दोषत्व क्यों है ? क्योंकि अर्हन्त के वचन युक्तिशास्त्र से अविरोधी हैं। अर्हन्त के वचन युक्तिशास्त्र से अविरोधी (अनुसारी) हैं यह सुव्यवस्थित ही है, क्योंकि अर्हन्त के द्वारा अभिमत - १ मोक्ष २ मोक्ष का कारण ३ ससार ४ ससार का कारण ५ अनेक धर्मात्मक चेतनतत्व तथा ६ अनेक धर्मात्मक अचेतन तत्वों का प्रमाण से अवाधितपना है।

इसलिये **अर्हन्त यथार्थ प्रवक्ता हैं। अर्हन्त यथार्थ प्रवक्ता होने से निर्दोष हैं। अर्हन्त निर्दोष होने से सर्वज्ञ हैं।**

हे अर्हन्त ! आपके अमृतरूप मत से बाहर रहने वाले, आप्ताभिमानदग्ध, सर्वथा एकान्तवादियों का माना गया इष्ट (मोक्षादि तत्व) प्रत्यक्ष से वाधित होता है। - आप्तमीमासा, कारिका - ४, ५, ६, ७, आ समन्तभद्र।

अन्वय-व्यतिरेक सबध का अभाव होने से जो ज्ञान का विषय होता है, वह ज्ञान का कारण नहीं होता है। जैसे पदार्थ और प्रकाश। प मु अ २ सू ६, ७

अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारणभाव - न्या दी पृ २६ अ २/४

साततत्व / नवतत्व / नवपदार्थ

नवतत्वगतत्वेऽपि यदेकत्व न मुन्चति। आत्मख्याति कलश न ७।

अर्थ - जो नवतत्वों में व्याप्त होकर भी अपना एकत्व नहीं छोडता है।

" नारकादि जीव विशेषाजीवपुण्यपापास्रवसवरनिर्जरावधमोक्षलक्षण व्यावहारिकनवतत्वेभ्य टकोत्कीर्णैकज्ञायक स्वाभावभावेन अत्यन्तविविक्तत्वात्शुद्ध ।" आत्मख्याति टीका गाथा न ३८।

अर्थ - नारकादि जीव विशेष, अजीव, पुण्यपापास्रव, सवर, निर्जरा, वध व मोक्ष लक्षणरूप व्यावहारिक नवतत्वों से टकोत्कीर्ण (ध्रुव) एक ज्ञायक स्वभाव भाव के द्वारा अत्यत विविक्तपना होने से मैं शुद्ध (अनादि अनत शुद्ध) हूँ।

"व्यावहारिकनवपदार्थेभ्य शुद्धनिश्चयनयेन भिन्न अथवा रागादिभावेभ्य भिन्न अह इति शुद्ध । न एव अस्ति मम अन्यत् परमाणुमात्र परद्रव्य किमपि।" तात्पर्यवृत्ति टीका गाथा न ३८।

शाश्वत, अविनाशी, ध्रुव — **अवस्था, क्षणिक, पर्याय**

मोक्षरहित, आस्रववधसवरपूर्वकनिर्जरारहित, सवररहित, पुण्यपापआस्रववधरहित, परद्रव्यादिअजीवरहित, विशिष्टपर्यायसहितजीवरहित', निजअनादिअनतशुद्ध जीवत्व है

मोक्ष { सादि अनत शुद्धपर्याय

मोक्षरहित, आस्रववधसवरपूर्वकनिर्जरारहित, सवररहित, पुण्यपापआस्रववधरहित, परद्रव्यादिअजीवरहित, विशिष्टपर्यायसहितजीवरहित', निजअनादिअनतशुद्ध जीवत्व है

निर्जरा { आस्रव वध सवर पूर्वक निर्जरा

मोक्षरहित, आस्रववबधसवरपूर्वकनिर्जरारहित, सवररहित, पुण्यपापआस्रववधरहित, परद्रव्यादिअजीवरहित, विशिष्टपर्यायसहितजीवरहित', निजअनादिअनतशुद्ध जीवत्व है

सवर { पुण्यपापआस्रव का निरोध

मोक्षरहित, आस्रववधसवरपूर्वकनिर्जरारहित, सवररहित, पुण्यपापआस्रववधरहित, परद्रव्यादिअजीवरहित, विशिष्टपर्यायसहितजीवरहित', निजअनादिअनतशुद्ध जीवत्व है

वध { पुण्यवधसहित पापवधसहित

मोक्षरहित, आस्रववधसवरपूर्वकनिर्जरारहित, सवररहित, पुण्यपापआस्रववधरहित, परद्रव्यादिअजीवरहित, विशिष्टपर्यायसहितजीवरहित', निजअनादिअनतशुद्ध जीवत्व है

आस्रव { पुण्यआस्रवसहित पापाआस्रवसहित

मोक्षरहित, आस्रववबधसवरपूर्वकनिर्जरारहित, सवररहित, पुण्यपापआस्रववधरहित, परद्रव्यादिअजीवरहित, विशिष्टपर्यायसहितजीवरहित', निजअनादिअनतशुद्ध जीवत्व है

अजीव { निजअनादिअनत शुद्धजीव से पृथक आकाशादि द्रव्य व अन्य विकारी भाव

मोक्षरहित, आस्रववधसवरपूर्वकनिर्जरारहित, सवररहित, पुण्यपापआस्रववधरहित, परद्रव्यादिअजीवरहित, विशिष्टपर्यायसहितजीवरहित', निजअनादिअनतशुद्ध जीवत्व है

जीव { विशिष्टपर्याय सहित

निश्चयदृष्टि ध्रुवद्रष्टि अथवा द्रव्यदृष्टि - व्यवहारदृष्टि पर्यायदृष्टि

स्वय के जीवद्रव्य में से अविनाशी अश व क्षणिक अश को जानकर 'मेरा जीव अविनाशी ज्ञानानदमय शाश्वतशुद्ध है' ऐसा विचार किया तो रोज के जीवन में तुरन्त सम्यक् आनद मिलता है, समाधान, समता व शातता आती है और सर्वदु ख नष्ट होते हैं।

टीप नवर १.- 'विशिष्टपर्यायसहितजीवरहित' निजअनादिअनत शुद्धजीवत्व अर्थात् विशिष्टपर्यायसहित वाले जीवतत्त्व से रहित ऐसा निजअनादिअनतशुद्ध जीवत्व है अर्थात् निजध्रुवात्मा में 'विशिष्टपर्यायसहित वाला जीवतत्त्व नहीं है।' गाथा १३ की टीका।

अजीव अधिकार

अथानतर श्रृंगारसहितपात्रवज्जीवाजीवावेकीभूतौ प्रविशत । तत्र स्थलत्रयेण त्रिशद्गाथापर्यन्तमजीवाधिकार कथ्यते। तेषु प्रथमस्थले शुद्धनयेन देहरागादिपरद्रव्य जीवस्वरूप न भवतीति निषेधमुख्यत्वेन **अप्पाणमयाणता** इत्यादिगाथामार्दि कृत्वा पाठक्रमेण गाथादशकपर्यन्त व्याख्यान करोति। तत्र गाथादशकमध्ये परद्रव्यात्मवादे पूर्वपक्षमुख्यत्वेन गाथापचक, तदनतर परिहारमुख्यत्वेन सूत्रमेकम्। अथाष्टविध कर्मपुद्गलद्रव्य भवतीति कथनमुख्यत्वेन सूत्रमेकम्। ततश्च व्यवहारनयसमर्थनद्वारेण गाथात्रय कथ्यत इति समुदायपातनिका। तद्यथा-

अथ देहरागादिपरद्रव्य निश्चयेन जीवो भवतीति पूर्वपक्ष करोति -

अप्पाणमयाणता मूढा दु परप्पवादिणो केई। (३९) आ. ख्या.
जीव अज्झवसाण कम्मं च तहा परूविति।।४४।। ता. वृ.
अवरे अज्झवसाणेसु तिव्वमदाणुभागग जीव। (४०)
मण्णंति तहा अवरे णोकम्म चावि जीवो त्ति।।४५।।
कम्मस्सुदय जीव अवरे कम्माणुभागमिच्छति। (४१)
तिव्वत्तणमदत्तणगुणेहि जो सो हवदि जीवो।। ४६।।
जीवो कम्म उहय दोण्णि वि खलु केवि जीवमिच्छति। (४२)
अवरे सजोगेण दु कम्माण जीवमिच्छति।।४७।।
एवविहा बहुविहा परमप्पाण वदति दुम्मेहा। (४३)
तेण दु परप्पवादी णिच्छयवादीहि णिद्दिट्ठा।।४८।।

अब इसके वाद शृगारसहित पात्र के समान जीव और अजीव दोनों एकरूप होकर प्रवेश करते हैं। वहाँ तीन स्थलों से तीस गाथापर्यंत अजीवाधिकार कहा जायेगा। उनमें पहले स्थल में शुद्धनिश्चयनय से देह और रागादिभाव-परद्रव्यरूप जीवद्रव्य का स्वभाव नहीं होता है, इस तरह निषेध की मुख्यता से **"अप्पाणमयाणता"** इत्यादि गाथा से शुरु करके दस गाथा तक व्याख्यान करते हैं। उन दस गाथाओं में परद्रव्य को आत्मा माननेवालों की पूर्वपक्ष की मुख्यता से पाँच गाथायें हें, तदनतर उसका परिहार करने की मुख्यता से एक गाथा हे। फिर आठ प्रकार का कर्म पुद्गल द्रव्य है, ऐसे कथन की मुख्यता से एक गाथा है। और फिर व्यवहारनय के समर्थनरूप से तीन गाथायें कही गयी हें। इस तरह समुदाय पातनिका हुई।
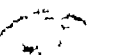
अप्पाणमयाणता मूढा दु परप्पवादिणो केई आत्मानमजानन्त मूढा परद्रव्यमात्मान वदन्तीत्येवशीला केचन परात्मवादिन । **जीव अज्झवसाण कम्मं च तहा परूविति** यथाङ्गारात् कार्ष्ण्य भिन्न नास्ति तथा रागादिभ्यो भिन्नो जीवो नास्तीति रागाद्यध्यवसान कर्म च जीव प्ररूपयन्ति। अथ **अवरे अज्झवसाणेसु तिव्वमदाणुभागग जीव मण्णति** अपरे केचनैकान्तवादिन रागाद्यध्यवसानेषु तीव्रमन्दतारतम्यानुभावरूपेण शक्तिमाहात्म्य गच्छन्तीति तीव्रमदानुभावगतं जीव मन्यते। **तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवो त्ति** तथैवापरे चार्वाका शरीरनोकर्मरहितपर- मात्मभेदविज्ञानशून्या शरीरादिनोकर्म चापि जीव मन्यते। अथ **कम्मस्सुदय जीव अवरे** अपरे कर्मण उदय जीवमिच्छति। **कम्माणुभागमिच्छति** अपरे च कर्मानुभाग तीव्रमन्दादिशक्तिरूप जीवमिच्छति। कथभूत स चानुभाग ? **तिव्वत्तणमदत्तणगुणेहि जो सो हवदि जीवो** तीव्रमन्दत्वगुणाभ्या वर्तते य स जीवो भवतीति। अथ **जीवो कम्म उहय दोण्णिवि खलु केवि जीवमिच्छति** जीवकर्मोभय द्वे अपि जीवकर्मणी मिलितेऽपि खलु स्फुट जीवमिच्छंति। **अवरे सजोगेण दु कम्माण जीवमिच्छति** अपरे केचन अष्टकाष्ठसयोगवदष्टकर्मणा सयोगेनापि जीवमिच्छति। कस्मात् ? अष्टकर्मसयोगादन्यस्य शुद्धजीवस्यानुपपत्ते । अथ **एवविहा बहुविहा परमप्पाण वदति दुम्मेहा** एवविधा बहुविधा बहुप्रकारा देहरागादिपरद्रव्यमात्मान वदन्ति दुर्मेधसो दुर्बुद्धय । **तेण दु परप्पवादी णिच्छयवादीहि णिद्दिट्ठा** तेन कारणेन तु पुन देहरागादिक परद्रव्यमात्मान वदन्तीत्येवशीला परात्मवादिनो निश्चयवादिभि सर्वज्ञैर्निर्दिष्टा इति पञ्चगाथाभि पूर्वपक्ष कृत ।। ४४ से ४८।।

यहाँ देह और रागादि परद्रव्य को जीव है, ऐसा निश्चयनय से कहनेवाले के प्रसंग का कथन करते हैं-

गाथार्थ - (अप्पाणमयाणता) आत्मा को न जाननेवाले (दु) किन्तु (परप्पवादिणो) पर को आत्मा कहनेवाले (केई मूढा) कोइ मूढ मोही अज्ञानी तो (अज्झवसाण) अध्यवसान को (च तहा) और उसी प्रकार कोई (कम्म) कर्म को (जीव) जीव (परूविति) कहते हैं।

(अवरे) अन्य कोई (अज्झवसाणेसु) अध्यवसानों में (तिव्वमदाणुभागग) तीव्रमंद अनुभाग को (जीव) जीव (मण्णति) मानते हैं। (तहा) उसी प्रकार (अवरे) अन्य कोइ (णोकम्म चावि) नोकर्म को भी (जीवो त्ति) जीव मानते हैं।

(अवरे) अन्य कोई (कम्मस्सुदय) कर्म के उदय को (जीव) जीव मानते है, कोई (कम्माणुभाग) कर्म के अनुभाग को (जो) जो अनुभाग (तिव्वत्तणमदत्तणगुणेहि) तीव्रमंदरूप गुणों से भेद को प्राप्त होता है (सो) वह (जीवो हवदि) जीव है (इच्छंति) ऐसा इष्ट करते हैं।

(केवि) कोई (जीवो कम्म उहय) जीव और कर्म उभयरूप (दोण्णि वि) दोनों मिले हुए को (खलु) ही (जीवमिच्छति) जीव मानते हैं, (दु) और (अवरे) अन्य कोई (कम्माण सजोगेण) कर्मों के सयोग से ही (जीवमिच्छति) जीव मानते हैं।

(एवंविहा) इस प्रकार तथा (बहुविहा) अन्य भी बहुत प्रकार से (दुम्मेहा) दुर्बुद्धि मिथ्यादृष्टि जीव (पर) पर को (अप्पाण) आत्मा (वदति) कहते हैं (तेण दु परप्पवादी) इस कारण से वे पर को आत्मा करने वाले हैं, वे सत्य-परमार्थ को कहने वाले नहीं हैं। इस तरह (णिच्छयवादीहि) निश्चयवादियों ने (णिद्दिट्ठा) कहा है।

- अथ परिहार वदति -

एदे सव्वे भावा पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा। (४४)
केवलिजिणेहि भणिया कह ते जीवो त्ति वुच्चति।।४९।।

एदे सव्वे भावा पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा एते सर्वे देहरागादय कर्मजनितपर्याया पुद्गलद्रव्यकर्मोदयपरिणामेन निष्पन्ना । **केवलिजिणेहि भणिया कह ते जीवो त्ति वुच्चति** केवलिजिनै सर्वज्ञै कर्मजनिता इति भणिता कथ ते निश्चयनयेन जीवा इत्युच्यन्ते न कथमपि।

किच विशेष - अड्गारात् काष्र्ण्यवद्रागादिभ्यो भिन्नो जीवो नास्तीति यद्भणित तदयुक्त। कथमिति चेत्? रागादिभ्यो भिन्न शुद्धजीवोऽस्तीति पक्ष, परमसमाधिस्थपुरुषै शरीररागादिभ्यो भिन्नस्य चिदानंदैकस्वभावशुद्ध-जीवस्यापलब्धेरिति हेतु । किट्टकालिकास्वरूपात् सुवर्णवदिति दृष्टात ।

टीकार्थ - अप्पाणमयाणता मूढा दु परप्पवादिणो केई जो आत्मा को तो जानते नहीं हैं लेकिन परद्रव्य को ही आत्मा कहते हैं ऐसे कोई परात्मवादी (अज्ञानी) जीव हैं। **जीव अज्झवसाण कम्म च तहा परूविति** जैसे अगार से कालापन कोई भिन्न (वस्तु) नहीं है, वैसे ही रागादि भावों से भिन्न जीव नहीं है, ऐसा रागादि अध्यवसान को और कर्म को ही जीव है ऐसा कहते हैं। **अवरे अज्झवसाणेसु तिव्वमदाणुभागग जीव मण्णति** अन्य कोई एकातवादी लोग रागादि अध्यवसानों में जो तीव्रता मदतारूप तारतम्य को लिए हुए अनुभव-अनुभाग होता है उस शक्ति माहात्म्य के स्वरूप को प्राप्त होनेवाला तीव्रमदअनुभाग ही जीव है ऐसा कहते हैं। **तहा अवरे णोकम्म चावि जीवो त्ति** उसी तरह चार्वाकादि जो कर्म और नोकर्म से रहित पर और आत्मा के भेदविज्ञान से रहित हैं ऐसे वे वादी शरीरादि नोकर्म को ही जीव मानते हैं। **कम्मस्सुदय जीव अवरे** दूसरे कोई कर्म के उदय को ही जीव कहते हैं। **कम्माणुभागमिच्छन्ति** अन्य कोई लता, दारू, अस्थि, और पाषाणरूप जो कर्मों का फल है उसको ही जीव ऐसा कहते हैं।

शका - वह अनुभाग कैसा है ?

समाधान - **तिव्वत्तण मदत्तण गुणेहि जो सो हवदि जीवो** वह अनुभाग तीव्रत्व मदत्व गुणों से जो वर्तता है उसको ही वे जीव ऐसा कहते हैं। **जीवो कम्म उहय दोण्णिवि खलु केवि जीवमिच्छन्ति** कोई जीव और कर्म इन दोनों को शिखिरिणी के समान मिले हुए को ही जीव कहते हैं। **अवरे सजोगेण दु कम्माण जीव मिच्छन्ति** और कोई लोग, जैसे आठ काठों का परस्पर सयोग होकर एक खाट बन जाती है वैसे ही आठ कर्मों के सयोग से भी जीव हो जाता है ऐसा मानते हैं, क्योंकि आठ कर्मों के सयोग से भिन्न शुद्ध जीव की उपलब्धि नहीं है। **एव विहा बहुविहा परमप्पाण वदति दुम्मेहा** इसी प्रकार और भी अनेक प्रकार की कल्पना करनेवाले दुर्बुद्धिवाले देह-रागादि परद्रव्य को "आत्मा" ऐसा कहते हैं। **तेण दु परप्पवादी णिच्छयवादीहि णिदिट्ठा** इसलिये निश्चयवादी-सर्वज्ञ भगवान ने ऐसा कहा है कि, "ये लोग देह-रागादिरूप परद्रव्य को ही आत्मा कहनेवाले परात्मवादी हैं।" इस तरह पॉच गाथाओं द्वारा पूर्वपक्ष का कथन हुआ।।४४ से ४८।।

किच - अङ्गारदृष्टातोऽपि न घटते। कथमिति चेत् ? यथा सुवर्णस्य पीतत्व अग्नेरुष्णत्व स्वभावस्तथाङ्गारस्य कृष्णत्वस्वभावस्य तु पृथक्त्व कर्तुं नायाति। रागादयस्तु विभावा स्फटिकोपाधिवत् ततस्तेषा निर्विकारशुद्धात्मनुभूतिवलेन पृथक्त्व कर्तुं शक्यते इति। यदप्युक्तमष्टकाष्टसयोगखट्वावदष्टकर्मसयोग एव जीवस्तदप्यनुचित अष्टकर्मसयोगात् भिन्न शुद्धजीवोऽस्तीति पक्षवचनअष्टकाष्ठसयोग खट्वाशायिन पुरुपस्येव परमसमाधिस्थपुरुपैरष्टकर्मसयोगात् पृथग्भूतस्य शुद्धवुद्धैकस्वभावजीवस्योपलब्धेरिति दृष्टात सहित हेतु ।

किञ्च - देहात्मनोरत्यत भेद इति पक्ष भिन्नलक्षणलक्षितत्वादिति हेतु जलानलवदिति दृष्टान्त । इति परिहारगाथा गता।।४९।।

पीछे की पॉच गाथाओं द्वारा जो पूर्वपक्ष का कथन किया था, अव उसका परिहार करते हैं -

गाथार्थ - **(एदे)** ये पूर्व में कहे हुए अध्यवसान आदि **(सव्वे भावा)** सव ही भाव **(पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा)** पुद्गलद्रव्य के परिणमन से उत्पन्न हुये हैं ऐसा **(केवलिजिणेहि)** केवली सर्वज्ञ जिनदेव ने **(भणिया)** कहा है **(ते जीवो)** उनको जीव **(त्ति कह वुच्चति)** ऐसा कैसे कह सकते हैं ? अथात् नहीं कह सकते हैं।

टीकार्थ - **एदे सव्वे भावा पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा** ये सभी देह-रागादिक, कर्मजनितपर्यायें पुद्गलद्रव्य कर्मोदय के परिणाम से निष्पन्न हैं। वे कर्मजनित पर्यायें हैं, **केवलि जिणेहि भणिया कह ते जीवो त्ति वुच्चन्ति** ऐसा सर्वज्ञ भगवान द्वारा कहा गया है। निश्चयनय से वे सव भाव जीव के कैसे हो सकते हैं, किसी भी प्रकार से नहीं हो सकते हैं।

ओर कुछ विशेप कहते हैं- जैसे अगार से कालापन भिन्न नहीं है वैसे वे सभी भाव जीव से भिन्न नहीं हैं, ऐसा जो पूर्वपक्ष स्थापन किया था वह गलत कहा है। किस प्रकार ? शुन्द्रजीव रागादि भावों से भिन्न है, यह पक्ष है। क्योंकि परमसमाधिस्थ (स्वानुभूति वाले) पुरुषों के द्वारा शरीर से और गगादि से भिन्न ऐसे चिदानद एक स्वभाव शुन्द्र जीव की उपलव्धि (प्राप्ति) देखी जाती है - यह हेतु है। जैसे किट्ट कालिमादि से सुवर्ण भिन्न है। यह उदाहरण है। विशेप यह है कि, अगार से कालापन भिन्न नहीं है, यह दृष्टात भी यहॉ ठीक नहीं वैठता।

शका - कैसे ?

समाधान - जैसे सुवर्ण का पीतत्व, आग्नि का उष्णत्व स्वभाव है क्योंकि द्रव्य से स्वभाव भिन्न नहीं होता है। इसी तरह अगार से कालापन स्वभाव भिन्न नहीं है। स्वभाव को द्रव्य से भिन्न नहीं किया जा सकता है। लेकिन स्फटिक में आई हुई उपाधि के समान रागादिक तो विभाव भाव हैं। इसलिये निर्विकार शुद्धात्मानुभूति के वल से रागादिक भावों को पृथक किया जा सकता है।

इसी प्रकार यह जो कहा गया है कि, आठ काठों के सयोग से खाट वन जाती है उसी प्रकार आठ कर्मो के सयोग से जीव वन जाता (उत्पन्न होता) है सो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि अष्टकर्मसयोग से भिन्न शुन्द्र जीव द्रव्य है - यह पक्षवचन है।

अथ चिद्रूपप्रतिभासेऽपि रागाद्यध्यवसानादय कथ पुद्गलस्वभावा भवतीति चेत् ?

अट्ठविह पि य कम्म सव्व पुग्गलमय जिणा विति। (४९)
जस्स फलं त वुच्चदि दुक्ख त्ति विपच्चमाणस्स।।५०।।

अट्ठविह पि य कम्म सव्व पुग्गलमय जिणा विति सर्वमष्टविधमपि कर्म पुद्गलमय भवतीति जिना वीतरागसर्वज्ञा ब्रुवति कथयति। कथभूतम् ? यत्कर्म **जस्स फल त वुच्चदि दुक्ख त्ति विपच्चमाणस्स** यस्य कर्मण फल तत्प्रसिद्धमुच्यते कि व्याकुलत्वस्वभावत्वाद्दु खमिति। कथभूतस्य कर्मण ? विशेषेण पच्यमानस्योदयागतस्य। इदमत्र तात्पर्यम् अष्टविधकर्मपुद्गलस्य कार्यमनाकुलत्वलक्षण परमार्थसुखविलक्षण- माकुलत्वोत्पादक दु ख रागादयोऽप्या- कुलत्वोत्पादकदु खलक्षणारतत कारणात्पुद्गलकार्यत्वात् शुद्धनिश्चयनयेन पौद्गलिका इति। अष्टविध कर्म पुद्गलद्रव्यमेवेति कथनरूपेण गाथा गता।।५०।।

शका - अष्टकर्मसयोग से भिन्न जीव है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान - परमसमाधिस्थ (शुद्धात्मानुभूतिवाले) पुरुषों के द्वारा आठ कर्मो के सयोग से पृथग्भूत (भिन्न) शुद्ध बुद्ध एक स्वभावमय जीव की उपलब्धि (अनुभूति याने प्राप्ति) देखी जाती है। यह हेतु है।

उदाहरणार्थ - जैसे आठ काठ के सयोग से बनी हुई खाट पर सोने वाला पुरुप उससे भिन्न होता है। यह उदाहरण है। और कहते हैं देह और आत्मा में अत्यत भेद है - यह **पक्ष** है। देह अचेतन लक्षणवाला है और आत्मा चेतन लक्षणवाला है। इस तरह भिन्न लक्षण से लक्षित होने से देह और आत्मा में भेद है। यह **हेतु** है।

जल शीत स्वभाव वाला है, और अग्नि उष्ण स्वभाववाला है इसलिये जल और अग्नि भिन्न हैं। यह उदाहरण है।

इस तरह देह-रागादिक को ही जीव कहनेवाले पूर्व पक्ष का परिहार करनेवाली गाथा समाप्त हो गयी।।४९।।

रागादि अध्यवसानभाव चैतन्य के प्रतिभास में-ज्ञान में होते हैं, तो भी रागादि अध्यवसानादि पुद्गलस्वभाव वाले कैसे होते हैं ? इस शका का उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(अट्ठविह पि य)** जो आठ प्रकार के **(कम्म)** कर्म हैं वे **(सव्व)** सभी **(पुग्गलमय)** पुद्गल स्वरूप हैं ऐसा **(जिणा)** जिनेंद्र भगवान **(विति)** कहते हैं **(जस्स विपच्चमाणस्स)** पककर उदय में आने वाले जिस कर्म का **(फल)** फल **(त)** वह प्रसिद्ध **(दुक्ख)** दु ख है **(त्ति वुच्चदि)** ऐसा कहा है।

टीकार्थ - **अट्ठविह पि य कम्म सव्वे पुग्गलमय जिणा विति** जिनदेव, वीतराग सर्वज्ञ भगवान कहते हैं कि, "आठ प्रकार के सब कर्म पुद्गलमय होते हैं।"

शका - वे आठ प्रकार के कर्म पुद्गलमय कैसे हैं ?

समाधान - **जस्स फल त वुच्चदि दुक्ख त्ति विपच्चमाणस्य** जिन कर्मो का फल व्याकुलत्वस्वभाव वाला होने से दु ख है ऐसा प्रसिद्ध है, ऐसा कहा गया है।

अथ यद्यध्यवसानादय पुद्गलस्वभावास्तर्हि रागी द्वेषी मोही जीव इति कथ जीवत्वेन ग्रथातरे प्रतिपादिता इति प्रश्ने प्रत्युत्तर ददाति -

ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहि। (४६)
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा।।५१।।

ववहारस्स दरीसण व्यवहारनयस्य स्वरूप दर्शित। यत्कि कृतम् ? **उवएसो वण्णिदो जिणवरेहि** उपदेशो वर्णित कथितो जिनवरै। कथभूत ? **जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा** जीवा एते सर्वे अध्यवसानादयो भावा परिणामा भण्यत इति।

शका - किस प्रकार के कर्मों का फल दु ख है ?

समाधान - विशेषता से उदय में आये हुए कर्मों का फल दु ख है। इसका तात्पर्य यह है कि, आठ प्रकार के पुद्गलमय कर्मों का कार्य, अनाकुलता लक्षणवाले पारमार्थिक सुख से विलक्षण आकुलता उत्पन्न करनेवाला दु ख हे और रागादिभाव भी आकुलता उत्पन्न करनेवाले दु ख लक्षणरूप हैं। इस कारण से रागादिक भाव भी पुद्गल के ही कार्य हैं, इसलिये शुद्धनिश्चयनय से पौद्गलिक हैं। इस प्रकार आठ प्रकार के कर्म पुद्गल द्रव्य ही हैं- ऐसा वतानेवाली गाथा हुई।।५०।।

अव कोई शका उठाता है कि, यदि अध्यवसानादिभाव पुद्गल स्वभावमय हैं तो फिर "जीव रागी, द्वेषी, मोही है" इस प्रकार अन्य ग्रथों में इनको जीवस्वरूप कैसे प्रतिपादन किया है ? इसका उत्तर देते हैं-

गाथार्थ - **(एदे सव्वे)** ये सव **(अज्झवसाणादओ भावा)** अध्यवसानादिक भाव **(जीवा)** वे जीव हैं ऐसा **(जिणवरेहि)** जिनवरदेव द्वारा **(ववहारस्स दरीसण)** व्यवहारनय को दिखाने वाले **(उवएसो वण्णिदो)** उपदेश का वर्णन किया है।

टीकार्थ - **ववहारस्स दरीसण** व्यवहारनय का कथन या व्यवहारनय का स्वरूप दिखाया है।

शका - किसने दिखाया है ?

समाधान - **उवएसो वण्णिदो जिणवरेहि** जिनवरों द्वारा उपदेश वर्णन किया गया है।

शका - किस प्रकार का उपदेश वर्णन किया है ?

समाधान - **जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा** ये सव अध्यवसानादिक भाव परिणाम जीव स्वरूप कहे हैं।

और कुछ विशेष कहते हैं - यद्यपि यह व्यवहारनय वाह्यद्रव्य के आलवनवाला होने से अभूतार्थ है, तथापि रागादि वहिर्द्रव्य के आलवन से रहित और विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाव के आलवन से सहित ऐसे परमार्थ का प्रतिपादक होने से उसका दिखाया जाना-कथन करना उचित (योग्य) हे।

किंच विशेष - यद्यप्यय व्यवहारनयो बहिर्द्रव्यावलबनत्वेनाभूतार्थस्तथापि रागादिबहिर्द्रव्यावलवनरहित विशुद्धज्ञानर्शनस्वभावस्वावलबनसहितस्य परमार्थस्य प्रतिपादकत्वाद्दर्शयितुमुचितो भवति। यदा पुनर्व्यवहारनयो न भवति तदा शुद्धनिश्चयनयेन त्रसस्थावरजीवा न भवतीति मत्वा नि शकोपमर्दन कुर्वंति जना । ततश्च पुण्यरूप धर्माभाव इत्येक दूषण। तथैव शुद्धनयेन रागद्वेषमोहरहित पूर्वमेव मुक्तो जीवस्तिष्ठतीति मत्वा मोक्षार्थमनुष्ठान कोऽपि न करोति। ततश्च मोक्षाभाव इति द्वितीय च दूषण। तस्माद् व्यवहारनयव्याख्यानमुचित भवतीत्यभिप्राय ।।५१।।

अथ केन दृष्टातेन प्रवृत्तो व्यवहार इत्याख्याति -

राया हु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो। (४७)
ववहारेण दु वुच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया।।५२।।
एमेव य ववहारो अज्झवसाणादिअण्णभावाण। (४८)
जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो।।५३।।

यदि व्यवहारनय नहीं हो तो शुद्धनिश्चयनय से त्रस स्थावर जीव नहीं हैं- ऐसा मानकर लोक नि शक होकर त्रसस्थावरों के मर्दन में प्रवृत्ति करते हैं (करने लगेंगे)। इससे पुण्यरूपधर्म का अभाव होता है (हो जायगा) यह एक दूषण है। उसी प्रकार शुद्धनिश्चयनय से तो जीव राग-द्वेष-मोहरहित पहले से ही है इसलिये मुक्त ही है, ऐसा मानकर फिर मोक्ष के लिये कोई भी अनुष्ठान नहीं करता है (नहीं करेगा) इसलिये मोक्ष का अभाव होता है - यह दूसरा दूपण आता है। इसलिये व्यवहारनय का कथन करना उचित है, ऐसा अभिप्राय है।।५१।।

अव व्यवहारनय किस तरह प्रवृत्त होता है, यह दृष्टात द्वारा बतालाते हैं -

गाथार्थ - जेसे **(बलसमुदयस्स)** सेना के समूह को **(राया णिग्गदो)** राजा निकला **(त्ति य एसो हु आदेसो)** ऐसा जो आदेश है कथन है वह **(ववहारेण दु वुच्चदि)** व्यवहारनय से कहा जाता है **(तत्थ)** उस सेना में जो वास्तव में **(एक्को)** एक ही **(राया णिग्गदो)** राजा निकला है।

(एमेव य) इसी तरह **(अज्झवसाणादिअण्ण- भावाण)** इन अध्यवसान आदि अन्य भावों को **(सुत्ते)** परमागम में **(जीवो त्ति)** ये जीव हैं ऐसा **(ववहारो कदो)** व्यवहारनय से कहा है **(तत्थ णिच्छिदो)** निश्चय से विचारा जाय तो उन भावों में **(जीवो एक्को)** जीव तो एक ही है।

टीकार्थ - **राया हु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो** सेना के निकलने पर **यह राजा निकला** और **ववहारेण दु वुच्वदि तत्थेको णिग्गदो राया** राजा के साथ जाती हुई और पॉच योजनतक फैली हुई सेना को देखकर सव सेना को ही **यह राजा जा रहा है** ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। लेकिन निश्चयनय से वहॉ तो एक ही गजा जा रहा है (अन्य पुरुष राजा नहीं है) यह दृष्टात हो गया। इसका दार्ष्टान्त यह है कि, **एमेव य ववहारो अज्झवसाणादि अण्ण भावाण** सेना के स्थान पर अध्यवसानादिभाव और राजा के स्थान पर जीव इस तरह व्यवहार से जीव से भिन्न अध्यवसानादि भावों को याने रागादि पर्यायों को **जीवो त्ति कदो सुत्ते** जीव ऐसा सूत्र में, परमागम में, (आगम ग्रथों में) कहा है। **तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो** लेकिन उन पर्यायों में शुद्धनिश्चयनय से भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मरहित, शुद्धबुद्ध एकस्वभाववाला एक जीवद्रव्य है।

राया हु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो राजा हु स्फुट निर्गत एव बलसमुदयस्यादेश कथन। **ववहारेण दु वुच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया** बलसमूह दृष्ट्वा पञ्चयोजनानि व्याप्य राजा निर्गत इति व्यवहारेणोच्यते। निश्चयनयेन तु तत्रैको राजा निर्गत इति दृष्टातो गत । इदानीं दार्ष्टान्तमाह- **एमेव य ववहारो अज्झवसाणादि अण्णभावाण** एवमेव राजदृष्टात प्रकारेणैव व्यवहार । केषाम् ? अध्यवसानादीना जीवाद्भिन्नभावादीना रागादिपर्यायाणा। **जीवो त्ति कदो** सुत्ते कथभूतो व्यवहार ? रागादयो भावा व्यवहारेण जीव इति कृत भणित सूत्रे परमागमे। तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो तत्र तेषु रागादिपरिणामेषु मध्ये निश्चितो ज्ञातव्य । कोऽसी ? जीव ।कथभूत ? शुद्धनिश्चयनयेनैको भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहित शुद्धबुद्धैकस्वभावो जीवपदार्थ । इति व्यवहारनयसमर्थनरूपेण गाथात्रय गतम्। एवमजीवाधिकारमध्ये शुद्धनिश्चयनयेन देहरागादिपरद्रव्य जीवस्वरूप न भवतीति कथनमुख्यतया गाथादशकेन प्रथमोऽन्तराधिकारो व्याख्यात ।।५२, ५३।।

अथानतर वर्णरसादिपुद्गलस्वरूपरहितोऽनतज्ञानादिगुणस्वरूपश्च शुद्धजीव एव उपादेय इति भावनामुख्यतया द्वादशगाथापर्यन्त व्याख्यान करोति। तत्र द्वादशगाथासु मध्ये परमसामायिकभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्प-समाधिसमुत्पन्नपरमानदसुखसमरसीभावपरिणत शुद्धजीव एवोपादेय इति मुख्यत्वेन अरसमरूव इत्यादिसूत्रगाथैका। अथाभ्यतरे रागादयो वहिरगे वर्णादयश्च शुद्धजीवस्वरूप न भवतीति तस्यैव गाथासूत्रस्य विशेषविवरणार्थ **जीवस्स णत्थि वण्णो** इत्यादिसूत्रषट्कम्।

इस तरह व्यवहारनय के समर्थनरूप से तीन गाथायें हो गईं। इस तरह अजीव अधिकार में शुद्धनिश्चयनय से देह-रागादि परद्रव्य जीव का स्वरूप नहीं हैं - इस कथन की मुख्यता गे दस गाथाओं द्वारा प्रथम अतरधिकार का व्याख्यान हो गया।। ५२,-५३।।

इसके बाद वर्ण-रसादिपुद्गलस्वरूपरहित और अनतज्ञानादिगुणमय शुद्धजीव ही उपादेय है - ऐसी भावभासना की मुख्यता से १२ गाथापर्यंत व्याख्यान करते हैं। उन १२ गाथाओं में परमसामायिकभावनापरिणत-अभेदरत्नत्रयलक्षणवाले निर्विकल्पसमाधि से समुत्पन्न **परमानद सुखसमरसीभाव से परिणत शुद्धजीव** ही **उपादेय है**, इस मुख्यता से **'अरसमरूव इत्यादि'** एक गाथा है। उसके बाद अभ्यतर में रागादिभाव और बहिरग में जो वर्णादि भाव हैं वे शुद्धजीव का स्वरूप नहीं हैं - इस तरह उसका ही विशेष कथन करने के लिए **जीवस्स णत्थि वण्णो** इत्यादि ६ गाथायें हैं। इसके बाद वे ही रागादि और वर्णादिक भाव व्यवहार से जीव के हैं शुद्धनिश्चयनय से रागादिक और वर्णादिक भाव जीव के नहीं हैं। इस तरह परस्पर सापेक्ष दो नयों के विवरण के लिये **"ववहोरण दु इत्यादि"** एक गाथा है। तदनतर व्यवहारनय से ही इन रागादिकों का जीव के साथ क्षीरनीर की तरह सवध है, निश्चयनय से रागादि का जीव के साथ कुछ भी सवध नहीं है - इसके समर्थनरूप से **'एदेहि य सबधो इत्यादि'** एक गाथा है। इसके आगे उस व्यवहारनय का ही फिर से अर्थ व्यक्त करने के लिए दृष्टात-दार्ष्टांत के समर्थनरूप से **'पथे मुस्सत'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। यह द्वितीय स्थल की समुदाय पातनिका है।

तत पर त एव रागादयो वर्णादयश्च व्यवहारेण सन्ति शुद्धनिश्चयनयेन न सन्तीति परस्परसापेक्षनय द्वयविवरणार्थं **ववहारेण** दु इत्यादि सूत्रमेकम् तदनतरमेतेषा रागादीना व्यवहारनयेनैव जीवेन सह क्षीरनीरवत्-सवधो न च निश्चयनयेनेति समर्थनरूपेण **एदेहि** य सबधो इत्यादि सूत्रमेकम्। ततश्च तस्यैव व्यवहारनयस्य पुनरपि व्यक्त्यर्थं दृष्टातदार्ष्टान्तसमर्थनरूपेण **'पथे मुस्सत'** इत्यादि गाथात्रयम्। इति द्वितीयस्थले समुदाय पातनिका। तद्यथा-

अथ यदि निश्चयेन रागादिरूपो जीवो न भवति तर्हि कथभूत शुद्धजीव उपादेयस्वरूप इत्यत्राह -

अरसमरूवमगध अव्वत्त चेदणागुणमसद्दं (४९)
जाण अलिगग्गहण जीवमणिद्दिट्ठसठाण।।५४।।

अरसमरूवमगध अव्वत्त चेदणागुणमसद्द निश्चयनयेन रसरूपगधस्पर्शशब्दरहित मनोगतकाम-क्रोधादिविकल्पविषयरहितत्वेनाव्यक्त सूक्ष्मम्। पुनरपि कि विशिष्टम् ? शुद्धचेतनागुणम्। पुनश्च कि रूपम् ? **जाण अलिगग्गहण जीवमणिद्दिट्ठसठाण** निश्चयनयेन स्वसवेदनज्ञानविषयत्वादलिगग्रहण समचतुरस्रादिषट्सस्थानरहित च य पदार्थं तमेव गुणविशिष्ट शुद्धजीवमुपादेयमिति हे शिष्य ! जानीहि।

अब यदि निश्चयनय से जीव रागादिरूप नहीं है, तो उपादेय स्वरूप शुद्ध जीव कैसा होता है यह कहते हैं-

गाथार्थ - हे भव्य ! तू **(जीव)** जीव को **(अरसम्)** रस रहित **(अरूवम्)** रूप रहित **(अगन्धम्)** गन्ध रहित **(अव्वत्त)** अव्यक्त **(चेदनागुणम्)** चेतना गुणवाला **(असद्द)** शब्द रहित **(अलिगग्गहण)** किसी चिन्ह से ग्रहण न होने वाला और **(अणिद्दिट्ठसठाण)** जिसका कोई आकार नहीं कहा जाता है ऐसा **(जाण)** जान।

टीकार्थ - **अरसमरूवमगध अव्वत्त चेदणागुणमसद्द** निश्चयनय से रस-रूप-गध-स्पर्श-शब्दरहित और मनोगत काम-क्रोधादि विकल्परहित होने से अव्यक्त, सूक्ष्म है, और शुद्धचेतना गुणवाला है, **जाणअलिगग्गहण जीवमणिद्दिट्ठसठाण** और निश्चयनय से स्वसवेदनज्ञान का विषय होने से अलिगग्रहण स्वरूपवाला है, और समचतुरस्रादि षट्सस्थानरहित ऐसा जो पदार्थ है उस गुणविशिष्ट उपादेयस्वरूप शुद्धजीव को ही हे शिष्य ! जानो।

इसका तात्पर्य यह है कि शुद्धनिश्चयनय से सब पुद्गलद्रव्यसबधि वर्णादिगुण-शब्दादि पर्यायों से रहित, सव द्रव्येंद्रियों से रहित, सब भावेंद्रियों से रहित, सव मनोगत रागादि विकल्पों से रहित, धर्म-अधर्म-आकाश-काल इतर जीवों से भिन्न, और अनतज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यवाला ऐसा जो शुद्धात्मा है वह सव पदार्थ, सव देश, सब काल, ब्राम्हण-क्षत्रियादि नानावर्ण भेद से भिन्न जनों के समस्त मनोवचनकाय के व्यापारों में (बाह्यक्रियाकाडों में) यह शुद्धात्मा दुर्लभ है। वह जीव (शुद्धात्मा) अपूर्व है, और वह शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसा जानकर निर्विकल्प-निर्मोह-निरजन-निजशुद्धात्मसमाधि से प्रगट होने वाले सुखामृत-रसानुभूति लक्षणवाले शुद्धात्मा में स्थिर होकर शुद्धात्मानुभव करना चाहिये। (आगम भाषा से) गिरि गुफा और दराड में-एकातस्थान में रहकर ध्यान करना चाहिये। इस तरह यह गाथा हुई।।५४।।

इदमत्र तात्पर्यम्। शुद्धनिश्चयनयेन सर्वपुद्गलद्रव्यसवधिवर्णादिगुणशब्दादिपर्यायरहित सर्वद्रव्येंद्रियभावेंद्रियमनोगत रागादिविकल्पाविषयो धर्माधर्माकाशकालद्रव्यशेष जीवातरभिन्नोऽनतज्ञानदर्शनसुखवीर्यश्च य स एव शुद्धात्मा समस्तपदार्थसर्वदेशसर्वकालब्राह्मणक्षत्रियादिनानावर्णभेदभिन्नजनसमस्तमनोवचनकायव्यापारेषु दुर्लभ स एवापूर्व स चेवोपादेय इति मत्वा निर्विकल्पनिर्मोहनिरजननिज शुद्धात्मसमाधिसजातसुखामृतरसानुभूतिलक्षणे गिरिगुहागह्वरे स्थित्वा सर्वतात्पर्येण ध्यातव्य इति। एव सूत्रगाथा गता।।५४।।

अथ वहिरगे वर्णाद्यभ्यतरे रागादिभावा पौद्गलिका शुद्धनिश्चयेन जीवस्वरूप न भवन्तीति प्रतिपादयति-

जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गधो ण वि रसो ण वि य फासो।(५०)
ण वि रूव ण सरीर ण वि सठाण ण सहणण।।५५।।
जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो।(५१)
णो पच्चया ण कम्म णोकम्म चावि से णत्थि।।५६।।
जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई।(५२)
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभागठाणाणि।।५७।।
जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बधठाणा वा।(५३)
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई।।५८।।

अव वाह्य में वर्णादि और अभ्यतर में रागादि भाव पुद्गल के हैं, शुद्धनिश्चयनय से जीव का स्वरूप नहीं हैं, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - (जीवस्स) जीव के (वण्णो) वर्ण (णत्थि) नहीं है (ण वि गधो) गध भी नहीं है (ण वि रसो) रस भी नहीं हे (ण वि य फासो) और स्पर्श भी नहीं हे (ण वि रूव) रूप भी नहीं है (ण सरीर) शरीर भी नहीं है (ण वि सठाण) सस्थान भी नहीं है (ण सहणण) सहनन भी नहीं है।

(जीवस्स) जीव के (रागो णत्थि) राग भी नहीं है (ण वि दोसो) द्वेष भी नहीं है (मोहो णेव विज्जदे) मोह भी विद्यमान नहीं है (पच्चया णो) आस्रव भी नहीं है (ण कम्म) कर्म नहीं है (णोकम्म चावि) और नोकर्म भी (से णत्थि) उसके नहीं है।

(जीवस्स) जीव के (णत्थि वग्गो) वर्ग नहीं है (ण वग्गणा) वर्गणा नहीं है (केई फड्ढया णेव) कोई स्पर्द्धक भी नहीं हैं (णो अज्झप्पट्ठाणा) अध्यात्मस्थान नहीं हैं (य) और (णेव अणुभागठाणाणि) अनुभाग स्थान भी नहीं हैं।

(जीवस्स) जीव के (केइ जोयट्ठाणा णत्थि) कोई योगस्थान नहीं हैं (वा) अथवा (बधठाणा) वधस्थान (ण) नहीं हैं (य) और (णेव उदयट्ठाणा) उदय स्थान भी नहीं हैं (केई मग्गणट्ठाणया ण) कोई मार्गणास्थान नहीं हैं।

(जीवस्स) जीव के (णो ठिदिबधट्ठाणा) स्थितिवधस्थान नहीं हैं (वा) अथवा (संकिलेसठाणा) सक्लेशस्थान (ण) नहीं हैं (विसोहिट्ठाणा णेव) विशुद्धिस्थान भी नहीं हैं (वा) अथवा (णो सजमलद्धिठाणा) सयमलब्धिस्थान नहा हैं।

णो ठिदिबधट्ठाणा जीवस्स ण सकिलेसठाणा वा। (५४)
णेव विसोहिट्ठाणा णो सजमलद्धिठाणा वा।।५९।।
णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स। (५५)
जेण दु एदे सव्वे पुग्गलदव्वस्स परिणामा।।६०।।

वर्णगधरसस्पर्शास्तु रूपशब्दवाच्या स्पर्शरसगधवर्णवती मूर्त्तिश्च औदारिकादिपचशरीराणि, समचतुरस्रादिषट्सस्थानानि वज्रर्षभनाराचादिषट्सहननानि चेति। एते वर्णादयो धर्मिण शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्य न सतीति साध्यो धर्मश्चेति, धर्मधर्मिसमुदायलक्षण **पक्ष**, आस्था सधा **प्रतिज्ञेति** यावत् पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वादिति **हेतु**। एवमत्र व्याख्याने पक्षहेतुरूपेणागद्वयमनुमान ज्ञातव्यम्।

अथ रागद्वेषमोहमिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगरूपपचप्रत्ययमूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मौदारिकवैक्रियिकाहाराकशरीरत्रयाहारादिषट्पर्याप्तिरूपनोकर्माणि इति। **से** तस्य जीवस्य शुद्धनिश्चयनयेन सर्वाण्येतानि न सन्ति। कस्मात् ? पुद्गलपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात्।

(य) और **(जीवस्स)** जीव के **(जीवट्ठाणा)** जीवस्थान **(णेव)** भी नहीं हैं **(गुणट्ठाणा ण)** गुणस्थान भी नहीं हैं **(दु जेण)** क्योंकि **(एदे सव्वे)** ये सब **(पुग्गलदव्वस्स)** पुद्गलद्रव्य के **(परिणामा)** परिणाम **(अत्थि)** हैं।

टीकार्थ - रूप शब्द से कहे जाने वाले वर्ण, गध, रस और स्पर्श तथा स्पर्श-रस-गध-वर्णवाली मूर्ति और औदारिकादि पॉच शरीर, समुचतुरस्रादि छह सस्थान, वज्रवृषभनाराच आदि छह सहनन हैं। ये सभी वर्णादिक शुद्धनिश्चयनय से **धर्मी** जीव के नहीं हैं, यह (वाक्य) **साध्य धर्म** है धर्म-धर्मि का समुदाय यह **पक्ष**, (आस्था, सधा, प्रतिज्ञा) का लक्षण है, इसका **हेतु** (कारण) यह है कि (वर्णादिक) पुद्गल द्रव्य के परिणाम होने से शुद्धात्मानुभूति से भिन्न हैं।

इस व्याख्यान में पक्ष और हेतु दो अग का अनुमान जानना चाहिये।

अब राग, द्वेष, मोह, और मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग ये पाच प्रत्यय, और मूल और उत्तर प्रकृति के भेद से भिन्न किये जाने वाले ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्म, और औदारिक, वैक्रियिक, आहारक तीन शरीर, आहारादि षट् पर्याप्तिरूप नोकर्म, ये सब शुद्धनिश्चयनय से जीव के नहीं हैं क्योंकि ये सभी पुद्गल परिणाम होने से शुद्धात्मानुभूति से भिन्न हैं।

अव परमाणु के अविभाग प्रतिच्छेदरूप शक्ति के समूह को वर्ग कहते हैं, वर्गो के समूह को वर्गणा कहते हैं, वर्गणा के समूह को स्पर्द्धक कहते हैं, ये सभी जीव के नहीं हैं। अथवा कर्मशक्ति की क्रम से जो विशेष वृद्धि है उसे स्पर्धक का लक्षण कहते हैं। वर्ग, वर्गणा और स्पर्धक का लक्षण कहते हैं। वर्ग, वर्गणा और स्पर्धक का लक्षण आगम में इस तरह कहा है कि, अणु की शक्ति के समूह का नाम वर्ग और वहुत वर्गों के समूह का नाम वर्गणा और वर्गणाओं के समूह का नाम स्पर्द्धक है। यह कथन ऐसे स्पर्धकों के नष्ट करने वालों द्वारा कहा गया है। इस प्रकार **शुभ-अशुभ रागादि विकल्प को अध्यवसान कहते हैं**। वे भी जीव के नहीं हैं।

अथ परमाणोरविभागप्रनिच्छेदरूपशक्तिसमूहो वर्ग इत्युच्यते। वर्गाणा समूहो वर्गणा भण्यते। वर्गणासमूहलक्षणानि स्पर्द्धकानि च कानिचिन्न सति। अथवा कर्मशक्ते क्रमेण विशेषवृन्द्रि स्पर्द्धकलक्षणम्। तथा चोक्त वर्गवर्गणास्पर्द्धकाना त्रयाणा लक्षणम् -

"वर्ग शक्तिसमूहोऽणोर्बहूना वर्गणोदिता। वर्गणाना समूहस्तु स्पर्द्धक स्पर्द्धकापहै ।।"

शुभाशुभरागादिविकल्परूपाध्यवसानानि भण्यन्ते, तानि च न सन्ति। लतादार्वस्थिपाषाणशक्तिरूपाणि घातिकर्मचतुष्टयानुभागस्थानानि भण्यन्ते। गुडखाण्डशर्करामृतसमानानि शुभाघातिकर्मानुभागस्थानानि भण्यन्ते। निम्वकाजीरविषहालाहलसदृशान्यशुभा घातिकर्मानुभागस्थानानि च तान्येतानि सर्वाण्यपि शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्य न सन्ति। कस्मात् ? पुद्‌गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात्।

अथ वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितमनोवचनकायवर्गणावलवनकर्मादानहेतुभूतात्म- प्रदेशपरिस्पदलक्षणानि योगस्थानानि प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपचतुर्विधबधस्थानानि सुखदु खफलानुभवरूपाण्युदयस्थानानि गत्यादिमार्गणास्थानानि च सर्वाण्यपि शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्य न सन्ति। कस्मात् ? पुद्‌गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात्।

अथ जीवेन सह कालातरावस्थानरूपाणि स्थितिवधस्थानानि कषायोद्रेकरूपाणि सक्लेशस्थानानि कपायमदोदयरूपाणि विशुद्धिस्थानानि कषायक्रमहानिरूपाणि सयमलब्धिस्थानानि च सर्वाण्यपि शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्य न सन्ति। कस्मात् ? पुद्‌गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात्। अथ जीवस्य शुद्धनिश्चयनयेन

लता, दारु, हड्डी और पाषाण जैसी शक्ति को लिये हुए चार घातियाकर्मों के अनुभागस्थान होते हैं। गुड, खाड, शर्करा और अमृत के समान जो शुभरूप अघातिकर्म हैं वे उनके **अनुभागस्थान** कहे जाते हैं। नीम, काजी, विष और हलाहल ये अशुभ अघाति-कर्मों के अनुभागस्थान कहे जाते हैं। ये सभी अनुभाग स्थान शुद्धनय से जीव के नहीं हैं, क्योंकि ये सब पुद्‌गलद्रव्य के परिणाम होने से शुद्धात्मानुभूति से भिन्न हैं।

अव वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले मन, वचन, काय के वर्गणा के आलम्वन से कर्मग्रहण करने को हेतुभूत जो आत्मप्रदेशों का परिस्पन्दन है लक्षण जिसका ऐसे **योगस्थान** हैं, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप चार प्रकार के **बधस्थान** हैं, सुख-दु खरूप फल के अनुभवरूप **उदयस्थान** हैं, और गति आदि **मार्गणास्थान** हैं, ये सभी भी शुद्धनिश्चयनय से जीव के नहीं हैं क्योंकि ये सब पुद्‌गलद्रव्य के परिणाम होने से शुद्धात्मानुभूति से भिन्न हैं।

जैसा कि गोम्मटसार जीवकाड गाथा न ७२ में कहा है कि, "वादर एकेन्द्रिय सूक्ष्मएकेंद्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असैनी पचेन्द्रिय, सैनी पचेन्द्रिय ये सात पर्याप्त और सात अपर्याप्त के भेद से चौदह **जीवसमास** हैं।" तथा मिथ्यादृष्टि आदि चौदह **गुणस्थान** ये सभी शुद्धनिश्चयनय से जीव के नहीं हैं। क्योंकि ये सभी पुद्‌गलद्रव्य के परिणाम होने से शुद्धात्मानुभूति से भिन्न हैं।

शका - ये वर्णादिक से गुणस्थान तक के २९ भाव जीव के नहीं हैं तो किस कारण से वे जीव के नहीं हैं ?

'बादरसुहमेइंदी बितिचउरिंदी असण्णिसण्णीण। पज्जत्तापज्जत्ता एव ते चउदसा होंति'।।[१]

इति गाथाकथितक्रमेण बादरैकेंद्रियादिचतुर्दशजीवस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्दशगुणस्थानानि च सर्वाण्यपि न सन्ति। कस्मात् ? पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात्। कुत इति चेत् ? यत कारणादेते वर्णादिगुणस्थानाता परिणामा शुद्धनिश्चयनयेन पुद्गलद्रव्यस्य पर्याया इति। अयमत्र भावार्थ - सिद्धातादिशास्त्रेषु अशुद्धपर्यायार्थिकनयेनाभ्यतरे रागादयो बहिरगे शरीरवर्णापेक्षया वर्णादयोऽपि जीवा इत्युक्ता। अत्र पुनरध्यात्म शास्त्रे शुद्धनिश्चयनयेन निषिद्धा इत्युभयत्रापि नयविभागविवक्षया नास्ति विरोध इति वर्णाद्यभावस्य विशेषव्याख्यानरूपेण सूत्रषट्क गतम्।। ५५ से ६०।।

अथ यदुक्त पूर्वं सिद्धातादौ जीवस्य वर्णादयो व्यवहारेण कथिता अत्र तु प्राभृतग्रथे निश्चयनयेन निषिद्धा तमेवार्थं दृढयति -

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवति वण्णमादीया। (५६)
गुणठाणता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स।। ६१।।

व्यवहारनयेन त्वेते जीवस्य भवन्ति वर्णाद्या गुणस्थानान्ता भावा पर्याया न तु केऽपि निश्चयनयेनेति। एव निश्चयव्यवहारसमर्थनरूपेण गाथा गता।। ६१।।

समाधान - ये वर्णादिक से लेकर गुणस्थान के अतपर्यंत के भाव (परिणाम) शुद्धनिश्चयनय से पुद्गलद्रव्य की पर्यायें हैं। इसका तात्पर्य यह हे कि, अभ्यतर में रागादिक भावों को जीव और बहिरग में शरीर के वर्ण की अपेक्षा से वर्णादिक को भी जीव है, ऐसा अशुद्धपर्यायार्थिकनय से सिद्धातशास्त्र में कहा गया है। और यहाँ अध्यात्मशास्त्र में शुद्धनिश्चयनय से रागादिक भावों का और शरीरादि वर्णादिकों का जीव मानने का निषेध किया है। इस प्रकार सिद्धातशास्त्र में (आगम भाषा में) और अध्यात्मशास्त्र में (अध्यात्म भाषा में) नयविभाग की विवक्षा से विरोध नहीं है। इस प्रकार से जीव में वर्णादिक के अभाव का विशेष व्याख्यान रूप से छह गाथायें हो गईं।।५५ से ६०।।

सिद्धातादिग्रथों में **वर्णादिक जीव के हैं** यह व्यवहारनय से कहा गया था, लेकिन इस प्राभृतग्रथ में निश्चयनय से उनका निषेध किया है, ऐसा जो पूर्व में बताया था उसी अर्थ को दृढ करते हैं -

गाथार्थ - **(एदे)** ये **(वण्णमादीया गुणठाणता भावा)** वर्णादि से गुणस्थानपर्यंत जो भाव कहे गये हैं वे **(ववहारेण दु)** व्यवहारनय से तो **(जीवस्स)** जीव के **(हवति)** है **(दु)** परन्तु **(णिच्छयणयस्स)** निश्चयनय से **(केई ण)** इनमें से कोई भी जीव के नहीं हैं।

टीकार्थ - व्यवहारनय से ये वर्ण से शुरू करके गुणस्थान के अत तक के सब भाव-पर्याय जीव के हैं, लेकिन निश्चयनय से इनमें से कोई भी जीव के नहीं हैं। इस प्रकार निश्चयव्यवहार के समर्थनरूप से गाथा हो गयी।।६१।।

---

[१] गोम्मटसार (जीवकाड) गाथा ७२

अथ कस्माज्जीवस्य निश्चयेन वर्णादयो न सन्तीति पृष्टे प्रत्युत्तर ददाति -

एदेहि य सबधो जहेव खीरोदय मुणेदव्वो। (५७)
ण य होंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा।।६२।।

एदेहि य सबधो जहेव खीरोदय मुणेदव्वो एतै वर्णादिगुणस्थानातै पूर्वोक्तपर्यायै सह सबधो यथैव क्षीरनीरसश्लेषस्तथा मतव्य । न चाग्न्युष्णत्वयोरिव तादात्म्यसबध । कुत इति चेत् ? **ण य होंति तस्स ताणि दु** न च भवन्ति तस्य जीवस्य ते तु वर्णादिगुणस्थानाता भावा पर्याया । कस्मात् ? **उवओगगुणाधिगो जम्हा** यस्मादुष्णगुणेनाग्निरिव केवलज्ञानदर्शनगुणेनाधिक परिपूर्ण इति। ननु वर्णाद्यो वहिरगास्तत्र व्यवहारेण क्षीरनीरवत् सश्लेषसबधो भवतु न चाभ्यतराणा रागादीना तत्राशुद्धनिश्चयेन भवितव्यमिति। नैव, द्रव्यकर्मबधापेक्षया योऽसौ असद्भूतव्यवहारस्तदपेक्षया तारतम्यज्ञापनार्थं रागादीनामशुद्धनिश्चयो भण्यते। वस्तुतस्तु शुद्धनिश्चयापेक्षया पुनरशुद्धनिश्चयोऽपि व्यवहार एवेति भावार्थ ।।६२।।

निश्चयनय से वर्णादिक जीव के क्यों नहीं हैं ? ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - (**एदेहि य सबधो**) इन वर्णादिक भावों के साथ जीव का सबध (**खीरोदय जहेव**) जल और दूध के एकक्षेत्रावगाहरूप सबध सदृश (**मुणेदव्वो**) जानना (**य**) और (**ताणि**) वे (**तस्स दु ण होंति**) उस जीव के नहीं हैं (**जम्हा**) क्योंकि (**उवओगगुणाधिगो**) जीव इन से उपयोग गुण के कारण अधिक (भिन्न) है।

टीकार्थ - **एदेहि य सबधो जहेव खीरोदय मुणेदव्वो** इन पूर्वोक्त पर्यायस्वरूप वर्णादि से लेकर गुणस्थान पर्यंत भावों के साथ जीव का वैसा ही सश्लेष सबध है जैसा कि परस्पर में दूध और जल का होता है, वैसा ही सबध मानना योग्य है, लेकिन अग्नि और उष्णता का जैसा तादात्म्य सबध है वैसा तादात्म्य सबध वर्णादिक से गुणस्थान तक के भावों का और जीव का नहीं है।

शका - तादात्म्य सबध किस कारण नहीं है ?

समाधान - **ण य होंति तस्स ताणि दु उपओग गुणाधिगो जम्हा** वर्णादिक से गुणस्थान के अतपर्यत के भाव-पर्याय जीव के नहीं हैं क्योंकि जैसे अग्नि उष्णता से परिपूर्ण है वैसे जीव केवलज्ञानदर्शनगुण से अधिक है, परिपूर्ण है।

शका - वहाँ जो वहिरग वर्णादिक हैं उनका जीव के साथ व्यवहार से सश्लेष सबध है, जैसे दूध और जल का सश्लेष सबध है। यह ठीक है, लेकिन अभ्यन्तर में होने वाले रागादिक भावों का सबध क्यों नहीं हो सकता ?

समाधान - रागादि भावों के साथ भी जीव का सबध नहीं है। द्रव्यकर्म का बध की अपेक्षा से जीव के साथ जो सबध है वह असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा है। उसकी अपेक्षा से तारतम्यता दिखलाने के लिए ऐसा कहा है कि रागादि भावों का जीव के साथ जो सबध है वह अशुद्धनिश्चयनय से कहा जाता है। लेकिन वस्तुत शुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा से तो अशुद्धनिश्चयनय भी व्यवहार ही है। ऐसा भावार्थ है।।६२।।

अथ तर्हि कृष्णवर्णोय धवलवर्णोय पुरुष इति व्यवहारो विरोध प्राप्नोतीत्येव पूर्वपक्षे कृते सति व्यवहारा-विरोध दर्शयतीत्येका पातनिका। द्वितीया तु तस्यैव पूर्वोक्तव्यवहारस्यविरोध लोकप्रसिद्धदृष्टातद्वारेण परिहरति -

पथे मुस्सत पस्सिदूण लोगा भणति ववहारी। (५८)
मुस्सदि एसो पथो ण य पथो मुस्सदे कोई।।६३।।
तह जीवे कम्माण णोकम्माणं च पस्सिदु वण्ण। (५९)
जीवस्स एस वण्णो जिणेहि ववहारदो उत्तो।।६४।।
एव रसगधफासा सठाणादीय जे समुद्दिट्ठा। (६०)
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसति।।६५।।

पथे मुस्सत पस्सिदूण लोगा भणति ववहारी पथि मार्गे मुष्यमाण सार्थं दृष्ट्वा व्यवहारिणोलोका भणन्ति, कि भणन्ति ? **मुस्सदि एसो पथो** मुष्यत एष प्रत्यक्षीभूत पथाश्चौरै कर्तृभूतै । **ण य पथो मुस्सदे कोई** न च विशिष्टशुद्धाकाशलक्षण पथा मुष्यते कश्चिदपि किन्तु पथानमाधारीकृत्य तदाधेयभूता जना मुष्यत। इति दृष्टातगाथा गता। तह **जीवे कम्माण णोकम्माण च पस्सिदु वण्ण** तथा तेन पथि सार्थदृष्टातेन जीवेऽधिकरणभूते कर्मनोकर्मणा शुक्लादिवर्णं दृष्ट्वा। जीवस्स **एस वण्णो जिणेहि ववहारदो उत्तो जीवस्य** एष वर्णो जिनैर्व्यवहारतो भणित। इति दार्ष्टान्तगाथा गता। **एव रसगधफासा सठाणादीय जे समुद्दिट्ठा** एवमनेनैव दृष्टातदार्ष्टांतन्यायेन रसगधस्पर्श सस्थानसहननरागद्वेषमोहादयो ये पूर्वगाथाषट्केन समुद्दिष्टा । **सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसति** ते सर्वे व्यवहारनयस्याभिप्रायेण निश्चयज्ञा जीवस्य व्यपदिशति कथयतीति नास्ति व्यवहारविरोध । इति दृष्टातदार्ष्टांताभ्या व्यवहारनयसमर्थनरूपेण गाथात्रय गतम्। एव शुद्धजीव एवोपादेय इति प्रतिपादनमुख्यत्वेन द्वादशगाथाभि द्वितीयातराधिकारो व्याख्यात ।।६३, ६४, ६५।।

तव यहॉ कृष्ण वर्णवाला पुरुप, धवल वर्णवाला पुरुष ऐसा कहना फिर विरोध को प्राप्त होता है, ऐसा पूर्वपक्ष उठानेवाले को कहते हैं कि व्यवहार का विरोध नहीं है यह दिखाते हैं, यह प्रथम पातनिका है। और द्वितीय पातनिका - उस पूर्वोक्त व्यवहार का विरोध का लोक प्रसिद्ध दृष्टातद्वार से परिहार करते हैं -

गाथार्थ - **(पथे मुस्सत)** जैसे मार्ग में चलते हुए को लुटा हुआ **(पस्सिदूण)** देखकर **(ववहारी)** व्यवहारी **(लोगा)** लोग **(भणति)** कहते हैं कि **(एसो पथो)** यह मार्ग **(मुस्सदे)** लुटता है। वहॉ परमार्थ से विचारा जाय तो **(कोई पथो)** कोई मार्ग **(ण य मुस्सदि)** नहीं लुटता है, जाते हुए लोग ही लुटते हैं।

(तह) उसी तरह **(जीवे)** जीव में **(कम्माण णोकम्माण च)** कर्मों का और नो कर्मो का **(वण्ण)** वर्ण **(पस्सिदु)** देखकर **(जीवस्स)** जीव का **(एस वण्णो)** यह वर्ण है ऐसा **(जिणेहि)** जिनदेव ने **(ववहारदो)** व्यवहार से **(उत्तो)** कहा है।

(एव) इसी प्रकार **(रसगधफासा)** रस, गध और स्पर्श रूप **(सठाणादी य)** और सस्थानादिक हैं **(जे य सव्वे)** ये सभी **(ववहारस्स)** व्यवहार से हैं ऐसा **(णिच्छयदण्हू)** निश्चयनय के ज्ञाता (शुद्धात्मानुभूति वाले) **(ववदिसति)** कहते हैं।

अत पर जीवस्य निश्चयनयेन वर्णादितादात्म्यसबधो नास्तीति पुनरपि दृढीकरणार्थं गाथाष्टकपर्यंत व्याख्यान करोति। तत्रादौ ससारिजीवस्य व्यवहारेण वर्णादितादात्म्य भवति, मुक्तावस्थाया नास्तीति ज्ञापनार्थं **तत्थभवे** इत्यादि सूत्रमेकम्। तत पर जीवस्य वर्णादितादात्म्यमस्तीति दुरभिनिवेशे सति जीवाभावो दूषण प्राप्नोतीति कथनमुख्यत्वेन **जीवो चेवहि** इत्यादि गाथात्रयम्। तदनतरमेकेंद्रियादिचतुर्दशजीवसमासाना जीवेन सह शुद्धनिश्चयनयेन तादात्म्य नास्तीति कथनार्थं तथैव वर्णादितादात्म्यनिषेधार्थं च **एक्क च दोण्णि** इत्यादि गाथात्रयम्। ततश्च मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्दशगुणस्थानानामपि जीवेन सह शुद्धनिश्चयनयेन तादात्म्यनिराकरणार्थं तथैवाभ्यतरे रागादितादात्म्य निषेधार्थं च **मोहणकम्म** इत्यादि सूत्रमेकम्। एवमष्टगाथाभि तृतीयस्थले समुदायपातनिका।

टीकार्थ - पथे मुस्सत पस्सिदूण लोगा भणति व्यवहारी मार्ग में सार्थ को लुटा हुआ देखकर सर्व व्यवहारी लोग ऐसा कहते हैं कि **मुस्सदि एसो पथो** यह सामने वाला मार्ग चोरों से लुटता है। **ण य पथो मुस्सदि कोई** मार्ग शुद्ध आकाश लक्षण वाला है, वह मार्ग किसी से भी लुटता नहीं किन्तु उस मार्ग का आधार लेकर चलने वाले पथिक लुटते हैं (या लूटे जाते हैं) यह दृष्टात गाथा हो गयी। **तह जीवे कम्माण णोकम्माण च पस्सिदु वण्ण** उसी प्रकार उस सार्थ के दृष्टान्त से अधिकरणभूत जीव में (याने उस जीव के सानिध्य में) होने वाले कर्म के और नोकर्म के शुक्लादि वर्ण को देखकर **जीवस्स एस वण्णो जिणेहि ववहारदो उत्तो** जीव के यह वर्ण है ऐसा जिनेंद्रदेव ने व्यवहार से कह दिया है। यह दार्ष्टांत गाथा हो गयी। **एव रसगध फासा सठाणादीय जे समुद्दिट्ठा** इस प्रकार दृष्टात-दार्ष्टांत न्याय से रस, गध, स्पर्श, सस्थान, सहनन, राग, द्वेष, मोहादिक जो पूर्व छह गाथाओं द्वारा (५५ से ६० तक) समीचीनता से निर्देश किये हैं। **सव्वे ववहारस्य य णिच्छयदण्हू ववदिसति** वे सभी व्यवहारनय के अभिप्राय से जीव के हैं, ऐसा निश्चयज्ञ (निश्चय को जानने वाले) कहते हैं, उसमें व्यवहार विरोध नहीं है। इस तरह दृष्टात-दार्ष्टांतरूप से व्यवहारनय समर्थनरूप से तीन गाथायें हो गयी।

इस तरह शुद्धजीव (शुद्ध पारिणामिकभाव या स्वभावसिद्ध आत्मा) ही उपादेय है, इस प्रतिपादन की मुख्यता से १२ गाथाओं द्वारा दूसरा अतराधिकार का व्याख्यान हो गया।। ६३, ६४, ६५।।

इसके आगे निश्चयनय से जीव का वर्णादि के साथ तादात्म्य सबध नहीं है, यह पुनश्च दृढ करने के लिए आठ गाथापर्यंत व्याख्यान करते हैं। वहाँ पहले ससारी जीव का व्यवहारनय से वर्णादिक के साथ तादात्म्य सबध है, और मुक्त अवस्था में वर्णादि के साथ तादात्म्य सबध नहीं है, यह दिखाने के लिये **'तत्थभवे'** इत्यादि एक गाथा है। उसके बाद यदि दुरभिनिवेश से जीव का वर्णादिक के साथ तादात्म्य सबध माना जायगा तो जीव का अभाव होगा - यह दूषण प्राप्त होगा, इस कथन की मुख्यता से **'जीवो चेवहि'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। तदनतर एकेन्द्रियादि १४ जीवसमास का जीव के साथ शुद्धनिश्चयनय से तादात्म्य सबध नहीं है - इस कथन की मुख्यता से और उसी तरह वर्णादि का जीव के साथ तादात्म्य सबध का निषेध करने के लिए **'एक्क च दोण्णि'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। उसके बाद मिथ्यादृष्टि आदि १४ गुणस्थानों का भी जीव के साथ शुद्धनिश्चयनय से तादात्म्य निराकरण करने के लिये, और उसी तरह अभ्यतर में रागादि का तादात्म्य निषेध करने के लिये **'मोहण कम्म'** इत्यादि एक गाथा है। इस प्रकार आठ गाथाओं द्वारा तृतीयस्थल में यह समुदायपातनिका है।

अथ कथ जीवस्य वर्णादिभि सह तादात्म्यलक्षणसम्बन्धो नास्तीति पृष्टे प्रत्युत्तर ददाति-

तत्थ भवे जीवाण ससारत्थाण होंति वण्णादी। (६१)

ससारपमुक्काण णत्थि हु वण्णादओ केई।। ६६।।

तत्थभवे जीवाण ससारत्थाण होंति वण्णादी तत्र विवक्षिताविवक्षितभवे ससारस्थाना जीवानामशुद्धनयेन वर्णादयो भवति। **ससारपमुक्काण** ससारप्रमुक्तानाम्। **णत्थि हु वण्णादओ केई** पुद्‌गलस्थवर्णादितादात्म्य-सम्बन्धाभावात्। केवलज्ञानादिगुणसिद्धत्वादिपर्यायै सह यथा तादात्म्यसम्बन्धोऽस्ति तथा वा तादात्म्य-सम्बन्धाभावादशुद्धनयेनापि न सन्ति पुनर्वर्णादय केऽपि। इति वर्णादितादात्म्यनिषेधरूपेण गाथा गता।। ६६।।

अथ जीवस्य वर्णादितादात्म्यदुराग्रहे सति दोष दर्शयति -

जीवो चेव हि एदे सव्वे भावा त्ति मण्णसे जदि हि। (६२)

जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई।। ६७।।

अव जीव का वर्णादिक के साथ तादात्म्यसबध किस प्रकार नहीं है ? इस तरह पूछने पर गाथा द्वारा प्रत्युत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(वण्णादी)** वर्ण आदिक **(ससारत्थाण जीवाण)** ससार में स्थित जीवों के **(तत्थभवे)** उस भव में **(होंति)** होते हैं **(ससारपमुक्काण)** ससार से छूटे हुए (मुक्त हुए) जीवों के **(हु)** निश्चय से **(वण्णादओ केई)** वर्णादिक कोई भी **(णत्थि)** नहीं हैं, इसलिये तादात्म्य सवध भी नहीं है।

टीकार्थ - **तत्थभवे जीवाण ससारत्था होंति वण्णादी** वहा वर्तमान (विवक्षित) और अवर्तमान याने भूत या भावी (अविवक्षित) भव में जो ससार में स्थित हैं उन्हीं जीवा के अशुद्धनिश्चयनय से वर्णादिक होते हैं, **ससार पमुक्काण** लेकिन ससारप्रमुक्तों का (मुक्तजीवों का) **णत्थि हु वण्णादओ केई** पुद्‌गल में रहनेवाले वर्णादि से तादात्म्यसवध का अभाव होने से तादात्म्य सवध नहीं है, या केवलज्ञानादिगुण का सिद्धत्वादिपर्याय के साथ जेसा तादात्म्यसबध है वेसा अथवा तादात्म्यसबध का अभाव होने से अशुद्धनय से भी वर्णादिक का जीव के साथ कोई भी सवध नहीं है। इस प्रकार जीव का वर्णादि के साथ तादात्म्यसवध के निषेध रूप से (कथन करने वाली) गाथा हो गयी।। ६६।।

अव यदि जीव का वर्णादि से तादात्म्यसवध है, ऐसा दुराग्रह करने से आनेवाले दोष को दिखाते हैं -

गाथार्थ - **(जदि हि)** जो तू **(नि मण्णसे)** ऐसा मानेगा कि **(एदे भावा)** ये वर्णादिक भाव **(सव्वे हि जीवो चेव)** सभी जीव हैं **(दु दे)** तो तेरे मत में **(जीवस्स य अजीवस्स)** जीव ओर अजीव का **(कोई)** कोई **(विसेसो)** भेद **(णत्थि)** नहीं रहेगा।

जीवो चेव हि एदे सव्वे भावा त्ति मण्णसे जदि हि यथानतज्ञानाव्यावाधसुखादिगुणा एव जीवो भवति वर्णादिगुणा एव पुद्गलस्तथा जीव एव हि स्फुटमेते वर्णादय सर्वे भावा मनसि मन्यसे यदि चेत् **जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई** तदा कि दूपणम् ? विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावजीवस्य जडत्वादिलक्षणाजीवस्य च तस्यैव मते कोऽपि विशेषो भेदो नास्ति। ततश्च जीवाभावदूषण प्राप्नोतीति सूत्रार्थ ।।६७।।

अथ ससारावस्थायामेव जीवस्य वर्णादितादात्म्यसवधोऽस्तीति दुरभिनिवेशेऽपि जीवाभाव एव दोप इत्युपदिशति-

जदि ससारत्थाण जीवाण तुज्झ होंति वण्णादी। (६३)
तम्हा ससारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा।।६८।।
एव पुग्गलदव्व जीवो तह लक्खणेण मूढमदी। (६४)
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्त पुग्गलो पत्तो।।६९।।

टीकार्थ - **जीवो चेव हि एदे सव्वे भावा त्ति मण्णसे जदि हि** जैसे अनतज्ञान अव्यावाधसुखादि गुण ही जीव है, वर्णादिगुण ही पुद्गल है, वैसे यदि तू स्पष्टरूप से जीव ही वर्णादिक सव भाववाला है ऐसा मन में मानता है, तव यह दूषण आता है कि **जीवस्सा जीवस्सय णत्थि विसेसो दु दे कोई** विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभाववाले जीव का और जडत्वादि लक्षणवाले अजीव का तेरे मत में कुछ भी विशेप भेद नहीं रहता है। इसलिए जीव का अभाव हो जाता है, यह दूषण प्राप्त होता है। ऐसा सूत्रार्थ है।।६७।।

अब यदि (जीव के साथ वर्णादिक का तादात्म्य सर्वथा न मानकर) केवल ससार अवस्था में ही जीव का वर्णादि के साथ तादात्म्यसवध मानने का दुराग्रह किया तो भी जीव के अभाव का ही दोप आता है - ऐसा उपदेश करते हैं -

गाथार्थ - **(जदि)** यदि **(ससारत्थाण जीवाण)** ससार में स्थित जीवों के **(तुज्झ)** तेरे मत में **(वण्णादी)** वर्णादिक तादात्म्यस्वरूप **(होंति)** है **(तम्हा)** तो इसी कारण **(ससारत्था जीवा)** ससार में स्थित जीव **(रूवित्तमावण्णा)** रूपित्व को प्राप्त हो गये।

(एव) ऐसा होने पर **(पुग्गलदव्व)** पुद्गल द्रव्य ही **(जीवो)** जीव सिद्ध हुआ **(तह लक्खणेण)** पुद्गल के लक्षण के समान जीव का लक्षण होने से **(मूढमई)** हे मूढमति ! **(णिव्वाण)** निर्वाण को **(उवगदो य)** प्राप्त हुआ **(पुग्गलो वि)** पुद्गल ही **(जीवत्त)** जीवपने को **(पत्तो)** प्राप्त हुआ।

टीकार्थ - **जदि ससारत्थाण जीवाण तुज्झ होंति वण्णादि** यदि ससार में स्थित जीवों के पुद्गल की तरह वर्णादिक गुण हैं, तेरे मत से, अभिप्राय से एकात से ऐसा मान लिया जाय **तम्हा ससारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा** तो ससार में स्थित जीव अमूर्त्त अनतज्ञानादि चतुष्टय लक्षण छोडकर शुक्लकृष्णादि लक्षणवाले रूपित्व (मूर्तिकत्व) को प्राप्त होते हैं, यह दूषण प्राप्त होता है।

जदि ससारत्थाण जीवाण तुज्झ होंति वण्णादी यदि चेत्ससारस्थजीवाना पुद्गलस्येव वर्णादयो गुणास्तव मतेन तवाभिप्रायेणैकातेन भवतीति। **तम्हा ससारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा** तत कि दूषण ? ससारस्थजीवा अमूर्त्तानतज्ञानादिचतुष्टयस्वभावलक्षण त्यक्त्वा शुक्लकृष्णादिलक्षण रूपित्वमापन्ना भवति। अथ **एव पुग्गलदव्व जीवो तह लक्खणेण मूढमदी** एव पूर्वोक्तप्रकारेण जीवस्य रूपित्वे सति पुद्गलद्रव्यमेव जीव नान्य कोऽपि विशुद्धचैतन्यचमत्कारमात्रस्तव लक्षणेन तवाभिप्रायेण हे मूढमते ! न केवल ससारावस्थाया पुद्गल एव जीवत्व प्राप्त **णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्त पुग्गलो पत्तो** निर्वाणमुपगतोऽपि पुद्गल एव जीवत्व प्राप्त नान्य कोऽपि चिद्रूप । कस्मादिति चेत् ? वर्णादितादात्म्यस्य पुद्गलद्रव्यस्येव निषेधयितुमशक्यत्वादिति भवत्येव जीवाभाव ।

किच - ससारावस्थायामेकातेन वर्णादितादात्म्ये सति मोक्ष एव न घटते, कस्मादिति चेत् ? केवलज्ञानादि चतुष्टयव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्यैव मोक्षसज्ञा सा च जीवस्य पुद्गलत्वे सति न सभवतीति भावार्थ । एव जीवस्य वर्णादितादात्म्ये सति जीवाभावदूषणद्वारेण गाथात्रय गतम्।।६८, ६९।।

अथैव स्थित वादरसूक्ष्मैकेंद्रियादिसज्ञीपचेंद्रियपर्यंतचतुर्दशजीवस्थानानि शुद्धनिश्चयेन जीवस्वरूप न भवति तथा देहगता वर्णादयोपीत्यावेदयति -

एक्क च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पच इदिया जीवा। (६५)
वादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स।।७०।।
एदाहि य णिव्वत्ता जीवट्ठाणाउ करणभूदाहि। (६६)
पयडीहि पुग्गलमईहि ताहि कह भण्णदे जीवो।।७१।।

एव पुग्गलदव्व जीवो तह लक्खणेण मूढमदी हे मूढमते ! तेरे अभिप्राय से इस प्रकार जीव को रूपित्व आ जाने पर पुद्गल द्रव्य ही जीव हो गया, इससे भिन्न विशुद्ध चैतन्य चमत्कार वाला जीव अन्य कोई नहीं रहा। केवल ससारावस्था में ही पुद्गल ही जीवत्व को प्राप्त नहीं हो गया, **णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्त पुग्गलो पत्तो** किन्तु निर्वाण को प्राप्त होने पर भी पुद्गल ही जीवत्व को प्राप्त हुआ, उससे अन्य कोई भी चिद्रूप जीव नहीं रहा। कैसे ? तो, वर्णादि का तादात्म्य पुद्गल के साथ है इसका निषेध करना अशक्य होने से जीव का अभाव हो गया।

कुछ और कहते हैं - ससारावस्था में एकात से जीव का वर्णादि के साथ तादात्म्य होने पर मोक्ष ही नहीं ठहरता (मोक्ष ही नहीं घटता)। कैसे ? केवलज्ञानादि चतुष्टय की व्यक्ति (केवलज्ञानादि चतुष्टय प्रगट होना) रूप कार्यसमयसार की ही मोक्ष सज्ञा है, और जीव को पुद्गलत्व प्राप्त होने से वह केवलज्ञानादि चतुष्टयरूप कार्यसमयसार मोक्षपर्याय (प्रगट) प्राप्त नहीं होगी। यह भावार्थ है। इस प्रकार वर्णादि का जीव के साथ तादात्म्यसवध मानने से जीव का अभाव होता है, यह दूषण दिखानेवाली तीन गाथायें हो गईं।।६८, ६९।।

अव इस प्रकार सिद्ध हुआ कि वादर-सूक्ष्म एकेंद्रियादि से सज्ञीपचेंद्रिय पर्यंत १४ जीवस्थान शुद्धनिश्चयनय से जीवस्वरूप नहीं हैं, और उसी तरह देहगत वर्णादिक भी जीव स्वरूप नहीं हैं, ऐसा कहते हैं -

जीवो चेव हि एदे सव्वे भावा त्ति मण्णसे जदि हि यथानतज्ञानाव्यावाधसुखादिगुणा एव जीवो भवति वर्णादिगुणा एव पुद्गलस्तथा जीव एव हि स्फुटमेते वर्णादय सर्वे भावा मनसि मन्यसे यदि चेत् **जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई** तदा किं दूषणम् ? विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावजीवस्य जडत्वादिलक्षणाजीवस्य च तस्येव मते कोऽपि विशेषो भेदो नास्ति। ततश्च जीवाभावदूषण प्राप्नोतीति सूत्रार्थ ।।६७।।

अथ ससारावस्थायामेव जीवस्य वर्णादितादात्म्यसवधोऽस्तीति दुरभिनिवेशेऽपि जीवाभाव एव दोष इत्युपदिशति-

जदि ससारत्थाण जीवाण तुज्झ होंति वण्णादी। (६३)
तम्हा ससारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा।।६८।।
एव पुग्गलदव्व जीवो तह लक्खणेण मूढमदी। (६४)
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्त पुग्गलो पत्तो।।६९।।

टीकार्थ - जीवो चेव हि एदे सव्वे भावा त्ति मण्णसे जदि हि जैसे अनतज्ञान अव्यावाधसुखादि गुण ही जीव है, वर्णादिगुण ही पुद्गल है, वैसे यदि तू स्पष्टरूप से जीव ही वर्णादिक सव भाववाला है ऐसा मन में मानता है, तब यह दूषण आता है कि **जीवस्सा जीवस्सय णत्थि विसेसो दु दे कोई** विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभाववाले जीव का और जडत्वादि लक्षणवाले अजीव का तेरे मत में कुछ भी विशेष भेद नहीं रहता है। इसलिए जीव का अभाव हो जाता है, यह दूषण प्राप्त होता है। ऐसा सूत्रार्थ है।।६७।।

अब यदि (जीव के साथ वर्णादिक का तादात्म्य सर्वथा न मानकर) केवल ससार अवस्था में ही जीव का वर्णादि के साथ तादात्म्यसवध मानने का दुराग्रह किया तो भी जीव के अभाव का ही दोष आता है - ऐसा उपदेश करते हैं -

गाथार्थ - **(जदि)** यदि **(ससारत्थाण जीवाण)** ससार में स्थित जीवों के **(तुज्झ)** तेरे मत में **(वण्णादी)** वर्णादिक तादात्म्यस्वरूप **(होंति)** हैं **(तम्हा)** तो इसी कारण **(ससारत्था जीवा)** ससार में स्थित जीव **(रूवित्तमावण्णा)** रूपित्व को प्राप्त हो गये।

(एव) ऐसा होने पर **(पुग्गलदव्व)** पुद्गल द्रव्य ही **(जीवो)** जीव सिन्द्र हुआ **(तह लक्खणेण)** पुद्गल के लक्षण के समान जीव का लक्षण होने से **(मूढमई)** हे मूढमति ! **(णिव्वाण)** निर्वाण को **(उवगदो य)** प्राप्त हुआ **(पुग्गलो वि)** पुद्गल ही **(जीवत्त)** जीवपने को **(पत्तो)** प्राप्त हुआ।

टीकार्थ - जदि ससारत्थाण जीवाण तुज्झ होंति वण्णादि यदि ससार में स्थित जीवों के पुद्गल की तरह वर्णादिक गुण हैं, तेरे मत से, अभिप्राय से एकात से ऐसा मान लिया जाय **तम्हा ससारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा** तो ससार में स्थित जीव अमूर्त्त अनतज्ञानादि चतुष्टय लक्षण छोडकर शुक्लकृष्णादि लक्षणवाले रूपित्व (मूर्तिकत्व) को प्राप्त होते हैं, यह दूषण प्राप्त होता है।

अथ न केवल बहिरगवर्णादयो शुद्धनिश्चयेन जीवस्वरूप न भवन्ति अभ्यतरमिथ्यात्वादिगुणस्थानरूप रागादयोऽपि न भवन्तीति स्थित -

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिदा जे इमे गुणट्ठाणा। (६८)
ते कह हवति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता।।७३।।

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिदा जे इमे गुणट्ठाणा निर्मोहपरमचैतन्यप्रकाशलक्षणपरमात्मतत्त्वप्रतिपक्ष-भूतानाद्यविद्याकदलीकदायमानसतानागतमोहकर्मोदयात्सकाशात् यानीमानि वर्णितानि कथितानि गुणस्थानानि। तथा चोक्त "गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा"।[1] **ते कह हवति जीवा** तानि कथ भवन्ति जीवा ? न कथमपि।

गाथार्थ - (जे) जो **(पज्जत्तापज्जत्ता)** पर्याप्त अपर्याप्त (य) और (जे) जो **(सुहुमा बादरा)** सूक्ष्म वादर आदि जितनी **(देहस्स)** देह की **(जीवसण्णा)** जीव सज्ञाए **(सुत्ते)** सूत्र में कही हैं वे सभी **(ववहारदो)** व्यवहारनय से **(जीवा)** जीव **(उत्ता)** कही गयी हैं।

टीकार्थ - पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे जीवा पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म और बादर जीव हैं ऐसा कहा गया है, **देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता** वह पर्याप्त अपर्याप्त आदि देह को देखकर, (याने) पर्याप्तापर्याप्त वादर सूक्ष्म से विलक्षण जो परम चैतन्य ज्योति लक्षण वाले शुद्धात्मस्वरूप से भिन्न देह है,उस देह की जींवसज्ञा हे, ऐसा कहा गया है।

शका - कहॉ कहा गया है ?

समाधान - सूत्र में, परमागम में अथवा आगमभाषा में पर्याप्त-अपर्याप्त आदि को जीव कहा गया है। वह व्यवहारनय से कहा गया है उसमें दोष नहीं है।

इस प्रकार जीव समास और जीव समास को आश्रय करने वाले वर्णादिक, निश्चय से जीव का स्वरूप नहीं हैं, इस कथनरूप से तीन गाथायें हो गईं।

भावार्थ - व्यवहारनय से पर्याप्त-अपर्याप्त आदि को जीव कहने में दोष नहीं है लेकिन उस कथन को वस्तुस्वभाव मानना या जीव के पारिणामिकभाव में या जीव के स्वभाव में पर्याप्त-अपर्याप्त आदि को स्वभाव गुण मानना दोष है। क्योंकि ये पर्यायें सिद्धजीव में या शुद्धपारिणामिकभाव में नहीं हैं। इसलिये अध्यात्मभाषा में शुद्धनिश्चयनय से पर्याप्त-अपर्याप्त आदि और वर्णादिक जीव का स्वरूप नहीं हैं। जीव परमचेतन्य लक्षणवाला शुद्धात्मा है। उस परमचैतन्यमय अखड अभेद अनतगुणों के पिडमय आत्मा का चितवन अथवा भावभासना अथवा शुद्धात्मानुभव करने से अतींद्रिय आनद होता है, आकुलता नष्ट होती है।।७२।।

अव वाह्य में पर्याप्तापर्याप्त और वर्णादिक शुद्धनिश्चय से जीव का स्वरूप नहीं हैं, इतना ही नहीं तो, अभ्यतर मिथ्यात्वादि गुणस्थानरूप रागादिक भाव भी जीव का स्वरूप नहीं हैं, यह सिद्ध करते हैं -

---

[1] गोम्मटसार (जींवकाड)

एकद्वित्रिचतु पर्चेद्रियसज्ञ्यसज्ञिवादरपर्याप्तेतराभिधाना प्रकृतयो भवति। कस्य सवधिन्यो ? नामकर्मण इति। अथ एताभिरमूर्त्तातींद्रियनिरजनपरमात्मतत्त्वविलक्षणाभिर्नामकर्मप्रकृतिभि पुद्गलमयीभि पूर्वोक्ताभिर्निर्वर्तितानि चतुर्दशजीवस्थानानि निश्चयनयेन कथ जीवा भवति ? न कथमपि। तथाहि-यथा रुक्मेण करणभूतेन निर्वृत्तमसिकोश तु रुक्मैव भवति तथा पुद्गलमयप्रकृतिभिर्निष्पन्नानि जीवस्थानानि पुद्गलद्रव्यस्वरूपाण्येव भवन्ति न च जीवस्वरूपाणि। तथा तेनैव जीवस्थानदृष्टातेन तदाश्रिता वर्णादयोऽपि पुद्गलस्वरूपा भवंति, न च जीवस्वरूपा इत्यभिप्राय ।।७०,७१।।

अथ ग्रथातरे पर्याप्तापर्याप्तवादरसूक्ष्मजीवा कथ्यन्ते तत्कथ घटते इति पूर्वपक्षे परिहार ददाति -

पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे जीवा। (६७)
देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता।। ७२।।

पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे जीवा पर्याप्तापर्याप्ता ये जीवा कथिता सूक्ष्मवादराश्चैव ये कथिता । **देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता** पर्याप्तापर्याप्तदेह दृष्ट्वा पर्याप्तापर्याप्तवादरसूक्ष्मविलक्षण-परमचिज्ज्योतिर्लक्षणशुद्धात्मस्वरूपात्पृथग्भूतस्य देहस्य सा जीवसज्ञा कथिता। क्व ? सूत्रे परमागमे। कस्मात्, व्यवहारादिति नास्ति दोष । एव जीवस्थानानि जीवस्थानाश्रिता वर्णादयश्च निश्चयेन जीवस्वरूप न भवन्तीति कथनरूपेण गाथात्रय गतम्।।७२।।

गाथार्थ - **(एक्क च)** एकेंद्रिय और **(दोण्णि)** द्वींद्रिय **(तिण्णि)** त्रींद्रिय **(य चत्तारि)** और चतुरिंद्रिय **(य पच इदिया)** और पचेंद्रिय **(जीवा)** जीव तथा **(बादरपज्जत्तिदरा)** वादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त ये जीव हैं वे **(णामकम्मस्स)** नाम कर्म की **(पयडीओ)** प्रकृतियॉ हैं।

(एदाहि य) इन प्रकृतियों से ही **(करणभूदाहि)** करणस्वरूप होकर **(जीवट्ठाणाउ)** जीव समास **(णिव्वत्ता)** रचे गये हैं **(ताहि)** उन **(पुग्गलमईहि)** पुद्गलमय **(पयडीहि)** प्रकृतियों से रचे हुये को **(जीवो)** जीव **(कह)** कैसे **(भण्णदे)** कह सकते हैं ?

टीकार्थ - एकेंद्रिय, द्विइद्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय, ओर पचेंद्रिय, सज्ञी, असज्ञी, वादर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त सज्ञावाली ये नामकर्म की प्रकृतियॉ हैं। अव इस अमूर्त्त अतींद्रिय निरजन परमात्मतत्त्व से विलक्षण ऐसे इन नामकर्म की प्रकृतियों द्वारा पुद्गलमयता से वने हुये पहले कहे १४ जीवसमास निश्चय से जीव कैसे हो सकते हैं ? पुद्गलमय नामकर्म की प्रकृतियों द्वारा वने हुए जो १४ जीवसमास हैं वे किसी भी प्रकार से जीव नहीं हो सकते हैं।

जैसे सुवर्ण के द्वारा रचा (वनाया) गया तलवार का म्यान सुवर्ण ही होता है, वैसे पुद्गलमय प्रकृतियों द्वारा निष्पन्न हुए (रचाये गये) जीवसमास पुद्गलमय ही हैं, जीवस्वरूप नहीं हैं उस जीवसमास के दृष्टान्त के समान ही पुद्गलाश्रित वर्णादि भी पुद्गल स्वरूप ही हैं, जीव स्वरूप नहीं हैं। यह अभिप्राय है।।७०,७१।।

कोई पूछता है (शका) कि, अन्य ग्रथ में पर्याप्त जीव, अपर्याप्त जीव, वादर जीव, सूक्ष्म जीव हैं, ऐसा कहा गया है, वह कैसे घटता (सत्य) है ? उसका परिहार करते हैं (उत्तर देते हैं) -

अथ न केवल वहिरगवर्णादयो शुद्धनिश्चयेन जीवस्वरूप न भवन्ति अभ्यतरमिथ्यात्वादिगुणस्थानरूप रागादयोऽपि न भवन्तीति स्थित -

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिदा जे इमे गुणट्ठाणा। (६८)
ते कह हवति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता।।७३।।

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिदा जे इमे गुणट्ठाणा निर्मोहपरमचैतन्यप्रकाशलक्षणपरमात्मतत्त्वप्रतिपक्ष-भूतानाद्यविद्याकदलीकदायमानसतानागतमोहकर्मोदयात्सकाशात् यानीमानि वर्णितानि कथितानि गुणस्थानानि। तथा चोक्त "गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा"।[1] **ते कह हवति जीवा** तानि कथ भवन्ति जीवा ? न कथमपि।

गाथार्थ - (जे) जो (पज्जत्तापज्जत्ता) पर्याप्त अपर्याप्त (य) ओर (जे) जो (सुहुमा बादरा) सूक्ष्म वादर आदि जितनी (देहस्स) देह की (जीवसण्णा) जीव सज्ञाए (सुत्ते) सूत्र में कही हैं वे सभी (ववहारदो) व्यवहारनय से (जीवा) जीव (उत्ता) कही गयी हैं।

टीकार्थ - **पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे जीवा** पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म और वादर जीव हें ऐसा कहा गया हे, **देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता** वह पर्याप्त अपर्याप्त आदि देह को देखकर, (याने) पर्याप्तापर्याप्त वादर सूक्ष्म से विलक्षण जो परम चैतन्य ज्योति लक्षण वाले शुद्धात्मस्वरूप से भिन्न देह हे,उस देह की जीवसज्ञा है, ऐसा कहा गया है।

शका - कहाँ कहा गया है ?

समाधान - सूत्र में, परमागम में अथवा आगमभाषा में पर्याप्त-अपर्याप्त आदि को जीव कहा गया हे। वह व्यवहारनय से कहा गया है उसमें दोष नहीं है।

इस प्रकार जीव समास और जीव समास को आश्रय करने वाले वर्णादिक, निश्चय से जीव का स्वरूप नहीं हैं, इस कथनरूप से तीन गाथायें हो गईं।

भावार्थ - व्यवहारनय से पर्याप्त-अपर्याप्त आदि को जीव कहने में दोष नहीं है लेकिन उस कथन को वस्तुस्वभाव मानना या जीव के पारिणामिकभाव में या जीव के स्वभाव में पर्याप्त-अपर्याप्त आदि को स्वभाव गुण मानना दोष है। क्योंकि ये पर्यायें सिद्धजीव में या शुद्धपारिणामिकभाव में नहीं हैं। इसलिये अध्यात्मभाषा में शुद्धनिश्चयनय से पर्याप्त-अपर्याप्त आदि और वर्णादिक जीव का स्वरूप नहीं हें। जीव परमचैतन्य लक्षणवाला शुद्धात्मा है। उस परमचैतन्यमय अखड अभेद अनतगुणों के पिडमय आत्मा का चितवन अथवा भावभासना अथवा शुद्धात्मानुभव करने से अतींद्रिय आनद होता हे, आकुलता नष्ट होती हे।।७२।।

अव वाह्य में पयाप्तापर्याप्त और वर्णादिक शुद्धनिश्चय से जीव का स्वरूप नहीं हैं, इतना ही नहीं तो, अभ्यतर मिथ्यात्वादि गुणस्थानरूप रागादिक भाव भी जीव का स्वरूप नहीं हे, यह सिद्ध करते हैं -

---

[1] गोम्मटसार (जावकाड)

कथभूतानि, ते णिच्चमचेदणा उत्ता यद्यप्यशुद्धनिश्चयेन चेतनानि तथापि शुद्धनिश्चयेन नित्य सर्वकालमचेतनानि। अशुद्धनिश्चयस्तु वस्तुतो यद्यपि द्रव्यकर्मापेक्षयाभ्यतररागादयश्चेतना इति मत्वा निश्चयसज्ञा लभते तथापि शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव। इति व्याख्यान निश्चयव्यवहारनयविचारकाले सर्वत्र ज्ञातव्यम्। एवमभ्यतरे यथा मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानानि जीवस्वरूप न भवन्ति तथा रागादयोऽपि शुद्धजीवस्वरूप न भवन्तीति कथनरूपेणाष्टमगाथा गता। एवमष्टगाथाभिस्तृतीयातराधिकारो व्याख्यात ।

ननु रागादयो जीवस्वरूप न भवन्तीति जीवाधिकारे व्याख्यात अस्मिन्नजीवाधिकारेऽपि तदेवेति पुनरुक्तमिद? तन्न, विस्तररुचिशिष्य प्रति नवाधिकारे समयसार एव व्याख्यायते न पुनरन्यदिति प्रतिज्ञावचन। तत्रापि समयसारव्याख्यानमात्रापि समयसारव्याख्यानमेव। यदि पुन समयसार त्यक्त्वान्यद्व्याख्यायते तदा प्रतिज्ञाभग इति नास्ति पुनरुक्त।

गाथार्थ - **(जे इमे)** जो ये **(गुणट्ठाणा)** गुणस्थान हैं वे **(मोहणकम्मस्सुदया दु)** मोहकर्म के उदय से होते हैं ऐसे **(वण्णिदा)** आगम में वर्णन किये गये हैं, **(ते)** वे **(जीवा)** जीव **(कह)** कैसे **(हवति)** हो सकते हैं क्योंकि **(जे)** ये **(णिच्च)** नित्य **(अचेदणा)** अचेतन **(उत्ता)** कहे हैं।

टीकार्थ - **मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिदा जे इमे गुणट्ठाणा** निर्मोह परमचैतन्य प्रकाश लक्षणवाले परमात्मतत्त्व से विरुद्धपक्षवाले अनादि अविद्या कदली के कदस्वरूप सतान से प्रगट हुए मोहकर्म के उदय से होने वाले ये गुणस्थान कहे गये हैं। जैसा कि गोम्मटसार में कहा गया है **"गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा"** मोह ओर योग से उत्पन्न होनेवाले जीव के परिणाम को "गुणस्थान" कहते हैं।

शका - **ते कह हवति जीवा** वे गुणस्थानमयभाव (पर्याय) जीव कैसे हो सकते हैं ?

समाधान - वे गुणस्थान (गुणस्थान पर्याय) जीव का स्वभाव-स्वरूप कभी भी नहीं हो सकते।

ते णिच्चमचेदणा उत्ता यद्यपि अशुद्धनिश्चयनय से गुणस्थान चेतन हैं, तथापि शुद्धनिश्चयनय से वे गुणस्थान (गुणस्थान पर्याय) नित्य, सर्वकाल में अचेतन ही हैं।

किन्तु, वस्तुत अशुद्धनिश्चयनय से यद्यपि (आगम भाषा से) द्रव्यकर्म की अपेक्षा से अभ्यतर रागादिकभावों को (पर्यायों को) "चेतन हैं," ऐसा मानकर निश्चयसज्ञा प्राप्त होती है, तथापि शुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा से अशुद्धनिश्चयनय भी व्यवहारनय ही है। इस प्रकार का व्याख्यान निश्चयनय और व्यवहारनय के विचार काल में सर्वत्र जानना चाहिये। इस प्रकार अभ्यतर में जैसे मिथ्यात्वादि गुणस्थान जीव का स्वरूप (जीव का स्वभाव) नहीं हैं, वैसे ही रागादिक भी जीव का शुद्ध स्वरूप (जीव का स्वभाव) नहीं हैं। इस कथन रूप से अष्टम गाथा हो गयी। इस प्रकार आठ गाथाओं द्वारा तृतीय अतराधिकार का व्याख्यान हो गया।

भावार्थ - आगम ग्रथों में आगम भाषा से जहाँ निश्चयनय से रागादि भावों को, मिथ्यात्वादि गुणस्थानों को जीव कहा है, वह (निश्चयनय) आध्यात्मभाषा से (शुद्धनिश्चयनय से) अशुद्ध निश्चयनय-व्यवहारनय ही है।

कोई शका करता है कि, रागादि जीव का स्वरूप नहीं हैं ऐसा जीवाधिकार में कहा गया है, वही बात यहाँ अजीवाधिकार में फिर से क्यों कही गई है। यह पुनरुक्त दोष है ?

अथवा भावनाग्रथे समाधिशतकपरमात्मप्रकाशादिग्रथवद्रागिणा श्रृङ्गारकथावद्वा पुनरुक्तदोषो नास्ति। अथवा तत्र जीवस्य मुख्यता अत्राजीवस्य मुख्यता। विवक्षितो मुख्य इति वचनात्। अथवा तत्र सामान्य- व्याख्यानमत्र तु विस्तरेण। अथवा तत्र रागादिभ्यो भिन्नो जीवो भवतीति विधिमुख्यतयाव्याख्यान अत्र तु रागादयो जीवस्वरूप न भवन्तीति निषेधमुख्यतया व्याख्यानम्। किवत् ? एकत्वान्यत्वानुप्रेक्षाप्रस्तावे विधिनिषेधव्याख्यानवदिति **परिहारहपचक** ज्ञातव्यम्। एव जीवाजीवौ जीवाजीवाधिकाररगभूमौ श्रृङ्गारसहितपात्रवद्व्यवहारेणैकीभूतौ प्रविष्टौ निश्चयेन तु श्रृङ्गाररहितपात्रवत्पृथग्भूत्वा निष्क्रातावीति।।७३।।

इति श्री जयसेनाचार्यकृताया समयसारव्याख्याया शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाया तात्पर्यवृत्तौ स्थलत्रयसमुदायेन त्रिशद्गाथाभिरजीवाधिकार समाप्त ।।२।।

समाधान - जो जीवाधिकार में कहा है वह अजीवाधिकार में कहने से पुनरुक्त दोष नहीं है। पहले हमने यही प्रतिज्ञा की है कि, यहॉ तक जो बात कही है उसी को विस्तार रुचिवाले शिष्यों के लिए नव अधिकारों से उसी समयसार का ही व्याख्यान करेंगे, अन्य का नहीं। इस प्रतिज्ञा के अनुसार वहॉ भी समयसार का व्याख्यान सक्षेप से किया था, वही समयसार का व्याख्यान यहॉ भी कुछ विस्तार से हे। यदि समयसार को छोडकर दूसरा (अन्य) व्याख्यान किया जाता, तो प्रतिज्ञा भग का दोष आ जाता, इसलिये यहॉ पर पुनरुक्त दोष नहीं है (अपितु गुण ही है), प्रत्युत यह तो भावनात्मक ग्रथ है, जैसे समाधिशतक, परमात्मप्रकाश आदि अध्यात्मिक ग्रथ हैं।

अथवा जैसे रागी जीवों को श्रृगार की कथा बार-वार कही जाती हे वैसे ही यहॉ पर भावनात्मक (अध्यात्मिक) ग्रथ में एक ही बात शिष्य को वार-बार कही जाती है। इसलिए यहॉ पुनरुक्त दोष नहीं है।

अथवा वहॉ जीवाधिकार में जीव की (अस्तिगुण कथन की) मुख्यता है और यहॉ अजीवाधिकार में अजीव (नास्तिगुण) के कथन की मुख्यता है। **'विवक्षितो मुख्य इति'** ऐसा वचन है क्यों कि, जो विवक्षित होता है, वह मुख्य होता है।

अथवा वहॉ सामान्य व्याख्यान है, यहॉ विस्तार से व्याख्यान है।

अथवा वहॉ रागादि से भिन्न जीव की विधि मुख्यता से और यहॉ रागादि जीव का स्वरूप नहीं हैं इस निषेध मुख्यता से व्याख्यान है। जैसे एकत्व अनुप्रेक्षा में विधिकथन की मुख्यता है और अन्यत्व अनुप्रेक्षा में निषेध की मुख्यता से व्याख्यान है। **इस प्रकार शका का परिहार पाच प्रकार से किया गया है।**

इस प्रकार जीव और अजीव के अधिकार रूप रगभूमि में श्रृगार सहित पात्र के समान व्यवहारनय से एकीभूत (एक रूप) होकर (जीव और अजीव ने) प्रवेश किया था, लेकिन निश्चयनय से वे श्रृगार रहित (वैराग्य रूप) पात्र के समान पृथक् होकर निकल गये।।७३।।

इस प्रकार श्री जयसेनाचार्य के द्वारा बनाई हुई शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाली तात्पर्यवृत्ति नाम की समयसार की व्याख्या में तीन स्थलों के समुदाय से तीस गाथाओं द्वारा यह **अजीवाधिकार** समाप्त हुआ।।२।।

卐 卐 卐 卐 卐

चार्ट नंबर १६
शुद्धात्मा गुणस्थान रहित

शाश्वत, अविनाशी, ध्रुव, अनादिअनतशुद्ध		अवस्था, क्षणिक, पर्याय
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित ८ भावकर्मरहित, ८ द्रव्यकर्मरहित, नोकर्मरहित		सिद्ध, मुक्त, सादिअनतशुद्ध, परमात्मा, ८ भावकर्मरहित, ८ द्रव्यकर्मरहित, नोकमरहित
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित ८ भावकर्मरहित, ८ द्रव्यकर्मरहित, नोकर्मरहित		अयोगकेवलि - १४ वाँ गुणस्थान, परमात्मा, सादिसात
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित ८ भावकर्मरहित, ८ द्रव्यकर्मरहित, नोकर्मरहित		सयोगकेवलि- १३वाँ गुणस्थान, परमात्मा, सादिसात, ४ घातिभाव-कर्मरहित, ४ घातिद्रव्यकर्मरहित, वाह्यपरिग्रहरहित, ४ अघातिभाव-कर्मसहित, ४ अघातिद्रव्यकर्मसहित, परमौदारिकशरीरसहित यथायोग्य
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित ८ भावकर्मरहित, ८ द्रव्यकर्मरहित, नोकर्मरहित		क्षीणकषाय-१२ वाँ गुणस्थान, अतरात्मा, सादिसात, १ मोहनीय घातिभावकर्मरहित, १ मोहनीयद्रव्यकर्मरहित, वाह्यपरिग्रहरहित, ७ भावकर्मसहित, ७ द्रव्यकर्मसहित, औदारिकशरीरसहित यथायोग्य
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित ८ भावकर्मरहित, ८ द्रव्यकर्मरहित, नोकर्मरहित		उपशातकषाय - ११ वाँ गुणस्थान, सादिसात, मोहनीयकर्मउपशात, अतरात्मा, सत्ता में मोहनीयकर्म का सद्भाव है, वाह्यपरिग्रहरहित ८ भावकर्मसहित, ८ द्रव्यकर्मसहित, औदारिकशरीरसहित यथायोग्य
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित ८ भावकर्मरहित, ८ द्रव्यकर्मरहित, नोकर्मरहित		अप्रमत्त, ७ वाँ गुणस्थान, सादिसात, अतरात्मा, वाह्यपरिग्रहरहित ७ भावकर्मसहित, ७ द्रव्यकर्मसहित, औदारिकशरीरसहित यथायोग्य। इसी प्रकार ८ वाँ, ९ वाँ, १० वाँ गुणस्थान समझना
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित ८ भावकर्मरहित, ८ द्रव्यकर्मरहित, नोकर्मरहित		प्रमत्त, ६ वाँ गुणस्थान, सादिसात, अतरात्मा, वाह्यपरिग्रहरहित ८ भावकर्मसहित, ८ द्रव्यकर्मसहित, औदारिकशरीरसहित यथायोग्य
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित ८ भावकर्मरहित, ८ द्रव्यकर्मरहित, नोकर्मरहित		सयतासयत, ५ वाँ गुणस्थान, सादिसात, अतरात्मा अल्पवाह्यपरिग्रह-सहित ८ भावकर्मसहित, ८ द्रव्यकर्मसहित, औदारिकशरीरसहित यथायोग्य
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित ८ भावकर्मरहित, ८ द्रव्यकर्मरहित, नोकर्मरहित		अव्रतीसम्यक्त्वी, ४ था गुणस्थान, सादिसात, अतरात्मा ८ भावकर्मसहित, ८ द्रव्यकर्मसहित, शरीरसहित यथायोग्य
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित ८ भावकर्मरहित, ८ द्रव्यकर्मरहित, नोकर्मरहित		सम्यग्मिथ्यात्व, ३ रा गुणस्थान, सादिसात, वहिरात्मा ८ भावकर्मसहित, ८ द्रव्यकर्मसहित, शरीरसहित यथायोग्य
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित ८ भावकर्मरहित, ८ द्रव्यकर्मरहित, नोकर्मरहित		सासादन, २ रा गुणस्थान, सादिसात, वहिरात्मा ८ भावकर्मसहित, ८ द्रव्यकर्मसहित, शरीरसहित यथायोग्य
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित ८ भावकर्मरहित, ८ द्रव्यकर्मरहित, नोकर्मरहित	द्रव्य	मिथ्यात्व, प्रथम गुणस्थान, अनादिसात/सादिसात/ अनादिअनत, वहिरात्मा ८ भावकर्मसहित, ८ द्रव्यकर्मसहित, शरीरसहित, यथायोग्य

निश्चयदृष्टि — द्रव्यदृष्टि

व्यवहारदृष्टि — पर्यायदृष्टि

(१) जीववस्तु के अनादिअनतशुद्ध को और (२) गुणस्थान तथा सिद्ध अवस्थाओं को जानकर मेरा जीव शाश्वत (अनादिअनत) शुद्ध है, ऐसी प्रतीति करने से अभी समाधान, समता, शांति, सम्यक् आनद प्राप्त होता है और दुःख नष्ट होता है, और अभी मोक्षमार्गस्थ होता है।

चार्ट नं. १७

गतिमार्गणा

शाश्वत ध्रुव, अविनाशी		अवस्था क्षणिक, पर्याय, गतिमार्गणा
जीवत्व, अनादिअनद शुद्ध, मोक्षपर्यायरहित, देवगतिरहित, मनुष्यगतिरहित, तिर्यंचगतिरहित, नरकगतिरहित		**मोक्षपर्याय**, सादिअनतशुद्ध, देवगतिरहित, मनुष्यगतिरहित, तिर्यंचगतिरहित, नरकगति-रहित
जीवत्व, अनादिअनदशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित, देवगतिरहित, मनुष्यगतिरहित, तिर्यंचगतिरहित, नरकगतिरहित		देवगतिपर्याय-**ससार अवस्था**
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित, देवगतिरहित, मनुष्यगतिरहित, तिर्यंचगतिरहित, नरकगतिरहित		मनुष्यगतिपर्याय-**ससार अवस्था**
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित, देवगतिरहित, मनुष्यगतिरहित, तिर्यंचगतिरहित, नरकगतिरहित		तिर्यंचगतिपर्याय-**ससार अवस्था**
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित, देवगतिरहित, मनुष्यगतिरहित, तिर्यंचगतिरहित, नरकगतिरहित		नरकगतिपर्याय-**ससार अवस्था**

निश्चयदृष्टि	**व्यवहारदृष्टि**
द्रव्यदृष्टि	**पर्यायदृष्टि**

वस्तु में का अविनाशी अश और क्षणिक अश जानकर **"मेरा आत्मा अविनाशी ज्ञानानदमय अनादिअनतशुद्ध है"** ऐसा विचार किया तो अभी सम्यक् आनद प्राप्त होता है, समाधान, समता और शान्ति प्राप्त होती है और सब दुख नष्ट होते हैं।

मार्गणा - अन्वेषणा वा खोज करना।

गतिमार्गणा - गतिपर्याय के द्वारा जीव की खोज करना।

चार्ट नं. १८

शाश्वत ध्रुव, अविनाशी	इंद्रियमार्गणा	अवस्था क्षणिक, पर्याय, इंद्रियमार्गणा
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, मोक्षपर्यायरहित, पचेन्द्रियरहित		मोक्षपर्याय, सादिअनतशुद्ध, पचेन्द्रियरहित
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, पचेन्द्रियरहित, मोक्षपर्यायरहित.		स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, नेत्रेन्द्रिय, कर्णेन्द्रिय-पचेन्द्रिय
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, पचेन्द्रियरहित, मोक्षपर्यायरहित		स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, नेत्रेन्द्रिय-चारइन्द्रिय
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, पचेन्द्रियरहित मोक्षपर्यायरहित,		स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय- त्रीन्द्रिय
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, पचेन्द्रियरहित, मोक्षपर्यायरहित		स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय
जीवत्व, अनादिअनतशुद्ध, पचेन्द्रियरहित, मोक्षपर्यायरहित.		स्पर्शनेन्द्रिय-एकेन्द्रिय
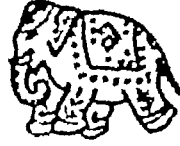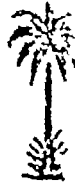
निश्चयदृष्टि	व्यवहारदृष्टि
द्रव्यदृष्टि	पर्यायदृष्टि

वस्तु मे का अविनाशी अश और क्षणिक अश जानकर 'मेरा आत्मा अविनाशी ज्ञानानदमय अनादिअनतशुद्ध है" ऐसा विचार किया तो ही सम्यक् आनन्द प्राप्त होता है, समाधान, समता और शान्ति प्राप्त होती है और सब दुःख नष्ट होते हैं

मार्गणा - अन्वेषणा या खोज करना ।

इन्द्रियमार्गणा-जो इन्द्रिय पर्याय प्राप्त होता है, उसके द्वारा जीव की खोज की जाती है, वह इन्द्रियमार्गणा है।

कर्ताकर्म अधिकार

अथ पूर्वोक्तजीवाधिकाररगभूमौ जीवाजीवावेव यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन कर्तृकर्मभावरहितौ तथापि व्यवहारनयेन कर्तृकर्मवेषेण शृगारसहितपात्रवत्प्रविशत इति दडकान्विहायाष्टाधिकसप्ततिगाथापर्यन्त नवभि स्थलैर्व्याख्यान करोतीति पुण्यपापादिसप्तपदार्थपीठिकारूपेण तृतीयाधिकारे समुदायपातनिका। अथवा **जो खलु ससारत्थो जीवो** इत्यादि गाथात्रयेण पुण्यपापादिसप्तपदार्था जीवपुद्गलसयोगपरिणामनिर्वृत्ता न च शुद्धनिश्चयेन शुद्धजीवस्वरूपमिति पचास्तिकायप्राभृते यत्पूर्वम् सक्षेपेण व्याख्यात तस्यैवेदानीं व्यक्त्यर्थम् पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना पीठिकासमुदायकथन तात्पयर्म् कथ्यत इति द्वितीयपातनिका। प्रथमतस्तावत् **जाव ण वेदि विसेसतर** इत्यादि गाथामादि कृत्वा पाठक्रमेण गाथाषट्कपर्यन्त व्याख्यान करोति। तत्र गाथाद्वयमज्ञानिजीवमुख्यत्वेन, गाथाचतुष्टय सज्ञानिजीवमुख्यत्वेन कथ्यत इति प्रथमस्थले समुदायपातनिका। तद्यथा -

---

अब पूर्वोक्त जीवाधिकार की रगभूमि में यद्यपि शुद्धनिश्चयनय से कर्तृकर्मभावरहित जीव और अजीव हैं तथापि व्यवहारनय से वही जीव और अजीव कर्ता और कर्म के भेष में शृगारसहित पात्र के समान प्रवेश करते हैं। इस प्रकार के दडकों को छोडकर ७८ गाथापर्यन्त नव स्थलों से व्याख्यान करते हैं। इस प्रकार पुण्यपापादि सप्त पदार्थों की पीठिका रूप से तृतीय अधिकार में समुदाय पातनिका हुई। अथवा यों कहो **'जो खलु ससारत्थो जीवो'** इत्यादि तीन गाथाओं से पुण्यपापादिरूप सप्त पदार्थ जो जीव ओर पुद्गल के सयोग परिणाम से उत्पन्न हुए हैं, वे शुद्धनिश्चयनय से शुद्धजीव के स्वरूप (जीव का स्वभाव) नहीं हैं। इस प्रकार का व्याख्यान पचास्तिकाय प्राभृत ग्रथ में जो पहले सक्षेप से किया गया है, उन्हीं पुण्यपापादि सप्तपदार्थों का स्पष्ट कथन करने के लिये उनका पीठिकारूप समुदाय से कथनरूप तात्पर्य कहा जाता है, इस प्रकार द्वितीय पातानिका हुई। पहले तो **'जाव ण वेदि विसेसतरं'** इत्यादि गाथा से शुरु करके पाठक्रम से छह गाथापर्यन्त व्याख्यान करते हैं। वहाँ दो गाथाओं में अज्ञानी जीव की मुख्यता से और चार गाथाओं में सज्ञानी जीव की मुख्यता से कथन किया गया है। यह प्रथमस्थल में समुदाय पातनिका है।

अथ क्रोधाद्यास्रवशुद्धात्मनोर्यावत्काल भेदविज्ञान न जानाति तावदज्ञानी भवतीत्यावेदयति-

जाव ण वेदि विसेसतर तु आदासवाण दोण्ह पि। (६९) आ.ख्या.
अण्णाणी ताव दु सो कोहादिसु वट्टदे जीवो।।७४।। ता.वृ.
कोहादिसु वट्टतस्स तस्स कम्मस्स सचओ होदि। (७०)
जीवस्सेव बधो भणिदो खलु सव्वदरसीहि।।७५।।

जाव ण वेदि विसेसतर तु आदासवाण दोण्ह पि यावत्कान न वेत्ति न जानाति विशेषातर भेदज्ञान शुद्धात्मक्रोधाद्यास्रवस्वरूपयोर्द्वयो । **अण्णाणी ताव दु सो** तावत्कालपर्यंतमज्ञानी वहिरात्मा भवति स जीव । अज्ञानी सन् कि करोति ? **कोहादिसु वट्टदे जीवो** यथा ज्ञानमह इत्यभेदेन वर्तते तथा क्रोधाद्यास्रवरहित निर्मलात्मानुभूतिलक्षण निजशुद्धात्मस्वभावात्पृथग्भूतेषु क्रोधादिष्वपि क्रोधोऽहमित्यभेदेन वर्तते परिणमतीति। अथ **कोहादिसु वट्टतस्स तस्स** उत्तमक्षमादिस्वरूपपरमात्मविलक्षणेषु क्रोधादिषु वर्त्तमानस्य तस्य जीवस्य। कि फल भवति ? **कम्मस्स सचओ होदि** परमात्मप्रच्छादककर्मण सचय आस्रव आगमन भवति। **जीवस्सेव बधो भणिदो खलु सव्वदरसीहि** तैलम्रक्षिते धूलिसमागमवदास्रवे सति ततो मलादितैलसबधेन मलवधवत्प्रकृतिस्थित्यनुभाग-प्रदेशलक्षण स्वशुद्धात्मावाप्तिस्वरूपमोक्षविलक्षणो बधो भवति। जीवस्यैव खलु स्फुट भणित सर्वदर्शिभि सर्वज्ञै ।

अव, जब तक क्रोधादि आस्रवभाव और शुद्धात्मा का भेदविज्ञान नहीं जानता (अनुभवता) तब तक अज्ञानी है, ऐसा कथन करते हैं -

गाथार्थ - **(जीवो)** यह जीव **(जाव)** जब तक **(आदासवाण दोण्हपि तु)** आत्मा और आस्रव इन दोनों के **(विसेसतर)** भिन्न भिन्न लक्षण **(ण वेदि)** नहीं अनुभवता **(ताव)** तब तक **(सो अण्णाणी)** वह अज्ञानी हुआ **(कोहादिसु)** क्रोधादिक आस्रवों में **(वट्टदे)** वर्तता है।

(कोहादिसु) क्रोधादिक भावों में **(वट्टतस्स)** वर्तते हुए **(तस्स)** उसके **(कम्मस्स)** कर्मों का **(सचओ होदि)** सचय होता है। **(एव)** इस प्रकार **(जीवस्स)** जीव के **(बधो)** कर्मों का वध **(खलु)** निश्चय से (अशुद्धनिश्चय से) **(सव्वदरसीहिं)** सर्वज्ञभगवान ने **(भणिदो)** कहा हैं।

टीकार्थ - **जाव ण वेदि विसेसतर तु आदासवाण** दोण्हपि *जब तक शुद्धात्मा और क्रोधादि के स्वरूप* का दोनों का भेदविज्ञान जानता नहीं, अनुभवता नहीं **अण्णाणी ताव दु सो** तब तक वह अज्ञानी बहिरात्मा है।

शका - यह अज्ञानी अवस्था में क्या करता है ?

समाधान - **कोहादिसु वट्टदे जीवो** जिस तरह ज्ञान और मैं (आत्मा) अभेद हूँ। ऐसा जानकर ज्ञान में, अभेदरूप से (ज्ञानी) वर्तता है, उसी तरह क्रोधादि आस्रवरहित निर्मल आत्मानुभूतिलक्षण वाले निजशुद्धात्मस्वभाव से भिन्न स्वरूप क्रोधादिभावों मे भी **मैं ही क्रोध हूँ**, ऐसा अभेद करके (अज्ञानी) परिणमता है।

शका - **कोहादिसु वट्टतस्स तस्स** उत्तम क्षमादिस्वरूप परमात्मा के विरुद्ध लक्षणवाले क्रोधादिभावों में परिणति करने वाले उस जीव (अज्ञानी) को क्या फल प्राप्त होता है ?

किंच - यावत्क्रोधाद्यास्रवेभ्यो भिन्न शुद्धात्मस्वरूप स्वसवेदनज्ञानबलेन न जानाति तावत्कालमज्ञानी भवति। अज्ञानी सन् अज्ञानजा कर्तृकर्मप्रवृत्ति न मुचति तस्माद्बन्धो भवति। बधात्ससार परिभ्रमतीत्यभिप्राय । एवमज्ञानिजीवस्वरूपकथनरूपेण गाथाद्वय गतम्।।७४, ७५।।

अथ कदा कालेऽस्या कर्तृकर्मप्रवृत्तेर्निवृत्तिरित्येव पृष्टे प्रत्युत्तर ददाति -

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव। (७१)
णाद होदि विसेसतर तु तइया ण बधो से।।७६।।

जइया यदा **श्रीधर्मलब्धिकाले इमेण जीवेण** अनेन प्रत्यक्षीभूतेन जीवेन **अप्पणो आसवाण य तहेव णाण होदि विसेसतर तु** यथा शुद्धात्मनस्तथैव कामक्रोधाद्यास्रवाणा च ज्ञात भवति विशेषातर भेदज्ञान। **तइया** तदा काले सम्यग्ज्ञानी भवति। सम्यग्ज्ञानी सन् कि करोति ? अह कर्ता भावक्रोधादिरूपमतरग मम कर्मेत्यज्ञानजा कर्तृकर्मप्रवृत्तिम् मुचति। तत कर्तृकर्मप्रवृत्तेर्निवृत्तौ सत्या निर्विकल्पसमाधौ सति **ण बधो** न बधो भवति से तस्य जीवस्येति।।७६।।

समाधान - **कम्मस्स सचओ होदि** क्रोधादिभावों में परिणति करने वाले जीव को परमात्मा को ढाकने वाले कर्म का सचय होता है, कर्म का आस्रव-आगमन होता है। **जीवस्सेव वधो भणिदो खलु सव्वदरसीहि** जैसे तेल लगाये हुए जीव के शरीर में धूलि का समागम हो जाता है, वैसे ही कर्मों का आस्रव होने पर, जैसे तेल के सबध से मैल चिपक जाती है, वैसे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबध लक्षणवाला, जो कि अपने शुद्धात्मा की प्राप्ति स्वरूप मोक्ष से विलक्षण है ऐसा बध जीव के साथ होता है। ऐसा निश्चय से सर्वज्ञ भगवान द्वारा कहा गया है। और-जब तक क्रोधादि आस्रवभावों से भिन्न शुद्धात्मा का स्वभाव स्वसवेदन ज्ञानबल से नहीं गानता, तव तक अज्ञानी रहता है। अज्ञानी होने से अज्ञान के सानिध्य में उत्पन्न होने वाली कर्ताकर्म की प्रवृत्ति ो नहीं छोडता, इसलिये बध होता है। बध से ससार परिभ्रमण होता है यह अभिप्राय है। इस प्रकार अज्ञानी जीव का स्वरूप कथन करने वाली दो गाथायें हो गईं।।७४, ७५।।

इस कर्तृकर्म प्रवृत्ति की निवृत्ति किस काल में होती है ? ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - (**जइया**) जिस समय (**इमेण जीवेण**) इस जीव को (**अप्पणो**) अपना (**तहेव य**) और (**आसवाण**) आस्रवों का (**विसेसतर**) भिन्न लक्षण (**णाद होदि**) मालूम हो जाता है (**तइया तु**) उसी समय (**से**) उसको (**बधो ण**) बध नहीं होता है।

टीकार्थ - **जइया** जब **श्रीधर्मलब्धि** के (शुद्धात्मानुभूति के) काल में **इमेण जीवेण** प्रत्यक्ष स्वानुभूति के द्वारा **अप्पणो आसवाण य तहेव णाद होदि विसेसतर तु** स्वत जीव शुद्धात्मा के स्वभाव का और काम क्रोधादि आस्रवों का लक्षणरूप भेद विज्ञान (विशेष अतर) अनुभवता है (जानता है), **तइया** तब उसी काल में सम्यग्ज्ञानी होता है।

अथ कथ ज्ञानमात्रादेव वधनिरोध इति पूर्वपक्षे कृते परिहार ददाति -

णादूण आसवाण असुचित्त च विवरीयभाव च। (७२)
दुक्खस्स कारण ति य तदो णियत्ति कुणदि जीवो।।७७।।

क्रोधाद्यास्रवाण सवधि कालुष्यरूपमशुचित्व, जडत्वरूप, विपरीतभाव, व्याकुलत्वलक्षण, दु खकारणत्व च ज्ञात्वा तथैव निजात्मन सबधि निर्मलात्मानुभूतिरूप शुचित्व सहजशुद्धाखडकेवलज्ञानरूप ज्ञातृत्वमनाकुलत्व-लक्षणानतसुखत्व च ज्ञात्वा ततश्च स्वसवेदनज्ञानानतर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्रयपरिणतिरूपे परमसामायिके स्थित्वा क्रोधाद्यास्रवाणा निवृत्ति करोति जीव । इति ज्ञानमात्रादेव वधनिरोधो भवति नास्ति साख्यादिमतप्रवेश ।

किच - यच्चात्मास्रवयो सम्बन्धि भेदज्ञान, तद्रागाद्यास्रवेभ्यो निवृत्त न वेति निवृत्त चेत्तर्हि तस्य भेदज्ञानस्य मध्ये पानकवदभेदनयेन वीतरागचारित्र वीतरागसम्यक्त्व च लभ्यत इति सम्यग्ज्ञानादेव वधनिरोधसिद्धि । यदि रागादिभ्यो निवृत्त न भवति तदा तत्सम्यग्ज्ञानमेव न भवतीति भावार्थ ।।७७।।

शका - वह सम्यग्ज्ञानी होकर क्या करता है ?

समाधान - जिस समय शुद्धात्मानुभव कर रहा है, उसी समय में अतरग भावक्रोधादिरूप कषायभावों का मैं कर्ता हूँ और ये मेरे कर्म हैं ऐसे अज्ञान के सांनिध्य में होने वाली कर्तृकर्मप्रवृत्ति की निवृत्ति होती है, उसी समय निर्विकल्पसमाधि होने से **ण बधो से** उस जीव को वध नहीं होता है।

भावार्थ - जिस समय शुद्धात्मानुभव लेता है तब ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमय अभेदरत्नत्रय प्रगट होता है, उसी समय अज्ञान अवस्था नष्ट होती है (याने चतुर्थ गुणस्थान प्रगट होता है) मिथ्यात्व अवस्था नष्ट होती है, ज्ञानी होता है, तब ही मोक्षमार्ग शुरु होता है। बधका निरोध होता है।।७६।।

अव **ज्ञानमात्र से ही बध का निरोध कैसे होता है ?** ऐसा पूर्वपक्ष करने पर, उसका परिहार करने के लिए उत्तर देते हें -

गाथार्थ - (**जीवो**) यह जीव (**णादूण**) स्वानुभव करके (**आसवाण**) आस्रवभावों का (**असुचित्त**) अशुचित्व (**च**) और (**विवरीयभाव**) विपरीतभावपना (**दुक्खस्स कारण च**) और वे दु ख का कारण ही हैं (**ति**) ऐसा मानकर (अनुभव कर) (**य तदो**) और उनसे अपने आप (**णियत्ति**) निवृत्ति को (**कुणदि**) प्राप्त होता है।

टीकार्थ - यह जीव क्रोधादि आस्रव भावों के बारे में कलुषतारूप को, अशुचित्व को, जडत्वरूप को, विपरीत भाव को, व्याकुलत्वलक्षण को और दु ख के कारणपने को जानकर और उस ही समय निजात्मा के सवध में निर्मलात्मानुभूति रूप शुचित्व को (पवित्रता को) सहजशुद्ध अखड केवलज्ञानरूप ज्ञातृत्व को और अनाकुलत्वलक्षण रूप अनतसुख को जान (अनुभव) करके और उससे स्वसवेदनज्ञान के अनतर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप एकाग्र एक आत्मिक परिणतिरूप (अभेद रत्नत्रयरूप) परमसामायिक में ठहरकर क्रोधादि आस्रव भावों की निवृत्ति करता है (याने **शुद्धात्मानुभूति में प्रवृत्ति होने से क्रोधादि भावों से निवृत्ति अपने आप होती है**)। इस प्रकार ज्ञानमात्र से ही (शुद्धात्मानुभूतिमात्र से ही) वध का निरोध (मोक्ष का मार्ग अथवा मुक्त) हो जाता है। इससे साख्यादिमत में (निश्चयाभास में) प्रवेश नहीं है (याने निश्चयभासी नहीं होता है)। - - - -

अथ केन भावनाप्रकारेणायमात्मा क्रोधाद्यास्रवेभ्यो निवर्त्तते इति चेत् -

अहमेक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदसणसमग्गो। (७३)
तम्हि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खय णेमि।।७८।।

अह निश्चयनयेन स्वसवेदनज्ञानप्रत्यक्ष शुद्धचिन्मात्रज्योतिरह। **एक्को** अनाद्यनतटकोत्कीर्णज्ञायकेकस्वभावत्वादेक। **खलु** स्फुट। **सुद्धो** य कर्तृकर्मकरणसप्रदानापादानाधिकरणषट्कारकीयविकल्पचक्ररहितत्वाच्छुद्धश्च। **णिम्ममओ** निर्मोहशुद्धात्मतत्त्वविलक्षणमोहोदयजनितक्रोधादिकषायचक्रस्वामित्वाभावात् ममत्वरहित। **णाणदसणसमग्गो** प्रत्यक्षप्रतिभासमयविशुद्धज्ञानदर्शनाभ्या समग्र परिपूर्ण। एव गुणविशिष्टपदार्थविशेषोस्मि भवामि। **तम्हि ठिदो** तस्मिन्नुक्तलक्षणे शुद्धात्मस्वरूपे स्थित। **तच्चित्तो** तच्चित्त सहजानन्दैकलक्षणसुखसमरसीभावेन तन्मयो भूत्वा **सव्वे एदे खय णेमि** सर्वानेतान्निरास्रवपरमात्मपदार्थपृथग्भूतास्तान् कामक्रोधाद्यास्रवान् क्षय विनाश नयामि प्रापयामीत्यर्थ।।७८।।

कुछ विशेष यह है कि, आत्मा और आस्रव के सबध में जो भेदज्ञान है, वह भेदज्ञान रागादि आस्रवभावों से निवृत्त करता है अथवा निवृत्त नहीं करता है ?, यदि कहोगे कि निवृत्त करता है तो उस भेदज्ञानरूप अनुभूति में पानक (पीने की वस्तु, ठडाई, शरबत इत्यादि) के समान अभेदनय से (शुद्धनिश्चयनय से) ज्ञान के साथ वीतरागचारित्र और वीतराग सम्यक्त्व भी है (याने चतुर्थगुणस्थान में और उसके आगे के गुणस्थान से सिद्धतक स्वसवेदनज्ञान (स्वानुभूति) के साथ वीतराग चारित्र और निश्चय सम्यक्त्व है ही)। इस प्रकार सम्यग्ज्ञान से (शुद्धात्मानुभूति से) ही बध के निरोध की सिद्धि होती है। यदि वह भेदज्ञान (ज्ञान) रागादिभावों से निवृत्ति को प्राप्त नहीं होता तो वह सम्यग्भेदज्ञान ही नहीं है, यह भावार्थ है।।७७।।

यह ज्ञानी आत्मा किस प्रकार की भावना से क्रोधादि आस्रवभावों से निवर्तता है ? उसका उत्तर देते है-

गाथार्थ - (अह) मैं (खलु) निश्चय से (एक्को) एक हूँ, (सुद्धो) शुद्ध हूँ (णिम्ममओ) निर्मोही (ममता रहित) हूँ, (णाणदसणसमग्गो) ज्ञान दर्शन से पूर्ण हूँ (अभेद हूँ) (तम्हि ठिदो) ऐसे स्वभाव में स्थित (तच्चित्तो) उसी चैतन्य अनुभव में लीन हुआ, (एदे) उन (सव्वे) क्रोधादि सब आस्रवभावों को (खय) क्षय (णेमि) करता हूँ।

टीकार्थ - अह निश्चयनय से स्वसवेदनज्ञान प्रत्यक्ष अनुभूतिरूप शुद्धचिन्मात्रज्योति हूँ, **एक्को** अनादि अनत टकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वभाव वाला होने से एक हूँ **खलु** यह स्पष्ट है, **सुद्धो** कर्ता, कर्म, करण, सप्रदान, अपादान, अधिकरण इन षट्कारकीय विकल्पचक्र से रहित होने से शुद्ध हूँ, **णिम्ममओ** निर्मोह शुद्धात्मतत्त्व से विलक्षण ऐसे मोहोदयजनित क्रोधादि कषायचक्र के स्वामित्व का अभाव होने से ममत्वरहित हूँ, **णाणदसणसमग्गो** प्रत्यक्ष प्रतिभासमय विशुद्धज्ञानदर्शन से समग्र (अखड, अभेद) परिपूर्ण हूँ। इस प्रकार मैं गुणविशिष्ट पदार्थ विशेष हूँ, **तम्हि ठिदो** उस कहे हुए लक्षण वाले स्वभाव में, शुद्धात्मस्वभाव में स्थित हूँ, **तच्चित्तो** सहजानद एक लक्षणवाले सुखरूप समरसी भाव से (अनुभूति से) तन्मय होकर **सव्वे एदे खय णेमि** निरास्रव परमात्म पदार्थ से भिन्न उन सभी क्रोधादिभावों के विनाश (क्षय) को प्राप्त होता हूँ। (याने शुद्धात्मानुभूति से क्रोधादि आस्रवभावों का नाश करता हूँ अथवा **शुद्धात्मानुभूति से क्रोधादि आस्रवभावों से निवृत्त होता हूँ**)।

अथ यस्मिन्नेव काले स्वसवेदनज्ञान तस्मिन्नेव काले रागाद्यास्रवनिवृत्तिरिति समानकालत्व दर्शयति-

जीवणिबद्धा एदे अधुव अणिच्चा तहा असरणा य। (७४)

दुक्खा दुक्खफला त्ति य णादूण णिवत्तदे तेहि।।७९।।

एदे जीवणिबद्धा एते क्रोधाद्यास्रवा जीवेन सह निबद्धा सवद्धा औपाधिका। न पुन निरुपाधि-स्फटिक वच्छुद्धजीवस्वभावा। **अधुव** विद्युच्चमत्कारवदध्रुवा अतीवक्षणिका। ध्रुव शुद्धजीव एव। **अणिच्चा** शीतोष्णज्वरावेशवदध्रुवापेक्षया क्रमेण स्थिरत्व न गच्छन्तीत्यनित्या विनश्वरा। नित्यश्चिच्चमत्कारमात्रशुद्धजीव एव। **तहा असरणा य** तथा तेनैव प्रकारेण तीव्रकामोद्रेकवत् त्रातु धर्तुं रक्षितु न शक्यत इत्यशरणा सशरणो निर्विकारबोधस्वरूप शुद्धजीव एव। **दुक्खा** आकुलत्वोत्पादकत्वाद् दु खानि भवन्ति कामक्रोधाद्यस्रवा। अनाकुलत्व-लक्षणत्वात्पारमार्थिकसुखस्वरूपशुद्धजीव एव। **दुक्खफला त्ति य** आगामिनारकादिदु खफलकारणत्वाद् दु खफला खल्वास्रवा। वास्तवसुखफलस्वरूपशुद्धजीव एव। **णादूण णिवत्तदे तेहि** इति भेदविज्ञानानतरमेव इत्थभूतान्मिथ्यात्व-रागाद्यास्रवान् ज्ञात्वास्रवेभ्यो यस्मिन्नेव क्षणे मेघपटलरहितादित्यवन्निवर्त्तते तस्मिन्नेव क्षणे ज्ञानी भवतीति भेदज्ञानेन सहास्रवनिवृत्ते समानकालत्व सिद्धमिति।।

भावार्थ - छद्मस्थ जीवों का चेतनोपयोग शुद्ध पारिणामिकभाव के साथ तन्मय होने से उसकी (स्वानुभूति से) स्वभाव में प्रवृत्ति होती है। यह क्षयोपशमरूप चेतनोपयोग क्रमवर्तिवाला होने से स्वभाव में प्रवृत्ति करते ही उसी समय रागादिभावों से निवृत्ति अपने आप हो जाती है। इसलिये शुद्धात्मानुभव में अतींद्रिय आनद है।।७८।।

अब **जिस समय में ही स्वसवेदन ज्ञान (स्वानुभूति) होता है उस समय में ही रागादि आस्रवों से निवृत्ति होती है**, इस तरह समानकालपना को (समकालत्व को) दिखाते हैं -

गाथार्थ - **(एदे)** ये आस्रव **(जीवणिबद्धा)** जीव के साथ निबद्ध हैं **(अधुव)** अध्रुव हैं **(तम्हा)** और **(अणिच्चा)** अनित्य हैं **(य)** और **(असरणा)** अशरण हैं **(दुक्खा)** दु खरूप हैं **(य)** और **(दुक्खफला)** जिनका फल दु ख ही है **(त्ति णादूण)** ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष **(तेहि)** उनसे **(णिवत्तदे)** निवृत्ति करता है।

टीकार्थ - **एदे जीवणिवद्धा** ये क्रोधादि आस्रवभाव जीव के साथ निबद्ध हैं, सवद्ध हैं, औपाधिक हैं। और निरुपाधि स्फटिक की तरह जो शुद्धजीव का स्वभाव है, उस शुद्ध जीवस्वभाव स्वरूप वे क्रोधादि आस्रवभाव नहीं हैं। **अधुवा** वे क्रोधादि आस्रवभाव बिजली के चमत्कार के समान अध्रुव, अतीव क्षणिक, हैं। शुद्ध जीवस्वभाव ध्रुव ही है। **अणिच्चा** शीतोष्ण ज्वर के वेग के समान वे क्रोधादि आस्रवभाव अध्रुवता की अपेक्षा से क्रम से स्थिर (एक से) रहने वाले नहीं हैं, (कभी कम कभी अधिक होते हैं, स्थिरता को प्राप्त नहीं होते) इस तरह अनित्य, विनश्वर हैं, चितूचमत्कारमात्र शुद्ध जीव स्वभाव ही नित्य है। **तहा असरणा य** उसी प्रकार वे क्रोधादि आस्रवभाव तीव्र काम-उद्रेक के समान नियंत्रित करने के (धारण करने के) लिये शक्य नहीं हो सकते, इसलिये अशरण हैं, किन्तु निर्विकार बोधस्वरूप शुद्ध जीवस्वभाव ही शरणस्वरूप है।

ननु पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना पीठाकाव्याख्यान क्रियत इति पूर्वम् प्रतिज्ञा कृता भवद्भि व्याख्यान पुन अज्ञानिसज्ञानिजीवस्वरूपमुख्यत्वेन कृत पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना पीठिकाव्याख्यान् कथ घटत इति ? तन्न। जीवाजीवौ यदि नित्यमेकातेनापरिणामिनौ भवतस्तदा द्वावेव पदार्थौ जीवाजीवाविति। यदि च एकातेन परिणामिनौ तन्मयौ भवतस्तदैक एव पदार्थ । किंतु कथचित्परिणामिनौ भवत । कथचित्कोऽर्थ ? यद्यपि जीव शुद्धनिश्चयनयेन स्वरूप न त्यजति तथापि व्यवहारेण कर्मोदयवशाद्रागाद्युपाधिपरिणाम गृह्णाति। यद्यपि रागाद्युपाधिपरिणाम गृह्णाति तथापि स्वरूप न त्यजति स्फटिकवत्। तत्रैव कथचित्परिणामित्वे सति अज्ञानी वहिरात्मा मिथ्यादृष्टिर्जीवो विषय-कषायरूपाशुभोपयोगपरिणाम करोति। कदाचित्पुनश्चिदानन्दैकस्वभाव शुद्धात्मान त्यक्त्वा भोगाकाक्षानिदानस्वरूप शुभोपयोगपरिणाम च करोति। तदा काले द्रव्यभावरूपाणा पुण्यपापास्रववधपदार्थाना कर्तृत्व घटते। नत्र ये भावरूपा पुण्यपापादयस्ते जीवपरिणामा ये द्रव्यरूपास्ते चाजीवपरिणामा इति।

दुक्खा वे कामक्रोधादि आस्रवभाव आकुलता उत्पन्न करने वाले होने से अनेक प्रकार के दु ख ही हैं, किन्तु शुद्धजीवस्वभाव अनाकुलत्व लक्षण वाला होने से परमार्थिक सुखस्वरूप ही है। **दुक्खफला त्ति य** वे क्रोधादि आस्रवभाव आगामी (भविष्यकाल) में होने वाले नारकादि दु खफल के कारण होने से दु खफलस्वरूप हैं, किन्तु शुद्धजीवस्वभाव ही वास्तव में सुखफलस्वरूप है। **णादूण णिवत्तिदे तेहि** इसके वाद भेदविज्ञान को **(शुद्धात्मानभव को)** और उन मिथ्यात्व रागादि आस्रवभावों को जानकर उसी समय उन आस्रवभावों से निवृत्त हो जाता है, जैसे जिस समय मेघपटल दूर होता है उसी समय सूरज का प्रकाश फैल जाता है, वैसे ही **जिस समय भेदज्ञान से (शुद्धात्मानुभव से) ज्ञानी होता है उसी समय साथ में रहने वाले आस्रवभावों से निवृत्त हो जाता है।** इस प्रकार स्वानुभूति और मिथ्यात्व क्रोधादि आस्रवों से निवृत्ति, एक ही समय में (समकाल में) होती है, यह सिद्ध हुआ।

शका - इस प्रकरण के पूर्व में आपने प्रतिज्ञा तो यह की थी कि, अव पुण्यपापादि सात पदार्थों की पीठिका का व्याख्यान किया जाता है, और यहाँ व्याख्यान में सम्यग्ज्ञानी और अज्ञानी जीव का स्वरूप मुख्यता से कहा गया है तो यहाँ पुण्यपापादि सात पदार्थों की पीठिका का व्याख्यान कैसे घटित होता है ?

समाधान - यहाँ पुण्यपापादि सात पदार्थो की पीठिका का व्याख्यान नहीं हुआ, ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्योंकि यदि जीव और अजीव नित्य एकात से अपरिणामी ही हों परिणमनशील नहीं हों तव तो दो ही पदार्थ ठहरे, और यदि एकात से (सर्वथा) परिणामी हैं, तन्मय होकर रहते हैं, तो जीव और अजीव (दो भिन्न पदार्थ न रहकर) एक ही पदार्थ होगा। इसलिये जीव और अजीव कथचित् परिणमनशील हैं।

शका - **कथचित् का क्या अर्थ है ?**

समाधान- यद्यपि जीव शुद्धनिश्चयनय से अपना स्वभाव (स्वरूप) नहीं छोडता है तथापि व्यवहारनय से कर्मोदयवश से (कर्मोदय के सानिध्य में) रागादि उपाधि परिणाम को ग्रहण करता है। यद्यपि रागादि उपाधि परिणाम को ग्रहण करता है तथापि अपने स्वरूप को नहीं छोडता है, जैसे स्फटिक लालवर्ण के पुष्प के सानिध्य में सयोगजदृष्टि से लाल दिखता है तो भी स्वभाव को न छोडने से स्वच्छ है, लाल नहीं है। इसलिये कथचित् परिणामी है।

य पुन सम्यग्दृष्टिरतरात्मा सज्ञानी जीव स मुख्यवृत्त्या निश्चयरत्नत्रयलक्षणशुद्धोपयोगवलेन निश्चयचारित्राविनाभाविवीतरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा निर्विकल्पसमाधिरूपपरिणामपरिणति करोति तदा तेन परिणामेन सवरनिर्जरामोक्षपदार्थाना द्रव्यभावरूपाणा कर्त्ता भवति। कदाचित्पुन निर्विकल्पसमाधिपरिणामाभावे सति विषयकषाय-वचनार्थं शुद्धात्मभावनासाधनार्थं वा वहिर्वुद्धया (हेयवुद्धया) ख्यातिपूजालाभभोगाकाक्षानिदानवधरहित सन् शुद्धात्म-लक्षणार्हत्सिद्धशुद्धात्माराधकप्रतिपादकसाधकाचार्योपाध्यायसाधूना गुणस्मरणादिरूप शुभोपयोगपरिणाम च करोति।

अस्मिन्नर्थे दृष्टातमाहु । यथा कश्चिद्देवदत्त स्वकीयदेशातरस्थित स्त्रीनिमित्त तत्समीपागतपुरुषाणा सन्मान करोति, वार्त्ता पृच्छति, तत्स्त्रीनिमित्त तेषा स्वीकार स्नेहदानादिक च करोति। तथा सम्यग्दृष्टिरपि शुद्धात्मस्वरूपोप-लब्धिनिमित्त शुद्धात्माराधकप्रतिपादकाचार्योपाध्यायसाधूना गुणस्मरण दानादिक च स्वय शुद्धात्माराधनारहित सन् करोति। एवमज्ञानिसज्ञानिजीवस्वरूपव्याख्याने कृते सति पुण्यपापादिसप्तपदार्था जीवपुद्गलसयोगपरिणामनिर्वृत्ता इति पीठिकाव्याख्यान घटते। नास्ति विरोध । एव सज्ञानिजीवव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टय गतम्। इति पुण्यपापादिसप्तपदार्थपीठिकाधिकारे गाथाषट्केन प्रथमातराधिकारो व्याख्यात ।।७९।।

वहाँ इस प्रकार कथचित् परिणामित्व होने से अज्ञानी वहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव विषयकषायरूप अशुभोपयोग परिणाम को करता हे। कदाचित् पुन चिदानद एक स्वभाव वाले शुद्धात्मा को छोडकर, भोगाकाक्षा निदान स्वरूप शुभोपयोग परिणाम को करता है। उसी काल में द्रव्य और भाव रूप पुण्यपापमय आस्रववधपदार्थों का कर्तृत्व ठहरता है। वहाँ जो भावरूप पुण्यपापादि हैं, वे जीव परिणाम हैं और जो द्रव्यरूप पुण्यपापादि हैं, वे अजीव परिणाम हें।

और जो सम्यग्दृष्टि अतरात्मा सम्यग्ज्ञानी जीव है, वह मुख्यवृत्ति से निश्चयरत्नत्रयलक्षण वाले शुद्धोपयोग के वल से निश्चयचारित्र का अविनाभावी वीतरागसम्यग्दृष्टि होकर निर्विकल्प समाधिरूप परिणाम - परिणति करता है, तब उसी परिणाम से द्रव्य और भावरूप सवर, निजरा और मोक्ष पदार्थों का कता होता है।

और कदाचित् निर्विकल्प समाधिपरिणाम का अभाव होने से (आगम भाषा से) विषयकषायों से बचने के लिए अथवा (अध्यात्मभाषा से) शुद्धात्मानुभव की साधना के लिए वहिर्वुद्धि से (विकल्पभाव से अथवा विकल्पभावों को हेय मानते हुए भी छद्मस्थ होने से वह सम्यग्दृष्टि विकल्पभाव से) ख्यातिपूजालाभभोगाकाक्षा-निदानवधरहित भाव वाला होते हुए शुद्धात्मा के लक्षणवाले अर्हन्त सिद्ध और शुद्धात्मा के आराधक और शुद्धात्मा के प्रतिपादन करने वाले व उसी शुद्धात्मा की साधना करने वाले आचार्य, उपाध्याय और साधु के गुणस्मरणादिरूप (द्रव्य, गुण और पर्याय व अविभाग प्रतिच्छेद का विचार) शुभोपयोग परिणाम करता है। इसी वात को बताने के लिये दृष्टान्त कहते हैं। जैसे कोई एक देवदत्त पुरुष-जिसकी स्त्री देशातर में है, उस स्त्री का समाचार जानने के लिये उसके ग्राम से आये हुए लोगों का सन्मान करता है, उसकी वात पूछता है और उनको अपनाकर व उनसे प्रेम दिखलाकार उनको दानादिक भी देता है, यह उसका सारा बर्ताव केवल स्त्री का परिचय प्राप्त करने के निमित्त होता है।

अत पर यथाक्रमणैकादश गाथा पर्यन्त पुनरपि सज्ञानी जीवस्य विशेष व्याख्यान करोति। तत्रेकादशगाथासु मध्ये जीव कर्त्ता मृत्तिकाकलशमिवोपादानरूपेण निश्चयेन कर्म नोकर्म च न करोतीति जानन् सन् शुद्धात्मान स्वसवेदनज्ञानेन जानाति य स ज्ञानी भवतीति कथनरूपेण **'कम्मस्स य परिणाम'** इत्यादि प्रथमगाथा। तत पर पुण्यपापादिपरिणामान् व्यवहारेण करोति निश्चयेन न करोतीति मुख्यत्वेन सूत्रमेकम्। अथ कर्मत्व स्वपरिणामत्व सुखदु खादि कर्मफल चात्मा जानन्नप्युदयागत परद्रव्य न करोतीति प्रतिपादनरूपेण **'ण वि परिणमदि'** इत्यादि गाथात्रयम्। तदनतर पुद्गलोऽपि वर्णादि स्वपरिणामस्यैव कर्ता न च ज्ञानादिर्जीवपरिणामस्येति कथनरूपेण **'ण वि परिणमदि'** इत्यादि सूत्रमेकम्। अत पर जीवपुद्गलयोरन्योन्यनिमित्तकर्तृत्वेऽपि सति परस्परोपादानकर्तृत्व नास्तीति कथनमुख्यतया **'जीवपरिणाम'** इत्यादि गाथात्रयम्। तदनतर निश्चयेन जीवस्य स्वपरिणामैरेव सह कर्तृकर्मभावो भोक्तृभोग्यभावश्चेति प्रतिपादनरूपेण **'णिच्छयणयस्स'** इत्यादि सूत्रमेकम्। ततश्च व्यवहारेण जीव पुद्गलकर्मणा कर्त्ता भोक्ता चेति कथनरूपेण **'ववहारस्स दु'** इत्यादि सूत्रमेकम्। एव ज्ञानिजीवस्य विशेषव्याख्यानमुख्यत्वेनैकादश-गाथाभिर्द्वितीयस्थले समुदायपातनिका। तद्यथा -

---

वैसे ही सम्यग्दृष्टि (ज्ञानी) जीव भी शुद्धात्मस्वरूप की उपलब्धि के लिये शुद्धात्मा के अनुभव वाले (आराधक) व प्रतिपादक ऐसे आचार्य उपाध्याय व साधु है उनका गुणस्मरण दान सन्मान आदि करता है। उसी तरह जो स्वय अभी शुद्धात्मा की आराधना से रहित है वह भी शुद्धात्मानुभूति की उपलब्धि के लिये शुद्धात्मा के आराधक व प्रतिपादक ऐसे आचार्य, उपाध्याय, साधु हैं उनके गुणों का स्मरण, दान सन्मान आदि करता है।

इस प्रकार अज्ञानी और सम्यग्ज्ञानी जीव के स्वरूप का व्याख्यान करते समय पुण्यपापादि सप्तपदार्थ जीव और पुद्गल के सयोग परिणाम से निर्वृत्त हैं, ऐसा पीठिका का व्याख्यान घटता है। इसमें विरोध नही है। इस प्रकार सम्यग्ज्ञानी जीव के व्याख्यान की मुख्यता से ४ गाथायें हो गईं। इस प्रकार पुण्यपापादि सप्तपदार्थपीठिका अधिकार में छह गाथाओं द्वारा प्रथम अतर आधिकार का व्याख्यान हो गया।।७९।।

इसके आगे क्रम से ११ गाथापर्यन्त, फिर से सम्यग्ज्ञानी जीव का विशेष व्याख्यान करते हैं। वहाँ ११ गाथाओं में जैसे उपादानरूप से मिट्टी कलश का कर्ता है उसी तरह निश्चय से जीव कर्म और नोकर्म का कर्ता नहीं है, ऐसा जानने वाला होकर **जो निजस्वभाव शुद्धआत्मा को स्वसवेदनज्ञान से (शुद्धात्मानुभूति से) जानता है, वह ज्ञानी होता है** इस कथन रूप से **'कम्मस्स य परिणाम'** इत्यादि रूप प्रथम गाथा है। उसके बाद व्यवहार से पुण्यपापादि परिणामों को करता है, निश्चय से पुण्यपापादि परिणामो का कर्ता नहीं है, इसकी मुख्यता से एक गाथा है। अब इसके आगे कर्मत्व को, स्वपरिणाम को और सुखदु खादि कर्मफल को आत्मा जानता हुआ भी उदयागत परद्रव्य को नहीं करता है, ऐसे प्रतिपादनरूप से **'ण वि परिणमदि'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। तदनतर पुद्गल भी वर्णादि स्वपरिणाम का ही कर्ता है, ज्ञानादि जीवपरिणाम का कर्ता नहीं है, इस कथन रूप से **'ण वि परिणमदि'** इत्यादि एक गाथा है। इसके बाद जीव-पुद्गल का अन्योन्य निमित्तकर्तृत्व होते हुए भी (याने जीवपुद्गल का सांनिध्य देखकर परस्पर में निमित्त का आरोप किया जाता है तो भी) परस्पर में उपादानरूप से कर्तृत्व नहीं है, इस कथन की मुख्यता से **'जीवपरिणाम'** इत्यादि तीन गाथायें हैं।

अथ कथमात्मा ज्ञानीभूतो लक्ष्यत इति प्रश्ने प्रत्युत्तर ददाति -

कम्मस्स य परिणाम णोकम्मस्स य तहेव परिणाम। (७९)
ण करेदि एदमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी।।८०।।

कम्मस्स य परिणाम णोकम्मस्स य तहेव परिणाम ण करेदि एदमादा जो जाणदि यथा मृत्तिकाकलशमुपादानरूपेण, करोति तथा कर्मण नोकमर्णश्च परिणाम पुद्गलेनोपादानकारणभूतेन क्रियमाण न करोत्यात्मेति यो जानाति **सो हवदि णाणी** स निश्चयशुद्धात्मान परमसमाधिवलेन भावयन्सन् ज्ञानी भवति। इति ज्ञानीभूत जीवलक्षणकथनरूपेण गाथा गता।।८०।।

अथ पुण्यपापादिपरिणामान् व्यवहारेण करोतीति प्ररूपयति -

कत्ता आदा भणिदो ण य कत्ता केण सो उवाएण।
धम्मादी परिणामे जो जाणदि सो हवदि णाणी।।८१।।

तदनतर निश्चय से जीव का स्वपरिणाम के साथ ही कर्तृकर्मभाव और भोक्तृभोग्यभाव है, इस प्रकार के प्रतिपादनरूप से **'णिच्छयणयस्स'** इत्यादि एक गाथा है। इसके वाद व्यवहार से जीव पुद्गल कर्मो का कर्ता भोक्ता है, ऐसे कथनरूप से **'ववहारस्स दु'** इत्यादि एक गाथा है। इस प्रकार ज्ञानी जीव के विशेष व्याख्यान की मुख्यता से ११ गाथाओं द्वारा द्वितीय स्थल में समुदायपातनिका है।

अव यह आत्मा ज्ञानी हुआ है, यह कैसे जाना जाता है ? ऐसा प्रश्न पूछने पर उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(जो)** जो **(आदा)** आत्मा **(एद)** इस **(कम्मस्स)** कर्म के **(परिणामं य)** परिणाम को **(तहेव य)** ओर उसी भाति **(णोकम्मस्स परिणाम)** नोकर्म के परिणाम को **(ण करेदि)** नहीं करता है **(जाणदि)** किन्तु जानता हे। **(सो)** वह **(णाणी)** ज्ञानी **(हवदि)** है।

टीकार्थ - **कम्मस्स परिणाम णोकम्मस्स य तहेव परिणाम ण करेदि जो जाणदि** जैसे मिट्टी कलश को उपादान रूप से करती है, उसी प्रकार कर्म के और नोकर्म के परिणाम को पुद्गल उपादान कारण होकर करता है, वैसे आत्मा कर्म के और नोकर्म के परिणाम को नहीं करता हे, ऐसा जो जानता है **सो हवदि णाणी** वह निश्चयशुद्धात्मा को परमसमाधि के वल से अनुभव करके ज्ञानी होता है (याने शुद्धात्मा का अनुभव करने वाला ज्ञानी है)। इस तरह ज्ञानी हुए जीव के लक्षण के कथन रूप से गाथा हो गयी।।८०।।

अव व्यवहार से आत्मा पुण्यपापादि परिणामों का कर्ता है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(केण सो उवाएण)** किसी एक उपाय से (व्यवहारनय से) **(आदा)** आत्मा **(धम्मादी परिणामे)** पुण्यादि परिणामों का **(कत्ता)** कर्ता है (य) और **(केण सो उवाएण)** किसी एक उपाय से (निश्चयनय से) **(आदा)** आत्मा **(धम्मादि परिणामे)** पुण्यादि परिणामों का **(कत्ता ण)** कर्ता नहीं है, **(भणिदो)** ऐसा कहा गया है, इस प्रकार **(जो)** जो **(जाणदि)** जानता है, **(सो)** वह **(णाणी)** ज्ञानी **(हवदि)** है।

कर्ता आत्मा भणित न च कर्ता केन स उपायेन। धर्मादीन् परिणामान् य जानाति स भवति ज्ञानी। **कत्ता आदा भणिदो** कर्तात्मा भणित ।**ण य कत्ता सो** न च कर्ता भवति स आत्मा।**केण उवायेण** केनाप्युपायेननयविभागेन। केन नयविभागेनेति चेत् ? निश्चयेन अकर्ता व्यवहारेण कर्तेति। कान् ? **धम्मादी परिणामे** पुण्यपापादिकर्मजनितोपाधिपरिणामान्। **जो जाणदि सो हवदि णाणी** ख्यातिपूजालाभादिसमस्तरागादिविकल्पोपाधिरहितसमाधौ स्थित्वा यो जानाति स ज्ञानी भवति। इति निश्चयव्यवहारनयाभ्यामकर्तृत्वकर्तृत्वकथनरूपेण गाथा गता।।८१।।

अथ पुद्गलकर्म जानतो जीवस्य पुद्गलेन सह तादात्म्यसम्बन्धो नास्तीति निरूपयति -

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए। (७६)
णाणी जाणतो वि हु पुग्गलकम्मं अणेयविहं।।८२।।

टीकार्थ - **केण उवाएण** किसी एक नय से (व्यवहारनय से) **आदा कत्ता भणिदो धम्मादी परिणामे** आत्मा पुण्यादि परिणामों का कर्ता है, और **ण य कत्ता सो** किसी एक नय से (निश्चयनय से) आत्मा पुण्यादि परिणामों का कर्ता नही है, यह जो जानता है वह ज्ञानी है।

शका - कौन से नय से आत्मा पुण्यादि परिणामों का कर्ता है और अकर्ता है ?

समाधान - निश्चयनय से कर्मजनित उपाधिरूप पुण्यपापादि परिणामों का अकर्ता है और व्यवहारनय से कर्मजनित उपाधिरूप पुण्यपापादि परिणामों का कर्ता है। **जो जाणदि सो हवदि णाणी** ख्यातिपूजालाभादि समस्त रागादि विकल्प की उपाधि से रहित समाधि में लीन होकर (स्वानुभव में ठहरकर) जो पुण्यपापादि परिणामों को कर्मजनित जानता है, वह ज्ञानी है। इस तरह निश्चय व्यवहारनय से कर्तृत्वाकर्तृत्व के कथन रूप से गाथा हो गयी।।८१।।

अव **पुद्गलकर्म को जानते हुए जीव का पुद्गल के साथ तादात्म्यसबध नहीं है,** ऐसा निरूपण करते हैं-

गाथार्थ - **(णाणी)** ज्ञानी **(पुग्गलकम्म)** पुद्गलकर्म को **(अणेयविह)** अनेक प्रकार का है ऐसा **(जाणतो वि)** जानता हुआ भी **(हु)** निश्चय से **(परदव्वपज्जाये)** पर द्रव्य की पर्याय मे उसस्वरूप **(ण परिणमदि)** परिणमन नहीं करता, **(ण वि गिण्हदि)** उसका ग्रहण भी नहीं करता और **(उप्पज्जदि ण)** उस स्वरूप उत्पन्न भी नहीं होता।(इस प्रकार पुद्गलकर्म के साथ कर्तृ-कर्मभाव नहीं है)

टीकार्थ - **पुग्गलकम्म अणेयविह** कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्य द्वारा उपादान कारण होकर किये जाने वाले पुद्गल कर्म, मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृति के भेद से अनेक प्रकार का है। **जाणतो वि हु** ज्ञानी उनको विशिष्ट भेदविज्ञान से स्पष्ट जानते हुए भी **णाणी** सहजानद एक स्वभाव निजशुद्धात्मा को और रागादि आस्रवभावों को जानने वाला भेदविज्ञानी आत्मा **ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए** उस पूर्वोक्त परद्रव्यपर्यायरूप कर्मस्वरूप निश्चय से परिणमन नहीं करता, तादात्म्यरूप होकर ग्रहण नहीं करता और उस आकार द्वारा उत्पन्न नहीं होता। जैसे मृत्तिका उपादानरूप से घटरूप परिणत होती है, मृत्तिका ही घट से तादात्म्यरूप होकर घट को ग्रहण करती है, और मृत्तिका ही घट के आकाररूप उत्पन्न होती है (याने घट आकार से रची जाती है)।

पुग्गलकम्म अणेयविह कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्येणोपादानकारणभूतेन क्रियमाण पुद्गलकर्मानेकविध मूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्न। जाणतो वि हु विशिष्टभेदज्ञानेन जानन्नपि हु स्फुट। स क कर्ता ? णाणी सहजानन्दैक-स्वभावनिजशुद्धात्मरागाद्यास्रवयोर्भेदज्ञानी। ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए तत्पूर्वोक्त परद्रव्यपर्यायरूप कर्म निश्चयेन मृत्तिकाकलशरूपेणेव न परिणमति न तादात्म्यरूपतया गृह्णाति न च तदाकारेणोत्पद्यते। कस्मादितिचेत् ? मृत्तिका कलशयोरिव तेन पुद्गल कर्मणा सह तादात्म्यसम्बन्धाभावात्। तत एतदायाति पुद्गलकर्म जानतो जीवस्य पुद्गलेन सह निश्चयेन कर्तृकर्मभावो नास्तीति।।८२।।

अथ स्वपरिणाम सकल्पविकल्परूप जानतो जीवस्य तत्परिणामनिमित्तेनोदयागतकर्मणा सह तादात्म्य-सबधो नास्तीति दर्शयति -

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए। (७७)
णाणी जाणतो वि हु सगपरिणाम अणेयविह।।८३।।

शका - आत्मा पुद्गलकर्मस्वरूप क्यों परिणमन नहीं करता, पुद्गलकर्म को तादात्म्यरूप से क्यों नहीं ग्रहण करता ओर पुद्गलकर्म स्वरूप से क्यों उत्पन्न (रचना) नहीं होता ?

समाधान - क्योंकि जैसे मृत्तिका और कलश में तादात्म्य सबध है, वैसे चेतनमय आत्मा और अचेतनमय पुद्गलकर्म में तादात्म्य सबध नहीं है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, पुद्गलकर्म को जाननेवाले जीव का पुद्गलकर्म के साथ निश्चय से कर्तृकर्मसबध (कर्त्तृकर्मभाव) नहीं है।।८२।।

अब अपने सकल्पविकल्परूप परिणाम को जानते हुए (भी) जीव का उस परिणाम के निमित्त से उद्यागत (भाव) कर्म के साथ तादात्म्य सबध नहीं है, यह दिखाते हैं -

गाथार्थ - **(णाणी)** ज्ञानी **(सगपरिणाम)** अपने परिणाम को **(अणेयविह)** अनक प्रकार का है ऐसा **(जाणतो वि)** जानता हुआ भी **(हु)** निश्चय से **(परदव्वपज्जाए)** परद्रव्य की पर्याय में **(ण वि परिणमदि)** न तो उस रूप परिणमन करता है **(ण गिण्हदि)** न उसको ग्रहण करता है और **(उप्पज्जदि ण)** न उस रूप उपजता हे (इसलिये सकल्पविकल्प के साथ कर्ताकर्म भाव नहीं है)।

टीकार्थ - **सग परिणाम अणेय** विह क्षायोपशमिक सकल्प-विकल्प रूप स्वत से उपादान कारण होकर किये जाने वाले स्वपरिणाम अनेकविध हे उनको निर्विकार स्वसवेदनवाला ज्ञानीजीव स्वपर के विशिष्ट भेदविज्ञान से जानता हुआ भी **ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए** उसके पूर्वोक्त स्वकीय परिणाम के निमित्त से उदयागत पुद्गलकर्मपर्यायरूप परिणमन शुद्ध निश्चयनय से नहीं करता है तादात्म्यरूप होकर उसको ग्रहण नहीं करता ओर उस पर्यायरूप से उत्पन्न नहीं होता। जैसे मृत्तिका उपादानरूप से घटरूप परिणत होती है, मृत्तिका ही घट से तादात्म्यरूप होकर घट को ग्रहण करती है और मिट्टी ही घट के आकार रूप से उत्पन्न होती है क्योंकि मिट्टी का घट के साथ तादात्म्य (उपादान-उपादेय) सबध है। लेकिन सकल्प-विकल्प के साथ, (पुद्गलकर्म के साथ) जीव का तादात्म्य सबध नहीं हे। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि स्वकीय क्षायोपशमिक परिणाम के निमित्त से उदयागत कर्म को जानता हुआ भी जीव का उस सकल्प-विकल्प के साथ शुद्धनिश्चयनय से कर्तृकर्मभाव नहीं है।।८३।।

सगपरिणाम अणेयविह क्षायोपशमिक सकल्पविकल्परूप स्वेनात्मनोपादानकारणभूतेन क्रियमाण स्वपरिणाममनेकविध। **णाणी जाणतो वि हु** निर्विकारस्वसवेदनज्ञानी जीव स्वपरमात्मनो विशिष्टभेदज्ञानेन जानन्नपि हु स्फुट। **णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए** तस्य पूर्वोक्तस्वकीयपारणामस्य निमित्तभूतमुदयागत पुद्गलकर्मपर्यायरूप मृत्तिकाकलशरूपेणेव शुद्धनिश्चयनयेन न परिणमति न तन्मयत्वेन गृह्णाति न तत्पर्यायेणोत्पद्यते च। कस्मात् ? मृत्तिकाकलशयोरिव तेन पुद्गलकर्मणा सह परस्परोपादानकारणाभावादिति। एतावता किमुक्त भवति ? स्वकीयक्षायोपशमिकपरिणामनिमित्तमुदयागत कर्म जानतोऽपि जीवस्य तेन सह निश्चयेन कर्तृकर्मभावो नास्तीति।।८३।।

अथ पुद्गलकर्मफल जानतो जीवस्य पुद्गलकर्मफलनिमित्तेन द्रव्यकर्मणा सह निश्चयेन कर्तृकर्मभावो नास्तीति कथयते -

णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए। (७८)
णाणी जाणतो वि हु पुग्गलकम्मफलमणत।।८४।।

अब **पुद्गलकर्मफल को** जानते **हुये जीव का पुद्गलकर्मफल के निमित्तभूत द्रव्यकर्म के साथ निश्चयनय से कर्तृकर्मभाव नहीं है,** ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(णाणी)** ज्ञानी **(अणत)** अनत प्रकार के **(पुग्गलकम्मफल)** पुद्गल कर्म के फलों को **(जाणतो वि)** जानता हुआ प्रवृत्त होता है तो भी **(हु)** निश्चय से **(परदव्वपज्जाए)** पर द्रव्य की पर्याय रूप **(ण वि परिणमदि)** परिणमन नहीं करता है **(ण गिण्हदि)** उसको ग्रहण नहीं करता है **(ण उप्पज्जदि)** और उस रूप में उपजता भी नहीं है। (इस प्रकार परद्रव्य के फल के साथ कर्तृकर्मभाव नहीं है)

टीकार्थ - **पुग्गलकम्मफलमणत** उदयागत द्रव्यकर्म से उपादान कारणभूत होकर किये जाने वाले सुखदु खरूप शक्तिअपेक्षा से अनत प्रकार के कर्मफल को **णाणी जाणतो विहु** वीतराग शुद्धात्मसवित्ति समुत्पन्न सुखामृतरस तृप्त ऐसा भेदज्ञानी निर्मल विवेक भेदज्ञान से (शुद्धात्मानुभूति से) स्पष्ट जानते हुये भी **ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए** वर्तमान सुखदु खरूप शक्तिअपेक्षा से निमित्तभूत उदयागत परपर्यायरूप पुद्गलकर्म को शुद्धनिश्चयनय से प्राप्त (परिणत) नहीं होता है, तन्मय होकर (उसको) ग्रहण नहीं करता है और उस पर्यायरूप से उत्पन्न नहीं होता हे, जैसे मृत्तिका घटरूप को प्राप्त (परिणत) होती है, तन्मय होकर घटरूप को ग्रहण करती हे और घटपर्यायरूप से उत्पन्न होती है, क्योंकि घट और मिट्टि में जैसा तादात्म्यसवध है, वेसा पुद्गलकम का और जीव का तादात्म्यसवध नहीं है। और कुछ विशेष कहते हैं -

शका - यदि **ज्ञानी जीव** पुद्गलद्रव्यकर्मरूप से नहीं परिणमता, उसे ग्रहण नहीं करता और उसरूप उत्पन्न नहीं होता, तो **क्या करता है ?**

समाधान - मिथ्यात्व विषय कषाय ख्याति पूजा लाभ और भोगाकाक्षारूप निदान बध शल्यादि विभाव परिणाम के कर्तृत्व भोक्तृत्व के विकल्प से रहित ऐसे आत्मा का जल से पूर्ण भरे हुए कलश की तरह चिदानन्द एकस्वभाव से भरितावस्था वाले **शुद्धात्मा का निर्विकल्पसमाधि में ध्यान (अनुभव) करता है।** ऐसा भावार्थ है।

पुग्गलकम्मफलमणत उदयागतद्रव्यकर्मणोपादानकारणभूतेन क्रियमाण सुखदु खरूपशक्त्यपेक्षयानतकर्मफल **णाणी जाणतो वि हु** वीतरागशुद्धात्मसवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरसतृप्तो भेदज्ञानी निर्मलविवेकभेदज्ञानेन जानन्नपि हि स्फुट । **ण परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए** वर्तमानसुखदु खरूप शक्त्यपेक्षानिमित्तमुदयागत परपर्यायरूप पुद्गलकर्म मृत्तिकाकलशरूपेणेव शुद्धनयेन न परिणमति न तन्मयत्वेन गृह्णाति न तत्पर्यायेणोत्पद्यते च। कस्मादिति चेत् ? मृत्तिकाकलशयोरिव तेन द्रव्यकर्मणा सह तादात्म्यलक्षणसवधाभावादिति।

किच विशेष - यदि पुद्गलद्रव्यकर्मरूपेण न परिणमति न गृह्णाति न तदाकारेणोत्पद्यते तर्हि कि करोति ज्ञानी जीव ? मिथ्यात्वविषयकषायख्यातिपूजालाभभोगाकाक्षारूपनिदानबधशल्यादिविभावपरिणामकर्तृत्वभोक्तृत्वविकल्पशून्य पूर्णकलशवच्चिदानन्दैकस्वभावेन भरितावस्थ **शुद्धात्मान निर्विकल्पसमाधौ ध्यायतीति भावार्थ** । एवमात्मा निश्चयेन द्रव्यकर्मादिक परद्रव्य न परिणमतीत्यादिव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रय गतम्।।८४।।

अथ जीवपरिणाम, स्वपरिणाम, स्वपरिणामफल च जडस्वभात्वादजानत पुद्गलस्य निश्चयेन जीवेन सह कर्तृकर्मभावो नास्तीति प्रतिपादयति -

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए। (७९)
पुग्गलदव्व पि तहा परिणमदि सएहि भावेहि।।८५।।

इस प्रकार आत्मा निश्चयनय से द्रव्यकर्मादिस्वरूप परद्रव्य के रूप में नहीं परिणमता है, तन्मय होकर उसको ग्रहण नहीं करता हे ओर उस पर्यायरूप उत्पन्न नहीं होता है, ऐसे व्याख्यान की मुख्यता से तीन गाथायें हो गईं।।८४।।

अव जीवपरिणाम को, स्वपरिणाम को और स्वपरिणाम के फल को न जानते हुये जडस्वभावी पुद्गल का निश्चयनय से जीव के साथ कर्तृकर्मभाव नहीं है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं -

गाथार्थ - **(पुग्गलदव्व पि)** पुद्गलद्रव्य भी **(परदव्वपज्जाए)** परद्रव्य की पर्याय में **(तहा)** उस रूप में **(ण वि परिणमदि)** परिणमन नहीं करता है **(ण गिण्हदि)** ग्रहण नहीं करता हे **(ण उप्पज्जदि)** उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि **(सएहि)** वह अपने **(भावेहि)** भावों से ही **(परिणमदि)** परिणमन करता है।

टीकार्थ - **ण वि परिणमदि गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए** जैसे जीव निश्चयनय से अनतसुखादिस्वरूप को छोडकर पुद्गलद्रव्यरूप से परिणमन नहीं करता है, तन्मय होकर उसको ग्रहण नहीं करता है और उसकी पर्यायरूप से उत्पन्न नहीं होता है। **पुद्गलदव्व पि तहा** उसी प्रकार मृत्तिका कलश की तरह पुद्गलद्रव्य भी स्वय अतर्व्यापक होकर चिदानन्द एकलक्षणवाले जीव के स्वरूप से परिणमन नहीं करता है, तन्मय होकर जीवस्वरूप को ग्रहण नहीं करता हे, और जीव की पर्याय के स्वरूप से उत्पन्न नहीं होता है।

शका - तो फिर पुद्गल द्रव्य क्या करता है ?

समाधान - **परिणमदि सएहि भावेहि** स्वकीय वर्णादि स्वभावभूत गुण धर्म परिणामों द्वारा पुद्गलद्रव्य परिणमन करता है।

णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए यथा जीवो निश्चयेनानतसुखादिस्वरूप त्यक्त्वा पुद्‌गलद्रव्यरूपेण न परिणमति न च तन्मयत्वेन गृह्णाति न तत्पर्यायेणोत्पद्यते। **पुग्गलदव्व पि तहा** तथा पुद्‌गलद्रव्यमपि स्वयमतर्व्यापक भूत्वा मृत्तिका द्रव्य कलशरूपेणेव चिदानन्दैकलक्षणजीवस्वरूपेण न परिणमति न च जीवस्वरूप तन्मयत्वेन गृह्णाति न च जीवपर्यायेणोत्पद्यते। तर्हि कि करोति ? **परिणमदि सएहि भावेहि** परिणमदि स्वकीयैर्वर्णादिस्वभावै परिणामैर्गुणैर्धर्मैरिति। कस्मादिति चेत् ? मृत्तिकाकलशयोरिव जीवेन सह तादात्म्य-लक्षणसबधाभावादिति। एव पुद्‌गलद्रव्यमपि जीवेन सह न परिणमतीत्यादिव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता।।८५।।

अथ यद्यपि जीवपुद्‌गलपरिणामयोरन्योन्यनिमित्तमात्रत्वमस्ति तथापि निश्चयनयेन तयोर्न कर्तृकर्मभाव इत्यावेदयति-

जीवपरिणामहेदु कम्मत्त पुग्गला परिणमंति। (८०)
पुग्गलकम्मणिमित्त तहेव जीवो वि परिणमदि।।८६।।
ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्म तहेव जीवगुणे। (८१)
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणाम जाण दोण्ह पि।।८७।।
एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण। (८२)
पुग्गलकम्मकदाण ण दु कत्ता सव्वभावाण।।८८।।

शका - कैसे परिणमन करता है ?

समाधान - जैसे मिट्‌टी और कलश में तादात्म्यसबध है, वैसे जीव के साथ पुद्‌गल का तादात्म्यसबध नहीं है।

इस तरह पुद्‌गल द्रव्य भी जीव के साथ परिणमन नहीं करता है, उसको ग्रहण नहीं करता है और उसरूप उत्पन्न नहीं होता है, इस व्याख्यान की मुख्यता से गाथा हो गई।।८५।।

अव जीव के परिणाम में और पुद्‌गल के परिणाम में परस्पर निमित्तमात्रपना है, तथापि **निश्चयनय से दोनों का परस्पर में कर्ताकर्मभाव नहीं है,** ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(पुग्गला)** पुद्‌गल **(जीवपरिणामहेदु)** जीव के परिणाम को निमित्त मात्र करके **(कम्मत्त)** कर्मरूप में **(परिणमति)** परिणमित होते हैं **(तहेव)** उसी तरह **(जीवो वि)** जीव भी **(पुग्गलकम्मणिमित्त)** पुद्‌गलकर्म को निमित्त मात्र करके **(परिणमदि)** परिणमन करता है।

(जीवो) जीव **(कम्मगुणे)** कर्म के गुणों को **(ण वि कुव्वदि)** नहीं करता है **(तहेव)** उसी तरह **(कम्म)** कर्म **(जीवगुणे)** जीव के गुणों को नहीं करता है, **(दु)** परन्तु **(अण्णोण्णणिमित्तेण)** परस्पर को निमित्त मात्र करके **(दोण्हपि)** दोनों के **(परिणाम)** परिणाम होते हैं **(जाण)** ऐसा जानो।

(एदेण) इस **(कारणेण दु)** कारण से **(आदा)** आत्मा **(सएण)** अपने ही **(भावेण)** भाव से **(कत्ता)** कर्ता (कहा जाता) है **(दु)** लेकिन **(पुग्गलकम्मकदाण)** पुद्‌गलकर्म द्वारा किये गये **(सव्वभावाण)** सब भावों का **(कत्ता ण)** कर्ता नहीं है।

जीवपरिणामहेदु कम्मत्त पुग्गला परिणमति यथा कुभकारनिमित्तेन मृत्तिका घटरूपेण परिणमति तथा जीवसबधिमिथ्यात्वरागादिपरिणामहेतु लब्ध्वा कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्य कर्मत्वेन परिणमति। **पुग्गलकम्मणिमित्त तहेव जीवो** विं परिणमदि यथैव च घटनिमित्तेन एव घट करोमीति कुभकार परिणमति तथैवोदयागतपुद्गलकर्महेतु लब्ध्वा जीवोऽपि निर्विकारचिच्चमत्कारपरिणतिमलभमान सन् मिथ्यात्वरागादिविभावेन परिणमतीति। अथ **णवि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो** यद्यपि परस्परनिमित्तेन परिणमति तथापि निश्चयनयेन जीवो वर्णादिपुद्गलकर्मगुणान्न करोति। **कम्म तहेव जीवगुणे** कर्म च तथैवानतज्ञानादिजीवगुणान्न करोति। **अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणाम जाण दोण्हपि** यद्यप्युपादानरूपेण न करोति तथाप्यन्योन्यनिमित्तेन घटकुभकारयोरिव परिणाम जानीहि द्वयोरपि जीवपुद्गलयोरिति। अथ **एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण** एतेन कारणेन पूर्वसूत्रद्वयव्याख्यानरूपेण तु निर्मलात्मानुभूतिलक्षणपरिणामेन शुद्धोपादानकारणभूतेनाव्याबाधानतसुखादिशुद्धभावाना कर्ता। तद्विलक्षणेनाशुद्धोपादान-कारणभूतेन रागाद्यशुद्धभावाना कर्त्ता भवत्यात्मा। कथ ? यथा मृत्तिकाकलशस्येति **पुग्गलकम्मकदाण ण दु कत्ता सव्वभावाण** पुद्गलद्रव्यकर्मकृताना न तु कर्ता सर्वभावाना ज्ञानावरणादिपुद्गलकर्मपर्यायाणामिति। एव जीवपुद्गल परस्परनिमित्तकारणव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रय गतम्।।८६, ८७, ८८।।

टीकार्थ - **जीवपरिणामहेदु कम्मत्त पुग्गला परिणमति** जैसे कुभकार के परिणाम को निमित्त मात्र करके मिट्टी घडे के रूप में परिणमन करती है, उसी प्रकार जीवसबधी मिथ्यात्व रागादि परिणामों का निमित्त पाकर कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्य भी कर्मरूप से परिणमन करता है। **पुग्गल कम्मणिमित्त तहेव जीवो वि परिणमदि** और जैसे घटको निमित्त मात्र करके 'यह घट मैं करता हूॅ' ऐसी कुभकार परिणति करता है। उसी प्रकार ही निर्विकार चिच्चमत्कार परिणति जिसको प्राप्त नहीं है, ऐसा जीव भी उदयागत कर्मपुद्गल का निमित्त पाकर मिथ्यात्व रागादि विभाव रूप से परिणमन करता है।

णवि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो यद्यपि परस्पर को निमित्त मात्र करके परिणति होती है, तथापि शुद्धनिश्चयनय से जीव पुद्गलकर्म के वर्णादि गुणों को नहीं करता है **कम्म तहेव जीवगुणे** और उसी प्रकार पुद्गलकर्म जीव के अनतज्ञानादि गुणों को नहीं करता है। **अण्णोण्ण णिमित्तेण दु परिणाम जाण दोण्हपि** यद्यपि उपादान रूप से नहीं करता है तो भी परस्पर को निमित्त मात्र करके घट और कुभकार के परिणाम की तरह जीव और पुद्गल दोनों का परिणाम होता है, ऐसा जानो।

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण इस कारण से पूर्व में दो गाथाओं द्वारा जो वताया गया है उस रूप निर्मल आत्मानुभूति लक्षणवाले परिणाम से (याने) शुद्ध उपादान कारण से अव्यावाध, अनतसुखादि शुद्धभावों का यह आत्मा कर्ता है। उसके विपरीत अशुद्ध उपादान कारण से रागादि अशुद्धभावों का यह आत्मा कर्ता है।

शका - यह आत्मा किसका कर्ता है ?

समाधान - जैसे मिट्टी घट का कर्ता है उसी तरह निर्मलात्मानुभव करने वाला आत्मा शुद्ध भावों का कर्ता है। **पुग्गल कम्मकदाण ण दु कत्ता सव्वभावाण** किन्तु पुद्गलकर्म से किये हुए जो ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मपर्यायरूप सव भाव हैं उनका कर्ता आत्मा नहीं है।

अथ तत एतदायाति जीवस्य स्वपरिणामैरेव सह निश्चयनयेन कर्तृकर्मभावो भोक्तृभोग्यभावश्च भवति -

णिच्छयणयस्स एव आदा अप्पाणमेव हि करेदि। (८३)
वेदयदि पुणो त चेव जाण अत्ता दु अत्ताण।।८९।।

णिच्छयणयस्स एव आदा अप्पाणमेव हि करेदि यथा यद्यपि समीरो निमित्त भवति तथापि निश्चयनयेन पारावार एव कल्लोलान् करोति परिणमति च। एव यद्यपि द्रव्यकर्मोदयासद्भावसद्भावात् शुद्धाशुद्धभावयोर्निमित्त भवति तथापि निश्चयेन निर्विकारपरमस्वसवेदनज्ञानपरिणत केवलज्ञानादिशुद्धभावान् तथैवाशुद्धपरिणतस्तु सासारिक-सुखदु खाद्यशुद्धभावाश्चोपादानरूपेणात्मैव करोति। अत्र परिणामाना परिणमनमेव कर्तृत्व ज्ञानव्यमिति। न केवल करोति **वेदयदि पुणो त चेव जाण अत्ता दु अत्ताण** वेदयत्यनुभवति भुक्ते परिणमति पुनश्च स्वशुद्धात्मभावनोत्थसुखरूपेण शुद्धोपादानेन तदेव शुद्धात्मानमशुद्धोपादानेनाशुद्धात्मान च। स क कर्ता ? आत्मेति जानीहि। एव निश्चयकर्तृत्व-भोक्तृत्वव्याख्यानरूपेण गाथा गता।।८९।।

इस प्रकार जीव और पुद्गल के परस्पर निमित्त मात्र कारण के व्याख्यान की मुख्यता से तीन गाथायें पूर्ण हो गईं।।८६, ८७, ८८।।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि **निश्चयनय से जीव का स्वपरिणामों के साथ ही कर्तृकर्मभाव और भोक्तृभोग्यभाव** है-

गाथार्थ - **(एव)** इस प्रकार (पूर्वोक्त) **(णिच्छयणयस्स)** निश्चयनय से **(आदा)** आत्मा **(अप्पाणमेव हि)** अपने को ही **(करेदि)** करता है **(दु पुणो)** और फिर **(अत्ता)** वह आत्मा **(त चेव अत्ताण)** अपने को ही **(वेदयदि)** भोगता है **(जाण)** यह जानो।

टीकार्थ - **णिच्छयणयस्स एव आदा अप्पाणमेव हि करेदि** जैसे समुद्र में तरगों के उत्पन्न होते समय यद्यपि पवन निमित्त मात्र है तथापि निश्चयनय से समुद्र ही तरगों को उत्पन्न करता है और समुद्र ही तरग रूप परिणमन करता हे। इसी प्रकार यद्यपि द्रव्यकर्म के उदय का असद्भाव और द्रव्यकर्म के उदय का सद्भाव शुद्ध-अशुद्धभावों के होने में निमित्त है, तथापि शुद्धनिश्चयनय से निर्विकार परम स्वसवेदनज्ञान से परिणत आत्मा ही केवलज्ञानादि शुद्धभावों को करता है और उसी तरह अशुद्धनिश्चयनय से अशुद्ध उपादानरूप आत्मा ही अशुद्ध उपादान से सासारिक सुखदु खादि अशुद्धभावों को करता है। यहॉ परिणामों के परिणमन का ही कर्तृत्व जानना चाहिए। इस तरह केवल कर्ता ही नहीं है **वेदयदि पुणो त चेव जाण अत्ता दु अत्ताण** तो भोक्ता भी है। जैसे आत्मा स्वशुद्धात्मभावना से उत्पन्न सुखरूप शुद्धोपादान से शुद्धात्मा को (स्वभाव को) भोगता है उसी तरह आत्मा अशुद्धोपादान से अशुद्धात्मा को (पर्याय को) भोगता है। उसका कर्ता आत्मा है, ऐसा जानो। इस प्रकार निश्चयकर्तृत्वभोक्तृत्व के व्याख्यान करने वाली गाथा पूर्ण हुई।।८९।।

अथ लोकव्यवहार दर्शयति -

ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्म करेदि अणेयविह। (८४)
त चेव य वेदयदे[1] पुग्गलकम्म अणेयविह।।९०।।

ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्म करेदि अणेयविह यथा लोके यद्यपि मृत्पिड उपादानकारण तथापि कुभकारो घट करोति तत्फल च जलधारणमूल्यादिक भुक्त इति लोकानामनादिरूढोरित्त व्यवहार। तथा यद्यपि कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्यमुपादानकारणभूत तथापि व्यवहारनयस्याभिप्रायेणात्मा पुद्गलकर्मानेकविध मूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्न करोति। **त चेव य वेदयदे पुग्गलकम्म अणेयविह** तथैव च तदेवोदयागत पुद्गलकर्मानेकविध इष्टानिष्टपचेन्द्रियविषयरूपेण वेदयति अनुभवति इत्यज्ञानिना निर्विषयस्वशुद्धात्मोपलभसजातसुखामृतरसास्वादरहितानामनादिरूढोऽस्ति व्यवहार। एव व्यवहारेण सुखदु खकर्तृत्वभोक्तृत्वकथनमुख्यतया गाथा गता। इति ज्ञानिजीवस्य विशेषव्याख्यानरूपेणैकादशगाथा-भिर्द्वितीयातराधिकारो व्याख्यात।।९०।।

अब लोकव्यवहार को दिखाते हैं -

गाथार्थ - (दु) परतु (ववहारस्स) व्यवहारनय से (आदा) आत्मा (अणेयविह पुग्गलकम्म) अनेक विध पुद्गलकर्म को (करेदि) करता है (य) और (त च पुग्गलकम्म अणेयविह एव) उस अनेक-विधपुद्गलकर्मफल को और अनेकविध पुद्गलकर्म को (वेदयदे) भोगता है।

टीकार्थ - **ववहारस्स दु आदा पुग्गल कम्म करेदि अणेय विह** जैसे लोक में यद्यपि उपादान कारण से मिट्टी का पिंड घट को करता है और इस घटरूप फल को मिट्टी ही भोगती है, तथापि कुभकार घट करता है, और जल आदि धारण करना, मूल्य लेना आदि घट के फल को कुभकार भोगता है, इस तरह अनादिकाल से लौकिक लोगों का रूढ व्यवहार है।

उसी तरह यद्यपि कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्य उपादान कारणरूप से कर्ता होकर अनेकविध मूल और उत्तर प्रकृति के भेद से अनेक प्रकार के पुद्गल कर्म को करता है तथापि व्यवहारनय से आत्मा अनेक विध पुद्गलकर्म को करता है **त चेव य वेदयदे पुग्गलकम्म अणेयविह** और उसी प्रकार ही उसके उदयागत मूलोत्तर प्रकृति के भेदरूप अनेविध पुद्गलकर्म को उसके उदय में होने वाले पचेन्द्रियविषयरूप इष्टानिष्टविकल्प को आत्मा वेदता है, अनुभवता है। इस तरह अनादिकाल से निर्विकल्प स्वशुद्धात्मा की उपलब्धि से प्राप्त होने वाले सुखामृतरसास्वाद से रहित ऐसे अज्ञानी लोगों का रूढ व्यवहार है।

इस प्रकार व्यवहारनय की मुख्यता से सुखदु ख के कर्तृत्व-भोक्तृत्व का कथन करने वाली गाथा पूर्ण हो गई।

भावार्थ - व्यवहारनय से आत्मा द्रव्यकर्मों का और विकल्पों का और उनके फलों का कर्ता भोक्ता है ऐसा कहते हैं, लेकिन शुद्ध निश्चयनय से आत्मा अपने शुद्धभावों का ही कर्ता-भोक्ता है।

इस प्रकार ज्ञानी जीव का विशेष कथन करने वाली ११ गाथाओं द्वारा द्वितीय अतराधिकार का व्याख्यान हो गया।।९०।।

---

१ पाठान्तर - तं चेव पुणो वेयइ

अत पर पञ्चविशतिगाथापर्यंत द्विक्रियावादिनिराकरणरूपेण व्याख्यान करोति। तत्र चेतनाचेतनयोरेकोपादानकर्तृत्व द्विक्रियावादित्वमुच्यते तस्य सक्षेपव्याख्यानरूपेण **'जदिपुग्गलकम्ममिण'** इत्यादि गाथाद्वय भवति। तद्विवरणद्वादशगाथासु मध्ये **'पुग्गलकम्मणिमित'** इत्यादि गाथाक्रमेण प्रथमगाथाषट्क स्वतत्रम्। तदनतरमज्ञानिज्ञानिजीवकर्तृत्वाकर्तृत्व मुख्यतया **'परमप्पाण कुव्वदि'** इत्यादि द्वितीयषट्कम्। अत पर तस्यैव द्विक्रियावादिन पुनरपि विशेषव्याख्यानार्थमुपसहाररूपेणैकादशगाथा भवति। तत्रैकादशगाथासु मध्ये व्यवहारनयमुख्यत्वेन **'ववहारस्स दु'** इत्यादि गाथात्रयम्। तदनतर निश्चयनयमुख्यतया **'जो पुग्गलदव्वाण'** इत्यादिसूत्रचतुष्टयम्। ततश्च द्रव्यकर्मणामुपचारकर्तृत्वमुख्यत्वेन **'जीव हि हेदुभूदे'** इत्यादि सूत्रचतुष्टयमिति समुदायेन पचविशतिगाथाभिस्तृतीयस्थले समुदायपातनिका। तद्यथा -

अथेद पूर्वोक्त कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वनयविभागव्याख्यान कर्मतापन्नमनेकातेन सम्मतमप्येकातनयेन मन्यते। कि मन्यते ? भावकर्मवन्निश्चयेन द्रव्यकर्मापि करोतीति चेतनाचेतनकार्ययोरेकोपादानकर्तृत्वलक्षण द्विक्रियावादित्व स्यात्। तान् द्विक्रियावादिनो दूषयति -

जदि पुग्गलकम्ममिण कुव्वदि त चेव वेदयदि आदा। (८५)
दोकिरियावादित्तं पसजदि सम्म[१] जिणावमद।।९१।।

इसके बाद २५ गाथापर्यन्त द्विक्रियावादि के निराकरण के रूप से कथन करते हैं। वहॉ चेतन और अचेतन दोनों की क्रिया का एक उपादान कर्ता है, ऐसा माननेवाले को द्विक्रियावादी कहते हैं। उसका सक्षेप में कथन करने वाली **'जदि पुग्गलकम्ममिण'** इत्यादि दो गाथायें हैं। उसका विवरण करने वाली १२ गाथाओं में से **'पुग्गलकम्मणिमित्त'** इत्यादि गाथाक्रम से प्रथम ६ गाथायें स्वतत्र हैं। उसके बाद अज्ञानी-ज्ञानीजीव के कर्तृत्व-अकर्तृत्व की मुख्यता से **'परमप्पाण कुव्वदि'** इत्यादि दूसरी ६ गाथायें हैं। फिर उसके बाद उन ही द्विक्रियावादियों का विशेष व्याख्यान करने के लिये उपसहाररूप से १२ गाथायें हैं। वहॉ ११ गाथाओं में व्यवहारनय की मुख्यता से **'ववहारस्स दु'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। तदनतर निश्चयनय की मुख्यता से **जो पुग्गलदव्वाण** इत्यादि चार गाथायें हैं। उसके बाद द्रव्यकर्म के उपचार कर्तृत्व की मुख्यता से **'जीव हि हेदुभूदे'** इत्यादि चार गाथायें हैं। इस प्रकार कुल २५ गाथाओं के द्वारा तृतीय स्थल में यह समुदाय पातनिका है।

अब जो पहले कहा गया कर्मकर्तृत्व-भोक्तृत्व के नयविभाग का कथन है वह अनेकात की दृष्टि से सम्मत है, किन्तु कुछ लोग एकातनय से ऐसा मानते हैं कि निश्चयनय से आत्मा भावकर्म की तरह द्रव्यकर्म को भी करता है। ऐसा मानने से **चेतन का कार्य और अचेतन का कार्य इन दोनों कार्यों का कर्ता एक ही उपादान कारण है, वही कर्तृत्व का लक्षण है** - इस तरह द्विक्रियावादित्व आता है। उन द्विक्रियावादियों की मान्यता को दूषित बतलाते हैं -

गाथार्थ - **(जदि)** यदि **(आदा)** आत्मा **(इण)** इस **(पुग्गलकम्म)** पुद्गलकर्म को **(कुव्वदि)** करता है **(च)** ओर **(त एव)** उसको ही **(वेदयदि)** भोगता (अनुभवता) है तो **(दोकिरियावादित्त)** दोक्रियावादित्व का **(पसजदि)** प्रसग आता है, और **(सम्म जिणावमद)** उसका सम्यक्पना वास्तव में जिनमत को मान्य नहीं है।

---

[१] पाठान्तर - किरियावदिरित्तो पसज्जदे सो जिणावमद

जदि पुग्गलकम्ममिण कुव्वदि त चेव वेदयदि आदा यदि चेत्पुद्गलकर्मोदयमुपादानरूपेण करोति तदेव च पुनरुपादानरूपेण वेदयत्यनुभवत्यात्मा। **दोकिरियावादित्त पसजदि** तदा चेतनाचेतनक्रियाद्वयस्योपादानकर्तृत्वरूपेण द्विक्रियावादित्व प्रसजति प्राप्नोति। अथवा **दो किरियाविदिरित्तो पसज्जदे** सो तत्र पाठातरे द्वाभ्या चेतनाचेतनक्रियाभ्यामव्यतिरिक्तोऽभिन्न प्रसजति प्राप्नोति स पुरुष। **सम्म जिणावमद** तच्च व्याख्यान जिनाना सम्यगसमतम्। यश्चेद व्याख्यान मन्यते स निजशुद्धात्मोपादेयरुचिरूप निर्विकारचिच्चमत्कारमात्रलक्षण शुद्धोपादानकारणोत्पन्न निश्चयसम्यक्त्वमलभमानो मिथ्यादृष्टिर्भवतीति ।।९१।।

अथ कुतो द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टिर्भवतीति प्रश्ने प्रत्युत्तर प्रयच्छन्तमेवार्थम् प्रकारातरेण दृढयति-

जम्हा दु अत्तभावं पुग्गलभाव च दो वि कुव्वति। (८६)
तेण दु मिच्छादिट्ठी दो किरियावादिणो होंति।।९२।।

टीकार्थ - **जदि पुग्गल कम्ममिण कुव्वदि त च वेदयदि आदा** यदि आत्मा उपादानरूप से पुद्गलकर्मों के उदय को करता है और आत्मा उपादानरूप से उन पुद्गलकर्मों को ही भोगता है। **दो किरियावादित्त पसजदि** तो चेतन की क्रिया और अचेतन की क्रिया इस तरह इन दोनों की क्रिया का उपादानरूप से कर्तृत्व करने वाला है, ऐसा द्विक्रियावादित्व का (दोष) प्राप्त होता है (प्रसग आता है)। दूसरे पाठ की अपेक्षा से **दो किरिया विदिरित्तो पसज्जदे** चेतन की क्रिया, और अचेतन की क्रिया इन दोनों से आत्मा अव्यतिरिक्त अभिन्न-ठहरता है (एक हो जाता है)। **सम्म जिणावमद** और वह कथन सम्यक् है ऐसा - वास्तव में जिनभगवान को मान्य नहीं है। और जो यह द्विक्रियावादित्व (एक उपादन द्रव्य से दो क्रियायें) मानता है वह स्वभाव शुद्धात्मा की उपादेयरुचिरूप, निर्विकार चिच्चमत्कारमात्र लक्षणरूप शुद्धउपादान कारण से उत्पन्न होने वाले निश्चयसम्यक्त्व को प्राप्त नहीं होता हुआ मिथ्यादृष्टि होता है।।९१।।

अब द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टि क्यों होता है, ऐसा प्रश्न पूछनेवाले को द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टि ही होता है, यही बात दूसरे प्रकार से दृढ करते हैं -

गाथार्थ - (जम्हा दु) जिस कारण से, आत्मा के द्वारा (अत्तभाव) आत्मा का भाव (च) और (पुग्गलभाव) पुद्गल का भाव (दो वि) ये दोनों भी कार्य (कुव्वति) किये जाते हैं (तेण दु) लेकिन उस मान्यता से (दोकिरियावादिणो) वे दो क्रियाओं का एक द्रव्य को कर्ता कहने वाले (मिच्छादिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (होंति) होते हैं।

टीकार्थ - **जम्हा दु अत्तभाव पुग्गलभाव च दो वि कुव्वति** जिस कारण से चैतन्यमय आत्मकार्य और अचेतनमय जडस्वरूप पुद्गलकार्य, इन दोनों कार्यों को एक उपादान से करता है, ऐसा (जो) मानते हैं। **तेण दु मिच्छादिट्ठी दो किरियावादिणो होंति** इसलिये एकद्रव्य से चेतन और अचेतन ऐसी दो क्रिया माननेवाले लोग मिथ्यादृष्टि हैं।

जम्हा दु अत्तभाव पुग्गलभाव च दो वि कुव्वति यस्मादात्मभाव चिद्रूप पुद्गलभाव चाचेतन जडस्वरूप द्वयमप्युपादानरूपेण कुर्वन्ति। **तेण दु मिच्छादिट्ठी दोकिरियावादिणो होंति** ततस्तेन कारणेन चेतनाचेतन-क्रियाद्वयवादिन पुरुषा मिथ्यादृष्टयो भवतीति। तथाहि-यथा कुभकार स्वकीयपरिणाममुपादानरूपेण करोति तथा घटमपि यद्युपादानरूपेण करोति तदा कुभकारस्याचेतनत्व घटरूपत्व प्राप्नोति। घटस्य वा चेतनत्व कुभकाररूपत्व च प्राप्नोतीति। तथा जीवोऽपि यद्युपादानरूपेण पुद्गलद्रव्यकर्मम् करोति तदा जीवस्याचेतनपुद्गलद्रव्यत्व प्राप्नोति। पुद्गलकर्मणो वा चिद्रूप जीवत्व प्राप्नोति।

किच-शुभाशुभ कर्म कुर्वेऽहमिति महाहकाररूप तमो मिथ्याज्ञानिना न नश्यति। तर्हि केषा नश्यतीति चेत्? विषयसुखानुभवानदवर्जिते वीतरागस्वसवेदनवेद्ये भूतार्थनयेनैकत्वव्यवस्थापिते चिदानन्दैकस्वभावे शुद्धपरमात्मद्रव्ये स्थितानामेव समस्त शुभाशुभपरभावशून्येन निर्विकल्पसमाधिलक्षणेन शुद्धोपयोगभावनावलेन सज्ञानिनामेव विलय विनाश गच्छति। तस्मिन्महाहकारविकल्पजाले नष्टे सति पुनरपि वधो न भवतीति ज्ञात्वा बहिर्द्रव्यविषये इद करोमीद न करोमीति दुराग्रह त्यक्त्वा रागादिविकल्पजालशून्ये पूर्णकलशवच्चिदानदैकस्वभावेन भरितावस्थे स्वकीय-परमात्मनि निरतर भावना कर्तव्येति भावार्थ । इति द्विक्रियावादिसक्षेपव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वय गतम् ।।९२।।

जैसे - कुभकार उपादानरूप से स्वकीयपरिणाम करता है वैसे कुभकार खुद उपादान रूप से घट को भी करता है। यदि ऐसा मान लिया जाय तो कुम्हार को रूपत्व, अचेतनत्व और घटरूपत्व प्राप्त होता है अथवा घट को चेतनत्व और कुभकारत्व प्राप्त होता है। उसी प्रकार जीव भी यदि उपादानरूप से पुद्गल द्रव्यकर्म को करता है तब जीव को अचेतनत्व, पुद्गलद्रव्यत्व प्राप्त होता है। अथवा पुदगलकर्म को चेतनत्व, जीवत्व प्राप्त होता है। कुछ और कहते हैं - शुभ और अशुभ कर्म को मैं करता हूँ, ऐसा मिथ्याज्ञानियों का महाअहकाररूप अज्ञान अधकार नष्ट नहीं होता है।

शका - **तो किन लोगों का अज्ञान अधकार नष्ट होता है ?**

समाधान - **अध्यात्मभाषा से**	**आगमभाषा से**
(१) वीतराग स्वसवेदन के अनुभवरूप भूतार्थनय से एकत्व स्थापनरूप चिदानद एक स्वभावरूप शुद्ध परमात्म द्रव्य में स्थित होनेवालों के ही निर्विकल्प समाधिलक्षणरूप शुद्धोपयोग की भावभासना के वल से सज्ञानियों का ही अज्ञानअधकार नष्ट होता है।	(१) विषयसुखानुभवानद से रहित अवस्था में स्थित सम्यग्ज्ञानियों का सव शुभाशुभपरभाव से रहित होने से अज्ञान अधकार नष्ट होता है।
(२) वहाँ विकल्पजाल नष्ट होने से फिर वध नहीं होता है ऐसा जानकर पूर्ण कलश की भरितावस्था के समान चिदानद एक स्वभाव से स्वकीय परमात्मा में (स्वस्वभाव सिद्ध में) निरतर स्वानुभव करना चाहिए।	(२) वहाँ महाहकार नष्ट होने से फिर वध नहीं होता है ऐसा जानकर वहिर्द्रव्यविषय में "यह मैं करता हूँ, यह मैं नहीं करता हूँ," यह दुराग्रह छोडकर रागादिविकल्पजाल से रहित आत्मा की निरतर भावना करनी चाहिये।

अथ तस्यैव विशेषव्याख्यान करोति -

पुग्गलकम्मणिमित्त जह आदा कुणदि अप्पणो भाव।
पुग्गलकम्मणिमित्त तह वेददि अप्पणो भाव।।९३।।

पुग्गलकम्मणिमित्त जह आदा कुणदि अप्पणो भाव उदयागत द्रव्यकर्मनिमित्त कृत्वा यथात्मा निर्विकारस्वसवित्तिपरिणामशून्य सन् करोत्यात्मन सवधिन सुखदु खादिभाव परिणामम्। **पुग्गलकम्मणिमित्त तह वेददि अप्पणो भाव** तथैवोदयागतद्रव्यकर्मनिमित्त लब्ध्वा स्वशुद्धात्मभावनोत्थवास्तवसुखास्वादमवेदयन्सन् तमेव कर्मोदयजनितस्वकीयरागादिभाव वेदयत्यनुभवति। न च द्रव्यकर्मरूपपरभावमित्यभिप्राय ।।९३।।

अथ चिद्रूपानात्मभावानात्मा करोति तथैवाचिद्रूपान् द्रव्यकर्मादिपरभावान् पर पुद्गल करोतीत्याख्याति-

मिच्छत्त पुण दुविह जीवमजीव तहेव अण्णाण। (८७)
अविरदि जोगो मोहो कोहादीया इमे भावा।।९४।।

मिच्छत्त पुण दुविह जीवमजीव मिथ्यात्व पुनर्द्विविध जीवस्वभावमजीवस्वभाव च। **तहेव अण्णाण अविरदि जोगो मोहो कोहादीया इमे भावा** तथैव चाज्ञानमविरतिर्योगो मोह क्रोधादयोऽमी भावा पर्याया जीवरूपा अजीवरूपाश्च भवति मयूरमुकुरदवत्। तद्यथा -

---

ऐसा भावार्थ है। इस प्रकार द्विक्रियावादियों का कथन करने वाली दो गाथायें पूर्ण हो गई।।९२।।

अव उसका ही विशेष व्याख्यान करते हैं -

गाथार्थ - **(जह)** जिस प्रकार **(पुग्गलकम्मणिमित्त)** पुद्गलकर्म के निमित्त के सानिध्य में **(आदा)** आत्मा **(अप्पणो भाव)** अपने भाव को **(कुणदि)** करता है **(तह)** उसी प्रकार **(पुग्गलकम्मणिमित्त)** पुद्गलकर्म के निमित्त के सानिध्य में **(आदा)** आत्मा **(अप्पणो भाव)** अपने भाव को **(वेददि)** भोगता (अनुभवता) है।

टीकार्थ - **पुग्गलकम्मणिमित्त जह आदा कुणदि अप्पणोभाव** उदयागत द्रव्यकर्म को निमित्तमात्र करके जैसे निर्विकार स्वानुभूति से रहित होता हुआ आत्मा अपने सवधी सुखदु खादि भावस्वरूप परिणाम करता है। **पुग्गलकम्मणिमित्त तह वेददि अप्पणो भाव** उसी प्रकार उदयागत द्रव्यकर्म का निमित्त पाकर स्वशुद्धात्मानुभव से उत्पन्न वास्तविक सुखस्वाद की अनुभूति से रहित होने वाला आत्मा उस ही कर्मोदयजनित स्वकीयरागादिभाव को अनुभवता है, द्रव्यकर्मरूप परकीय भाव को नहीं करता है और नहीं अनुभवता है ऐसा अभिप्राय है।।९३।।

अव **आत्मा चिद्रूप आत्मभावों को करता है,** उस प्रकार ही **परपुद्गलद्रव्य अचैतन्यमय द्रव्यकर्मादि परभावों को करता है,** ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(पुण)** और पीछे की ता वृ ९२ गाथा में जो **(मिच्छत्त)** मिथ्यात्व कहा गया था वह **(दुविह)** दो प्रकार का है - **(जीव अजीव)** (१) जीव मिथ्यात्व, (२) अजीव मिथ्यात्व **(तहेव)** और उसी प्रकार **(अण्णाण)** अज्ञान **(अविरदि)** अविरति **(जोगो)** योग **(मोहो)** मोह **(कोहादीया)** क्रोधादि कषाय **(इमे भावा)** ये सभी भाव जीव और अजीव के भेद से दो-दो प्रकार के हैं।

यथा मयूरेण भाव्यमाना अनुभूयमाना नीलपीताद्याकारविशेषा मयूरशरीराकारपरिणता मयूर एव चेतना एव, तथा निर्मलात्मानुभूतिच्युतजीवेन भाव्यमाना अनुभूयमाना सुखदुःखादिविकल्पा जीव एवाशुद्धनिश्चयेन चेतना एव। यथा च मुकुरदेन स्वच्छतारूपेण भाव्यमाना प्रकाशमानमुखप्रतिविवादिविकारा मुकुरद एव अचेतना एव तथा कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्येणोपादानभूतेन क्रियमाणा ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपर्याया पुद्गल एव अचेतना एवेति।।९४।।

अथ कतिविधौ जीवाजीवाविति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह -

पुग्गलकम्म मिच्छ जोगो अविरदि अणाणमज्जीव। (८८)
उवओगो अण्णाण अविरदि मिच्छत्त जीवो दु।।९५।।

पुग्गलकम्म मिच्छ जोगो अविरदि अणाणमज्जीव पुद्गलकर्मरूप मिथ्यात्व योगोऽविरतिरज्ञानमित्यजीव। **उवओगो अण्णाण अविरदि मिच्छत्त जीवो दु** उपयोगरूपो भावरूप शुद्धात्मादितत्त्वभावविषये विपरीतपरिच्छित्तिविकार-परिणामो जीवस्याज्ञान निर्विकारस्वसवित्तिविपरीताव्रतपरिणामविकारोऽविरति।

टीकार्थ - मिच्छत्त पुण दविह जीवमजीव तहेव अण्णाण अविरदि जोगो मोहो कोहादीया इमे भावा मयूर और दर्पण की तरह मिथ्यात्व भी जीवस्वभाव और अजीव स्वभाव वाला दो प्रकार का है, तथा ये अज्ञान, अविरति, योग, मोह और क्रोधादिकषायभाव जीवस्वभाव और अजीवस्वभाव ऐसे दो-दो प्रकार के हैं।

जैसे दर्पण के सामने मयूर है। मयूर के द्वारा पैदा किये हुए, अनुभव में आने वाले नील पीतादि आकारविशेष जो कि मयूर के शरीर के आकार रूप परिणत हो रहे हैं वे मयूर ही हैं, चेतनमय ही हैं, वैसे ही निर्मल आत्मानुभूति से च्युत हुए जीव के द्वारा उत्पन्न किये हुए अनुभव में आने वाले सुखदुःखादि विकल्परूप जो भाव हैं, वे अशुद्धनिश्चयनय से जीवरूप ही हैं, चेतनमय ही हैं। और जैसे स्वच्छतारूप दर्पण के द्वारा उत्पन्न किये हुए (दर्पण में) प्रकाशमान मुख आदि का प्रतिबिबादि विकारभाव दर्पणमयी हैं दर्पण ही हैं, अतएव अचेतन ही हैं उसी प्रकार उपादानभूत कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्य के द्वारा किये हुए ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मरूप पर्यायें तो पुद्गलमय ही हैं अतएव अचेतन ही हैं।।९४।।

अव **कितने प्रकार के जीव और अजीव हैं** ? ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(मिच्छ)** जो मिथ्यात्व **(जोगो)** योग **(अविरदि)** अविरति **(अण्णाण)** अज्ञान **(अज्जीव)** ये अजीव हैं वे तो **(पुग्गलकम्म)** पुद्गल कर्म हैं **(दु)** और **(अण्णाण)** जो अज्ञान **(अविरदि)** अविरति **(मिच्छत्त)** मिथ्यात्व **(जीवो)** ये जीव हैं वे तो **(उवओगो)** उपयोग हैं।

टीकार्थ - पुग्गलकम्म मिच्छ जोगो अविरदि अणाणमज्जीव पुद्गलकर्मरूप मिथ्यात्व, योग, अविरति ओर अज्ञान ये अजीव हैं। **उवओगो अण्णाण अविरदि मिच्छत जीवो दु** उपयोगरूप भाव जो शुद्धात्मादि तत्त्व के विषय में विपरीत जानकारीरूप विकारमय परिणाम है वह जीव का अज्ञान है, जो निर्विकार स्वानुभूति से विपरीत अव्रत विकारी परिणाम है वह जीव अविरति है। शुद्ध जीवादि पदार्थ के विषय में विपरीत अभिनिवेशरूप जो उपयोग की विकारमय विपरीत श्रद्धा है वह जीव मिथ्यात्व है, ये भाव जीव हैं।

विपरीताभिनिवेशोपयोगविकाररूप शुद्धजीवादिपदार्थविषये विपरीतश्रद्धान मिथ्यात्वमिति जीव । जीव इति कोऽर्थ ? जीवरूपा भावप्रत्यया इति।।९५।।

अथ शुद्धचैतन्यस्वभावजीवस्य कथ मिथ्यादर्शनादिविकारो जात इति चेत् -

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स। (८९)
मिच्छत्त अण्णाण अविरदि भावो य णादव्वो।।९६।।

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि उपयोगलक्षणत्वादुपयोग आत्मा तस्य सवधित्वेऽनादिसतानापेक्षया त्रय परिणामा ज्ञातव्या । कथभूतस्य तस्य ? **मोहजुत्तस्स** मोहयुक्तस्य। के ते परिणामा ? **मिच्छत्त अण्णाण अविरदि भावो य णादव्वो** मिथ्यात्वमज्ञानमविरतिभावश्चेति ज्ञातव्य इति। तथाहि-यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धवुद्धैकस्वभावो जीवस्तथाप्यनादिमोहनीयादिकर्मवधवशान्मिथ्यात्वाज्ञानाविरतिरूपास्त्रय परिणामविकारा सभवन्ति। तत्र शुद्धजीवस्वरूपमुपादेय मिथ्यात्वादिविकारपरिणामा हेया इति भावार्थ ।।९६।।

अथात्मनो मिथ्यात्वादित्रिविधपरिणामविकारस्य कर्तृत्वमुपदिशति -

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरजणो भावो। (९०)
ज सो करेदि भाव उवओगो तस्स सो कत्ता।।९७।।

शका - जीव यानि क्या ?

समाधान - ये जीवरूप भावप्रत्यय हैं।।९५।।

अव, **शुद्धचैतन्य स्वभाव वाले जीव को मिथ्यादर्शनादि विकार कैसे उत्पन्न हुए** ? यह वतलाते हैं -

गाथार्थ - **(उवओगस्स)** उपयोग के **(अणाई)** अनादि से **(मोहजुत्तस्स)** मोहयुक्त होने से **(मिच्छत्त)** मिथ्यात्व **(अण्णाण)** अज्ञान **(य)** और **(अविरदिभावो)** अविरतिभाव **(तिण्णि परिणामा)** ये तीन परिणाम हैं, ऐसा **(णादव्वो)** जानना चाहिये।

टीकार्थ - **उवओगस्य अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्य** उपयोग लक्षण होने से उपयोगरूप आत्मा है। उस मोहयुक्त आत्मा के अनादिकाल की सतान अपेक्षारूप सवधिपना होने से तीन परिणाम जानने चाहिये। **मिच्छत्त अण्णाण अविरदभावो य णादव्वो** वे परिणाम मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति हैं, ऐसा जानना चाहिये। यद्यपि शुद्धनिश्चयनय से शुद्धवुद्ध एक स्वभाव वाला जीव है, तथापि अनादि से मोहनीयादि कर्मबध के वश होने से मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति ये तीन विभाव परिणाम होते हैं। तो भी यहाँ शुद्धजीव स्वभाव ही उपादेय है और मिथ्यात्वादि विभाव परिणाम हेय हैं, ऐसा भावार्थ है।।९६।।

अव आत्मा को मिथ्यात्वादि त्रिविध विभावपरिणाम का कर्तृत्व है, यह कहते हैं -

गाथार्थ - **(एदेसु)** मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति इन तीनों में **(तिविहो)** जो त्रिविध **(उवओगो)** उपयोग है **(सो)** वह **(शुद्धनय से)** **(सुद्धो)** शुद्ध **(णिरजणो)** निरजन **(भावो)** एक भाव है **(य)** और **(अशुद्धनय से)** **(उवओगो)** उपयोग **(ज भाव)** जिस भाव को **(करेदि)** करता है **(सो)** वह उपयोग **(तस्स)** उस भाव का **(कत्ता)** कर्ता है।

एदेसु य एतेषु च मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रेषूदयागतेषु निमित्तभूतेषु सत्सु **उवओगो** ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणत्वा-दुपयोग आत्मा **तिविहो** कृष्णनीलपीतत्रिविधोपाधिपरिणतस्फटिकवत्त्रिविधो भवति। परमार्थेन तु **सुद्धो** शुद्धो रागादिभावकर्मरहित । **णिरजणो** निरजनो ज्ञानवरणादिद्रव्यकर्माञ्जनरहित । पुनश्च कथभूत ? **भावो** भाव पदार्थ अखडैकप्रतिभासमयज्ञानस्वभावेनैकविधोऽपि पूर्वोक्तमिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रपरिणामविकारेण त्रिविधो भूत्वा। **ज सो करेदि भाव** य परिणाम करोति स आत्मा **उवओगो** चैतन्यानुविधायिपरिणाम उपयोगो भण्यते तल्लक्षणत्वादुपयोगरूप । **तस्स सो कत्ता** निर्विकारस्वसवेदनज्ञानपरिणामच्युत सन् तस्यैव मिथ्यात्वादि त्रिविधविकारपरिणामस्य कर्त्ता भवति। न च द्रव्यकर्मण इति भाव ।।९७।।

अथात्मनो मिथ्यात्वादित्रिविधपरिणामविकारकर्तृत्वे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्य स्वतएवोपादानरूपेण कर्मत्वेन परिणमतीति कथयति -

ज कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स। (९१)
कम्मत्त परिणमदे तम्हि सय पुग्गल दव्व।।९८।।

टीकार्थ - एदेसु य उवओगो तिविहो जैसे कृष्ण, नील व पीत वर्णवाले पुष्प के सानिध्य में रखा हुआ एक स्फटिक मणि कृष्ण नील पीत-त्रिविध उपाधि से परिणत होता है, उसी तरह मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्र के उदयागत निमित्त के सानिध्य में ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षण होने से उपयोगमय आत्मा त्रिविध होता है। लेकिन परमार्थ से (अभेदवृत्ति से) उपयोग शुद्ध याने रागादिभावकर्म रहित हे, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्ममलरहित निरजन है और वह अखड एक प्रतिभासमयज्ञानस्वभाव से एकविधभाव-पदार्थ है तो भी पूर्वोक्त मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रमय विभाव परिणाम से त्रिविध होकर **ज सो करेदि भाव** आत्मा जो भाव (परिणाम) करता है, **उवओगो** चैतन्यानुविधायि परिणाम को उपयोग कहते हैं तो उस लक्षण वाला होने से उस आत्मा को उपयोगरूप कहते हैं, और **तस्स सो कत्ता** यदि वह निर्विकार स्वसवेदन ज्ञान परिणाम से (शुद्धात्मनुभव से) च्युत होकर मिथ्यात्वादि परिणाम करता है तो उस ही मिथ्यात्वादि त्रिविध विभाव परिणाम का कर्ता होता है, और द्रव्यकर्म का कर्ता नहीं होता है, यह भावार्थ है।

भावार्थ - उपयोग जब शुद्धात्मानुभव करता है तब शुद्धभाव का कर्ता है और जब उपयोग अशुद्धात्मानुभव करता है तब अशुद्धभाव का कर्ता है, द्रव्यकर्म का कर्ता नहीं है।।९७।।

जिस समय आत्मा को मिथ्यात्वादि त्रिविध परिणाम का कर्तापना होता है उसी समय कर्मवर्गणायोग्य **पुद्गलद्रव्य स्वय** ही **उपादानरूप से द्रव्यकर्मरूप परिणमता** है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(आदा)** आत्मा **(ज भाव)** जिस भाव को **(कुणदि)** करता है **(तस्स भावस्स)** उस भाव का **(सो)** वह **(कत्ता)** कता **(होदि)** होता है **(तम्हि)** उसी समय में **(पुग्गल दव्व)** पुद्गलद्रव्य **(सय)** स्वय **(कम्मत्त)** कर्मत्वरूप **(परिणमदे)** परिणमन करता है।

ज कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स य भाव मिथ्यात्वादिविकारपरिणाम शुद्धस्वभावच्युत सन् आत्मा करोति तस्य भावस्य स कर्त्ता भवति। **कम्मत्त परिणमदे तम्हि सय पुग्गल दव्व** तस्मिन्नेव त्रिविधविकारपरिणामकर्तृत्वे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्य स्वयमेवोपादानरूपेण द्रव्यकर्मत्वेन परिणमति। किवत् ? गारुडादिमन्त्रपरिणतपुरुषपरिणामे सति देशातरे स्वयमेव तत्पुरुषव्यापारमतरेणापि विषापहारवध-विध्वसस्त्रीविडब-नादिपरिणामवत्, तथैव च मिथ्यात्वरागादिविभावविनाशकाले निश्चयरत्नत्रयरूपशुद्धोपयोगपरिणामे सति गारुडमत्रस्य सामर्थ्येन निर्बीजविषवत् स्वयमेव नीरसीभूय पूर्ववद्ध द्रव्यकर्म जीवात्पृथग्भूत्वा निर्जरा गच्छतीति भावार्थ । एव स्वतत्रव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाषट्क गतम् ।।९८।।

अथ निश्चयेन वीतरागस्वसवेदनज्ञानस्याभाव एवाज्ञान भण्यते। तस्मादज्ञानादेव कर्म प्रभवतीति तात्पर्यमाह-

परमप्पाण कुव्वदि[1] अप्पाण पि य पर करतो सो। (९२)
अण्णाणमओ जीवो कम्माण कारगो होदि।।९९।।

टीकार्थ - ज कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स जिस समय यह आत्मा शुद्धस्वभाव से च्युत होकर जिस मिथ्यात्वादि विभाव परिणाम को करता है वह आत्मा उस भाव का कर्ता होता है। **कम्मत्त परिणमदे तम्हि सय पुग्गल दव्व** उस त्रिविध विभाव परिणाम का कर्तृत्व होने पर उसी समय में कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्य स्वय ही उपादानरूप द्रव्यकर्मपना से परिणमन करता है।

जैसे कोई पुरुष (गारूड आदि मत्र सिद्ध करने के लिए उसके योग्य क्रिया करता है और गारूड आदि मत्र की सिद्धी होने पर वह मात्रिक) मत्र आदि क्रिया करता हे, उसी समय देशातर में वह स्वय ही कुछ भी क्रिया नहीं करता तो भी अपने आप दूसरे के शरीर में विपापहार, वध, विध्वस, स्त्रीविडवन आदि होता है। और जैसे गारूडमत्र के सामर्थ्य से विष अपने आप नष्ट होता है। उसी तरह मिथ्यात्व रागादि विभावों के विनाश काल में निश्चयरत्नत्रयरूप (शुद्धात्मानुभव) शुद्धोपयोग परिणाम करते समय स्वयमेव नीरसीभूत हुए पूर्ववद्ध द्रव्यकर्म जीव से पृथक् होकर निर्जरा को प्राप्त होते हैं, ऐसा भावार्थ है।

भावार्थ - जिस समय जीव स्वय अशुद्धात्मानुभव करता है उसी समय पुद्गलकर्म स्वयमेव द्रव्यकर्मरूप परिणमन कर वधते हैं। और जिस समय जीव स्वय शुद्धात्मानुभव करता है उसी समय पूर्ववद्ध द्रव्यकर्म स्वयमेव नीरसीभूत होकर निर्जरा को प्राप्त होते हैं। पुद्गलकर्म के कर्मरूप परिणमन में जीव कर्ता नहीं है, उसी तरह पुद्गलद्रव्यकर्म के सवरनिर्जरा में भी जीव कर्ता नहीं है।।९८।।

इस प्रकार स्वतत्र व्याख्यान की मुख्यता से ६ गाथायें पूर्ण हुई।

अव **निश्चय से वीतराग स्वसवेदनज्ञान (स्वानुभव) का अभाव ही अज्ञान है,** इसलिये अज्ञान से ही कर्म होते हैं, यह कहते हैं -

---

[1] पाठान्तर - परमप्पाणं कुव्व

पर परद्रव्य भावकर्मद्रव्यकर्मरूप **अप्पाण कुव्वदि** परद्रव्यात्मनोर्भेदज्ञानाभावादात्मान करोति **अप्पाण पि य करतो** शुद्धात्मान च पर करोति य **सो अण्णाणमओ जीवो कम्माण कारगो होदि** स चाज्ञानमयो जीव कर्मणा कर्त्ता भवति। तद्यथा-यथा कोऽपि पुरुष शीतोष्णरूपाया पुद्गलपरिणामावस्थायास्तथाविधशीतोष्णानुभवस्य चैकत्वाभ्यासाद्भेदमजानन् शीतोऽहमुष्णोऽहमिति प्रकारेण शीतोष्णपरिणते कर्त्ता भवति। तथा जीवोऽपि निजशुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नाया उदयागतपुद्गलपरिणामावस्थायास्तन्निमित्तसुखदु खानुभवस्य चैकत्वाध्यवसायारोपात् परद्रव्यात्मनो समस्तरागादिविकल्परहित स्वसवेदनज्ञानाभावाद्भेदमजानन्नह सुखीदु खीति प्रकारेण परिणमत्कर्मणा कर्ता भवतीति भावार्थ ।।९९।।

अथ वीतरागस्वसवेदनज्ञानात्सकाशात्कर्म न प्रभवतीत्याह -

परमप्पाणमकुव्वी[१] अप्पाण पि य पर अकुव्वतो। (९३)
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारगो होदि।।१००।।

गाथार्थ - **(अण्णाणमओ जीवो)** अज्ञानमय जीव **(पर)** पर को **(अप्पाण)** आत्ममय **(कुव्वदि)** करता है **(य)** और **(अप्पाण पि)** अपने को भी **(पर)** पर रूप **(करतो)** करता है, ऐसा मानता हुआ **(सो)** वह **(कम्माण)** कर्म का **(कारगो)** कर्ता **(होदि)** होता है।

टीकार्थ - **पर अप्पाण कुव्वदि** जो परद्रव्य (द्रव्यकर्म, भावकर्म) और आत्मा के भेदज्ञान के अभाव से परद्रव्यरूप भावकर्म को और द्रव्यकर्म को आत्ममय मानता (करता) है और **अप्पाण पिय पर करतो** शुद्धात्म स्वभाव को परस्वरूप करता है (मानता है) **सो अण्णाणमओ जीवो कम्माण कारगो होदि** वह अज्ञानमय जीव कर्मो का कर्ता होता है।

जैसे कोई पुरुष शीतोष्णरूप जो पुद्गलपरिणाम की शीतोष्ण अवस्था का और उस शीतोष्ण का अनुभव-इनके एकत्व के अभ्यास से, आत्मा और पुद्गल का भेद न जानते हुए, 'मैं ही शीत हूँ, मैं ही उष्ण हूँ' इस तरह मानकर शीतोष्ण परिणति का कर्त्ता होता है। उसी प्रकार जीव भी निजशुद्धात्मानुभव से भिन्न उदयागत पुद्गल परिणाम की अवस्था को और उसके निमित्त में होने वाले सुखद ख के अनुभव को एकत्व अध्यवसाय के आरोप से परद्रव्य और आत्मा में समस्त रागादि विकल्प रहित स्वसवेदनज्ञान के अभाव से भेद को न जानने वाला 'मैं सुखी, मैं दु खी' इस प्रकार के परिणाम से कर्मो का कर्त्ता होता है, यह भावार्थ।।९९।।

अव **वीतरागस्वसवेदनज्ञान से (निजशुद्धात्मानुभूति से) कर्म उत्पन्न नहीं होता है,** यह बतलाते हैं -

गाथार्थ - **(णाणमओ जीवो)** ज्ञानमय जीव **(पर)** पर को **(अप्पाण)** आत्ममय **(अकुव्वी)** नहीं करता हे (नहीं मानता है) **(य)** और **(अप्पाण पि)** अपने को भी **(पर)** पररूप **(अकुव्वतो)** नहीं करता, मानता हुआ **(सो)** वह **(कम्माण)** कर्मो का **(अकारगो)** अकर्ता **(होदि)** होता है।

---

१ पाठान्तर - परमप्पाणं कुव्व

पर पर परद्रव्य वहिर्विषये देहादिकमभ्यतरे रागादिक भावकर्मरूप द्रव्यकर्मरूप वा **अप्पाणमकुव्वी** भेदविज्ञानबलेनात्मानमकुर्वन्नात्मसवधमकुर्वन्। **अप्पाण पि य पर अकुव्वतो** शुद्धद्रव्यगुणपर्यायस्वभाव निजात्मान च परमकुर्वन् **सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारगो होदि** स निर्मलात्मानुभूतिलक्षणभेदज्ञानी जीव कर्मणामकर्ता भवतीति। तथाहि- यथा कश्चित् पुरुष शीतोष्णरूपाया पुद्गलपरिणामावस्थायास्तथाविधशीतोष्णानुभवस्य चात्मन सकाशाद्भेदज्ञानात् शीतोऽहमुष्णोहऽमिति परिणते कर्ता न भवति। तथा जीवोऽपि निजशुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नाया पुद्गलपरिणामावस्थायास्तन्निमित्तसुखदु खानुभवस्य च स्वशुद्धात्मभावनोत्थसुखानुभवभिन्नस्य भेदज्ञानाभ्यासात्प-रात्मनोर्भेदज्ञाने सति रागद्वेषमोहपरिणाममकुर्वाण कर्मणा कर्ता न भवति। तत स्थित ज्ञानात्कर्म न प्रभवतीत्यभिप्राय ।।१००।।

अथ कथमज्ञानात्कर्म प्रभवतीति पृष्टे गाथाद्वयेन प्रत्युत्तरमाह -

तिविहो एसुवओगो अस्सवियप्प[1] करेदि कोहोऽह। (९४)
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स।।१०१।।

टीकार्थ - पर जो वाह्य में देहादिक नोकर्म-द्रव्यकर्मरूप परद्रव्य और अभ्यतर में रागादिक भावकर्मरूप परद्रव्य को **अप्पाणमकुव्वी** भेदविज्ञान के बल से आत्ममय सवध न करने वाला (न मानने वाला) और (अभेदवृत्तिनय से-निश्चयनय से) **अप्पाण पिय पर अकुव्वतो** शुद्ध द्रव्यगुणपर्याय स्वभाव वाले निजात्मा को परस्वरूप न करके **सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारगो होदि** वह निर्मलानुभूति लक्षणवाला भेदज्ञानी जीव कर्मो को नहीं करता है, (कर्मो का अकर्ता है)।

जैसे कोई पुरुप शीत-उष्ण रूप से पुद्गल परिणाम की शीतोष्ण अवस्था का और उसी प्रकार शीतोष्ण के अनुभव का आत्मा से भेदज्ञान होने के कारण 'मैं शीत हूँ, मैं उष्ण हूँ' इस परिणति का कर्ता नहीं होता हे। उसी प्रकार जीव भी निजशुद्धात्मानुभूति से भिन्न जो पुद्गल परिणाम की अवस्था तथा उस अवस्था के निमित्त में होने वाले सुखदु ख के अनुभव की और स्वशुद्धात्मानुभूति से उत्पन्न होने वाले अतींद्रियसुख के अनुभव की भिन्नता का ज्ञान होने पर उस भेदज्ञान के अभ्यास से पर और आत्मा का भेदज्ञान होते समय रागद्वेषमोह के परिणाम न करनेवाला होता है। इसलिये जीव भी कर्मो का कर्ता नहीं होता है।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, ज्ञान (स्वसवेदनज्ञान अथवा निजशुद्धात्मानुभूति) से कर्म उत्पन्न नहीं होता है, यह अभिप्राय है।।१००।।

अव **अज्ञान से कर्म क्यों होता है** ? ऐसा पूछने पर दो गाथाओं द्वारा उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - (**एस**) यह (**तिविहो**) तीन प्रकार का (**उवओगो**) उपयोग (**अस्सवियप्प**) असत् विकल्प (**करेदि**) करता है कि (**कोहोऽह**) मैं क्रोध स्वरूप हूँ अत (**तस्स**) उस (**उवओगस्स**) उपयोग रूप (**अत्तभावस्स**) अपने भाव का (**सो**) वह (**कत्ता**) कर्ता (**होदि**) होता है।

---

[1] पाठान्तर - अप्पवियप्प (आत्म विकल्प)

तिविहो एसुवओगो त्रिविधस्त्रिप्रकार एष प्रत्यक्षीभूत उपयोगलक्षणत्वादुपयोग आत्मा। **अस्सवियप्प करेदि** स्वस्वभावस्याभावादसद्विकल्प मिथ्याविकल्प करोति। केन रूपेण ? **कोहोह** क्रोधोऽहमित्यादि **कत्तातस्सुवओगस्स होदि सो** स जीव तस्य क्रोधाद्युपयोगस्य विकल्पस्य कर्ता भवति। कथभूतस्य ? **अत्तभावस्स** आत्मभावस्याशुद्धनिश्चयेन जीवपरिणामस्येति। तथाहि-सामान्येनाज्ञानरूपेणैकविधोऽपि विशेषेण मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्ररूपेण त्रिविधो भूत्वा एष उपयोग आत्मा क्रोधाद्यात्मनोर्भाव्यभावकभावापन्नयो ।

भाव्यभावकभावापन्नयो कोर्थ ? भाव्य क्रोधादिपरिणत आत्मा, भावको रजकश्चान्तरात्मभावनाविलक्षणो भावक्रोध । इत्थभूतयोर्द्वयोर्भेदज्ञानाभावाद्भेदमजानन्निर्विकल्पस्वरूपाद् भ्रष्ट सन् क्रोधोऽहमित्यात्मनो विकल्पमुत्पादयति, तस्येव क्रोधाद्युपयोगपरिणामस्याशुद्धनिश्चयेन कर्ता भवतीति भावार्थ । एवमेव च क्रोधपद परिवर्तनेन मानमायालोभ-मोहरागद्वेषकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि। अनेन प्रकारेणाविक्षिप्त-चित्तस्वभावशुद्धात्मतत्त्वविलक्षणा असख्येयलोकमात्रप्रमिता विभाव परिणामा ज्ञातव्या इति।।१०१।।

टीकार्थ - तिविहो एसुवओगो यह प्रत्यक्षीभूत त्रिविध (मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्र) उपयोग लक्षण वाला उपयोगमय आत्मा स्वस्थभाव का (निजशुद्धात्म स्वभाव का) अभाव करने से **अस्स वियप्प करेदि** असत् (मिथ्या) विकल्प करता है।

शका - किस रूप से मिथ्या विकल्प करता है ?

समाधान - **कोहोऽह** मैं क्रोध हूँ, इत्यादि असत् विकल्प करता है। **कत्ता तस्सुवओगस्स होदि** वह जीव उस क्रोधादिमय उपयोग का-विकल्प का कर्ता होता है। **अत्त भावस्स** अशुद्ध निश्चयनय से आत्मभाव का याने क्रोधादिमय विकल्प का जीव के परिणाम का कर्त्ता है। सामान्य से अज्ञानमय एकविध भाव होता हुआ भी विशेष से मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्र रूप से त्रिविध होकर यह उपयोगमय आत्मा **क्रोधादि और आत्मा** इनके भाव्यभावकभाव को प्राप्त होता है।

शका - **भाव्य और भावक को प्राप्त होना याने क्या ?**

समाधान - भाव्य याने क्रोधादिमयपरिणत आत्मा, भावक याने रजक ओर अतरात्मभावना से विपरीत होना याने भावक्रोध, ऐसा अर्थ है।

इस तरह भाव्य और भावक इन दोनों का भेदज्ञान न होने से (भेद न जानने से) निर्विकल्प स्वरूप (स्वानुभूति) से भ्रष्ट होकर 'मैं क्रोध हूँ' ऐसा आत्मा के बारे में विकल्प प्रगट करता है और अशुद्धनिश्चयनय से उसी क्रोधादि उपयोग परिणाम का कर्ता होता है, यह भावार्थ है। और इस प्रकार ही मान, माया, लोभ, मोह, राग, द्वेष, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्शन पदों को क्रोध के वदले रखकर व्याख्यान समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार से अविक्षिप्तचित्त स्वभावमय शुद्धात्म तत्त्व से विलक्षण जो असख्यात लोकमात्रप्रमित विभाव परिणामों को क्रोधपद परिवर्तन करके जानना चाहिये।।१०१।।

अथ -

तिविहो एसुवओगो अस्सवियप्प[1] करेदि धम्मादी। (९५)
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स।।१०२।।

तिविहो एसुवओगो सामान्येनाज्ञानरूपेणैकविधोऽपि विशेषेण मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्ररूपेण त्रिविध सन्नेष उपयोग आत्मा। **अस्सवियप्प करेदि धम्मादि** पदद्रव्यात्मनोर्ज्ञेयज्ञायकभावापन्नयोरविशेषदर्शनेनाविशेषज्ञानेनाविशेषपरिणत्या च भेदज्ञानाभावाद्भेदमजानन् धर्मास्तिकायोऽहमित्याद्यात्मनोऽसद्विकल्पमुत्पादयति। **कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स** निर्मलात्मानुभूतिरहितस्यैव मिथ्याविकल्परूपजीवपरिणामस्याशुद्धनिश्चयेन कर्ता भवति।

ननु धर्मास्तिकायोऽहमित्यादि कोऽपि न ब्रूते तत्कथ घटत इति ? अत्र परिहार । धर्मास्तिकायोऽयमिति योऽसौ परिच्छित्तिरूपविकल्पो मनसि वर्तते सोऽप्युपचारेण धर्मास्तिकायो भण्यते। यथा घटाकारविकल्पपरिणतिज्ञान घट इति। तथा तद्धर्मास्तिकायोऽयमित्यादिविकल्प यदा ज्ञेयतत्वविचारकाले करोति जीव तदा शुद्धात्मस्वरूप विस्मरति। तस्मिन्विकल्पे कृते सति धर्मोऽहमिति विकल्प उपचारेण घटत इति भावार्थ । तत स्थित शुद्धात्मसवित्तेरभावरूपमज्ञान कर्मकर्तृत्वस्य कारण भवति।।१०२।।

गाथार्थ - (**एस**) यह (**तिविहो**) तीन प्रकार का (**उवओगो**) उपयोग (**धम्मादी**) मैं धर्मादि द्रव्यस्वरूप हूँ, ऐसा (**अस्सवियप्प**) असत् विकल्प (**करेदि**) करता है याने उनको अपना स्वरूप समझता है (**सो**) वह (**तस्स**) उस (**उवओगस्स**) उपयोग रूप (**अत्तभावस्स**) अपने भाव का (**कत्ता**) कर्ता (**होदि**) होता है।

टीकार्थ - **तिविहो एसुओगो** सामान्य से अज्ञानमय एकविध होता हुआ भी विशेष से मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्ररूप से त्रिविध होने वाला उपयोगमय आत्मा, **अस्स वियप्प क़रेदि धम्मादी** परद्रव्य और आत्मा के ज्ञेय ज्ञायक भाव को प्राप्त होने पर अभेददर्शन से, अभेदज्ञान से, अभेदपरिणति से और भेदज्ञान के अभाव से भेद को नहीं जानने वाला होकर 'मैं धर्मास्तिकाय हूँ' इत्यादि आत्मा के वारे में असत् विकल्प करता है। **कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स** ओर अशुद्धनिश्चयनय से निर्मलात्मानुभूतिरहित मिथ्याविकल्परूप जीव परिणाम का कर्ता होता है।

शका - 'मैं धर्मास्तिकाय हूँ' इस तरह तो कोई भी नहीं कहता है, यह कैसे घटित हो सकता है ?

समाधान - 'यह धर्मास्तिकाय है' ऐसा ज्ञानरूप जो विकल्प मन में होता है, उसको ही उपचार से यहाँ धर्मास्तिकाय कहते हैं। जैसे घटाकार विकल्परूप परिणतज्ञान को 'घट' ऐसा कहते हैं, वैसे जव ज्ञेयतत्त्व के विचारकाल में यह 'धर्मास्तिकाय है' इत्यादि विकल्प जीव करता है तव शुद्धात्मस्वभाव का स्मरण नहीं करता है, उसी विकल्प के समय 'मैं धर्मास्तिकाय हूँ' ऐसा विकल्प उपचार से घटित हो जाता है, यह भावार्थ है।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, **स्वशुद्धात्मानुभूति के अभावरूप अज्ञान ही कर्म के कर्तृत्व का कारण है।।१०२।।**

---

[1] पाठान्तर - अप्पवियप्प

एव पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि मंदबुद्धीओ। (९६)
अप्पाणं अवि य पर करेदि अण्णाणभावेण।।१०३।।

एव एव पूर्वोक्तगाथाद्वयकथितप्रकारेण। **पराणि दव्वाणि अप्पय कुणदि** क्रोधोऽहमित्यादि-वद्धर्मास्तिकायोऽहमित्यादिवच्च क्रोधादिस्वकीयपरिणामरूपाणि तथैव धर्मास्तिकायादिज्ञेयरूपाणि च परद्रव्याणि आत्मान करोति। स क कर्ता ? **मदबुद्धीओ** मदबुद्धिर्निर्विकल्पसमाधिलक्षणभेदविज्ञान रहित । **अप्पाण अवि य पर करेदि** शुद्धबुद्धैकस्वभावमात्मानमपि च पर स्वस्वरूपाद्भिन्न करोति रागादिषु योजयतीत्यर्थ । केन ? **अण्णाणभावेण** अज्ञानभावेनेति। तत स्थित क्रोधादिविषये भूताविष्टदृष्टातेन धर्मादिज्ञेयविपये ध्यानाविष्टदृष्टातेनेव शुद्धात्मसवित्यभावरूपमज्ञान कर्मकर्तृत्वस्य कारण भवति। तद्यथा -

यथा कोऽपि पुरुषो भूतादिग्रहाविष्टो भूतात्मनोर्भेदमजानन् सन्नमानुषोचितशिलास्तभचालनादिकमद्भुत- व्यापार कुर्वन्सन् तस्य व्यापारस्य कर्ता भवति। तथा जीवोऽपिवीतरागपरमसामायिकपरिणतशुद्धोपयोग-लक्षणभेदज्ञानाभावात्कामक्रोधादिशुद्धात्मनोर्द्वयोर्भेदमजानन् क्रोधोऽह कामोऽहमित्यादिविकल्प कुर्वन्सन् कर्मण कर्ता भवति। एव क्रोधादिविषये भूताविष्टदृष्टातो गत ।

गाथार्थ :- (एव) इस प्रकार (**मदबुद्धीओ**) अज्ञानी मदबुद्धि वाला जीव (**अण्णाणभावेण**) अज्ञान भाव से (**पराणि दव्वाणि**) पर द्रव्यों को (**अप्पय**) आत्ममय (**करेदि**) करता है (**य**) और (**अप्पाण अवि**) अपने को भी (**पर**) परमय (**कुणदि**) करता है।

टीकार्थ :- जैसे पूर्व में दो गाथाओं द्वारा कहा गया है उस प्रकार से **पराणि दव्वाणि अप्पय कुणदि** 'मै क्रोध हूँ इत्यादि' के समान अथवा 'मैं धर्मास्तिकाय हूँ इत्यादि' के समान क्रोधादि अपने परिणाममय अथवा धर्मास्तिकायादि ज्ञेयरूप परद्रव्यों को आत्ममय करता (मानता) है। **मदबुद्धीओ** और निर्विकल्पसमाधिलक्षणवाले भेदज्ञान से रहित वह मदबुद्धि जीव **अप्पाणं अवि य पर करेदि** अपना स्वभाव शुद्धबुद्ध एक होता हुआ भी अपने को स्वस्वरूप से भिन्न पररूप मानता है और रागादि में अपना चेतनोपयोग योजता है - लगाता है

शका- कैसे ?

समाधान - **अण्णाणभावेण** अज्ञानभाव से (स्वानुभूति से रहित होने से) पर को अपना स्वरूप मानता है और अपने को पर स्वरूप मानता है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि, भूताविष्ट पुरुष के दृष्टात से क्रोधादिविषय में और ध्यानाविष्ट पुरुष के दृष्टात से ही धर्मादि ज्ञेयविषय में जिस तरह कोई वर्तता (चेष्टा करता) है, उसी तरह **शुद्धात्मानुभव का अभावरूप अज्ञान कर्मकर्तृत्व का कारण है**। जिस प्रकार - जैसे किसी पुरुष के भूत आदि ग्रह लग गया हो तो वह पुरुष भूत में और अपने में भेद को नहीं जानता हुआ मनुष्य से न कर सकने योग्य ऐसे बडी भारी शिलास्तभ उठाना आदि आश्चर्यजनक व्यापार को करता हुआ उस व्यापार का कर्ता होता है।

तथैव च यथा कश्चिन्महामहिषादिध्यानाविष्टो महिषाद्यात्मनोर्द्वयोर्भेदमजानन्महामहिषोऽहं गरुडोऽहं कामदेवोऽहमग्निरहं दुग्धधारासमानामृतराशिरहमित्याद्यात्मविकल्पं कुर्वाणः सन् तस्य विकल्पस्य कर्ता भवति। तथा च जीवोऽपि सुखदुःखादिसमताभावनापरिणतशुद्धोपयोगलक्षणभेदज्ञानाभावाद्धर्मादिज्ञेयपदार्थानां शुद्धात्मनश्च भेदमजानन् धर्मास्तिकायोऽहमित्याद्यात्मविकल्पं करोति, तस्यैव विकल्पस्य कर्ता भवति। तस्मिन् विकल्पकर्तृत्वे सति द्रव्यकर्मबंधो भवतीति। एवं धर्मास्तिकायादिज्ञेयपदार्थविषये ध्यानाविष्टदृष्टांतो गतः।

हे भगवन्! धर्मास्तिकायोऽयं जीवोऽयमित्यादिज्ञेयतत्त्वविचारविकल्पे क्रियमाणे यदि कर्मबंधो भवतीति तर्हि ज्ञेयतत्त्वविचारो वृथेति न कर्तव्यः ? नैवं वक्तव्यं। त्रिगुप्तिपरिणतनिर्विकल्पसमाधिकाले यद्यपि न कर्तव्यस्तथापि तस्य त्रिगुप्तिध्यानस्याभावे शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा आगमभाषया तु मोक्षमुपादेयं कृत्वा सरागसम्यक्त्वकाले विषयकषायवंचनार्थं कर्तव्यः। तेन तत्त्वविचारेण मुख्यवृत्त्या पुण्यबंधो भवति परंपरया निर्वाणं च भवतीति नास्ति दोषः। किंतु तत्र तत्त्वविचारकाले वीतरागस्वसंवेदनज्ञानपरिणतः शुद्धात्मा साक्षादुपादेयः कर्तव्य इति ज्ञातव्यम्।

ननु वीतरागस्वसंवेदनज्ञानविचारकाले वीतरागविशेषणं किमिति क्रियते प्रचुरेण भवद्भिः, किं सरागमपि स्वसंवेदनज्ञानमस्तीति ? अत्रोत्तरं विषयसुखानुभवानंदरूपं स्वसंवेदनज्ञानं सर्वजनप्रसिद्धं सरागमप्यस्ति। शुद्धात्मसुखानुभूतिरूपं स्वसंवेदनज्ञानं वीतरागमिति। इदं व्याख्यानं स्वसंवेदनज्ञानव्याख्यानकाले सर्वत्र ज्ञातव्यमिति भावार्थः ।।१०३।।

उसी तरह जीव भी वीतराग परमसामायिक परिणत शुद्धोपयोग वाले भेदज्ञान के अभाव से कामक्रोधादि ओर स्वशुद्धात्म स्वभाव इन दोनों के भेद (भेदज्ञान) को न जानने वाला होकर 'मैं क्रोध हूँ, मैं काम हूँ' इत्यादि विकल्प करने वाला होकर कर्मों का कर्ता होता है। इस प्रकार क्रोधादिविषय के बारे में भूताविष्ट पुरुष का दृष्टांत हो गया।

उसी तरह जैसे कोई पुरुष महान भैंसा आदि का ध्यान करने वाला भैंसा और अपने में भेद को नहीं जानता हुआ, मैं महान भैसा हूँ, मैं गरुड हूँ, मैं कामदेव हूँ, मैं अग्नि हूँ, अथवा मैं दुग्ध की धारा के समान अमृत की राशि हूँ, इत्यादि आत्मविकल्पों को करने वाला होकर वह जीव उस विकल्प का कर्ता होता है। वैसे ही जीव भी सुखदुःखादि में समताभावना परिणत शुद्धोपयोगलक्षण वाले भेदज्ञान के अभाव में धर्मादि ज्ञेय पदार्थ और स्वशुद्धात्म स्वभाव में भेद को न जानकर "मैं धर्मास्तिकाय हूँ" इत्यादि आत्मविकल्प करता है और उस ही विकल्प का कर्ता होता है। विकल्प का कर्ता होने पर उसी समय में द्रव्य कर्म का बंध होता है। इस प्रकार धर्मास्तिकाय आदि ज्ञेयपदार्थ के विषय में ध्यानआविष्ट पुरुष का दृष्टांत हुआ।

शंका - हे भगवन्। "यह धर्मास्तिकाय है, यह जीव है" इत्यादि विकल्प ज्ञेयतत्त्व विचारकाल में करने पर यदि कर्मबंध होता है। तो ज्ञेयतत्त्वों का विचार करना वृथा है, इसलिये ज्ञेयतत्त्व (द्रव्य, गुण व पर्याय) का विचार नहीं करना चाहिये ?

समाधान - ऐसा नहीं कहना चाहिये ज्ञेयतत्त्वों का (द्रव्य, गुण और पर्यायों का) विचार करना व्यर्थ नहीं है। ज्ञेयतत्त्वों का विकल्प अवस्था में विचार करने से अशुभोपयोग से बचाव होता है।

तत स्थितमेतत् शुद्धात्मानुभूतिलक्षणसम्यग्ज्ञानान्नश्यति कर्मकर्तृत्व -

एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहि परिकहिदो। (९७)
एव खलु जो जाणदि सो मुचदि सव्वकत्तित।।१०४।।

आगमभाषा से

(१) यद्यपि **त्रिगुप्तिपरिणत काल में** ज्ञेयतत्त्वों का (द्रव्य, गुण और पर्याय का) विकल्प नहीं करना चाहिये।

(२) तथापि उस त्रिगुप्ति के अभाव में मोक्ष को उपादेय करके **सरागसम्यक्त्व** (सविकल्प) अवस्था के समय में विपय कषायों से दूर रहने के लिये ज्ञेयतत्त्वों का विचार (विकल्प) करना कर्तव्य हे।

अध्यात्मभाषा से

(१) यद्यपि **निर्विकल्पसमाधिकाल मे** (शुद्ध स्वानुभूति में) ज्ञेयतत्त्व (द्रव्य, गुण व पर्याय) का विकल्प नहीं करना चाहिए।

(२) तथापि उस ध्यान के (शुद्ध स्वानुभूति के) अभाव में शुद्धात्मा (निजस्वभाव) को उपादेय **करके सरागसम्यक्त्व** (सविकल्प) की अवस्था के समय में विपय कषायों से दूर रहने के लिये ज्ञेयतत्त्वों को जानना चाहिये।

उस तत्त्वविचार से मुख्यत पुण्यबध होता है और उस ज्ञेयतत्त्व के विचार से परपरा से मोक्ष भी होता है, ओर इस प्रकार ज्ञेयतत्त्व का विचार करने में दोष नहीं है, लेकिन वह साक्षात् निर्वाण का उपाय भी नहीं हे। यह ध्यान में रखना चाहिये कि, **तत्त्वविचारकाल** में वीतराग स्वसवेदनज्ञानपरिणत (निजशुद्धात्मानुभवपरिणत) शुद्धात्मा (निजशुद्धात्मस्वभाव) ही साक्षात् उपादेय करना चाहिये।

शका - आप वीतराग स्वसवेदनज्ञान का विचार करते समय **वीतराग** ऐसे विशेषण का प्रचुरता से (वहुलता से) प्रयोग क्यों करते हो ? **तो क्या सराग (रागसहित) भी स्वसवेदनज्ञान होता है ?**

समाधान - सर्वजन को प्रसिद्ध ऐसा विषयसुखानुभवानदरूप स्वसवेदनज्ञान सरागस्वसवेदनज्ञान ही है। (याने मिथ्यात्व सासादन मिश्र गुणस्थानवर्ती स्वसवेदनज्ञान रागसहित अनतानुवधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वोदय-जनितरागसहित हैं) ओर शुद्धात्मसुखानुभूतिरूप स्वसवेदनज्ञान वीतराग स्वसवेदनज्ञान है (याने सम्यक्त्वी का चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती का स्वसवेदनज्ञान वीतरागस्वसवेदनज्ञान हे क्योंकि अनतानुवधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वजनित रागरहित है) इस तरह का व्याख्यान (टीका में) स्वसवेदनज्ञान के व्याख्यान के समय सर्वत्र जानना चाहिए, यह भावार्थ हे।।१०३।।

इस कथन से यह सिद्ध हुआ कि, **शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाले सम्यग्ज्ञान से कर्मकर्तृत्व का नाश होता है-**

गाथार्थ - **(एदेण दु)** इस पूर्वकथित कारण से **(णिच्छयविदूहि)** निश्चय के जानने वाले (निजशुद्धात्मानुभूति वाले) ज्ञानियों ने **(सो आदा)** वह अज्ञानी आत्मा **(कत्ता)** कर्ता **(परिकहिदो)** कहा हे **(एव खलु)** इस प्रकार **(जो)** जो **(जाणदि)** जानता है **(सो)** वह ज्ञानी **(सव्वकत्तित)** सव कर्तृत्व को **(मुचदि)** छोड देता है।

एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहि परिकहिदो एतेन पूर्वोक्तगाथात्रयव्याख्यानरूपेणाज्ञानभावेन स आत्मा कर्त्ता भणित । कैर्निश्चयविद्भिर्निश्चयज्ञै सर्वज्ञै । तथाहि-वीतरागपरमसामायिकसयमपरिणताभेदरत्नत्रयस्य प्रतिपक्षभूतेन पूर्वगाथात्रयव्याख्यानप्रकारेणाज्ञानभावेन यदात्मा परिणमति, तदा तस्यैव मिथ्यात्वरागादिरूपस्या-ज्ञानभावस्य कर्ता भवति ततश्च द्रव्यकर्मबन्धो भवति। यदा तु चिदानन्दैकस्वभावशुद्धात्मानुभूतिपरिणामेन परिणमति तदा सम्यग्ज्ञानी भूत्वा मिथ्यात्वरागादिभावकर्मरूपस्याज्ञानभावस्य कर्ता न भवति। तत्कर्तृत्वाभावे हि द्रव्यकर्म बधोऽपि न भवति। **एव खलु जो जाणदि सो मुचदि सव्वकत्तित** एव गाथापूर्वार्द्धव्याख्यानप्रकारेण मनसि योऽसौ वस्तुस्वरूप जानाति स सरागसम्यग्दृष्टि सन्नशुभकर्मकर्तृत्व मुचति। निश्चयचारित्राविनाभाविवीतरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा शुभाशुभसर्वकर्मकर्तृत्व च मुचति। एवमज्ञानात्कर्मप्रभवति, सज्ञानान्नश्यतीति स्थित। इत्यज्ञानिसज्ञानिजीव-प्रतिपादनमुख्यत्वेन द्वितीयस्थले गाथाषट्क गतम्। एव द्विक्रियावादिनिराकरणविशेषव्याख्यानरूपेण द्वादशगाथा गत ।।१०४।।

टीकार्थ - **एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहि परिकहिदो** पूर्वोक्त तीन गाथाओं में अज्ञानभाव से वह आत्मा कर्ता है - ऐसा सर्वज्ञ भगवानों ने निश्चय को जानने वालों ने, आत्मानुभूतिवालों ने कहा है। उसी प्रकार - वीतराग परमसामायिक सयम परिणत अभेदरत्नत्रय के (निजशुद्धात्मानुभव के) प्रतिपक्षभूत पूर्व तीन गाथाओं के द्वारा कथित अज्ञानभाव से जव आत्मा परिणमता है तव उस ही मिथ्यात्व रागादिरूप अज्ञानभाव का कर्ता है, और इसलिये द्रव्यकर्म का वध होता है। लेकिन जव चिदानद एकस्वभाव शुद्धात्मानुभूतिरूप परिणाम से परिणमन करता है तव सम्यग्ज्ञानी होकर मिथ्यात्व रागादि भावकर्मरूप अज्ञानभाव का कर्ता नहीं होता है। और उस कर्तृत्व के अभाव में निश्चय से द्रव्यकर्मवध भी नहीं होता है।

एव खलु जो जाणदि सो मुचदि सव्वकत्तित्त इस प्रकार से गाथा के पूर्वार्द्ध के विवेचन से मन में (याने जो जीव प्रायोग्यलब्धि तक अर्थात् आगम, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान ज्ञान तक आया है, वह) जिनदेशना को (वस्तुस्वरूप को) परोक्षरूप से जानता है, ऐसा जीव कभी-कभी प्रथमानुयोग की अपेक्षा से उपचार से सरागसम्यक्त्वी कहा जाता है, लेकिन स्वानुभूति न होने से (दर्शनमोह का उपशमादि न होने से अर्थात् प्रथमगुणस्थानवर्ती होने से) अशुभकर्म कर्तृत्व को छोडता है। जव वही जीव निश्चयचारित्र के अविनाभावी वीतरागसम्यक्त्वी (स्वानुभूतिवाला याने जिसके दर्शनमोह का उपशमादि हुआ है ऐसा जीव) होता है, तव शुभाशुभ सर्व कर्म के कर्तृत्व को छोडता है।

इस प्रकार अज्ञान से ही कर्म होते हैं, सम्यग्ज्ञान से कर्म नष्ट होते हैं, यह सिद्ध हुआ।

इस प्रकार से अज्ञानी और सम्यग्ज्ञानी जीव के प्रतिपादन की मुख्यता से द्वितीयस्थल में छह गाथायें पूर्ण हुई। इस प्रकार द्विक्रियावादी के निराकरण का विशेष व्याख्यान करने वाली १२ गाथायें पूर्ण हुई।।१०४।।

अथ पुनरप्युपसहाररूपेणैकादशगाथापर्यत द्विक्रियावादिनिराकरणविषये विशेषव्याख्यान करोति। तद्यथा - परभावानात्मा करोतीति यद् व्यवहारिणो वदन्ति स व्यामोह इत्युपदिशति-

ववहारेण दु आदा करेदि घडपडरधाणि दव्वाणि। (९८)
करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि।।१०५।।

ववहारेण दु आदा करेदि घडपडरधाणि दव्वाणि यतो यथा अन्योन्यव्यवहारेणैव तु पुन घटपट-रथादिवहिर्द्रव्याणीहापूर्वेण करोत्यात्मा। **करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि** तथाभ्यतरेऽपि करणार्णीद्रियाणि कर्माणि च नोकर्माणि इह जगति विविधानि क्रोधादिद्रव्यकर्माणीहापूर्वेण विशेषेण करोतीति मन्यन्ते, ततोऽस्ति व्यामोहो मूढत्व व्यवहारिणा।।१०५।।

अथ स व्यामोह सत्यो न भवतीति कथयति -

जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज। (९९)
जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसि हवदि कत्ता।।१०६।।

अव फिर से, उपसहार रूप से ११ गाथाओं पर्यन्त द्विक्रियावादी का निराकरण करने के विषय में विशेष कथन करते हैं। यहाँ **'परभावों को आत्मा करता है'** ऐसा जो व्यवहारी लोग कहते हैं, वह उनका व्यामोह है ऐसा उपदेश करते हैं -

गाथार्थ - **(दु)** परतु (पूर्व गाथाओं से सवध दिखाने के लिये) **(ववहारेण)** व्यवहार से अर्थात् व्यवहारी जन मानते हैं कि **(इह)** जगत में **(आदा)** आत्मा **(घडपडरधाणि दव्वाणि)** घट पट रथ इत्यादि वस्तुओं को **(य)** और **(करणाणि)** इद्रियादिक करणपदार्थो को **(करेदि)** जिस प्रकार करता है **(य)** उसी प्रकार **(विविहाणि)** विविध प्रकार के **(कम्माणि य णोकम्माणि)** कर्म और नोकर्मो को करता है।

टीकार्थ - **ववहारेण दु आदा करेदि घडपडरधाणि दव्वाणि** जैसे अन्योन्य व्यवहार से घट पट रथ इत्यादि परद्रव्यों को वाह्य में इच्छापूर्वक यह आत्मा करता है **करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि** उसी प्रकार यह आत्मा अभ्यतर में भी इद्रियों, कर्म और नोकर्मो को याने इस जगत में विविध प्रकार के क्रोधादि भावकर्म ओर द्रव्यकर्मो को इच्छापूर्वक विशेषता से करता है, ऐसा जो मानते हैं वह उन व्यवहारी लोगों का यह व्यामोह-मूढपना है।।१०५।।

वह मूढता सत्य (योग्य) नहीं है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(जदि)** यदि **(सो)** वह आत्मा **(परदव्वाणि)** परद्रव्यों को **(करेज्ज)** करे **(य)** तो **(णियमेण)** नियम से वह आत्मा उन परद्रव्यों से **(तम्मओ)** तादात्म्य **(होज्ज)** होगा **(जम्हा)** लेकिन **(तम्मओ)** तादात्म्य **(ण)** नहीं होता है **(तेण)** इस तरह तादात्म्य न होने से **(सो)** वह आत्मा **(तेसि)** उनका **(कत्ता)** कर्ता **(ण हवदि)** नहीं है।

जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज यदि स आत्मा परद्रव्याणि नियमेनैकातरूपेण करोति तदा तन्मय स्यात्। **जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसि हवदि कत्ता** यस्मात्सहजशुद्धस्वाभाविकानत-सुखादिस्वरूप त्यक्त्वा परद्रव्येण सह तन्मयो न भवति। तत स आत्मा तेषा परद्रव्याणामुपादानरूपेण कर्त्ता न भवतीत्यभिप्राय ।।१०६।।

अथ न केवलमुपादानरूपेण कर्ता न भवति किंतु निमित्तरूपेणापीत्युपदिशति-

जीवो ण करेदि घड णेव पडं णेव सेसगे दव्वे। (१००)
जोगुवओगा उप्पादगा य सो तेसि हवदि कत्ता[१] ।।१०७।।

जीवो ण करेदि घड णेव पड णेव सेसगे दव्वे न केवलमुपादानरूपेण निमित्तरूपेणापि जीवो न करोति घट न पट नैव शेषद्रव्याणि। कुत इति चेत् ? नित्य सर्वकाल कर्मकर्तृत्वानुषगात्। कस्तर्हि करोति ? **जोगुवओगा उप्पादगा य** आत्मनो विकल्पव्यापाररूपौ विनश्वरौ योगोपयोगावेव तत्रोत्पादकौ भवत । **सो तेसि हवदि कत्ता** सुखदु खजीवितमरणादिसमताभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणभेदविज्ञानाभावाद्यदा काले शुद्धबुद्धैकस्वभा-वात्परमात्मस्वरूपाद्भ्रष्टो भवति तदा स जीवस्तयोर्योगोपयोगयो कदाचित् कर्ता भवति न सर्वदा। अत्र योगशब्देन बहिरगहस्तादिव्यापार उपयोगशब्देन चातरगविकल्पो गृह्यते। इति परपरया निमित्तरूपेण घटादिविषये जीवस्य कर्तृत्व स्यात्। यदि पुन मुख्यवृत्त्या निमित्तकर्तृत्व भवति तर्हि जीवस्य नित्यत्वात् सर्वदैव कर्मकर्तृत्वप्रसगात् मोक्षाभाव । इति व्यवहारव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रय गतम्।।१०७।।

टीकार्थ - जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज यदि निश्चय से वह आत्मा परद्रव्यों को करता है, तो वह आत्मा उनसे तन्मय हो जायेगा, **जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसि हवदि कत्ता** लेकिन अपने सहजशुद्ध स्वाभाविक अनतसुखादि स्वभाव को छोडकर परद्रव्य के साथ तन्मय (तादात्म्य) नहीं होता है। इसलिये वह आत्मा उन परद्रव्यों का उपादान रूप से कर्ता नहीं है, यह अभिप्राय है।।१०६।।

अब न **केवल, उपादान रूप से कर्ता नहीं है किन्तु निमित्त रूप से भी कर्ता नहीं है,** ऐसा उपदेश करते हैं-

गाथार्थ - (जीवो) जीव (घड) घट को (ण करेदि) नहीं करता (य) और (पट) पट को (एव) भी (ण) नहीं करता (सेसगे दव्वे) शेष द्रव्यों को (णेव) भी नहीं करता। (जोगुवओगा) जीव के योग और उपयोग दोनों (उप्पादगा) घटादिक के उत्पन्न करने के (उपचार से) निमित्त हैं (तेसि) उन दोनों योग और उपयोगों का (सो) वह जीव आत्मा (कत्ता) कर्ता (हवदि) है।

टीकार्थ - जीवो ण करेदि घड णेव पड णेव सेसगे दव्वे न केवल, उपादानरूप से जीव घटादि का कर्ता नहीं है, किन्तु निमित्तरूप से भी जीव घट, पटादि का और शेष द्रव्यों का भी कर्ता नहीं है।

शका - कैसे ?

समाधान - सर्वकाल में जीव को परद्रव्यों का उपादानरूप से और निमित्तरूप से भी कर्तृत्व का प्रसग (अपत्ति) आयेगा।

---

[१] पाठान्तर - य तेसि हवदि कत्ता

अथ वीतरागस्वसवेदनज्ञानी ज्ञानस्यैव कर्ता न च परभावस्येति कथयति -

जे पुग्गलदव्वाण परिणामा होंति णाणआवरणा। (१०१)
ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी।।१०८।।

जे पुग्गलदव्वाण परिणामा होंति णाणआवरणा ये कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलपरिणामा पर्याया ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मरूपा भवति। **ण करेदि ताणि आदा** तान् पर्यायान् व्याप्यव्यापकभावेन मृत्तिकाकलशमिवात्मा न करोति गोरसाध्यक्षवत्। **जो जाणदि सो हवदि णाणी** इति यो जानाति मिथ्यात्वविषयकषायपरित्याग कृत्वा निर्विकल्पसमाधौ स्थित सन् स ज्ञानी भवति। न च परिज्ञानमात्रेण। इदमत्र तात्पर्यम्। वीतरागस्वसवेदनज्ञानी जीव शुद्धनयेन शुद्धोपादानरूपेण शुद्धज्ञानस्यैव कर्ता। किंवदिति चेत् ? पीतत्वादिगुणाना सुवर्णवत् उष्णादिगुणानामग्निवत् अनतज्ञानादिगुणाना सिद्धपरमेष्ठिवदिति। न च मिथ्यात्वरागादिरूपस्याज्ञानभावस्य कर्तेति शुद्धोपादानरूपेण शुद्धज्ञानादिभावानामशुद्धोपादानरूपेण मिथ्यात्वरागादिभावाना च तद्रूपेण परिणमन्नेव कर्तृत्व ज्ञातव्य। भोक्तृत्व च। न च हस्तव्यापारवदीहापूर्वक घटकुभकारवदिति। एवमेव च ज्ञानावरणपदपरिवर्तनेन दर्शनावरणवेदनीयमोहनीया-युर्नामगोत्रातरायसज्ञै सप्तभि कर्मभेदै सह मोहरागद्वेषक्रोधमानमायालोभनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शन-सूत्राणिषोडश व्याख्येयानि। अनेन प्रकारेण शुद्धात्मानुभूतिविलक्षणा असख्येयलोकमात्रप्रमिता अन्येऽपि विभावपरिणामा ज्ञातव्या ।।१०८।।

शका - तव उनका कर्ता कौन है ?

समाधान - **जोगुवओगा उप्पादगा य** (अशुद्धनय से) आत्मा का विकल्प व्यापाररूप योग और उपयोग दोनों स्वय विनश्वर हैं, वे (उपचार से) वहाँ (उनके) उत्पादक हैं।

सो तेसि इवदि कत्ता सुखदु खजीवितमरणादि में समता भावना से परिणत अभेदरत्नत्रय लक्षणरूप भेदविज्ञान के अभाव से जिस काल में शुद्धबुद्ध-एक-स्वभावरूप परमात्मस्वरूप से भ्रष्ट होता है तब वह जीव कदाचित् उन योग और उपयोग का कर्ता होता है, किन्तु जीव सर्वदा उन योग और उपयोग का कर्ता नहीं है।

यहाँ योग शब्द से बहिरग हस्तादि व्यापार को और उपयोग शब्द से अतरग विकल्पभाव को ग्रहण किया गया है। इस प्रकार परपरा से (उपचार से) निमित्तरूप से घटादि विषय में (घटादि के विकल्प पर्याय में) जीव का कर्तृत्व है। यदि मुख्यवृत्ति से (निश्चय स) निमित्त का कर्तृत्व है तो जीव नित्य होने से निश्चय से सर्वदा ही कर्मकर्तृत्व का प्रसग आयेगा और उससे मोक्ष का अभाव होगा। इस तरह व्यवहार के व्याख्यान की मुख्यता से तीन गाथायें पूर्ण हुई।।१०७।।

अव **वीतराग स्वसवेदनज्ञानी ज्ञान का ही कर्ता है, परभाव का कर्ता नहीं है,** ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(जे)** जो **(णाणआवरणा)** ज्ञानावरणादिक **(पुग्गलदव्वाण)** पुद्गल द्रव्यों के **(परिणामा)** परिणाम **(होंति)** हैं **(ताणि)** उनको **(आदा)** आत्मा **(ण करेदि)** नहीं करता हे ऐसा **(जो)** जो **(जाणदि)** जानता हे **(सो)** वह **(णाणी)** ज्ञानी **(हवदि)** है।

अथाज्ञानी चापि रागादिस्वरूपस्याज्ञानभावस्यैव कर्ता[1] न च ज्ञानावरणादि परद्रव्यस्येति निरूपयति -

ज भाव सुहमसुह करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता। (१०२)
त तस्स होदि कम्म सो तस्स दु वेदगो अप्पा।। १०९।।

टीकार्थ - उन पर्यायों का **जे पुग्गलदव्वाण परिणामा होंति णाण आवरणा** जो कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्यों का परिणमन ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मरूप पर्याय होती हैं उन पर्यायों का **ण करेदि ताणि आदा** जैसे कलश का मृत्तिका व्याप्य-व्यापकभाव से कर्ता है, उसी तरह आत्मा उन ज्ञानावरणादि पर्यायों का व्याप्य-व्यापकभाव से कर्ता नहीं है।

जैसे ग्वाला गोरस को भिन्नत्व से-ज्ञाता दृष्टा दृष्टि से देखता है, वैसे आत्मा ज्ञानावरणादि पर्यायों को भिन्नत्व से - साक्षीभूत (ज्ञाता द्रष्टा) दृष्टि से देखता है।

जो जाणदि दि सो हवदि णाणी

आगमभाषा से	अध्यात्मभाषा से
इस प्रकार से जो जानता है, वह मिथ्यात्व व विषय कषाय का परित्याग करके ज्ञानी होता है।	इस प्रकार से जो जानता है, वह निर्विकल्प समाधि में (निजशुद्धस्वानुभूति में अथवा स्वभाव में) स्थित होकर ज्ञानी होता है।

परिज्ञान मात्र से याने (परोक्ष) जानने मात्र से ज्ञानी नहीं होता है, वस्तुस्वरूप जानकर अपने स्वभाव का शुद्धस्वानुभव लेने से वह ज्ञानी होता है।

इसका तात्पर्य यह है कि, (अभेदोपचाररूप) शुद्धनय से शुद्धउपादानरूप से वीतराग स्वसंवेदनज्ञानी (स्वानुभूति वाला) जीव शुद्ध ज्ञानपर्याय का ही कर्ता है। जैसे

(१) पीतत्वादि पर्यायों का सुवर्ण कर्त्ता है।

(२) उष्णादि पर्यायों का अग्नि कर्त्ता है

(३) अनंतज्ञानादि पर्यायों के सिद्ध परमेष्ठी कर्त्ता हैं (क्योंकि उनमें व्याप्य व्यापक संबंध है), शुद्धउपादानरूप से शुद्धज्ञानादि पर्यायों का कर्तृत्व और भोक्तृत्व है, ऐसा जानना चाहिए। लेकिन शुद्ध उपादान रूप से मिथ्यात्व रागादिरूप अज्ञान भाव का कर्तृत्व और भोक्तृत्व नहीं है। और अशुद्धउपादानरूप से मिथ्यात्व रागादिभावों का अशुद्धभावरूप परिणमन करके कर्ता, भोक्ता है।

जैसे घट कुंभकार की तरह याने-घट में कुंभकार का व्याप्य-व्यापक भाव का अभाव है, उसी तरह आत्मा इच्छापूर्वक हस्तव्यापारादिक का कर्ता, भोक्ता नहीं है क्योंकि हस्तव्यापारादिक में आत्मा का व्याप्य-व्यापक संबंध नहीं है।

---

[1] पाठान्तर - अथ वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी ज्ञानस्यैव कर्ता (ज्ञानोदय प्रकाशन, जबलपुर), द्वितीय संस्करण १९८७

ज भाव सुहमसुह करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता सातासातोदयावस्थाभ्यां तीव्रमंदस्वादाभ्यां सुखदु:खरूपाभ्यां वा चिदानंदैकस्वभावेनैकस्याप्यात्मनो द्विधाभेदं कुर्वाण सन् यं भावं शुभमशुभं वा करोत्यात्मन स्वतंत्ररूपेण व्यापकत्वात्स तस्य भावस्य खलु स्फुटं कर्ता भवति। **तं तस्स होदि कम्मं** तदेव तस्य शुभाशुभरूपं भावकर्म भवति। तेनात्मना क्रियमाणत्वात्। **सो तस्स दु वेदगो अप्पा** स आत्मा तस्य तु शुभाशुभरूपस्य भावकर्मणो वेदको भोक्ता भवति स्वतंत्ररूपेण भोक्तृत्वात्, न च द्रव्यकर्मण ।

इस प्रकार ज्ञानावरण पद को दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय नाम वाले इन सात भेदरूप कर्मपदों से और मोह, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु घ्राण, रसन और स्पर्शन इन सोलह पदों से और शुद्धात्मानुभूति से विलक्षण असंख्यात लोकप्रमाण विभावभावों के पदों को परिवर्तन करके जानना चाहिये।।१०८।।

अब अज्ञानी रागादिरूप अज्ञान भाव का ही कर्ता है, तो भी ज्ञानावरणादि परद्रव्य का कर्ता नहीं है, ऐसा निरूपण करते हैं -

गाथार्थ - **(आदा)** आत्मा **(ज)** जिस **(सुहमसुह)** शुभ या अशुभ **(भाव)** भाव को **(करेदि)** करता है **(स)** वह **(तस्स)** उस भाव का **(कत्ता)** कर्ता **(खलु)** निश्चय से होता है **(त)** वह भाव **(तस्स)** उसका **(कम्म)** कर्म **(होदि)** होता है **(सो)** वह आत्मा **(तस्स)** उस भाव का **(वेदगो)** भोक्ता है **(दु)** लेकिन **(अप्पा)** आत्मा **(वेदगो)** वेदक याने ज्ञायक है।

टीकार्थ - **ज भाव सुहमसुह करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता** शुद्धनिश्चयनय से चिदानंद एक स्वभावरूप आत्मा एक है तो भी अशुद्धनिश्चयनय से साता-असाता की उदय अवस्था में तीव्रमंदस्वादरूप से अथवा सुखदु:खरूप से दो भेद करने वाला होकर आत्मा जिस शुभ अथवा अशुभ भाव को करता है, वहाँ आत्मा के स्वतंत्ररूप से व्यापकत्व होने से उस भाव का अशुद्धनिश्चयनय से कर्ता होता है। **त तस्स होदि कम्म** और वह भाव ही उसका शुभाशुभरूप भावकर्म है। वह भावकर्म अशुद्धउपादान वाले आत्मा से किया हुआ होने से वह **सो तस्स वेदगो अप्पा** अशुद्धउपादानवाला आत्मा उस शुभाशुभरूप भावकर्म का भोक्ता है क्योंकि स्वतंत्ररूप से भोक्तृत्व (भोक्तापन) है लेकिन वह अशुद्धउपादानवाला आत्मा भी द्रव्यकर्म का कर्ता, भोक्ता नहीं है।

कुछ विशेष यह है कि, अज्ञानी जीव अशुद्ध उपादानरूप से (अभेदोपचाररूप) अशुद्धनिश्चयनय से मिथ्यात्व रागादि भावों का ही कर्ता है, द्रव्यकर्म का कर्ता नहीं है। आत्मा को द्रव्यकर्म का कर्ता असद्भूतव्यवहारनय की अपेक्षा से कहा गया है, इस कारण (आगमभाषा से) इस अशुद्धनिश्चय को निश्चय संज्ञा दी गई है। तो भी (अध्यात्मभाषा में) शुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा से अशुद्धनिश्चयनय को भी व्यवहार ही कहते हैं।

शंका - हे भगवन ! आपने अशुद्ध उपादानरूप से आत्मा को रागादिभावों का कर्ता कहा है, तो उस आत्मा के शुद्धउपादान और अशुद्ध उपादान ऐसे दो भेद कैसे हुए ?

समाधान - अग्नि के द्वारा गर्म हुए लोहे के पिण्ड के समान औपाधिकभाववाला आत्मा अशुद्धउपादान है और आत्मा के निरुपाधि स्वभाव की दृष्टि से निरुपाधिरूप आत्मा शुद्ध उपादान है जैसे -

कि च विशेष - अज्ञानी जीवोऽशुद्धनिश्चयनयेनाशुद्धोपादानरूपेण मिथ्यात्वरागादिभावानामेव कर्ता न च द्रव्यकर्मण। स चाशुद्धनिश्चय यद्यपि द्रव्यकर्मकर्तृत्वरूपासद्भूतव्यवहारापेक्षया निश्चयसज्ञा लभते तथापि शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव। हे भगवन्! रागादीनामशुद्धोपादानरूपेण कर्तृत्व भणित तदुपादान शुद्धाशुद्धभेदेन कथ द्विधा भवतीति ? तत्कथ्यते। औपाधिकमुपादानमशुद्ध, तप्ताय पिडवत्, निरुपाधिरूपमुपादान शुद्ध पीतत्वादिगुणाना सुवर्णवत्, अनतज्ञानादिगुणाना सिद्धजीववत्, उष्णत्वादिगुणानामग्निवत्। इद व्याख्यानमुपादानकारणव्याख्यानकाले शुद्धाशुद्धोपादानरूपेण सर्वत्र स्मरणीयमिति भावार्थ ।।१०९।।

अथ न च परभाव केनाप्युपादानरूपेण कर्तुं शक्यते -

जो जम्हि गुणे[1] दव्वे सो अण्णम्हि दु ण सकमदि दव्वे। (१०३)
सो अण्णमसकतो कह त परिणामए दव्व।।११०।।

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण सकमदि दव्वे यो गुणश्चेतनस्तथैवाचेतनो वा यस्मिश्चेतनाचेतने द्रव्ये अनादिसबधेन स्वभावत एव स्वत एव प्रवृत्त सोऽन्यद्रव्ये तु न सक्रमत्येव सोऽपि सो अण्णमसकतो कह त परिणामए दव्व स चेतनोऽचेतनो वा गुण कर्ता अन्यद्भिन्न द्रव्यातरमसक्रात सन् कथ द्रव्यातर परिणामयेत्तत्कथ कुर्यादुपादानरूपेण न कथमपि।।११०।।

तत स्थित आत्मा पुद्गलकर्मणामकर्तेति -

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पुग्गलमयम्हि कम्मम्हि। (१०४)
त उभयमकुव्वतो तम्हि कह तस्स सो कत्ता।।१११।।

---

(१) सुवर्ण अपने पीतत्वादि पर्यायों का, (२) सिद्धजीव अपने अनतज्ञानादि पर्यायों का, (३) अग्नि अपने उष्णत्वादि पर्यायों का शुद्ध उपादान है।

इस प्रकार शुद्ध या अशुद्ध उपादान के स्वरूप का यह व्याख्यान उपादान कारण के व्याख्यान के समय सभी स्थानों पर स्मरण रखना चाहिये यह भावार्थ है।।१०९।।

अव, किसी भी प्रकार से उपादानरूप से परभाव को करने के लिये शक्य नहीं है (परभाव का कर्ता नहीं होता है) यह कहते हैं -

गाथार्थ - (जो) जो द्रव्य (जम्हि दव्वे) जिस द्रव्य में (अपने द्रव्यस्वभाव में) (गुणे) और गुण में वर्तता है (सो) वह (अण्णम्हि दु) अन्य (दव्वे) द्रव्य में तथा गुण में (ण सकमदि) सक्रमण रूप नहीं होता है - पलटकर अन्य में नहीं मिल जाता है (सो) वह (अण्णमसकतो) अन्य में नहीं मिलता हुआ (त दव्व) उस अन्य द्रव्य को (कह) कैसे (परिणामए) परिणमा सकता है ? कभी नहीं परिणमा सकता है।

---

[1] पाठान्तर - जो जम्हि गुणो दव्वे

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पुग्गलमयम्हि कम्मम्हि यथा कुभकार कर्ता मृण्मयकलशकर्मविषये मृत्तिकाद्रव्यस्य सम्वन्धि जडस्वरूप वर्णादिमृत्तिका गुणस्य वा सवधिस्वरूप मृत्तिकाकलशमिव तन्मयत्वेन न करोति तथात्मापि पुद्गलमयद्रव्यकर्मविषये पुद्गलद्रव्यकर्मसबधि जडस्वरूप वर्णादिपुद्गलद्रव्यगुणसवधिस्वरूप वा तन्मयत्वेन न करोति। **त उभयमकुव्वतो तम्हि कह तस्स सो कत्ता** तदुभयमपि पुद्गलद्रव्यकर्मस्वरूप वर्णादि तद्गुण वा तन्मयत्वेनाकुर्वाण सन् तत्र पुद्गलकर्मविषये स जीव कथ कर्ता भवति ? न कथमपि। चेतनाचेतनेन परस्वरूपेण न परिणमतीत्यर्थ । अनेन किमुक्त भवति ? यथा स्फटिको निर्मलोऽपि जपापुष्पादिपरोपाधिना परिणमति तथा कोऽपि सदाशिवनामा सदा मुक्तोऽप्यमूर्त्तोऽपि परोपाधिना परिणम्य जगत् करोति तन्निरस्तम्।

कस्मादिति चेत्,? मूर्तस्फटिकस्य मूर्तेन सहोपाधिसवधो घटते तस्य पुन सदा मुक्तस्यामूर्तस्य कथ मूर्त्तोपाधि ? न कथमपि सिद्धजीववत्। अनादिबद्धजीवस्य पुन शक्तिरूपेण शुद्धनिश्चयेनामूर्तस्यापि व्यक्तिरूपेण व्यवहारेण मूर्त्तस्य मूर्त्तोपाधिदृष्टातो घटत इति भावार्थ । एव निश्चयनयमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टय गतम्।।१११।।

टीकार्थ - **जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण सक्रमदि दव्वे** जो चेतन अथवा अचेतन गुण जिस चेतन द्रव्य में अथवा जिस अचेतन द्रव्य में अनादिसवध से स्वभावत ही, स्वय ही प्रवृत्त है वह गुण अन्य द्रव्य में सक्रमण नहीं करता है **सो अण्णमसकतो कह त परिणामए दव्व** (याने कोई भी एकद्रव्य दूसरे गुण या द्रव्यरूप सक्रमण नहीं करता है) वह चेतन अथवा अचेतन गुण कर्ता वनकर अन्य स्वभाव वाला होकर दूसरे भिन्न द्रव्य में सक्रमण नहीं करने से उपादानरूप से अन्य द्रव्य को कैसे परिणमा सकता है ? याने एक द्रव्य (उपादान वनकर) दूसरे द्रव्य में किसी भी प्रकार से परिणमन नहीं कर सकता है।।११०।।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, **आत्मा पुद्गलकर्मो का अकर्ता है** -

गाथार्थ - (**आदा**) आत्मा (**पुग्गलमयम्हि कम्मम्हि**) पुद्गलमय कर्म में (**दव्वगुणस्स**) द्रव्य को तथा गुण को (**ण कुणदि**) नहीं करता (**तम्हि**) उसमें (**त उभय**) उन दोनों को (**अकुव्वतो**) नहीं करता हुआ (**तस्स**) उसका (**सो**) वह (**कत्ता**) कर्ता (**कह**) कैसे हो सकता हे ?

टीकार्थ - **दव्व गुणस्स य आदा ण कुणदि पुद्गलमयम्हि कम्मम्हि** जैसे मिट्टी का कलश करते समय मिट्टी द्रव्यसवधी जड स्वरूप अथवा वर्णादि गुणों सवधी स्वरूप से तन्मय होकर करती है, वैसे कुम्हार मिट्टी का द्रव्य सवधी जडस्वरूप वर्णादि गुणों से अथवा मिट्टी के कलश से तन्मय होकर कलश नहीं करता है। उसी तरह आत्मा भी पुद्गलमय द्रव्यकर्म वनते समय में पुद्गल द्रव्यकर्म सबधी अथवा जडस्वरूप वर्णादि गुणों से अथवा पुद्गल द्रव्यगुण सवधी स्वरूप कर्म से तन्मयरूप होकर नहीं करता है।

त उभयमकुव्वतो तम्हि कह तस्स सो कत्ता और जव आत्मा पुद्गल द्रव्यकर्मसवधी स्वरूप को अथवा उसके वर्णादिगुणों को तन्मय होकर नहीं करता है तव उस पुद्गल द्रव्यकर्म के विषय में वह जीव कर्ता कैसे हो सकता है ? किसी भी प्रकार से उन पुद्गल द्रव्यकर्म का कर्ता नहीं हो सकता है। क्योंकि जीव परस्वरूप चेतन-अचेतनरूप से परिणमन नहीं करता है। यह अर्थ है।

अत कारणादात्मा द्रव्यकर्म करोतीति यदभिधीयते स उपचार -

जीवम्हि हेदुभूदे बधस्स दु पस्सिदूण परिणाम। (१०५)
जीवेण कद कम्म भण्णदि उवयारमेत्तेण।। ११२।।

जीवम्हि हेदुभूदे बधस्स दु पस्सिदूण परिणाम परमोपेक्षासयमभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणस्य भेदज्ञानस्याभावे मिथ्यात्वरागादिपरिणतिनिमित्तहेतुभूते जीवे सति मेघाडवरचद्रार्कपरिवेषादियोग्यकाले निमित्तभूते सति मेघेन्द्रचापादि-परिणतपुद्गलानामिव कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलाना ज्ञानावरणादिरूपेण द्रव्यकर्मवन्धस्य परिणाम पर्याय दृष्ट्वा **जीवेण कद कम्म भण्णदि उवयारमेत्तेण** जीवेन कृत कर्मेति भण्यते उपचारमात्रेणेति।।११२।।

अथ तदेवोपचारकर्मकर्तृत्व दृष्टातदार्ष्टांताभ्या दृढयति -

जोधेहि कदे जुद्धे राएण कद ति जपदे लोगो। (१०६)
तह ववहारेण कद णाणावरणादि जीवेण।। ११३।।

शका - इसका क्या आशय है ?

समाधान - जैसे स्फटिक निर्मल है तो भी जपापुष्पादि के सानिध्य में परउपाधिरूप से परिणमन करता है, वैसे ही कोई सदाशिव नाम का पुरुष, जो सदा मुक्त भी है, अमूर्त भी है तो भी वह परोपाधि से परिणमन करके जगत का निर्माण करता है, इस मान्यता का निराकरण हो जाता है। क्योंकि मूर्त स्फटिक का मूर्त जपापुष्पादि के साथ उपाधि सबध घटता है और उस सदा मुक्त रहने वाले अमूर्तद्रव्य के साथ मूर्तद्रव्य की उपाधि का कैसे सबध हो सकता है ? याने मूर्तद्रव्य का अमूर्तद्रव्य से किसी भी प्रकार से सबध नहीं हो सकता है। जैसे सिद्धजीव कभी भी ससार में नहीं आते हैं, वह सिद्धजीव कभी भी मोहरागद्वेष नहीं करते हैं। और अनादि से ससार में जो जीव बद्ध हे वह शुद्धनिश्चयनय से शक्तिरूप से अमूर्त्त है तो भी व्यवहारनय से व्यक्तिरूप से मूर्त है, इस कारण मूर्त्त का मूर्त्त उपाधि से सबध घटता है, यह दृष्टात से दिखाया है। यह भावार्थ है।

इस तरह निश्चयनय की मुख्यता से चार गाथायें समाप्त हुई।।१११।।

इस कारण से **आत्मा द्रव्यकर्म को करता है, यह जो कहा जाता है वह केवल उपचार है -**

गाथार्थ - **(जीवम्हि हेदुभूदे)** जीव निमित्तमात्र होने पर **(बधस्स)** कर्मबध के **(परिणाम)** परिणाम को **(पस्सिदूण)** देखकर **(जीवेण)** जीव ने **(कम्म)** कर्म **(कद)** किये हैं **(दु)** लेकिन यह **(उवयारमेत्तेण)** उपचारमात्र से **(भण्णदि)** कहते हैं।

टीकार्थ - **जीवम्हि हेदभूदे बधस्स दु पस्सिदूण परिणाम** निमित्तरूप बादलों की छाया चाद सूरज का परिवेष-मडल आदि के योग्य काल होने पर पानी का बरसना और इन्द्रधनुष आदि में परिणत पुद्गलों का परिणाम देखा जाता है।

वैसे ही परमउपेक्षासयमस्वरूप भावना (पारिणामिकभाव) से परिणत अभेदरत्नत्रयलक्षण वाले भेदज्ञान के अभाव में मिथ्यात्व रागादिरूप परिणत जीव के निमित्तमात्र सद्भाव में कर्मवर्गणा योग्य पुद्गलों के ज्ञानावरणादिरूप से द्रव्यकर्मबन्ध की परिणति-पर्याय को देखकर **जीवेण कद कम्म भण्णदि उवयारमेत्तेण** जीव से कर्म किये गये हैं, ऐसा उपचार मात्र से कहते हैं।।११२।।

जोधेहि कदे जुद्धे राएण कद ति जपदे लोगो यथा योधै युद्धे कृते सति राज्ञा युद्ध कृतमिति जल्पति लोक । **तह ववहारेण कद णाणावरणादि जीवेण** तथा व्यवहारनयेन कृत भण्यते ज्ञानावरणादिकर्म जीवेनेति। तत स्थितमेतत् यद्यपि शुद्धनिश्चनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावत्वान्नोत्पादयति न करोति न बध्नाति न परिणामयति न गृहणाति च तथापि।।११३।।

उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य। (१०७)
आदा पुग्गलदव्वं ववहारणयस्स वत्तव्व।।११४।।

अनादिवधपर्यायवशेन वीतरागस्वसवेदनलक्षणभेदज्ञानाभावात् रागादिपरिणामस्निग्ध सन्नात्मा कर्मवर्गणायोग्य-पुद्गलद्रव्य कुभकारो घटमिव द्रव्यकर्मरूपेणोत्पादयति प्रकृतिवध करोति वध्नाति परिणामयति गृहणातीनि व्यवहारनयस्याभिप्रायेण वक्तव्य व्याख्येयमिति। अथवा उत्पादयति प्रकृतिबध करोति स्थितिवधवध्नात्यनुभागवध परिणामयति प्रदेशवध तप्ताय पिडो जलवत्सर्वात्मप्रदेशैर्गृहणाति चेत्याभिप्राय ।।११४।।

अथैतदेव व्याख्यान दृष्टातदार्ष्टांताभ्या समर्थयति -

जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगो त्ति आलविदो। (१०८)
तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो।।११५।।

अव उस उपचार कर्मकर्तृत्व को ही दृष्टात और दार्ष्टांत से दृढ करते हैं -

गाथार्थ - **(जोधेहि)** जैसे योद्धाओं के द्वारा **(जुद्धे कदे)** युद्ध किये जाने पर **(राएण कद)** राजा ने युद्ध किया **(ति)** इस प्रकार **(लोगो)** लोक **(जपदे)** कहते हैं, **(तह)** उसी प्रकार **(णाणावरणादि)** ज्ञानावरणादि कर्म **(जीवेण)** जीव ने **(कद)** किये हैं, ऐसा **(ववहारेण)** व्यवहार से कहा जाता है।

टीकार्थ - **जोधेहि कदे जुद्धे राएण कद ति जंपदे लोगो** जैसे योद्धाओं के द्वारा युद्ध किया जाने पर "राजा ने युद्ध किया है" ऐसा व्यवहार से लोग कहते हैं। **तह ववहारेण कद णाणावरणादि जीवेण** वैसे ही ज्ञानावरणादि कर्म जीव ने किये हैं, ऐसा व्यवहार से कहते हैं।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, यद्यपि शुद्धनिश्चयनय से शुद्ध-वुद्ध-एक स्वभाव होने से जीव न किसी को उत्पन्न करता है, न वनाता है, न वाधता है, न परिणमाता है और उसी प्रकार न ग्रहण करता है।।११३।।

गाथार्थ - **(आदा)** आत्मा **(पुग्गलदव्व)** पुद्गलद्रव्य को **(उप्पादेदि)** उत्पन्न करता हे **(य)** और **(करेदि)** करता है **(बधदि)** वाधता हे, **(परिणामएदि)** परिणमन कराता है **(य)** और **(गिण्हदि)** ग्रहण करता है यह **(ववहारणयस्स)** व्यवहारनय का **(वत्तव्व)** कथन है।

टीकार्थ - जेसे कुम्हार घडे को उत्पन्न करता है, वैसे ही वीतराग स्वसवेदनलक्षण वाले भेदज्ञान के अभाव से, अनादिवधपर्याय के वश से रागादिपरिणाम से स्निग्ध होकर आत्मा कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्य को द्रव्यकर्म के रूप में उत्पन्न करता है, प्रकृतिवध को करता है, वाधता है, परिणमन करता है, ग्रहण करता है,

जहराया ववहारा दोसगुणुप्पादगो त्ति आलविदो यथा राजा लोके व्यवहारेण सदोषिनिर्दोषिजनानां दोषगुणोत्पादको भणित । **तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो** तथा जीवोऽपि व्यवहारेण पुद्गलद्रव्यस्य पुण्यपापगुणयोरुत्पादको भणित । इति व्यवहारमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टय गतम्। एव द्विक्रियावादिनिराकरणोपसहारव्याख्यानमुख्यत्वेनैकादशगाथा गता । ननु निश्चयेन द्रव्यकर्म न करोत्यात्मा बहुधा व्याख्यात तेनैव द्विक्रियावादिनिराकरण सिद्ध पुनरपि किमर्थं पिष्टपेषणमिति ? नैव, हेतुहेतुमद्भावव्याख्यानज्ञापनार्थमिति नास्ति दोष । तथाहि-यत एव हेतोर्निश्चयेन द्रव्यकर्म न करोति तत एव हेतोर्द्विक्रियावादिनिराकरण सिद्ध्यतीति हेतुमद्भावव्याख्यान ज्ञातव्यम्।

इति पुण्यपापादिसप्तपदार्थपीठिकारूपे महाधिकारमध्ये पूर्वोक्तप्रकारेण **'जदि सो पुग्गलदव्व करेज्ज'** इत्यादिगाथाद्वयेन सक्षेपव्याख्यान। तत पर द्वादशगाथाभिस्तस्यैव विशेषव्याख्यान ततोऽप्येकादशगाथाभिरतस्यैवोपसहाररूपेण पुनरपि विशेषविवरणमिति समुदायेन पचविंशतिगाथाभि द्विक्रियावादिनिषेधकनामा तृतीयोन्तराधिकार समाप्त ।।११५।।

ऐसा व्यवहारनय के अभिप्राय से कथन करना योग्य है। अथवा प्रकृतिबध को पैदा करता है, स्थितिबध को करता है, अनुभागबध को बाधता है, प्रदेश बध को परिणमन करता है। जैसे गर्म लोहे का गोला सब प्रदेशों से जल ग्रहण करता है, वैसे ही विकारी (रागी) आत्मा अपने सब आत्मप्रदेशों से प्रदेशबध को ग्रहण करता है, ऐसा अभिप्राय है।।११४।।

अब इस ही कथन का दृष्टात और दार्ष्टान्त के द्वारा समर्थन करते हैं -

गाथार्थ - (जह) जैसे (राया) राजा (प्रजा में) (दोसगुणुप्पादगो) दोष और गुणों का उत्पन्न करने वाला है (त्ति) ऐसा (ववहारा) व्यवहार से (आलविदो) कहा है (तह) उसी प्रकार (जीवो) जीव (दव्वगुणुप्पादगो) पुद्गलद्रव्य में द्रव्यगुण का उत्पादक (ववहारा) व्यवहार से (भणिदो) कहा गया है।

टीकार्थ - **जह राया ववहारा दोषगुणप्पादगो त्ति आलविदो** जैसे व्यवहार से लोक में सदोष और निर्दोष लोगों के होने वाले दोष और गुणों का उत्पादक राजा को कहा जाता है, **तह जीवो ववहारा दव्वगुणप्पादगो भणिदो** वैसे ही व्यवहार से जीव भी पुद्गलद्रव्य के पुण्यपाप गुणों का उत्पादक है ऐसा कहते हैं। इस तरह व्यवहार की मुख्यता से चार गाथायें पूर्ण हुई। इस प्रकार द्विक्रियावादी के निराकरण के उपसहार की मुख्यता से कथन करने वाली ११ गाथायें पूर्ण हुई।

शका - निश्चयनय से आत्मा द्रव्यकर्म को नहीं करता है, ऐसा कथन बहुत बार किया है, उससे ही द्विक्रियावादी का निराकरण सिद्ध होता है, फिर भी यह पिष्टपेषण क्यों किया है ?

समाधान - ऐसा नहीं है। हेतु और हेतुमद् भाव (कार्य) को बताने के लिये ऐसा बार-बार कहना दोष नहीं है। निश्चयनय से जिस हेतु से (कारण से) ही आत्मा द्रव्यकर्म नहीं करता है, उस ही हेतु से (कारण से) द्विक्रियावादी का निराकरण सिद्ध हो जाता है, इसलिये वह हेतुमद् भाव है। यह हेतु और हेतुमद् भाव का कथन जानना चाहिये।

अथानतर **'सामण्णपच्चया'** इत्यादि गाथामादि कृत्वा पाठक्रमेण सप्तगाथापर्यंत मूलप्रत्ययचतुष्टयस्य कर्मकर्तृत्वमुख्यत्वेन व्याख्यान करोति। तत्र सप्तकमध्ये जैनमते शुद्धनिश्चयेन शुद्धोपादानरूपेण जीव कर्मम् न करोति, प्रत्यया एव कुर्वन्तीति कथनरूपेण गाथाचतुष्टयम्। अथवा शुद्धनिश्चयनयविवक्षा ये नेच्छत्येकातेन जीवो न करोतीति वदति साख्यमतानुसारिण तान्प्रति दूषण ददाति। कथमिति चेत् ? यदि ते प्रत्यया एव कर्मम् कुर्वंति तर्हि जीवो न हि वेदकस्तेषा कर्मणामित्येक दूषण। अथवा तेपा मते जीव एकातेन कर्मम् न करोतीति द्वितीय दूषण। तदनतर शुद्धनिश्चयेन शुद्धोपादानरूपेण न च जीवप्रत्यययोरेकत्व जैनमताभिप्रायेणेति गाथात्रयम्। अथवा पूर्वोक्तप्रकारेण ये नयविभाग नेच्छति तान्प्रति पुनरपि दूषण। कथमिति चेत् ? जीवप्रत्यययोरेकातेनैकत्वे सति जीवाभाव इत्येक दूषण। एकातेन भिन्नत्वे सति ससाराभाव इति द्वितीय दूषणमिति चतुर्थान्तराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा -

निश्चयेन मिथ्यात्वादिपौद्गलिकप्रत्यया एव कर्मम् कुर्वन्तीति प्रतिपादयति -

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णति बधकत्तारो। (१०९)
मिच्छत्त अविरमण कसायजोगा य बोद्धव्वा।। ११६।।

इस प्रकार पुण्यपापादि सात पदार्थों की पीठिका रूप महाधिकार में पूर्वोक्त प्रकार से **'जदि सो पुग्गलदव्व करेज्ज'** इत्यादि दो गाथाओं द्वारा सक्षेप व्याख्यान किया हे। इसके वाद १२ गाथाओं द्वारा उसका ही विशेष व्याख्यान किया है, उसके वाद ११ गाथाओं द्वारा उपसहाररूप से उसका ही पुन विशेष कथन किया हे। इस प्रकार समुदाय रूप से २५ गाथाओं द्वारा द्विक्रियावादी का निपेधरूप तीसरा अतर अधिकार समाप्त हुआ।। ११५।।

इसके अनतर **'सामण्णपच्चया'** इत्यादि गाथा से शुरु करके पाठक्रम से ७ गाथापर्यंत चार मूलप्रत्यय के कर्मकर्तृत्व की मुख्यता से व्याख्यान करते हैं। इन सात गाथाओं में से ४ गाथाओं में जैनमत में शुद्धनिश्चयनय से शुद्धउपादान से जीव कर्म नहीं करता है, किन्तु ये प्रत्यय ही कर्म करते हैं ऐसा कथन है। अथवा जो लोग शुद्धनय की विवक्षा को मानते नहीं हैं, एकात से जीव करता नहीं हे, ऐसा कहते हैं उन साख्यमत का अनुसरण करने वालों को दूषण देते हैं।

शका - कैसे ?

समाधान - यदि वे प्रत्यय ही कर्म के कर्ता हैं तो जीव उन कर्मों का वेदक (भोक्ता) भी नहीं होना चाहिए, यह एक दूषण आता हे। अथवा उनके मत में एकात से जीव कर्म को नहीं करता है ऐसा दूसरा दूषण आता है (क्योंकि अशुद्धनय से जीव भावकर्म का कर्ता हे।)

तदनतर शुद्धनिश्चयनय से, शुद्ध उपादान रूप से जीव और प्रत्ययों का एकत्व नहीं है, ऐसा जैनमत का अभिप्राय है, यह कथन करने वाली तीन गाथायें हैं। अथवा जो लोग नयविभाग नहीं मानते हैं, उनके प्रति फिर से दूषण देते हैं।

शका - कैसे ?

तेसिं पुणो वि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो। (११०)
मिच्छादिट्ठीआदी जाव सजोगिस्स चरमतं।। ११७।।
एदे अचेदणा खलु पुग्गलकम्मुदयसंभवा जम्हा। (१११)
ते जदि करंति कम्म ण वि तेसि वेदगो आदा।। ११८।।
गुणसण्णिदा दु एदे कम्म कुव्वंति पच्चया जम्हा। (११२)
तम्हा जीवोऽकत्ता गुणा य कुव्वति कम्माणि।। ११९।।

समाधान - यदि जीव और मिथ्यात्वादि प्रत्ययों का एकात से एकत्व माना जाय तो जीव का अभाव मानना होगा और जीव का अभाव मानना यह एक दोष है। यदि एकात से जीव और मिथ्यात्वादि प्रत्ययों को भिन्न माना जाय तो ससार का अभाव मानना होगा और ससार का अभाव मानना, यह दूसरा दोष है।

यह चौथे अतर अधिकार की समुदाय पातनिका हुई।

अव **शुद्धनिश्चयनय से मिथ्यात्वादि पौद्गलिक प्रत्यय ही कर्म को करते हैं,** इसका कथन करते हैं-

गाथार्थ - **(खलु)** निश्चय से **(सामण्णपच्चया)** सामान्य प्रत्यय अर्थात् कर्मवध को कारण जो आस्रव वे सामान्य से **(चउरो)** चारों **(बधकत्तारो)** वध के कर्ता **(भणंति)** कहे हैं, वे **(मिच्छत्त)** मिथ्यात्व **(अविरमण)** अविरमण **(य)** तथा **(कसायजोगा)** कषाय और योग **(बोद्धव्वा)** जानना चाहिए।

(पुणो वि य) और फिर **(तेसि)** उनका **(इमो)** यह **(तेरसवियप्पो)** तेरह प्रकार का **(भेदो दु)** भेद **(भणिदो)** कहा गया है **(मिच्छादिट्ठीआदी)** मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर **(सजोगिस्स चरमत जाव)** सयोगकेवली गुणस्थान के अत तक।

(एदे) यह (प्रत्यय अथवा गुणस्थान) **(खलु)** जो कि निश्चय से **(अचेदणा)** अचेतन हैं **(जम्हा)** क्योंकि **(पुग्गलकम्मुदयसभवा)** पुद्गलकर्म के उदय में उत्पन्न होते हैं। **(ते)** वे **(जदि)** यदि **(कम्म)** कर्म को **(करंति)** करते हैं तो **(तेसि)** उनका (कर्मों का) **(वेदगो वि)** भोक्ता भी **(आदा)** आत्मा **(ण)** नहीं है।

(जम्हा) क्योंकि **(एदे)** ये **(गुणसण्णिदा दु)** 'गुण' नाम वाले **(पच्चया)** प्रत्यय **(कम्म)** कर्म **(कुव्वंति)** करते हैं **(तम्हा)** इसलिये **(जीवो)** जीव तो **(अकत्ता)** कर्मों का अकर्ता है **(य)** और **(गुणा)** 'गुण' ही **(कम्माणि)** कर्मों को **(कुव्वंति)** करते हैं।

टीकार्थ - **सामण्णपच्चाया खलु चउरो भणंति बधकत्तारो** निश्चयनय से अभेद विवक्षा में एक पुद्गल ही वध का कर्ता है और भेदविवक्षा में चार सामान्य-मूलप्रत्यय वस्तुत वध के कर्ता हैं, ऐसा सर्वज्ञ भगवान ने कहा है, और उत्तर प्रत्यय तो वहुत हैं।

शका - सामान्य का क्या अर्थ है ?

समाधान - विवक्षा का (विशेष का) अभाव होना, यह सामान्य शब्द का अर्थ है। जहाँ-जहाँ सामान्य शब्द आयेगा वहाँ वहाँ उसका अर्थ 'विशेष विवक्षा का अभाव' ऐसा सर्वत्र जानना चाहिये।

मिच्छत्त अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा वे चार सामान्य प्रत्यय मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग हैं, ऐसा जानना चाहिये।

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णति बधकत्तारो निश्चयनयेनाभेदविवक्षाया पुद्गल एक एव कर्ता भेदविवक्षाया तु सामान्यप्रत्यया मूलप्रत्यया खलु स्फुट चत्वारो वधस्य कर्तारो भण्यन्ते सर्वज्ञे उत्तरप्रत्ययाश्च पुनर्वहवो भवन्ति। सामान्य कोऽर्थ ? विवक्षाया अभाव सामान्यमिति सामान्यशव्दस्यार्थ । सर्वत्र सामान्यव्याख्यानकाले ज्ञातव्य इति। **मिच्छत्त अविरमण कसायजोगा य बोद्धव्वा** ते च मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगा वोद्धव्या ।

अथ तेसि पुणो वि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो तेषा प्रत्ययाना गुणस्थानभेदेन पुनरिमो भणितो भेदस्त्रयोदशविकल्प । केन प्रकारेण ? **मिच्छादिट्ठी आदी जाव सजोगिस्स चरमत** मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादि सयोगिभट्टारकस्य चरमसमय यावदिति।

अथ **एदे अचेदणा खलु पुग्गलकम्मुदयसभवा जम्हा** एते मिथ्यात्वादिभावप्रत्यया शुद्धनिश्चयेनाचेतना खलु स्फुट। कस्मात् ? पुद्गलकर्मोदयसभवा यस्मादिति। यथा स्त्रीपुरुषाभ्या समुत्पन्न पुत्रो विवक्षावशेन देवदत्ताया पुत्रोऽय केचन वदति, देवदत्तस्य पुत्रोऽयमिति केचन वदति दोषो नास्ति।

तेसि पुणो वि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो उन प्रत्ययों के गुणस्थान के भेद से १३ भेद हैं। **मिच्छादिट्ठीआदी जाव सजोगिस्स चरमत** वे मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सयोग केवली के चरम समय तक १३ हैं। **एदे अचेदणा खलु पुग्गलकम्मुदयसभवा जम्हा** वे मिथ्यात्वादि भावप्रत्यय शुद्धनिश्चय से अचेतन ही है, क्योंकि वे पुद्गलकर्मोदय में प्रगट होते हैं।

जैसे स्त्री और पुरुष के सानिध्य में जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे ही विवक्षा के वश से यह देवदत्ता का पुत्र है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं और कुछ लोग कहते हैं कि यह देवदत्त का पुत्र है। उन दोनों कथन में विवक्षा से दोष नहीं है। वैसे ही जीव और पुद्गल के सयोग में उत्पन्न होने वाले मिथ्यात्व-रागादि भावप्रत्यय अशुद्धनिश्चय से, अशुद्ध उपादानरूप से चेतनमय हैं, जीव के साथ सवद्ध हैं। और शुद्धनिश्चयनय से शुद्ध उपादानरूप से वे मिथ्यात्व-रागादि भावप्रत्यय अचेतन हैं, पौद्गलिक हैं। फिर परमार्थरूप एकात से वे मिथ्यात्व-रागादि भावप्रत्यय जीवरूप भी नहीं हैं और पुद्गलरूप भी नहीं हैं, किन्तु चूना और हल्दी के सयोग में उत्पन्न हुई कुकुम के समान, वे मिथ्यात्व-रागादि भावप्रत्यय जीव और पुद्गल के सयोग में उत्पन्न होते हैं। लेकिन वस्तुत **सूक्ष्मशुद्धनिश्चयनय** से वे मिथ्यात्व-रागादि भाव जीव के हैं ही नहीं, क्योंकि वे तो अज्ञान में प्रगट हुए हैं, कल्पित हैं।

शका - इससे आप क्या कहना चाहते हैं ?

समाधान - (१) जो कोई पुरुष एकात से कहते हैं कि, रागादिक भाव जीव के हैं, अथवा (२) जो कोई पुरुष एकात से कहते हैं कि, रागादिक भाव पुद्गल के हैं, तो वे दोनों वचन मिथ्या हैं।

शका - वे दोनों वचन मिथ्या कैसे हैं ?

तथा जीवपुद्गलसयोगेनोत्पन्ना मिथ्यात्वरागादिभावप्रत्यया अशुद्धनिश्चयेनाशुद्धोपादानरूपेण चेतना जीवसवद्धा। शुद्धनिश्चयेन शुद्धोपादानरूपेणाचेतना पौद्गलिका। परमार्थत पुनरेकातेन न जीवरूपा न च पुद्गलरूपा सुधाहरिद्रयो सयोगपरिणामवत्। वस्तुतस्तु सूक्ष्मशुद्धनिश्चयनयेन न सत्येवाज्ञानोद्भवा कल्पिता इति। एतावता किमुक्त भवति ? ये केचन वदत्येकातेन रागादयो जीवसवधिन पुद्गलसवधिनो वा तदुभयमपि वचन मिथ्या। कस्मादिति चेत् ? पूर्वोक्तस्त्रीपुरुषदृष्टातेन सयोगोद्भवत्वात्।

अथ मत सूक्ष्मशुद्धनिश्चयनयेन कस्येति पृच्छामो वय ? सूक्ष्मशुद्धनिश्चयेन तेपामस्तित्वमेव नास्ति पूर्वमेव भणित तिष्ठति कथमुत्तर प्रयच्छाम इति। *ते जदि करति कम्म* ते प्रत्यया यदि चेत् कुर्वन्ति कर्मम् तदा कुर्युरेव जीवस्य किमायात, शुद्धनिश्चयेन सम्मतमेव **'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'** इति वचनात्।

अथ मत जीवो मिथ्यात्वोदयेन मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा मिथ्यात्वरागादिभावकर्मम् भुक्ते यतस्तत कर्तापि भवतीति? नैव। **ण वि तेसि वेदगो आदा** यत शुद्धनिश्चयेन वेदकोऽपि न हि तेषा कर्मणा। यदा वेदको न भवति तदा कर्तापि कथ भविष्यति ? न कथमपि इति शुद्धनिश्चयेन सम्मतमेव। अथवा ये पुनरेकातेनाकर्तेति वदन्ति तान्प्रति दूपण। कथमिति चेत् ? यदैकातेनाकर्ता भवति तदा यथा शुन्द्रनिश्चयेनाकर्ता तथा व्यवहारेणाप्यकर्ता प्राप्नोति। ततश्च सर्वथैवाकर्तृत्वे सति ससाराभाव इत्येक दूषणम्। तेषा मते वेदकोऽपि न भवतीति द्वितीय च दूषणम्। अथ च वेदकमात्मान मन्यन्ते साख्यास्तेषा स्वमतव्याघातदूषण प्राप्नोतीति।

समाधान - पूर्व में जो दृष्टान्त कहा है कि स्त्री और पुरुष के सयोग में पुत्र उत्पन्न होता हे, वैसे ही जीव और पुद्गल के सयोग में रागादिभाव उत्पन्न होते हैं।

शका - हम पूछते हैं कि वे रागादिकभाव **सूक्ष्म शुद्धनिश्चयनय से किसके हैं** ?

समाधान - हमने पूर्व में ही कहा है कि, सूक्ष्म शुद्धनिश्चयनय से उन मिथ्यात्व रागादिभावों का अस्तित्व ही जीव के स्वभाव में नहीं है। और किस तरह हम उत्तर देवें (कहें) !

ते जदि करति कम्म यदि ये मिथ्यात्वादि प्रत्यय ही कर्म करते हैं तो करते रहें (रहने दो), इसमें जीव का क्या हानि-लाभ है ? जीव को उसमें कुछ भी हानि-लाभ नहीं है। शुद्धनिश्चयनय से यह सम्मत ही है कि, मिथ्यात्व-रागादि भाव जीव के नहीं हैं, क्योंकि आगम का वचन हे कि **'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'** याने शुद्धनय से (अभेदवृत्ति से) निगोद से लेकर सिद्ध तक सभी जीव शुन्द्र हैं।

शका - यदि कोई मत ऐसा मानता है कि जीव मिथ्यात्व के उदय में मिथ्यात्वी होकर मिथ्यात्व रागादि भावकर्म को जिस प्रकार भोगता है उसी प्रकार उनका कर्ता भी है ?

समाधान - आपका कहना ठीक नहीं है। **णवि तेसि वेदगो आदा** क्योंकि शुद्धनिश्चयनय से आत्मा इन कर्मों का भोक्ता भी नहीं है, और जब भोक्ता नहीं है तव कर्ता भी कैसे होगा ? किसी तरह से भी नहीं। याने शुन्द्रनिश्चयनय से (अभेदवृत्ति से) वह रागादि भावकर्मों का कर्ता-भोक्ता नहीं है, ऐसा सम्मत ही है।

अथवा जो एकात से जीव को रागादि भावों का अकर्ता कहते हैं, उन लोगों के मत को दूषण देते हैं।

अथ **गुणसण्णिदा दु एदे कम्म कुव्वति पच्चया जम्हा** तत स्थित गुणस्थानसज्ञिता प्रत्यया एते कर्मम् कुर्वन्तीति यस्मादेव पूर्वसूत्रेण भणित। **तह्मा जीवो कत्ता गुणा य कुव्वति कम्माणि** तस्मात् शुद्धनिश्चयेन तेपा कर्मणा जीव कर्ता न भवति। गुणस्थानसज्ञिता प्रत्यया एव कर्मम् कुर्वन्तीति सम्मतमेव। एव शुद्धनिश्चयेन प्रत्यया एव कर्म कुर्वन्तीति व्याख्यानरूपेण गाथाचतुप्टय गतम्।। ११६, ११७, ११८, ११९।।

अथ न च जीवप्रत्यययोरेकत्वमेकातेनेति कथयति -

जह जीवस्स अणण्णुवओगो कोहो वि तह जदि अणण्णो। (११३)
जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्ण।।१२०।।

एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाजीवो। (११४)
अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माण।।१२१।।

अह पुण अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा। (११५)
जह कोहो तह पच्चय कम्म णोकम्ममवि अण्ण।।१२२।।

शका - वह कैसे ?

समाधान - यदि जीव एकात से अकर्ता है, तव जैसे शुद्धनिश्चयनय से अकर्ता हे, वैसे व्यवहारनय से भी अकर्ता है, ऐसा अर्थ होता है। इसलिये सर्वथा अकर्तृत्व मानने से ससार का अभाव होता है, यह एक दूषण आता है। और उनके मत में जीव वेदक भी नहीं होता हे, यह दूसरा दूषण आता हे। और यदि **साख्य** आत्मा को भोक्ता मानते हें तो उनके स्वमत का व्याघात होता हे। यह भी दूषण आता है।

गुणसण्णिदा दु एदे कम्म कुव्वति पच्चया जम्हा इसलिये यह सिद्ध हुआ कि गुणस्थान सज्ञावाले जो प्रत्यय हैं वे ही कर्मो को करते हैं जैसा कि पूर्व गाथा में कहा है। **तम्हा जीवोऽकत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि** इसलिये शुद्धनिश्चयनय से जीव उन कर्मो का कर्ता नहीं है। गुणस्थान सज्ञावाले प्रत्यय ही कर्मों को करते हैं, यह सम्मत ही हे।

इस प्रकार शुद्धनिश्चयनय से प्रत्यय ही कर्मो को करते हैं, इस तरह से व्याख्यान करने वाली चार गाथायें पूर्ण हुई।।११६, ११७, ११८, ११९।।

अव **एकात से जीव और प्रत्ययों का एकत्व नहीं है,** ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(जह)** जैसे **(जीवस्स)** जीव के **(अणण्णुवओगो)** ज्ञानदर्शनोपयोग अभिन्न है **(तह)** उसी प्रकार **(जदि)** यदि **(कोहो वि)** क्रोध भी **(अणण्णो)** जीव से अभिन्न हो जाय तो **(एव)** इस प्रकार **(जीवस्साजीवस्स य)** जीव और अजीव का **(अणण्णत्त)** अनन्यत्व **(आवण्ण)** प्राप्त हो जाता है।

(एव च) ओर ऐसा होने पर **(इह)** इस लोक में **(जो दु)** जो **(जीवो)** जीव है **(सो एव दु)** वह ही **(णियमदो)** नियम से **(तहा)** उसी प्रकार **(अजीवो)** अजीव हो जायेगा। **(पच्चयणोकम्मकम्माण)** प्रत्यय, नोकर्म और कर्मों के **(एयत्ते)** एकत्व में भी **(अय दोसो)** यही दोष आता हे।

जह जीवस्स अणण्णुवओगो यथा जीवस्यानन्यस्तन्मयो ज्ञानदर्शनोपयोग। कस्मात् ? अनन्यवेद्यत्वात् अशक्यविवेचनत्वाच्चाग्नेरुष्णत्ववत्। **कोहो वि तह जदि अणण्णो** तथा क्रोधोऽपि यद्यनन्यो भवत्येकातेन तदा कि दूपण ? **जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्ण** एवमभेदे सति सहजशुद्धाखडैकज्ञानदर्शनोपयोगमयजीवस्याजीवस्य चैकत्वमापन्नमिति।

अथ **एवमिह जो दु जीवोसो चेव दु णियमदो तहाजीवो** एव पूर्वोक्तसूत्रव्याख्यानक्रमेण य एव जीव स एव तथैवाजीव भवति नियमान्निश्चयात्। तथा सति जीवाभावाद् दूपण प्राप्नोति। **अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्म कम्माण** अयमेव च दोपो जीवाभावरूप । कस्मिन् सति ? एकातेन निरजननिजानन्दैकलक्षणजीवेन सहैकत्वे सति। केपा ? मिथ्यात्वादिप्रत्ययनोकर्मकर्मणामिति।

अथ प्राकृतलक्षणवलेन प्रत्ययशव्दस्य ह्रस्वत्वमिति। **अह पुण अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा** अथ पुनरभिप्रायो भवता पूर्वोक्तजीवाभावदूपणभयात् अन्यो भिन्न क्रोधो जीवादन्यश्च विशुद्धज्ञानदर्शनमय आत्मा क्रोधात्सकाशात्। **जह कोहो तह पच्चय कम्म णोकम्ममवि अण्ण** यथा जड क्रोधो निर्मलचैतन्यस्वभावजीवाद्भिन्नस्तथा प्रत्ययकर्मनोकर्माण्यपि भिन्नानि शुद्धनिश्चयेन सम्मत एव।

(अह पुण) अथवा फिर (इस दोष के भय से ऐसा मानो कि) **(कोहो)** क्रोध **(अण्णो)** अन्य है और **(उवओगप्पगो)** उपयोगात्मक **(चेदा)** आत्मा **(अण्ण)** अन्य **(हवदि)** है तो **(जह)** जैसे **(कोहो)** क्रोध अन्य है **(तह)** उसी प्रकार **(पच्चय)** प्रत्यय **(कम्म)** कर्म और **(णोकम्ममवि)** नोकर्म भी **(अण्ण)** अन्य है।

टीकार्थ - **जह जीवस्स अणण्णुवओगो** जैसे अग्नि और उष्णता का तादात्म्य सवध है, उसी तरह जीव ओर ज्ञानदर्शनोपयोग का तादात्म्य सवध है, क्योंकि जैसे उष्णता और अग्नि को भिन्न नहीं कर सकते हैं, उसी तरह ज्ञानदर्शनोपयोग और जीव को भिन्न नहीं कर सकते हैं। यह अभिन्नता अनुभव में आती है (प्रत्यक्ष है)।

शका - **कोहो वि तह जदि अणण्णो** इसी प्रकार यदि एकात से क्रोध भी जीव के साथ तादात्म्य है, ऐसा माना जाय तो क्या दोष है ?

समाधान - **जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्ण** इस प्रकार एकात से क्रोध ओर जीव का तादात्म्य सवध मानने से सहज शुद्ध-अखड-एक-ज्ञानदर्शनोपयोगमय जीव और अजीव को एकत्व प्राप्त होता है। **एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाजीवो** इस प्रकार पूर्व गाथा में किये कथन के अनुसार ही जो जीव है वही अजीव है, ऐसा निश्चय से मानना पडेगा। और उस मान्यता से जीव का अभाव होगा, यह दूषण आता है। **अयमेयत्ते दोसो पच्चय णोकम्म कम्माण** और जीव का अभाव मानना यह वडा दोष है, क्योंकि एकात से निरजन, निजानदरूप, एक लक्षणवाले जीव के साथ मिथ्यात्वादि प्रत्यय, नोकर्म, कर्म का तादात्म्य सवध हो जायेगा (जो कि प्रत्यक्ष वस्तुस्थिति से विरुद्ध है)। **यहाँ प्राकृत गाथा में प्राकृतभाषा के लक्षण के कारण प्रत्यय शब्द ह्रस्व एकवचन ही है।**

अह पुण अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा अव पूर्वोक्त दोष से वचने के लिये फिर आपका अभिप्राय ऐसा हो कि क्रोध जीव से भिन्न है और विशुद्धज्ञानदर्शनमय आत्मा क्रोध से भिन्न है।

किंच, शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्याकर्तृत्वमभोक्तृत्व च क्रोधादिभ्यश्च भिन्नत्व च भवतीति व्याख्याने कृते सति द्वितीयपक्षे व्यवहारेण कर्तृत्व भोक्तृत्व च क्रोधादिभ्यश्चाभिन्नत्व च लभ्यते एव। कस्मात् ? निश्चय व्यवहारयो परस्परसापेक्षत्वात्। कथमिति चेत् ? **यथा दक्षिणेन चक्षुषा पश्यत्यय देवदत्त इत्युक्ते वामेन न पश्यतीत्यनुक्तसिद्धमिति**। ये पुनरेव परस्परसापेक्षनयविभाग न मन्यन्ते साख्यसदाशिवमतानुसारिणस्तेषा मते यथा शुद्धनिश्चयनयेन कर्ता न भवति क्रोधादिभ्यश्च भिन्नो भवति तथा व्यवहारेणापि। ततश्च क्रोधादिपरिणमनाभावे सति सिद्धानामिव कर्मवन्धाभाव, कर्मवन्धाभावे ससाराभाव, ससाराभावे सर्वदा मुक्तत्व प्राप्नोति। स च प्रत्यक्षविरोध ससारस्य प्रत्यक्षेण दृश्यमानत्वादिति। एव प्रत्ययजीवयोरेकातेनैकत्वनिराकरणरूपेण गाथात्रय गतम्।

अत्राह शिष्य - शुद्धनिश्चयेनाकर्ता व्यवहारेण कर्तेति वहुधा व्याख्यात, तत्रैव सति यथा द्रव्यकर्मणा व्यवहारेण कर्तृत्व तथा रागादिभावकर्मणा च द्वयोर्द्रव्यभावकर्मणोरेकत्व प्राप्नोतीति ? नेव। रागादिभावकर्मणा योऽसौ व्यवहारस्तस्याशुद्धनिश्चयसज्ञा भवति द्रव्यकर्मणा भावकर्मभि सह तारतम्यज्ञापनार्थम्। कथ तारतम्यमिति चेत् ? द्रव्यकर्माण्यचेतनानि भावकर्माणि च चेतनानि तथापि शुद्धनिश्चयापेक्षया अचेतनान्येव। यत कारणादशुद्धनिश्चयोऽपि शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव। अयमत्र भावार्थ। द्रव्यकर्मणा कर्तृत्व भोक्तृत्व चानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण रागादिभावकर्मणा चाशुद्धनिश्चयेन। स च शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एवेति। एव पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना पीठिकारूपे महाधिकारे सप्तगाथाभि चतुर्थोऽन्तराधिकार समाप्त ।।१२०, १२१, १२२।।

जह कोहो तह पच्चय कम्म णोकम्ममवि अण्ण जैसे जड क्रोध निर्मल चैतन्यस्वभाव वाले जीव से भिन्न है वैसे ही मिथ्यात्वादि प्रत्यय, कर्म तथा नोकर्म भी जीव से भिन्न हैं, यह कथन शुद्ध निश्चयनय से सम्मत ही है।

और कहते हैं कि, शुद्धनिश्चयनय से (अभेदवृत्ति से) जीव का क्रोध के वारे में अकर्तृत्व और अभोक्तृत्व है, और जीव क्रोध से भिन्न है, ऐसा कथन करते (ऐसी मान्यता रखते) समय दूसरी दृष्टि से-व्यवहारनय से जीव का क्रोध के वारे में कर्तृत्व और भोक्तृत्व, है और जीव क्रोध से अभिन्न है, यह मान्य है।

शका - यह केसे मान्य है ?

समाधान - निश्चयनय का कथन और व्यवहारनय का कथन परस्पर सापेक्ष होता है।

शका - यह सापेक्षपना कैसे होता है ?

समाधान - जैसे किसी ने कहा कि देवदत्त अपनी दाहिनी ऑख से देखता है, तव नहीं कहते हुए भी यह सिद्ध होता है कि देवदत्त अपनी वार्यी ऑख से नहीं देखता है। (उसी तरह निश्चयनय का कथन और व्यवहारनय का कथन परस्पर सापेक्ष होता है।)

और जो साख्य तथा सदाशिव मतानुसारी लोग इस प्रकार के परस्पर सापेक्ष नय विभाग को नहीं मानते हैं, उनके मत में जेसे शुद्धनिश्चयनय से जीव क्रोधादि का कर्ता नहीं है और जीव क्रोधादि से भिन्न है, वैसे ही व्यवहारनय से भी जीव क्रोधादि का कर्त्ता नहीं है और जीव क्रोध से भिन्न है।

अत पर 'जीवे ण सय बद्ध' इत्यादि गाथामादि कृत्वा गाथाष्टकपर्यंत साख्यमतानुसारिशिष्य-सवोधनार्थम् जीवपुद्‌गलयोरेकातेनापरिणामित्व निषेधयन् सन् कथचित् परिणामित्व स्थापयति। तत्र गाथाष्टकमध्ये पुद्‌गलपरिणामित्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयम्। तदनतर जीवपरिणामित्वमुख्यत्वेन गाथापचकमिति पचमस्थले समुदायपातनिका।

अथ साख्यमतानुयायिशिष्य प्रति पुद्‌गलस्य कथचित्परिणामस्वभावत्व साधयति -

जीवे ण सय बद्ध ण सय परिणमदि कम्मभावेण। (११६)
जदि पुग्गलदव्वमिण अप्परिणामी तदा होदि।। १२३।।
कम्मइयवग्गणासु य अपरिणमतीसु कम्मभावेण। (११७)
ससारस्स अभावो पसज्जदे सखसमओ वा।। १२४।।
जीवो परिणामयदे पुग्गलदव्वाणि कम्मभावेण। (११८)
ते सयमपरिणमते कह तु परिणामयदि णाणी[१]।। १२५।।

इसलिये क्रोधादिरूप परिणमन का अभाव होने पर सिद्ध जीवों की तरह (ससारी जीव का) व्यवहार से भी कर्मवध का अभाव हो जायेगा। (ससार में परिभ्रमण करने वाले को) कर्मवध के अभाव में ससार का अभाव मानना होगा। ससार के अभाव में सदा ही मुक्तपने का प्रसग आयेगा, जो कि प्रत्यक्ष में विरोध है क्योंकि ससार तो प्रत्यक्ष देखने में आता है। इस तरह प्रत्यय और जीव दोनों में एकात से एकत्व मानने वाले के निराकरण करने वाली तीन गाथायें पूर्ण हो गई।

कोई शिष्य पूछता है - आपने बहुत वार ऐसा कहा है कि शुद्ध निश्चयनय से जीव क्रोधादि का अकर्ता है और व्यवहारनय से कर्ता है, तव ऐसा मानने पर जैसे व्यवहारनय से जीव द्रव्यकर्मों का कर्ता है वैसे ही व्यवहारनय से रागादि भावकर्मों का भी कर्ता है, तो द्रव्यकर्म और भावकर्म इन दोनों में एकत्व प्राप्त होता है ?

समाधान - ऐसा नहीं है। द्रव्यकर्म और भावकर्म इनमें एकत्व नहीं है, भिन्न-भिन्न ही हैं। जीव को रागादि भावकर्मों का कर्ता कहने वाले इस व्यवहारनय का ही नाम अशुद्ध निश्चयनय है, क्योंकि वह अचेतन द्रव्यकर्मों का चेतन भावकर्मों के साथ तारतम्य दिखलाता है।

शका - किस प्रकार का तारतम्य दिखलाता है ?

समाधान - द्रव्यकर्म अचेतन है और भावकर्म चेतन है। तथापि शुद्धनिश्चयनय की (अभेदवृत्ति की) अपेक्षा से भावकर्म भी अचेतन ही है। इस कारण से अशुद्धनिश्चयनय भी शुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा से व्यवहारनय ही है। भावार्थ यह है कि अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारनय की अपेक्षा से जीव द्रव्यकर्मों का कर्ता और भोक्ता है, अशुद्धनिश्चयनय से जीव रागादि भावकर्मों का कर्ता और भोक्ता है। और शुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा से अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारनय और अशुद्धनिश्चयनय दोनों व्यवहारनय ही हैं। इस प्रकार पुण्यपापादि सप्तपदार्थों का कथन करनेवाले **पीठिकारूप महाधिकार** में सात गाथाओं के द्वारा चतुर्थ अतराधिकार पूर्ण हुआ।। १२०, १२१, १२२।।

---

१ पाठान्तर - चेदा

अह सयमेव हि परिणमदि कम्मभावेण पुग्गल दव्व। (११९)
जीवो परिणामयदे कम्म कम्मत्तमिदि मिच्छा।। 1
णियमा कम्मपरिणद कम्म चिय होदि पुग्गल दव्व। (१२०)
तह त णाणावरणादिपरिणद मुणसु तच्चेव।। 2

जीवे ण सय बद्ध जीवे अधिकरणभूते स्वय स्वभावेन पुद्गलद्रव्यकर्मवद्ध नास्ति। कस्मात् ? सर्वदा जीवस्य शुद्धत्वात्। **ण सय परिणमदि कम्मभावेण** न च स्वय स्वयमेव कर्मभावेन द्रव्यकर्मपर्यायेण परिणमति। कस्मात् ? सर्वथा नित्यत्वात्। **जदि पुग्गलदव्वमिण** एवमित्थभूतमिद पुद्गलद्रव्य यदि चेद्भवता साख्यमतानुसारिणा **अप्परिणामी तदा होदि** तत कारणात्तत्पुद्गलद्रव्यमपरिणाम्येव भवति। ततश्चापरिणामित्वे सति कि दूषण भवति? अथ **कम्मइ वग्गणासु य अपरिणमतीसु कम्मभावेण** कार्मणवर्गणाभिरपरिणमतीभि कर्मभावेन द्रव्यकर्मपर्यायेण तदा **ससारस्स अभावो पसज्जदे सखसमओ वा** ससारस्याभाव प्रसजति प्राप्नोति हे शिष्य, साख्यसमयवदिति।

इसके आगे **'जीवे ण सय बद्ध'** इत्यादि गाथा से शुरु करके आठ गाथाओं तक साख्यमत का अनुसरण करने वाले शिष्य को सवोधन करने के लिये जीव और पुद्गल के एकात से अपरिणामीपन का निषेध करते हुए इनमें कथचित् परिणामीपन स्थापित करते हैं। उन आठ गाथाओं में पुद्गल के परिणामीपन की मुख्यता से कथन करने वाली तीन गाथायें हैं। तदनतर जीव के परिणामीपन की मुख्यता से कथन करनेवाली पॉच गाथायें हैं। इस तरह पचमस्थल में समुदायपातनिका है।

अव **साख्यमतानुसारी शिष्य के प्रति** पुद्गल के कथचित् परिणामित्व स्वभाव को सिद्ध करते हैं -

गाथार्थ - **(जदि)** यदि **(पुग्गलदव्व)** पुद्गलद्रव्य **(जीवे)** जीव में **(सय)** स्वय **(ण बद्ध)** नहीं बधता है और **(कम्मभावेण)** कर्मभाव से **(सय)** स्वय **(ण परिणमदि)** परिणमन नहीं करता है **(तदा)** तव **(इण)** यह पुद्गलद्रव्य **(अप्परिणामी)** अपरिणामी **(होदि)** होता है।

(य) और **(कम्मइयवग्गणासु)** कार्मणवर्गणायें **(कम्मभावेण)** कर्मभाव से **(अपरिणमतीसु)** नहीं परिणमन करती (ऐसा माना जाय) तो **(ससारस्स)** ससार के **(अभावो)** अभाव का **(पसज्जदे)** प्रसग आता है **(वा)** अथवा **(सखसमओ)** साख्यमत का प्रसग आता है।

(जीवो) जीव **(पुग्गलदव्वाणि)** पुद्गलद्रव्यों को **(कम्मभावेण)** कर्मभाव से **(परिणामयदे)** परिणमन कराता हे, (ऐसा माना जाय तो) **(ते)** वे पुद्गलद्रव्य **(सय)** स्वय **(अपरिणमते)** परिणमन नहीं करते **(तु)** तो उनको **(णाणी)** यह ज्ञानी जीव **(कह)** कैसे **(परिणामयदि)** परिणमा सकता हे ?

(अह) अथवा **(पुग्गल दव्व)** पुद्गल द्रव्य **(सयमेव हि)** स्वय ही **(कम्मभावेण)** कर्मभाव से **(परिणमदि)** परिणमन करता है तो **(जीवो)** जीव **(कम्म)** कर्मरूप पुद्गलद्रव्य को **(कम्मत्त)** कर्ममय **(परिणामयदे)** परिणमन कराता हे **(इदि)** यह कहना **(मिच्छा)** मिथ्या सिद्ध होता है।

इसलिये **(णियमा)** निश्चय से **(कम्मपरिणद)** कर्मरूप परिणत **(पुग्गलदव्व)** पुद्गलद्रव्य **(कम्म चिय)** कर्म ही **(होदि)** होता हे **(तह)** इसी प्रकार **(णाणावरणादिपरिणद)** ज्ञानावरणादिरूप परिणमित **(त)** वह पुद्गलद्रव्य **(तच्चेव)** ज्ञानावरणादिकर्म ही है **(मुणसु)** ऐसा जानो।

अथ मत। **जीवो परिणामयदे पुग्गलदव्वाणि कम्मभावेण** जीव कर्ता कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्याणि ज्ञानावरणादिकर्मभावेन द्रव्यकर्मपर्यायेण हठात्परिणामयति तत कारणात्ससारभावदूषण न भवतीति चेत् ? **ते सयमपरिणम ते कह तु परिणामयदि णाणी** ज्ञानी जीव स्वयमपरिणममान सन् तत्पुद्गलद्रव्य कि स्वयमपरिणममान परिणममान वा परिणामयेत् ? न तावदपरिणममान परिणामयति **न च स्वतोऽसती शक्ति कर्तुमन्येन पार्यते।** यथा जपापुष्पादिक कर्तृ स्फटिके जनयत्युपाधि तथा काष्ठस्तभादौ कि न जनयतीति ? अथैकातेन परिणममान परिणामयति। तदपि न घटते।

न हि वस्तुशक्तय परमपेक्षते तर्हि जीवो निमित्तकर्तारमतरेणापि स्वयमेव कर्मरूपेण परिणमतु। तथा च सति कि दूषण ? घटपटस्तभादिपुद्गलाना ज्ञानावरणादिकर्मपरिणति स्यात्। स च प्रत्यक्षविरोध । तत स्थिता पुद्गलाना स्वभावभृता कथचित्परिणामित्वशक्ति तस्यां परिणामशक्तौ स्थिताया स पुद्गल कर्ता। य स्वस्य सबधिन ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपरिणाम पर्याय करोति तस्य स एवोपादानकारण कलशस्य मृत्पिडमिव। न च जीव स तु निमित्तकारणमेव हेयतत्त्वमिद। तस्मात्पुद्गलाद्व्यतिरिक्तशुद्ध परमात्मभावनापरिणताऽभेदरत्नत्रयलक्षणेन भेदज्ञानेन गम्यश्चिदानन्दैकस्वभावो निजशुद्धात्मैव शुद्धनिश्चयेनोपादेय भेदरत्नत्रयस्वरूप तु उपादेयमभेदरत्नत्रय-साधकत्वाद्व्यवहारेणोपादेयमिति। एव गाथात्रयशब्दार्थव्याख्यानेन **शब्दार्थो** ज्ञातव्य । व्यवहारनिश्चयरूपेण नयार्थो ज्ञातव्य । साख्य प्रति **मतार्थो** ज्ञातव्य । **आगमार्थस्तु** प्रसिद्ध । हेयोपादानव्याख्यानरूपेण **भावार्थोपि** ज्ञातव्य । इति शब्दनयमतागमभावार्थ व्याख्यानकाले यथासभव सर्वत्र ज्ञातव्या । एव पुद्गल परिणामस्थापनार्थमुख्यत्वेन गाथात्रय गतम्।।१२३, १२४, १२५।।

टीकार्थ - **जीवे ण सय बद्ध** पुद्गलद्रव्यरूप कर्म अधिकरणभूत जीव में न तो स्वय स्वभाव से वद्ध है, क्योंकि जीव तो सदा शुद्ध है। **ण सय परिणमदि कम्म भावेण** और पुद्गलद्रव्य स्वय अपने आपसे कर्मभाव से, द्रव्यकर्मपर्यायरूप से सर्वथा नित्य होने से परिणमन नहीं करता है। **जदि पुग्गलदव्वमिण अप्परिणामी** तदा होदि यदि इस प्रकार पुद्गलद्रव्य को अपरिणामी माना जाय तो आप साख्यमतानुसारी हो गये। इस तरह मानने से पुद्गलद्रव्य अपरिणामी ठहरता है।

शका - इस तरह पुद्गलद्रव्य के अपरिणामी होने से क्या दूषण आता है ?

समाधान - **कम्मइयवग्गणासु य अपरिणमतीसु कम्मभावेण ससारस्स अभावो पसज्जदे सखसमओ वा** हे शिष्य । कर्मभाव से-द्रव्यकर्मपर्यायरूप से पुद्गल का अपरिणमन मानने से (कार्मणवर्गणाओं का अपरिणमन होने से) उसी समय ससार का अभाव मानने का प्रसग आता हे और यह मत साख्यमत की तरह है।

जीवो परिणामयदे पुग्गलदव्वाणि कम्मभावेण यदि जीव हठ से कर्ता वनकर कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्य को ज्ञानावरणादिकर्मभावरूप- द्रव्यकर्मपर्यायस्वरूप परिणमन कराता है, इसलिये ससार के अभाव का दोष नहीं आता है ऐसा माना जाय तो वहाँ यह शका उपस्थित होती है कि, **ते सयमपरिणमते कह तु परिणामयदि णाणी** ज्ञानी जीव स्वय अपरिणामी होता हुआ स्वय अपरिणमनशील पुद्गलद्रव्य को परिणमाता है या कि स्वय परिणमनशील पुद्गलद्रव्य को परिणमाता है ? (याने वह पुद्गलद्रव्य स्वय अपरिणमनशील है या परिणमनशील है ?)

अथ साख्यमतानुसारिशिष्य प्रति जीवस्य कथचित्परिणामस्वभावत्व साधयनि -

ण सय बद्धो कम्मे ण सयं परिणमदि कोहमादीहि। (१२१)
जदि एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि।। १२६।।

इन दो विकल्पों में से प्रथम विकल्प मानोगे तो अपरिणमनशील- (पुद्गल) द्रव्य का परिणमन जीव नहीं करा सकता है क्योंकि **जहाँ जो शक्ति स्वय में नहीं है, वहाँ वह शक्ति दूसरे के द्वारा भी नहीं की जा सकती है** (यह सिद्धात है या यह अटल नियम है)। जैसे जपापुष्पादिक कर्ता होकर स्फटिकमणि में उपाधि पैदा कर सकता है वैसे काठ के खभे आदि में उपाधि क्यों पैदा नहीं कर सकता हे ?

(क्योंकि जैसे स्फटिकमणि का उपादान स्वच्छत्व शक्ति सहित होने से स्फटिकमणि लाल या काली उपाधिरूप परिणत होती है, वैसे काष्ठ स्तभ का उपादान स्वच्छत्व शक्ति रहित है।)

यदि दूसरा विकल्प कहोगे कि, एकात से परिणमन करते हुए को ही परिणमाता हे, तो यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि **वस्तु की शक्तियाँ दूसरे की अपेक्षा नहीं रखती हैं।**

शका - तो फिर जीवनिमित्तकर्ता के विना भी पुद्गल को स्वयमेव कर्मरूप से परिणमन करने दो। ऐसा होने पर उसमें क्या दोष आता है ?

समाधान - घट पट स्तभादि पुद्गलों की ज्ञानावरणादिकर्मरूप परिणति होगी। और वह तो प्रत्यक्ष से विरोधरूप है। (क्योंकि वे घट पटादि अभी कर्मरूप परिणमन करने योग्य कार्माण वर्गणारूप नहीं हैं।) इसलिये यह सिद्ध हुआ कि पुद्गलों की स्वभावभूत कथचित् परिणामित्व शक्ति है। उस परिणामशक्ति में जो पुद्गल स्थित है वह पुद्गल ही उस परिणाम का कर्ता है। जो अपने सबधी (कार्मणवर्गणा योग्य पुद्गल) ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मपरिणाममय पर्याय को करता है, वह पुद्गल ही उस (पर्याय) का उपादानकारण है, जैसे कलश की मिट्टी के पिड की तरह (याने मिट्टी ही स्वय व्याप्यव्यापक रूप से परिणमन करके कलश वनती है वहाँ कुभकारचीवरादि वस्तु अकिचित्कर है)। उसी तरह कर्म योग्य पुद्गलद्रव्य ही स्वय उपादानमय कर्ता वनकर ज्ञानावरणादिकर्ममय परिणमन करता है, वहाँ वह जीव कर्ता नहीं है, वह जीव अकिंचित्कर हे, वह जीव निमित्तमात्र कारण हे, वह निमित्तमात्र कारण ही यह हेयतत्त्व है।

इसलिये पुद्गलद्रव्य से भिन्न शुद्धपरमात्मभावना में परिणत अभेदरत्नत्रयलक्षणवाले भेदज्ञान से अनुभव मे आने वाला चिदानद-एक-स्वभाव-निजशुद्धात्मा ही शुद्धनिश्चयनय से उपादेय है, लेकिन भेदरत्नत्रयस्वरूप को अभेदरत्नत्रय का साधककारण उपचार से कहने से भेदरत्नत्रय उपादेय कहा जाता है। (भेदरत्नत्रय को साधन और निश्चय को साध्य उपचार से कहा जाता है।) इस प्रकार से तीन गाथाओं के शब्दार्थव्याख्यान से शब्दार्थ जानना चाहिये, व्यवहारनिश्चयरूप से नयार्थ को भी जानना चाहिये। साख्यमतवाले के सबोधनार्थ (साख्यमतवाले को समझाने के लिये) मतार्थ को जानना चाहिये। आगम का अर्थ स्पष्ट प्रसिद्ध ही है। हेय और उपादेयतत्व के व्याख्यानरूप से भावार्थ भी जानना योग्य है।

अपरिणमतम्हि सय जीवे कोहादिएहि भावेहि। (१२२)
ससारस्स अभावो पसज्जदे सखसमओ वा ।।१२७।।
पोग्गलकम्म कोहो जीव परिणामएदि कोहत्त। (१२३)
त सयमपरिणमत कह परिणामएदि कोहत्त।।१२८।।
अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धि। (१२४)
कोहो परिणामयदे जीव कोहत्तमिदि मिच्छा।।१२९।।
कोहुवजुत्तो कोहो माणुवजुत्तो य माणमेवादा। (१२५)
माउवजुत्तो माया लोहुवजुत्तो हवदि लोहो।।१३०।।

जिस प्रकार (१) शव्द, (२) नय, (३) मत, (४) आगम और (५) भावार्थ इन पॉच अर्थो में यहाँ व्याख्यान हुआ है उसी प्रकार शव्द, नय, मत, आगम और भावार्थ का व्याख्यान व्याख्यानकाल में यथा सभव सर्व ही स्थान में जानना चाहिये।

इस प्रकार पुद्गल को परिणमनशील वताने की मुख्यता से तीन (पाच) गाथाओं का व्याख्यान पूर्ण हुआ।।१२३, १२४, १२५।।

साख्यमतानुसारी शिष्य को कहते हैं कि, कथचित् परिणमन करना यह जोव का स्वभाव है -

गाथार्थ - **(जदि)** यदि **(तुज्झ)** तेरी ऐसी मान्यता है कि **(एस)** यह **(जीवो)** जीव **(कम्मे)** कर्म में **(सय)** स्वय **(बद्धो ण)** वधा नहीं है और **(कोहमादीहि)** क्रोधादि भावों से **(सय)** स्वय **(ण परिणमदि)** परिणमन नहीं करता है **(तदा)** तव तो वह **(अप्परिणामी)** अपरिणामी **(होदि)** सिद्ध होता है,

और **(कोहादिएहि)** क्रोधादि **(भावेहि)** भावरूप से **(जीवे)** जीव के **(सय)** स्वय **(अपरिणमतम्हि)** परिणमन न करने पर **(ससारस्स)** ससार के **(अभावो)** अभाव का **(पसज्जदे)** प्रसग आ जाएगा **(वा)** अथवा **(सखसमओ)** साख्यमत का प्रसग आ जाएगा।

यदि कहेगा कि **(पोग्गलकम्म)** पुद्गलकर्मरूप **(कोहो)** क्रोध **(जीव)** जीव को **(कोहत्त)** क्रोधभावरूप **(परिणामएदि)** परिणमाता है, तो **(सय)** स्वय **(अपरिणम)** न परिणमन करने वाले **(त)** जीव को **(कोहत्त)** क्रोधरूप **(कह)** किस प्रकार **(परिणामएदि)** परिणमन करा सकता है ?

(अह) अथवा **(अप्पा)** आत्मा **(सय)** स्वय **(कोहभावेण)** क्रोधभाव से **(परिणमदि)** परिणमन करता है **(दे)** यदि तेरी **(एसबुद्धि)** ऐसी मान्यता है तो **(कोहो)** क्रोध **(जीव)** जीव को **(कोहत्त)** क्रोधभाव रूप **(परिणामयदे)** परिणमन कराता है **(इदि)** यह कहना **(मिच्छा)** मिथ्या ठहरेगा।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि **(कोहुवजुत्तो)** क्रोध में उपयुक्त जिसका उपयोग क्रोधाकार परिणत हुआ है ऐसा **(आदा)** आत्मा **(कोहो)** क्रोध ही है, **(माणुवजुत्तो)** मान में उपयुक्त आत्मा **(माणमेव)** मान ही है, **(माउवजुत्तो)** माया में उपयुक्त आत्मा **(माया)** माया ही है, **(लोहुवजुत्तो)** लोभ में उपयुक्त आत्मा **(लोहो)** लोभ ही **(हवदि)** है।

ण सय बद्धो कम्मे स्वय स्वभावेन कर्मण्यधिकरणभूते एकातेन बद्धो नास्ति, सदा मुक्तत्वात्। **ण सय परिणमदि कोहमादीहि** न च स्वय स्वयमेव द्रव्यकर्मोदयनिरपेक्षो भावक्रोधादिभि परिणमति। कस्मादेकातेनापरिणामित्वात्। **जदि एस तुम्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि** यदि चेदेष जीव प्रत्यक्षीभूत तव मताभिप्रायेणेत्थभूत स्यात्तत कारणादपरिणाम्येव भवति। अपरिणामित्वे सति कि दूषण ? अथ- अपरिणममाने सति तस्मिन् जीवे स्वय स्वयमेव भावक्रोधादिपरिणामै तदा ससारस्याभाव प्राप्नोति हे शिष्य! साख्यसमयवत्।

अथ मत **पुग्गलकम्म कोहो जीव परिणामएदि कोहत्त** पुद्गलकर्मरूपो द्रव्यक्रोध उदयागत कर्ता जीव कर्मतापन्न हठात्परिणामयति भावक्रोधत्वेनेति चेत् ? **त सयमपरिणमत कह परिणामएदि कोहत्त** अथ कि स्वयमपरिणममान परिणममान वा परिणामयेत् ? न तावत्स्वयमपरिणममान परिणामयेत्। कस्मात् ?

न हि स्वतोऽसती शक्ति कर्तुमन्येन पार्यते। न हि जपापुष्पादय कर्तारो यथा स्फटिकादिषु जनयत्युपाधि तथा काष्ठस्तभादिष्वपि। अथैकातेन परिणममान वा तर्हि उदयागतद्रव्यक्रोधनिमित्तमतरेणापि भावक्रोधादिभि परिणमतु। कस्मादिति चेत् ? **न हि वस्तुशक्तय परमपेक्षते**। तथा च सति मुक्तात्मनामपि द्रव्यक्रोधादिकर्मोदयनिमित्ताभावेऽपि भावक्रोधादय प्राप्नुवति। न च तदिष्टमागमविरोधात्।

टीकार्थ - ण सय बद्धो कम्मे जीव स्वय अपने स्वभाव से अधिकरणभूत कर्म में सर्वथा वधा हुआ नहीं है, क्योंकि एकात से सदा मुक्त है। **ण सय परिणमदि कोहमादीहि** और जीव अपने आप ही द्रव्यकर्मोदय के विना भावक्रोधादि भाव के द्वारा परिणमन नहीं करता है, क्योंकि एकात से जीव अपरिणामी है। **जदि एस तुम्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि** यदि इस प्रकार मान्यता हो तो यह प्रत्यक्षीभूत ससारी जीव भी आपके अभिप्राय से अपरिणामी ही होगा।

शका - जीव के अपरिणामी होने से क्या दोष आता है ?

समाधान - **अपरिणम तम्हि सय जीवे कोहादिएहि भावेहि ससारस्स अभावो पसज्जदे सख समओ वा** अपरिणामी मानने से उस जीव में अपने आप ही भावक्रोधादि द्वारा परिणमन न करने से ससार का अभाव प्राप्त होगा। हे शिष्य ! यह मान्यता साख्य आगम की तरह है।

यदि ऐसा माना जाय कि, **पुग्गलकम्म कोहो जीव परिणामएदि कोहत्त** उदयागत पुद्गलकर्म रूप द्रव्यक्रोध कर्ता (उपादान) बनकर हठ से जीव को भावक्रोधमय परिणमन कराता है, **त सयमपरिणम त कह परिणामएदि कोहत्त** तो क्या स्वय अपरिणममान को अथवा स्वय परिणममान को परिणमन कराता है ?

प्रथम पक्ष में तो स्वय अपरिणममान को परिणमित नहीं करा सकता है, क्योंकि जिसमें जो शक्ति नहीं है वह दूसरे के द्वारा कभी भी उत्पन्न नहीं की जा सकती है। जैसे जपापुष्पादिक कर्ता (उपादान) वनकर स्फटिकादि मणि में उपाधि (उपरजकता) उत्पन्न नहीं कर सकती है। उसी तरह काष्ठस्तभादि में भी जपापुष्पादिक (कर्ता याने) उपादान बनकर उपाधि उत्पन्न नहीं कर सकती है। (तो जपापुष्प के सानिध्य में स्फटिकमणि स्वय उपाधि धारण करता है और काष्ठस्तभादि उपाधि धारण नहीं करता है।)

अथ मत। अह **सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धि** अथ पूर्वदूषणभयात्स्वयमेवात्मा द्रव्यकर्मोदयनिरपेक्षो भावक्रोधरूपेण परिणमत्येषा तव बुद्धि हे शिष्य। **कोहो परिणामयदे जीव कोहत्तमिदि मिच्छा** तर्हि द्रव्यक्रोध कर्ता जीवस्य भावक्रोधत्व परिणामयति करोति यदुक्त पूर्वगाथाया तद्वचन मिथ्या प्राप्नोति। तत स्थित-घटाकारपरिणता मृत्पिडपुद्गला घट इव अग्निपरिणतोऽय पिडोऽग्निवत् तथात्मापि क्रोधोपयोगपरिणत क्रोधो भवति, मानोपयोगपरिणतो मानो भवति, मायोपयोगपरिणतो माया भवति, लोभोपयोगपरिणतो लोभो भवतीति स्थिता सिद्धा जीवस्यस्वभावभूता परिणामशक्ति। तस्या परिणामशक्तो स्थिताया स जीव कर्ता य परिणाममात्मन करोति तस्य स एवोपादानकर्त्ता द्रव्यकर्मोदयस्तु निमित्तमात्रमेव। तथैव च स एव जीवो निर्विकारचिच्चमत्कारशुद्धभावेन परिणत सन् सिद्धात्मापि भवति।

किच विशेष - **'जाव ण वेदि विसेसतर'** इत्याद्यज्ञानिज्ञानिजीवयो सक्षेपव्याख्यानरूपेण गाथाषट्क यदुक्त पूर्वम् पुण्यपापादिसप्तपदार्थजीवपुद्गलसयोगपरिणामनिवृत्तास्ते च जीवपुद्गलयो कथचित्परिणामित्वे सति घटते। तस्यैव कथचित्परिणामित्वस्य विशेष व्याख्यानमिदम्।

अथवा दूसरे पक्ष में (यदि) एकात से परिणमनशील हुए जीव को पौद्गलिक कर्म परिणमन कराता है तो उदयागत द्रव्यक्रोध के निमित्त के बिना भी भावक्रोधादि रूप जीव का परिणमन हो जावे। क्योंकि वस्तु की शक्तियाँ दूसरे की अपेक्षा नहीं किया करती, ऐसा सिद्धात है (ऐसा अटल नियम है)। ऐसा मानने पर मुक्तात्मा को भी द्रव्यक्रोधादि कर्मोदय के निमित्त के बिना भी भावक्रोधादि प्राप्त होंगे। वह इष्ट नहीं है क्योंकि आगम के विरुद्ध है।

इस तरह अह **सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धी** पूर्व दूषण के भय से (निरपेक्ष) स्वयमेव आत्मा द्रव्यकर्म के बिना भाव-क्रोधादिरूप से परिणमन करता है, ऐसी आपकी मति है, तो फिर हे शिष्य। **कोहो परिणामयदे जीव कोहत्तमिदि मिच्छा** द्रव्यक्रोध कर्ता बनकर जीव को भावक्रोधमय परिणमन कराता है, यह जो पूर्व गाथा मे कहा गया है, वह आपका वचन मिथ्या होगा।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि जैसे घटाकार परिणत मिट्टी का पुद्गल पिड ही घट है, और जैसे अग्नि से परिणत लोहे का गोला अग्नि है, **कोहुवजुत्तो कोहो माणुवजुत्तो य माणमेवादा माउवजुत्तो माया लोहुवजुत्तो हवदि लोहो** उसी तरह क्रोध उपयोग से परिणत आत्मा क्रोध है, मानोपयोग से परिणत आत्मा मान है, मायोपयोग से परिणत आत्मा माया है, लोभोपयोग से परिणत आत्मा लोभ है। इसलिये ऐसा सिद्ध होना ठहरता है कि जीव की स्वभावभूत परिणामशक्ति है। उस परिणमन शक्ति में स्थित रहने पर वह जीव कर्ता बनकर आत्मा का जो परिणमन करता है उसका वह ही उपादान कर्ता है, और द्रव्यकर्मोदय तो निमित्तमात्र ही है (अकिंचित्कर है)। उसी प्रकार वह ही जीव निर्विकारचैतन्यचमत्कार रूप शुद्धभाव से परिणत होने से सिद्धात्मा (कार्यसमयसार) भी होता है।

और कुछ विशेष कहते हैं कि **'जाव ण वेदि विसेसतर'** इत्यादि अज्ञानी-ज्ञानी जीवों के सक्षेप व्याख्यानरूप से ६ गाथाओं का कथन पूर्व में गाथा ७४ से गाथा ७९ तक हुआ। वहाँ कहे हुए पुण्यपापादि सात पदार्थ जीव-पुद्गल के सयोग परिणाम में रचे जाते हैं और वे जीव-पुद्गल का कथचित् परिणामीपना होने से सिद्ध होते हैं। उस ही कथचित् परिणामीपना का यह विशेष व्याख्यान है।

अथवा **'सामण्णपच्चया खलु चउरो'** इत्यादि गाथासप्तके यदुक्त पूर्वम् सामान्यप्रत्यया एव शुद्धनिश्चयेन कर्म कुर्वन्तीति न जीव इति **जैनमतम्**। एकातेनाकर्तृत्वे सति साख्याना इव ससाराभावदूषणम् तस्यैव ससाराभावदूषणस्य विशेषदूषणमिदम्। कथमिति चेत् ? तत्रैकातेन कर्तृत्वाभावे सति ससाराभावदूषणम्। अत्र पुनरेकातेन परिणामित्वाभावे सति ससाराभावदूषणम्। यत कारणाद्भावकर्मपरिणामित्वमेव कर्तृत्व भोक्तृत्व च भण्यते। इति जीवपरिणामित्व व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथापचक गतम्। एव पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना पीठिकारूपे महाधिकारे जीवपुद्गलपरिणामित्व व्याख्यानमुख्यत्वेनाष्टगाथाभि पचमातराधिकार समाप्त ।।१२६ से १३०।।

तथाहि अथ **'जाव ण वेदि विसेसतर तु आदासवाण दोण्हपि। अण्णाणी तावदु'** इत्यादि गाथाद्वये तावदज्ञानी जीवस्वरूप पूर्वम् भणित, स चाज्ञानी जीवो यदा **'विसयकसायुवगाढ'** इत्याद्यशुभोपयोगेन परिणमति तदा पापास्रवबधपदार्थाना त्रयाणा कर्ता भवति।

यदा तु मिथ्यात्वकषायाणा मदोदये सति भोगाकाक्षारूपनिदान वधादिरूपेण दानपूजादिनिदान (दानपूजादिना) परिणमति तदा पुण्यपदार्थस्यापि कर्ता भवतीति पूर्वम् सक्षेपेण सूचितम्। **'जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव। णाद होदि विसेसतर तु'** इत्यादिगाथाचतुष्टयेन ज्ञानी जीवस्वरूप च सक्षेपेण सूचितम्।

अथवा **'सामण्णपच्चया खलु चउरो'** इत्यादि ७ गाथाओं में गाथा ११६ से गाथा १२२ तक पूर्व में कहे गये सामान्यप्रत्यय ही इस प्रकार शुद्धनिश्चयनय से कर्म को करते हैं, जीव नहीं करता है, ऐसा जैनमत है। एकातरूप अकर्तृत्व से साख्यमत में ससार के अभाव का दोष आता है, उस ससार अभाव के दोष का ही यह विशेष दोष है। कैसे ? वहॉ एकात से कर्तृत्व का अभाव होने से ससार के अभाव का यह दोष आता है।

यहॉ पुन एकात से परिणामीपना का अभाव होने से ससार के अभाव का दोप आता है, जिस कारण से भावकर्म के परिणामीपना को ही कर्तृत्व और भोक्तृत्व कहते हैं। इस तरह जीव के परिणामित्व के कथन की मुख्यता से ५ गाथायें पूर्ण हुई। इस प्रकार पुण्यपापादि सात पदार्थों के पीठिकारूप महाधिकार में जीव-पुद्गल के परिणामित्व के कथन की मुख्यता से ८ गाथाओं द्वारा पॉचवा अतराधिकार समाप्त हुआ।।१२६ से १३०।।

अब **'जाव ण वेदि विसेसतर तु आदासवाण दोण्हपि। अण्णाणी तावदु।'** इत्यादि (७४-७५) दो गाथाओं द्वारा जो पहले अज्ञानी जीव का स्वरूप कहा गया है वही अज्ञानी जीव जब 'विसयकसाओगाढो' इत्यादि (प्रवचनसार गाथा-१५८) विषयकषायमय अशुभोपयोग से परिणत होता है तब पाप, आस्रव और बध इन तीन पदार्थों का कर्ता होता है,

और जब वह अज्ञानी जीव मिथ्यात्व कषायों का मद उदय होते समय भोगाकाक्षारूप निदानवधादिरूप से दानपूजादिमय परिणमन करता है तब पुण्यपदार्थ का भी कर्ता होता है। यह कथन सक्षेप में पहले कहा गया है। और **'जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव। णाद होदि विसेसतर तु'** इत्यादि (गाथा ७६ से गाथा ७९ तक) चार गाथाओं में ज्ञानी जीव का स्वरूप सक्षेप में पहले कथन किया है।

वह ज्ञानी जीव शुद्धोपयोगभाव से परिणत अभेदरत्नत्रयलक्षण वाले भेदज्ञान से (अखड-अभेद की अनुभूति से) जब परिणत होता है, तब निश्चयचारित्र के साथ अविनाभावि वीतराग समयग्दृष्टि वीतरागसम्यग्दर्शनमय होकर सवर, निर्जरा, और मोक्ष इन तीन पदार्थों का कर्ता होता है। यह भी सक्षेप में पहले कहा गया है।

स च ज्ञानी जीव शुद्धोपयोगभावपरिणतोऽभेदरत्नत्रयलक्षणेन भेदज्ञानेन यदा परिणमति तदा निश्चय चारित्राविनाभावि वीतरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा सवरनिर्जरामोक्षपदार्थाना त्रयाणा कर्ता भवतीत्यपि सक्षेपेण निरूपित पूर्वम्। निश्चयसम्यक्त्वस्याभावे यदा तु सरागसम्यक्त्वेन परिणमति तदा शुद्धात्मानमुपादेय कृत्वा परपरया निर्वाणकारणस्य तीर्थकरप्रकृत्यादिपुण्यपदार्थस्यापि कर्ता भवतीत्यपि पूर्वम् निरूपित, तत्सर्वम् जीवपुद्गलयो कथचित्परिणामित्वे सति भवतीति तत्कथचित्परिणामित्वमपि पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना सक्षेपसूचनार्थम् पूर्वमेव सक्षेपेण निरूपितम्। पुनश्च जीवपुद्गलपरिणामित्वव्याख्यानकाले विशेषेण कथितम्। तत्रैव कथचित्परिणामित्वे सिद्धे सति अज्ञानिज्ञानिजीवयो गुणिनो पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना सक्षेपसूचनार्थम् सक्षेपव्याख्यान कृत।

इदानीं पुनरज्ञानमयगुणज्ञानमयगुणयो मुख्यत्वेन व्याख्यान क्रियते। न च जीवाजीवगुणिमुख्यत्वेनेति। किमर्थमिति चेत् ? तेषामेव पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना सक्षेपसूचनार्थमिति। तत्र **'जो सग तु मुइत्ता'** इत्यादिगाथामादि कृत्वा पाठक्रमेण गाथानवकपर्यन्त व्याख्यान करोति। तत्रादौ गाथात्रय ज्ञानभावमुख्यत्वेन तदनतर गाथाषट्क ज्ञानिजीवस्य ज्ञानमयो भावो भवत्यज्ञानिजीवस्याज्ञानमयो भावो भवतीति मुख्यत्वेन कथ्यत इति षष्ठातराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा-

---

जव निश्चय सम्यक्त्व (वुद्धिपूर्वक निर्विकल्प अनुभूति) के अभाव में याने सम्यग्दर्शनसहित वुद्धिपूर्वक सविकल्प अवस्था में परिणमन करता है, तव उस सविकल्प सरागसम्यक्त्व अवम्था में भी शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसी श्रद्धा है और लव्धिरूप ज्ञान-चारित्र भी शुद्धात्मानुभवमय है, इसी समय जो सविकल्पभाव है उस समय आगमभाषा से, परपरा से निर्वाण के कारण कहे गये तीर्थंकर प्रकृति आदि पुण्य पदार्थ का भी कर्ता होता है, इस तरह ही पूर्व में निरूपण किया गया है।

वे सव परिणमन जीव के और पुद्गल के कथचित् परिणामीपना होने से होते हैं। इसी तरह वह कथचित् परिणामित्व भी पुण्यपापादि सप्त पदार्थों का सक्षेपसूचन करने के लिए पहले ही सक्षेप में निरूपण किया है। ओर वही जीवपुद्गल के परिणामीपना के व्याख्यानकाल में विशेपरूप से कथन किया गया है। वहाँ इस प्रकार कथचित् परिणामीपना सिद्ध होने पर अज्ञानी और ज्ञानी जीव जो कि गुण विशेषता के धारक हैं इन दोनों जीवों के पुण्यपापादि सात पदार्थों की सक्षेपरूप से सूचना देने के लिये ही सक्षेप व्याख्यान किया है।

अव यहाँ अज्ञानमयगुण की और ज्ञानमयगुण की मुख्यता से व्याख्यान किया जाता है, लेकिन जीव और अजीव गुणी की मुख्यता से यह कथन नहीं है।

शका - किसलिये ?

समाधान - उनके ही (अज्ञानी और ज्ञानी जीव के ही) पुण्यपापादि सप्त पदार्थों की सक्षेप में सूचना देने के लिये यह कथन किया गया है।

यहाँ **'जो सग तु मुइत्ता'** इत्यादि १३१ वीं गाथा से शुरु करके पाठक्रम से ९ गाथापर्यन्त व्याख्यान करते हैं। उसमें पहले तीन गाथाओं में ज्ञानभाव की मुख्यता से कथन है, उसके वाद छह गाथाओं में ज्ञानी जीव के ज्ञानमय भाव होते हैं और अज्ञानी जीव के अज्ञानमय (मिथ्यात्वी जीव के मिथ्यात्वमय) भाव होते हैं, इसी प्रकार के कथन की मुख्यता से वर्णन किया गया है। इस तरह छटे अतरअधिकार की समुदाय पातनिका हुई।

कथचित्परिणामित्वे सिद्धे सति ज्ञानी जीवो ज्ञानमयस्य भावस्य कर्ता भवतीत्यभिप्राय मनसि सप्रधार्येद सूत्रत्रय प्रतिपादयति-

जो सग तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पग सुद्ध।
त णिस्सग साहु परमट्ठवियाणया विति।।१३१।।

जो सग तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पग सुद्ध य परमसाधुर्वाह्याभ्यतरपरिग्रह मुक्त्वा वीतरागचारित्राविनाभूतभेदज्ञानेन जानाति अनुभवति। क ? कर्मतापन्न आत्मानम्। कथभूतम् ? विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावत्वादुपयोगस्तमुपयोग ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणम्। पुनरपि कथभूतम् ? शुद्ध भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितम्। **त णिस्सग साहु परमट्ठवियाणया विति** त साधु निस्सग सगरहित विदति जानति ब्रुवति कथयति वा। के ते ? परमार्थ विज्ञायका गणधरदेवादय इति।।१३१।।

जो मोह तु मुइत्ता णाणसहावाधिय मुणदि आद।
त जिदमोह साहु परमट्ठवियाणया विति।।१३२।।

जो मोह तु मुइत्ता णाणसहावाधिय मुणदि आद य परमसाधु कर्ता समस्तचेतनाचेतनशुभाशुभपरद्रव्येषु मोह मुक्त्वात्मशुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररूपयोगत्रयपरिहारपरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेन, भेदज्ञानेन आत्मान मनुते जानाति। क ? कर्मतापन्न, आत्मानम्। कि विशिष्ट ? निर्विकारस्वसवेदनज्ञानेनाधिक परिणत परिपूर्णम्। **त जिदमोह साहु परमट्ठवियाणया विति** त साधु कर्मतापन्न जितमोह निर्मोह विदति जानति। के ते ?

कथचित् परिणामीपना सिद्ध होने पर ज्ञानी जीव ज्ञानमय भाव का कर्ता होता है, ऐसा अभिप्राय मन में धारण करके ये तीन गाथा सूत्र कहते हैं -

गाथार्थ - **(जो)** जो **(सग तु)** वाह्य अभ्यतर परिग्रह को **(मुइत्ता)** छोडकर **(सुद्ध उवओगमप्पग)** शुद्धोपयोगात्मक **(जाणदि)** अपने आपके आत्मा को अनुभवता है **(परमट्ठवियाणया)** परमार्थ को जानने वाले **(त णिस्सग साहु)** उसको निस्सग साधु **(विति)** कहते हैं।

टीकार्थ। - **जो सग तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पग सुद्ध** जो परमसाधु वाह्य और अभ्यतर परिग्रह को छोडकर वीतरागचारित्र के अविनाभूत भेदज्ञान से अपने आत्मा को जानता है, अनुभवता है।

शका - अनुभव में आने वाला अपना आत्मा कैसा है ?

समाधान - विशुद्ध ज्ञानदर्शनोपयोग स्वभावमय होने से उपयोगवाला है, उस ज्ञानदर्शन उपयोग लक्षणवाले आत्मा को और शुद्ध याने भावकर्मरहित द्रव्यकर्म-नोकर्मरहित शुद्धस्वभाव वाले निज आत्मा को अनुभवता है।

त णिस्सग साहु परमट्ठवियाणया विति परमार्थ को जानने वाले गणधर देवादिक उसको निस्सग साधु है ऐसा कहते हैं।।१३१।।

गाथार्थ - **(जो)** जो **(मोह)** मोह को **(तु मुइत्ता)** छोडकर **(आद)** अपने आपको **(णाणसहावा-धिय)** ज्ञानस्वभावमय **(मुणदि)** अनुभवता है। **(परमट्ठवियाणया)** परमार्थ को जानने वाले **(त जिदमोह साहु)** उसको जितमोह साधु ऐसा **(विति)** कहते हैं।

परमार्थविज्ञायकारत्तीर्थकरपरमदेवादय इति। एव मोहपदपरिवर्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्म-मनोवचनकाय वुद्ध्युदयशुभाशुभपरिणाम श्रोत्रचक्षुघ्राणजिह्वास्पर्शनसज्ञानि विशतिसूत्राणि व्याख्येयानि। तेनैव प्रकारेण निर्मलपरमचिज्ज्योति परिणतेर्विलक्षणा असख्येयलोकमात्रविभावपरिणामा ज्ञातव्या ।।१३२।।

अथ -

जो धम्म तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पग सुद्ध।
त धम्मसगमुक्क परमट्ठवियाणया विति।।१३३।।

जो धम्म तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पग सुद्ध य परमयोगींद्र स्वसवेदनज्ञाने स्थित्वा शुभोपयोगपरिणामरूप धर्मम् पुण्यसग त्यक्त्वा निजशुद्धात्मपरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेनाभेदज्ञानेन जानात्यनुभवति। कम् ? कर्मतापन्न आत्मानम्। कथभूत ? विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोगपरिणतम्। पुनरपि कथमूतम् ? शुद्ध शुभाशुभसकल्पविकल्परहितम्। **त धम्मसगमुक्क परमट्ठवियाणया विति** त परमतपोधन निर्विकारस्वकीयशुद्धात्मोपलभरूपनिश्चय-धर्मविलक्षणभोगाकाक्षास्वरूपनिदानवधादि पुण्यपरिग्रहरूपव्यवहारधर्मरहित विदति जानति। के ते ? परमार्थविज्ञायक्र प्रत्यक्षज्ञानिन इति।

टीकार्थ - जो परमसाधु सव चेतनअचेतन शुभाशुम परद्रव्यों का मोह छोडकर अपने शुभाशुम मनोवचनकायरूप तीनों योगों से रहित ऐसे परिणत होकर अभेदरत्नत्रयलक्षण वाले भेदज्ञान से निर्विकार स्वसवेदनज्ञानमय-परिपूर्ण अपने आत्मस्वभाव को अनुभवता है परमार्थ के जाननेवाले तीर्थङ्कर परमदेवादिक उस साधु को जितमोही, निर्मोही साधु ऐसा कहते हैं। इस प्रकार मोह के स्थान पर राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, वुद्धि, उदय, शुभाशुभपरिणाम, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और स्पर्शन ऐसे २० पद वदलकर सूत्रों की व्याख्या करके समझ लेना चाहिए। उसी प्रकार निर्मल परमचैतन्यज्योति की परिणति से विलक्षण ऐसे असख्यातलोकमात्र विभाव परिणाम मोह के स्थान पर वदलकर जानना चाहिये।।१३२।।

गाथार्थ - अव **(जो)** जो **(धम्म)** व्यवहारधर्म को **(तु मुइत्ता)** छोडकर **(उवओगमप्पग सुद्ध)** उपयोगात्मक शुद्धस्वभावमय आत्मा को **(जाणदि)** अनुभवता है। **(परमट्ठवियाणया)** परमार्थ को जानने वाले **(त धम्मसगमुक्क)** उसको धर्म के परिग्रह से रहित ऐसा **(विति)** कहते हैं।

टीकार्थ - जो धम्म तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पग सुद्ध जो परमयोगींद्र स्वशुद्धात्मानुभव में ठहरकर, शुभोपयोगपरिणामरूप पुण्यमयधर्म के सग को छोडकर निजशुद्धात्मपरिणतिरूप अभेदरत्नत्रय लक्षणरूप अभेदज्ञानसे स्वभावमय विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोगपरिणत और शुभाशुभसकल्पविकल्प से रहित ऐसे शुद्ध आत्मा को अनुभवता हे। **त धम्मसग मुक्क परमट्ठवियाणया विंति** प्रत्यक्ष स्वानुभव वाले-परमार्थ को जानने वाले उसको परमतपोधन, निर्विकार स्वकीयशुद्धात्मोपलभरूप निश्चयधर्म से विलक्षण भोगाकाक्षास्वरूप निदान वधादि पुण्यपरिग्रहरूप व्यवहार धर्म से रहित है, ऐसा कहते हैं।

कथचित् परिणामीपना सिद्ध होने से जीव शुद्धोपयोग से परिणमन करता है-और पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है। यदि परिणामीपना का अभाव मानोगे तो जो वद्ध है वह वद्ध ही रहेगा। वह शुद्धोपयोगरूप भिन्न परिणामस्वरूप (वन्द्र अवस्था में) घटित नहीं होगा। और परिणमन न होने से मोक्ष का अभाव होगा, ऐसा अभिप्राय है। इस प्रकार शुद्धोपयोगरूप ज्ञानमय परिणामगुण के व्याख्यान की मुख्यता से तीन गाथायें पूर्ण हुई।।१३३।।

कि च, कथचित्परिणामित्वे सति जीव शुद्धोपयोगेन परिणमति पश्चान्मोक्ष साधयति, परिणामित्वाभावे वद्धो बद्ध एव शुद्धोपयोगरूप परिणामातरस्वरूप न घटते ततश्च मोक्षाभाव इत्यभिप्राय । एव शुद्धोपयोगरूपज्ञानमय परिणामगुणव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रय गतम्।।१३३।।

तदनतर यथा ज्ञानमयऽज्ञानमयभावद्वयस्य कर्ता भवति तथा कथयति -

ज कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स[1]। (१२६)
णाणिस्स दु णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स।।१३४।।

ज कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स य भाव परिणाम करोत्यात्मा स तस्यैव भावस्यैव कर्ता भवति। **णाणिस्स दु णाणमओ** स च भावोऽनतज्ञानादिचतुष्टयलक्षणकार्यसमयसारस्योत्पादकत्वेन निर्विकल्प-समाधिपरिणामपरिणतकारणसमयसारलक्षणेन भेदज्ञानेन सर्वारभापरिणतत्वाज्ज्ञानिनो जीवस्य तु शुद्धात्मख्याति-प्रतीतिसवित्त्युपलब्ध्यनुभूतिरूपेण ज्ञानमय एव भवति।**अण्णाणमओ अणाणिस्स** अज्ञानिनस्तु पूर्वोक्तभेदज्ञानाभावात् शुद्धात्मानुभूतिस्वरूपाभावे सत्यज्ञानमय एव भवतीत्यर्थ ।।१३४।।

तदनतर जेसे ज्ञानमयभाव, और अज्ञानमयभाव इन दोनों भावों का कर्ता है वैसा उसका कथन करते हैं -

गाथार्थ - **(आदा)** आत्मा **(ज भाव)** जिस भाव को **(कुणदि)** करता है **(सो)** वह **(तस्स भावस्स)** उस भाव का **(कत्ता)** कर्ता **(होदि)** होता है। **(णाणिस्स)** ज्ञानी के **(णाणमओ)** ज्ञानमय भाव होता है **(दु)** लेकिन **(अणाणिस्स)** अज्ञानी के **(अण्णाणमओ)** अज्ञानमय भाव होता है।

टीकार्थ - **ज कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स** आत्मा जिस भाव को या परिणाम को करता है वह उस भाव का ही कर्ता है। **णाणिस्स दु णाणमओ** और वह भाव अनन्तज्ञानादि चतुष्टय लक्षण वाले कार्यसमयसार को उत्पादकपने से निर्विकल्पसमाधि परिणाम से परिणत कारणसमयसार लक्षणवाले भेदज्ञान से, सर्व आरभ से - (सर्वारभ परिणत होने से आत्मा के सभी गुणों की पर्यायों में एकदेशशुद्धि की परिणति होने का आरभ होने से) परिणत होने से ज्ञानी जीव की शुद्धात्मा की ख्याति-प्रतीति-सवित्ति-उपलब्धि अनुभूतिरूप से ज्ञानमय ही होती है, **अण्णाणमओ अणाणिस्स** लेकिन पूर्वोक्त भेदज्ञान के अभाव से, शुद्धात्मानुभूति स्वरूप का अभाव होने से अज्ञानी के अज्ञानमयभाव ही होते हैं, यह अर्थ है।

भावार्थ - स्वस्वभाव शुद्धात्मानुभूति प्रकट होते ही चतुर्थ गुणस्थान प्रकट होता है, इसलिये ४ थे गुणस्थान से सिद्ध तक के जीव ज्ञानी हैं, और पहले गुणस्थान से ३ रे गुणस्थान तक के जीव अज्ञानी हैं। ज्ञानी के सभी भाव ज्ञानमय हैं, अज्ञानी के सभी भाव अज्ञानमय हैं। सम्यग्ज्ञान ४ थे गुणस्थान से शुरु होता है। पहले तीन गुणस्थान के जीव सम्यग्ज्ञानी नहीं हैं।।१३४।।

अव ज्ञानमयभाव से क्या फल होता है और अज्ञानमयभाव से क्या फल होता है ? इस प्रश्न का उत्तर कहते हैं -

---

[1]- पाठान्तर - कम्मस्स

अथ कि ज्ञानमयभावात्फल भवति किमज्ञानमयाद्भवतीति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह -

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि। (१२७)
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तम्हा दु कम्माणि।।१३५।।

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि स्वोपलब्धिभावनाविलक्षणत्वेनाज्ञानमयभावो भण्यते। कस्मात् ? यस्मात्तेन भावेन परिणामेन कर्माणि करोत्यज्ञानी जीव । **णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तम्हा दु कम्माणि** ज्ञानिनस्तु निर्विकारचिच्चमत्कारभावनावशेन ज्ञानमयो भवति तस्माद् ज्ञानमयभावात् ज्ञानी जीव कर्माणि न करोतीति।

कि च, यथा स्तोकोऽप्यग्नि तृणकाष्ठराशि महातमपि क्षणमात्रेण दहति तथा त्रिगुप्तिसमाधिलक्षणो भेदज्ञानाग्निरतर्मुहूर्त्तेनापि वहुभवसचित कर्मराशि दहतीति ज्ञात्वा सर्वतात्पर्येण तत्रैव परमसमाधौ भावना कर्तव्येति भावार्थ ।।१३५।।

गाथार्थ - **(अणाणिणो)** अज्ञानी के **(अण्णाणमओ)** अज्ञानमय **(भावो)** भाव होता है **(तेण)** उस अज्ञानभाव के कारण वह **(कम्माणि)** कर्मो को **(कुणदि)** करता है **(दु)** और **(णाणिस्स)** ज्ञानी के **(णाणमओ)** ज्ञानमय भाव होता है **(तम्हा दु)** इस कारण वह **(कम्माणि)** कर्मो को **(ण)** नहीं **(कुणदि)** करता है।

टीकार्थ - **अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि** स्वोपलब्धिभावना से (स्वानुभूति से) विलक्षणपना होने के कारण जो भाव होते हैं उनको अज्ञानमय भाव कहते हैं। जिससे कि वह अज्ञानी जीव उस भाव से उस परिणाम से कर्मो को करता है। **णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तम्हा दु कम्माणि** लेकिन ज्ञानी के निर्विकार चैतन्यचमत्कार भावभासना के वश होने से ज्ञानमय भाव होते हैं, इसलिये ज्ञानमयभाव से ज्ञानी जीव कर्मो को नहीं करता है।

जैसे थोडी भी अग्नि बडे भारी भी तृण काठ की राशि को (ढेर को) क्षणमात्र में भस्म कर देती है, वेसे ही तीनगुप्तिसमाधि (स्वानुभूति) लक्षणवाली **भेदज्ञानमय अग्नि अतर्मुहूर्त में भी अनेक भवों में सचित की हुई कर्मराशि को नष्ट करती है,** यह जानकर सव तात्पर्य से परमसमाधि में ही भावभासना (स्वानुभव) करना चाहिए, यह भावार्थ है।

भावार्थ - आगमभाषा से

(१) तीन गुप्ति से अतर्मुहूर्त में कर्मराशि नष्ट होती है।

(२) यह जानकर परमसमाधि की भावभासना करनी चाहिए।

अध्यात्मभाषा से

(१) शुद्धात्मामय स्वभाव का अनुभव करने से (भेदज्ञानमय अग्नि से) विकारीभाव नष्ट होते हैं।

(२) यह जानकर स्वानुभूति लेनी चाहिये।

स्वानुभूति से ही सम्यग्ज्ञानी होता है। स्वानुभव से ही चतुर्थपचमादि गुणस्थान से सिद्ध तक की पर्याय प्रकट होती है।।१३५।।

अथ ज्ञानमय एव भावो भवति ज्ञानिनो जीवस्य न पुनरज्ञानमयस्तथैवाज्ञानमय एव भवत्यज्ञानिजीवस्य न पुनर्ज्ञानमय। किमर्थमिति चेत् ?

णाणमया भावादो[१] णाणमओ चेव जायदे भावो। (१२८)
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा दु णाणमया।।१३६।।
अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो। (१२९)
तम्हा[२] सव्वे भावा अण्णाणमया अणाणिस्स।।१३७।।

णाणमया भावादो णाणमओ चेव जायदे भावो जम्हा ज्ञानमयाद् भावाद् निश्चयरत्नत्रयात्मकजीवपदार्थाद् ज्ञानमय एव जायते भाव स्वशुद्धात्मावाप्तिलक्षणो मोक्षपर्यायो यस्मात्कारणात्। **तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा दु णाणमया** तस्मात्कारणात्स्वसवेदनलक्षणभेदज्ञानिनो जीवस्य सर्वे भावा परिणामा ज्ञानमया ज्ञानेन निर्वृत्ता भवति। तदपि कस्मात् ? उपादानकारणसदृश कार्यम् भवतीति वचनात्। न हि यवनालबीजे वपिते राजान्नशालिफल भवतीति।

ज्ञानी जीव का ज्ञानमय ही भाव होता है, अज्ञानमय भाव नहीं होता है, अज्ञानी जीव का अज्ञानमय ही भाव होता है, ज्ञानमय भाव नहीं होता है। कैसे ? तो यहाँ कहते हैं -

गाथार्थ - **(जम्हा)** जिस कारण **(णाणमया भावादो च)** ज्ञानमय भाव से **(णाणमओ एव)** ज्ञानमय ही **(भावो)** भाव **(जायदे)** उत्पन्न होता है। **(तम्हा)** उस कारण **(णाणिस्स)** ज्ञानी के **(सव्वे भावा)** सब भाव **(णाणमया)** ज्ञानमय हैं।

(दु) लेकिन **(अण्णाणमया भावा)** अज्ञानमय भाव से **(अण्णाणो एव)** अज्ञानमय ही **(भावो)** भाव **(जायदे)** होता है **(तम्हा)** इस कारण **(अणाणिस्स)** अज्ञानी के **(अण्णाणमया)** अज्ञानमय ही **(भावा)** भाव होते हैं।

टीकार्थ - **णाणमया भावादो णाणमओ चेव जायदे भावो जम्हा** जिस कारण से निश्चयरत्नत्रयात्मक जीवपदार्थरूप ज्ञानमय भाव से ज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होता हे, वह ज्ञानमय भाव स्वशुद्धात्मा की अनुभूति लक्षणवाली (स्वभावपर्याय) मोक्षपर्याय है। **तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा दु णाणमया** इसलिये स्वसवेदन लक्षणवाले (स्वानुभूतिलक्षण वाले) भेदज्ञानी जीव के (चतुर्थ गुणस्थान से शुरु करके आगे के सभी गुणस्थान वाले तथा सिन्द्ध जीवों के) सभी भाव या परिणाम ज्ञानमय हैं, ज्ञान से निर्वृत्त (रचे हुए अथवा प्रकट होने वाले) हैं।

शका - वह कैसे ?

समाधान - क्योंकि **उपादान कारण के सदृश ही कार्य होता है,** ऐसा आगमवचन है। उदा - यव नालवीज (ज्वारवीज) के बोने पर बासमती चावल पैदा नहीं हो सकता है।

उसी प्रकार **अण्णाणमया भावा अण्णाण चेव जायदे भावो** जिस कारण से अज्ञानमय भाववाले जीवपदार्थ से अज्ञानमय भाव (पर्याय) ही उत्पन्न होता है, **तम्हा सव्वे भावा अण्णाणमया अणाणिस्स** उस कारण से सभी पर्यायें अथवा सभी परिणाम अथवा सभी भाव अज्ञानमय हैं, वे अज्ञानमय परिणाम मिथ्यात्वरागादिरूप होते हैं।

---

१ पाठान्तर - भावाओ। २ पाठान्तर - जह्मा तह्मा भावा।

तथैव च **अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो** अज्ञानमयाद्भावाज्जीवपदार्थात् अज्ञानमय एव जायते भाव पर्यायो यस्मात्कारणात्। **तम्हा सव्वे भावा अण्णाणमया अणाणिस्स** यत एव तस्मात्कारणात्सर्वे भावा परिणामा अज्ञानमया मिथ्यात्वरागादिरूपा भवति। कस्य ? अज्ञानिन शुद्धात्मोपलब्धिरहितस्य मिथ्यादृष्टेर्जीवस्येति।।१३६, १३७।।

अथ तदेव व्याख्यान दृष्टातदार्ष्टान्ताभ्या समर्थयति -

कणयमया भावादो जायते कुडलादयो भावा। (१३०)
अयमयया भावादो जह जायते तु कडयादी।।१३८।।
अण्णाणमया भावा अणाणिणो वहुविहा वि जायते। (१३१)
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति।।१३९।।

कणयमया भावादो जायते कुण्डलादयो भावा कनकमयाद्भावात्पदार्थात् 'उपादानकारणसदृश कार्यम् भवतीति' कृत्वा कुडलाद्यो भावा पर्याया कनकमया एव भवति। **अयमयया भावादो जह जायते तु कडयादी** अयोमयाल्लोहमयाद्भावात्पदार्थाद् अयोमया एव भावा पर्याया कटकादयो भवति यथा केन प्रकारेणेति दृष्टातगाथा गता। अथ दार्ष्टान्तमाह **अण्णाणमया भावा अणाणिणो वहुविहा वि जायते** तथा पूर्वोक्तलोहदृष्टातेनाज्ञानमयाद्भा-वाज्जीव पदार्थादज्ञानिनो भावा पर्याया वहुविधा मिथ्यात्वरागादिरूपा अज्ञानमया जायते। **णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति** तथैव च पूर्वोक्तजावूनददृष्टातेन ज्ञानिनो जीवस्य ज्ञानमया सर्वे भावा पर्याया भवति।

शका - ये अज्ञानमय मिथ्यात्वरागादि परिणाम किसके होते हैं ?

समाधान - स्वानुभूति से रहित अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव के (१ से ३ गुणस्थानतक के जीव के) अज्ञानमय मिथ्यात्वरागादि परिणाम (विभाव पर्याय) होते हैं।।१३६, १३७।।

अव उस ही कथन का दृष्टात और दार्ष्टान्त से समर्थन करते हैं -

गाथार्थ - **(जह)** जैसे **(कणयमया भावादो)** सुवर्णमय भाव से **(कुडलादयो भावा)** सुवर्णमय कुडलादिक भाव **(जायते)** होते हैं **(तु)** और **(अयमयया भावादो)** लोहमय भाव से **(कडयादी)** लोहमयी कडे इत्यादिक भाव **(जायते)** होते हैं।

(तहा) उसी प्रकार **(अणाणिणो)** अज्ञानी के **(अण्णाणमया)** अज्ञानमय **(भावा)** भाव से **(बहुविहा वि)** अनेक तरह के अज्ञानमय भाव ही **(जायते)** होते हैं **(दु)** और **(णाणिस्स)** ज्ञानी के **(सव्वे)** सभी **(णाणमया भावा)** ज्ञानमय भाव होने से ज्ञानमय ही **(होंति)** हैं।

टीकार्थ - **कणयमया भावादो जायते कुण्डलादयोभावा** "उपादान कारण के समान ही कार्य होता है" इस सिद्धात के अनुसार सुवर्णमय पदार्थ से सुवर्णमय ही कुडलादिक पर्यायें उत्पन्न होती हैं। **अयमयया भावादो जह जायते तु कडयादी** जैसे लोहमय पदार्थ से कडा आदिक ही बनते हैं। यह दृष्टात गाथा हो गयी। अव दार्ष्टान्त कहते हैं।

किच विस्तर, वीतरागस्वसवेदनभेदज्ञानी जीव य शुद्धात्मभावनारूप परिणाम करोति स परिणाम सर्वोऽपि ज्ञानमयो भवति। ततश्च येन ज्ञानमयपरिणामेन ससारस्थिति हित्वा देवेंद्रलौकातिकादिमहर्द्धिकदेवो भूत्वा घटिकाद्वयेन मतिश्रुतावधिरूप ज्ञानमयभाव पर्याय लभते। ततश्च विमानपरिवारादिविभूति जीर्णतृणमिव गणयन्पचमहाविदेहेपु गत्वा पश्यति। कि पश्यतीति चेत् ? तदिद समवसरण त एते वीतरागसर्वज्ञास्त एते भेदाभेद-रत्नत्रयाराधनापरिणता गणधरदेवादयो ये पूर्वम् श्रूयते परमागमे ते दृष्टा प्रत्यक्षेणेति मत्वा, विशेषेण दृढधर्ममतिर्भूत्वा तु **चतुर्थगुणस्थानयोग्या** शुद्धात्मभावनामपरित्यजन्निरतर धर्मध्यानेन देवलोके काल गमयित्वा, पश्चान्मनुष्यभवे राजाधिराज महाराजार्द्धमडलीकमहामडलीकवलदेवकामदेवचक्रवर्त्तितीर्थकरपरमदेवाधिदेवपदे लब्धेऽपि पूर्वभववासनावासितशुद्धात्मरूप भेदभावनाबलेन मोह न गच्छति रामपाडवादिवत्।

ततश्च जिनदीक्षा गृहीत्वा सप्तर्द्धिचतुर्ज्ञानमयभाव पर्याय लभते। तदनतर समस्तपुण्यपापपरिणामपरिहार परिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेन द्वितीयशुक्लध्यानरूपेण विशिष्टभेदभावनाबलेन स्वात्मभावनोत्थसुखामृतरसेन तृप्तो भूत्वा सर्वातिशयपरिपूर्णलोकत्रयाधिपाराध्य परमाचित्यविभूतिविशेष केवलज्ञानरूप भाव पर्याय लभत इत्यभिप्राय। अज्ञानिजीवस्तु मिथ्यात्वरागादिमयमज्ञानभाव कृत्वा नरनारकादिरूप भाव पर्याय लभत इति भावार्थ। एव ज्ञानमयाज्ञानमयभाव कथनमुख्यत्वेन गाथापट्क गतम्। इति पूर्वोक्तप्रकारेण पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना पीठिकारूपेण महाधिकारे कथचित्परिणामित्वे सति ज्ञानिजीवो ज्ञानमयभावस्य कर्ता तथैव चाज्ञानिजीवोऽज्ञानमयस्य भावस्य कर्ता भवतीति व्याख्यानमुख्यतया गाथानवकेन षष्ठोऽन्तराधिकार समाप्त ।।१३८, १३९।।

अण्णाणमया भावा अण्णाणिणो बहुविहा वि जायते उस पूर्वोक्त लोह दृष्टात की तरह अज्ञानी जीवपदार्थरूप अज्ञानमय भाव से बहुविध मिथ्यात्वरागादिरूप अज्ञानमय पर्यायें प्रकट होती हैं। **णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति** उसी पकार पूर्वोक्त सुवर्ण के दृष्टात की तरह ज्ञानी जीव की सव ज्ञानमय पर्यायें होती हैं।

इसका विस्तार यह है कि, शुद्धात्मानुभव करने वाला भेदज्ञानी जीव जो शुद्धात्म भावभासनारूप (शुद्धात्मानुभव) परिणाम करता है वे सव परिणाम ज्ञानमय ही हैं। इसलिये इस ज्ञानमय परिणाम से ससार स्थिति को कम करके देवेन्द्र-लौकातिकादि महर्द्धिक देव होकर दो घडी में सुमति-श्रुत-अवधिरूप ज्ञानमय भाव (पर्याय) प्राप्त करता हे।

तव वह इस प्राप्त हुई विमान, परिवार आदि विभूति को जीर्ण तृण के समान गिनता-मानता हुआ पचमहाविदेह क्षेत्र में जाकर देखता है कि वह यह समवशरण है, वे ये वीतराग सर्वज्ञ हे और वे ये सव भेदाभेदरत्नत्रय की आराधना करने वाले गणधरादिक हैं, जो पूर्व में परमागम में सुना हे, वे ही यहाँ प्रत्यक्ष हैं, यह जानकर विशेपरूप से धर्म में दृढमति होकर और चतुर्थ गुणस्थानयोग्य शुद्धात्मानुभूति को (शुद्धात्मभावना को) न त्यागता हुआ निरतर धर्मध्यान से देवलोक में (स्वर्ग में) काल विताकर पश्चात् मनुष्यभव में राजाधिराज, महाराजा, अर्धमडलिक, महामडलिक, वलदेव, कामदेव, चक्रवर्ति, तीर्थङ्कर, परमदेवाधिदेव पद प्राप्त होते हुये भी पूर्वभव की वासना से (सस्कार से) युक्त शुद्धात्मामय भेदभावना भेदज्ञान के-शुद्धात्मानुभव के वल से मोह को प्राप्त नहीं होता है, जेसे राम, पाडव आदि (गृहस्थ जीवन मे कुछ काल तक थे तो भी शुद्धात्मानुभूति वाले थे)।

अथ पूर्वोक्त ग्वाज्ञानमयभावो द्रव्यभावगतपचप्रत्ययरूपेण पचविधो भवति स चाज्ञानिजीवस्य शुद्धात्मैवोपादेय इत्यगेचमानस्य तमेव शुन्द्रात्मान स्वसवेदनज्ञानेनाजानतस्तमेव परमसमाधिरूपेणाभावयतश्च वधकारण भवतीति सप्तमातराधिकारे समुदायपातनिका -

मिच्छत्तस्स दु उदओ ज जीवाण अतच्चसद्दहणं। (१३२)
असजमस्स दु उदओ ज जीवाण अविरदत्त[१]।। १४०।।
अण्णाणस्स दु उदओ ज जीवाण अतच्चउवलद्धी। (१३३)
जो दु कसाउवओगो सो जीवाण कसाउदओ[२]।। १४१।।
त जाण जोग उदय जो जीवाण तु चिट्ठउच्छाओ। (१३४)
सोहणमसोहण वा कायव्वो विरदिभावो वा।। १४२।।
एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागद ज तु। (१३५)
परिणमदे अट्ठविह णाणावरणादिभावेहि।। १४३।।
त खलु जीवणिबद्ध कम्मइयवग्गणागद जइया। (१३६)
तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाण।। १४४।।

उसके वाद जिनदीक्षा ग्रहण करके सात प्रकार की ऋद्धि, चार प्रकार के सम्यग्ज्ञानमय भाव (पर्याय) को प्राप्त करता है। तदनतर -

आगमभाषा से

समस्त पुण्यपाप परिणाम से रहित द्वितीय शुक्लध्यान से सर्व अतिशयरूप परिपूर्ण लोकत्रय अधिपाराध्य परम अचित्य विभूति विशेष केवलज्ञानरूप भाव-पर्याय प्रकट होती हे।

अध्यात्मभाषा से

अभेदरत्नत्रयमय परिणत लक्षण वाले विशिष्ट भेदभावना वल से (स्वानुभूति की दृढता से) स्वात्मभावभासना से उत्पन्न हुए सुखामृतरस से तृप्त होकर परम अचित्य विभूति विशेष केवलज्ञान रूप भाव-पर्याय प्रकट होती हे।

ऐसा अभिप्राय है। किन्तु अज्ञानी जीव मिथ्यात्वरागादिमय अज्ञानभाव करके नर-नारकादि (चतुर्गति) रूप भाव-पर्याय प्राप्त करता है, ऐसा भावार्थ है।

इस प्रकार ज्ञानमय-अज्ञानमय भावों का कथन करने की मुख्यता से ६ गाथायें हो गई। इसी प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से पुण्यपापादि सात पदार्थों के पीठिकारूप महाधिकार में कथचित् परिणामित्व होने से ज्ञानी जीव ज्ञानमय भाव का कता है और उसी प्रकार अज्ञानी जीव अज्ञानमय भाव का कर्ता है। इस व्याख्यान की मुख्यता से नौ गाथाओं में छट्टा अतराधिकार समाप्त हुआ।। १३८, १३९।।

पाठान्तर - १ अण्णाणस्स स उदओ जा जीवाण अतच्चउवलद्धी। मिच्छत्तस्स दु उदओ जीवस्स असद्दहाणत्त।। १४०।।
२ उदओ असंजमस्स दु ज जीवाण हवेदि अविरमण। जा दु कलुसोवओगो जीवाणं सो कसाउदओ।। १४१।।

मिच्छत्तस्स दु उदओ ज जीवाण अतच्चसद्दहण मिथ्यात्वस्योदयो भवति जीवानामनतज्ञानादिचतुष्टयरूप शुद्धात्मतत्त्वमुपादेय विहायान्यत्र यच्छ्रद्धान रुचिरूपादेयबुद्धि **असजमस्स दु उदओ ज जीवाण अविरदत्त** असयमस्य च स उदयो भवति जीवानामात्मसुखसवित्त्यभावे सति विषयकषायेभ्यो यदनिवर्त्तनमिति।

अथ - **अण्णाणस्स दु उदओ ज जीवाण अतच्चउवलद्धि** अज्ञानस्योदयो भवति यत्कि भेदज्ञान विहाय जीवाना विपरीतरूपेण परद्रव्येकत्वेनोपलब्धि प्रतीति । **जो दु कसाउवओगो सो जीवाण कसाउदओ** स जीवाना कषायोदयो भवति य शातात्मोपलब्धिलक्षण शुद्धोपयोग विहाय क्रोधादिकषायरूप उपयोग परिणाम इति।

अथ- **त जाण जोग उदय ज जीवाण तु चिट्ठउच्छाहो** त योगोदय जानीहि त्व हे शिष्य ! जीवाना मनोवचनकायवर्गणाधारेण वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनित कर्मादानहेतुरात्मप्रदेशपरिस्पदलक्षण प्रयत्नरूपेण यस्तु चेष्टोत्साहो व्यापारोत्साह । **सोहणमसोहण वा कायव्वो विरदिभावो वा** स च शुभाशुभरूपेण द्विधा भवति। तत्र व्रतादिकर्तव्यरूप शोभन पश्चादव्रतादिरूपो वर्जनीय स चाशोभन इति।

जो पहले अज्ञानमय भाव कहा था वह अज्ञानमय भाव ही द्रव्यगत और भावगत पाँच प्रत्ययरूप से पाँच प्रकार का है। वह अज्ञानी जीव का भाव **'शुद्ध आत्मा ही उपादेय है'** इस प्रकार की रुचि को नहीं रखने वाले तथा उसी अपनी शुद्धात्मा को स्वसवेदन ज्ञान के द्वारा नहीं जानने वाले एव उसी अपनी शुद्धात्मा को परम समाधि (निर्विकल्पभाव अथवा स्वानुभूति) से नहीं अनुभव करने वाले अज्ञानी जीव के कर्मबध का कारण होता है, ऐसी यह सातवें अतराधिकार की समुदाय पातनिका है -

गाथार्थ - **(जीवाण)** जीवों का **(ज अतच्चसद्दहण)** जो अतत्त्वश्रद्धान होता है **(दु)** वह **(मिच्छत्तस्स)** मिथ्यात्व का **(उदओ)** उदय है, और **(जीवाण)** जीवों का **(ज अविरदत्त)** जो स्वभाव में अविरतत्व-मग्नपना नहीं है। **(दु)** वह **(असजमस्स)** असयम का **(उदओ)** उदय है,

और **(जीवाण)** जीवों की **(ज अतच्चउवलद्धी)** जो अतत्त्वोपलब्धि याने स्वानुभूति का अभाव होता है **(दु)** वह **(अण्णाणस्स)** अज्ञान का **(उदओ)** उदय है, और **(जीवाण)** जीवों का **(जो)** जो **(कसाउवओगो)** कषाय सहित उपयोग याने मलीन उपयोग है **(सो)** वह **(कसाउदओ)** कषाय का उदय है,

और **(जीवाण)** जीवों का **(जो)** जो **(चिट्ठउच्छाओ)** चेष्टा अथवा मन, वचन, काय के व्यापार का उत्साह है **(त जोगउदय)** उसको योग का उदय **(जाण)** जानो, **(वा)** अथवा **(कायव्वो विरदिभावो)** काय में (बाह्य क्रिया में) विरतिभाव वह **(सोहणमसोहण)** शुभ अशुभ है,

(तु) और **(एदेसुहेदुभूदेसु)** पूर्वोक्तप्रकार ये सब निमित्तरूप कारण होने पर **(ज)** जो **(कम्मइयवग्गणागद)** कर्मवर्गणाओं का समूह आता है वह **(णाणावरणादिभावेहि)** ज्ञानावरणादिभाव द्वारा **(अट्ठविह)** आठ प्रकार से **(परिणमदे)** परिणमन करता है,

(दु) और **(जइया)** जब तक **(खलु)** निश्चय से **(त कम्मइयवग्गणागद)** वह आगत कर्मवर्गणा समूहरूप से **(जीवणिवद्ध)** जीव के साथ निबद्ध **(होदि)** होती है **(तइया)** तब तक **(जीवो)** जीव **(परिणामभावाण)** अपने (अज्ञानमय) परिणाम भावों का **(हेदू)** कारण है।

अथ **एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागद ज तु** एतेपु पूर्वोक्तेपूदयागतेपु हेतुभूतेपु यत् मिथ्यात्वादिपचप्रत्ययेपु कार्मणवर्गणागत परिणत यदभिनव नवतर पुद्गलद्रव्य **परिणमदे अट्ठविह णाणावरणादिभावेहि** जीवस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकपरिणतिरूपपरमसामायिकाभावे सति ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मरूपेणाष्टविध परिणमतीति।

अथ- **त खलु जीवणिबद्ध कम्मइयवग्गणागद जइया** तत्पूर्वोक्तसूत्रोदित कर्मवर्गणायोग्यमभिनव पुद्गलद्रव्य जीवनिबद्ध जीवसबद्ध योगवशेनागत यदा भवति खलु स्फुट **तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाण** तदा काले पूर्वोक्तेपूदयागतेपु द्रव्यप्रत्ययेपु निमित्तभूतेपु सत्सु स्वकीयगुणस्थानानुसारेण जीवो हेतु कारण भवति। केपा ? परिणामरूपाणा भावाना प्रत्ययानामिति।

टीकार्थ - मिच्छत्तस्स दु उदओ ज जीवाण अतच्च सद्दहण अनतज्ञानादि चतुष्टयरूप शुद्धात्मतत्त्व उपादेय है, उसे छोडकर जीवों की जो अन्यत्र रुचिरूप उपादेय बुद्धि होती है, वह श्रद्धान मिथ्यात्व का उदय है। **असजमस्स दु उदओ ज जीवाण अविरदत्त** आत्मोत्थ सुखसवेदन का अभाव होने पर जो विपयकपायों से दूर नहीं होना है (याने १ से ३ गुणस्थान तक के जीव को स्वानुभव नहीं है इसलिये विपयकपाय में मग्न है) वह ससारी जीवों के असयम का उदय है।

अण्णाणस्स दु उदओ ज जीवाण अतच्चउवलद्धी भेदज्ञान को छोडकर जीवों का जो विपरीत अभिनिवेशरूप से परद्रव्य के साथ एकत्व की प्रतीति है, वह अज्ञान का उदय है। **जो दु कसाउवओगो सो जीवाण कसाउदओ** प्रशात निर्विकल्प आत्मानुभूति लक्षण वाले शुद्धोपयोग को छोडकर जो क्रोधादिकपायरूप उपयोग परिणाम है, वह जीवों के कपाय का उदय है।

त जाण जोगउदय ज जीवाण तु चिट्ठउच्छाओ हे शिष्य ! जीवों का मनवचनकाय की वर्गणा के आधार से वीर्यान्तराय के क्षयोपशमजनित कर्मों के आने में हेतुभूत जो आत्मप्रदेशों का परिस्पदन लक्षणवाले प्रयत्नरूप से जो *व्यापार-उत्साह या चेष्टोत्साह* है उसको योग का उदय जानो। **सोहणमसोहण वा कायव्वो विरदिभावो वा** और वह योग का उदय शुभ, अशुभ रूप से दो प्रकार का है। वहाँ जो व्रतादिक को कर्तव्य मानकर उनके करने में उत्साह होता है उसे शुभ योग कहते हैं। तथा उनके बाद जो नहीं करने के योग्य अव्रतादिरूप है उनके करने में जो उत्साह है, उसे अशुभ योग कहते हैं।

एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागद ज तु परिणमदे अट्ठविह णाणावरणादि भावेहि जीव के सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप अभेद-एकपरिणतिरूप परमसामायिक के अभाव में ये पूर्वोक्त उदयागत हेतुभूत मिथ्यात्वादि पॉच प्रत्यय रहने पर जो नवतर-आगत कार्मणवर्गणा परिणत पुद्गल द्रव्य है वह ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के द्रव्यकर्मरूप से परिणमन करता है।

त खलु जीवणिबद्ध कम्मइयवग्गणागद जइया जब पूर्वसूत्र में कहे हुए कर्मवर्गणा योग्य अभिनव पुद्गल द्रव्य जीव के साथ सबद्ध होते समय योग के वश से आते हैं **तइया दु होदि हेदू जीवो परिणाम भावाण** तब उसी समय पूर्व कथित उन सत्रूप उदयागत निमित्तभूत द्रव्यप्रत्ययों के उदयों में अपने-अपने गुणस्थान के अनुसार होने वाले अपने-अपने परिणामरूप भावप्रत्ययों का यह जीव कारण होता है।

किच, उदयागतद्रव्यप्रत्ययनिमित्तेन मिथ्यात्वरागादिभावप्रत्ययरूपेण परिणम्य जीवो नवतरकर्मवधस्य कारण भवतीति तात्पर्यम्। अयमत्र भावार्थ उदयागतेषु द्रव्यप्रत्ययेषु यदि जीव स्वस्वभाव मुक्त्वा रागादिरूपेण भावप्रत्ययेन परिणमतीति तदा वन्धो भवतीति नैवोदयमात्रेण घोरोपसर्गेऽपि पाडवादिवत्, यदि पुनरुदयमात्रेण वधो भवति तदा सर्वदैव ससार एव। कस्मादिति चेत् ? ससारिणा सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वात्। इति पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना पीठिकारूपे महाधिकारेऽज्ञानिभाव पचप्रत्ययरूपेण शुद्धात्मस्वरूपच्युताना जीवाना वधकारण भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन पचगाथाभि सप्तमोऽन्तराधिकार समाप्त ।। १४० से १४४।।

अत पर जीवपुद्गलयो परस्परोपादानकारणनिषेधमुख्यत्वेन गाथात्रयमित्यष्टमातराधिकारे समुदायपातनिका। अथ निश्चयेन कर्मपुद्गलात्पृथग्भूत एव जीवस्य परिणाम इति प्रतिपादयति -

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा दु होंति रागादि। (१३७)
एव जीवो कम्म च दो वि रागादिमावण्णा।।१४५।।
एकस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहि। (१३८)
ता कम्मोदय हेदूहि विणा जीवस्स परिणामो।।१४६।।

और कुछ विशेष कहते हैं, उदयागत द्रव्यप्रत्यय के निमित्त में मिथ्यात्वरागादि भावप्रत्ययरूप से जीव परिणमन करके नवतरवध का कारण होता है, यह तात्पर्य है।

इसका भावार्थ यह है कि, उदयागत द्रव्यपप्रत्ययों के रहने पर यदि जीव स्वस्वभाव को छोडकर रागादिरूप-भावप्रत्ययरूप परिणमन करता है तव वध होता है, केवल उदय से नही। जैसे पाडवों को घोरोपसर्ग होते हुए भी वे स्वस्वभाव से चलायमान नहीं हुए वैसे कर्मोदय के उदयमात्र से यदि जीव रागादिरूप परिणमन नहीं करता है तव वध भी नहीं होता है। **यदि कर्मों के उदयमात्र से बध हो जायेगा तो सदा काल (सर्वदा) ससार ही रहेगा।**

शका - कैसे ?

समाधान - क्योंकि ससारी जीवों को सवदा कर्मो का उदय विद्यमान रहने से वे ससारी ही रहेंगे। (कोई भी मुक्त नहीं होगा)।

इस प्रकार पुण्यपापादि सप्त पदार्थों के पीठिकारूप महाधिकार में अज्ञानभाव पॉच प्रत्ययरूप से, शुद्धात्मानुभव से भ्रष्ट रहने वाले जीवों के बध के कारण के [illegible] थन की मुख्यता से पॉच गाथाओं के द्वारा सातवॉ अतराधिकार पूर्ण हुआ।।१४० से १४४।

अव आठवे अतराधिकार में [illegible] और पुद्गल ये दोनों परस्पर में उपादान कारण नही होते हैं इस प्रकार से [illegible] है।

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा दु होंति रागादी यदि जीवस्योपादानकारणभूतस्य कर्मोदयेनोपादानभूतेन सह रागादिपरिणामा भवति। **एव जीवो कम्म च दो वि रागदिमावण्णा** एव द्वयोर्जीवपुद्गलयो रागादिपरिणामानामुपादानकारणत्वे सति सुधाहरिद्रयोरिव द्वयोरागित्व प्राप्नोति। तथा सति पुद्गलस्य चेतनत्व प्राप्नोति स च प्रत्यक्षविरोध इति।

अथ **एकस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहि** अथाभिप्रायो भवता पूर्वदूपणभयादेकस्य जीवस्यैकातेनोपादानकारणस्य रागादिपरिणामो जायते **ता कम्मोदयहेदूहि विणा जीवस्स परिणामो** तस्मादिद दूपण कर्मोदयहेतुभिर्विनापि शुद्धजीवस्य रागादिपरिणामो जायते स च प्रत्यक्षविरोध आगमविरोधश्च।

अथवा द्वितीयव्याख्यान एकस्य जीवस्योपादानकारणभूतस्य कर्मोदयोपादानहेतुभिर्विना रागादिपरिणामो यदि भवति तदा सम्मतमेव।

कि च, द्रव्यकर्मणामनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण कर्ता जीव रागादिभावकर्मणामशुद्धनिश्चयेन। स चाशुद्धनिश्चय यद्यपि द्रव्यकर्मकर्तृत्वविपयभूतस्यानुपचरितासद्भूतव्यवहारस्यापेक्षया निश्चयसज्ञा लभते, तथापि शुद्धात्मद्रव्यविषयभूतस्य शुद्धनिश्चयस्यापेक्षया वस्तुवृत्त्या व्यवहार एवेति भावार्थ ।।१४५, १४६।।

अब निश्चयनय से जीव का परिणाम कर्मपुद्गलों से भिन्न ही है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं-

गाथार्थ - **(जीवस्स)** जीव के जो **(परिणामा)** परिणाम **(रागादी)** रागादिक हैं वे **(दु)** निश्चय से **(कम्मेण य सह)** कर्म के साथ **(होंति)** होते हैं **(एव दु)** इस प्रकार तो **(जीवो च कम्म)** जीव ओर कर्म **(दो वि)** ये दोनों ही **(रागादिमावण्णा)** रागादि परिणाम को प्राप्त हो जायेंगे।

अत यह सिद्ध हुआ कि **(रागमादीहि)** इन रागादिरूप से **(एकस्स जीवस्स दु)** एक जीव का ही **(परिणामो)** परिणाम **(जायदि)** उत्पन्न होता है **(ता)** वह **(कम्मोदय हेदूहि विना)** कर्म के उदयरूप निमित्त कारण से पृथक् **(जीवस्स परिणामो)** एक जीव का ही परिणाम है।

टीकार्थ - **जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा दु होंति रागादी** यदि उपादान कारणभूत जीव के रागादि परिणाम उपादानभूत कर्मोदय के साथ होते हैं, **एव जीवो कम्म च दोवि रागादिमावण्णा** ऐसा माना जाय तो, जैसे चूना ओर हल्दी एकत्र करने से चूना लाल होता है ओर हल्दी भी लाल होती है, वैसे जीव और पुद्गल इन दोनों को रागादि परिणामों का उपादान कारणत्व हो जाने से जीव रागित्व को प्राप्त होगा और पुद्गल भी रागित्व को प्राप्त होगा (यह आपत्ति आयेगी) । उससे पुद्गल को चेतनपना प्राप्त होगा (याने पुद्गल को चेतन मानना पडेगा)। और वह प्रत्यक्ष के विरुद्ध है।

एकस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहि यदि पूर्व दूपण के भय से एकात से एक जीव के उपादानकारण से ही रागादि परिणाम उत्पन्न होंगे यदि ऐसा आपका अभिप्राय हो तो, **ता कम्मोदय हेदूहि विणा जीवस्स परिणामो** इससे यह दोष आयेगा कि कर्मोदय हेतु के विना भी शुद्धजीव को रागादिपरिणाम उत्पन्न होंगे। और वह प्रत्यक्ष के विरुद्ध है तथा आगम के भी विरुद्ध है। अथवा द्वितीय कथन यह होगा कि यदि उपादान कारणभूत एक जीव के रागादि परिणाम कर्मोदयोपादान हेतु के विना होते हैं, तो वह सम्मत ही है।

अथ निश्चयेन जीवात्पृथग्भूत एव पुद्गलकर्मण परिणाम इति निरूपयति -

जदि जीवेण सहच्चि य पुग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो। (१३९)
एव पुग्गलजीवा हु दो वि कम्मत्तमावण्णा।। १४७।।
एकस्स दु परिणामो पुग्गलदव्वस्स कम्मभावेण। (१४०)
ता जीवभावहेदूहि विणा कम्मस्स परिणामो।। १४८।।

एकस्स दु परिणामो पुग्गलदव्वस्स कम्मभावेण एकस्योपादानभूतस्य कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्यस्य द्रव्यकर्मरूपेण परिणाम यत एव **ता जीवभावहेदूहि विणा कम्मस्स परिणामो** तस्मात्कारणाज्जीवगतमिथ्यात्वरागादि-परिणामोपादानहेतुभिर्विनापि द्रव्यकर्मण परिणाम स्यात्। इति पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना पीठिकारूपे महाधिकारे जीवकर्मपुद्गलपरस्परोपादानकारणनिषेधमुख्यतया गाथात्रयेणाष्टमोऽतराधिकार समाप्त ।।१४७, १४८।।

और कुछ विशेष कहते हैं कि, द्रव्यकर्मो का अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा से आत्मा कर्ता हे, तथा रागादि भावकर्मों का अशुद्धनिश्चयनय से कर्ता है। उस अशुद्धनिश्चय को यद्यपि द्रव्यकर्म के कर्तृत्व के विषयभूत अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा से निश्चय सज्ञा प्राप्त होती है, तथापि शुद्धात्मद्रव्यस्वभाव को विषय करने वाले शुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा से - वस्तुवृत्ति से (स्वभाव से) वह व्यवहारनय ही है। यह भावार्थ है।।१४५, १४६।।

अब निश्चयनय से पुद्गलकर्मों का परिणाम जीव से भिन्न ही है, ऐसा निरूपण करते हैं -

गाथार्थ - **(जदि)** यदि **(जीवेण सहच्चि य)** जीव के साथ ही **(पुग्गलदव्वस्स)** पुद्गल द्रव्य का **(कम्मपरिणामो)** कर्मरूप परिणाम होता है, **(एव)** ऐसा माना जाय तो इस प्रकार **(पुग्गलजीवा दो वि)** पुद्गल और जीव दोनों **(हु)** ही **(कम्मत्तमावण्णा)** कर्मत्व को प्राप्त हो जायेंगे।

(दु) किन्तु **(एकस्स)** एक **(पुग्गलदव्वस्स)** पुद्गल द्रव्य का **(कम्मभावेण)** कर्मरूप से **(परिणामो)** परिणाम होता है **(ता)** इसलिये **(जीवभावहेदूहि विणा)** जीव के भावरूप निमित्तकारण से पृथक् **(कम्मस्स)** कर्म का **(परिणामो)** परिणाम है।

टीकार्थ - जिस कारण इस प्रकार से उपादानभूत अकेले कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्य का द्रव्यकर्मरूप से परिणाम है, उस कारण से जीवगत मिथ्यात्वरागादि परिणामरूप उपादान हेतु के विना भी द्रव्यकर्मो का परिणाम होगा।

इस तरह पुण्यपापादि सात पदार्थो के पीठिकारूप महाधिकार में जीव और कर्मपुद्गल इन दोनों का परस्पर में उपादान कारणत्व नहीं है, इस कथन की मुख्यता से तीन गाथाओं द्वारा अष्टम अतराधिकार पूर्ण हुआ।

भावार्थ - पूर्व गाथाओं में कहे हुए कथन के अनुसार पुद्गलकर्म ही पुद्गलकर्म का उपादान कारण है। पुद्गलकर्म का जीव के रागादिभाव उपादान कारण नहीं हैं, जीव के रागादिभाव अकिंचित्कर हैं।।१४७, १४८।।

अथानतर व्यवहारेण वद्धो निश्चयेनावद्धो जीव इत्यादि विकल्परूपेण नयपक्षपातेन स्वीकारेण रहित शुद्ध पारिणामिकपरमभावग्राहकेन शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन पुण्यपापादिपदार्थेभ्यो भिन्न शुद्धसमयसार गाथाचतुष्टयेन कथयतीति नवमोऽन्तराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा -

अथ किमात्मनि वद्धस्पृष्ट किमवद्धस्पृष्ट कर्मेति प्रश्ने सति नयविभागेन परिहारमाह-

जीवे कम्म बद्ध पुट्ठ चेदि ववहारणयभणिद। (१४१)
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठ हवदि कम्म।।१४९।।

जीवे कम्म बद्ध पुट्ठ चेदि ववहारणयभणिद जीवेऽधिकरणभूते वद्धसश्लेपरूपेण क्षीरनीरवत्सवद्ध स्पृष्ट योगमात्रेण लग्न च कर्मेति व्यवहारनयपक्षो व्यवहारनयाभिप्राय **सुद्धणयस्स दु जीवे अवद्धपुट्ठ हवदि कम्म** शुद्धनयस्याभिप्रायेण पुनर्जीवेऽधिकरणभूते अवद्धस्पृष्ट कर्म इति निश्चयव्यवहारनयद्वयविकल्परूप शुद्धात्मस्वरूप न भवतीति भावार्थ ।।१४९।।

अथ यस्माद्वद्धावद्धादिविकल्परूप नयस्वरूपमुक्त तस्माच्छुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन वद्धावद्धादिनयविकल्परूपो जीवो न भवतीति प्रतिपादयति -

कम्म बद्धमबद्ध जीवे एव तु जाण णयपक्ख। (१४२)
पक्खातिक्कतो पुण[1] भण्णदि जो सो समयसारो।।१५०।।

अव व्यवहारनय से जीव वद्ध है, निश्चयनय से जीव अवद्ध है इत्यादि विकल्परूप नयपक्षपात को स्वीकार न करते हुए शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक-शुद्धद्रव्यार्थिकनय से पुण्यपापादि पदार्थों से भिन्न ऐसे शुद्धसमयसार का कथन चार गाथाओं द्वारा कहते हैं, इस प्रकार नवमें अतराधिकार में यह समुदाय पातनिका है।

अव आत्मा में कर्म क्या वद्धस्पृष्ट है या अवद्धस्पृष्ट है ? ऐसा प्रश्न करने पर नयविभाग से उत्तर देते हैं-

गाथार्थ- (**जीवे**) जीव में (**कम्म**) कर्म (**बद्ध पुट्ठ च**) वद्ध और स्पृष्ट है (**इदि**) ऐसा (**ववहारणयभणिद**) व्यवहारनय से कहा है (**दु**) लेकिन (**सुद्धणयस्स**) शुद्ध निश्चयनय से (**जीवे**) जीव में (**कम्म**) कर्म (**अबद्धपुट्ठ**) अवद्ध और अस्पृष्ट (**हवदि**) है।

टीकार्थ - कर्म जीव के अधिकरण में क्षीर और नीर की तरह एकक्षेत्रावगाह (वद्धसश्लेषरूप) होकर सवद्ध और स्पृष्ट है तथा योगमात्र से आत्मा में लगे हैं, ऐसा व्यवहारनय का पक्ष (अभिप्राय) है। शुद्धनिश्चयनय से जीव के अधिकरण में कर्म अवद्धस्पृष्ट है। ऐसा निश्चयव्यवहाररूप दोनों नयो का पक्ष(विकल्प) शुद्धात्मस्वरूप नहीं है (शुद्धात्मस्वरूप निर्विकल्प है) ऐसा भावार्थ है।।१४९।।

अव जिस कारण से व्यवहारनय से वद्ध और निश्चयनय से अवद्ध है ऐसा विकल्परूप नयका स्वरूप कहा है, इसलिये शुद्ध पारिणामिक परमभावग्राहक-शुद्धद्रव्यार्थिकनय से वद्धावद्धादि नयविकल्परूप जीव नहीं है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं -

---

[1] पाठान्तर - णय पक्खातिक्कतो

कम्म बद्धमबद्ध जीवे एव तु जाण णयपक्ख जीवेऽधिकरणभूते कर्म बद्धमवन्द्र चेति योऽसौ विकल्प स उभयोऽपि नयपक्षपात स्वीकार इत्यर्थ **पक्खातिक्कतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो** नयपक्षातिक्रातो भण्यते य स समयसार शुद्धात्मा। तद्यथा- व्यवहारेण बद्धो जीव इति नयविकल्प शुद्धजीवस्वरूप न भवति, निश्चयेनाबद्धो जीव इति च नयविकल्प शुद्धजीवस्वरूप न भवति, निश्चयव्यवहाराभ्या बद्धाबद्धजीव इति वचनविकल्प शुद्धजीवस्वरूप न भवति। कस्मादिति चेत् ? **"श्रुतविकल्पा नया"** इति वचनात्। श्रुतज्ञान च क्षायोपशमिक क्षायोपशमस्तु ज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितत्वात्। यद्यपि व्यवहारनयेन छद्मस्थापेक्षया जीवस्वरूप भण्यते तथापि केवलज्ञानापेक्षयाशुद्धजीवस्वरूप न भवति। तर्हि कथभूत जीवस्वरूपमिति चेत् ? योऽसौ नयपक्षपातरहित-स्वसवेदनज्ञानी तस्याभिप्रायेण बद्धाबद्धमूढामूढादिनयविकल्परहित चिदानन्दैकस्वभाव जीवस्वरूप भवतीति। तथाचोक्त[१]-

य एव मुक्त्वा नयपक्षपात स्वरूपगुप्ता निवसति नित्य। विकल्पजालच्युतशातचित्तास्त एव साक्षादमृत पिवति।।६९।।

एकस्यबद्धो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातो। यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्य खलु चिच्चिदेव।।७०।।

समयाख्यानकाले या बुद्धिर्नयद्वयात्मिका। वर्तते बुद्धतत्त्वस्य सा स्वस्थस्य ..नवर्तते।।

हेयोपादेयतत्वे तु विनिश्चित्य नयद्वयात्। त्यक्त्वा हेयमुपादेयऽवस्थान साधुसम्मत।। ।।१५०।।

गाथार्थ - **(जीवे)** जीव में **(कम्म)** कर्म **(बद्ध)** वधे हुये हैं अथवा **(अबद्ध)** नहीं बधे हुए हें **(एव तु)** इस प्रकार का तो **(णयपक्ख)** नय पक्ष **(जाण)** जानो **(पुण)** और **(जो)** जो **(पक्खातिक्कतो)** नय पक्ष से दूरवर्ती **(भण्णदि)** कहा जाता हे **(सो)** वह **(समयसारो)** समयसार है (निर्विकल्प शुद्ध आत्मतत्त्व है)।

टीकार्थ - **कम्म बद्धमबद्ध जीवे एव तु जाण णयपक्ख** अधिकरणभृत जीव में कर्म बद्ध है अथवा अवद्ध है। ये दोनों विकल्प हैं। वे दोनों ही नय पक्षपात हैं ऐसा स्वीकार किया है। **णयपक्कातिक्कतो भण्णदि जो सो समयसारो** जो नयपक्ष से अतिक्रात कहा है, वह शुद्धात्मा समयसार है।

जैसे व्यवहारनय से जीव वद्ध है, ऐसा जो नयविकल्प है वह शुद्धजीव का स्वरूप नहीं है। और निश्चयनय से जीव अवद्ध है ऐसा जो नयविकल्प है वह शुद्ध जीव का स्वरूप नहीं है। दोनों नयों से वद्धावद्ध कहना भी वचनविकल्प होने से शुद्ध जीव का स्वरूप नहीं है।

शका - यह कैसे ?

समाधान - **"श्रुतविकल्प ही नय हैं"**, ऐसा आगम का वचन है। श्रुतज्ञान क्षायोपशमिकज्ञान है। क्षयोपशमज्ञान ज्ञानावरण के क्षयोपशम में उत्पन्न होता है। यद्यपि व्यवहारनय से छद्मस्थ की अपेक्षा से यह (क्षयोपशमज्ञान) जीवस्वरूप है ऐसा कहा ज़ाता है, तथापि (केवलज्ञान की अपेक्षा से अशुद्धता जीव का स्वरूप नहीं है अथवा) केवलज्ञान की अपेक्षा से वह शुद्ध जीव का स्वरूप नहीं है।

शका - तो जीव का स्वरूप किस प्रकार का है ?

समाधान - यह जो नयपक्षपातरहित स्वसवेदनज्ञानी हे उसके अभिप्राय से वद्धावद्ध मूढामूढादि नयविकल्परहित चिदानद एक स्वभाव ऐसा जीव का स्वरूप है।

---

[१] आत्मख्याति कलश

अथ नयपक्षातिक्रांतस्य शुद्धजीवस्य किं स्वरूपमिति पृष्टे सति पुनर्विशेषेण कथयति -

दोण्ह वि णयाण भणिद जाणदि णवरि तु समयपडिबद्धो। (१४३)
ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचि वि णयपक्खपरिहीणो।।१५१।।

योऽसौ नयपक्षपातरहित स्वसवेदनज्ञानी तस्याभिप्रायेण बद्धाबद्धमूढामूढादिनयविकल्परहित चिदानन्दैकस्वभाव। **दोण्हवि णयाण भणिद जाणदि** यथा भगवान केवली निश्चयव्यवहाराभ्या द्वाभ्या भणितमर्थम् द्रव्यपर्यायरूप जानाति। **णवरि तु समयपडिबद्धो** तथापि नवरि केवल सहजपरमानन्दैकस्वभावस्य समयस्य प्रतिबद्ध आधीन सन् **णयपक्खपरिहीणो** सततसमुल्लसन् केवलज्ञानरूपतया श्रुतज्ञानावर्णीयक्षयोपशमजनित विकल्पजालरूपान्नयद्वय-पक्षपाताद्दूरीभूतत्वात् **ण दु णयपक्ख गिण्हदि किंचि वि** न तु नयपक्ष विकल्प किमप्यात्मरूपतया गृह्णाति तथाय गणधरदेवादिछद्मस्थजनोऽपि नयद्वयोक्त वस्तुस्वरूप जानाति तथापि नवरि केवल चिदानन्दैकस्वभावस्य समयस्य प्रतिबद्ध आधीन सन् श्रुतज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितविकल्पजालरूपान्नयद्वय पक्षपातात् शुद्धनिश्चयेन दूरीभूतत्वान्नयपक्षपातरूप स्वीकार विकल्प निर्विकल्पसमाधिकाले शुद्धात्मस्वरूपतया न गृह्णाति।।१५१।।

उसी तरह आत्मख्याति में ६९, ७० कलश में कहा है कि - जो पुरुष नय के पक्षपात से मुक्त होकर अपने स्वरूप में गुप्त होकर नित्य स्थिर होते हैं, वे ही पुरुष विकल्पजाल से रहित शातचित्त हुए साक्षात् अमृत को पीते हैं।

एक नय का तो ऐसा पक्ष है कि यह चिन्मात्र जीव कर्म से बधा हुआ है और दूसरे नय का पक्ष ऐसा है कि, जीव कर्म से बधा नहीं है। ये दो नयपक्ष हैं, वे पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेदी (स्वानुभव करने वाला) पक्षपात से रहित है, उसका चेतन्यात्मा निश्चय से नित्य चैतन्यमय ही है।

द्रव्य के या आगम के व्याख्यान के समय मनुष्य की बुद्धि निश्चयनय और व्यवहारनय इन दोनों नयों को लेकर चलती है, किन्तु तत्त्व को जानने वाले - निर्विकल्प अनुभव करने वाले जीव की बुद्धि दो नयपक्षपात से निवृत्त (दोनों नयों के पक्षपात से रहित) स्वस्थ होती है।

निश्चयनय और व्यवहारनयों के द्वारा हेय और उपादेय तत्त्व का निर्णय कर लेने पर हेय का त्याग करके उपादेय तत्त्व में रहना साधु पुरुष को सम्मत है।।१५०।।

अब "नयपक्षातिक्रात शुद्धजीव का क्या स्वरूप है ?" ऐसा प्रश्न पूछने पर फिर से विशेषता से कहते हैं-

गाथार्थ - जो पुरुष (**समयपडिबद्धो**) अपने शुद्धात्मा से प्रतिबद्ध है आत्मा को जानता है वह (**दोण्हवि**) दोनों ही (**णयाण**) नयों के (**भणिय**) कथन को (**णवरिं**) केवल (**जाणदि तु**) जानता ही है (**दु**) और (**णयपक्ख**) नयपक्ष को (**किंचिवि**) कुछ भी (**ण गिण्हदि**) नहीं ग्रहण करता है क्योंकि वह (**णयपक्खपरिहीणो**) नय के पक्ष से रहित है।

टीकार्थ - जो यह नयपक्षपातरहित स्वसवेदनज्ञानी है, उसके अभिप्राय से बद्धाबद्ध मूढामूढादि नयविकल्परहित चिदानद एक स्वभाव है, उसको **दोण्हवि णयाण भणिय जाणदि** इस प्रकार जानता है, जैसे **भगवान केवली निश्चयनय और व्यवहारनय के द्वारा कहे हुए अर्थको-द्रव्यपर्याय रूप को जानते हैं।**

अथ शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन नयविकल्पस्वरूपसमस्तपक्षपातेनातिक्रांत एव समयसार इत्यवतिष्ठति -

सम्मद्दसणणाणं एदं लहदि त्ति णवरि ववदेसं। (१४४)
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो।।१५२।।

सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो इंद्रियानिंद्रियजनितबहिर्विषयसमस्तमतिज्ञानविकल्परहित सन् बद्धाबद्धादिविकल्परूपनयपक्षपातरहितं समयसारमनुभन्नेव निर्विकल्पसमाधिस्थैः पुरुषैर्दृश्यते ज्ञायते च यत आत्मा ततः कारणात् **सम्मद्दसणणाणं एदं लहदित्ति णवरि ववदेसं** नवरि केवलसकलविमलकेवलदर्शनज्ञानरूपव्यपदेशं संज्ञां लभते। न च बद्धाबद्धादिव्यपदेशाविति। एवं निश्चयव्यवहारनयद्वयपक्षपातरहितशुद्धसमयसारव्याख्यान मुख्यतया गाथाचतुष्टयेन नवमोऽन्तराधिकारः समाप्तः।।१५२।।

णविर तु समयपडिबद्धो तथापि केवल सहजपरमानंद एक स्वभावमय आत्मा के आधीन (प्रतिबद्ध) होकर **णयपक्ख परिहीणो** नित्य उल्लसित होकर केवल ज्ञान से श्रुतज्ञानावरणीय क्षयोपशमजनित विकल्पजाल वाले दोनों नय पक्ष से दूर रहने से **ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचि वि** नयपक्षविकल्प को कुछ भी आत्मस्वभावरूप से ग्रहण नहीं करते हैं, वैसे गणधरदेवादि छद्मस्थजन भी दोनों नयों के द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप जानते हैं,

तथापि केवल चिदानन्दैकस्वभावमय आत्मा के आधीन (प्रतिबद्ध) होकर श्रुतज्ञानावरणीय क्षयोपशमजनित विकल्पजाल वाले दो नयपक्षपात से शुद्ध निश्चय के द्वारा दूर रहने से निर्विकल्प समाधिकाल में शुद्धात्मस्वभावरूप से नयपक्षपातवाले विकल्प को स्वीकाररूप ग्रहण नहीं करते हैं।

भावार्थ - अव्रती सम्यक्त्वी से सिद्ध तक के सभी जीव स्वशुद्धात्मानुभूति के समय नयपक्षपात से दूर रहकर एक चिदानंदस्वभाव को ग्रहण करते हैं, वे विकल्परहित हैं। (याने निर्विकल्प हैं)।।१५१।।

अब, शुद्धपारिणामिक परमभावग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनय से नयविकल्पस्वरूप समस्त पक्षपात से अतिक्रांत (रहित) ही समयसार होता है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(जो)** जो **(सव्वणयपक्खरहिदो)** सब नयपक्षों से रहित है **(सो)** वही **(समयसारो)** समयसार है, ऐसा **(भणिदो)** कहा है। **(एदं)** यह समयसार ही **(णवरि)** केवल **(सम्मद्दसणणाणं)** सम्यग्दर्शनज्ञान **(त्ति)** ऐसे **(ववदेसं)** नाम को **(लहदि)** पाता है।

टीकार्थ - **सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो** (आगमभाषा से) आत्मा, निर्विकल्पसमाधिस्थ पुरुषों द्वारा इंद्रियअनिंद्रियजनित बाह्यविषयक समस्त मतिज्ञान के विकल्पों से रहित होकर (और अध्यात्मभाषा से) बद्धअबद्धादि विकल्परूप नयपक्षपात से रहित होकर समयसार का अनुभव करता हुआ ही देखा और जाना जाता है, **सम्मद्दसणणाणं एदं लहदि त्ति णवरि ववदेसं** इस कारण से केवल सकलविमल केवल दर्शनज्ञान संज्ञा को (नाम को) प्राप्त होता है, किन्तु बद्धअबद्धादि व्यपदेश को प्राप्त नहीं होता है। इस प्रकार निश्चय व्यवहार नयों के पक्षपात से रहित शुद्धसमयसार के व्याख्यान की मुख्यता से चार गाथाओं द्वारा नवम अंतराधिकार पूर्ण हुआ।।१५२।।

इत्यनेन प्रकारेण **'जाव ण वेदि विसेस'** इत्यादिगाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेणाज्ञानिसज्ञानिजीवयो सक्षेपसूचनार्थम् गाथाषट्कम्। तदनतरमज्ञानिसज्ञानिजीवयोर्विशेषव्याख्यानरूपेणैकादश गाथा। ततश्चेतनाचेतनकार्ययोरेकोपादान कर्तृत्वलक्षणद्विक्रियावादिनिराकरणमुख्यत्वेन गाथापचविशति। तदनतर प्रत्यया एव कर्मम् कुर्वन्तीति समर्थनद्वारेण सूत्रसप्तकम्। ततश्च जीवपुद्गलकथचित्परिणामित्वस्थापनमुख्यत्वेन सूत्राष्टकम्। तत पर ज्ञानमयाज्ञानमयपरिणाम कथनमुख्यतया गाथानवकम्। तदनतरमज्ञानमयभावस्य मिथ्यात्वादिपचप्रत्ययभेदप्रतिपादनरूपेण गाथापचकम्। ततश्च जीवपुद्गलयो परस्परोपादानकर्तृत्वनिषेधमुख्यत्वेन गाथात्रयम्। तत पर नयपक्षपातरहितशुद्धसमयसारकथनरूपेण गाथाचतुष्टय चेति समुदायेनाष्टाधिकसप्ततिगाथाभिर्नवभिरतराधिकारै। कर्ताकर्ममहाधिकार समाप्त। तत्रैव सति जीवाजीवाधिकाररगभूमौ नृत्यानतर श्रृगारपात्रयो परस्परपृथग्भाववत् शुद्धनिश्चयेन जीवाजीवौ कर्तृकर्मवेषविमुक्तौ निष्क्रान्ताविति।

इति श्री जयसेनाचार्यकृताया समयसारव्याख्याया शुद्धत्मानुभूतिलक्षणाया तात्पर्यवृत्तौ पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना सबधी पीठिकारूपस्तृतीयो महाधिकार समाप्त ।।३।।

इस प्रकार से **'जाव ण वेदि विसेस'** इत्यादिगाथा से शुरु करके पाठक्रम से अज्ञानी और सज्ञानी (सम्यक्ज्ञानी) जीव की सक्षेप से सूचना के लिये छ गाथायें हैं। तदनतर अज्ञानी और सम्यग्ज्ञानी जीव का विशेष कथन करने वाली ११ गाथायें हैं। फिर चैतन और अचेतन इन दोनों कार्यों का एक उपादान कर्ता है, ऐसा मानने वाले द्विक्रियावादी के निराकरण की मुख्यता से २५ गाथायें हैं। इसके वाद मिथ्यात्वादि प्रत्यय ही कर्म करते हैं, इसका समर्थन करने वाली सात गाथायें कहीं हैं। इसके अनतर जीव और पुद्गल इनका कथचित् परिणामित्व सिद्ध करने की मुख्यता से आठ गाथायें कही हैं। इसके आगे ज्ञानमय और अज्ञानमय परिणामों की मुख्यता रखकर कथन करने वाली नौ गाथायें कही हैं। इसके आगे अज्ञानमय भाव के मिथ्यात्वादि पाच प्रत्यय के भेद को कथन करने वाली पाच गाथायें कही हैं। इसके अनतर जीव और पुद्गलों का परस्पर (एक दूसरे के) उपादान कर्तृत्व का निषेध करने की मुख्यता से तीन गाथायें कही हैं। इसके आगे नयपक्षपात रहित शुद्धसमयसार का कथन करने वाली चार गाथायें कही हैं। इस प्रकार समस्त ७८ गाथा और नौ अतराधिकारों के द्वारा कर्ता-कर्म महाधिकार समाप्त हुआ।

इस प्रकार वहाँ जीवाजीवाधिकार की रगभूमि में नृत्य करने के बाद शुद्धनिश्चयनय से शृगार और पात्र दोनों के परस्पर पृथक्-पृथक् भाव की तरह जीव और अजीव ये दोनों कर्तृ-कर्मभेष से रहित होकर निष्क्रान्त हो गये (चले गये)।

इस तरह श्रीजयसेनाचार्यजी कृत समयसार की व्याख्या करनेवाली, शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाली तात्पर्यवृत्ति में पुण्यपापादि सप्तपदार्थों के सबध में पीठिकारूप तृतीय महाधिकार समाप्त हुआ।।३।।

卐 卐 卐 卐 卐

ज्ञानपर्याय | विषय

स्व | बाह्य/अर्थ/पर

मैं अश्व को जानता हूँ | अश्व

'स्व या अह या मैं' की प्रतीति प्रत्यक्ष है और प्रमाण है।

यहाँ 'अश्व है' ऐसा जानना प्रमाणज्ञान है, क्योंकि बाह्यविषय 'अश्व ही' है।

सम्यग्ज्ञानपर्याय | विषय

स्व | बाह्य/अर्थ/पर

मैं यह निजध्रुव आत्मा हूँ | निजध्रुव आत्मा

'स्व या अह या मैं' की प्रतीति प्रत्यक्ष है और प्रमाण है।

यहाँ 'निजध्रुवात्मा हूँ' ऐसा प्रामाण्यसहित प्रत्यक्ष जानना प्रमाणज्ञान है, क्योंकि बाह्यविषय 'निज ध्रुव आत्मा ही' है।

चार्ट नं. १२
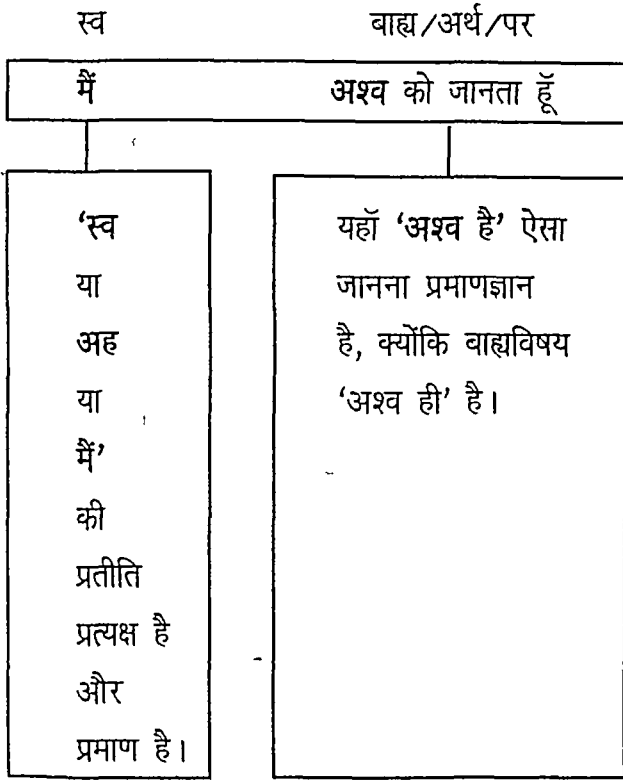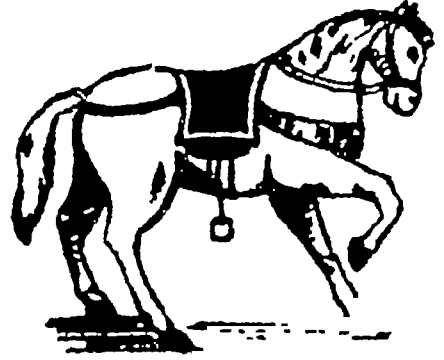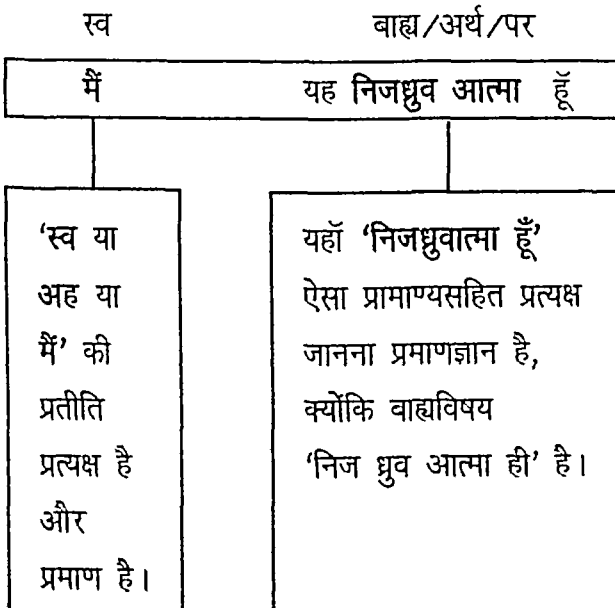
- उपादान निमित्त -

कार्य - आचार्य अमृतचद्र ने शास्त्र रचना की। शास्त्र रचना हुई, यह कार्य हुआ।

उपादान	निमित्त		निश्चयनय से कार्य का कर्ता	फल
कागज और स्याहीरूप पुद्गल स्वय स्वत शास्त्र रूप परिणमित हुए। १००%	आचार्य अमृतचद्र का जीव स्वय स्वत ज्ञान और राग रूप परिणमित हुआ। १००%	कलम, इन्द्रियाँ, प्रकाश, स्वय स्वत परिणमित हुए। १००%	पुद्गल - उपादान कर्ता है १००% आचार्य अमृतचद्र का जीव, कलम, इन्द्रियाँ निमित्त कर्ता है ०% (याने निमित्त अकिंचित्कर है।)	समीचीन है।

असद्भूत व्यवहार नय का कथन — निश्चयनय का कथन

कार्य - कुभकार ने घट बनाया। घट बना, यह कार्य हुआ।

उपादान	निमित्त		निश्चयनय से कार्य का कर्ता	फल
मिट्टी पुद्गल द्रव्य स्वय स्वत घट रूप से परिणमित हुई। १००%	कुभकार का जीव स्वय स्वत इच्छा-राग रूप परिणमित हुआ। १००%	दड, चक्र आदि स्वय स्वत परिणमित हुए। १००%	मिट्टी पुद्गल-उपादान कर्ता १००%. कुभकार का जीव दड, चक्र आदि निमित्त कर्ता है ०% (याने निमित्त अकिंचित्कर है।)	समीचीन है।

असद्भूत व्यवहार नय का कथन — निश्चयनय का कथन

निमित्त - उपादान का सत्य स्वरूप जानने से जीवन मे लाभ

'जहाँ उपादान कार्यरूप परिणमन करता है वहाँ निमित्त स्वय होता है' यह सिद्धात समझने से मेरे पास मेरा आत्म द्रव्य है, उसका शुद्धात्मानुभव लेने के लिए मैं स्वतत्र हूँ। अन्य किसी पर मैं अवलम्बित नहीं हूँ। ऐसा जानकर यह जीव स्वात्मानुभव लेता है और सम्यक् आनदी जीवन जीता है। जो दूसरे पर निर्भर होता है वह पराधीन होता है। स्वाधीन/स्वतत्र जीवन जीने के लिए समीचीन वस्तु व्यवस्था का ज्ञान उपयोगी है। दूसरा कोई मुझे सुखी अथवा दु खी नहीं करता। जब मैं स्वय ही सुखी अथवा दु खीरूप परिणमन करता हूँ, तब मैं स्वय ही आनदी जीवन जीने के लिए समर्थ हूँ। मेरा कार्य करने के लिए मैं ही पूर्ण समर्थ एव स्वतत्र हूँ।

अनुभव किसे कहते हैं ?

इदन्तोल्लेखिज्ञानमनुभव । 'यह है' ऐसा आकारवाला ज्ञान अनुभव कहलाता है। न्या दी अ.३ परि.८

णाण अट्ठ वियप्पो अर्थ विकल्प वह ज्ञान है। अर्थ याने स्व-पर के विभाग पूर्वक अवस्थित विश्व। उसके आकारों का अवभासन होना वह विकल्प (विचार) है। जैसे दर्पण के निजविस्तार में स्व और पर के आकार एक ही साथ प्रकाशित होते हैं ऐसे दर्पण के निजविस्तार की भाति जिस ज्ञान में एक ही साथ स्व-पर आकार अवभासित होते हैं, ऐसा अर्थविकल्प वह ज्ञान है। प्रवचनसार गा १२४ टीका

जो-जो ज्ञान पर्याय है, वह विकल्प याने साकार अथवा विचार है। याने जो निर्विकल्पज्ञान पर्याय होती है वह साकार है, और इसीलिये उसे सविकल्प भी कह सकते हैं। यद्यपि वहॉ उस काल में राग का तो लेश भी नहीं है। देखो समयसार गाथा २९२ दोनों टीकायें तथा बृहद्द्रव्यसग्रह गाथा ४२ की टीका।

एकाग्र (निजध्रुवात्मा) को विषय करके जाननेवाले प्रामाण्यसहितप्रत्यक्षज्ञान को निर्विकल्पज्ञान कहते हैं।

सर्वज्ञ सिद्धि

सूक्ष्म (स्वभाव विप्रकृष्ट-परमाणु आदि), **अन्तरित** (काल विप्रकृष्ट-राम, रावण,आदि), **दूरवर्ती** (देश विप्रकृष्ट- मेरु आदि) पदार्थ किसी के द्वारा प्रत्यक्ष जाने जाते हैं। जो-जो विषय (पदार्थ) होता है वह किसी न किसी ज्ञान का विषय होता है (जाना जाता है)। परमाणु, राम, रावण और मेरु आदि विषय हैं। उन्हें कोई अवश्य जानता है, क्योंकि उन पदार्थो में **प्रमेयत्व गुण** है। हम उन्हें **अनुमानज्ञानरूप** (साधन से साध्य का ज्ञान होना) **परोक्षज्ञान** साधन से जानते हैं। वे किसी जीव को **प्रत्यक्षज्ञान** द्वारा भी जानने में आते हैं। वे जिसे प्रत्यक्ष जानने में आते हैं वह सर्वज्ञ है। **सर्वज्ञ का ज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान है** क्योंकि वह ज्ञान अशेष विषय (सम्पूर्ण ज्ञेय) को युगपत् जानता है। वे पदार्थ इद्रियज्ञान के विषय नहीं हैं। अर्हन्त का निषेध तीनलोक और तीनकाल को युगपत् जाने बिना नहीं किया जा सकता है। जो ऐसा जानेगा वह स्वय ही सर्वज्ञ है।

अन्वय व्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारणभाव । अन्वय और व्यतिरेक से कार्य-कारणभाव जाना जाता है।

- न्यायदीपिका अ २ परि ४

ज्ञान का कार्य क्या है ?

१ तत्वार्थ में रुचि, प्रत्यय-निश्चय, श्रद्धा और चारित्र स्पर्शन करना, यह ज्ञान का कार्य है।

- धवल पु १, सूत्र न ११५ पृ ३५५।

२ जाने हुए पदार्थ की श्रद्धा करना ज्ञान का कार्य है। ऐसे ज्ञान का कार्य मिथ्यादृष्टि जीव में नहीं होता अत उसके ज्ञान को अज्ञान कहा है। धवल पु ५ पृ २२४, मोक्षशास्त्र, टीका प रामजीभाई पृ ९१।

प्रश्न · किमिद प्रमाणस्य प्रामाण्य नाम ? प्रमाण का प्रामाण्य क्या है ?

उत्तर प्रतिभात विषयाऽव्यभिचारित्वम्। जाने हुए विषय में व्यभिचार (झूठापन) का न होना ज्ञान का प्रामाण्य है। 'ज्ञेय वस्तु जैसी है वैसी ही जानना' इसके साथ प्रामाण्य का अविनाभाव सवध है।

प्रश्न तस्योत्पत्ति कथम् ? प्रामाण्य की उत्पत्ति किस प्रकार होती है ?

उत्तर तस्मादप्रामाण्यवत्प्रामाण्यमपि परत एवोत्पद्यते। जिस तरह अप्रामाण्य की उत्पत्ति परत होती है, उसी तरह प्रामाण्य की उत्पत्ति भी परत. होती है। अ न्याय दी अ १, पृ १५, १६

प्रश्न कथ तस्य ज्ञप्ति ? ज्ञान के प्रामाण्य की ज्ञप्ति किस प्रकार होती है ?

उत्तर अभ्यस्ते विषये स्वत, अनभ्यस्ते तु परत । अभ्यस्त विषय में प्रामाण्य की ज्ञप्ति (निर्णय) स्वत (उसी समय में) होती है, लेकिन अनभ्यस्त विषय में परत· (आगेवाले-अन्य समय में) प्रामाण्य की ज्ञप्ति होती है।

- न्याय दी पृ १६

नय किसे कहते हैं ?

१ नयो प्रमाणगृहीतार्थैकदेशग्राही प्रमातुरभिप्रायविशेष । न्या दी अ ३ पृ १२५

२ प्रमाणेन वस्तुसगृहीतार्थैकाशो नय श्रुतविकल्पो वा ज्ञातुरभिप्रायो वा नय । - आलाप पद्धति।

३ अनिराकृत प्रतिपक्षो वस्त्वशग्राही ज्ञातुरभिप्रायो नय·। प्र क मार्तण्ड

४ प्रमाणप्रकाशितार्थविशेषप्ररूपको नय·। राजवार्तिक अ १ सू ३३

अर्थ - प्रमाणज्ञान के द्वारा जानी गई वस्तु के एक अश (सामान्याश या विशेषाश) को जानने वाले ज्ञान को या ज्ञाता के अभिप्राय (या श्रुत के ज्ञान या विकल्प) को नय कहते हैं। ज्ञाता (ज्ञानी) का अभिप्राय ही नय है।

पुण्यपाप अधिकार

अथानतर निश्चयेनैकमपि पुद्गलकर्म व्यवहारेण द्विपदीभूयपुण्यपापरूपेण प्रविशति। **कम्ममसुह कुसील** इत्यादि गाथामादि कृत्वा क्रमेणैकोनविशतिसूत्रपर्यन्त पुण्यपापव्याख्यान करोति। तत्र यद्यपि पुण्यपापयोर्व्यवहारेण भेदोऽस्ति तथापि निश्चयेन नास्ति इति व्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रषट्क। तरनतरमध्यात्मभाषया शुद्धात्मभावना विना आगमभाषया तु वीतरागसम्यक्त्व विना व्रतदानादिक पुण्यवधकारणमेव न च मुक्तिकारणम्। सम्यक्त्वसहित पुन परपरया मुक्तिकारण च भवति इति मुख्यतया **'परमट्ठो खलु'** इत्यादिसूत्रचतुष्टयम्। तत पर निश्चयव्यवहारमोक्षमार्ग-मुख्यत्वेन **'जीवादीसद्दहण'** इत्यादि गाथानवकम् कथयतीति पुण्यपापपदार्थाधिकार समुदायपातनिका। तद्यथा -

---

अब, उसके वाद निश्चयनय से पुद्गलकर्म एक है, तो भी व्यवहारनय से वही पुद्गलकर्म पुण्य और पाप रूप से दो रूप होकर रगभूमि में प्रवेश करता है।

'कम्ममसुह कुसील' इत्यादि गाथा से शुरु करके क्रम से १९ गाथाओं तक पुण्यपाप का व्याख्यान करते हैं। वहाँ यद्यपि व्यवहारनय से पुण्य और पाप में भेद है तथापि निश्चयनय से पुण्य और पाप म भेद नहीं है। इस कथन की मुख्यता से छ गाथायें हैं। तदनतर -

अध्यात्मभाषा से	आगमभाषा से
(१) **शुद्धात्मभावना** शुद्धात्मानुभूति के विना व्रत-दानादिक पुण्यवध के ही कारण हैं, मुक्ति के कारण नहीं हैं।	(१) **वीतराग सम्यक्त्व** (निश्चयसम्यक्त्व) के विना व्रत-दानादिक पुण्यवध के ही कारण हैं, मुक्ति के कारण नहीं हैं।
(२) शुद्धात्मानुभृति के साथ जो व्रत-दानादिक हैं, वहाँ जो शुद्धोपयोग या शुद्धपरिणति है वह शुद्धोपयोग मुक्ति का कारण है।	(२) सम्यक्त्व (निश्चय सम्यक्त्व) के साथ जो व्रत-दानादिक हैं, उनको परपरा से मुक्ति का कारण कहते हैं।

(इस कथन से यह सिद्ध होता है कि, चतुर्थ गुणस्थानवाला मोक्षमार्गस्थ होने से, अव्रती सम्यक्त्वी का सम्यक्त्व **वीतराग सम्यक्त्व** (निश्चय सम्यक्त्व) है। क्योंकि अव्रती सम्यक्त्वी को जो प्रथमोपशम या क्षयोपशम या क्षायिक सम्यक्त्व है वहाँ करणानुयोग की अपेक्षा से प्रथमोपशम सम्यक्त्व में सात प्रकृति का उपशम है और क्षयोपशम सम्यक्त्व में छ प्रकृति का उदय नहीं है और क्षायिक सम्यक्त्व में सात प्रकृति का क्षय है।)

इस प्रकार के कथन की मुख्यता से **'परमट्ठो खलु'** इत्यादि चार गाथायें हैं।

ब्राह्मण्या पुत्रद्वय जातम्। तत्रैक उपनयनवशाद्ब्राह्मणो जात द्वितीय पुनरुपनयाभावाच्छूद्र इति। तथैकमपि निश्चयनयेन पुद्गलकर्म शुभाशुभजीवपरिणामनिमित्तेन व्यवहारेण द्विधा भवतीति कथयति -

कम्ममसुह कुसील सुहकम्म चावि जाणह सुसील। (१४५) आ.ख्या.
कह त होदि सुसील ज ससार पवेसेदि।।१५३।। ता.वृ.

कम्ममसुह कुसील सुहकम्म चावि जाणह सुसील कर्माशुभ कुत्सित कुशील हेयमिति। शुभकर्म सुशील शोभनमुपादेयमिति केषांचिद् व्यवहारिणा पक्ष सन् निश्चयरूपेण पक्षातरेण बाध्यते। **कह त होदि सुसील ज ससार पवेसेदि** निश्चयवादी ब्रूते कथ तत्पुण्यकर्म सुशील शोभन भवति ? यज्जीव ससारे प्रवेशयति। हेतुस्वभावानुभव-बधरूपाश्रयाणा निश्चयेनाभेदात् कर्मभेदो नास्तीति। तथाहि हेतुस्तावत्कथ्यते, शुभाशुभपरिणामो हेतु । स च शुद्धनिश्चयेनाशुभत्व प्रति एक एव द्रव्य पुण्यपापरूप पुद्गलद्रव्यस्वभाव । सो ऽपि निश्चयेन पुद्गलद्रव्य प्रति, एक एव तत्फल सुखदु खरूप स च फलरूपानुभव । सोऽप्यात्मोत्थनिर्विकारसुखानदापेक्षया दु खरूपेणैक एव आश्रयस्तु शुभाशुभबधरूप । सोऽपि बध प्रत्येक एव इति हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणा सदाप्यभेदात्। यद्यपि व्यवहारेण भेदोऽस्ति तथापि निश्चयेन शुभाशुभकर्मभेदो नास्ति इति व्यवहारवादिना पक्षो बाध्यत एव।।१५३।।

इसके आगे निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग की मुख्यता से 'जीवादीसद्दहण' इत्यादि ९ गाथायें कहते हैं। यह पुण्यपापपदार्थ के अधिकार की समुदाय पातनिका है।

अब, किसी एक ब्राम्हणी को दो पुत्र हुए। उसमें से एक का उपनयन सस्कार हो जाने से वह ब्राह्मण कहलाया। किन्तु दूसरे का उपनयन सस्कार नहीं हुआ अत वह शूद्र कहलाया। उसी प्रकार निश्चयनय से पुद्गलकर्म एक ही हे, तो भी **व्यवहारनय से जीव के शुभाशुभपरिणाम के निमित्त से पुद्गल कर्म दो प्रकार के हैं,** ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - (कम्ममसुह) अशुभ कर्म तो (कुसील) पाप स्वभाव है (चावि) और (सुहकम्म) शुभकर्म (सुसील) पुण्य स्वभाव है, ऐसा जगत (जाणह) जानता है। परन्तु परमार्थ दृष्टि से कहते हैं कि (ज) जो (ससार) प्राणी को ससार में ही (पवेसेदि) प्रवेश कराता है (त) वह कर्म (सुसील) शुभ-अच्छा (कह) कैसे (होदि) हो सकता है ?

टीकार्थ - **कम्ममसुह कुसील सुहकम्म चावि जाणह सुसील** अशुभ कर्म कुत्सित कुशील होने से हेय हे। शुभकर्म सुशील है, अच्छा है - उपादेय है, ऐसा कोई व्यवहारीजनों का पक्ष है, लेकिन निश्चय से (दूसरे पक्ष से) वह पक्ष बाधित है (निषेध किया जाता है)। **कह त होदि सुसील ज ससार पवेसेदि** निश्चयवादी कहता है कि, वह पुण्यकर्म सुशील या अच्छा कैसे हो सकता हे, जो पुण्यकर्म ससार में प्रवेश कराता है ? (ससार दु खमय है)। कर्म के हेतु, स्वभाव, अनुभव, बधरूप आश्रय इन का जब विचार किया जाय तो वे निश्चय से अभेद होने से उन शुभाशुभ कर्मों में भेद नहीं है।

अथोभय कर्म, अविशेषेण वधकारण साधयति -

सौवण्णिय पि णियल बधदि कालायस पि जह पुरिस। (१४६)
बधदि एव जीव सुहमसुह वा कद कम्म ।।१५४।।

सौवण्णिय णियल बधदि कालायस पि जह पुरिस यथा सुवर्णनिगल लोहनिगल च अविशेषेण पुरुष वध्नाति **बधदि एव जीव सुहमसुह वा कद कम्म** तथा शुभमशुभ वा कृत कर्म अविशेषेण जीव वध्नातीति।

कि च, भोगाकाक्षानिदानरूपेण रूपलावण्यसौभाग्यकामदेवेन्द्राहमिद्रख्यातिपूजालाभादिनिमित्त यो व्रततपश्चरणदानपूजादिक करोति, स पुरुष तक्रनिमित्त रत्नविक्रयवत्, भस्मनिमित्त रत्नराशिदहनवत्, सूत्रनिमित्त हारचूर्णवत्, कोद्रवक्षेत्रवृत्तिनिमित्तमगुरुवनच्छेदनवत् वृथैव व्रतादिक नाशयति। यस्तु शुद्धात्मभावनासाधनार्थ वहिरगव्रततपश्चरणदानपूजादिक करोति स परपरया मोक्ष लभते इति भावार्थ ।।१५४।।

अव हेतु का कथन करते हैं - कर्म का हेतु (जीव का) शुभाशुभ परिणाम है, और वह शुद्धनिश्चय से एक अशुद्धरूप ही है। द्रव्य भी पुण्यपापरूप पुद्गलस्वभावमय है। वह भी निश्चयनय से एक पुद्गलमय जड ही है। उसका फल सुखदु ख है और वह फलरूप अनुभव है। वह सुखदु खरूप अनुभव भी स्वात्मोत्थ निर्विकार सुखानद की अपेक्षा से एक दु खरूप ही है। आश्रय शुभाशुभबधरूप है, वह भी वध की अपेक्षा से एक ही है। पुण्यकर्म और पापकर्म हेतु, स्वभाव, अनुभव और आश्रय में सदा अभेद ही है। यद्यपि व्यवहार से भेद है तथापि निश्चयनय से शुभाशुभकर्म में भेद नहीं है। इस तरह व्यवहारवादियों का पक्ष वाधित ही है।।१५३।।

सामान्य से शुभ और अशुभ दोनों कर्म बध के कारण हैं, यह सिद्ध करते हैं -

गाथार्थ - **(जह)** जैसे **(कालायस णियल)** लोहे की वेडी **(पुरिस)** पुरुष को **(बधदि)** बाधती है **(पि)** और **(सौवण्णिय)** सुवर्ण की **(पि)** भी वाधती है **(एव)** इसी प्रकार **(सुहमसुह वा)** शुभ तथा अशुभ **(कद कम्म)** किया हुआ कर्म **(जीव)** जीव को **(बधदि)** वाधना ही है।

टीकार्थ - **सौवण्णिय पि णियल बधदि कालायस पि जह पुरिस** सामान्य से जैसे सुवर्ण की बेडी और लोहे की वेडी पुरुष को वधन में रखती है

बधदि एव जीव सुहमसुह वा कद कम्म वैसे किया हुआ शुभ अथवा अशुभ कर्म सामान्यरूप से जीव को वाधता है।

और कुछ विशेष कहते हैं - भोगाकाक्षानिदानरूप से रूप, लावण्य, सौभाग्य, कामदेव, इन्द्र, अहमिद्र, ख्याति, पूजा, लाभ इत्यादि के लिये जो व्रत तपश्चरण दान पूजादि करता है, वह पुरुष व्रतादिक को वृथा खोता है जैसे छाछ के लिए रत्न वेचता है, या भस्म के लिए रत्नराशि जलाता है, या सूत्र के लिये मोतियों के हार को तोडता है या कोदो धान्य को वोने के लिये चदन के वन को काटता है।

जो शुद्धात्मानुभूति की साधना के लिए वहिरग व्रत तपश्चरण दान पूजादिक करता है (विकल्प की भूमिका में सम्यग्दृष्टि व्रतादि दानादि क्रिया करते हुए दिखाई देता है) परपरा से वह मोक्ष पाता है। ऐसा भावार्थ है।।१५४।।

अथोभयकर्माविशेषेण मोक्षमार्गविषये निषेधयति -

तम्हा दु कुसीलेहि य राग मा कुणह मा व ससग्ग। (१४७)
साहीणो हि विणासो कुसीलससग्गरागेण।। १५५।।

तम्हा दु कुसीलेहि य राग मा कुणह मा व ससग्ग तस्मात् कारणात् कुशीलै कुत्सितै शुभाशुभकर्मभि सह चित्तगतराग मा कुरु। वहिरगवचनकायगतससर्ग च मा कुरु। कस्मात् इति चेत्। **साहीणो हि विणासो कुसीलससग्गरागेण** कुशीलससर्गरागाभ्या स्वाधीनो नियमेन विनाश निर्विकल्पसमाधिविघातरूप स्वार्थभ्रशो हि स्फुट भवति अथवा स्वाधीनस्यात्मसुखस्य विनाश इति।। १५५।।

अथोभयकर्म प्रति निषेध स्वयमेव श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेव दृष्टातदार्ष्टान्ताभ्या समर्थयति -

जह णाम को वि पुरिसो कुच्छियसील जण वियाणित्ता।(१४८)
वज्जेदि तेण समय ससग्ग रागकरण च ।।१५६।।
एमेव कम्मपयडी सीलसहाव हि कुच्छिद णादु। (१४९)
वज्जनि परिहरति य त ससग्ग सहावरदा।।१५७।।

अब, **मोक्षमार्ग में सामान्य से शुभ और अशुभ दोनों कर्मों का निषेध करते हैं -**

गाथार्थ - **(तम्हा)** इसलिये **(कुसीलेहिय)** उन दोनों कुशीलों से **(राग)** प्रीति **(मा कुणह)** मत करो **(वा)** अथवा **(ससग्ग दु)** ससर्ग भी **(मा)** मत करो **(हि)** क्योंकि निश्चय से **(कुसीलससग्गरागेण)** कुशील के ससर्ग से और राग से **(साहीणो विणासो)** अपनी स्वाधीनता का विनाश होता है।

टीकार्थ - **तुम्हा दु कुसीलेहि य राग मा कुणह मा व ससग्ग** इसलिये कुशीलवाले शुभाशुभकर्मों के साथ मानसिक राग मत करो। बहिरग वचन कायगत ससर्ग भी मत करो।

शका - क्यों ?

समाधान - **साहीणो हि विणासो कुसील ससग्गरागेण** क्योंकि कुशील के साथ ससग और प्रीति करने से नियम से अपनी स्वतत्रता का नाश होता है, निर्विकल्प समाधि का नाश होता है, स्पष्टरूप से अपना प्रयोजनभूत कार्य नष्ट होता है अथवा स्वाधीन आत्मसुख का नाश होता है।।१५५।।

अव, **उभय कर्मों का निषेध स्वय ही श्री कुदकुदाचार्यदेव दृष्टातदार्ष्टांत से करते हैं -**

गाथार्थ - **(जह णाम)** जैसे **(को वि)** कोई **(पुरिसो)** पुरुष **(कुच्छियसील)** निदित स्वभाव वाले **(जण)** किसी पुरुष को **(वियाणित्ता)** जानकर **(तेण समय)** उसके साथ अपना **(ससग्ग च रागकरण)** ससर्ग और राग करना **(वज्जेदि)** छोड देता है।

(एमेव) इसी तरह ज्ञानी जीव **(कम्मपयडी सीलसहाव)** कर्म प्रकृतियों के शील-स्वभाव को **(कुच्छिद णादु)** निन्दनीय जानकर **(वज्जति)** उससे राग छोड देते हैं **(हि)** और **(त ससग्ग)** उसकी सगति भी **(परिहरति)** छोड देते हैं **(य)** और **(सहावरदा)** अपने स्वभाव में लीन हो जाते हैं।

जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसील जण वियाणित्ता यथा नाम स्फुटमहो वा कश्चित्पुरुष कुत्सितशील जन ज्ञात्वा। **वज्जेदि तेण समय ससग्ग रागकरण च** तेन समक सह वहिरगवचनकायगत ससग मनोगत राग च वर्जयतीति दृष्टात । **एमेव कम्मपयडी सीलसहाव हि कुच्छिद णादु** एवमेव पूर्वोक्तदृष्टान्तन्यायेन कर्मण प्रकृति शीलस्वभाव कुत्सित हेय ज्ञात्वा। **वज्जति परिहरति य त ससग्ग सहावरदा** इह जगति वर्जयन्ति तत्सर्गं वचनकायाभ्या परिहरन्ति मनसा राग च तस्य कर्मण । के ते ? समस्तद्रव्यभावगतपुण्यपापपरिणामपरिहारपरि-णताभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिस्वभावरता साधव इति दार्ष्टान्त ।।१५६, १५७।।

अथोभय कर्म शुद्धनिश्चयेन केवल बधहेतु। न केवल बधहेतु प्रतिषेध्य हेय चागमेन साधयति-

रत्तो बधदि कम्म मुचदि जीवो विरागसपण्णो[१]। (१५०)
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज।। १५८।।

टीकार्थ - जह णाम को वि पुरिसो कुच्छियसील जण वियाणित्ता जैसे कोई पुरुष किसी को कुत्सित शीलवाला जानकर **वज्जेदि तेण समय सस्सग रागकरण च** उसके साथ वहिरग वचन कायगत ससर्ग और मनोगत राग छोड देता है, यह दृष्टात है। **एमेव कम्मपयडी सीलसहाव हि कुच्छिद णादु** इस दृष्टात न्याय से (उसी दृष्टात की तरह) कर्म के प्रकृति-स्वभाव को कुत्सित-हेय जानकर **वज्जति परिहरति य त ससग्ग सहावरदा** इस जगत में काय वचन से उसका ससर्ग छोड देते हैं और मन से उन कर्मों का राग छोड देते हैं।

शका - वे कौन छोड देते हैं ?

समाधान - समस्त द्रव्यभावगत पुण्यपाप परिणामरहित ऐसी परिणतिवाले अभेदरत्नत्रयलक्षणरूप निर्विकल्प समाधिवाले-अपने स्वभाव में रत रहने वाले जो जीव हैं, वे साधना करने वाले जीव उभय कर्मो की सगति और राग छोड देते हैं।

भावार्थ - चतुर्थ गुणस्थान से सिद्धतक के सभी जीव दोनों कर्मों का हेय जानते हैं और अपने स्वभाव में रत होते हैं।।१५६, १५७।।

अब **दोनों ही कर्म शुद्धनिश्चयनय से केवल बध के कारण हैं।** केवल बध हेतु हैं इतना ही नहीं तो निषेध करने योग्य हैं, ऐसा आगम से सिद्ध करते हैं -

गाथार्थ - **(रत्तो)** रागी **(जीवो)** जीव तो **(कम्म)** कर्मो को **(बधदि)** वाधता है **(विरागसपण्णो)** तथा वैराग्य को प्राप्त हुआ जीव **(मुचदि)** कर्म से छूट जाता है **(एसो)** यह **(जिणोवदेसो)** जिन भगवान का उपदेश है **(तम्हा)** इस कारण भो भव्य जीवो ! तुम **(कम्मेसु)** कर्मों में **(मा रज्ज)** रागी मत होओ, प्रीति मत करो।

टीकार्थ - रत्तो बधदि कम्म मुचदि जीवो विरागसपण्णो जिस कारण से रागी होकर कर्मो को वाधता है, उन कर्मजनितभावों में विरागसपन्न जीव मुक्त होता है।

---

[१] पाठान्तर - विराग सपत्तो

रत्तो बधदि कम्म मुचदि जीवो विरागसपण्णो यस्मात् कारणात् रक्त सन् कर्माणि वध्नाति। मुच्यते जीव कर्मजनितभावेपु विरागसपन्न । **एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज** एप प्रत्यक्षीभूतो जिनोपदेश कर्ता, कि करोति ? उभय कर्म वधहेतु, न केवल वधहेतु प्रतिपेध्य हेय च कथयति तस्मात्कारणात् शुभाशुभसकल्प-विकल्परहितत्वेन स्वकीयशुद्धात्मभावनोत्पन्ननिर्विकारसुखामृतरसस्वादेन तृप्तो भूत्वा शुभाशुभकर्माणि मा रज्यस्वराग मा कुर्विति। एव यद्यप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यपुण्यपापयोर्भेदोऽस्ति अशुद्धनिश्चयेन पुनस्तद्द्रव्य-जनितेंद्रियसुखदु खयोर्भेदोऽस्ति तथापि शुद्धनिश्चयनयेन नास्ति इति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथापट्क गतम् ।। १५८ ।।

अथ विशुद्धज्ञानशब्दवाच्य परमात्मान मोक्षकारण कथयति -

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी। (१५१)
तम्हि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावति णिव्वाण ।। १५९ ।।

परमट्ठो खलु समओ उत्कृष्टार्थ परमार्थ न क ? परमात्मा अथवा धर्मार्थकाममोक्षलक्षणेपु परमार्थेपु परन उत्कृष्टो मोक्षलक्षणोऽर्थ परमार्थ सोऽपि स एव। अथवा मतिश्रुतावधिमन पर्ययकेवलज्ञानभेदरहितत्वेन निश्चयेनैक परमार्थ सोऽपि परमात्मैव **खलु** स्फुट **समओ** सम्यगयति गच्छति शुद्धगुणपर्यायान् परिणमतीति समय । अथवा सम्यगय सशयादिरहितो वोधो ज्ञान यस्य भवति स समय । अथवा समित्येकत्वेन परमसमरसीभावेन स्वकीयशुद्धस्वरूपे अयन गमन परिणमन समय सोऽपि स एव। **सुद्धो** रागादिभावकर्मरहितो **जो** य सोऽपि स एव। **केवली** परद्रव्यरहितत्वेनासहाय केवली सोऽपि स एव। **मुणी** मुनि प्रत्यक्ष ज्ञानी स एव। **णाणी** विशुद्धज्ञानमस्यास्तीति ज्ञानी सोऽपि प्रत्यक्षज्ञानी सोऽपि परमात्मैव। **तम्हि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावति णिव्वाण** तस्मिन् परमात्मस्वभावे स्थिता वीतरागस्वसवेदनज्ञानरता मुनयस्तपोधना निर्वाण प्राप्नुवति लभत इत्यर्थ ।। १५९ ।।

एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज यह स्पष्ट रूप से प्रत्यक्षभूत जिनभगवान का उपदेश है कि, उभय कर्म वध का हेतु है और केवल वधहेतु ही नहीं तो निषेध करने योग्य है, हेय है, त्याज्य है। इसलिये शुभाशुभ सकल्पविकल्प रहितपना से स्वकीय शुद्धात्मभावना से उत्पन्न निर्विकार सुखामृत रसास्वाद से तृप्त होकर शुभाशुभकर्मों में राग मत कर, इस प्रकार यद्यपि अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से द्रव्य-पुण्यपापों में भेद है और अशुद्ध निश्चयनय से उन दोनों से उत्पन्न इद्रिय सुख-दु ख में भेद है, तथापि शुद्ध निश्चयनय से उनमें भेद नहीं है इस कथन की मुख्यता से छ गाथायें समाप्त हुई।। १५८।।

विशुद्धज्ञान शब्द से जो वाच्य परमात्मा (परमात्मतत्त्व, कारण परमात्मा) है, वह मोक्ष का कारण है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(जो)** जो **(खलु)** निश्चय से **(परमट्ठो)** परमतत्त्व है वह **(समओ)** आत्मा है, **(सुद्धो)** शुद्ध है, **(केवली)** केवली है, **(मुणी)** मुनि है, **(णाणी)** ज्ञानी है **(तम्हि सहावे)** उसी स्वभाव में **(ट्ठिदा)** स्थित रहने वाले **(मुणिणो)** मुनि **(णिव्वाण)** निर्वाण को **(पावति)** प्राप्त करते हैं (प्राप्त होते हैं) ।

अथ तस्मिन्नेव परमात्मनि स्वसंवेदनज्ञानरहिताना व्रततपश्चरणादिक पुण्यबंधकारणमेवेति प्रतिपादयति-

परमट्ठम्हि य अठिदो जो कुणदि तव वद च धारयदि। (१५२)

त सव्व बालतव बालवद विंति सव्वण्हू ।।१६०।।

परमट्ठम्हि य अठिदो जो कुणदि तव वद च धारयदि तस्मिन्नेव पूर्वसूत्रोक्तपरमार्थलक्षणे परमात्मस्वरूपे अस्थितो रहितो यस्तपश्चरण करोति व्रतादिक च धारयति। त **सव्व बालतव बालवद विंति सव्वण्हू** तत्सर्वं बालतपश्चरण बालव्रत ब्रुवति कथयति। के ते ? सर्वज्ञा । कस्मात् ? इति चेत्, पुण्यपापोदयजनितसमस्तेंद्रिय-सुखदु खविकारपरिहारपरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेन विशिष्टभेदज्ञानेन रहितत्वात् इति।।१६०।।

टीकार्थ - परमट्ठो खलु समओ जो उत्कृष्ट अर्थ है, परमार्थ है (परमात्मतत्त्व है) वह परमात्मा ही है। **अथवा** धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष लक्षणवाले परमार्थों में जो परम उत्कृष्ट है वह मोक्ष लक्षणवाला अर्थ है, वह परमार्थ है, वह तो वही है। **अथवा** मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय और केवलज्ञान पर्यायों से रहित ऐसा निश्चयनय से एक जो परमार्थ है, वह भी परमात्मा ही स्पष्ट है (ध्रुव स्वभावमय कारणपरमात्मा ही परमात्मा है)। **समओ** जो एक ही साथ, (१) युगपत जानना और (२) पर्यायरूप बदलना (युगपत 'जानन और गच्छन' जो करता है) वह शुद्धगुणपर्यायों के स्वरूप परिणमन करता है वह समय है। **अथवा** जो सम्यक् जानता है, संशयादि रहित ज्ञान जिसका है, वह समय है। **अथवा** जो स याने एकत्व से-परम समरसीभाव से स्वकीय शुद्धस्वभाव में जाना-गमन करना- परिणमन करना है वह समय है। वह ही **सुध्दो** रागादि भावकर्म रहित शुद्ध जो है वह भी वही है। **केवली** वह ही परद्रव्यरहितपना से असहाय केवली है वह भी वह ही है। **मुणी** वह ही मुनि है। **णाणी** वह ही जिसका विशुद्धज्ञान है ऐसा ज्ञानी है, वह भी प्रत्यक्षज्ञानी है, वह भी परमात्मा ही है। **तम्हि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाण** उस परमात्मस्वभाव में रहने वाले, वीतराग स्वसंवेदनज्ञान में रत रहने वाले ऐसे मुनि-तपोधन निर्वाण पाते हैं, प्राप्त करते हैं।

भावार्थ - जो भी जीव वस्तुस्वरूप को जानकर अपने स्वभाव में रहता है स्वानुभव लेता है, ऐसे अव्रती सम्यक्त्वी से सिद्ध तक के जीव निर्वाणसुख पाते हैं। उनको परमार्थ, समय, शुद्ध, केवली, मुनि, ज्ञानी शब्दों से कहा है। उस परमतत्त्व को मोक्ष का कारण बताया है।।१५९।।

अब, उसी परमात्म स्वभाव के स्वसंवेदनज्ञान से रहित रहने वालों के व्रत तपश्चरणादिक पुण्य बंध का ही कारण हैं, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(जो)** जो **(परमट्ठम्मि)** परमार्थ में - स्वभाव में **(अठिदो)** स्थित नहीं है **(य)** और **(तव)** तप **(कुणदि)** करता है **(च)** और **(वद धारयदि)** व्रत धारण करता है **(त सव्व)** उस के सब तप-व्रत को **(सव्वण्हू)** सर्वज्ञदेव **(बालतव)** बालतप **(बालवद)** अज्ञानव्रत **(विंति)** कहते हैं।

टीकार्थ - परमट्ठम्हि य अठिदो जो कुणदि तव वद च धारयदि पहले सूत्र में कहे हुए उस ही परमार्थ लक्षणवाले परमात्मस्वभाव में अस्थित रहनेवाले जो भी तपश्चरण करते हैं और व्रतादिकों को धारण करते हैं।

अथ स्वसंवेदनज्ञानं तथैवाज्ञानं चेति यथाक्रमेण मोक्षबंधहेतू दर्शयति -

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता। (१५३)
परमट्ठबाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणी[1]।। १६१।।

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता त्रिगुप्तिसमाधिलक्षणाद्भेदज्ञानाद् बाह्या ये ते व्रतनियमान् धारयंतः शीलानि तपश्चरणं च कुर्वाणा अपि मोक्षं न लभंते। कस्मादिति चेत् ? **परमट्ठबाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणी** येन कारणेन पूर्वोक्तभेदज्ञानाभावात् परमार्थबाह्यास्तेन कारणेन ते भवंत्यज्ञानिनः। अज्ञानिनां तु कथं मोक्षः ? ये तु परमसमाधिलक्षणभेदज्ञानसहितास्ते तु व्रतनियमानधारयन्तोऽपि शीलानि तपश्चरणं बाह्यद्रव्यरूपमकुर्वाणा अपि मोक्षं लभंते। तदपि कस्माद् ? येन कारणेन पूर्वोक्तभेदज्ञानसद्भावात् परमार्थादबाह्यास्तेन कारणेन ते च ज्ञानिनो भवंति। ज्ञानिनां तु मोक्षो भवत्येवेति।

तं सव्वं बालतवं बालवदं विंति सव्वण्हू उन के सब तप व्रत को बालतपश्चरण (अज्ञानतप) और बालव्रत (अज्ञानव्रत) ऐसा सर्वज्ञ देव कहते हैं।

शंका - वे अज्ञानतप और अज्ञानव्रत कैसे हैं ?

समाधान - वह व्रत-तप पुण्यपापोदय जनित सभी इंद्रिय सुख-दुःख से रहित ऐसे परिणतिवाले-अभेदरत्नत्रय लक्षणवाले विशिष्ट **भेदज्ञान से रहित** होने से अज्ञानतप और अज्ञानव्रत है।। १६०।।

अब **स्वसंवेदनज्ञान (स्वानुभूति) को मोक्ष का कारण और अज्ञान को बंध का कारण** दिखाते हैं -

गाथार्थ - **(जेण)** जिस कारण से जो लोग **(वदणियमाणि)** व्रत और नियमों को **(धरंता)** धारण करते हैं **(तहा)** उसी प्रकार **(सीलाणि च तवं कुव्वंता)** शील और तप को करते हैं लेकिन **(परमट्ठबाहिरा)** परमार्थस्वरूप शुद्धात्मानुभव से बाह्य हैं, **(तेण)** इसलिये **(ते)** वे **(अण्णाणी)** अज्ञानी **(होंति)** होते हैं।

टीकार्थ - **वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता** त्रिगुप्ति समाधि लक्षणवाले भेदज्ञान से जो बाह्य हैं वे व्रत नियमों को धारण करते हैं, और शील तथा तपश्चरण करते हैं तो भी उनको मोक्ष प्राप्त नहीं होता है।

शंका - क्यों ?

समाधान - **परमट्ठबाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणी** पहले कहे हुए स्वानुभूति लक्षण वाले भेदज्ञान के अभाव से - परमार्थबाह्य होने से वे अज्ञानी हैं। अज्ञानी को मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकता है ? अर्थात् नहीं। जो परमसमाधि लक्षण वाले भेदज्ञान से सहित हैं लेकिन बाह्यद्रव्यरूप व्रत नियम शील तपश्चरणादिक नहीं धारण करते हैं, तो भी मोक्ष प्राप्त करते हैं। क्योंकि पूर्वोक्त भेदज्ञान का सद्भाव है और उस परमार्थ से बाह्य नहीं हैं (परमार्थ से रहित नहीं हैं), इसलिये वे ज्ञानी हैं। सम्यग्ज्ञानी को मोक्ष प्राप्त होता ही है।

---

[1] पाठान्तर - परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति।

किंच विस्तर । व्रतनियमशीलबहिरगतपश्चरणादिकं बिनापि यदि मोक्षो भवतीती तर्हि सकल्पविकल्परहिताना विषयव्यापारेऽपि पाप नास्ति, तपश्चरणाभावेऽपि मोक्षो भवतीति साख्यशैवमतानुसारिणो वदन्तीति तेषामेव मत सिद्धमिति ? नैव, निर्विकल्पत्रिगुप्तिसमाधिलक्षणभेदज्ञानसहिताना मोक्षो भवतीति विशेषेण वहुधा भणित तिष्ठति। एवभूतभेदज्ञानकाले शुभरूपा ये मनोवचनकायव्यापारा परपरया मुक्तिकारणभूतास्तेऽपि न सति। ये पुनरशुभविषयकषायव्यापाररूपास्ते विशेषेण न सति। न हि चित्तस्थे रागभावे विनष्टे सति बहिरगविषयव्यापारो दृश्यते। तदुलस्याभ्यतरे तुषे गते सति बहिरगतुष इव। तदपि कस्मात् ? इति चेत्, निर्विकल्प समाधिलक्षणभेदज्ञानविषयकषायव्यापारयोर्द्वयो परस्पर विरुद्धत्वात् शीतोष्णवदिति।।१६१।।

और कुछ विशेष कहते हैं-

शका - व्रत, नियम, शील, बहिरगतपश्चरणादिक के बिना भी यदि मोक्ष होता, है तो सकल्पविकल्प रहितवालों को विषयव्यापार में रहना भी पाप नहीं है, और यदि तपश्चरण के अभाव में भी मोक्ष होता है इस प्रकार से जो साख्य-शेव मतानुसारी कहते हैं, तो इससे तो उनके मत की सिध्दि होती हे ?

समाधान - आपका कहना ठीक नहीं है। क्योंकि अनेकवार विशेषरूपसे[1] यह कहा गया है कि, निर्विकल्प त्रिगुप्ति समाधि लक्षणवाले भेदज्ञानसहित जीवों को[1](स्वानुभूतिवालों को) मोक्ष होता है। एवभूतनय से (जिस समय में) भेदज्ञान (शुद्धात्मानुभव अथवा स्वानुभव) है उसी काल में जो शुभरूप मनोवचनकाय के व्यापारों को परपरा से मुक्ति का कारण कहा जाता है, वे शुभभाव भी (शुभव्यापार भी) नहीं रहते हैं। और जो अशुभ विषय-कषाय व्यापाररूप हैं वे कुछ भी नहीं होते हैं। निश्चय से चित्त में रागभाव नष्ट होने से बहिरग विपय व्यापार नहीं दिखाई देता है (अथवा जिसके चित्त में रागभाव नष्ट नहीं हुआ है, उसके वहिरग विषय व्यापार दिखायी देते हैं) जेसे कि तदुल (चावल) के अभ्यतर का छिलका (ललाई) जहॉ चली गयी वहॉ बहिरग छिलका नहीं रहता है।

शका - यह कैसे ? कुछ और समझाओ।

समाधान - जैसे शीत और उष्ण दो विरुद्ध पर्यायें हैं। जहा शीत है वहॉ उष्णता नहीं रहती है, अथवा जहॉ उष्णता है वहॉ शीत नहीं रहती है। उसी तरह निर्विकल्पसमाधि लक्षणवाला भेदज्ञान और विषयकषाय व्यापार ये दोनों विरुद्ध पर्यायें हैं। जिस समय में स्वानुभूति है उसी समय में शुभाशुभ विषयकषाय का व्यापार नहीं रहता हे। यह एवभृतनय की अपेक्षा से कथन है।।१६१।।

अव वीतराग सम्यक्त्ववाली शुद्धात्मानुभूति को छोडकर एकात से उस पुण्य को ही जो मुक्ति का कारण कहते हैं, उनको सवोधन करने के लिए और भी फिर से दूषण देते हैं -

---

[1] अव्रती सम्यक्त्वी की शुद्धात्मानुभूति, देशविरत सम्यक्त्वी की शुद्धात्मानुभूति और भावलिंगी सकलसंयमी की शुद्धात्मानुभूति जाति अपेक्षा से समान है, लेकिन गुणस्थान की अपेक्षा से, दृढता की अपेक्षा से और स्थिरता की अपेक्षा से भेद है।

अथ स्वसवेदनज्ञान तथेवाज्ञान चेति यथाक्रमेण मोक्षवधहेतू दर्शयति -

वदणियमाणि धरता सीलाणि तहा तव च कुव्वता। (१५३)
परमट्ठबाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणी[१]।। १६१।।

वदणियमाणि धरता सीलाणि तहा तव च कुव्वता त्रिगुप्तिसमाधिलक्षणाद्भेदज्ञानाद् वाह्या ये ते व्रतनियमान् धारयत शीलानि तपश्चरण च कुर्वाणा अपि मोक्ष न लभते। कस्मादिति चेत् ? **परमट्ठवाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणी** येन कारणेन पूर्वोक्तभेदज्ञानाभावात् परमार्थवाह्यास्तेन कारणेन ते भवत्यज्ञानिन । अज्ञानिना तु कथ मोक्ष ? ये तु परमसमाधिलक्षणभेदज्ञानसहितास्ते तु व्रतनियमानधारयन्तोऽपि शीलानि तपश्चरण वाह्यद्रव्य रूपमकुर्वाणा अपि मोक्ष लभते। तदपि कस्माद् ? येन कारणेन पूर्वोक्तभेदज्ञानसद्भावात् परमार्थादवाह्यास्तेन कारणेन ते च ज्ञानिनो भवति। ज्ञानिना तु मोक्षो भवत्येवेति।

त सव्व बालतव बालवद विंति सव्वण्हू उन के सव तप व्रत को वालतपश्चरण (अज्ञानतप) और वालव्रत (अज्ञानव्रत) ऐसा सर्वज्ञ देव कहते हैं।

शका - वे अज्ञानतप और अज्ञानव्रत कैसे हैं ?

समाधान - वह व्रत-तप पुण्यपापोदय जनित सभी इंद्रिय सुख-दु ख से रहित ऐसे परिणतिवाले-अभेदरत्नत्रय लक्षणवाले विशिष्ट **भेदज्ञान से रहित** होने से अज्ञानतप और अज्ञानव्रत है।। १६०।।

अव **स्वसंवेदनज्ञान (स्वानुभूति) को मोक्ष का कारण और अज्ञान को वध का कारण** दिखाते हैं -

गाथार्थ - **(जेण)** जिस कारण से जो लोग **(वदणियमाणि)** व्रत और नियमों को **(धरता)** धारण करते हैं **(तहा)** उसी प्रकार **(सीलाणि च तव कुव्वता)** शील और तप को करते हैं लेकिन **(परमट्ठबाहिरा)** परमार्थस्वरूप शुद्धात्मानुभव से वाह्य हैं, **(तेण)** इसलिये **(ते)** वे **(अण्णाणी)** अज्ञानी **(होंति)** होते हैं।

टीकार्थ - **वदणियमाणि धरता सीलाणि तहा तव च कुव्वता** त्रिगुप्ति समाधि लक्षणवाले भेदज्ञान से जो वाह्य हैं वे व्रत नियमों को धारण करते हैं, और शील तथा तपश्चरण करते हैं तो भी उनको मोक्ष प्राप्त नहीं होता है।

शका - क्यों ?

समाधान - **परमट्ठबाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णणी** पहले कहे हुए स्वानुभूति लक्षण वाले भेदज्ञान के अभाव से - परमार्थवाह्य होने से वे अज्ञानी हैं। अज्ञानी को मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकता है ? अर्थात् नहीं। जो परमसमाधि लक्षण वाले भेदज्ञान से सहित हैं लेकिन वाह्यद्रव्यरूप व्रत नियम शील तपश्चरणादिक नहीं धारण करते हैं, तो भी मोक्ष प्राप्त करते हैं। क्योंकि पूर्वोक्त भेदज्ञान का सद्भाव है ओर उस परमार्थ से वाह्य नहीं हैं (परमार्थ से रहित नहीं हैं), इसलिये वे ज्ञानी हैं। सम्यग्ज्ञानी को मोक्ष प्राप्त होता ही है।

---

[१] पाठान्तर - परमट्ठवाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति।

किंच विस्तर । व्रतनियमशीलबहिरंगतपश्चरणादिकं विनापि यदि मोक्षो भवतीति तर्हि संकल्पविकल्परहितानां विषयव्यापारेऽपि पापं नास्ति, तपश्चरणाभावेऽपि मोक्षो भवतीति सांख्यशैवमतानुसारिणो वदन्तीति तेषामेव मतं सिद्धमिति ? नैव, निर्विकल्पत्रिगुप्तिसमाधिलक्षणभेदज्ञानसहितानां मोक्षो भवतीति विशेषेण वहुधा भणितं तिष्ठति। एवंभूतभेदज्ञानकाले शुभरूपा ये मनोवचनकायव्यापाराः परंपरया मुक्तिकारणभूतास्तेऽपि न संति। ये पुनरशुभविषयकषायव्यापाररूपास्ते विशेषेण न संति। न हि चित्तस्थे रागभावे विनष्टे सति बहिरंगविषयव्यापारो दृश्यते। तंदुलस्याभ्यंतरे तुषे गते सति बहिरंगतुष इव। तदपि कस्मात् ? इति चेत्, निर्विकल्पसमाधिलक्षणभेदज्ञानविषयकषायव्यापारयोर्द्वयोः परस्परं विरुद्धत्वात् शीतोष्णवदिति।।१६१।।

और कुछ विशेष कहते हैं-

शंका - व्रत, नियम, शील, वहिरंगतपश्चरणादिक के विना भी यदि मोक्ष होता, है तो संकल्पविकल्प रहितवालों को विषयव्यापार में रहना भी पाप नहीं है, और यदि तपश्चरण के अभाव में भी मोक्ष होता है इस प्रकार से जो सांख्य-शैव मतानुसारी कहते हैं, तो इससे तो उनके मत की सिद्धि होती है ?

समाधान - आपका कहना ठीक नहीं है। क्योंकि अनेकवार विशेषरूपसे[१] यह कहा गया है कि, निर्विकल्प त्रिगुप्ति समाधि लक्षणवाले भेदज्ञानसहित जीवों को[१] (स्वानुभूतिवालों को) मोक्ष होता है। एवंभूतनय से (जिस समय में) भेदज्ञान (शुद्धात्मानुभव अथवा स्वानुभव) है उसी काल में जो शुभरूप मनोवचनकाय के व्यापारों को परंपरा से मुक्ति का कारण कहा जाता है, वे शुभभाव भी (शुभव्यापार भी) नहीं रहते हैं। और जो अशुभ विषय-कषाय व्यापाररूप हैं वे कुछ भी नहीं होते हैं। निश्चय से चित्त में रागभाव नष्ट होने से बहिरंग विषय व्यापार नहीं दिखाई देता है (अथवा जिसके चित्त में रागभाव नष्ट नहीं हुआ है, उसके बहिरंग विषय व्यापार दिखायी देते हैं) जैसे कि तंदुल (चावल) के अभ्यंतर का छिलका (ललाई) जहाँ चली गयी वहाँ बहिरंग छिलका नहीं रहता है।

शंका - यह कैसे ? कुछ और समझाओ।

समाधान - जैसे शीत और उष्ण दो विरुद्ध पर्यायें हैं। जहां शीत है वहाँ उष्णता नहीं रहती है, अथवा जहाँ उष्णता है वहाँ शीत नहीं रहती है। उसी तरह निर्विकल्पसमाधि लक्षणवाला भेदज्ञान और विषयकषाय व्यापार ये दोनों विरुद्ध पर्यायें हैं। जिस समय में स्वानुभूति है उसी समय में शुभाशुभ विषयकषाय का व्यापार नहीं रहता है। यह एवंभूतनय की अपेक्षा से कथन है।।१६१।।

अव वीतराग सम्यक्त्ववाली शुद्धात्मानुभूति को छोडकर एकांत से उस पुण्य को ही जो मुक्ति का कारण कहते हैं, उनको संवोधन करने के लिए और भी फिर से दूषण देते हैं -

---

[१] अव्रती सम्यक्त्वी की शुद्धात्मानुभूति, देशविरत सम्यक्त्वी की शुद्धात्मानुभूति और भावलिंगी सकलसंयमी की शुद्धात्मानुभूति जाति अपेक्षा से समान है, लेकिन गुणस्थान की अपेक्षा से, दृढता की अपेक्षा से और स्थिरता की अपेक्षा से भेद है।

अथ वीतरागसम्यक्त्वरूपा शुद्धात्मभावना विहाय तेन पुण्यमेवैकातेन मुक्तिकारण ये वदति तेषा प्रतिवोधनार्थं पुनरपि दूषण ददाति -

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छति। (१५४)
ससारगमणहेदु वि मोक्खहेदु अजाणता।। १६२।।

इह हि केचन सकलकर्मक्षयमोक्षमिच्छतोऽपि निजपरमात्मभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षण परमसामायिक पूर्वम् दीक्षाकाले प्रतिज्ञायापि चिदानन्दैकस्वभावशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानपरिज्ञानानुष्टानसामर्थ्याभावात्पूर्वोक्तपरम-सामायिकमलभमाना परमार्थवाह्या सत ससारगमनहेतुत्वेन वधकारणमप्यज्ञानभावेन कृत्वा पुण्यमिच्छति। कि कुर्वन्त ? अभेदरत्नत्रयात्मक मोक्षकारणमजानत । अथवा द्वितीयव्याख्यान, वधहेतुमपि पुण्य मोक्षहेतुमिच्छति। कि कुर्वन्त ? पूर्वोक्तमभेदरत्नत्रयात्मकपरमसामायिक मोक्षकारणमजानन्त सत इति।

किच, निर्विकल्पसमाधिकाले व्रताव्रतस्य स्वयमेव प्रस्तावो नास्ति। अथवा निश्चयव्रत तदेवेत्यभिप्राय । इति वीतरागसम्यक्त्वरूपा शुद्धात्मोपादेयभावना विना व्रततपश्चरणादिक पुण्यकारणमेव भवति तद्भावनासहित पुनर्वहिरग-साधकत्वेन परम्परया मुक्तिकारण चेति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टय गतम्। एव गाथादशकेन पुण्याधिकार समाप्त ।।१६२।।

गाथार्थ - **(जे)** जो जीव **(परमट्ठबाहिरा)** परमार्थ से वाह्य हैं, परमार्थ स्वभावमय अपने आत्मा का अनुभव नहीं करते हैं, **(ते)** वे जीव **(अण्णाणेण)** अज्ञान से **(पुण्ण)** पुण्य को **(इच्छति)** चाहते हैं। वह पुण्य **(ससारगमणहेदु वि)** ससार में गमन करने का कारण होता हुआ भी **(अजाणता)** नहीं जाननेवाले (अज्ञानीजन) उसे **(मोक्खहेदु)** मोक्ष का कारण मानते हैं।

टीकार्थ - **परमट्ठवहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्यमिच्छति** इस जगत में कितने ही ऐसे जीव हैं, जो सकल कर्म के क्षय रूप मोक्ष की इच्छा करते हैं तो भी और आरभ में - दीक्षा के समय निज परमात्म-भावनापरिणत अभेदरत्नत्रय लक्षणवाले परमसामायिक की प्रतिज्ञा करते हुए भी चिदानद एक स्वभाव शुद्धात्म के सम्यक् श्रद्धानज्ञान और अनुष्टान की (स्वस्वानुभूति की) जानकारी (अनुभूति) की सामर्थ्य के अभाव से पूर्वोक्त परम सामायिक को प्राप्त नहीं करने वाले वे परमार्थ से वाह्य रहनेवाले होकर ससार में गमन-परिभ्रमण कराने वाले कारणरूप अज्ञान भाव से बध के कारण को करके पुण्य की इच्छा करते हैं।

शका - पुण्य की इच्छा कैसे करते हैं ?

समाधान - **ससारगमण हेदु वि मोक्खहेदु अजाणता** अभेदरत्नत्रयात्मक मोक्षकारण को न जानते हुए पुण्य की इच्छा करते हैं। **अथवा** ससारगमन हेतु-बधहेतुवाले पुण्य को भी मोक्ष हेतु मानकर पुण्य की इच्छा करते हैं।

शका - कैसे करते हैं ?

समाधान - पहले कहे हुए अभेदरत्नत्रयात्मक परमसामायिक को मोक्ष का कारण है, ऐसा न जानने से पुण्य को मोक्ष का कारण मानते हैं, पुण्य को चाहते हैं।

अथ सविकल्पत्वात्पराश्रितत्वाच्च निश्चयेन पापव्याख्यानमुख्यत्वेन, अथवा निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गमुख्यत्वेन **'जीवादीसद्दहण'** मित्यादिसूत्रद्वय। तदनतर मोक्षहेतुभूतौ योऽसौ सम्यक्त्वादिजीवगुणरतत्प्रच्छादनमुख्यत्वेन **'वत्थस्स सेदभावो'** इत्यादि गाथात्रयम्। तत पर पाप पुण्य च बधकारणमेवेतिमुख्यतया **'सो सव्वणाण'** इत्यादि सूत्रमेकम्। ततश्च मोक्षहेतुभूतो योऽसौ जीवो गुणी तत्प्रच्छादनमुख्यतया **'सम्मत्त'** इत्यादि गाथात्रयमिति समुदायेन सूत्रनवकपर्यन्त तृतीयस्थले व्याख्यान करोति। तद्यथा -

अथ तेषामज्ञानिना निश्चयमोक्षहेतु दर्शयति -

जीवादीसद्दहण सम्मत्त तेसिमधिगमो णाण। (१५५)
रागादीपरिहरण चरण एसो दु मोक्खपहो।।१६३।।

और विशेष यह है कि, निर्विकल्प समाधिकाल में (स्वानुभूतिकाल में) व्रत और अव्रत का विकल्प स्वय ही नहीं है। स्वानुभूति ही निश्चयव्रत है, ऐसा अभिप्राय है। इस तरह वीतराग सम्यक्त्वमय (स्वानुभूतिमय) शुद्धात्मा उपादेय है, ऐसी भाव भासना के विना व्रत तपश्चरणादिक पुण्य के ही कारण हैं। उसी शुद्धात्मानुभूति के साथ किये हुए व्रत तप को (बहिरग साधन को) उपचार से परपरा से मुक्ति का कारण कहते हैं। इस कथन की मुख्यता से चार गाथायें पूर्ण हुई। इस तरह १० गाथाओं द्वारा पुण्याधिकार समाप्त हुआ।।१६२।।

अब (वह पुण्य भी) सविकल्प और पराश्रित होने से निश्चय से पाप (शुभाशुभरूप अशुद्ध) है इस कथन की मुख्यता से **अथवा** निश्चय व्यवहार रूप मोक्षमार्ग की मुख्यता से **'जीवादीसद्दहण'** इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके आगे **'वत्थस्स सेदभावो'** इत्यादि तीन गाथायें हैं जो कि मोक्ष के कारणभूत सम्यक्त्वादि जीव के गुण हैं उनके आवरण की मुख्यता से कथन करने वाली हैं। इसके आगे पुण्य और पाप बध के ही कारण हैं, इसकी मुख्यता से **'सो सव्वणाण'** इत्यादी एक गाथा है। उसके वाद मोक्ष का हेतुभूत यह जो जीवद्रव्य है, उसके आच्छादन की मुख्यता से **'सम्मत्त'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। इस तरह तृतीय स्थल में नौ गाथाओं की यह समुदाय पातनिका व्याख्यान है।

अब उन अज्ञानी जीवों को निश्चय से मोक्ष का कारण दिखाते हैं -

गाथार्थ - **(जीवादीसद्दहण)** जीवादिक पदार्थो का श्रद्धान **(सम्मत्त)** सम्यक्त्व हे और **(तेसिमधिगमो)** इन जीवादि पदार्थो का अधिगम वह **(णाण)** ज्ञान, स्वसवेदनज्ञान (स्वानुभवज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है, तथा **(रागादीपरिहरण चरण)** रागादि परिहरणमय चारित्र है **(एसो दु)** यह ही **(मोक्खपहो)** मोक्षमार्ग है।

टीकार्थ - **जीवादी सद्दहण सम्मत** जीवादि नवपदार्थो का विपरीत अभिनिवेशरहित रूप से जो श्रद्धान है, वह सम्यग्दर्शन है। **तेसिमधिगमो णाण** उनका ही सशय, विमोह, विभ्रमरहितपना से अधिगम निश्चयपरिज्ञान-सम्यग्ज्ञान है। **रागादी परिहरण चरण** उनके ही सबध से (स्वानुभव से) रागादिपरिहाररूप चारित्र है। **एसो दु मोक्खपहो** ऐसा ही **व्यवहार मोक्षमार्ग** है। अथवा भूतार्थ से (निश्चयनय से) अधिगत पदार्थो को शुद्धस्वभावमय आत्मा से भिन्नत्वरूप से सम्यक् अवलोकन करना निश्चय सम्यक्त्व है।

जीवादीसद्दहण सम्मत्त जीवादिनवपदार्थाना विपरीताभिनिवेशरहितत्वेन श्रद्धान सम्यग्दर्शन। **तेसिमधिगमो णाण** तेषामेव सशयविमोहविभ्रमरहितत्वेनाधिगमो निश्चय परिज्ञान सम्यग्ज्ञान। **रागादीपरिहरण चरण** तेषामेव सवधित्वेन रागादिपरिहारश्चारित्रम्। **एसो दु मोक्खपहो** इत्येव व्यवहारमोक्षमार्ग । अथवा तेषामेव भूतार्थेनाधिगताना पदार्थाना शुद्धात्मन सकाशात् भिन्नत्वेन सम्यगवलोकन निश्चयसम्यक्त्वम्। तेषामेव सम्यक्परिच्छित्तिरूपेण शुद्धात्मनो भिन्नत्वेन निश्चय सम्यग्ज्ञान। तेषामेव शुद्धात्मनो भिन्नत्वेन निश्चय कृत्वा रागादिविकल्परहितत्वेन स्वशुद्धात्मन्यवस्थान निश्चयचारित्रमिति निश्चयमोक्षमार्ग ।।१६३।।

अथ निश्चयमोक्षमार्गहेतो शुद्धात्मस्वरूपाद् यदन्यच्छुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररूप कर्म तन्मोक्षमार्गो न भवति इति प्रतिपादयति -

मोत्तूण णिच्छयट्ठ ववहारे ण विदुसा पवट्टति[1]। (१५६)
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ होदि।। १६४।।

उन ही पदार्थो को शुद्धात्मा से भिन्नत्वरूप से सम्यक् जानना निश्चय सम्यग्ज्ञान है। उनको ही (जीवादि नवपदार्थों को ही) शुद्धात्मा से भिन्नपना से निश्चय करके रागादि विकल्परहित रूप से स्वस्वभावमय शुद्धात्मा में रहना निश्चय चारित्र है। ऐसा **निश्चय मोक्षमार्ग** है।

भावार्थ - यह निश्चयमार्ग अव्रती सम्यक्त्वी से शुरु होता है।।१६३।।

अव, **निश्चय मोक्षमार्ग का कारण शुद्धात्मस्वरूप अनुभव है,** उस शुद्धात्मानुभव से अन्य जो **शुभाशुभ मन वचन कायमय व्यापाररूप परिणति है वह मोक्षमार्ग नहीं है,** ऐसा प्रतिपादन करते हैं -

गाथार्थ - **(विदुसा)** सम्यग्ज्ञानी **(णिच्छयट्ठ मोत्तूण)** निश्चयनय को अथवा भूतार्थ को अथवा स्वानुभूति को अथवा स्वपरमशुद्ध पारिणामिकभाव को छोडकर **(ववहारे)** व्यवहार में **(ण पवट्टति)** प्रवेश-प्रवर्तन नहीं करते हैं। **(दु)** इसलिये **(परमट्ठमस्सिदाण जदीण)** परमार्थ का आश्रय करने वाले भेदज्ञानियों-यतियों का **(कम्मक्खओ)** कर्मक्षय **(होदि)** होता है।

टीकार्थ - **मोत्तूण णिच्छयट्ठ ववहारे विदुसा ण पवट्टति** निश्चयार्थ को छोडकर व्यवहारविषय में विद्वान-ज्ञानी लोग प्रवेश-प्रवर्तन नहीं करते हैं।

शका - वे व्यवहार के विषय में प्रवेश-प्रवर्तन क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान - **परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ होदि** सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमय एकाग्र-अभेदपरिणति लक्षणवाले-निजस्वभावशुद्धात्मावाले-परमार्थ का आश्रय करने वाले यतियों का ही कर्मक्षय होता है, इसलिये ज्ञानी व्यवहार में प्रवेश-प्रवर्तन नहीं करते हैं। इस तरह मोक्षमार्ग का कथन करने वाली दो गाथायें समाप्त हुई।।१६४।।

अव, **मोक्ष के कारणभूत सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का इन जीव के गुणों के प्रतिपक्षभूत मिथ्यात्वादि कर्मों के द्वारा आच्छादन होता है,** जैसे मैल से वस्त्र के श्वेतगुण का आच्छादन होता है, यह दिखाते हैं -

---

[1] पाठान्तर - ववहारेण विदुसा पवट्टंति।

मोत्तूण णिच्छयट्ठ ववहारे निश्चयार्थं मुक्त्वा व्यवहारविपये **ण विदुसा पवट्टंति** विद्वासो ज्ञानिनो न प्रवर्तन्ते। कस्मात् ? **परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ होदि** सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्यपरिणतिलक्षण निजशुद्धात्मभावनारूप परमार्थमाश्रिताना तु यतीना कर्मक्षयो भवतीति यत कारणादिति। एव मोक्षमार्गकथनरूपेण गाथाद्वय गतम्।।१६४।।

अथ मोक्षहेतुभृताना सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणा जीवगुणाना वस्त्रस्य मलेनेव मिथ्यात्वादिकर्मणा प्रतिपक्षभूतेन प्रच्छादन दर्शयति -

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो[1]। (१५७)
मिच्छत्तमलोच्छण्ण तह सम्मत्त खु णादव्व।।१६५।।
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो[1]। (१५८)
अण्णाणमलोच्छण्ण तह णाण होदि णादव्व।।१६६।।
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो[1]। (१५९)
कस्सायमलोच्छण्ण तह[2] चारित्त पि णादव्व।।१६७।।

गाथार्थ - **(जह)** जैसे **(वत्थस्स)** वस्त्र की **(सेदभावो)** सफेदी **(मलमेलणासत्तो)** मेल के मिलने से लिप्त हुई **(णासेदि)** नष्ट हो जाती है **(तह)** उसी प्रकार **(मिच्छत्तमलोच्छण्ण)** मिथ्यात्वमल से व्याप्त हुआ **(सम्मत्त)** आत्मा का सम्यक्त्व **(खु)** निश्चय से **(णादव्व)** आच्छादित हो रहा है, ऐसा जानना चाहिये।

(जह) जेसे **(वत्थस्स सेदभावो)** वस्त्र की सफेदी **(मलमेलणासत्तो)** मैल के मेल से लिप्त हुई **(णासेदि)** नष्ट हो जाती हे **(तह)** उसी प्रकार **(अण्णाणमलोच्छण्ण)** अज्ञानमल से व्याप्त हुआ **(णाण)** आत्मा का ज्ञान **(णादव्व होदि)** आच्छादित होता है, ऐसा जानना चाहिये।

(जह) जैसे **(वत्थस्स सेदभावो)** वस्त्र की सफेदी **(मलमेलणासत्तो)** मेल के मिलने से व्याप्त हुई **(णासेदि)** नष्ट हो जाती है **(तह)** उसी तरह **(कस्सायमलोच्छण्ण)** कषायमल से व्याप्त हुआ **(चारित्तपि)** आत्मा का चारित्र भी **(णादव्व)** आच्छादित हो जाता है, ऐसा जानना चाहिये।

टीकार्थ - **वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो** जैसे वस्त्र की सफेदी विशेष मेल के सवध में आच्छादित होकर नष्ट होती है। **मिच्छत्त मलोच्छण्ण तह सम्मत खु णादव्व** वैसे ही मिथ्यात्व के सवध में ही मोक्षहेतुभृत जीव का सम्यक्त्वगुण आच्छादित होता है, ऐसा जानो। **वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो** जैसे वस्त्र की सफेदी मेल के सवध में आच्छादित होकर नष्ट होती है। **अण्णाण मलोच्छण्ण तह णाण होदि णादव्व** वैसे ही अज्ञान के सवध में मोक्षहेतुभूत जीव का ज्ञानगुण आच्छादित होता हे, ऐसा जानना चाहिये। **वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो** जैसे वस्त्र की सफेदी मैल के सवध में आच्छादित होकर नष्ट होती है। **कस्साय मलोच्छण्ण तह चारित्त पि णादव्व** वैसे ही कपायकर्ममल के सवध में मोक्षहेतुभृत जीव का चारित्र गुण भी आच्छादित होता है, ऐसा जानना चाहिये।

---

[1] पाठान्तर - मलविमेलणोच्छण्णो । २ तहदु कसायाच्छण्ण

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलना, मलस्य विशेषेण मेलना सम्बन्धस्तेनाच्छन्न । **मिच्छत्त मलोच्छण्ण तह सम्मत्तो खु णादव्व** तथैव मिथ्यात्वमलेनाच्छन्नो मोक्षहेतुभूतो जीवस्य सम्यक्त्वगुणो नश्यतीति ज्ञातव्यम्। **वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो** वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलना, मलस्य विशेषेण मेलना सवधस्तेनाच्छन्न । **अण्णाण मलोच्छण्ण तह णाण होदि णादव्व** तथैवाज्ञानमलेनाच्छन्नो मोक्षहेतुभूतो जीवस्य ज्ञानगुणो नश्यतीति ज्ञातव्यम्। **वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो** वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलना, मलस्य विशेषेण मेलना सवधस्तेनाच्छन्न । **कस्साय मलोच्छण्ण तह चारित्त पि णादव्व** तथा कषायकर्ममलेनावच्छन्न मोक्षहेतुभूतो जीवस्य चारित्रगुणो नश्यतीति ज्ञातव्यम्। इति मोक्षहेतुभूताना सम्यक्त्वादिगुणाना मिथ्यात्वाज्ञानकषायप्रतिपक्षे प्रच्छादनकथनरूपेण गाथात्रय गतम्।।१६५ से १६७।।

अथ कर्म स्वयमेव बधरूप कथ मोक्षकारण भवतीति कथयति -

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णिएणावच्छण्णो। (१६०)
ससारसमावण्णो ण वि जाणदि सव्वदो सव्व।।१६८।।

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णियेणावच्छण्णो स शुद्धात्मा निश्चयेन समस्तपरिपूर्णज्ञानदर्शनस्वभावोऽपि निजकर्मरजसोवच्छन्नो झपित सन्। **ससारसमावण्णो ण वि जाणदि सव्वदो सव्व** ससारसमापन्न ससारे पतित सन् नैव जानाति सर्वं वस्तु सर्वत सर्वप्रकारेण। ततो ज्ञायते कर्म कर्तृ जीवस्य स्वयमेव बधरूप कथ मोक्षकारण भवतीति। एव पापवत्पुण्य बधकारणमेवेति कथनरूपेण गाथा गता।। १६८।।

इस तरह मोक्ष के हेतूभूत सम्यक्त्वादिगुणों के प्रतिपक्षभृत मिथ्यात्व, अज्ञान और कपाय द्वारा होने वाले आच्छादन का कथन करने वाली तीन गाथायें समाप्त हुई।।१६५ से १६७।।

अव, **कर्म स्वय ही बधरूप है, तो वह मोक्ष का कारण कैसे हो सकता है** ? ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(सो)** वह आत्मा स्वभाव से **(सव्वणाणदरिसी)** सव का जाननेवाला और देखनेवाला है **(वि)** तो भी **(कम्मरएणणिएणावच्छण्णो)** अपने कर्मरूपी रज से आच्छादित हुआ **(ससारसमावण्णो)** ससार को प्राप्त होता हुआ **(सव्वदो)** सव प्रकार से **(सव्व)** सव वस्तु को **(ण जाणदि)** नहीं जानता है।

टीकार्थ - **सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णिएणावच्छण्णो** निश्चयनय से वह शुद्धात्मा समस्त परिपूर्ण ज्ञानदर्शन स्वभाववाला है, तो भी निजकर्मरज से आच्छादित होकर, **ससारसमावण्णो ण वि जाणदि सव्वदो सव्व** ससार को प्राप्त होकर ससार में पतित होकर सव प्रकार से सव वस्तु को जानता नहीं है। इससे यह सिद्ध हुआ कि, जीव का कर्म स्वय ही वधरूप है, वह कर्म मोक्ष का कारण कैसे हो सकता हे ? अर्थात् नहीं हो सकता है।

इस प्रकार पाप की तरह पुण्य भी वध का ही कारण है, इस कथन की मुख्यता से गाथा समाप्त हुई।।१६८।।

अभी तक यह वतलाया गया कि, मोक्ष के हेतु वाले जीव के सम्यक्त्वादि गुणों का मिथ्यात्वादिक कर्मो के द्वारा आच्छादन होता है। अव **उन गुणों का आधारवाला गुणी-जीवद्रव्य मिथ्यात्वादि कर्मों के द्वारा आच्छादित किया जाता है**, ऐसा प्रगट करते हैं -

अथ पूर्वं मोक्षहेतूभूताना सम्यक्त्वादिजीवगुणाना मिथ्यात्वादिकर्मणा प्रच्छादन भवतीति कथित इदानीं तद्गुणाधारभूतो गुणी जीवो मिथ्यात्वादिकर्मणा प्रच्छाद्यते इति प्रकटीकरोति -

सम्मत्तपडिणिबद्ध मिच्छत्त जिणवरेहि परिकहिद[१]। (१६१)
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठि त्ति णादव्वो[२]।। १६९।।
णाणस्स पडिणिबद्ध अण्णाण जिणवरेहि परिकहिद[१]। (१६२)
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णादव्वो[२]।। १७०।।
चारित्तपडिणिबद्ध कसाय जिणवरेहि परिकहिद[१]। (१६३)
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णादव्वो[२]।। १७१।।

सम्मत्तपडिणिबद्ध सम्यक्त्वप्रतिनिवद्ध प्रतिकूल मिथ्यात्व भवतीति जिनवरै परिकथित **तस्सोदयेण** तस्योदयेन जीवो मिथ्यादृष्टिर्भवतीति ज्ञातव्य । **णाणस्स** ज्ञानस्य प्रतिनिवन्द्र प्रतिकूलमज्ञान भवतीति जिनवरै परिकथित **तस्सोदयेण** तस्योदयेन जीवश्चाज्ञानी भवतीति ज्ञातव्य । **चारित्तपडिणिबद्ध** चारित्रस्य प्रतिनिवद्ध प्रतिकूल क्रोधादिकषायो भवतीति जिनवरै परिकथित । **तस्सोदयेण** तस्योदयेन जीवोऽचारित्रो भवतीति ज्ञातव्य । एव मोक्षहेतुभूतो योऽसो जीवो गुणी तत्प्रच्छादनकथनमुख्यत्वेन गाथात्रय गतम् ।। १६९ से १७१ ।।

गाथार्थ - (**सम्मत्तपडिणिबद्ध**) सम्यक्त्व को रोकने वाला (**मिच्छत्त**) मिथ्यात्वकर्म है, ऐसा (**जिणवरेहि**) जिनवरदेव ने (**परिकहिद**) कहा है (**तस्सोदयेण**) उस मिथ्यात्व के उदय से (**जीवो**) यह जीव (**मिच्छादिट्ठी त्ति**) मिथ्यादृष्टि होता है ऐसा (**णादव्वो**) जानना चाहिये।

(**णाणस्स पडिणिबद्ध**) ज्ञान को रोकने वाला (**अण्णाण**) अज्ञान है, ऐसा (**जिणवरेहि**) जिनवरों ने (**परिकहिद**) कहा है (**तस्सोदयेण**) उसके उदय से (**जीवो**) यह जीव (**अण्णाणी**) अज्ञानी (**होदि**) होता है, ऐसा (**णादव्वो**) जानना चाहिये।

(**चारित्तपडिणिबद्ध**) चारित्र का प्रतिबधक (**कसाय**) कषाय है, ऐसा (**जिणवरेहि**) जिनवरदेव ने (**परिकहिद**) कहा है, (**तस्सोदयेण**) उसके उदय से (**जीवो**) यह जीव (**अचरित्तो**) अचारित्री (**होदि**) होता है, ऐसा (**णादव्वो**) जानना चाहिये।

टीकार्थ - **सम्मत्तपडिणिबद्ध** सम्यक्त्व को रोकने वाला मिथ्यात्व है, ऐसा जिनवरों के द्वारा कहा गया है। **तस्सोदयेण** उस मिथ्यात्व के उदय से जीव मिथ्यादृष्टि होता है, ऐसा जानना चाहिये। **णाणस्स** ज्ञान को रोकने वाला अज्ञान है, ऐसा जिनवरों ने कहा है। **तस्सोदयेण** उस अज्ञान के उदय से जीव अज्ञानी होता है, ऐसा जानना चाहिये। **चारित्तपडिणिबद्ध** चारित्र को रोकने वाला (प्रतिकूल) क्रोधादि कषाय है, ऐसा जिनवरों ने कहा हे। **तस्सोदयेण** उस कषाय के उदय से जीव अचारित्री होता है, ऐसा जानना चाहिये। इस प्रकार मोक्षहेतुभृत जो गुणी-जीव द्रव्य है, उसके आच्छादन के कथन की मुख्यता से तीन गाथायें समाप्त हुइ।। १६९ से १७१।।

---

१ पाठान्तर - परिकहिय । २ पाठान्तर - णायव्वो ।

इति सम्यक्त्वादिजीवगुणा मुक्तिकारण तद्गुणपरिणतो जीवो वा मुक्तिकारण भवति तस्माच्छुद्धजीवाद्भिन्न शुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररूप तद्व्यापारेणोपार्जित वा शुभाशुभकर्म मोक्षकारण न भवतीति मत्वा हेय त्याज्यमिति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथानवक गतम्।

द्वितीयपातनिकाभिप्रायेण पापाधिकारव्याख्यानमुख्यत्वेन गतम्। अत्राह शिष्य - **'जीवादीसद्दहणमित्यादि'** व्यवहाररत्नत्रयव्याख्यान कृत तिष्ठति कथ पापाधिकार इति ? तत्र परिहार - यद्यपि व्यवहारमोक्षमार्गो निश्चयरत्न त्रयस्योपादेयभूतस्य कारणभूतत्वादुपादेय परपरया जीवस्य पवित्रताकारणत्वात् पवित्रस्तथापि बहिर्द्रव्यालवनत्वेन पराधीनत्वात्पतति नश्यतीत्येक कारणम्। निर्विकल्पसमाधिरताना व्यवहारविकल्पालवनेन स्वरूपात्प्रतितं भवतीति द्वितीय कारणम्। **इति निश्चयनयापेक्षया पाप** अथवा सम्यक्त्वादिविपक्षभूताना मिथ्यात्वादीना व्याख्यान कृतमिति वा पापाधिकार । तत्रैव सति व्यवहारनयेन पुण्यपापरूपेण द्विभेदमपि कर्म निश्चयेन श्रृङ्गाररहितपात्रवत्पुद्गलरूपेणैकीभूय निष्क्रातम्।

इति श्री जयसेनाचार्यकृताया समयसारव्याख्याया शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाया तात्पर्यवृत्तौ स्थलत्रयसमुदायेनेकोनविशतिगाथाभिश्चतुर्थ पुण्यपापाधिकार समाप्त ।।४।।

(और कुछ विशेष कहते हैं कि-) इस तरह सम्यक्त्वादि जीव के गुण मुक्ति के कारण हैं अथवा उस गुण से अभेदरत्नत्रय से परिणत जीव मुक्ति का कारण है। इसलिये शुद्धजीव से भिन्न जो मन वचन काय की शुभाशुभ क्रिया रूप शुभाशुभपरिणति अथवा उससे प्राप्त हुये शुभाशुभकर्म मोक्ष के कारण नहीं हैं, ऐसा जानकर **"शुभाशुभ हेय अथवा त्याज्य ही है"** इस कथन की मुख्यता से नौ गाथायें पूर्ण हुई।

द्वितीय पातनिका के अभिप्राय से पापाधिकार के व्याख्यान की मुख्यता से यह कथन समाप्त हुआ।

शका - **'जीवादीसद्दहण'** इत्यादि में व्यवहाररत्नत्रय का कथन किया है तो यह पापाधिकार कैसे है ?

समाधान - यद्यपि (उपचार से) व्यवहारमोक्षमार्ग उपादेय-भूत निश्चयरत्नत्रय का कारण होने से उपादेय है, परपरा से जीव की पवित्रता का कारण होने से पवित्र है, तथापि व्यवहारमोक्षमार्ग में वाह्यद्रव्य का अवलवन होने से और पराधीनता होने से स्वतत्रता नष्ट होती है, यह एक कारण है। निर्विकल्प समाधिवाले व्यवहारविकल्प का अवलवन करने से स्वरूप से (स्वानुभूति से) च्युत होते हैं, यह दूसरा कारण है। **यह पुण्य भी निश्चयनय की (स्वानुभूति की) अपेक्षा से पाप ही है।**

अथवा सम्यक्त्वादि के विरुद्धपक्ष वाले मिथ्यात्वादि का व्याख्यान किया है अत यह पापाधिकार है। वहाँ इस प्रकार से होने पर व्यवहारनय से कर्म पुण्य और पाप रूप से दो प्रकार का है, तो भी निश्चयनय की अपेक्षा से शृगाररहित पात्र के समान पुद्गलरूप से एकरूप होकर रगभूमि से वाहर निकल गया।
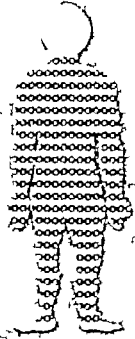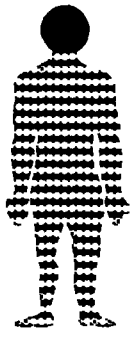
इस प्रकार श्रीजयसेनाचार्य जी कृत शुद्धात्मानुभूति लक्षण वाली समयसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में तीन स्थलों के समुदाय से १९ गाथाओं द्वारा यह चौथा पुण्यपापाधिकार समाप्त हुआ।।४।।

卐 卐 卐 卐 卐

॥ समयसार ॥

(पुण्य - पापाधिकार)

(तात्पर्यवृत्ति)

(सम्यक् भोग)

विषय	ज्ञान	फल			
स्व (निजध्रुवज्ञानानंदात्मा)	स्व (निजध्रुवज्ञानानंदात्मा) आनंद	स्वतंत्र समता समाधान सत्य आनंद अतींद्रिय आनंद शांतता शुद्धोपयोग	शुद्धोपयोग	स्वतंत्र (स्वाधीन) सत्य आनंद	मोक्ष मार्ग व मोक्ष
पर	पर सुख स्तुति	परतंत्र विषमता सुवर्णबंधन इंद्रियजनित सुख (सुखाभास) असमाधान अशांतता शुभोपयोग	अशुद्धोपयोग	परतत्र (पराधीन) दु ख	ससार
पर	पर दुःख निदा	परतत्र विषमता लोहवधन दु ख अशातता अशुभोपयोग			

परिभाषाओं में न्याय

न्याय	प्रमाण और नयो के द्वारा पदार्थों को जानना न्याय कहलाता है ।
उद्देश	विवेचनीय वस्तु के केवल नामोल्लेख करने को उद्देश कहते हैं।
लक्षण	मिली हुई अनेक वस्तुओ में से किसी एक वस्तु को भिन्न करनेवाले हेतु को लक्षण कहते हैं।
परीक्षा	परस्पर विरुद्ध अनेक युक्तियो मे प्रबलता और दुर्बलता का निर्णय करने में प्रवर्तमान विचार को परीक्षा कहते हैं।
प्रमाता	जो जाननेवाला है, प्रमिति करनेवाला है उसे प्रमाता कहते हैं।
प्रमाण	स्व,अपूर्व,अर्थ,व्यवसायात्मक,सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। वह प्रमिति क्रिया के प्रति साधकतम होता है।
प्रमेय-निक्षेप	ज्ञानपर्याय के विषयभूत पदार्थ को प्रमेय कहते है।
प्रमिति-फल	अज्ञान का नाश - हेय का त्याग,उपोदय का ग्रहण और शेष ज्ञेय की उपेक्षा करना प्रमाणज्ञान का फल है।
प्रत्यक्ष	विशद प्रतिभास को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।जो केवल आत्मा से जानता है वह ज्ञान पूर्ण विशद होता है।
विशद	ज्ञानावरण के क्षय या क्षयोपशम से उत्पन्न एव शब्द वा अनुमानादि ज्ञानो में असभवरुप जो अनुभवसिद्ध नैर्मल्य है वह विशद प्रतिभासत्व है।
परोक्ष	अविशद प्रतिभास को परोक्षज्ञान कहते हैं।
अनुभव-प्रतीति	'यही है' ऐसा जाननेवाला ज्ञान अनुभव है । अनुभूत विषय के सबध में श्रद्धान होना प्रतीति है।
धारणा	बहुत समय के बाद भी नहीं भूलने की योग्यता से उसी का ज्ञान होना धारणा कहलाता है।
स्मृति	यह 'वही है' ऐसे आकाररूप पूर्व अनुभूत वस्तु को जाननेवाला ज्ञान स्मृति कहलाता है ।
प्रत्यभिज्ञान	अनुभव और स्मृति हेतुक सकलनात्मक ज्ञान प्रत्यभिज्ञान कहलाता है।
तर्क	उपलभ के तथा अनुपलभ (अविनाभाव)के निमित्त से होने वाले व्याप्ति के ज्ञान को तर्क कहते हैं।
अनुमान	साधन के सुज्ञान से साध्य को जाननेवाला ज्ञान अनुमान कहलाता है।
धर्मी-पक्ष	साध्य धर्म के आधार को धर्मी या पक्ष कहते है। वह प्रमाण से, विकल्प से तथा उभय से प्रसिद्ध होता है।
साध्य	इष्ट, अबाधित और असिद्ध,अथवा शक्य,अभिप्रेत और अप्रसिद्ध पदार्थ को साध्य कहते हैं।
हेतु-साधन	साध्य के साथ जिसका अविनाभाव-अन्यथाअनुपपत्ति निश्चित है उसे हेतु कहते हैं।
अविनाभाव	साध्य के होने पर साधन का होना, और साध्य के न होने पर साधन का न होना अविनाभाव है।
हेत्वाभास	हेतु लक्षणरहित हेतु के समान दिखनेवाले सदोष हेतुओं को हेत्वाभास कहते हैं।
आगम	आप्त के वचनों के निमित्त से पदार्थों को जाननेवाला ज्ञान आगम कहलाता है।
आप्त	जो प्रमितसकलार्थत्त्व-सर्वज्ञ होकर परमहितोपदेशक हो वह आप्त कहलाता है।
निर्दोषत्व	रागादि दोषों का और आवरणो का पूर्ण अभाव होना निर्दोषत्व कहलाता है।
प्रामाण्य	जाने हुए विषय के सबध मे व्यभिचार (दोष) न होना प्रामाण्य कहलाता है।
प्रमाण का विषय	सामान्य और विशेषात्मक पदार्थ उस प्रमाणज्ञान का विषय होता है।
कार्य-कारणभाव	अन्वय (अभिन्नता)और व्यतिरेक (भिन्नता) के द्वारा जो जाना जाता है वह कार्य-कारणभाव है।
नय	प्रमाण के द्वारा जाने गये पदार्थ के एक अश में प्रवृत्ति करनेवाले प्रमाता के अभिप्राय विशेष को नय कहते हैं।
सप्तभगी	प्रश्न के वश से एक वस्तु में अविरोधरूप से विधि और प्रतिषेधरूप से विशेष ज्ञान करना सप्तभगी कहलाता है।
प्रमाणसप्तभगी	वस्तु के एक धर्म की मुख्यता से सम्पूर्ण वस्तु का कथन करना।
नयसप्तभगी	वस्तु में के एक विशिष्ट धर्म का ही कथन करना ।
अर्थ	पदार्थ अनेकान्तात्मक है।
छल	पदार्थों का भिन्न अर्थ करके वचन का विघात करना छल कहलाता है।

(आ) प्रमाण - सकलादेशि ज्ञानपर्याय का स्वरूप और भेद तथा (ब) नयज्ञानपर्याय का स्वरूप और भेद (चार्ट न ७) जानने से शुद्धात्मानुभव के समय 'किस ज्ञानपर्याय का प्रयोग करना' यह समझ जाओगे।

आनन्ददिव्यानकस्वरूपाय नमः।

घर में बच्चा जन्म लेते ही पटह बजाते हैं। चक्रवर्ती को चक्ररत्न की प्राप्तिवार्ता की सूचक विशिष्ट ध्वनि होती है। स्वर्ग में पुण्यशाली देव पैदा होने पर वहाँ के स्वर्ग के विशिष्ट विभागों में नियत ध्वनि होती है। शादी-सा विभाव भी बडे धूमधाम से वाजे के साथ सपन्न होता है। इतना ही नहीं, पचकल्याणक में इद्रों के द्वारा वहुत वडा उत्सव मनाया जाता है लेकिन ये सव उत्सव क्षणिक हैं। इनका साज, ठाटवाट, ध्वनि, बाजे आदि क्षणिक होने से विलय को प्राप्त होते हैं, किन्तु हमारे अन्दर का शाश्वत पटह कभी सुना है प्रभो ? हमारा अतीन्द्रिय आनद का दिव्य आनक याने पटह हर पल बज रहा है लेकिन बाहर के दुख के अशाति के बाजे सुनते-सुनते हमारे कान बहिरे हो गए हैं, इसलिए भीतर का स्वाभाविक शाति का पटह नहीं सुनाई देता है।

भो आत्मन् ! अमूर्तिक आनद का पटह कानों से सुनना ही नहीं है, ऐसा दिव्य आनक हमारे पास है, इसका सिर्फ भान करो तो फिर कोई दु ख-दर्द ही नहीं रहेगा।

अक्षयसौख्यस्वरूपोऽहम् । परमानन्दपीयूषस्वरूपोऽहम् ।

चैतन्यनीडस्वरूपोऽहम् । शान्तिसागरस्वरूपोऽहम् । ज्ञाननिलयोऽहम्।

ज्ञेयवस्तु से ज्ञान की उत्पत्ति होती है, इस विपरीत मान्यता (बौद्धमत) से परिग्रह सग्रह की इच्छा होती है।

- अ न्या दी पृ २६०

सुख कितने प्रकार का है ?

१- इद्रिय जनित आनद (विषय जनित) आनदाभास है याने असत्य आनद है।

२- मनोजनित आनद (कल्पनामात्र) आनदाभास है।

३- प्रशमजनित आनद (मद कषाय जनित)आनदाभास है याने असत्य आनद है।

४- निजात्मात्मोत्थ आनद (आत्मोत्पन्न) ही सम्यक् अतीन्द्रिय आनद है।

आस्रव अधिकार

अथ प्रविशत्यास्रव । यत्र सम्यग्भेदभावनापरिणत कारणसमयसाररूप सवरो नास्ति तत्रास्रवो भवतीति सवरविपक्षद्वारेण सप्तदशगाथापर्यंतमास्रवव्याख्यान करोति। तत्र प्रथमतरतावत्, वीतरागसम्यग्दृष्टेर्जीवस्य रागद्वेषमोहरूपा आस्रवा न सतीति सक्षेपेण सवरव्याख्यानरूपेण **'मिच्छत्त अविरमण'** इत्यादि गाथात्रयम्। तदनतर रागद्वेषमोहास्रवाणा पुनरपि विशेषविवरणमुख्यत्वेन **'भावो रागादिजुदो'** इत्यादि स्वतत्रगाथात्रयम्। तत पर केवलज्ञानादि व्यक्तिरूपकार्यसमयसारकारणभूतनिश्चयरत्नत्रयपरिणतस्य सज्ञानिजीवस्य रागादिभावप्रत्यय-निषेधमुख्यत्वेन **'चहुविह'** इत्यादि गाथात्रयम्। अत पर तस्यैव ज्ञानिनो जीवस्य मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्ययास्तित्वेऽपि वीतरागचारित्रभावनावलेन रागादिभावप्रत्ययनिषेधमुख्यतया **'सव्वे पुव्वणिबद्धा'** इत्यादि सूत्रचतुष्टयम्। तदनतर नवतरद्रव्यकर्मास्रवस्योदयागत-द्रव्यप्रत्यया कारण भवति, तेषा च द्रव्यप्रत्ययाना जीवगतरागादिभावप्रत्यया कारणमिति कारणव्याख्यानमुख्यत्वेन **'रागो दोसो'** इत्यादि सूत्रचतुष्टय कथयति, इति समुदायेन सप्तदशगाथाभि पचस्थले आस्रवाधिकारसमुदायपातनिका।

अथ द्रव्यभावास्रवस्वरूप कथयति -

मिच्छत्त अविरमण कसायजोगा य सण्णसण्णा दु। (१६४) आ.ख्या.
बहुविहभेदा जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा।।१७२।। ता.वृ.

अब आस्रव प्रवेश करता है। जहॉ सम्यग्भेदभावना से परिणत ऐसा कारणसमयसाररूप सवर नहीं है, वहॉ आस्रव होता है। इस तरह सवर के विरुद्धद्वार से १७ गाथाओं पर्यंत आस्रव का व्याख्यान करते हैं। वहॉ पहले तो वीतरागसम्यग्दृष्टि के (स्वानुभूति वाले के) राग द्वेष मोहरूप आस्रव नहीं हैं - इसका सक्षेप में, सवरव्याख्यानरूप से **'मिच्छत्त अविरमण'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। तदनतर राग-द्वेष-मोहरूप आस्रवों का फिर से विशेष कथन की मुख्यता से **'भावो रागादिजुदो'** इत्यादि तीन स्वतत्र गाथायें हैं। इसके आगे केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप कार्यसमयसार के कारणभूत निश्चय रत्नत्रयपरिणत सम्यग्ज्ञानी जीव के रागादि भावप्रत्यय के निषेध की मुख्यता से 'चहुविह' इत्यादि तीन गाथायें हैं। इसके आगे उस ही सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थगुणस्थान से शुरु करके आगे के) जीव को मिथ्यात्वादि द्रव्यप्रत्यय का अस्तित्व होते हुए भी वीतरागचारित्र (स्वानुभव) की भावभासना से रागादि भावप्रत्यय के निषेध की मुख्यता से **'सव्वे पुव्वणिवद्धा'** इत्यादि चार गाथायें हैं। तदनतर नवतर द्रव्यकर्मों के आस्रव का कारण उदयागत द्रव्यप्रत्यय है और उन द्रव्यप्रत्ययों का कारण (व्यवहार में) जीवगत रागादि भावप्रत्यय हैं, इस प्रकार के कारणों को कथन करने की मुख्यता से **'रागो दोसो'** इत्यादि चार गाथायें हैं। इस तरह पाच स्थलों से, १७ गाथाओं में आस्रवाधिकार है, उसकी यह सामुदाय पातनिका है।

णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारण होंति। (१६५)
तेसि पि होदि जीवो य रागदोसादिभावकरो।। १७३।।

मिच्छत्त अविरमण कसायजोगा य सण्णसण्णा दु "सण्णसण्णा" इत्यत्र प्राकृतलक्षणवलात् अकारलोपो द्रष्टव्य । मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगा कथभूता ? भावप्रत्ययद्रव्यप्रत्ययरूपेण सज्ञाऽसज्ञाश्चेतनाचेतना । अथवा सज्ञा आहारभयमैथुनपरिग्रहरूपा , असज्ञा ईपत्सज्ञा , इहलोकाकाक्षापरलोकाकाक्षाकुधर्माकाक्षारूपास्तिस्र । कथभूता ? एते **बहुविहभेदा जीवे** उत्तरप्रत्ययभेदेन वहुधा विविधा , क्व ? जीवे, अधिकरणभृते। पुनरपि कथभूता ? **तस्सेव अणण्णपरिणामा** अनन्यपरिणामा अभिन्नपरिणामा तस्यैव जीवस्याशुद्धनिश्चयनयेनेति। **णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारण होंति** ते च पूर्वोक्तद्रव्यप्रत्यया उदयागता सत निश्चयचारित्राविनाभूतवीतरागसम्यक्त्वाभावे सति शुद्धात्मस्वरूपच्युताना जीवाना ज्ञानावरणाद्यष्टविधस्य द्रव्यकर्मास्रवस्य कारणभूता भवति।

आगे द्रव्य और भाव आस्रव का स्वरूप कहते हैं -

गाथार्थ - **(मिच्छत्त अविरमण)** मिथ्यात्व, अविरति **(य)** और **(कसायजोगा)** कपाय, योग **(सण्णसण्णा दु)** ये चार आस्रव के भेद चेतन के और अचेतन के जड-पुद्गल के विकार ऐसे दो-दो भेद भिन्न-भिन्न हैं। उनमें से जो चेतन के विकार हैं वे **(जीवे)** जीव में **(वहुविहभेदा)** वहुत भेद लिये हुए हैं। वे **(तस्सेव अणण्णपरिणामा)** उस जीव के ही अभेदरूप परिणाम हैं और जो मिथ्यात्व आदि पुद्गल के विकार हैं।

(ते दु) वे तो **(णाणावरणादीयस्स)** ज्ञानावरणादि **(कम्मस्स)** कर्मो के वधन के **(कारण)** कारण **(होंति)** है **(य)** और **(तेसि पि)** उन मिथ्यात्व आदि भावों को भी **(रागदोसादिभावकरो)** रागद्वेप आदि भावों का करने वाला **(जीवो)** जीव **(होदि)** कारण होता है।

टीकार्थ - **मिच्छत्त अविरमण कसायजोगा य सण्णसण्णा दु** 'सण्णसण्णा' इस पद में प्राकृत व्याकरण के अनुसार अकार का लोप हो गया है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग ये भावप्रत्यय और द्रव्यप्रत्यय रूप से हें। अथवा ये सज्ञा, असज्ञा, अथवा चेतन, अचेतन रूप से हैं। वे प्रत्यय सज्ञारूप याने आहार, भय, मैथुन, परिग्रहरूप हैं, और असज्ञारूप याने ईषत् सज्ञा याने इहलोक की आकाक्षा, परलोक की आकाक्षा, कुधर्म की आकाक्षा इस तरह तीन प्रकार के हैं। **वहुविह भेदा जीवे** वे प्रत्यय उत्तर भेद से बहुत प्रकार के हैं और वे जीव के अधिकरण में हैं। **तस्सेव अणण्ण परिणामा** ओर अशुद्धनिश्चयनय से वे प्रत्यय उस जीव के ही अभिन्न (अनन्य) परिणाम हैं। **णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारण होंति** और वे द्रव्यप्रत्यय जव उदय में आते हैं उसी समय में निश्चयचारित्र के अविनाभूत रहने वाले वीतराग सम्यक्त्व के अभाव में (याने स्वानुभूति के अभाव में) शुद्धात्मस्वरूप से च्युत होने वाले जीवों के ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के द्रव्यकर्मो के आस्रव का कारण होते हें। **तेसि पि होदि जीवो य रागदोसादिभावकरो** ओर उन द्रव्यप्रत्ययों को राग द्वेषादि भावपरिणत जीव कारण हैं।

तेसि पि होदि जीवो य रागदोसादिभावकरो तेषा च द्रव्यप्रत्ययाना जीव कारण भवति। कथभूत ? रागद्वेषादिभावकर रागद्वेषादिभावपरिणत।

अथमत्र भावार्थ - द्रव्यप्रत्ययोदये सति शुद्धात्मस्वरूपभावना त्यक्त्वा यदा रागादिभावेन परिणमति तदा बधो भवति नैवोदयमात्रेण। **यदि उदयमात्रेण बधो भवति, तदा सर्वदा ससार एव।** कस्मात् ? इति चेत्, ससारिणा सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वात्। तर्हि कर्मोदयो वधकारण न भवति ? इति चेत्, तन्न निर्विकल्प-समाधिभ्रष्टाना मोहसहितकर्मोदयो व्यवहारेण निमित्त भवति। निश्चयेन पुन अशुद्धोपादानकारण स्वकीयरागाद्यज्ञानभाव एव भवति।। १७२, १७३।।

अथ वीतरागस्वसवेदनज्ञानिनो जीवस्य रागद्वेषमोहरूपभावास्रवाणामभाव दर्शयति -

णत्थि दु आसवबधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो। (१६६)
सते पुव्वणिबद्धे जाणदि सो ते अबधतो।।१७४।।

यहाँ यह भावार्थ है कि, द्रव्यप्रत्यय के उदय होने के समय में (याने एक कालप्रत्यासत्ति में) शुद्धात्मभावभासना को (स्वानुभव को) छोडकर **जब रागादिभाव से परिणमन करता है तब बध होता है, केवल द्रव्यकर्मों के उदय मात्र से बध नहीं होता है।**

यदि द्रव्यकर्मो के उदयमात्र से वध होगा, तो सर्वदा ससार ही वना रहेगा, क्योंकि ससारी जीवों को सर्वदा ही कर्मों का उदय विद्यमान है।

शका - तो क्या कर्मोदय बध का कारण नहीं है ?

समाधान - कर्मोदय बध का कारण नहीं है, ऐसा नहीं हे। व्यवहार से निर्विकल्पसमाधिभ्रष्टजीवों को (स्वानुभूति से रहित जीवों को) **मोहसहित कर्मोदय निमित्त है,** किन्तु अशुद्धनिश्चयनय से अशुद्ध उपादानकारणरूप स्वकीय रागादि अज्ञानभाव ही निमित्त (कारण) है।। १७२, १७३।।

अब, वीतराग स्वसवेदनज्ञानी (स्वानुभूतिवाले याने अविरतसम्यक्त्वी से शुरु करके सिद्ध तक) जीव को राग-द्वेष-मोहरूप भावास्रवों का अभाव है, ऐसा दिखाते हैं -

गाथार्थ - **(सम्मादिट्ठिस्स)** सम्यग्दृष्टि के **(आसवबधो)** आस्रव और बध **(णत्थि)** नहीं है **(दु)** लेकिन **(आसवणिरोहो)** आस्रव का निरोध हे **(पुव्वणिबद्धे)** और जो पहले के वाधे हुए **(सते)** सत्ता में मौजूद हैं **(ते)** उनको **(अबधतो)** आगामी नहीं बाधता हुआ **(सो)** वह जीव **(जाणदि)** जानता ही है।

टीकार्थ - **'णत्थि'** आदि पदों का पद खण्डनारूप पृथक्-पृथक् अर्थ वतलाते हैं। **णत्थि दु आसव बधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो** यहाँ गाथा में आस्रव और वध इन दोनों को समाहार द्वन्द्वसमास रूप से लिया है, अत द्विवचन के स्थान पर एक वचन है। आस्रव और वध सम्यग्दृष्टि (चतुर्थगुणस्थान से शुरु करके सिद्ध तक) जीव को नहीं हैं।

णत्थि इत्यादि पदखडनारूपेण व्याख्यान क्रियते। **णत्थि दु आसवबधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो** न भवत , न विद्येते। कौ ? तौ आस्रवबधौ। गाथाया पुन समाहारद्वन्द्वसमासापेक्षया द्विवचनमप्येकवचन कृत। कस्यास्रवबधौ न स्त ? सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य। तर्हि किमस्ति ? आस्र वनिरोधलक्षणसवरोऽस्ति। **सो** स सम्यग्दृष्टि । सते सति विद्यमानानि। ते तानि। **पुव्वणिबद्धे** पूर्वनिबद्धानि ज्ञानावरणादिकर्माणि। अथवा प्रत्ययापेक्षया पूर्वनिबध्दान् मिथ्यात्वादिप्रत्ययान्।**जाणदि** जानाति वस्तुस्वरूपेण जानाति। कि कुर्वन् सन् ? **अबधतो** विशिष्टभेदज्ञानबलान्नवतराण्यभिनवान्यवध्ननन्नुपार्जयन् इति।

अयमत्र भावार्थ । **सरागवीतरागभेदेन द्विधा सम्यग्दृष्टिर्भवति।** तत्र योऽसौ सरागसम्यग्दृष्टि -

"सोलसपणवीसणभ दसचउछक्केक्क बधवोछिण्णा। दुगतीसचदुरपुव्वे पणसोलसजोगिणो इक्को"[1]

इत्यादि वधत्रिभगकथितवधविच्छेदक्रमेण मिथ्यादृष्ट्यपेक्षया त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनामवधक । सप्ताधिकसप्तति प्रकृतीनामल्पस्थित्यनुभागरूपाणा बधकोऽपि सन् ससारस्थितिच्छेदको भवति। तेन कारणेनावधक इति। तथैवाविरतिसम्यग्दृष्टेर्गुणस्थानादुपरि यथासभव सरागसम्यक्त्वपर्यंत, अधस्तनगुणस्थानापेक्षया तारतम्येनावधक । उपरिमगुणस्थानापेक्षया पुनर्वन्धक । ततश्च वीतरागसम्यक्त्वे जाते साक्षादवधको भवति, इति मत्वा वय सम्यग्दृष्ट्य सर्वथा वधो नास्तीति न वक्तव्य। इति आस्रवविपक्षद्वारेण सवरस्य सक्षेपसूचनव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रय गतम्।।१७४।।

शका - तो क्या है ?

समाधान - उसको तो आस्रवनिरोधलक्षण वाला सवर है। **सो सते ते पुव्वणिबद्धे जाणदि अबधतो** वह सम्यग्दृष्टि जीव सत्ता में विद्यमान उन पूर्वनिबद्ध ज्ञानावरणादि कर्मों को अथवा प्रत्यय की अपेक्षा से पूर्वनिबद्ध मिथ्यात्वादि प्रत्ययों को वस्तुस्वरूप से जानता है।

शका - सम्यग्दृष्टि जीव क्या करता हुआ जानता है ?

समाधान - विशिष्टभेदज्ञान के (स्वसवेदनज्ञान के) वल से नवीन कर्मों को नहीं बाधता हुआ-नहीं उपार्जन करता हुआ जानता है।

इसका भावार्थ यह है कि, **सराग और वीतराग के भेद से दो प्रकार के सम्यग्दृष्टि हैं।** इसके बारे में देखो-गोम्मटसार कर्मकाड गाथा न ९४ का अर्थ - प्रथम गुणस्थान में १६ प्रकृतियों की बधव्युच्छित्ति होती है, सासादन गुणस्थान में २५ प्रकृतियों की वधव्युच्छित्ति होती है, मिश्र गुणस्थान में शून्य प्रकृतियों की वधव्युच्छित्ति होती है, अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में १० प्रकृतियों की वधव्युच्छित्ति होती है, देशसयत गुणस्थान में ४ प्रकृतियों की बधव्युच्छित्ति होती है, प्रमत्त गुणस्थान में ६ प्रकृतियों की वधव्युच्छित्ति होती है, अप्रमत्त गुणस्थान में १ प्रकृति की बधव्युच्छित्ति होती है, अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथमभाग में दो, छट्टे भाग में ३० और सप्तम भाग में ४, नवम गुणस्थान में ५, दशम गुणस्थान में १६, एव सयोग केवली के १ प्रकृति की वधव्युच्छित्ति होती है।

---

[1] गोम्मटसार कमनाण्ट गाथा ९४

अथ रागद्वेषमोहरूपभावानामास्रवत्व निश्चिनोति -

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बधगो होदि। (१६७)
रागादिविप्पमुक्को अबधगो जाणगो णवरि।।१७५।।

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बधगो होदि यथा अयस्कातोपलसपर्कजो भाव परिणतिविशेष, कालायससूचि प्रेरयति तथा जीवेन कृतो रागाद्यज्ञानजो भाव परिणतिविशेष कर्ता, शुद्धस्वभावेन सानदमव्ययमनादिमनत-शक्तिमुद्योतिन निरुपलेपगुणमपि जीव शुद्धस्वभावात्प्रच्युत कृत्वा कर्मबध कर्तुं प्रेरयति। **रागादिविप्पमुक्को अबधगो जाणगो णवरि** यथा चायस्कातोपलसपर्करहितो भाव परिणतिविशेष कालायससूचि न प्रेरयति तथा रागाद्यज्ञानविप्रमुक्तो भावरत्त्वबधक सन् नवरि किंतु जीव कर्मबध कर्तुं न प्रेरयति। तर्हि कि करोति? पूर्वोक्तशुद्ध-स्वभावेनैव स्थापयति। ततो ज्ञायते निरुपरागचैतन्यचिच्चमत्कारमात्रपरमात्मपदार्थाद्भिन्ना रागद्वेषमोहा एव बधकारणमिति।।१७५।।

इस तरह वधत्रिभग कथित बधविच्छेद क्रम से वह सरागसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से ४३ कर्म प्रकृतियों का अबधक है। वह सम्यग्दृष्टि ७७ प्रकृतियों का अल्पस्थिति अनुभाग का बधक होता हुआ भी ससारस्थिति का छेदक है, इसलिये चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव अबधक है। उसी प्रकार अव्रती सम्यग्दृष्टि से शुरु करके ऊपर के यथासभव सरागसम्यक्त्व तक अधस्तनगुणस्थान की अपेक्षा से तारतम्य से अबधक है। और उपर के गुणस्थान की अपेक्षा से बधक है। और इसलिये वीतरागसम्यक्त्व (स्वानुभूतिवाले चतुर्थगुणस्थान से शुरु करके आगे के जीव स्वसवेदन) होते समय साक्षात् अबधक है, ऐसा जानकर हम सम्यक्त्वी जीवों को (चतुर्थ गुणस्थान वाले, पचम गुणस्थान वाले, छट्टे गुणस्थान वाले और सातवें गुणस्थानवाले जीवों को) सर्वथा बध नहीं है, ऐसा वक्तव्य नहीं करना चाहिये।

इस तरह आस्रव का विपक्ष द्वार जो सवर है उसकी सक्षेप से सूचना के व्याख्यान की मुख्यता से तीन गाथायें समाप्त हुई।।१७४।।

अब राग द्वेष मोहरूपभावों को ही आस्रवपना है, ऐसा निश्चित करते हैं -

गाथार्थ - **(रागादिजुदो भावो)** जो रागादि से युक्त भाव **(जीवेण कदो)** जीव के द्वारा किया गया है **(दु)** वही **(बधगो होदि)** बधक है और जो **(रागादिविप्पमुक्को)** रागादि भावों से रहित है वह **(अबधगो)** अबधक है **(णवरि)** केवल **(जाणगो)** जाननेवाला ज्ञायक है।

टीकार्थ - **भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बधगो होदि** जैसे चुम्बकपाषाण के सपर्क में उत्पन्न हुआ भाव-परिणतिविशेष लोहे की सूची को हिलाने डुलानेवाला है (प्रेरित करता हे) वेसे ही जीव के द्वारा किया हुआ रागादि अज्ञानमय भाव (परिणति विशेष) शुद्धस्वभाव से सानद-अव्यय-अनादि-अनत उद्योतित (स्पष्ट) शक्तिवाले निरुपलेप गुणवाले भी जीव को शुद्धस्वभाव से च्युत करके कर्मबध के लिये प्रेरित करता है।

अथ रागादिरहितशुद्धभावस्य सभव दर्शयति -

पक्के फलम्मि पडिदे जह ण फल बज्झदे पुणो विटे। (१६८)
जीवस्स कम्मभावे पडिदे ण पुणोदयमुवेहि।।१७६।।

पक्के फलम्मि पडिदे जह ण फल बज्झदे पुणो विटे यथा पक्वे फले पतिते सति पुनरपि तदेव फल वृते न वध्यते। **जीवस्स कम्मभावे पडिदे ण पुणोदयमुवेहि** तथा तत्त्वज्ञानिनो जीवस्य सातासातोदयजनितसुख-दु खरूपकर्मभावे कर्मपर्याये पतिते गलिते निर्जीर्णे सति रागद्वेषमोहाभावात् पुनरपि तत्कर्म वध नायाति, नैवोदय च। ततो रागाद्यभावात् शुद्धभाव सभवति। तत एव च सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य निर्विकारस्वसवित्तिवलेन सवरपूर्विका निर्जरा भवतीत्यर्थ ।।१७६।।

रागादि विप्पमुक्को अबधगो जाणगो णवरि किन्तु जैसे चुम्बकपाषाण के सपर्क से रहितभाव परिणतिविशेष लोहे की सूची को हिलाता (प्रेरित) नहीं करता है, वैसे ही रागादि अज्ञानभाव से रहितभाव अवधक होने से जीव को केवल कर्मवध करने के लिए प्रेरित नहीं करता है।

शका - तो क्या करता है ?

समाधान - रागादिअज्ञानभाव से रहितवाला भाव पूर्वोक्त शुद्धस्वभाव से ही स्थापन करता है। (ज्ञाताद्रष्टा रहता है।) ।

इससे यह सिद्ध हुआ कि निरुपराग चैतन्य चिच्चमत्कारमात्र परमात्मस्वभाव से भिन्न ऐसे (जो) राग, द्वेष, मोह भाव हैं, वे ही वध के कारण हैं।।१७५।।

अब, रागादि रहित शुद्धभाव का प्रगट होना सभावना दिखाते हैं -

गाथार्थ - **(जह)** जेसे **(फलम्मि)** वृक्ष तथा लता-वेलि का फल **(पक्के पडिदे)** पककर गिर जाय वह **(पुणो)** फिर **(विटे)** गुच्छे (डाली) में **(ण बज्झदे)** नहीं वधता, उसी तरह **(जीवस्स)** जीव के **(कम्मभावे)** पुद्गल कर्म भावरूप **(पडिदे)** पककर झड जाय अर्थात् निर्जरा हो गयी हो तो उस कर्म का **(पुणोदय)** फिर उदय **(ण उवेहि)** नहीं होता है।

टीकार्थ - **पक्के फलम्मि पडिदे जह ण फल वज्झदे पुणो विटे** जैसे पक्व फल वृक्ष से नीचे गिर जाय तो फिर से वह फल गुच्छे (डाली) में नहीं वधा जाता है, **जीवस्स कम्मभावे पडिदे ण पुणोदय मुवेहि** वेसे ही सम्यग्ज्ञानी जीव का सातासातोदयजनित सुखदु खभाव, कर्मपर्याय की निर्जरा होने पर राग-द्वेष-मोहभाव का अभाव होने से फिर से वह कर्म वध को प्राप्त नहीं होता हे और उदय को भी प्राप्त नहीं होता है। इसलिये रागादि का अभाव होने से शुद्धभाव सभवता है (प्रगट होता है)। और इसलिये ही सम्यग्दृष्टि जीव के निर्विकार स्वसवित्ति के वल से (शुद्धात्मानुभूति से) सवरपूर्वक निर्जरा होती है।

भावार्थ - चतुर्थगुणस्थान से सवरपूर्वक निर्जरा शुरु होती है।।१७६।।

अथ ज्ञानिनो नवतरद्रव्यास्रवाभाव दर्शयति -

पुढवीपिडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स। (१६९)
कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वेवि णाणिस्स।।१७७।।

पुढवीपिडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स पृथ्वीपिडसमाना अकिचित्करा भवति। के ते ? पूर्वनिबद्धा मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्यया। कस्य ? तस्य वीतरागसम्यग्दृष्टेर्जीवस्य। यतो रागाद्यजनकत्वादकिचित्करास्तत कारणात्, नवतरद्रव्यकर्मबधो न भवति। तर्हि पृथ्वीपिडसमाना सत केन रूपेण तिष्ठति ? **कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वेवि णाणिस्स** कार्मणशरीररूपेणैव ते सर्वे बद्धास्तिष्ठति, न च रागादिभावपरिणतजीवरूपेण। कस्य ? निर्मलात्मानुभूतिलक्षणभेदविज्ञानिनो जीवस्येति।

किच, यद्यपि द्रव्यप्रत्यया कार्मणशरीररूपेण मुष्टिबद्धविषवत्तिष्ठति तथापि उदयाभावे सुखदु खविकृतिरूपा बाधा न कुर्वति। तेन कारणेन ज्ञानिनो जीवस्य, नवतरकर्मास्रवाभाव इति भावार्थ। एव रागद्वेषमोहरूपास्रवाणा विशेषविवरणरूपेण स्वतत्रगाथात्रय गतम्।।१७७।।

अब, सम्यग्ज्ञानी को नवीन द्रव्यास्रव का अभाव है, ऐसा दिखाते हैं -

गाथार्थ - **(तस्स णाणिस्स)** उस पूर्वोक्त ज्ञानी के **(पुव्वणिबद्धा)** पहले अज्ञान अवस्था में बधे हुए **(सव्वेवि)** सभी **(पच्चयादु)** कर्म भी **(पुढवीपिडसमाणा)** जीव के रागादि भावों के हुए विना पृथ्वी के पिडसमान हैं जैसे मिट्टी आदि अन्य पुद्गलस्कध हैं उसी तरह वे भी हैं **(दु)** और **(ते)** वे **(कम्मसरीरेण)** कार्मण शरीर के साथ **(बद्धा)** बधे हुए हैं।

टीकार्थ - पुढवी पिण्ड समाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स वीतरागसम्यक्त्वी (स्वानुभूतिवाले याने चतुर्थगुणस्थान से शुरु करके आगे के) जीव के पूर्व में बद्ध मिथ्यात्वादि द्रव्यप्रत्यय मिट्टी के पिड के समान अकिचित्कर हैं। जिस कारण से रागादि को उत्पन्न न करनेवाले होने से अकिचित्कर हैं, इसलिये नवीन द्रव्यकर्मो का बध नहीं होता है।

शका - तो फिर पृथ्वीपिड के समान होकर वे कैसे रहते हैं ?

समाधान - **कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वेवि णाणिस्स** निर्मलआत्मानुभूतिलक्षण वाले भेदज्ञानी जीव के (चतुर्थगुणस्थान से शुरु करके आगे के जीवों के) वे सभी मिथ्यात्वादि द्रव्यप्रत्यय कार्मणशरीर रूप से ही वद्ध रहते हैं और रागादिभावपरिणत (मिथ्यात्व सासादन सम्यग्मिथ्यात्व) जीवरूप से नहीं रहते हैं (याने सम्यग्ज्ञानी जीव रागादिरूप नहीं परिणमता है)।

और विशेष (स्पष्टीकरण) कहते हैं कि - जैसे मुट्ठी में रखा हुआ विष जीव को कुछ वाधा नहीं पहुचाता है (क्योंकि जव वह विष मुख से ग्रहण किया जायेगा तब ही बाधा होती हे) वैसे यद्यपि द्रव्यप्रत्यय कार्मणशरीररूप से रहते हैं, तथापि उदय के अभाव में सुखदु खविकृतिरूप वाधा नहीं करते हैं। इसलिये सम्यग्ज्ञानी जीव को नवीन कर्मो का आस्रव नहीं होता है। यह भावार्थ है।

इस तरह राग-द्वेष-मोहरूप आस्रवों का विशेष वर्णन करने वाली स्वतत्र तीन गाथायें समाप्त हुई।।१७७।।

अथ कथ ज्ञानी निरास्रव ? इति पृच्छति -

चहुविह अणेयभेय बधते णाणदसणगुणेहि। (१७०)
समए समए जह्मा तेण अबधो त्ति णाणी दु।।१७८।।

चहुविह अणेयभेय बधते णाणदसणगुणेहि चहुविह इति वहुवचने प्राकृतलक्षणवलेन ह्रस्वत्व। चतुर्विधा मूलप्रत्यया कर्तार ज्ञानावरणादिभेदभिन्नमनेकविध कर्म कुर्वंति। काभ्या कृत्वा ? ज्ञानदर्शनगुणाभ्या। दर्शनज्ञानगुणौ कथ बधकारणभूतौ भवत ? इति चेत्, अयमत्र भाव, द्रव्यप्रत्यया उदयमागता सत जीवस्य ज्ञानदर्शनगुणद्वय रागाद्यज्ञानभावेन परिणमयति, तदा रागाद्यज्ञानभावपरिणत ज्ञानदर्शनगुणद्वय वधकारण भवति। वस्तुतस्तु रागाद्यज्ञानभावेनपरिणत ज्ञानदर्शनगुणद्वय अज्ञानमेव भण्यते। तत् एव '**अणाणदसणगुणेहि**' इति पाठान्तर केचन पठति। **समए समए जह्मा तेण अबधोत्ति णाणी दु** समये समये यस्मात् प्रत्यया कर्तार। ज्ञानदर्शनगुण रागाद्यज्ञानभावपरिणत कृत्वा नवतर कर्म कुर्वंति। तेन कारणेन भेदज्ञानी वधको न भवति। कि तु ज्ञानदर्शनरजकत्वेन प्रत्यया एव वधका इति ज्ञानिनो निरास्रवत्व सिध्दम्।।१७८।।

अव सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थगुणस्थानादिवर्ती) जीव निरास्रव कैसे है ? कोई ऐसा पूछता है - उसका समाधान करते हैं -

गाथार्थ - (**जह्मा**) जिस कारण से (**समए समए**) प्रति समय में (**णाणदसणगुणेहि**) (यहाँ वहुवचन होने से) विकल्पमय ज्ञानदर्शनगुणों के द्वारा (**चहुविह**) चार प्रकार के प्रत्यय (**अणेयभेय**) अनेक भेदरूप कर्मों को (**बधते**) बाधते हैं। (**दु**) लेकिन (**तेण**) (यहॉ एकवचन होने से) उस अभेदज्ञानदर्शन से याने अभेदरत्नत्रय से निर्विकल्पसमाधि से - स्वानुभूति से (**णाणी**) सम्यग्ज्ञानी (**अबधो त्ति**) अबधक है।

अथवा गाथार्थ - (**णाणदसणगुणेहि**) विकल्पमय ज्ञानदर्शनगुणों के परिणमन से (**चहुविह**) चार प्रकार के प्रत्यय (**अणेयभेय**) अनेक भेदों को-अनेक प्रकार के कर्मों को (**बधते**) वाधते हैं (**जह्मा**) जिस कारण से (**समये समये**) ज्ञानदर्शनमय आत्मा का आत्मारूप से परिणमन करने से (**तेण**) उस अभेदपरिणति से (**दु णाणी**) वह सम्यग्ज्ञानी (**अबधो त्ति**) अबधक है।

टीकार्थ - **चहुविह अणेयभेय बधते णाणदसण गुणेहि** यहॉ पर '**चहुविह**' यह शव्द वहुवचन है तो भी ह्रस्वान्त पाठ है। प्राकृत व्याकरण के अनुसार ऐसा होता है। चतुर्विध मूलप्रत्यय ज्ञानावरणादि अनेकविध कर्मों को करते हैं।

शका - क्या करके ?

समाधान - ज्ञानदर्शनगुणों के द्वारा चतुर्विध मूलप्रत्यय ज्ञानावरणादि अनेकविध कर्मो को करते हैं।

शका - ज्ञानदर्शनगुण ये दो गुण वध के कारण कैसे होते हैं ?

अथ कथ ज्ञानगुणपरिणामो वधहेतुरिति पुनरपि पृच्छति -

जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि। (१७१)
अण्णत्त णाणगुणो तेण दु सो बधगो भणिदो।।१७९।।

जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि अण्णत्त णाणगुणो यस्मात् यथाख्यातचारित्रात्पूर्वं जघन्यो हीन सकषायो ज्ञानगुणो भवति। तस्मात्-जघन्यत्वादेव ज्ञानगुणात् सकाशात्, अन्तर्मुहूर्तानतर निर्विकल्प-समाधौ स्थातु न शक्नोति जीव। तत कारणात् अन्यत्व सविकल्पकपर्यायातर परिणमति। स क ? कर्ता। ज्ञानगुण। **तेण दु सो बधगो भणिदो** तेन सविकल्पेन कपायभावेन स ज्ञानगुणो वधको भणित।

अथवा द्वितीयव्याख्यान। **जघन्यात् कोऽर्थ** ? जघन्यात् मिथ्यादृष्टिज्ञानगुणात् काललब्धिवशेन सम्यक्त्वे प्राप्ते सति ज्ञानगुण कर्ता मिथ्यापर्याय त्यक्त्वा अन्यत्व सम्यग्ज्ञानित्व परिणमति। **तेण दु सो बधगो भणिदो** तेन कारणेन स ज्ञानगुणो ज्ञानगुणपरिणतजीवो वा अवधको भणित इत्यभिप्राय।।१७९।।

समाधान - द्रव्यप्रत्यय जव उदय में आते हैं, उसी समय में जीव के ज्ञान और दर्शन ये दोनों गुण रागादिरूप अज्ञानभाव से परिणमन करते हैं, तव रागादिअज्ञानभावमयपरिणत ज्ञान और दर्शन ये दोनों गुण वध के कारण होते हैं। **वस्तुत रागादिअज्ञानभावमयपरिणत ज्ञान और दर्शन इन दोनों गुणों को अज्ञान ही कहा जाता है।** इसे ही कोई **"अणाणदसणगुणेहि"** ऐसा पढते हैं। (क्योंकि 'वधते अणाणदसणगुणेहि' इनकी सधि करने से **'बधतेऽणाणदसणगुणेहि'** ऐसा हो सकता हे)।

समए समए जम्हा तेण अबधो त्ति णाणी दु प्रति समय प्रत्यय ज्ञानदर्शनगुण का रागादि अज्ञानभावमय परिणत करके नवीन कर्म करते हैं। भेदज्ञानी के ज्ञानदर्शनगुण ज्ञानमयभावरूप परिणत होने से भेदज्ञानी बधक नहीं है। किन्तु ज्ञानदर्शन के रजकपना से प्रत्यय ही वधक हैं। इस तरह सम्यग्ज्ञानी का निरास्रवपना सिद्ध हो गया।।१७८।।

अव फिर से पृछते हें कि ज्ञानगुण का परिणाम वध का कारण केसे हे ? -

गाथार्थ - **(जह्मा दु)** जिस कारण से **(णाणगुणो)** ज्ञानगुण **(पुणो वि)** फिर भी **(जहण्णादो णाणगुणादो)** जघन्य ज्ञानगुण से **(अण्णत्त)** अन्य रूप से **(परिणमदि)** परिणमन करता है **(तेण दु)** इसी कारण **(सो)** वह ज्ञानगुण **(बधगो भणिदो)** कर्म का वध करने वाला कहा गया हे।

टीकार्थ - **जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि अण्णत्त णाणगुणो** जिस कारण यथाख्यातचारित्र से पृर्व अवस्था में हीनदशावाला - सकषायवाला ज्ञानगुण है उसी कारण ज्ञानगुण (ज्ञानोपयोग) जघन्य ही होने से जीव निर्विकल्पसमाधि में अतर्मुहर्त से ज्यादा काल तक ठहर नहीं सकता हे। इसलिये ज्ञानगुण अतर्मुहूर्त निर्विकल्पसमाधि के अनतर अन्य सविकल्पपर्यायरूप परिणमन करता हे। **तेण दु सो बधगो भणिदो** वह सविकल्प अवस्था कपायभावसहित होने से उस ज्ञानगुण को ही बधक कहा गया है।

अथ यथाख्यातचारित्रादधरतादतर्मुहूर्तानतर निर्विकल्पसमाधौ स्थातु न शक्यत इति भणित पूर्वम्। एव सति कथ ज्ञानी निरास्रव ? इति चेत् -

दसणणाणचरित्त ज परिणमदे जहण्णभावेण। (१७२)
णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण।।१८०।।

दसणणाणचरित्त ज परिणमदे जहण्णभावेण ज्ञानी तावदीहापूर्वकरागादिविकल्पकरणाभावान्निरास्रव एव। किंतु सोऽपि यावत्काल परमसमाधेरनुष्ठानाभावे सति शुद्धात्मस्वरूप द्रष्टु ज्ञातुमनुचरितु वासमर्थ तावत्काल तस्यापि सबधि यद्दर्शन ज्ञान चारित्र तज्जघन्यभावेन सकषायभावेन अनीहितवृत्त्या परिणमति। **णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण** तेन कारणेन स तु भेदज्ञानी स्वकीयगुणस्थानानुसारेण परपरया मुक्तिकारणभूतेन तीर्थकरनामकर्मप्रकृत्यादि पुद्गलरूपेण विविधपुण्यकर्मणा बध्यते। इति ज्ञात्वा ख्यातिपूजालाभभोगाकाक्षारूपनिदान-बधादिविभावपरिणामपरिहारेण निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा तावत्पर्यंत शुद्धात्मस्वरूप द्रष्टव्य ज्ञातव्यमनुचरितव्य च। यावत्तस्य शुद्धात्मस्वरूपस्य परिपूर्ण केवलज्ञानरूपो भावो दृष्टो ज्ञातोऽनुचरितश्च भवतीति भावार्थ । एव ज्ञानिनो भावास्रवस्वरूपनिषेधमुख्यत्वेन गाथात्रय गतम्।।१८०।।

अथवा दूसरा व्याख्यान यह है कि, जघन्य याने मिथ्यादृष्टि और मिथ्याज्ञानगुण से काललब्धि के वश से सम्यक्त्व प्राप्त होते समय वह ज्ञानगुण मिथ्यापर्याय को छोडकर अन्यरूप याने सम्यग्ज्ञानरूप परिणमन करता हे। इसलिये वह ज्ञानगुण अथवा सम्यग्ज्ञानी जीव (सम्यग्ज्ञानपरिणत जीव) अवधक है, ऐसा अभिप्राय है।

भावार्थ - मिथ्यात्व, सासादन और सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) गुणस्थान में जीव अज्ञानी है, अज्ञान से बध होता है और चतुर्थगुणस्थान से जीव सम्यग्ज्ञानी है, अवधक है।।१७९।।

अब यथाख्यातचारित्र से नीचे के गुणस्थानों में अतर्मुहूर्त से ज्यादा काल तक निर्विकल्प-समाधि में स्थिर नहीं रह सकते हैं, ऐसा पहले कहा गया है। तो फिर सम्यग्ज्ञानी जीव निरास्रव कैसे है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - (**ज दसणणाणचरित्त**) जिस कारण ज्ञानदर्शनचारित्र (**जहण्णभावेण**) जघन्यभाव से (**परिणमदे**) परिणमन करता है (**तेण दु**) उसी कारण से ही (**णाणी**) सम्यग्ज्ञानी (**विविहेण पुग्गलकम्मेण**) विविध पुद्गल कर्मो से (**बज्झदि**) बधता है।

टीकार्थ - **दसणणाण चरित्त ज परिणमदे जहण्णभावेण** सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थगुणस्थान से शुरु करके आगे के) जीव इच्छापूर्वक (अभिप्रायपूर्वक अथवा बुद्धिपूर्वक) रागादि विकल्प नहीं करता है इसलिये सम्यग्ज्ञानी जीव निरास्रव ही है। किंतु वह भी जितने काल तक परमसमाधि के अनुष्ठान में (स्वानुभूति में) नहीं रहता है उतने काल तक शुद्धात्मस्वरूप को देखने के लिये वा जानने के लिये वा अनुचरण करने के लिये असमर्थ है, उसी समय में (एक कालप्रत्यासत्ति में) उसके भी जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र है उसका जघन्यभाव से अबुद्धिपूर्वक (अभिप्राय न होते हुए अथवा अनिच्छापूर्वक) कषायभाव सहित परिणमन हो जाता है।

अथ द्रव्यप्रत्ययेषु विद्यमानेषु कथ ज्ञानी निरास्रव ? इति चेत् -

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया सति सम्मदिट्ठिस्स। (१७३)
उवओगप्पाओग बधते कम्मभावेण।।१८१।।
सता वि णिरुवभोज्जा बाला इत्थी जहेव पुरिसस्स। (१७४)
बधदि ते उवभोज्जे तरुणी इत्थी जह णरस्स।।१८२।।
होदूण णिरुवभोज्जा तह बधदि जह हवति उवभोज्जा। (१७५)
सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहिं।।१८३।।
एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबधगो भणिदो। (१७६)
आसवभावाभावे ण पच्चया बधगा भणिदा।।१८४।।

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया सति सम्मदिट्ठिस्स सर्वे पूर्वनिबद्धा द्रव्यप्रत्यया सति तावत्सम्यग्दृष्टे ।

णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गल कम्मेण विविहेण इस कारण से वह भेदज्ञानी स्वकीय गुणस्थान के अनुसार परपरा से (उपचार से) मुक्ति को कारणभूत ऐसे तीर्थंकर नामकर्मप्रकृति आदि पुद्गलरूप विविध पुण्यकर्म से बाधा जाता है। यह जानकर ख्याति-पूजा-लाभ-भोगाकाक्षारूप निदानबधादि विभावपरिणाम को छोडकर निर्विकल्प समाधि में स्थिर रहकर शुद्धात्मस्वभाव को तब तक देखना चाहिए, जानना चाहिए, और उसमें लगे रहना चाहिए जब तक शुद्धात्मस्वभाव का परिपूर्ण केवलज्ञान भावरूप दृष्टा, ज्ञाता, अनुचरण करने वाला हो। ऐसा भावार्थ है।

इस प्रकार सम्यग्ज्ञानी को भावास्रव नहीं होते हैं, इस कथन की मुख्यता से तीन गाथायें समाप्त हुई।।१८०।।

अब, द्रव्यप्रत्यय विद्यमान होते हुए भी ज्ञानी निरास्रव कैसे है ? इसका उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - (**जह**) जैसे (**पुरिसस्स**) पुरुष को (**बाला इत्थी**) बाल स्त्री (**णिरुवभोज्जा**) निरुपभोग्य है (**दु**) लेकिन (**जह तरुणी इत्थी**) जब वह युवती-स्त्री (**उवभोज्जा भूदा**) उपभोग्य होती है तव (**णरस्स**) पुरुष को रागभाव से (**बधदि**) वाध देती है। (**इव**) वैसे (**सव्वे पुव्वणिबद्धा पच्चया**) सव पूर्वबद्ध प्रत्यय (**सता**) सत्ता में होते हैं (**णिरुवभोज्जा**) वे निरुपभोग्य (**सति**) हैं (**वि**) लेकिन (**जह ते उवभोज्जे**) जब वे उपभोग योग्य (उदय में आते) (**हवति**) होते हैं (**तह**) तव (**उवओगप्पाओग**) उपयोग के प्रयोगानुसार (**कम्मभावेण**) रागभाग से (**बधदि**) बाधता है और (**णाणावरणादिभावेहि**) ज्ञानावरणादिभावों से (**सत्तट्ठविहा होदूण**) आयुकर्म के विना सात प्रकार के और आयुकर्मसहित आठ प्रकार के होकर (**बधते**) बाधे जाते हैं। (**दु**) लेकिन (**सम्मदिट्ठिस्स**) सम्यग्दृष्टि के (**आसवभावाभावे**) आस्रवभाव के अभाव में (**पच्चया**) वे (सत्ता में रहने वाले) प्रत्यय (**बधगा**) वधकारक (**ण**) नहीं (**भणिदा**) कहे गये हैं। (**एदेण कारणेण**) इस कारण से (**सम्मादिट्ठी**) सम्यदृष्टि (**अबधगो**) अवधक (**होदि**) है।

उवओगप्पाओग बधते कम्मभावेण यद्यपि विद्यते तथाप्युपयोगेन प्रायोग्य तत्कालोदयप्रायोग्यकर्मतापन्न कर्म बध्नति। केन कृत्वा ? भावेन रागादिपरिणामेन, न चारितत्वमात्रेण वधकारण भवतीति। **सतावि णिरुवभोज्जा बाला इत्थी जहेव पुरिसस्स** सत्यपि विद्यमानान्यपि कर्माणि। **क्वचित्प्राकृते लिगव्यभिचारोऽपि, इति वचनान्नपुसकलिगे पुल्लिङ्गनिर्देश । पुल्लिङ्गेऽपि नपुसकलिगनिर्देश· । कारके कारकातरनिर्देशो भवति, इति।** तानि कर्माणि उदयात्पूर्वं निरुपभोग्यानि भवति। केन दृष्टातेन ? बाला स्त्री यथा पुरुषस्य। **बधदि ते उवभोज्जे तरुणी इत्थी जह णरस्स** तानि कर्माणि उदयकाले उपभोग्यानि भवंति। रागादिभावेन नवतराणि च वध्नति। कथ ? यथा तरुणी स्त्री नरस्येति।

अथ तमेवार्थं दृढयति। उदयात्पूर्वं निरुपभोग्यानि भूत्वा कर्माणि स्वकीयस्वकीयगुणस्थानानुसारेण, उदयकाल प्राप्य यथा यथा भोग्यानि भवति, तथा तथा रागादिभावेन परिणामेन आयुष्कवधकाले अष्टविधभूतानि शेषकाले सप्तविधानि ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभावेन पर्यायेण नवतराणि बध्नति, न चारितत्वमात्रेणेति। रागादिभावस्रवस्याभावे द्रव्यप्रत्यया अस्तित्वमात्रेण बधकारण न भवति। एतेन कारणेन सम्यग्दृष्टिरवधको भणित इति।

किंच विस्तर, मिथ्यादृष्ट्यपेक्षया चतुर्थगुणस्थाने सरागसम्यग्दृष्टि त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनामबधक । सप्ताधिकसप्ततिप्रकृतीनामल्पस्थित्यनुभागरूपाणा बधकोऽपि ससारस्थितिच्छेद करोति। तथा चोक्त सिद्धाते -

---

टीकार्थ - यद्यपि चतुर्थादिगुणस्थानवर्ति सम्यग्दृष्टि जीव के पूर्व में वाधे हुए सब द्रव्यप्रत्यय (सव कर्म) सत्ता में विद्यमान होते हैं, तथापि वे सब उपयोग में आने पर-उदय को प्राप्त होने पर तत्काल आत्मा रागादिभाव से परिणमन करता है तब नूतन कर्म बधते हैं। तथापि जो कर्म केवल सत्ता में विद्यमान होते हैं वे वध के कारण नहीं होते हैं। (कहीं प्राकृत में लिग व्यभिचार भी होता है ऐसा वचन होने से नपुसक लिग के स्थान में पुल्लिग और पुल्लिग के स्थान में नपुसक लिग का और कारक में कारकान्तरका निर्देश भी होता है)

वे कर्म उदय के पहले (जब तक सत्ता में हैं तव तक) निरुपभोग्य (भोगने के अयोग्य) होते हैं।

शका - यह किसी दृष्टात से समझाओ ?

समाधान - जैसे बाल स्त्री पुरुष के भोगने योग्य नहीं है, वैसे वे कर्म उदय के पहले (सत्ता में रहने वाले) निरुपभोग्य हैं।

वे कर्म उदयकाल में उपभोग्य होते हैं और रागादि भाव से नवीन कर्म बधते हैं।

शका - कैसे ?

समाधान - जैसे वह बाल स्त्री जवान हो जाने पर पुरुष को प्रेम से अथवा रागभाव से बाध लेती है। वैसे वे कर्म उदय में आने पर जीव रागभाव से परिणमन करने से नवीन कर्मों को बाधते हैं।

उसी अर्थ को दृढ करते हैं -

उदय से पूर्व कर्म निरुपभोग्य होकर स्वकीय-स्वकीय गुणस्थान के अनुसार कर्म उदयकाल को प्राप्त होने पर जैसे-जैसे उपभोग्य (भोगने योग्य) होते हैं वैसे-वैसे (जीव के) रागादि भावरूप परिणाम करने से आयु वध के समय में आठ प्रकार के कर्मों को और शेषकाल में सात प्रकार के ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मभावरूप पर्याय से नवीन कर्मों को (पर्यायों को) वाधते हैं।

"द्वादशागावगमस्तत्तीव्रभक्तिरनिवृत्तिपरिणाम केवलिसमुद्घातश्चेति ससारस्थितिघातकरणानि भवति"
तद्यथा - तत्र द्वादशागश्रुतविषये अवगमो ज्ञान व्यवहारेण बहिर्विषय । निश्चयेन तु वीतरागस्वसवेदनलक्षण चेति। भक्ति पुन सम्यक्त्व भण्यते व्यवहारेण सरागसम्यग्दृष्टीना पचपरमेष्ठ्याराधनारूपा। निश्चयेन वीतरागसम्यग्दृष्टीना शुद्धात्मतत्त्वभावनारूपा चेति। न निवृत्तिरनिवृत्ति शुद्धात्मस्वरूपादचलन एकाग्रपरिणतिरिति। तत्रैव सति द्वादशागावगमो निश्चयव्यवहारज्ञान जातम्। भक्तिस्तु निश्चयव्यवहारसम्यक्त्व जातम्। अनिवृत्तिपरिणामस्तु सरागचारित्रानतर वीतरागचारित्र जातमिति सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि भेदाभेदरत्नत्रयरूपेण ससारविच्छित्तिकारणानि भवति। केषा ? छद्मस्थानामिति, केवलिना तु भगवता दडकपाटप्रतरलोकपूरणरूप केवलिसमुद्घात ससारविच्छित्ति कारणमिति भावार्थ । एव द्रव्यप्रत्यया विद्यमाना अपि रागादिभावास्रवाभावे सति बधकारण न भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टय गतम्।।१८१ से १८४।।

कर्म केवल सत्ता में रहने से बध के कारण नहीं होते हैं। जीव के रागादिभावरूप आस्रव के अभाव में द्रव्यप्रत्यय अस्तित्वमात्र से (सत्ता में रहने मात्र से) बध के कारण नहीं होते हैं। इस कारण से सम्यग्दृष्टि (चतुर्थादिगुणस्थान वाले) जीव अबधक कहे गये हैं।

इसका विशेष कथन यह है किं, चतुर्थ गुणस्थानवाला जीव अबधक है क्योंकि मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से चतुर्थ गुणस्थान में अव्रती सरागसम्यग्दृष्टि प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि ४३ प्रकृतियों का अबधक है। ७७ प्रकृतियों की अल्प स्थिति अनुभाग का बधक है, तो भी ससारस्थिति का छेद करता है इसलिये अबधक है। जैसे सिद्धात में कहा है कि, **"द्वादशागावगम ततृतीव्रभक्ति अनिवृत्तिपरिणाम· केवलिसमुद्घात चेति ससारस्थितिघातकरणानि भवति"** अर्थात् -

आगम भाषा से (व्यवहारनय से)	**अध्यात्मभाषा से** (निश्चयनय से)
(१) द्वादशागश्रुतविषय का ज्ञान यह बहिर्विषय का ज्ञान अवगम है (याने जीवादि द्रव्य, तत्त्व, पदार्थ आदि का ज्ञान अवगम है)।	(१) वीतरागस्वसवेदनलक्षण वाला (याने शुद्धात्म-स्वस्वभाव की अनुभूति वाला) ज्ञान अवगम है।
(२) **भक्ति को सम्यक्त्व कहते हैं** - व्यवहार से सराग सम्यग्दृष्टि द्वारा पचपरमेष्ठी की आराधना करना भक्ति है याने सम्यक्त्व है। यह चतुर्थादिगुणस्थान में होने वाली श्रद्धा सम्यक्त्व है।	(२) **भक्ति को सम्यक्त्व कहते हैं** - चतुर्थादि गुणस्थान में वीतराग (स्वानुभूति अथवा निश्चयसम्यक्त्व) सम्यग्दृष्टि वाले जीव स्वशुद्धात्म स्वभाव की अनुभूति करते हैं, वह सम्यक्त्व है।
(३) निवृत्ति न होना अनिवृत्ति है। यह एकाग्र परिणति है।	(३) शुद्धात्मस्वभाव से (स्वानुभूति से) च्युत न होना यह एकाग्र परिणति है।

इस तरह चतुर्थादि गुणस्थानों में (१) द्वादशाग का अवगम - निश्चयव्यवहारज्ञान प्रगट होता है (२) भक्ति-निश्चयव्यवहारसम्यक्त्व प्रगट होता है, और (३) अनिवृत्तिपरिणाम याने मिथ्याचारित्र छूटकर निर्विकल्प अवस्था अथवा सम्यक्चारित्र-वीतरागचारित्र प्रगट होता है याने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है।

अथ यत एव कर्मबधहेतुभूता रागद्वेषमोहा ज्ञानिनो न सति, तत एव तस्य कर्मबधो नास्तीति कथयति-

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स। (१७७)
तह्मा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति।।१८५।।
हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारण भणिद। (१७८)
तेसि पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झति।। १८६।।

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स रागद्वेषमोहा सम्यग्दृष्टेर्न भवति, सम्यग्दृष्टित्वान्यथानुपपत्तेरिति **हेतु** । तथाहि, अनतानुबधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वोदयजनिता रागद्वेषमोहा सम्यग्दृष्टेर्न सतीति पक्ष । कस्मात् ? इति चेत्, केवलज्ञानाद्यनतगुणसहितपरमात्मोपादेयत्वे सति वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषट्द्रव्यपचास्तिकाय सप्ततत्त्वनवपदार्थरुचिरूपस्य मूढत्रयादिपचविशतिदोषरहितस्य -

---

आगमभाषा से	अध्यात्मभाषा से
भेदरत्नत्रय से छद्मस्थों के ससार का छेद होता है। याने इस सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र से चतुर्थादि से १२ वें गुणस्थान तक के जीवों के ससार का विच्छेद होता है।	अभेदरत्नत्रय से छद्मस्थों के ससार का छेद होता है। याने स्वानुभूति से चतुर्थगुणस्थान से १२ वें गुणस्थान तक के जीवों के ससार का विच्छेद होता है।

और केवली भगवान दड-कपाट-प्रतर-लोकपूरणरूप केवलि समुद्घात करके ससारविच्छित्ति करते हैं, ऐसा भावार्थ है।

इस तरह द्रव्यप्रत्यय (सत्ता में) विद्यमान होते हुये भी जीव के रागादिभावरूप भावआस्रव के अभाव के समय में वे द्रव्यप्रत्यय वध के कारण नहीं होते हैं, इस कथन की मुख्यता से चार गाथायें समाप्त हुई। (आगमभाषा अभूतार्थ है, और अध्यात्मभाषा भूतार्थ है)।। १८१ से १८४।।

अव, जिसकारण से कर्मबध के कारणभूत राग-द्वेष-मोह ही सम्यग्ज्ञानी को (चतुर्थादि गुणस्थान वाले को) नहीं हैं, उसी कारण से उसको कर्मबध नहीं होता है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(रागो)** राग **(दोसो)** द्वेष **(य)** और **(मोहो)** मोह **(आसवा)** ये आस्रव **(सम्मदिट्ठिस्स)** सम्यग्दृष्टि को **(णात्थि)** नहीं हैं **(तह्मा)** इसलिये **(आसवभावेण विणा)** आस्रवभाव के विना **(पच्चया)** द्रव्यप्रत्यय **(हेदू)** कर्म वध का कारण **(ण होंति)** नहीं होते हैं।

(चदुवियप्पो) मिथ्यात्वादि चार प्रकार के **(हेदू)** कारण (हेतू) **(अट्ठवियप्पस्स)** आठ प्रकार के कर्म के वधने का **(कारण)** कारण **(भणिद)** कहा गया है **(य)** और **(तेसि पि)** उन चार प्रकार के हेतुओं को भी **(रागादी)** जीव के रागादिभाव कारण हैं, सो सम्यग्दृष्टि के **(तेसिमभावे)** उन रागादिक भावों का अभाव होने के कारण **(ण वज्झति)** कर्मवध नहीं होता है।

सवेओ णिव्वेओ णिदा गरुहा य उवसमो भत्ती। वच्छल्ल अणुकपा गुणट्ठसम्मत्तजुत्तस्स।।

इति गाथाकथितलक्षणस्य चतुर्थगुणस्थानवर्तिसरागसम्यक्त्वस्यान्यथानुपपत्तेरिति **हेतु** । अथवा अनतानुवध्यप्रत्याख्यानावरणसज्ञा क्रोधमानमायालोभोदयजनिता रागद्वेषमोहा सम्यग्दृष्टेर्न सतीति **पक्ष** । कस्मात्? इति चेत्, निर्विकारपरमानन्दैकसुखलक्षणपरमात्मोपादेयत्वे सति षट्द्रव्यपचास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थरुचिरूपस्य मूढत्रयादिपचविशतिदोषरहितस्य तदनुसारिप्रशमसवेगानुकम्पादेवधर्मादिविषयास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणस्य, पचमगुणस्थान-योग्यदेशचारित्राविनाभाविसरागसम्यक्त्वस्यान्यथानुपपत्तेरिति **हेतु** । अथवा अनतानुवध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरण क्रोधमानमायालोभोदयजनितरागद्वेषमोहा सम्यग्दृष्टेर्न सतीति **पक्ष** । कस्मादिति चेत्? चिदानन्दैकस्वभावशुद्धात्मोपादेयत्वे सति षट्द्रव्यपचास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थरुचिरूपस्य मूढत्रयादिपचविशतिदोषरहितस्य तदनुसारिप्रशमसवेगानुकपादेव-धर्मादिविषयास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणस्य, षष्ठगुणस्थानरूपसरागचारित्राविनाभाविसरागसम्यक्त्वस्यान्युथानुपपत्तेरिति **हेतु** , अथवा अनतानुवध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसज्वलनक्रोधमानमायालोभतीव्रोदयजनिता प्रमादोत्पादका रागद्वेषमोहा सम्यग्दृष्टेर्न सतीति **पक्ष** । कस्मात् ? इति चेत्, शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मोपादेयत्वे सति तद्योग्यस्वकीयशुद्धात्म समाधिसजातसहजानन्दैकस्वलक्षणसुखानुभूतिमात्रस्वरूपा ऽप्रमत्तादिगुणस्थानवर्तिवीतरागचारित्राविनाभूतवीतरागसम्यक्त्व-स्यान्यथानुपपत्तेरिति **हेतु** । तथा चोक्त -

---

टीकार्थ - रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स चतुर्थादिगुणस्थान वाले सम्यग्दृष्टि जीव को राग-द्वेष-मोह नहीं होते हैं क्योंकि इन भावों के होने पर सम्यग्दृष्टिपन वन ही नहीं सकता हे। यह अन्यथा अनुपपत्ति हेतु है। इसे स्पष्ट कर वतला रहे हैं, कि **चतुर्थ गुणस्थानवाले सम्यग्दृष्टि जीव के** अनतानुवधी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व के उदय जनित राग-द्वेष-मोह भाव नहीं होते हें, (न्यायशास्त्र के अनुसार) यह **पक्ष** हे।

शका - क्यों ?

समाधान - अध्यात्मभाषा से

केवलज्ञानादि अनतगुणो से सहित स्वस्वभावमय परमात्मा को उपादेय करके **स्वानुभव सहित** ही चतुर्थ गुणस्थान वाला सम्यक्त्व है। इनसे रहित चतुर्थ गुणस्थान वाला सम्यक्त्व नहीं रहता है। यह अन्यथा अनुपपत्ति हेतु है।

आगमभाषा से

वीतराग सर्वज्ञ कथित ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्त्व, ९ पदार्थ की रुचिरूप तथा मूढत्रयादि पच्चीस दोप रहित और सवेग, निर्वेद, निदा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकपा **इन आठ गुणों से सहित** ही चतुर्थ गुणस्थानवाला **सरागसम्यक्त्व** है। इनसे रहित चतुर्थ गुणस्थानवाला सम्यक्त्व नहीं रहता हे। यह अन्यथा अनुपपत्ति हेतु है।

अथवा-पचमगुणस्थानवाले **सम्यग्दृष्टि जीव** के अनतानुवधी, अप्रत्याख्यानावरण नामवाले क्रोध-मान-माया-लोभोदयजनित राग-द्वेप-मोह नहीं होते हैं, यह **पक्ष** है। क्योंकि -

आद्या सम्यक्त्वचारित्रे द्वितीया घ्नन्त्यणुव्रत। तृतीया सयम तुर्या यथाख्यात क्रुधादय ।।

इति गाथापूर्वार्द्धे व्याख्यान गतम्। **तह्मा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति** - यस्माद्‌गाथाया पूर्वार्ध्दकथितक्रमेण रागद्वेषमोहा न सति तस्मात्कारणात् रागादिरूपभावास्रवेण विना अस्तित्वमात्रेण उदयमात्रेण वा द्रव्यप्रत्यया सम्यग्दृष्टेर्बन्धहेतवो न भवतीति। **हेदू चदुवियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारण भणिद मिथ्यात्वाविरति** कषाययोगरूपचतुर्विधो हेतु ज्ञानावरणादिरूपस्याष्टविधस्य नवतरद्रव्यकर्मण कारण भवति।

अध्यात्मभाषा से

निर्विकारपरमानद एकसुखलक्षणवाले परम उपादेय- रूप स्वस्वभावमय परमात्मा का आश्रय करने से **जो स्वानुभव प्रगट होता है** वह पचम गुणस्थान योग्य देशचारित्र सहित अविनाभावी है। और इनसे रहित पचम गुणस्थानवाला सराग सम्यक्त्व नहीं होता है। यह अन्यथा अनुपपत्ति **हेतु** है।

आगमभाषा से

६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्त्व, ९ पदार्थ इनकी रुचिरुप और मूढत्रयादि पच्चीस दोष रहित और उसके अनुसार प्रशम, सवेग, अनुकपादि से ही धर्मादि विषय का लक्षण आस्तिक्य और उसकी अभिव्यक्तिवाला पचमगुणस्थान योग्य देशचारित्रवाला अविनाभावी **सराग सम्यक्त्व प्रगट होता है**। उससे रहित यह पचमगुणस्थान नहीं होता है। यह अन्यथा अनुपपत्ति **हेतु** है।

अथवा - **षष्ठमगुणस्थानवर्ती सराग सम्यग्दृष्टि जीव** के अनतानुवधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभोदयजनित राग-द्वेष-मोह नहीं होते हैं, यह **पक्ष** है। क्योंकि -

अध्यात्मभाषा से

चिदानद-एक-स्वभावमय शुद्धात्मा को उपादेय करने से छट्टागुणस्थानवर्ती सराग चारित्र प्रगट होता है। पचमगुणस्थान की अपेक्षा छट्टागुणस्थान का चारित्र वीतराग है, और सप्तमगुणस्थान की अपेक्षा वह सराग चारित्र है। इससे रहित छटवें गुणस्थानवर्ती अविनाभावी सराग सम्यक्त्व की अन्यथा अनुपपत्ति है - यह **हेतु** है।

आगमभाषा से

६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्त्व, ९ पदार्थ इनकी रुचिरुप और मूढत्रयादि पच्चीस दोषरहित और षष्ठम गुणस्थान के अनुसार प्रशम, सवेग, अनुकपादि से ही धर्मादि विषय का आस्तिक्य और उसकी अभिव्यक्ति लक्षणवाला छट्टागुणस्थानवाला सरागचारित्र प्रगट होता है। इनसे रहित छट्टा गुणस्थान वाला अविनाभावी सम्यक्त्व नहीं होता है। यह अन्यथा अनुपपत्ति **हेतु** है।

अथवा-**अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि जीव** के अनतानुवधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, तीव्रसज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभोदयजनित प्रमाद के उत्पादक राग-द्वेष-मोह नहीं होते हैं, यह **पक्ष** है। क्योंकि शुद्धबुद्ध एकस्वभावमय परमात्मा को उपादेय करने से स्वकीय-स्वकीय सप्तमादि गुणस्थानयोग्य शुद्धात्मसमाधि में प्रगट होने वाला सहजानद-एक-स्वलक्षण सुखानुभूतिमय स्वरूप अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती वीतरागचरित्र के अविनाभूत वीतरागसम्यक्त्व प्रकट होता है। इनसे रहित उन सप्तमादि गुणस्थानयोग्य सम्यक्त्व नहीं होता है, यह अन्यथा अनुपपत्ति **हेतु** है।

तेसि पि य रागादी तेषामपि मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्ययाना उदयागताना जीवगतरागादिभावप्रत्यया कारण भवति। कस्मात् ? इति चेत्, **तेसिमभावे ण बज्झति** तेषा जीवगतरागादिभावप्रत्ययानामभावे सति द्रव्यप्रत्ययेषूदयागतेष्वपि वीतरागपरमसामायिक भावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणभेदज्ञानस्य सद्भावे सति कर्मणा जीवा न बध्यते यत कारणादिति। तत स्थित नवतरद्रव्यकर्मास्रवस्योदयागतद्रव्यप्रत्यया कारण, तेषा च जीवगता रागादिभावप्रत्यया कारणमिति कारणकारणव्याख्यान ज्ञातव्यम्।।१८५, १८६।।

अथ यदुक्त पूर्वम् रागादिविकल्पोपाधिरहित परमचैतन्यचमत्कारलक्षणनिजपरमात्मपदार्थभावनारहिनाना बहिर्मुखजीवाना पूर्वबद्धप्रत्यया नवतरकर्म वध्नति तमेवार्थम् दृष्टाताभ्या दृढयति -

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविह। (१७९)
मसवसारुहिरादी भावे उदरग्गिसजुत्तो।।१८७।।

और इसी प्रकार अन्य ग्रथ में भी कहा है कि प्रथम मिथ्यात्व और अनतानुबधीवाले क्रोध-मान-माया-लोभ सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनों को नहीं होने देते हैं। दूसरे अप्रत्याख्यानावरण कषाय सम्यक्त्व और स्वानुभूति को नहीं रोकते हैं लेकिन अणुव्रत नहीं होने देते हैं। तीसरे प्रत्याख्यानावरण कषाय सम्यक्त्व और देशव्रत को नहीं रोकते हैं, लेकिन सकल सयम नहीं होने देते हैं। एव चौथे सज्वलन कषाय सम्यक्त्वसहित सकल सयम को नहीं रोकते हैं लेकिन यथाख्यात चारित्र को नहीं होने देते हैं।

इस प्रकार मूल गाथा (१८५) के पूर्वार्ध्द का कथन पूर्ण हुआ। **तम्हा आसव भावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति** जैसा कि गाथा के पूर्वार्द्ध में बताया है उसी क्रम से सम्यग्दृष्टि (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) जीव के राग-द्वेष-मोह भाव नहीं होते हैं। इसलिये रागादिरूप भावास्रव के विना केवल सत्ता में रहने मात्र से अथवा केवल कर्मोदय मात्र से द्रव्यप्रत्यय सम्यक्त्वी को कर्मबध के कारण नहीं होते हैं।

हेदू चदुवियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारण भणिद मिथ्यात्व, अविरति(प्रमाद), कषाय और योगरूप ये चार प्रकार के हेतु ज्ञानावरणादिरूप आठ प्रकार के कर्मों के नवीन द्रव्यकर्म के कारण हैं। **तेसि पि य रागादी** उन उदयागत मिथ्यात्वादि द्रव्यप्रत्ययों को भी जीवगत रागादि भावप्रत्यय कारण हैं। **तेसिमभावे ण बज्झति** क्योंकि उन जीवगत रागादि भावप्रत्ययों का अभाव रहने पर सत्ता में रहने वाले द्रव्यप्रत्यय और उदयागत प्रत्यय होते हुए भी वीतराग परमसामायिक भावनापरिणत - अभेदरत्नत्रयलक्षण वाले (स्वानुभूति वाले) भेदज्ञान का सद्भाव होने पर जीव कर्मों के द्वारा नहीं बाधा जाता है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, **नवीन द्रव्यकर्मास्रव को उदयागत द्रव्यप्रत्यय कारण हैं और उनको जीवगत रागादि भावप्रत्यय कारण** हैं। इस तरह कारण के कारण का व्याख्यान जानना योग्य है।।१८५, १८६।।

अब, जो पहले कहा गया है, कि रागादि विकल्प उपाधिरहित परम चैतन्यचमत्कार लक्षणवाले निजपरमात्मद्रव्य की अनुभूति से रहित वहिर्मुखजीवों के पूर्ववद्ध प्रत्यय नूतन कर्मों को वाधते हैं, इसी अर्थ को दो दृष्टातों से दृढ करते हैं -

तह णाणिस्स दु पुव्व जे बद्धा पच्चया बहुवियप्प। (१८०)
बज्झते कम्म ते णयपरिहीणा दु ते जीवा।। १८८।।

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविह यथा पुरुषेण गृहीताहार स परिणमति अनेकविध वहुप्रकार। कि ? **मसवसारुहिरादी भावे उदरग्गिसजुत्तो** मासवसारुधिरादीन् पर्यायान् कर्मतापन्नान् परिणमति। कथभूत सन् ? उदराग्निसयुक्त इति दृष्टातो गत । **तह णाणिस्स दु पुव्व जे बद्धा पच्चया बहुवियप्प बज्झते कम्म ते** - तथैव च पूर्वोक्तोदराग्निसयुक्ताहारदृष्टातेन अज्ञानिनश्चैतन्यलक्षणजीवस्य, न च विवेकिन । पूर्वम् ये वद्धा मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्यया जीवगतरागादिपरिणाममुदराग्निस्थानीय लव्ध्वा ते वहुविकल्प कर्म वध्नति। **णयपरिहीणा दु ते जीवा** येषा जीवाना सवधिन प्रत्यया कर्म वध्नति ते जीवा । कथभूता ? परमसमाधिलक्षणभेदज्ञानरूपात् शुद्धनयात् भ्रष्टा च्युता ।

गाथार्थ - **(जह)** जैसे **(पुरिसेण)** पुरुष के द्वारा **(गहिदो)** ग्रहण किया हुआ **(आहारो)** आहार है **(सो उदरग्गिसजुत्तो)** वह आहार उदराग्नि का सयोग पाकर **(मसवसारुहिरादी भावे)** मास, मज्जा, रुधिर आदि भावोंरूप **(अणेयविह)** अनेकरूप से **(परिणमदि)** परिणमन करता है।

(तह) उसी प्रकार **(णाणिस्स दु)** ज्ञानी के **(पुव्व बद्धा)** पूर्व में वद्ध **(जे पच्चया)** जो प्रत्यय-द्रव्यास्रव हैं **(ते)** वे **(बहुवियप्प)** अनेक प्रकार के **(कम्म)** कर्मो को **(वज्झते)** वाधते हैं **(ते दु जीवा)** वे जीव **(णयपरिहीणा)** शुद्धनय से च्युत हैं अर्थात् वुद्धिपूर्वक आत्मानुभूति से च्युत होने पर याने वुद्धिपूर्वक सविकल्प अवस्था में सम्यग्ज्ञानी (और/अथवा) अज्ञानी जीव रागादि भावास्रव करता है, उससे द्रव्यास्रव और कर्मवन्ध होता है।

टीकार्थ - **जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविह मसवसा रुहिरादी भावे उदरग्गिसजुत्तो** जैसे पुरुष के द्वारा ग्रहण किया हुआ आहार उदराग्नि का सयोग पाकर मास, मज्जा, रुधिर आदि अनेक प्रकार की पर्यायों को (अवस्थाओं को) पाता है। यह दृष्टात हुआ। **तह णाणिस्स दु पुव्व जे बध्दा पच्चया बहुवियप्प बज्झते कम्म ते** उसी प्रकार चैतन्यलक्षणवाले अज्ञानी जीव के याने मिथ्याज्ञानी के जो पूर्ववद्ध मिथ्यात्वादि द्रव्यप्रत्यय उदराग्नि स्थानीय जीवगत रागादि परिणाम प्राप्त होते ही वे अनेक प्रकार के विकल्प कर्मो को वाधते हैं और चैतन्यलक्षणवाले विवेकी-ज्ञानी जीवों को कर्म का वध नहीं होता है। **णय परिहीणा दु ते जीवा** उन जीवों के सबधरूप प्रत्यय कर्म को बाधते हैं।

शका - वे कम बाधनेवाले जीव कैसे हैं ?

समाधान - वे कर्म वाधने वाले जीव परमसमाधि (स्वानुभूति) लक्षणवाले भेदज्ञानरूप शुद्धनय से (परमतत्त्व से अथवा परमपारिणामिकभावमय द्रव्य से) भ्रष्ट-च्युत हैं।

अथवा द्वितीय व्याख्यान यह है कि, अशुद्धनिश्चयनय से वे प्रत्यय जीव से भिन्न नहीं हैं अर्थात् अशुद्धनिश्चयनय से वे प्रत्यय अशुद्ध जीव से रहित नहीं हैं।

अथवा द्वितीयव्याख्यान, ते प्रत्यया अशुद्धनयेन जीवात् सकाशात् परिहीणा भिन्ना न च भवति। इदमत्र तात्पर्यम्, निजशुद्धात्मध्येयरूपसर्वकर्मनिर्मूलसमर्थशुद्धनयो विवेकिभिर्न त्याज्य इति। एव कार्यकारणव्याख्यान मुख्यत्वेनगाथाचतुष्टय गतम्।।१८७, १८८।।

इति श्रीजयसेनाचार्य कृताया समयसारव्याख्याया शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाया तात्पर्यवृत्तौ सप्तदशगाथाभि पचस्थलै सवरविपक्षद्वारेण पचम आस्रवाधिकार समाप्त ।।५।।

इसका तात्पर्य यह है कि, **जो ध्यान करने के योग्य ध्येयरूप निजशुद्धात्मस्वभाव है वह सर्व कर्मों को मूल से नष्ट करने में समर्थ है।** ऐसा यह शुद्धनय विवेकी (भेदज्ञानी अथवा सम्यग्ज्ञानी अथवा मुमुक्षु) जीवों के द्वारा त्यागने योग्य नहीं है।।१८७, १८८।।

इस प्रकार कार्य-कारण का कथन करने की मुख्यता से चार गाथायें पूर्ण हुई।

इस प्रकार श्री जयसेनाचार्य जी कृत शुद्धात्मानुभूतिलक्षण वाली समयसार की तात्पर्यवृत्तिनामक टीका में पॉच स्थलों में १७ गाथाओं के द्वारा सवर के विरुद्धपक्षवाला पॉचवॉ आस्रव अधिकार समाप्त हुआ।।५।।

卐 卐 卐 卐 卐

पुराना दर्द - नया दर्द

शरीर को जव मच्छर काटता है, खून चूसता है तब पीडादायक वेदना होती है और उसका प्रतिकार मच्छरदानी में सोना या शरीर को कपडों से ढॅकना आदि रूप में होता है। उस समय भी तीव्र वेदना है शरीर में, ऐसा क्यों ? तो मच्छर जितनी तीक्ष्णता से काट के गया है, उतने समय तक दर्द के सस्कार बने रहते हैं, लेकिन सरक्षण में बैठने से तब से लेकर अव कभी नया दर्द होनेवाला नहीं है। अब वह भीतर में सुख-चैनपूर्वक निद्रा ले सकता है। अज्ञानी इस मर्म को नहीं जानते हुए पहले के जैसा ही अनुभव करते हुए भीतरी सुरक्षा का महत्त्व नहीं जान पाते हैं। इसलिए वह हमेशा दर्द में पडा रहता है और मर्द (पुरुषार्थ) का उपयोग नहीं करता है। बल्कि बाहर भटकना अर्थात् मच्छरों के स्थानों में रहना अच्छा मानता है।

इसी प्रकार शुद्धोपयोग में रहने वाले ज्ञानी पुराने कर्म-दर्द के ज्ञाता हैं। द्रव्यकर्म और भावकर्म के पूर्व सस्कार उदय में आते हैं। लेकिन ज्ञानी दर्द का वेदन नहीं करते हैं किन्तु स्वभाव का पुरुषार्थ ही मल्ल याने मर्द है, उसे जाग्रत करते हैं। आत्मानुभूति की सुरक्षा पाते हुए निर्भय रहते हैं। भेदज्ञान का ऐसा वल प्रगट हुआ है जिससे कर्मोदय की सामर्थ्य से नहीं डरते हैं। आक्रमक नया कर्मसैन्य बधता ही नहीं है। जहॉ पुराने कर्मसैन्य का आश्वस्त स्थान ढह रहा है वहॉ नए कर्म को अवकाश कैसा ? अनादि-अनत अवकाश मात्र निजनाथ को है।

शुद्धात्मानुभूति के अत पुर में एक निजध्रुव का ही स्थान है। वहॉ अन्य किसी का प्रवेश तक नहीं हो पाता है। यह **अलौकिक, अनुपम, आनदसुदरी किसी को भी नहीं वरती है और उसके योग्य निजनाथ के अलावा कोई है ही नहीं। अनतगुणों की सुरभि-सुमनमाला से वह सदा सुसज्जित है। उस माला में अद्भुत दिव्यशक्ति** है कि उनमें एक गुणपुष्प का एक अविभाग प्रतिच्छेद भी अन्य किसी के भोग के लिए प्रस्तुत नहीं रह सकता है। ऐसा हमारा जीव द्रव्य स्वय के लिए परिपूर्ण है और अन्य के वितरण में रिक्त है। तब पुराने कर्म की यहॉ वार्ता ही नहीं है। स्वय स्वय के लिए नित्य प्रस्तुत है।

त्रिवर्ग का सेवन करो

आगमादेव पर्याप्ते,किं युक्तिप्रयासेनेति ? त प्रत्याह -

जस्स ण तिवग्गकरण णहु तस्स तिवग्गसाहण होई।
वग्गतिय जइ इच्छह ता तियवग्ग मुणह पढम ॥१६६॥
णिक्खेव णय पमाण छद्दव्व सुद्ध एव जो अप्पा।
तक्क पवयणणाम अज्झप्प होइ हु तिवग्ग ॥१६७॥ नयचक्र

प्रश्न आगम ही पर्याप्त है। युक्ति (न्यायशास्त्र)को जानने का प्रयास करने से क्या लाभ है ?

समाधान ऐसा पूछनेवाले विनीत शिष्य को आचार्य माइल्लधवल उत्तर देते हैं - जो त्रिवर्गकरण (प्रमाण, नय, निक्षेप, विषय,साधन,फल, द्रव्य,गुण,पर्याय, उत्पाद,व्यय,ध्रुव) को नहीं जानता है, वह त्रिवर्ग (सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, युक्ति,प्रवचनरूप आगम, अध्यात्म, प्रत्यभिज्ञान,तर्क,अनुमान, सवर,निर्जरा,मोक्ष, उपशमभाव,क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव, पक्ष,साध्य,साधन, लक्षण,उद्देश,परीक्षा) की साधना (साध्य की प्राप्ति) नहीं कर सकता है। जिसे त्रिवर्ग प्राप्त करने की इच्छा है उसे प्रथम त्रिवर्ग को जानना चाहिए। निक्षेप, नय और प्रमाण तो तर्क या युक्तिरूप प्रथम वर्ग है, छह द्रव्यों का निरूपण-प्रवचन या आगमरूप दूसरा वर्ग है। और शुद्ध आत्मा अध्यात्मरूप तीसरा वर्ग है। कहा भी है -

जो ण पमाणणएहिं णिक्खेवेण णिक्खिवदे अत्थ।
तस्साजुत्त जुत्त जुत्तमजुत्त च पडिहाइ ॥ - तिलोयपण्णत्ति
प्रमाणनयनिक्षेपैर्योऽर्थान्नाभि समीक्षते ।
युक्तचायुक्तवद्भाति तस्यायुक्तच युक्तवत् ॥ - धवला पु १ पृ १६

अर्थ जो प्रमाण,नय और निक्षेप से अर्थ(पदार्थ)को भलीभाति नहीं जानता, उसे युक्त अयुक्त की तरह और अयुक्त युक्त की तरह प्रतीत होता है।

विषयों का अकिंचित्करपना

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्य दीवेण णत्थि कायव्व ।
तह सोक्ख सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वंति ॥६७॥ - प्रवचनसार

अर्थ जिस मनुष्य को अधकार का नाश करनेवाली दृष्टि प्राप्त हो गई है उसे दीपक से कोई प्रयोजन नहीं। उसी प्रकार जिसे अपने सुख स्वरूप आत्मा का अनुभव प्रत्यक्ष प्रामाण्य सहित हो गया है उसे पचेन्द्रियों के विषयों से कोई प्रयोजन नहीं रहता। जिस जीव को अपने सच्चे अतींद्रिय सुख का स्वाद नहीं मिला ऐसा अज्ञानी जीव ही परद्रव्यों मे सुख मानकर उनके सग्रह में लगा रहता है।

मोह के चिन्ह

अट्ठे अजधागहण करुणाभावो य तिरियमणुएसु।
विसुएसु चप्पसगो मोहस्सेदाणि लिगाणि ॥८५॥ - प्रवचनसार

अर्थ पदार्थों का अयथार्थ जानना, मनुष्य-तिर्यंचों के प्रति करुणाभाव, और इद्रिय विषयों में इष्ट-अनिष्ट बुद्धि (राग-द्वेष) ये मोह के चिन्ह है।

संवर अधिकार

अथ प्रविशति सवर । सवराधिकारेऽपि यत्र मित्यात्वरागादिपरिणतबहिरात्मभावनारूप आस्रवो नास्ति तत्र सवरो भवतीत्यस्रवविपक्षद्वारेण, चतुर्दशगाथापर्यंत वीतरागसम्यक्त्वरूपसवरव्याख्यान करोति। तत्रादौ भेदज्ञानात् शुद्धात्मोपलम्भो भवति इति सक्षेपव्याख्यानमुख्यत्वेन **'उवओगे'** इत्यादि गाथात्रयम्। तदनतर भेदज्ञानात्कथ शुद्धात्मोपलम्भो भवतीति प्रश्ने परिहाररूपेण **'जह कणयमग्गि'** इत्यादि गाथाद्वयम्। तत पर शुद्धभावनया पुन शुद्धो भवतीति मुख्यत्वेन **'सुद्ध तु वियाणतो'** इत्यादि गाथैकम्। तत पर केन प्रकारेण सवरो भवतीति पूर्वपक्षे कृते सति परिहारमुख्यतया **'अप्पाणमप्पणा'** इत्यादि गाथात्रयम्। अथात्मा परोक्षस्तस्य ध्यान कथ क्रियतेति पृष्टे सति देवतारूपदृष्तातेन परोक्षेऽपि ज्ञायत इति परिहाररूपेण **'उवदेसेण'** इत्यादि गाथाद्वयम्। तदनदतर उदयप्राप्तप्रत्ययागताना रागाद्यध्यवसानानामभावे सति जीवगताना रागादिभावास्रवाणामभावो भवतीत्यादि सवरक्रमाख्यानमुख्यत्वेन **'तेसि हेदू'** इत्यादि गाथात्रयम्। एव आस्रवविपक्षद्वारेण सवरव्याख्याने समुदायपातनिका।

अब सवर प्रवेश करता है। सवर अधिकार में भी जहॉ मिथ्यात्वरागादिपरिणत वहिरात्मभावनामय आस्रव नहीं हे वहॉ सवर है, ऐसा आस्रव के विरुद्ध पक्ष के द्वारा १४ गाथाओं तक वीतरागसम्यक्त्वमय (स्वानुभूतिमय) सवर का कथन करते हैं। उसके शुरु में भेदज्ञान से शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है, इस तरह सक्षेप में कथन करने की मुख्यता से **'उवओगे'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। तदनतर भेदज्ञान से कैसे शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है? इस प्रश्न के निराकरण रूप से **'जह कणयमग्गि'** इत्यादि दो गाथायें हैं। उसके आगे शुद्धभावभासना से (स्वानुभूति) से ही शुद्ध होता है, इस कथन की मुख्यता से **'सुद्ध तु वियाणतो'** इत्यादि एक गाथा हे। उसके आगे किस प्रकार से सवर होता हे? ऐसा पूर्व पक्ष करने पर उसका परिहार करने की मुख्यता से **'अप्पाणमप्पणा'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। **"यह आत्मा परोक्ष हे, उसका ध्यान कैसे किया जाय ?"** ऐसा पूछने पर देवतारूप दृष्टात से परोक्ष में भी जाना जाता हे, इस तरह निराकरण करने वाली **'उवदेसेण'** इत्यादि दो गाथायें हैं। तदनतर अव उदयप्राप्त प्रत्ययागत रागादि अध्यवसानों का अभाव होने से जीवगत रागादिभावास्रवों का अभाव होता हे इत्यादि, ऐसे सवरक्रम का कथन करने की मुख्यता से **'तेसि हेदु'** इत्यादि तीन-गाथायें हैं। इस प्रकार आस्रव के विरुद्ध पक्ष के द्वार से सवर के व्याख्यान की यह समुदाय पातनिका है।

तद्यथा- प्रथमतरतावच्छुभाशुभकर्मसवररय परमोपायभूत निर्विकाररवसवेदनज्ञानलक्षण भेदज्ञान निरूपयति-

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो। (१८१) आ.ख्या.
कोहे कोहो चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो।। १८९।। ता.वृ.
अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो। (१८२)
उवओगम्हि य कम्म णोकम्म चावि णो अत्थि।। १९०।।
एद तु अविवरीद णाणं जइया दु होदि जीवस्स। (१८३)
तइया ण किंचि कुव्वदि भाव उवओगसुद्धप्पा।। १९१।।

उवओगे उवओगो ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणत्वादभेदनयेनात्मैवोपयोगरतस्मिन्नुपयोगाभिधाने शुद्धात्मन्युपयोग आत्मा तिष्ठति। **कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो** शुद्धनिश्चयेन क्रोधादिपरिणामेषु नारित कोप्युपयोग आत्मा। **कोहे कोहो चेव** हि क्रोधे क्रोधश्चैव हि स्फुट तिष्ठति। **उवओगे णत्थि खलु कोहो** उपयोगे शुद्धात्मनि नास्ति खलु स्फुट क्रोध। **अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो** तथैव चाष्टविधज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मणि, औदारिकशरीरादिनोकर्मणि चैव नास्त्युपयोग उपयोगशव्दवाच्य शुद्धवुद्धैकस्वभाव परमात्मा।

यहाँ प्रथमत शुभाशुभकर्म के सवर के परम उपायभूत निर्विकार स्वसवेदनज्ञान लक्षणवाले (स्वानुभव वाले) भेदज्ञान का निरूपण करते हैं -

गाथार्थ - **(उवओगे)** उपयोग में **(उवओगो)** उपयोग है **(कोहादिसु)** क्रोधादिकों में **(को वि उवओगो)** कोई भी उपयोग **(णत्थि)** नहीं है, **(च)** और **(कोहे एव हि)** क्रोध में ही **(कोहो)** क्रोध है, **(खलु)** निश्चय से **(उवओगे)** उपयोग में **(कोहो)** क्रोध **(णत्थि)** नहीं है।

(अट्ठवियप्पे) आठ प्रकार के **(कम्मे)** कर्मों में **(च)** और **(णोकम्मे अवि)** नो कर्म में भी **(उवओगो)** उपयोग **(णत्थि)** नहीं हे, **(य)** और **(उवओगम्हि)** उपयोग में **(कम्म)** कर्म **(च)** और **(णोकम्म अवि)** नो कर्म भी **(णो अत्थि)** नहीं हैं।

(जइया दु) जिस काल में **(एद तु)** ऐसा **(अविवरीद)** अविपरीत - सत्यार्थ **(णाण)** ज्ञान **(जीवस्स)** जीव के **(होदि)** हो जाता है **(तइया)** तब **(उवओगसुद्धप्पा)** उपयोगस्वरूप शुद्धात्मा **(किंचि भाव)** उपयोग के सिवा अन्य किसी भी भावको **(ण कुव्वदि)** नहीं करता है।

टीकार्थ - **उवओगो उवओगे** ज्ञानदर्शन उपयोग लक्षण होने से अभेदनय से आत्मा ही उपयोग है, उस **उपयोग** नामवाले शुद्ध आत्मा में **उपयोगमय** आत्मा रहता है। **कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो** शुद्ध निश्चय नय से क्रोधादि परिणामों में कोई भी उपयोगमय आत्मा नहीं है। **कोहे कोहो चेवहि** और क्रोध में क्रोध ही है यह स्पष्ट है। **उवओगे णत्थि खलु कोहो** शुद्ध निश्चय से उपयोगरूप शुद्धात्मा में वास्तव में क्रोध नहीं है। **अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो** उसी प्रकार अष्टविध ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म में और औदारिक शरीरादि नोकर्म में उपयोग नहीं है। उपयोग शब्द का वाच्य शुद्धबुद्ध-एक-स्वभाववाला परमात्मा है।

उवओगम्हि य कम्म णोकम्म चावि णो अत्थि उपयोगे शुद्धात्मनि शुद्धनिश्चयेन कर्म नोकर्म चैव नास्ति इति। **एद तु अविवरीद णाण जइया दु होदि जीवस्स** इद तु चिदानन्दैकस्वभावशुद्धात्मसवित्तिरूप विपरीताभिनिवेशनहित भेदज्ञान यदा भवति जीवस्य **तइया ण किचि कुव्वदि भाव उवओग सुद्धप्पा** तस्माद्भेदविज्ञानात्स्वात्मोपलम्भो भवति शुद्धात्मोपलम्भे जाते सति किमपि मित्यात्वरागादिभाव न करोति न परिणमति। कथभूत सन् ? निर्विकार-चिदानन्दैकलक्षणशुद्धोपयोगेन शुद्धात्मा शुद्धस्वभाव सन्निति। यत्रैवभूतो सवरो नास्ति तत्रास्रवो भवत्यस्मिन्न-धिकारे सर्वत्र ज्ञातव्यमिति तात्पर्यम्। एव पूर्वप्रकारेण भेदविज्ञानात् शुद्धात्मोपलभो भवति। शुद्धात्मोपलभे सति मिथ्यात्व रागादिभाव न करोति ततो नवतरकर्मसवरो भवतीति सक्षेपव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रय गतम्।। १८९ से १९१।।

अथ कथ भेदज्ञानादेव शुद्धात्मोपलभो भवतीति पुनरपि पृच्छति-

जह कणयमग्गितविय पि कणयसहाव ण त परिच्चयदि। (१८४)
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्त।। १९२।।
एव जाणदि णाणी अण्णाणी मुणदि रागमेवाद। (१८५)
अण्णाणतमोच्छण्णो आदसहाव अयाणतो।। १९३।।

उवओगम्हि य कम्म णोकम्म चावि णो अत्थि शुद्धनिश्चयनय से उपयोगवाले शुद्धात्मा में कर्म और नोकर्म नहीं हैं। **एद तु अविवरीद णाण जइया दु होदि जीवस्स** इस प्रकार का चिदानद एक स्वभाव शुद्धात्मा के अनुभववाला विपरीताभिनिवेश रहित भेदज्ञान जब जीव को होता है **तइया ण किचि कुव्वदि भाव उवओग सुद्धप्पा** तव उस भेदविज्ञान से निजात्मा की प्राप्ति होती है। शुद्धात्मानुभव की प्राप्ति होते ही वह जीव कुछ भी मिथ्यात्व रागादि भाव नहीं करता है, उन रूप नहीं परिणमता है।

शका - कैसा होकर मिथ्यात्व रागादि भाव नहीं करता है ?

समाधान - निर्विकार चिदानद एक लक्षणवाले शुद्धोपयोग से शुद्धात्मा - शुद्धस्वभावमय होकर मिथ्यात्व रागादि भाव नहीं करता है।

इस प्रकार का सवर जहाँ नहीं है वहाँ आस्रव होता हे, ऐसा इस अधिकार में सर्वत्र जानना चाहिये, यह तात्पर्य है। इस तरह पूर्व प्रकार के भेदविज्ञान से शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है। शुद्धात्मानुभव होने से मिथ्यात्व रागादि भाव नहीं करता है, इसलिये नवीन कर्मो का सवर होता है। इस प्रकार सक्षेप में कथन करने की मुख्यता से तीन गाथायें समाप्त हुईं।। १८९ से १९१।।

अव भेदज्ञान से ही शुद्धात्मा की प्राप्ति (अनुभूति) कैसे होती है ? ऐसा फिर से पूछने पर कहते हैं-

गाथार्थ :- (जह) जैसे **(कणयमग्गितविय पि)** अग्नि से तप्त हुआ सुवर्ण भी (त) अपने **(कणयसहाव)** सुवर्ण स्वाभाव को **(ण परिच्चयदि)** नहीं छोडता है **(तह)** उसी तरह **(कम्मोदयतविदो)** कर्मो के उदय से तप्तायमान हुआ **(णाणी दु)** ज्ञानी भी **(णाणित्त)** ज्ञानीपने के स्वभाव को **(ण जहदि)** नहीं छोडता है।

(एव) इस तरह **(णाणी)** ज्ञानी **(जाणदि)** जानता है। और **(अण्णाणी)** अज्ञानी **(अण्णाणतमोच्छण्णो)** अज्ञानमय अधकार से व्याप्त-आच्छादित होकर **(आदसहाव)** आत्मस्वभाव को **(अयाणतो)** न जानते हुए **(रागमेव आद)** राग को ही आत्मा **(मुणदि)** मानता है।

जह कणयमग्गितवियं पि कणयसहावं ण तं परिच्चयदि यथा कनकं सुवर्णमग्नितप्तमपि तं कनकस्वभावं न परित्यजति। तह कम्मोदयतविदो ण चयदि णाणी दु णाणित्तं तेन प्रकारेण तीव्रपरीषहोपसर्गेण कर्मोदयेन संतप्तोऽपि रागद्वेषमोहपरिणामपरिहारपरिणतोऽभेदरत्नत्रयलक्षणभेदज्ञानी न त्यजति। किं तत् ? शुद्धात्मसंवित्तिलक्षण ज्ञानित्वं पाण्डवादिवदिति। एवं जाणदि णाणी एवमुक्तप्रकारेण शुद्धात्मानं जानाति। कोऽसौ? वीतरागस्वसंवेदनलक्षण-भेदज्ञानी। अण्णाणी मुणदि रागमेवादं अज्ञानी पुनः पूर्वोक्तभेदज्ञानाभावात् मिथ्यात्वरागादिरूपमेवात्मानं मनुते जानाति। कथंभूतः सन् ? अण्णाणतमोच्छण्णो अज्ञानतमोऽवच्छन्नः प्रच्छादितो झपितः। पुनरपि कथंभूतः सन्? आदसहावं अयाणंतो निर्विकल्पपरमचैतन्यचमत्कारस्वभावं शुद्धात्मानं निर्विकल्पसमाधेरभावादजानन् अननुभवन् इति। एवं भेदज्ञानात्कथं शुद्धात्मोपलंभो भवतीति पृष्टे प्रत्युत्तररूपेण गाथाद्वयं गतम्।।१९२, १९३।।

अथ कथं शुद्धात्मोपलंभात्संवर इति पुनरपि पृच्छति -

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धमेवप्पयं लहदि जीवो। (१८६)
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहदि।। १९४।।

टीकार्थ - जह कणयमग्गितवियं पि कणयसहावं ण तं परिच्चयदि जैसे सुवर्ण अग्नि में तपाया जाने पर भी वह सुवर्ण अपने स्वभाव को नहीं त्यागता है। तह कम्मोदयतविदो ण चयदि णाणी दु णाणित्तं उसी प्रकार कर्मोदय द्वारा तीव्र परीषह व उपसर्ग से संतप्त किया जाने पर भी राग-द्वेष-मोहपरिणाम से रहित परिणतिवाला अभेदरत्नत्रय लक्षणवाला भेदज्ञानी शुद्धात्मसंवित्ति (शुद्धात्मानुभूति) लक्षण वाले ज्ञानित्व को नहीं छोडता है। जैसे पाण्डवादि को परिषह होने पर भी उन्होंने स्वानुभूति को नहीं छोडा। एवं जाणदि णाणी इस प्रकार वीतराग स्वसंवेदनलक्षण (स्वानुभूतिलक्षण) वाला भेदज्ञानी शुद्धात्मा को उक्त प्रकार से जानता (अनुभवता) है। अण्णाणी मुणदि रागमेवादं और अज्ञानी पूर्वोक्त भेदज्ञान के अभाव से मिथ्यात्व रागादिरूप ही आत्मा को मानता है, जानता है, (अनुभवता है)।

शंका - कैसा होकर जानता है ?

समाधान - अण्णाणतमोच्छण्णो अज्ञान अंधकार से आच्छादित (प्रच्छादित) होकर आदसहावं अयाणंतो और निर्विकार परम चैतन्य चमत्कार स्वभाव को-शुद्धात्मा को निर्विकल्प समाधि का अभाव होने से न जानता हुआ, न अनुभवता हुआ मिथ्यात्व रागादिरूप ही आत्मा को मानता है, अनुभवता है।

इस प्रकार भेदज्ञान से कैसे शुद्धात्मा की उपलब्धि होती है, ऐसा पूछने पर उसका उत्तर देनेवाली दो गाथायें समाप्त हुई।।१९२, १९३।।

अब शुद्धात्मानुभव से संवर कैसे होता है? ऐसा फिर पूछने पर उत्तर देते हैं-

गाथार्थ - (सुद्धं तु) शुद्ध आत्मा को ही (वियाणंतो) अनुभवने से (जीवो) जीव (सुद्धं एव) शुद्ध ही (अप्पयं) आत्मा को (लहदि) प्राप्त करता है (दु) और (असुद्धं) अशुद्ध आत्मा को (जाणंतो) अनुभवने से (असुद्धमेवप्पयं) अशुद्ध आत्मा को ही (लहदि) प्राप्त करता है।

सुद्ध तु वियाणतो सुद्धमेवप्पय लहदि जीवो भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितमनतज्ञानादिगुणस्वरूप शुद्धात्मान निर्विकारसुखानूभूतिलक्षणेन भेदज्ञानेन विजानन्ननुभवन् ज्ञानी जीव । एव गुणविशिष्ट यादृश शुद्धात्मान ध्यायति भावयति तादृशमेव लभते। कस्मात् ? इति चेत् उपादानकारणसदृश कार्यमिति हेतो । **जाणतो दु असुद्ध असुद्धमेवप्पय लहदि** अशुद्ध मिथ्यात्वादिपरिणतमात्मान जानन्ननुभवन् सन् अशुद्ध, नरनारकादिरूपमेवात्मान लभते। स क ? अज्ञानी जीव इति। एव शुद्धात्मोपलम्भादेव कथ सवरो भवतीति पृष्टे प्रत्युत्तरकथनरूपेण गाथा गता।। १९४।।

अथ केन प्रकारेण सवरो भवतीति पृष्टे पुनरपि विशेषेणोत्तर ददाति -

अप्पाणमप्पणा रुधिऊण दो पुण्णपावजोगेसु। (१८७)
दसणणाणम्हि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णम्हि।। १९५।।
जो सव्वसगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणा अप्पा। (१८८)
ण वि कम्म णोकम्म चेदा चितेदि एयत्त।। १९६।।
अप्पाण झायतो दसणणाणमओ अणण्णमओ। (१८९)
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मणिम्मुक्क[१]।। १९७।।

टीकार्थ - सुध्द तु वियाणतो सुध्दमेवप्पय लहदि जीवो भावकर्म द्रव्यकर्म नोकर्मरहित अनत ज्ञानादि गुण स्वभावमय शुद्धात्मा को निर्विकार सुखानुभूति लक्षणरूप भेदज्ञान से अनुभवन करनेवाला ज्ञानी जीव है। ऐसा गुणविशिष्ट जीव जिस प्रकार के शुद्धात्मा (स्वभाव का) का ध्यान करता है, अनुभव करता है उसको उसी प्रकार के शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है, क्योंकि ऐसा नियम है कि **उपादान कारण सदृश ही कार्य होता है। जाणतो दु असुध्द असुध्दमेवप्पय लहदि** अज्ञानी जीव अशुद्ध मिथ्यात्वादि परिणत आत्मा को जानता हुआ, अनुभव करता हुआ अशुद्ध नरनारकादिरूप ही आत्मा को प्राप्त करता है। (इस प्रकार शुद्धात्मानुभूति से सवर होता है)। इस तरह से कैसे सवर होता है ? ऐसा पूछने पर उसके उत्तर के कथन रूप से गाथा समाप्त हुई।।१९४।।

अब किस प्रकार से सवर होता है? ऐसा पूछने पर फिर से विशेष स्पष्टीकरण करते हैं -

गाथार्थ - (जो अप्पा) जो आत्मा **(अप्पाण अप्पणा)** अपने आत्मा को अपने द्वारा **(दसणाणह्मि)** दर्शनज्ञान में **(ठिदो)** स्थितकर **(सव्वसगमुक्को)** सर्व सग रहित याने निस्सगस्वभाव में स्थित होकर **(य)** और **(अण्णम्हि)** अन्य वस्तु में **(इच्छाविरदो)** इच्छा से रहित होकर **(दो पुण्णपावजोगेसु)** दो पुण्यपापमय योगों से **(रुधिऊण)** रोककर **(अप्पणा)** आत्मा से ही **(अप्पाण)** आत्मा का **(झायदि)** ध्यान करता है-अनुभवता है और **(कम्म णोकम्म)** कर्म नोकर्म को **(ण)** नहीं अनुभवता है, **(वि)** और **(चेदा)** चैतन्यमय **(एयत्त)** एकत्वस्वभाव को **(चितेदि)** अनुभव करता है **(सो)** वह जीव **(दसणणाणमओ)** दर्शनज्ञानमय **(अणण्णमओ)** अनन्यरूप से एकरूप से **(अप्पाण)** आत्मा को **(झायतो)** ध्यान **(अनुभव)** करता हुआ **(अचिरेण)** थोडे समय में **(एव)** ही **(कम्मणिम्मुक्क)** कर्मो से निर्मुक्त-रहित **(अप्पाण)** आत्मा को **(लहदि)** पाता है।

---

१ पाठान्तर - कम्मपविमुक्क

अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दो (सु) पुण्णपावजोगेसु आत्मान कर्मत्वापन्न आत्मना करणभूतेन द्वयो पुण्यपापयोगयोरधिकारभूतयोर्वर्तमान स्वसवेदनज्ञानबलेन शुभाशुभयोगाभ्या सकाशाद्रुन्ध्वा व्यावर्त्य। **दसणणाणम्हिठिदो** दर्शनज्ञाने स्थित सन्। **इच्छाविरदो य अण्णम्हि** अन्यस्मिन् देहरागादिपरद्रव्ये सर्वत्रेच्छारहितश्चेति प्रथमगाथा गता। **जो य** कर्ता। **सव्वसगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणा अप्पा** आत्मा, पुनरपि कथभूत ? **सव्वसगमुक्को** निस्सगात्मतत्त्वविलक्षणबाह्याभ्यन्तरसर्वसगमुक्त सन्। **झायदि** ध्यायति। क ? **अप्पाण** निजशुद्धात्मान। केन करणभूतेन ? **अप्पणा** स्वशुद्धात्मना। **णवि कम्म णोकम्म** नेव कर्म नोकर्म ध्यायति। आत्मान ध्यायन् कि करोति? **चेदा चिंतेदि** एव गुणविशिष्टश्चेतयितात्मा चितयति। कि ? **एयत्त** "एकोऽह निर्मम शुध्दो ज्ञानी योगीन्द्रगोचर बाह्या सयोगजा भावा मत्त सर्वेऽपि सर्वथा।।"[१] इत्याद्येकत्व इति द्वितीयगाथा गता।

टीकार्थ - **अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दो (सु) पुण्यपापजोगेसु** वर्तमान में पुण्यपाप व योग के सानिध्य में कर्मो से घिरे हुए आत्मा को आत्मा द्वारा स्वसवेदनज्ञानबल से शुभाशुभयोगों से रोककर **दसणणाणम्हि ठिदो** दर्शनज्ञान में स्थित रहकर ओर **इच्छाविरदो य अण्णम्हि** अन्य देह रागादि परद्रव्य में सर्वत्र इच्छारहित होता है। यह प्रथम गाथा का अर्थ हुआ।

जो सव्वसगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणा अप्पा जो आत्मा निस्सग आत्मस्वभाववाला है और इससे विलक्षण ऐसे बाह्य-अभ्यन्तर सब परिग्रह से रहित रहकर निजशुद्धात्म स्वभाव का ध्यान-अनुभव करता है।

शका - किस साधन से ध्यान करता है ?

समाधान - **अप्पणा** अपने शुद्ध आत्मा से **अप्पाण** निजशुद्धात्मस्वभाव ... है **णवि कम्म णोकम्म** और द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म का ध्या[illegible] करता है।

शका - आत्मा का ध्यान करने वाला क्या ...

समाधान - **चेदा चिंतेदि** ऊपर कहे हुये वि[illegible] ...कार चेत[illegible] ।

शका - कैसे ?

समाधान - **एयत्त** जैसा कि "एकोऽह नि[illegible]
सर्वेऽपि सर्वथा।।" (इष्टोपदेश श्लोक न २७) याने
हूं, इसके सिवाय सभी सयोगजभाव मेरे से सर्वथा भि[illegible]

सो पूर्व की दोनों गाथाओं में कहा हुआ पुरुष
आत्मा का चिन्तवन करनेवाला निर्विकल्परूप से ध्यान (
दर्शनज्ञानमय होकर अन[illegible]
नोकर्मरहित आत्मा को अ[illegible]

[१] इष्टोपदेश, श्लोक २७।

सो इत्यादि। **सो** स पूर्वसूत्रद्वयोक्त पुरुष। **अप्पाण झायतो** एव पूर्वोक्त प्रकारेणात्मान कर्मतापन्न चितयन् निर्विकल्परूपेण ध्यायन् सन्। **दसणणाणमओ** दर्शनज्ञानमयो भूत्वा। **अणण्णमओ** अनन्यमनाश्च। **लहदि** लभते। कमेव ? **अप्पाणमेव** आत्मानमेव। कथभूत ? **कम्मणिम्मुक्क** भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मविमुक्त। केन ? **अचिरेण** स्तोककालेन। एव केन प्रकारेण सवरो भवति ? इति प्रश्ने सति विशेषपरिहारव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रय गतम्।।१९५, १९६, १९७।।

अथ परोक्षस्य आत्मन कथ ध्यान भवतीति प्रश्ने प्रत्युत्तर ददाति -

उवदेसेण परोक्ख रूवं जह पस्सिदूण णादेदि।
भण्णदि तहेव घिप्पदि जीवो दिट्ठो य णादो य।।१९८।।

उवदेसेण परोक्ख रूव जह पस्सिदूण णादेदि यथा लोके परोक्षमपि देवतारूप परोपदेशाल्लिखित दृष्ट्वा कश्चिद्देवदत्तो जानाति। **भण्णदि तहेव घिप्पदि जीवो दिट्ठो य णादो य** तथैव वचनेन भण्यते तथैव मनसि गृह्यते। कोऽसौ ? जीव, केन रूपेण ? मया दृष्टो ज्ञातश्चेति मनसा सप्रधारयति। तथा चोक्त-

गुरूपदेशादभ्यासात्सवित्ते स्वपरातरम्। जानाति य स जानाति मोक्षसोख्य निरतरम्।।'[1] १९८।।

इस प्रकार, "किस प्रकार से सवर होता है ?" इस प्रश्न का उत्तर विशेष प्रकार से कथन करने की मुख्यता से तीन गाथायें समाप्त हुईं।।१९५, १९६, १९७।।

अव, **परोक्ष आत्मा का ध्यान कैसे होता है?** ऐसा प्रश्न करने पर उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - (**जह**) जैसे (**उवदेसेण**) उपदेश से (**परोक्ख रूप**) परोक्ष रूप को (**पस्सिदूण**) देखकर (**णादेदि**) जानता है, (**तहेव भण्णदि**) उसी प्रकार उपदेश से आत्मा कहते हैं उसको (**जीवो**) जीव (**घिप्पदि**) ग्रहण करता है (**य**) और (**णादो य दिट्ठो**) इस प्रकार वह आत्मा जाना जाता है ओर देखा जाता है।

टीकार्थ - **उवदेसेण परोक्ख रूव जह पस्सिदूण णादेदि** जैसे लोक में देवता का रूप परोक्ष होता हुआ भी परोपदेश से लिखित देवता के रूप को देखकर कोई देवदत्त उस देवता को जान लेता है, **भण्णदि तहेव घिप्पदि जीवो दिट्ठो य णादो य** वैसे ही वचन से (श्रुतज्ञान से) आत्मा कहा जाता है और उस ही आत्मा को चित्त में ग्रहण कर लिया जाता है।

शका - कौन ग्रहण करता है ?

समाधान - जीव आत्मा को ग्रहण करता है।

शका - किस रूप से ?

समाधान - मेरे द्वारा देखा और जाना गया है ऐसा चित्त से ग्रहण होता है, अनुभव होता है। (इष्टोपदेश श्लोक ३३ में) कहा भी है कि-जो गुरुपदेश से, अभ्यास से और स्वानूभूति से स्व और पर का भेद जानता है वह मोक्षसुख को निरतर अनुभवता है।।१९८।।

---

[1] इष्टोपदेश, श्लोक ३३

अप्पाणमप्पणा रुधिऊण दो (सु) पुण्णपावजोगेसु आत्मान कर्मत्वापन्न आत्मना करणभूतेन द्वयो पुण्यपापयोगयोरधिकारभूतयोर्वर्तमान स्वसवेदनज्ञानवलेन शुभाशुभयोगाभ्या सकाशाद्रुन्ध्वा व्यावर्त्य। **दसणणाणम्हिठिदो** दर्शनज्ञाने स्थित सन्। **इच्छाविरदो य अण्णम्हि** अन्यस्मिन् देहरागादिपरद्रव्ये सर्वत्रेच्छारहितश्चेति प्रथमगाथा गता। **जो य** कर्ता। **सव्वसगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणा अप्पा** आत्मा, पुनरपि कथभूत ? **सव्वसगमुक्को** निरसगात्मतत्त्वविलक्षणवाह्याभ्यन्तरसर्वसगमुक्त सन्। **झायदि** ध्यायति। क ? **अप्पाण** निजशुद्धात्मान। केन करणभूतेन ? **अप्पणा** स्वशुद्धात्मना। **णवि कम्म णोकम्म** नैव कर्म नोकर्म ध्यायति। आत्मान ध्यायन् कि करोति? **चेदा चितेदि** एव गुणविशिष्टश्चेतयितात्मा चितयति। कि ? **एयत्त** "एकोऽह निर्मम शुध्दो ज्ञानी योगीन्द्रगोचर वाह्या सयोगजा भावा मत्त सर्वेऽपि सर्वथा।।"[1] इत्याद्येकत्व इति द्वितीयगाथा गता।

टीकार्थ - **अप्पाणमप्पणा रुधिऊण दो (सु) पुण्यपापजोगेसु** वर्तमान में पुण्यपाप व योग के सानिध्य में कर्मों से घिरे हुए आत्मा को आत्मा द्वारा स्वसवेदनज्ञानवल से शुभाशुभयोगों से रोककर **दसणणाणम्हि ठिदो** दर्शनज्ञान में स्थित रहकर और **इच्छाविरदो य अण्णम्हि** अन्य देह रागादि परद्रव्य में सर्वत्र इच्छारहित होता है। यह प्रथम गाथा का अर्थ हुआ।

जो सव्वसगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणा अप्पा जो आत्मा निस्सग आत्मस्वभाववाला है और इससे विलक्षण ऐसे वाह्य-अभ्यन्तर सव परिग्रह से रहित रहकर निजशुद्धात्म स्वभाव का ध्यान-अनुभव करता है।

शका - किस साधन से ध्यान करता है ?

समाधान - **अप्पणा** अपने शुद्ध आत्मा से **अप्पाण** निजशुद्धात्मस्वभाव का **झायादि** ध्यान करता है **णवि कम्म णोकम्म** और द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म का ध्यान नहीं करता है।

शका - आत्मा का ध्यान करने वाला क्या करता है ?

समाधान - **चेदा चितेदि** ऊपर कहे हुये विशिष्ट गुणवाला होकर चैतन्यमय आत्मा का ध्यान करता है।

शका - केसे ?

समाधान - **एयत्त** जैसा कि "एकोऽह निर्मम शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचर । वाह्या, सयोगजा भावा मत्त सर्वेऽपि सर्वथा।।" (इष्टोपदेश श्लोक न २७) याने मैं तो एक हूँ, निर्मम हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञानी हूँ, योगीन्द्रगोचर हूँ, इसके सिवाय सभी सयोगजभाव मेरे से सर्वथा वाह्य (भिन्न) हैं। यह दूसरी गाथा का अर्थ हुआ।

सो पूर्व की दोनों गाथाओं में कहा हुआ पुरुष **अप्पाण झायतो** उस पूर्वोक्त प्रकार से कर्मों से घिरे हुए आत्मा का चिन्तवन करनेवाला, निर्विकल्परूप से ध्यान (स्वानुभूति) करनेवाला और **दसणणाणमओ अणण्णमओ** दर्शनज्ञानमय होकर अनन्यमन होकर (एकरूप से) **लहदि अचिरेण अप्पाणमेव कम्मणिम्मुक्क** भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मरहित आत्मा को अल्पकाल में ही प्राप्त करता है।

---

[1] इष्टोपदेश, श्लोक २७।

सो इत्यादि। सो स पूर्वसूत्रद्वयोक्त पुरुष। **अप्पाण झायतो** एव पूर्वोक्त प्रकारेणात्मान कर्मतापन्न चितयन् निर्विकल्परूपेण ध्यायन् सन्। **दसणणाणमओ** दर्शनज्ञानमयो भूत्वा। **अणण्णमओ** अनन्यमनाश्च। **लहदि** लभते। कमेव ? **अप्पाणमेव** आत्मानमेव। कथभूत ? **कम्मणिम्मुक्क** भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मविमुक्त। केन ? **अचिरेण** स्तोककालेन। एव केन प्रकारेण सवरो भवति ? इति प्रश्ने सति विशेषपरिहारव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रय गतम्।।१९५, १९६, १९७।।

अथ परोक्षस्य आत्मन कथ ध्यान भवतीति प्रश्ने प्रत्युत्तर ददाति -

उवदेसेण परोक्ख रूव जह पस्सिदूण णादेदि।
भण्णदि तहेव घिप्पदि जीवो दिट्ठो य णादो य।।१९८।।

उवदेसेण परोक्ख रूव जह पस्सिदूण णादेदि यथा लोके परोक्षमपि देवतारूप परोपदेशाल्लिखित दृष्ट्वा कश्चिद्देवदत्तो जानाति। **भण्णदि तहेव घिप्पदि जीवो दिट्ठो य णादो य** तथैव वचनेन भण्यते तथैव मनसि गृह्यते। कोऽसो ? जीव, केन रूपेण ? मया दृष्टो ज्ञातश्चेति मनसा सप्रधारयति। तथा चोक्त-

गुरूपदेशादभ्यासात्सवित्ते स्वपरातरम्। जानाति य स जानाति मोक्षसौख्य निरतरम्।।[१] १९८।।

इस प्रकार, "किस प्रकार से सवर होता है ?" इस प्रश्न का उत्तर विशेप प्रकार से कथन करने की मुख्यता से तीन गाथायें समाप्त हुईं।।१९५, १९६, १९७।।

अव, **परोक्ष आत्मा का ध्यान कैसे होता है?** ऐसा प्रश्न करने पर उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(जह)** जैसे **(उवदेसेण)** उपदेश से **(परोक्ख रूप)** परोक्ष रूप को **(पस्सिदूण)** देखकर **(णादेदि)** जानता है, **(तहेव भण्णदि)** उसी प्रकार उपदेश से आत्मा कहते हैं उसको **(जीवो)** जीव **(घिप्पदि)** ग्रहण करता है **(य)** और **(णादो य दिट्ठो)** इस प्रकार वह आत्मा जाना जाता है और देखा जाता है।

टीकार्थ - **उवदेसेण परोक्ख रूव जह पस्सिदूण णादेदि** जैसे लोक में देवता का रूप परोक्ष होता हुआ भी परोपदेश से लिखित देवता के रूप को देखकर कोई देवदत्त उस देवता को जान लेता है, **भण्णदि तहेव घिप्पदि जीवो दिट्ठो य णादो य** वैसे ही वचन से (श्रुतज्ञान से) आत्मा कहा जाता है और उस ही आत्मा को चित्त में ग्रहण कर लिया जाता है।

शका - कौन ग्रहण करता है ?

समाधान - जीव आत्मा को ग्रहण करता है।

शका - किस रूप से ?

समाधान - मेरे द्वारा देखा और जाना गया है ऐसा चित्त से ग्रहण होता है, अनुभव होता है। (इष्टोपदेश श्लोक ३३ में) कहा भी है कि-जो गुरुपदेश से, अभ्यास से और स्वानूभूति से स्व और पर का भेद जानता है वह मोक्षसुख को निरतर अनुभवता है।।१९८।।

---

[१] इष्टोपदेश, श्लोक ३३

अथ -

को विदिदच्छो साहू सपडिकाले भणिज्ज रूवमिण।
पच्चक्खमेव दिट्ठ परोक्खणाणे पवट्टत।। १९९।।

(को विदितार्थ साधु सम्प्रति काले भणेत् रूपमिद प्रत्यक्षमेव दृष्ट परोक्षज्ञाने प्रवर्तमानम्।) अथ मत **भणिज्ज रूवमिण पच्चक्खमेव दिट्ठ परोक्खणाणे पवट्टत** योऽसौ प्रत्यक्षेणात्मान दर्शयति, तस्य पार्श्वे पृच्छामो वय, नैव ? **को विदिदच्छो साहू सपडिकाले भणिज्ज** को विदितार्थ साधु सम्प्रतिकाले ब्रूयात् ? न कोऽपि। कि ब्रूयात् ? न कोऽपि। किंतु **रूवमिण पच्चक्खमेव दिट्ठ** इदमात्मस्वरूप प्रत्यक्षमेव मया दृष्ट। चतुर्थकाले केवलज्ञानिवत्। अपि तु नैवम्। कथभूतमिदमात्मस्वरूपम् ? **परोक्खणाणे पवट्टत** केवलज्ञानापेक्षया परोक्षे श्रुतज्ञाने प्रवर्तमान, इति।

गाथार्थ - अव **(को विदिदच्छो साहू)** कोई ज्ञानी साधु ही **(सपडिकाले)** साप्रतकाल में - इस पचमकाल मे **(इण पवट्टत रूव)** यह प्रवर्तमान आत्मस्वरूप **(पच्चक्खमेव)** प्रत्यक्ष ही **(परोक्खणाणे)** परोक्षज्ञान में (याने क्षयोपशमज्ञान में) **(दिट्ठ)** दिख गया ऐसा **(भणिज्ज)** कहेगा। (अर्थात् "साप्रतकाल में शुद्धात्मा प्रत्यक्ष दिखता है," ऐसा सम्यग्ज्ञानी जीव कहेगा।)

टीकार्थ - इसका मतलव यह है कि **भणिज्ज रूवमिण पच्चक्खमेव दिट्ठ परोक्खणाणे पवट्टत** जो यह प्रत्यक्ष से आत्मा को दिखाता है, उसके निकट जाकर हम पृछते हैं कि, ता वृ गाथा १९८ में जो कहा है कि **"प्रथम उपदेश से जानकर पश्चात् शुद्धात्मानुभव से प्रत्यक्ष जानते हैं" इस प्रकार से नहीं है। को विविदच्छो साहू सपडिकाले भणिज्ज** ऐसा कोई ज्ञानी साधु वर्तमान (पचम) काल में कहता है क्या ?

समाधान - ऐसा कोई भी (ज्ञानी साधु) नहीं कहता है।

शका - क्या (नहीं) कहता है ?

समाधान - पूर्व गाथा में जो कहा है कि, **"प्रथम उपदेश से जानकर पश्चात् स्वानुभव से प्रत्यक्ष जानते हैं, इस प्रकार से नहीं है,"** ऐसा कोई भी नहीं कहता है।

किंतु **रूवमिण पच्चक्खमेव दिट्ठ** यह आत्मा का स्वरूप चतुर्थकाल के केवली के समान (जाति अपेक्षा से समान) प्रत्यक्ष ही मेंने (वर्तमान इस पॅचमकाल में) देखा हे, लेकिन केवली के समान सकलप्रत्यक्ष (अतिविशद प्रत्यक्ष) मैने नहीं देखा है।

शका - तो फिर आपने किस प्रकार का यह आत्मस्वरूप प्रत्यक्ष जाना (देखा) है।

समाधान - **परोक्खणाणे पवट्टत** केवलज्ञान की अपेक्षा से परोक्ष ऐसे श्रुतज्ञान में (क्षयोपशमज्ञान में) प्रवर्तमान यह शुद्धात्मस्वरूप प्रत्यक्ष जाना (देखा) है (याने क्षायिक केवलज्ञान की अपेक्षा से परोक्षरूप क्षयोपशमज्ञान में प्रवर्तमान रहने वाला यह शुद्धात्मस्वरूप प्रत्यक्ष जाना जाता है)।

कि च विस्तर । यद्यपि केवलज्ञानापेक्षया रागादिविकल्परहित स्वसवेदनरूप भावश्रुतज्ञान शुद्धनिश्चयनयेन परोक्ष भण्यते, तथापि इद्रियमनोजनितसविकल्पज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षम्। तेन कारणेन आत्मा स्वसवेदनज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षो भवति, केवलज्ञानापेक्षया पुन परोक्षोऽपि भवति। सर्वथा परोक्ष एवेति वक्तु नायाति। कि तु चतुर्थकालेऽपि केवलिन किमात्मान हस्ते गृहीत्वा दर्शयन्ति ? तेऽपि दिव्यध्वनिना भणित्वा गच्छति। तथापि श्रवणकाले श्रोतृणा परोक्ष एव पश्चात्परमसमाधिकाले प्रत्यक्षो भवति। तथा इदानी कालेऽपीति भावार्थ । एव परोक्षस्यात्मन कथ ध्यान क्रियते ? इति प्रश्ने परिहाररूपेण गाथाद्वय गतम्।।१९९।।

अथ, उदयप्राप्त द्रव्यप्रत्ययस्वरूपाणा रागाद्यध्यवसानानामभावे सति जीवगतरागादिभावकर्मरूपाणा मध्यवसानाना अभावो भवतीत्यादिरूपेण सवरस्य क्रमाख्यान कथयति-

तेसि हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरसीहि। (१९०)
मिच्छत्त अण्णाण अविरदिभावो य जोगो य।।२००।।
हेदुअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो। (१९१)
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोहो।।२०१।।
कम्मस्साभावेण य णोकम्माण च जायदि णिरोहो । (१९२)
णोकम्मणिरोहेण य ससारणिरोहण होदि।।२०२।।

इसका विशेष अर्थ यह है कि, यद्यपि केवलज्ञान की अपेक्षा से रागादि विकल्परहित प्रत्यक्ष स्वसवेदनज्ञान रूप (स्वानुभूतिरूप) भावश्रुतज्ञान को (अभेदोपचार से-पर्यायार्थिक पूर्ण) शुद्धनिश्चयनय से परोक्ष कहते हैं, तथापि इद्रियमनोजनित सविकल्पज्ञान की (क्षयोपशमज्ञान की) अपेक्षा से (४ से १२ गुणस्थानवर्ती स्वसवेदनज्ञान को अतीन्द्रिय) प्रत्यक्ष कहते हैं। इस कारण से आत्मा स्वसवेदन ज्ञान की अपेक्षा से प्रत्यक्ष है, और केवलज्ञान की अपेक्षा से (क्षयोपशम सम्यग्ज्ञानियों का आत्मा ४ से १२ गुणस्थानवर्तियोंका शुद्धात्मानुभव) परोक्ष भी है। क्षयोपशमजनित (४ से १२ गुणस्थानवर्तियों की) स्वानुभूति सर्वथा परोक्ष ही है ऐसा कहने में नहीं आता है।

किंतु चतुर्थकाल में भी केवली भगवान क्या आत्मा को हाथ में ग्रहणकर दिखाते हैं ? वे केवली भगवान भी दिव्यध्वनि से कहकर चले जाते हैं। (अथवा वे लोग दिव्यध्वनि से कहा हुआ जानते हैं)। तथापि श्रवणकाल में सुननेवाले लोगों को आत्मा परोक्ष ही है, पश्चात् परमसमाधि काल में-स्वानुभूतिकाल में प्रत्यक्ष है। तथा इसी तरह अभी इस (पँचम काल) में भी उपदेश से, आगम से जानते समय परोक्ष है और अभी इसी पँचमकाल में भी स्वानुभूति के समय प्रत्यक्ष ही है, ऐसा भावार्थ है। इस प्रकार से परोक्ष आत्मा का ध्यान कैसे किया जाता है? ऐसा प्रश्न करने पर उसका उत्तर देनेवाली दो गाथायें पूर्ण हुई।।१९९।।

अब, उदयप्राप्त द्रव्यप्रत्ययस्वरूप रागादि अध्यवसानों का अभाव होने पर जीवगत रागादि भावकर्मरूप अध्यवसानों का अभाव होता है, इत्यादि रूप से सवर का क्रम से व्याख्यान करते हैं -

तेसि हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरसीहि तेषा प्रसिद्धाना जीवगतरागादिभावकर्मरूपाणा भावास्रवाणा हेतव कारणानि भणितानि। कानि ? उदयप्राप्तद्रव्यप्रत्ययागतानि रागाद्यध्यवसानानि। कै ? सर्वदर्शिभि । ननु अध्यवसानानि भावकर्मरूपाणि, तानि जीवगतान्येव भवति उदयप्राप्तद्रव्यप्रत्ययागतानि भावप्रत्ययानि कथ भवतीति? नैव, यत कारणात् भावकर्म द्विधा भवति। जीवगत पुद्गलकर्मगतम् च। तथाहि-भावक्रोधादिव्यक्तिरूप जीवभावगत भण्यते। पुद्गलपिडशक्तिरूप पुद्गलद्रव्यगतम्। तथा चोक्त-**पुग्गलपिडो दव्व कोहादी भावदव्व तु** - इति जीवभावगत भण्यते। **पुग्गलपिडो दव्व तस्सत्ती भावकम्म तु** - इति पुद्गलद्रव्यगत। अत्रदृष्टातो यथा मधुरकटुकादिद्रव्यस्य भक्षणकाले जीवस्य मधुरकटुकस्वादव्यक्तिविकल्परूप जीवभावगत तद्व्यक्तिकारणभूत मधुरकटुकद्रव्यगत शक्तिरूप पुद्गलद्रव्यगतम्। एव भावकर्मस्वरूप जीवगत पुद्गलगत च द्विधेति भावकर्मव्याख्यानकाले सर्वत्र ज्ञातव्यम्। कानि ? तानि अध्यवसानानि। **मिच्छत्त अण्णाण अविरदिभावो य जोगो य** मिथ्यात्वमज्ञानमविरतिर्योगश्चेति प्रथमगाथा गता।

गाथार्थ - (**सव्वदरसीहि**) सर्वज्ञदेवों ने (**तेसि**) रागादि विभाव आस्रवों के (**हेदू**) कारण (**मिच्छत्त**) मिथ्यात्व, (**अण्णाण**) अज्ञान, (**य अविरदिभावो**) और अविरतिभाव (**य जोगो**) और योग-ये चार (**अज्झवसाणाणि**) अध्यवसान (**भणिदा**) कहे हैं।

(**दु**) लेकिन (**णाणिस्स**) ज्ञानी के (**हेदुअभावे**) मिथ्यात्वादि हेतुओं के अभाव में (**णियमा**) नियम से (**आसवणिरोहो**) आस्रव का निरोध (**जायदि**) हो जाता है (**आसवभावेण विणा**) आस्रव भाव के विना (**कम्मस्स**) कर्म का (**णिरोहो**) निरोध (**जायदि**) हो जाता है।

(**य**) और (**कम्मस्साभावेण**) कर्म का अभाव होने पर (**णोकम्माण च**) और नो कर्मो का भी (**णिरोहो**) निरोध (**जायदि**) हो जाता है (**य**) और (**णोकम्मणिरोहेण**) नोकर्म का निरोध होने से (**ससारणिरोहण**) ससार का निरोध (**होदि**) हो जाता है।

टीकार्थ - **तेसि हेदु भणिदा अज्झवसाणाणि** सर्वज्ञदेवों ने उन प्रसिद्ध जीवगत रागादि भावकर्मरूप भावास्रवों का कारण उदयप्राप्त द्रव्यप्रत्ययागत रागादि अध्यवसानों को कहा है।

शका - अध्यवसान तो भावकर्मरूप जीवगत ही होते हे, तो उदयप्राप्त द्रव्यप्रत्ययागत रागादि अध्यवसान भावप्रत्यय रूप केसे होते हैं ?

समाधान - ऐसा नहीं हे (याने अध्यवसान तो भावकर्मरूप जीवगत ही हैं, उदयप्राप्त द्रव्यप्रत्ययागत रागादि अध्यवसान भावप्रत्यय नहीं हैं, ऐसा नहीं है) क्योकि **भावकर्म दो प्रकार के हैं** - (१) जीवद्रव्यगत भावकर्म ओर (२) पुद्गलद्रव्यगत भावकर्म। जैसे कि भावक्रोधादि व्यक्तिरूप को जीवभावगत कहते हैं।

कहा भी है-'**पुग्गलपिडो दव्व कोहादि भावदव्व तु**' इसे जीवभावगत कहते हैं। **और पुद्गलपिडशक्तिरूप को पुद्गलद्रव्यगत कहते हैं**, कहा भी है - '**पुग्गलपिडो दव्व तस्सत्ती भावकम्म तु**'।

हेदुअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो पूर्वोक्तानामुदयागतद्रव्यप्रत्ययाना जीवगतभावास्रवहेतुभूताना वीतरागस्वसवेदनज्ञानिनो जीवस्य उदयागतद्रव्यकर्मरूपाणा अभावे सति नियमान्निश्चयात् रागादिरूपभावास्रव-निरोधलक्षण सवरो जायते। **आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोहो** निरास्रवपरमात्मतत्त्वरूपविलक्षणस्य जीवगतभावास्रवस्य भावेन स्वरूपेण विना जायते कर्मणो निरोधरूप सवर । कस्य ? परमात्मतत्त्वप्रच्छादकनवतर द्रव्यकर्मण इति द्वितीयगाथा गता। **कम्मस्साभावेण य णोकम्माण च जायदि णिरोहो** ततश्च नवतरकर्माभावेन सवरेण शरीरादिनोकर्मणा च जायते निरोध सवर । **णोकम्मणिरोहेण य ससारणिरोहण होदि** नोकर्मनिरोधेन सवरेण ससारातीतशुद्धात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतद्रव्यक्षेत्रादिपचप्रकारससारनिरोधन भवतीति तृतीयगाथा गता। एव सवरक्रमाख्यानेन गाथात्रय गतम्।। २००, २०१, २०२।।

एव पात्रवदास्रवविपक्षभूत सवरो निष्क्रात ।

इति श्रीजयसेनाचार्यकृताया समयसारव्याख्याया शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाया तात्पर्यवृत्तौ चतुर्दशगाथाभि षट्स्थले आस्रवविपक्षद्वारेण सवरनामा षष्ठोऽधिकार समाप्त ।। ६।।

उसका दृष्टात यह है कि, मधुर अथवा कडवे पदार्थ को खाने के समय उसके मधुर या कडवे स्वाद को चखनेरूप जो जीव का विकल्प होता है, वह जीवगत भाव कहलाता है, और उसकी अभिव्यक्ति में कारणभूत ऐसा उस मधुर अथवा कडवे द्रव्य में रहनेवाला शक्ति का अश-विशेष होता है वह पुद्गलद्रव्यगत भाव कहा जाता है। इस प्रकार **भावकर्म का स्वरूप जीवगत और पुद्गलेगत दो प्रकार का है,** ऐसा भावकर्म के व्याख्यान में सर्वत्र जानना चाहिये।

शका - वे अध्यवसान कौन से हैं ?

समाधान - **मिच्छत्त अण्णाण अविरदभावो य जोगो** य वे अध्यवसान मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति और योग हैं। यह पहली गाथा पूर्ण हुई।

हेदु अभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो वीतराग स्वसवेदनज्ञानी जीव के पूर्वोक्त जीवगत भावास्रव के हेतुभूत उदयागत द्रव्य प्रत्यय रूप उदयागत द्रव्य कर्मो का अभाव होने से नियम से (निश्चय से) रागादि रूप भावास्रवों के निरोध लक्षणवाला सवर प्रकट होता है। **आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोहो** निरास्रव परमात्मतत्त्व से विलक्षणरूप जीवगत भावास्रव के भाव के स्वरूप के बिना कर्मो का निरोधरूप सवर प्रकट होता है।

शका - किस प्रकार के कर्मो का सवर प्रकट होता है ?

समाधान - परमात्मतत्त्व को आच्छादन करनेवाले नवीन द्रव्यकर्मो का सवर होता है। इस प्रकार दूसरी गाथा पूर्ण हुई।

कम्मस्साभावेण य णोकम्माण च जायदि णिरोहो नूतन कर्म के अभाव से-सवर से शरीरादि नोकर्मो का निरोध-सवर प्रकट होता है। और **णोकम्मणिरोहेण य ससारणिरोहण होदि** नोकर्मनिरोधरूप सवर से ससारातीत शुद्धात्मतत्त्व के प्रतिपक्षभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव इन पाँच प्रकार के ससार का निरोध होता है। यह तीसरी गाथा पूर्ण हुई। इस प्रकार सवर का क्रम से व्याख्यान करनेवाली तीन गाथायें पूर्ण हुई।।२००, २०१, २०२।।

इस प्रकार पात्र की तरह आस्रव के विपक्षभूत सवर निष्क्रात हुआ।

इस प्रकार श्री जयसेनाचार्यजी कृत समयसार की व्याख्यारूप शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाली तात्पर्यवृत्ति में १४ गाथाओं के द्वारा छ स्थलों में आस्रव के विपक्षभूत सवर नाम का छट्ठा अधिकार समाप्त हुआ।।६।।

卐 卐 卐 卐 卐

ज्ञानानन्दामृतस्वरूपाय नमः।

अज्ञानी के विश्व में कुष्ट रोग निवारण करने के लिए अमृत की खोज होती है। स्वर्गस्थ देवों में भूख-प्यास के शमन के लिए कण्ठ में अमृत झरता है। लेकिन यह अमृत ही नहीं है। ज्ञानी के विश्व में हरेक जीव द्रव्य में ज्ञान के अमृत का सागर लबालब भरा हुआ है। अरिहत-सिद्ध भगवान अपने ज्ञानामृत का प्राशन हरपल करते हैं। शाश्वत बोधामृत के प्राशन से ज्ञानी नित्य तृप्त है। निजध्रुव में कहीं भी असतोष नहीं है। परद्रव्य की सगति आकाक्षाए वढाती है, याचक वनाती है और परद्रव्य का इच्छुक याचक वनने पर दरिद्रीपन महसूस करता है। इनके शमन के लिए राग की अधिक मात्रावाले सयोगरूप उस चीज को अमृत समझता हे। परधन को अपना मानने से कभी भी श्रीमान नहीं वन सकता है। परद्रव्य की कितनी भी वाजी लगाई जाएँ तो भी उनसे कुछ मिलनेवाला नहीं है। प्रत्युत जय-पराजय की बातों से विषमता फैलती है।

ज्ञान में स्पर्धा नहीं होती है। ज्ञान दु ख का कारण नहीं वनता है, वल्कि सच्चा तत्त्वज्ञान आनद का ही कारण हे। इसलिए कहा है - 'वोधे बोधे सच्चिदानन्दभास ।' वीतराग वाणी हमेशा आनद का वर्षाव करती है। आत्मानुभूति की पर्याय अपने ज्ञानानद कात के साथ मिलन करती है। यही सच्ची स्वाधीनता है, इसमें पराधीनता नहीं है। अत यहाँ समता है। ऐसे समतापीयूष को बरसाने वाले भगवान के प्रति सहज ही व्यवहारनय से बहुमानयुक्त नमस्कार हो जाता है और निश्चयनय से अपने ज्ञानानद स्वभाव की प्रतीति हो जाती है। ज्ञानराजीवबन्धुस्वरूपोऽहम् । ज्ञानपीयूषसागरस्वरूपोऽहम्। चैतन्यरत्नाद्रिस्वरूपोऽहम् । ज्ञानमार्तण्डस्वरूपोऽहम् । ज्ञानकल्पतरुस्वरूपोऽहम् ।

चार्ट नं. ३

प्रमाण का प्रामाण्य-जाने हुए विषय में व्यभिचार का न होना

क्रमाक	अनुभाव्य विषय (भोग्य) ध्येय ज्ञेय प्रमेय	अनुभव विषयी (साधन) ध्यान ज्ञान (विचार) प्रमाण	फल जानने का फल ध्यान का फल ज्ञान का फल प्रमिति
१)	निजध्रुव ज्ञानानद स्वभाव	निजध्रुव ज्ञानानद स्वभाव	अतीन्द्रिय आनद उपेक्षा (समभाव) सम्यग्दर्शन वीतराग
२)	अशुद्धपर्याय	अशुद्धपर्याय	मिथ्यात्व, सराग, विषमभाव
३)	एकदेशशुद्धपर्याय	एकदेशशुद्धपर्याय	मिथ्यात्व, सराग, विपमभाव
४)	पूर्णशुद्धपर्याय (केवलज्ञान)	पूर्णशुद्धपर्याय (केवलज्ञान)	मिथ्यात्व, सराग, विषमभाव
५)	धन	धन	मिथ्यात्व, सराग, विषमभाव
६)	शरीर	शरीर	मिथ्यात्व, सराग, विषमभाव
७)	ठडा स्पर्श	ठडा स्पर्श	मिथ्यात्व, सराग, विषमभाव
८)	मीठा रस	मीठा रस	मिथ्यात्व, सराग, विपमभाव
९)	सुगध	सुगंध	मिथ्यात्व, सराग, विषमभाव
१०)	नीलवर्ण	नीलवर्ण	मिथ्यात्व, सराग, विपमभाव
११)	ध्वनि शव्द	ध्वनि शब्द	मिथ्यात्व, सराग, विपमभाव

अनिष्ट (हान) अथवा इष्ट (उपादान)

परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई हवदि।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरइ इयरस्मि।।१६।। मोक्षाप्राभृत

परद्रव्य से दुर्गति और स्वद्रव्य से निश्चित सुगति है, ऐसा जानकर स्वद्रव्य में रति करो ओर परद्रव्य में विरति करो।

सुहपरिणामो पुण्ण असुहो पाव त्ति भणिदमण्णेसु।
परिणामो णण्णगदो दुक्खक्खयकारण समये।।१८१।। प्रवचनसार

पर के प्रति (दूसरों के वारे में) शुभ परिणाम पुण्य है और अशुभ परिणाम पाप है। जो परिणाम दूसरों के प्रति जाता नही, ऐसा स्व को जाननेवाला परिणाम उसी समय दु ख क्षय का (सवरपूर्वक निर्जरा का शुद्धात्मानुभूति का/परमानद का/निराकुलता का) कारण है, ऐसा शास्त्र कहते हैं।

चार्ट नं. ३५

गुण		पर्याय
ज्ञानगुण		(आ २) सर्वज्ञ (केवलज्ञान) पर्याय
ज्ञानगुण		(आ ३) विपुलमतिमन पर्ययज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ ३) ऋजुमतिमन पर्ययज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ ४) परमावधिज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ ४) सर्वावधिज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ ४) देशावधिज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(क) श्रुतनयज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(ख) श्रुतनयज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ ५) श्रुतप्रमाणज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ ५) मतिज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ १) श्रुतप्रमाणज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ १) मानसमतिज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ १) अनुमानमतिज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ १) तर्कमतिज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ १) प्रत्यभिज्ञानमतिज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ १) स्मरणमतिज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ १) इन्द्रियजमतिज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ १) कुमतिज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ १) कुश्रुतज्ञानपर्याय
ज्ञानगुण		(आ ४) कुअवधिज्ञानपर्याय

(च) गुणदृष्टि

(च) भेदोपचारनय

(छ) पर्यायदृष्टि

(छ) भेदवृत्तिनय

यहाँ गुण अन्वयरूप है, और पर्याय व्यतिरेकवाली है। इसलिये 'गुण' पर्यायों से अन्य/अतद्‌भाव है। यहाँ 'ज्ञानगुण' मतिज्ञानादिपर्यायों के साथ अनुवर्तन करता है, लेकिन 'मतिज्ञानादिपर्याय' सर्वज्ञादिपर्यायों के साथ अनुवर्तन नहीं करती है।

निर्जरा अधिकार

तत्रैव सति रगभूमे सकाशात् शृगाररहितपात्रवत् शुद्धजीवस्वरूपेण सवरो निष्क्रात । अथवीतरागनिर्विकल्प-समाधिरूपा शुद्धोपयोगलक्षणा सवरपूर्विका **निर्जरा प्रविशति। 'उवभोज्जमिदियेहि'** इत्यादि गाथामादिं कृत्वा दडकान् विहाय पाठक्रमेण पचाशद्गाथापर्यन्त षट्स्थलैर्निर्जराव्याख्यान करोति। तत्रद्रव्यनिर्जराभावनिर्जराज्ञानशक्ति-वैराग्यशक्तीना क्रमेण व्याख्यान करोति, इति पीठिकारूपेण प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयम्। तदनतर ज्ञानवैराग्यशक्ते सामान्यव्याख्यानार्थं **सेवतोवि ण सेवदि** इत्यादि द्वितीयस्थले गाथापचकम्। तत पर तयोरेव ज्ञानवैराग्यशक्त्योर्विशेष-विवरणार्थं **परमाणुमित्तियपि** इत्यादि तृतीयस्थले सूत्रदशकम्। ततश्च मतिश्रुतावधि मन पर्ययकेवलज्ञानानामभेदरूप परमार्थसज्ञ मुक्तिकारणभूत यत्परमात्मपद, तत्पद येन स्वसवेदनज्ञानगुणेन लभ्यते तस्य सामान्यव्याख्यानार्थं **'णाणगुणेण विहीणा'** इत्यादि चतुर्थस्थले सूत्राष्टकम्। तत पर तस्यैव ज्ञानगुणस्य विशेषविवरणार्थं **'णाणी रागप्पजहो'** इत्यादि पचमस्थले गाथा चतुर्दश। तदनतर शुद्धनयमाश्रित्य चिदानन्दैकस्वभावशुद्धात्मभावनाश्रिताना निश्चयनिश्शकाद्यष्टगुणाना व्याख्यानार्थं **'सम्मादिट्ठी जीवो'** इत्यादि षष्ठस्थले सूत्रनवक कथयति। इति षड्भि-रतराधिकारै निर्जराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा -

---

वहाँ ऐसा होने पर शृगार रहित पात्र के समान शुद्ध जीवस्वरूप से सवर रगभूमि से निकल गया। अब वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप शुद्धोपयोग लक्षणवाली सवरपूर्वक होनेवाली निर्जरा प्रवेश करती है। **'उवभोगमिंदियेहि'** इत्यादि गाथा से शुरु करके दडकों को छोडकर पाठक्रम से ५० गाथापर्यन्त छ स्थलों के द्वारा निर्जरा का व्याख्यान करते हैं। वहाँ द्रव्यनिर्जरा, भावनिर्जरा, ज्ञान वैराग्य शक्तियों का क्रम से व्याख्यान करते हैं, इस प्रकार पीठिकारूप से प्रथम स्थल में चार गाथायें हैं। तदनतर ज्ञान वैराग्य शक्ति का सामान्य कथन करने के लिये **'सेवतोवि ण सेवदि'** इत्यादि दूसरे स्थल में पॉच गाथायें हैं। उसके आगे उन दोनों ज्ञान वैराग्य शक्तियों का विशेष व्याख्यान के लिये **'परमाणुमित्तियपि'** इत्यादि तृतीय स्थल में दस गाथायें हैं। और इसके बाद मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय और केवलज्ञान ये पॉच ज्ञान पर्यायें हैं, तो भी अभेदरूप से परमार्थसज्ञक मुक्ति का कारणभूत जो परमात्मपद है, उस पद को जिस स्वसवेदनज्ञान गुण से प्राप्त करता है उसका सामान्य कथन करने के लिए **'णाणगुणेण विहीणा'** इत्यादि चतुर्थ स्थल में आठ गाथायें हैं। इसके आगे उसी ज्ञान गुण का विशेष कथन करने के लिए **'णाणी रागप्पजहो'** इत्यादि पॅचम स्थल में १४ गाथायें हैं। तदनतर शुद्धनय का आश्रय करके चिदानन्दैकस्वभाव शुद्धात्मभावभासना के आश्रित निश्चय निशकादि अष्टगुणों का कथन करने के लिए **'सम्मादिट्ठी जीवो'** इत्यादि छट्टे स्थल में नौ गाथायें कहते हैं। इस प्रकार छ अतर अधिकारों के द्वारा निर्जरा अधिकार में समुदायपातनिका है।

अथ द्रव्यनिर्जरा कथयति -

उवभोगमिंदियेहिं दव्वाणमचेदणाणमिदराणं। (१९३) आ.ख्या.
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं।।२०३।। ता.वृ

उवभोगमिंदियेहिं दव्वाणमचेदणाणमिदराणं जं कुणदि सम्मदिट्ठी सम्यग्यदृष्टि कर्ता चेतनाचेतनद्रव्याणां संबंधि यद्वस्तूपभोग्यं करोति। कै कृत्वा ? पंचेन्द्रियविषयै। **तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं** तद्वस्तु मिथ्यादृष्टेर्जीवस्य रागद्वेषमोहानां सद्भावेन बंधकारणमपि सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य रागद्वेषमोहानामभावेन समस्तमपि निर्जरानिमित्तं भवतीति।

अत्राह शिष्य- रागद्वेषमोहाभावे सति निर्जराकारणं भणितं सम्यग्दृष्टेस्तु रागादय संति, तत कथं निर्जराकारणं भवतीति ? अस्मिन्पूर्वपक्षे परिहार। अत्र ग्रंथे वस्तुवृत्त्या वीतरागसम्यग्दृष्टेर्ग्रहणं, यस्तु चतुर्थगुणस्थानवर्ती सरागसम्यग्दृष्टिस्तस्य गौणवृत्त्या ग्रहणं, तत्र तु परिहार पूर्वमेव भणितं। कथमिति चेत् ? मिथ्यादृष्टे सकाशादसंयतसम्यग्दृष्टे अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वोदयजनिता, श्रावकस्य चाऽप्रत्याख्यानक्रोधमानमाया-लोभोदयजनिता रागादयो न संतीत्यादि।

किंच सम्यग्दृष्टे संवरपूर्विका निर्जरा भवति, मिथ्यादृष्टेस्तु गजस्नानवत् बंधपूर्विका भवति, तेन कारणेन मिथ्यादृष्ट्यपेक्षया सम्यग्दृष्टिरबंधक इति। एवं द्रव्यनिर्जराव्याख्यानरूपेण गाथा गता।।२०३।।

अब, द्रव्यनिर्जरा का कथन करते हैं -

गाथार्थ - **(सम्मदिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि जीव **(इंदियेहिं)** इंद्रियों के द्वारा **(अचेदणाणं)** अचेतन और **(इदराणं)** चेतन **(दव्वाणं)** द्रव्यों का **(जं)** जो **(उवभोगं)** उपभोग **(कुणदि)** करता है **(तं सव्वं)** वह सब **(णिज्जरणिमित्तं)** निर्जरा का निमित्त है।

टीकार्थ - उवभोगमिंदियेहिं दव्वाणमचेदणाणमिदराणं जं कुणदि सम्मदिट्ठि पंचेंद्रिय विषयों के द्वारा सम्यग्दृष्टि जीव चेतन-अचेतन द्रव्यों संबंधी जो वस्तु हैं उनका उपभोग करता है। **तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं** वह सब वस्तु का भोग मिथ्यादृष्टि जीव को राग-द्वेष-मोह के सद्भाव से बंध का कारण है लेकिन सम्यग्दृष्टि जीव को राग-द्वेष-मोह के अभाव से सभी वस्तुओं का भोग भी निर्जरा का कारण है।

शंका - राग-द्वेष-मोह का अभाव होने से वे भोग निर्जरा के कारण कहे गये हैं, लेकिन सम्यग्दृष्टि को रागादि है इसलिये वे भोग निर्जरा के कारण कैसे होते हैं ?

समाधान - इसका उत्तर ("रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स इत्यादि ता वृ गाथा क्र १८५, १८६ आदि में) पहले ही कह दिया है। यहाँ इस ग्रंथ में मुख्यवृत्ति से वीतरागसम्यग्दृष्टि का ग्रहण किया है और जो चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सरागसम्यग्दृष्टि है उसका गौणपने (जघन्यपने) से ग्रहण किया है।

शंका - कैसे ?

अथ भावनिर्जरास्वरूपमाख्याति -

दव्वे उवभुज्जते णियमा जायदि सुह च दुक्ख च। (१९४)
त सुहदुक्खमुदिण्ण वेददि अथ णिज्जर जादि।।२०४।।

दव्वे उवभुज्जते णियमा जायदि सुह च दुक्ख च उदयागते द्रव्यकर्मणि जीवेनोपभुज्यमाने सति नियमात् निश्चयात् सातासातोदयवशेन सुख वा दु ख वस्तुस्वभावत एव जायते तावत्। **त सुहदुक्खमुदिण्ण वेददि** निरुपरागस्वसवित्तिभावनोत्पन्नपारमार्थिकसुखाद्भिन्न तत्सुख दु ख वा समुदीर्ण सत् सम्यग्दृष्टिर्जीवो रागद्वेषौ न कुर्वन् हेयबुद्ध्या वेदयति। न च तन्मयो भूत्वा, अह सुखी दु खीत्याद्यहमिति प्रत्ययेनानुभवति। **अथ णिज्जर जादि** अथ अहो तत कारणान्निर्जरा याति स्वस्थभावेन निर्जराया निमित्त भवति। मिथ्यादृष्टे पुन उपादेयबुद्ध्या सुख्यह दु ख्यहमिति प्रत्ययेन वधकारण भवति।

किच, यथा कोऽपि तस्करो यद्यपि मरण नेच्छति तथापि तलवरेण गृहीत सन् मरणमनुभवति। तथा सम्यग्दृष्टि यद्यप्यात्मोत्थसुखमुपादेय च जानाति विषयसुख च हेय जानाति। तथापि चरित्रमोहोदयतलवरेण गृहीत सन् तदनुभवति, तेन कारणेन निर्जरानिमित्त स्यात्। इति भावनिर्जराव्याख्यान गतम्।।२०४।।

समाधान - मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से अव्रती सम्यग्दृष्टि को अनतानुवधी क्रोध मान माया लोभ मिथ्यात्व जनित मोह राग द्वेप नहीं हैं और देशसयत सम्यग्दृष्टी-श्रावक को अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभोदयजनित रागादि नहीं हैं।

इसलिये सम्यग्दृष्टि (चतुर्थगुणस्थान से शुरु करके आगे के) जीव को मुख्यता से अनतानुवधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्वजनित मोह-राग-द्वेष न होने से सवर पूर्वक निर्जरा है। लेकिन मिथ्यात्व सासादान मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव की गजस्नान के समान वधपूर्वक निर्जरा है।

इसलिये मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि (चतुर्थ गुणस्थान से शुरु करके आगे के) जीव अवधक हैं। इस प्रकार द्रव्यनिर्जरा का कथन करनेवाली गाथा पूर्ण हुई।।२०३।।

अव भावनिर्जरा का स्वरूप कहते हैं -

गाथार्थ - **(दव्वे उवभुज्जते)** परद्रव्य को भोगने से **(णियमा)** नियम से **(सुह च दुक्ख च)** सुख और दु ख **(जायदि)** होता है **(उदिण्ण)** उदय में आये हुए **(त सुहदुक्ख)** उस सुखदु ख को **(वेददि)** अनुभव करता है **(अथ)** फिर वह **(णिज्जर जादि)** निर्जरा को प्राप्त हो जाता है।

टीकार्थ - **दव्वे उवभुज्जते णियमा जायदि सुह च दुक्ख च** उदयागत द्रव्यकर्मो को जीव के द्वारा भोगे जाने पर नियम से साता-असाता के उदय के वश से वस्तुभाव से (अशुद्धनिश्चयनय से) सुख अथवा दु ख प्राप्त होता है। **त सुहदुक्खमुदिण्ण वेददि** सम्यग्दृष्टि जीव राग-द्वेष न करते हुये निरुपराग स्वानुभव से उत्पन्न होने वाले पारमार्थिक सुख से भिन्न रहने वाले समुदीर्णरूप उस सातारूप सुख अथवा असातारूप दु ख को हेयबुद्ध्या वेदता है। तन्मय होकर नहीं। "मैं सुखी हूँ, मैं दु खी हूँ" इस प्रकार से नहीं अनुभवता है।

अथ वीतरागस्वसवेदनज्ञानसामर्थ्यं दर्शयति -

जह विसमुवभुञ्जतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि। (१९५)
पुग्गलकम्मस्सुदय तह भुजदि णेव वज्झदे णाणी।।२०५।।

जह विसमुवभुञ्जतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि यथा विषमुपभुजाना सतो गारुडविद्यापुरुपा अमोघमत्रसामर्थ्यात् नैव मरणमपुयाति। **पुग्गलकम्मस्सुदय तह भुजदि णेव वज्झदे णाणी** तथा परमतत्त्वज्ञानी शुभाशुभकर्म फल भुक्ते तथापि निर्विकल्पसमाधिलक्षणभेदज्ञानामोघमत्रवलान्नैव वध्यते कर्मणेति ज्ञानशक्तिव्याख्यान गतम्।।२०५।।

अथ ससारशरीरभोगविषये वैराग्यसामर्थ्यं दर्शयति -

जह मज्ज पिवमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो। (१९६)
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण बज्झदि तहेव।। २०६।।

अथ णिज्जर जादि इसलिये निर्जरा होती है। इसलिए स्वस्थभाव से निर्जरा का निमित्त होता है और मिथ्यादृष्टि की उपादेय बुद्धि होने से "मैं सुखी हूँ, मैं दु खी हूँ" इस प्रकार भोगने से वध का कारण है।

इसका विशेष स्पष्टीकरण यह है कि, जैसे कोई चोर यद्यपि मरण की इच्छा नहीं करता है तथापि कोतवाल के द्वारा पकडा जाने पर उस समय वह मरण का अनुभव करता है। वैसे ही सम्यग्दृष्टि (चतुर्थादिगुणस्थानवाला) यद्यपि आत्मोत्थसुख को उपादेय जानता है और विषयसुख को हेय जानता है, तथापि चारित्रमोहोदयरूप कोतवाल से पकडा जाने से उन भोगों को अनुभवता है (याने हेय भाव से अनुभवता है), इस कारण से वे भोग निर्जरा के निमित्त हैं। इस प्रकार भावनिर्जरा का कथन हुआ।।२०४।।

अव, वीतराग स्वसवेदनज्ञान की सामर्थ्य दिखलाते हैं -

गाथार्थ - (जह) जैसे (वेज्जो पुरिसो) वैद्य पुरुष (विस) विष को (उवभुञ्जतो) भोगता हुआ भी (मरण) मरण को (ण उवयादि) प्राप्त नहीं होता (तह) उसी तरह (णाणी) ज्ञानी (पुग्गलकम्मस्सुदय) पुद्गलकर्म के उदय को (भुजदि) भोगता है तो भी (णेव बज्झदे) वधता नहीं है।

टीकार्थ - **जह विसमुवभुञ्जतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि** जैसे विष को भोगने वाले गारुड विद्या पुरुष अमोघमत्रसामर्थ्य से मरण को प्राप्त नहीं होते हैं, **पुग्गलकम्मस्सुदय तह भुजदि णेव वज्झदे णाणी** वैसे **परमतत्त्वज्ञानी** (सम्यग्ज्ञानी चतुर्थादि गुणस्थानवाला) जीव शुभ-अशुभ कर्मफल को भोगता है, तथापि निर्विकल्प समाधि लक्षणवाले भेदज्ञान के अमोघमत्र के वल से कर्म से वधता नहीं है। इस तरह ज्ञानशक्ति का कथन पूर्ण हुआ।।२०५।।

अव, ससार-शरीर-भोग विषय में वैराग्य का सामर्थ्य दिखलाते हैं -

चार्ट नं. ४ ख

विषय : ठण्डी आइस्क्रीम है, लेकिन आनदगुणरहित है।

ज्ञान पर्याय : ठण्डी आइस्क्रीम है, आनंद है। Δ ▷ विपरीतज्ञान है।

विषय : मीठा पदार्थ है, लेकिन आनदगुणरहित है।

ज्ञान पर्याय : मीठा पदार्थ है, आनंद है। Δ ▷ विपरीतज्ञान है।

विषय : सुगंधवस्तु है, लेकिन आनदगुणरहित है।

ज्ञान पर्याय : सुगधवस्तु है, आनद है। Δ ▷ विपरीतज्ञान है।
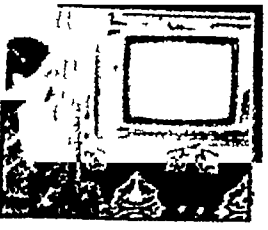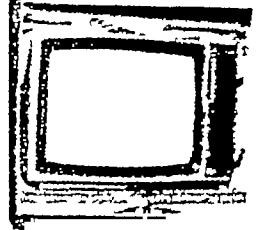
विषय : नीली वस्तु है, लेकिन आनंदगुणरहित है।

ज्ञान पर्याय : नीली वस्तु है, आनद है। Δ ▷ विपरीतज्ञान है।

विषय : शास्त्रोक्त संगीत (ध्वनि) है, लेकिन आनंदगुणरहित है।

ज्ञान पर्याय : शास्त्रोक्त सगीत है, आनंद है। Δ ▷ विपरीतज्ञान है।

विषय : वालक में वालक का आनंदगुण है, लेकिन वालक में माता का आनदगुण नहीं है।

ज्ञान पर्याय : वालक में मेरा (माता का) आनंदगुण है। Δ ▷ विपरीतज्ञान है।

विषय : विशेपज्ञपर्याय है, लेकिन शाश्वत आनंदगुण नहीं।

ज्ञान पर्याय : विशेपज्ञपर्याय है, शाश्वतआनद है। Δ ▷ विपरीतज्ञान है।
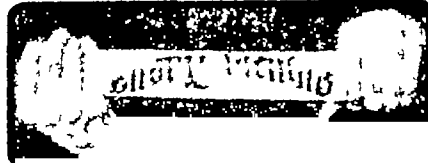
विषय : निजध्रुवज्ञान दर्शनानंदात्मा है।

ज्ञान पर्याय : निजध्रुवज्ञान दर्शनानंदात्मा हूँ, सम्यग्ज्ञान है।

अथ वीतरागस्वसंवेदनज्ञानसामर्थ्यं दर्शयति -

जह विसमुवभुज्जतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि। (१९५)
पुग्गलकम्मस्सुदय तह भुंजदि णेव वज्झदे णाणी।।२०५।।

जह विसमुवभुज्जतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि यथा विषमुपभुजाना सतो गारुडविद्यापुरुषा अमोघमन्त्रसामर्थ्यात् नैव मरणमपुयाति। पुग्गलकम्मस्सुदय तह भुजदि णेव वज्झदे णाणी तथा परमतत्त्वज्ञानी शुभाशुभकर्म फल भुक्ते तथापि निर्विकल्पसमाधिलक्षणभेदज्ञानामोघमन्त्रवलान्नैव वध्यते कर्मणेति ज्ञानशक्तिव्याख्यान गतम्।।२०५।।

अथ ससारशरीरभोगविषये वैराग्यसामर्थ्यं दर्शयति -

जह मज्ज पिवमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो। (१९६)
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण वज्झदि तहेव।।२०६।।

अथ णिज्जर जादि इसलिये निर्जरा होती है। इसलिए स्वस्थभाव से निर्जरा का निमित्त होता है और मिथ्यादृष्टि की उपादेय बुद्धि होने से "मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ" इस प्रकार भोगने से वध का कारण है।

इसका विशेष स्पष्टीकरण यह है कि, जैसे कोई चोर यद्यपि मरण की इच्छा नहीं करता है तथापि कोतवाल के द्वारा पकडा जाने पर उस समय वह मरण का अनुभव करता है। वैसे ही सम्यग्दृष्टि (चतुर्थादिगुणस्थानवाला) यद्यपि आत्मोत्थसुख को उपादेय जानता है और विषयसुख को हेय जानता है, तथापि चारित्रमोहोदयरूप कोतवाल से पकडा जाने से उन भोगों को अनुभवता है (याने हेय भाव से अनुभवता है), इस कारण से वे भोग निर्जरा के निमित्त हैं। इस प्रकार भावनिर्जरा का कथन हुआ।।२०४।।

अव, वीतराग स्वसवेदनज्ञान की सामर्थ्य दिखलाते हैं -

गाथार्थ - (जह) जैसे (वेज्जो पुरिसो) वैद्य पुरुष (विस) विष को (उवभुज्जतो) भोगता हुआ भी (मरण) मरण को (ण उवयादि) प्राप्त नहीं होता (तह) उसी तरह (णाणी) ज्ञानी (पुग्गलकम्मस्सुदय) पुद्गलकर्म के उदय को (भुजदि) भोगता है तो भी (णेव वज्झदे) वधता नहीं है।

टीकार्थ - जह विसमुवभुज्जतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि जैसे विष को भोगने वाले गारुड विद्या पुरुष अमोघमन्त्रसामर्थ्य से मरण को प्राप्त नहीं होते हैं, पुग्गलकम्मस्सुदय तह भुजदि णेव वज्झदे णाणी वैसे परमतत्त्वज्ञानी (सम्यग्ज्ञानी चतुर्थादि गुणस्थानवाला) जीव शुभ-अशुभ कर्मफल को भोगता है, तथापि निर्विकल्प समाधि लक्षणवाले भेदज्ञान के अमोघमन्त्र के वल से कर्म से वधता नहीं है। इस तरह ज्ञानशक्ति का कथन पूर्ण हुआ।।२०५।।

अव, ससार-शरीर-भोग विषय में वैराग्य का सामर्थ्य दिखलाते हैं -

जह मज्ज पिवमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो यथा कश्चित् पुरुषो व्याधिप्रतीकारनिमित्त मद्यमध्ये मद्यप्रतिपक्षभूतमौषध निक्षिप्य मद्य पिवन्नपि रतेरभावान्न माद्यति। दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण वज्झदि तहेव तथा परमात्मतत्त्वज्ञानी पचेंद्रियविषयभूताशनपानादिद्रव्योपभोगे सत्यपि यावता यावताशेन निर्विकारस्वसंवित्तिशून्यवहिरात्मजीवापेक्षया रागभाव न करोति, तावता तावताशेन कर्मणा न वध्यते। यदा तु हर्षविषादादिरूपसमस्तविकल्पजालरहितपरमयोगलक्षणभेदज्ञानवलेन सर्वथा वीतरागो भवति। तदा सर्वथा न वध्यते इति वैराग्यशक्तिव्याख्यान गतम्। एव यथाक्रमेण द्रव्यनिर्जराभावनिर्जराज्ञानशक्तिवैराग्यशक्तिप्रतिपादनरूपेण निर्जराधिकारे तात्पर्यव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टय गतम्।। २०६।।

अथैतदेव वैराग्यशक्तिस्वरूप विवृणोति -

सेवंतो वि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो को वि। (१९७)
पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होदि।।२०७।।

गाथार्थ - (जह) जैसे (अरदिभावेण) अरतिभाव से याने विना प्रीति से (मज्ज) मदिरा को (पिवमाणो पुरिसो) पीने वाला कोई पुरुष (ण मज्जदि) मतवाला नहीं होता (तहेव) उसी तरह (णाणी वि) सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) भी (दव्वुवभोगे) द्रव्य के उपभोग में (अरदो) रतिभाव न रखता हुआ (ण वज्झदि) कर्मों से नहीं बंधता है।

टीकार्थ - जह मज्जं पिवमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो जैसे कोई पुरुष व्याधि (रोग) का प्रतिकार करने के लिए मद्य में मद्य की प्रतिपक्षभूत औषधि डालकर मद्य को पीते हुए भी रतिभाव का अभाव होने से मतवाला नहीं होता है। दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण वज्झदि तहेव वैसे ही परमात्मतत्त्वज्ञानी (स्वानुभूति लेने वाला चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव पचेंद्रिय विषयभूत खान-पानादि द्रव्यों का उपभोग करते हुए भी स्वानुभवरहित वहिरात्म (मिथ्यात्व सासादन मिश्रगुणस्थानवर्ती) जीव की अपेक्षा से जितने-जितने अश में रागभाव नहीं करता है उतने-उतने अश से कर्म से नहीं बंधता है। जब हर्ष विषादादिरूप समस्त विकल्पजाल से रहित परमयोग (स्वानुभूति) लक्षणवाले भेदज्ञान के वल से सर्वथा वीतराग होता है तव सर्वथा कर्मों से बांधा नहीं जाता है। ऐसा वैराग्य शक्ति का कथन हुआ।

इस प्रकार से यथाक्रम से द्रव्यनिर्जरा, भावनिर्जरा, ज्ञानशक्ति और वैराग्यशक्ति के प्रतिपादनरूप से तात्पर्य कहने की मुख्यता से निर्जरा अधिकार में चार गाथायें पूर्ण हुईं।। २०६।।

अव, उस ही वैराग्यशक्ति के स्वरूप का वर्णन करते हैं -

गाथार्थ - (को वि) कोई (सम्यग्दृष्टि रागादिभाव के अभाव के कारण) (सेवतो वि) विषयों का सेवन करता हुआ भी (ण सेवदि) सेवन नहीं करता है और (अज्ञानी रागादिभाव के कारण) (असेवमाणो) उन्हें सेवन न करता हुआ भी (सेवगो) सेवन करनेवाला है। (कस्स वि) जैसे किसी पुरुष को ([illegible] सी कार्य के करने की चेष्टा तो है अर्थात् उस प्रकरण की सव क्रियाओं को करता है तो [illegible] या हुआ करता है (सो) अत वह (पायरणो त्ति य ण होदि) कार्य करनेवाला स्वामी है, [illegible] है।

जह मज्ज पिवमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो यथा कश्चित् पुरुषो व्याधिप्रतीकारनिमित्त मद्यमध्ये मद्यप्रतिपक्षभूतमौपध निक्षिप्य मद्य पिबन्नपि रतेरभावान्न माद्यति। **दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण वज्झदि तहेव** तथा **परमात्मतत्त्वज्ञानी** पचेंद्रियविषयभूताशनपानादिद्रव्योपभोगे सत्यपि यावता यावताशेन निर्विकारस्वसवित्तिशून्यवहिरात्मजीवापेक्षया रागभाव न करोति, तावता तावताशेन कर्मणा न वध्यते। यदा तु हर्षविषादादिरूपसमस्तविकल्पजालरहितपरमयोगलक्षणभेदज्ञानवलेन सर्वथा वीतरागो भवति। तदा सर्वथा न बध्यते इति वैराग्यशक्तिव्याख्यान गतम्। एव यथाक्रमेण द्रव्यनिर्जरभावनिर्जराज्ञानशक्तिवैराग्यशक्तिप्रतिपादनरूपेण निर्जराधिकारे तात्पर्यव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टय गतम्।।२०६।।

अथैतदेव वैराग्यशक्तिस्वरूप विवृणोति -

सेवतो वि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो को वि। (१९७)
पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होदि।।२०७।।

गाथार्थ - (**जह**) जैसे (**अरदिभावेण**) अरतिभाव से याने विना प्रीति से (**मज्ज**) मदिरा को (**पिवमाणो पुरिसो**) पीने वाला कोई पुरुप (**ण मज्जदि**) मतवाला नहीं होता (**तहेव**) उसी तरह (**णाणी वि**) सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) भी (**दव्वुवभोगे**) द्रव्य के उपभोग में (**अरदो**) रतिभाव न रखता हुआ (**ण वज्झदि**) कर्मों से नहीं वधता है।

टीकार्थ - **जह मज्ज पिवमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो** जैसे कोई पुरुष व्याधि (रोग) का प्रतिकार करने के लिए मद्य में मद्य की प्रतिपक्षभूत औषधि डालकर मद्य को पीते हुए भी रतिभाव का अभाव होने से मतवाला नहीं होता है। **दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण वज्झदि तहेव** वेसे ही **परमात्मतत्त्वज्ञानी** (स्वानुभूति लेने वाला चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव पचेंद्रिय विपयभूत खान-पानादि द्रव्यों का उपभोग करते हुए भी स्वानुभवरहित वहिरात्म (मिथ्यात्व सासादन मिश्रगुणस्थानवर्ती) जीव की अपेक्षा से जितने-जितने अश में रागभाव नहीं करता है उतने-उतने अश से कर्म से नहीं वधता है। जव हर्प विषादादिरूप समस्त विकल्पजाल से रहित परमयोग (स्वानुभूति) लक्षणवाले भेदज्ञान के वल से सर्वथा वीतराग होता है तब सर्वथा कर्मो से वाधा नहीं जाता हे। ऐसा वेराग्य शक्ति का कथन हुआ।

इस प्रकार से यथाक्रम से द्रव्यनिर्जरा, भावनिर्जरा, ज्ञानशक्ति और वेराग्यशक्ति के प्रतिपादनरूप से तात्पर्य कहने की मुख्यता से निर्जरा अधिकार में चार गाथायें पूर्ण हुईं।।२०६।।

अव, उस ही वैराग्यशक्ति के स्वरूप का वर्णन करते हैं -

गाथार्थ - (**को वि**) कोई (सम्यग्दृष्टि रागादिभाव के अभाव के कारण) (**सेवतो वि**) विपयों का सेवन करता हुआ भी (**ण सेवदि**) सेवन नहीं करता है और (अज्ञानी रागादिभाव के कारण) (**असेवमाणो**) उन्हें सेवन न करता हुआ भी (**सेवगो**) सेवन करनेवाला है। (**कस्स वि**) जेसे किसी पुरुष को (**पगरणचेट्ठा**) किसी कार्य के करने की चेप्टा तो हे अर्थात् उस प्रकरण की सब क्रियाओं को करता है तो भी किसी का कराया हुआ करता है (**सो**) अत वह (**पायरणो त्ति य ण होदि**) कार्य करनेवाला स्वामी है, ऐसा नहीं कहा जाता है।

सेवतो वि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो को वि निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानी जीव स्वकीयगुणस्थानयोग्याशन-पानादिपंचेंद्रियभोग सेवमानोऽपि सेवको न भवति। अन्य पुनरज्ञानी कश्चिद् रागादिसद्भावादसेवमानोऽपि सेवको भवति। अमुमेवार्थं दृष्टांतेन दृढयति। **पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होदि** यथा कस्यापि परगृहादागतस्य विवाहादिप्रकरणचेष्टा तावदस्ति, तथापि विवाहादिप्रकरणस्वामित्वाभावात् प्राकरणिको न भवति। अन्य पुन प्रकरणस्वामी नृत्यगीतादिप्रकरणव्यापारमकुर्वाणोऽपि प्रकरणरागसद्भावात् प्राकरणिको भवति। तथा परमतत्त्वज्ञानी सेवमानोऽप्यसेवको भवति। अज्ञानी जीवो रागादिसद्भावादसेवकोऽपि सेवक इति।।२०७।।

अथ सम्यग्दृष्टि स्वपरस्वरूपमेव विशेषेण जानाति-

पुग्गलकम्मं कोहो[1] तस्स विवागोदओ हवदि एसो। (१९९)
ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो दु अहमेक्को।।२०८।।

टीकार्थ - **सेवतो वि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो को वि** निर्विकार स्वसंवेदनज्ञानी (स्वानुभूति वाला जीव) स्वकीय (चतुर्थादि) गुणस्थानयोग्य खानपानादि पचेंद्रियभोग का सेवन करता हुआ भी सेवन करने वाला नहीं है। और दूसरा कोई अज्ञानी रागादि का सद्भाव होने से न सेवन करनेवाला होता हुआ भी सेवन करनेवाला है। उसी अर्थ को दृढ करने के लिए दृष्टांत से कहते हैं। **पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणोत्ति सो होदि** जैसे कि जिसका विवाहादि नहीं होना है अत वह विवाहादि प्रकरण का प्राकरणिक तो नहीं है, जैसा कि दूसरे घर से आया हुआ पाहुना आदि है, फिर भी वह उस विवाहादि का काम करता है, किन्तु जो प्रकरण स्वामी-प्राकरणिक है जिसका विवाहादि होना है वह गीत, नृत्य आदि कोई भी प्रकार का काम नहीं करता है, फिर भी उन (वैवाहिक) कामों के प्रति उसका राग होने से वही प्राकरणिक कहलाता है। वैसे ही **परमतत्त्वज्ञानी** (सम्यग्ज्ञानी-चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव विषय को सेवन करने वाला होकर भी रागभाव न होने से सेवन करनेवाला नहीं है। लेकिन अज्ञानी जीव रागादि का सद्भाव होने से सेवन करनेवाला न होकर भी विषय को सेवन करनेवाला है।।२०७।।

अब, कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि स्व-पर के स्वरूप को इस प्रकार विशेषरूप से जानता है -

गाथार्थ - (**एसो**) यह (**कोहो**) द्रव्य क्रोध (**पुग्गलकम्म**) पुद्गलकर्म है (**तस्स**) उसके (**विवागोदओ**) विपाक का उदय (**हवदि**) है (**एस दु**) यह तो (**मज्झ भावो**) मेरा भाव (**ण**) नहीं है (**अह दु**) मैं तो (**एक्को**) एक (**जाणगभावो**) ज्ञायकभाव स्वरूप हूँ।

टीकार्थ - **पुग्गलकम्म कोहो तस्स विवागोदओ हवदि एसो** पूर्वबद्ध पुद्गलकर्मरूप जो यह द्रव्यक्रोध जीव में रहता है, उसका विशिष्ट विपाक याने फलस्वरूप उदय है। वह शांत आत्मतत्त्व से भिन्न होने से यह अक्षमारूप भावक्रोध है। **ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो दु अहमेक्को** और वह मेरा भाव नहीं है क्योंकि मैं टंकोत्कीर्ण परमानंद ज्ञायक एक भाव हूँ।

---

१ पाठान्तर - रागो

पुग्गलकम्म कोहो तस्स विवागोदओ हवदि एसो पुद्गलकर्मरूपो योऽसौ द्रव्यक्रोधो जीवे पूर्ववद्धस्तिष्ठति तस्य विशिष्टपाको विपाक फलरूप उदयो भवति। स क ? शातात्मतत्त्वात्पृथग्भूत एप अक्षमारूपो भाव क्रोध। **ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो दु अहेमक्को** न वैष मम भाव। कस्मात् ? इति चेत्, टकोत्कीर्णपरमानद ज्ञायकेकभावोऽह यत।

किच, पुद्गलकर्मरूप क्रोध क्वास्ते ? भावरूप एव दृश्यते इति ? नैव। पुद्गलपिण्डरूपो द्रव्य क्रोधस्तदुदयजनितो यश्चाक्षमारूप स भावक्रोध। इति व्याख्यान पूर्वमेव कृत तिष्ठति। कथ ? इति चेत्, **पुग्गलपिंडो दव्व तस्सत्ती भावकम्म तु** इत्यादि। एवमेव च क्रोधपदपरिवर्तनेन मानमायालोभरागद्वेपमोहकर्मनोकर्ममनोवचन कायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसज्ञानि षोडशसूत्राणि व्याख्येयानि। तेनैव प्रकारेणान्यान्यपि, असख्येयलोकमात्रप्रमितानि विभावपरिणामस्थानानि वर्जनीयानीति।। २०८।।

अथ कथ तव स्वरूप न भवतीति पृष्टे सति भेदभावनारूपेणोत्तर ददाति-

कह एस तुज्झ ण हवदि विविहो कम्मोदयफलविवागो।
परदव्वाणुवओगो ण दु देहो हवदि अण्णाणी।। २०९।।

और विशेष कहते हैं कि -

शका - पुद्गलकर्मरूप क्रोध कहॉ है ? क्रोध तो भावरूप ही दिखाई देता है ?

समाधान - आप कहते हो वैसा नहीं है। पुद्गलपिडरूप द्रव्यक्रोध है, उसके उदय में जो अक्षमारूप भाव है वह भाव क्रोध है। ऐसा कथन पहले भी **'पुग्गलपिंडो दव्व तस्सत्ती भावकम्म तु'** इत्यादि कथन द्वारा किया गया है।

इसी प्रकार क्रोध के स्थान पर मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन और स्पर्शन नामक इन १६ प्रकार के पद वदल करके कथन करना, उसी प्रकार अन्य और भी असख्यात लोकमात्र प्रमाण विभाव परिणामों के पद परिवर्तन करके जानना चाहिये और वे विभाव भाव त्याग करने योग्य हैं।। २०८।।

अव, क्रोधादि तेरा स्वभाव कैसे नहीं है ? ऐसा पूछने पर भेदभावनारूप से उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(एस)** यह **(विविहो)** विविध **(कम्मोदयफलविवागो)** कर्मोदय के फल का विपाकरूप विभाव परिणाम **(तुज्झ)** तेरा स्वभाव **(कह ण हवदि)** कैसे नहीं है ? **(परदव्वाणुवओगो)** पर द्रव्य के उदय में उत्पन्न होने वाले **(अण्णाणी)** अज्ञानी-क्रोधादिभाव **(देहो दु)** और देह भी **(ण हवदि)** तेरा स्वभाव नहीं है।

टीकार्थ - **कह एस तुज्झ ण हवदि विविहो कम्मोदयफलविवागो** "यह विविध कर्मोदय के फल तेरा स्वभाव कैसे नहीं हे ?" ऐसा किसी के पूछने पर उत्तर देते हैं - **परदुव्वाणुवओगो** निर्विकार परमआल्हाद-एकलक्षणवाले स्वशुद्धात्मद्रव्य से भिन्न जो परद्रव्यरूप कर्म जीव में एकक्षेत्रावगाह रूप रहते हैं उनके उदय के समय जो औपाधिक स्फटिक की परउपाधिवाले भाव के समान क्रोधादिभाव ही केवल मेरा स्वरूप नहीं है, इतना ही नहीं, **ण दु देहो हवदि अण्णाणी** देह भी मेरा स्वरूप नहीं है यह स्पष्ट हे, क्योंकि वे जडस्वरूप अचेतन अज्ञानी हैं और में अनत ज्ञानादि गुणस्वरूप हूँ।। २०९।।

कह एस तुज्झ ण हवदि विविहो कम्मोदयफलविवागो कथमेष विविधकर्मोदयफलविपाकस्तवस्वरूप न भवतीति केनापि पृष्टे तत्रोत्तर ददाति। परदव्वाणुवओगो निर्विकारपरमाह्लादैकलक्षणस्वशुद्धात्मद्रव्यात्पृथग्भूतानि परद्रव्याणि यानि कर्माणि जीवे लग्नानि तिष्ठन्ति तेषामुपयोग उदयोऽय, औपाधिकस्फटिकस्य परोपाधिवत्। न केवल भावक्रोधादि मम स्वरूप न भवति, इति ण दु देहो हवदि अण्णाणी देहोऽपि मम न भवति हु स्फुट। कस्मादिति चेत्? अज्ञानी जडस्वरूपो यत कारणात्, अह पुन अनतज्ञानादिगुणस्वरूप इति।।२०९।।

अथ सम्यग्दृष्टि स्वस्वभाव जानन् रागादींश्च मुचन् नियमाज्ज्ञानवैराग्यसपन्नो भवति इति कथयति -

एव सम्मादिट्ठी अप्पाण मुणदि जाणगसहावं। (२००)
उदय कम्मविवाग च मुअदि तच्च वियाणतो।।२१०।।

एव सम्मादिट्ठि अप्पाण मुणदि जाणगसहाव एव पूर्वोक्तप्रकारेण सम्यग्दृष्टिर्जीव आत्मान जानाति। कथभूत ? टकोत्कीर्णपरमानदज्ञायकैकस्वभाव। उदय कम्मविवाग च मुअदि तच्च वियाणतो उदय पुनर्मम स्वरूप न भवति कर्मविपाकोऽयमिति मत्वा मुचति। कि कुर्वन् सन् ? नित्यानन्दैकस्वभाव परमात्मतत्त्व त्रिगुप्तिसमाधौ स्थित्वा जानन्निति।।२१०।।

अथ सम्यग्दृष्टि सामान्येन स्वपरस्वभावमनेकप्रकारेण जानाति -

उदयविवागो विविहो कम्माण वण्णिदो जिणवरेहि। (१९८)
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमेक्को।।२११।।

अब, सम्यग्दृष्टि स्वस्वभाव को जानता (अनुभवता) हुआ और रागादि को छोडता हुआ नियम से ज्ञान-वैराग्य सपन्न होता है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - (एव) इस तरह (सम्मादिट्ठी) सम्यग्दृष्टि-चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव (अप्पाण) अपने (जाणगसहाव) ज्ञायक स्वभाव को (मुणदि) अनुभवता है (च) और (तच्च) वस्तु के यथार्थ स्वरूप को (वियाणतो) जानता हुआ (उदय) कर्म के उदय को (कम्मविवाग) कर्म का विपाक जानकर उसे (मुअदि) छोडता है।

टीकार्थ - एव सम्मादिट्ठी अप्पाण मुणदि जाणगसहाव इस तरह पहले कहे हुए प्रकार से सम्यग्दृष्टि (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव) आत्मा को अनुभवता है।

शका - किस प्रकार के निज आत्मा को अनुभवता है

समाधान - टकोत्कीर्ण-परमानद-ज्ञायक-एक-स्वभाव स्वरूप निज आत्मा को अनुभवता है। उदय कम्मविवाग च मुअदि तच्च वियाणतो और उदय मेरा स्वरूप नहीं है, "यह कर्मविपाक है," ऐसा मानकर नित्यानद-एक स्वभावरूप परमात्मतत्त्व को त्रिगुप्तिरूपसमाधि (स्वानुभूति) में स्थित होकर अनुभवते हुए विकारी भाव छोडता है (विकारी भाव छूट जाते हैं)।।२१०।।

उदयविवागो विविहो कम्माण वण्णिदो जिणवरेहिं उदयविपाको विविधो नानाप्रकार कर्मणा सवधी वर्णित कथित, जिनवरै। ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहेमक्को ते कर्मोदयप्रकारा कर्मभेदा मम स्वभावा न भवति इति। कस्मात् ? इति चेत, टकोत्कीर्णपरमानदज्ञायकैकस्वभावोऽह यत कारणात् सम्यग्दृष्टि सामान्येन स्वपरस्वरूपावेव जानाति इति भणित। कथ सामान्य ? इति चेत्, क्रोधोऽह मानोऽहमित्यादि विवक्षा नास्तीति। तदपि कथमिति चेत् ? "विवक्षाया अभाव सामान्यमिति वचनात्" एव भेदभावनारूपेण ज्ञानवैराग्ययो सामान्यव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथापञ्चक गतम्। इति ऊर्ध्वं गाथादशकपर्यंत पुनरपि ज्ञानवैराग्यशक्त्योर्विशेषविवरण करोति।।२११।। तद्यथा -

रागी सम्यग्दृष्टिर्न भवतीति कथयति-

परमाणुमित्तय पि हु रागादीण तु विज्जदे जस्स। (२०१)
ण वि सो जाणदि अप्पाणय तु सव्वागमधरो वि।।२१२।।
अप्पाणमयाणतो अणप्पय चावि सो अयाणतो। (२०२)
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणतो।।२१३।।

अव, सम्यग्दृष्टि सामान्य से स्वस्वभाव को और परस्वभाव को अनेक प्रकार से जानता है-

गाथार्थ - (जिणवरेहि) जिनवरदेवों ने (कम्माण) कर्मों के (उदयविवागो) उदय के फल (विविहो) अनेक प्रकार के (वण्णिओ) कहे हैं (ते दु) वे तो (मज्झ) मेरे (सहावा) स्वभाव (ण) नहीं हैं (दु) लेकिन (अह) मैं (एक्को) एक (जाणगभावो) ज्ञायक भाव हूॅ।

टीकार्थ - **उदयविवागो विविहो कम्माण वण्णिदो जिणवरेहि** जिनवरदेवों ने कर्मो सवधी उदय के फल अनेक प्रकार के हैं, ऐसा कहा है। **ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमेक्को** वे कर्म और कर्मोदय के प्रकार मेरा स्वभाव नहीं हैं। क्योंकि मैं टकोत्कीर्ण-परमानद-ज्ञायक-एक स्वभाववाला हूॅ। इस कारण से सम्यग्दृष्टि सामान्य से स्वस्वभाव और परस्वभाव को जानता है, ऐसा कहा गया है।

शका - सामान्य याने कैसा ?

समाधान - "मैं क्रोध हूॅ, मैं मान हूॅ," इत्यादि विशेष की (पर्याय की) विवक्षा नहीं है।

शका - वह विवक्षा भी कैसे नहीं है?

समाधान - **"विवक्षा के अभाव को सामान्य कहते हैं"** ऐसा वचन है। इस प्रकार भेदभावनारूप से ज्ञान और वैराग्य के वारे में सामान्य व्याख्यान की मुख्यता से ५ गाथायें समाप्त हुई।

इसके आगे फिर से १० गाथाओं तक ज्ञान-वैराग्य शक्तियों का विशेष विवरण करते हैं।।२११।।

रागी जीव (मिथ्यात्व अनतानुबधीजनित राग करने वाला जीव) सम्यग्दृष्टि नहीं होता है, ऐसा कहते हैं-

परमाणुमित्तय पि हु रागादीण तु विज्जदे जस्स परमाणुमात्रमपि रागादीना तु विद्यते यस्य हृदये हु स्फुटम्। **ण वि सो जाणदि अप्पाणय तु सव्वागमधरो वि** स तु परमात्मतत्त्वज्ञानाभावात् शुद्धबुद्धैकस्वभाव परमात्मान न जानाति, नानुभवति। कथभूतोऽपि ? सर्वागमधरोऽपि सिद्धातसिधुपारगोऽपि। **अप्पाणमयाणतो अणप्पय चावि सो अयाणतो** स्वसवेदनज्ञानवलेन सहजानन्दैकस्वभाव शुद्धात्मानमजानन्, तथैवाभावयश्च शुद्धात्मनो भिन्न रागादिरूपमनात्मान चाजानन्। **कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे आयाणतो** स पुरुषो जीवाजीवस्वरूपमजानन् सन् कथ भवति सम्यग्दृष्टि ? न कथमपीति।

किच-रागी सम्यग्दृष्टिर्न भवतीति भणित भवद्भि । तर्हि चतुर्थपचमगुणस्थानवर्तिन तीर्थकरकुमारभरत सगररामपाडवादय सम्यग्दृष्टयो न भवन्ति ? इति। तन्न, मिथ्यादृष्ट्यपेक्षया त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीना वधाभावात् सरागसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। कथ इति चेत् ? चतुर्थगुणस्थानवर्तिना जीवाना अनतानुवधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वोदय-जनिताना पाषाणरेखादिसमानाना रागादीनामभावात्। पचमगुणस्थानवर्तिना पुनर्जीवाना अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभोदय-जनिताना भूमिरेखादिसमानाना रागादीनामभावात् इति पूर्वमेव भणितमास्ते। अत्र तु ग्रथे "पचमगुणस्थानादुपरितन गुणस्थानवर्तिना वीतरागसम्यग्दृष्टीना मुख्यवृत्या ग्रहण, सरागसम्यग्दृष्टीना गौणवृत्येति व्याख्यान सम्यग्दृष्टिव्याख्यानकाले सर्वत्र तात्पर्येण ज्ञातव्यम्"।।२१२, २१३।।

गाथार्थ - **(हु)** वास्तव में **(जस्स)** जिस जीव के **(रागादीण तु परमाणुमित्तय पि)** परमाणुमात्र-लेशमात्र भी रागादिक **(विज्जदे)** वर्तता हे **(सो)** वह जीव **(सव्वागमधरो वि)** भले ही सर्व आगम का धारी (समस्त आगमों को पढा हुआ) हो तथापि **(अप्पाणय तु)** आत्मा को **(ण वि जाणदि)** नहीं जानता।

(च) और **(अप्पाण)** आत्मा को **(अयाणतो)** नहीं जानता हुआ **(सो)** वह **(अणप्पय चावि)** अनात्मा को (पर को) भी **(अयाणातो)** नहीं जानता। **(जीवाजीवे)** इस प्रकार जो जीव ओर अजीव को **(अयाणतो)** नहीं जानता वह **(सम्मदिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि **(कह होदि)** कैसे हो सकता है ?

टीकार्थ - **परमाणुमित्तिय पि हु रागादीण तु विज्जदे जस्स** परमाणु मात्र भी राग का सद्भाव जिसके हृदय में स्पष्ट हे (ध्रुवस्वभाव में यदि परमाणु मात्र भी राग माना जाय तो) **ण वि सो जाणदि अप्पाणय तु सव्वागमधरो वि** वह परमात्म तत्त्वज्ञान से रहित होने से शुद्धवुन्द्र-एक-स्वभावमय परमात्मा को नहीं जानता, अनुभव नहीं करता है।

शका - कैसा होता हुआ भी वह निज परमात्मा को नहीं अनुभवता है ?

समाधान - सब आगम का पाठी सिध्दातसिन्धुपारग होते हुये भी वह निज शुद्धात्मा को नहीं जानता हे, नहीं अनुभवता है।

अप्पाणमयाणतो अणप्पय चावि सो अयाणतो स्वसवेदनज्ञानवल से (शुद्धात्मानुभूति से) सहजानद-एक-स्वभावमय शुद्धात्मा को नहीं जाननेवाला तथा उसी प्रकार न अनुभव करनेवाला शुद्धात्मा से भिन्न रागादिरूप अनात्मा को भी न जाननेवाला **कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणतो** वह पुरुष जीव और अजीव के स्वरूप को न जाननेवाला होने से कैसे सम्यग्दृष्टि हो सकता है ?

अथ भाविन भोग ज्ञानी न काक्षतीति कथयति-

जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उभय। (२१६)
त जाणगो दु णाणी उभय पि ण कखदि कयावि।।२१४।।

जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उभय योऽसौ रागादिविकल्प कर्ता वेदयत्यनुभवति यस्तु सातोदय कर्मतापन्न वेद्यते तेन रागादिविकल्पेन, अनुभूयते। तदुभयमपि अर्थपर्यायापेक्षया समय समय प्रति विनश्वर। **त जाणगो दु णाणी उभय पि ण कखदि कयावि** तदुभयमपि वेद्यवेदकरूप वर्तमान भाविन च विनश्वर जानन् सन् तत्त्वज्ञानी नाकाक्षति न वाछति कदाचिदपि।।२१४।।

वस्तु स्वरूप को न जाननेवाला कभी भी सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाला) नहीं होता है।

कुछ और विशेष कहते हैं -

शका - रागी जीव सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाले) नहीं होते हैं,यदि आप ऐसा कहते हो तो, चतुर्थ पॅचम गुणस्थानवर्ती तीर्थंकर, भरत, सगर, राम और पाडव आदि कुमार अवस्था में सम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं?

समाधान - ऐसा कहना ठीक नहीं है। मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से ४३ प्रकृतियों के वध का अभाव होने से सराग सम्यग्दृष्टि हैं।

वे सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाले) कैसे हो सकते हैं? यदि ऐसी शका होगी तो-चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवों को अनतानुवधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व के उदय में होने वाले **पाषाण रेखादि के समान रागादि का अभाव होने से** वे चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्दृष्टि, शुद्धात्मानुभूति वाले होते हैं।

और पचमगुणस्थानवर्ती जीवों को अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ के उदय में होने वाले **भूमि रेखादि के समान रागादि का अभाव होने से** पचमगुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्दृष्टि, शुद्धात्मानुभूतिवाले हैं। ऐसा पहले भी कह दिया है।

इस ग्रथ में पचमगुणस्थान से ऊपर के गुणस्थानवर्ती वीतराग सम्यग्दृष्टियो का मुख्यवृत्ति से और सराग सम्यग्दृष्टियों का (चतुर्थगुणस्थानवालों का) गौणवृत्ति से कथन ग्रहण करना, इस तरह सम्यग्दृष्टि के व्याख्यानकाल में सर्वत्र तात्पर्य जानना योग्य है, (याने जाति अपेक्षा से चतुर्थगुणस्थानसहित ऊपर के गुणस्थानवाले जीव सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाले) हैं, ऐसा जानना योग्य है)।।२१२,२१३।।

अव सम्यग्ज्ञानी आगामी भोगों की इच्छा नहीं करता है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(जो)** जो **(वेददि)** (अनुभव करता है ऐसा) अनुभव करनेवाला भाव अर्थात् वेदक भाव और जो **(वेदिज्जदि)** जो अनुभव किया जाता है - ऐसा वेद्यभाव **(उभय)** ये दोनों भाव अर्थपर्याय की अपेक्षा **(समये समये)** समय-समय में **(विणस्सदे)** नष्ट हो जाते हैं **(त)** इसलिये**(णाणी)** सम्यग्ज्ञानी **(जाणगो दु)** दोनों भावों का ज्ञायक ही है **(उभय पि)** इन दोनों भावों की भी **(कयावि)** कदापि **(ण कखदि)** आकाक्षा नहीं करता है।

अथ, तथैवापध्यानरूपाणि निष्प्रयोजनवधनिमित्तानि शरीरविषये भोगनिमित्तानि च रागाद्यध्यवसानानि परमात्मतत्त्ववेदी न वाछति, इति प्रतिपादयति-

बधुवभोगणिमित्त[1] अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स। (२१७)
ससारदेहविसएसु णेव उप्पज्जदे रागो।। २१५।।

बधुवभोगणिमित्त अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स णेव उप्पज्जदे रागो स्वसवेदनज्ञानिनो जीवस्य रागाद्युदयरूपेषु अध्यवसानेषु बधनिमित्त भोगनिमित्त वा नैवोत्पद्यते राग । कथभूतेष्वध्यवसानेषु ? **ससारदेहविसएसु** निष्प्रयोजन-वधनिमित्तेषु ससारविषयेषु भोगनिमित्तेषु देहविषयेषु वा। इदमत्र तात्पर्य भोगनिमित्त स्तोकमेव पाप करोत्यय जीव । निष्प्रयोजनापध्यानेन बहुतर करोति शालिमत्स्यवत्। तथा चोक्तमपध्यानलक्षण-

"बधबधच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादे आध्यानमपध्यान शासति जिनशासने विशदा "[2]

इति अपध्यानेन कर्म बध्नाति तदप्युक्तमास्ते

"सकल्पकल्पतरुसश्रयणात्त्वदीय चेतो निमज्जति मनोरथसागरेऽस्मिन्।
तत्रार्थतस्त व चकास्ति न किचनापि पक्ष पर भवसि कल्मषसश्रयस्य।।१।।
दौर्विध्यदग्धमनसोऽन्तरूपात्तभुक्तेश्चित्त यथोल्लसति ते स्फुरितान्तरगम्।
धाम्नि स्फुरेद्यदि तथा परमात्मसज्ञे कौतुस्कुती तव भवेद्विफला प्रसूति ।।२।।[3] - आचारशास्त्रे भणित
"कखदि कलुसिदभूदो दु कामभोगेहि मुच्छिदो सतो। णय भुजतो भोगे बधदि भावेण कम्माणि"।।

इति ज्ञात्वा, अपध्यान त्यक्त्वा च शुद्धात्मस्वरूपे स्थातव्यमिति भावार्थ ।।२१५।।

टीकार्थ - **जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उभय** जो कोई रागादि विकल्प है वह वेदन करनेवाला, अनुभव करनेवाला कर्ता है और जो साता के उदय में प्राप्त होनेवाला भाव रागादि विकल्प रूप से अनुभव किया जाता है, वे दोनों भी अर्थपर्याय की अपेक्षा से अपने-अपने समय में होकर नष्ट हो जाते हैं। **त जाणगो दु णाणी उभयपि ण कखदि कयावि** इसीलिए वर्तमान में और आगामी काल में उन दोनों वेद्य-वेदकभावों को नश्वर जानकर सम्यज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव उनकी वाछा अथवा काक्षा कदापि नहीं करता है।।२१४।।

अब उसी तरह अपध्यानरूप, निष्प्रयोजन वध को कारण होनेवाले और शरीर के बारे में भोग का कारण होनेवाले रागादि अध्यवसान भावों को **परमात्म तत्त्ववेदी** (स्वानुभूतिवाला) जीव नहीं चाहता है, इसका प्रतिपादन करते हैं -

गाथार्थ - **(बधुवभोगणिमित्त)** वध और उपभोग के निमित्त जो **(अज्झवसाणोदएसु)** अध्यवसान के उदय हैं वे **(ससारदेहविसएसु)** ससारविषयक और देहविषयक हैं उनमें **(णाणिस्स)** ज्ञानी को **(रागो)** राग **(णेव उप्पजदे)** ही नहीं उत्पन्न होता।

---

[1] पाठान्तर - वधुवभोगणिमित्ते   २ रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक ७८   ३ मूलाचार - अ २, गाथा ८७

अथ मिथ्यात्वरागादिरूपमपध्यान मम परिग्रहो न भवति, इति पुनरपि भेदज्ञानशक्तिं वैराग्यशक्ति च प्रकटयति-

मज्झ परिग्गहो जदि तदो अहमजीवद तु गच्छेज्ज।२०८
णादेव अह जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ।।२१६।।

मज्झ परिग्गहो जदि तदो अहमजीवद तु गच्छेज्ज सहजशुद्धकेवलज्ञानदर्शनस्वभावस्य मम यदि मिथ्यात्वरागादिक परद्रव्य परिग्रहो भवति ततोऽहमजीवत्व जडत्व गच्छामि। न चाह अजीवो भवामि। **णादेव अह जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ** परमात्मज्ञानपदमेवाह यस्मात्तत परद्रव्य मम परिग्रहो न भवतीत्यर्थ ।।२१६।।

टीकार्थ - **बधुवभोगणिमित्त अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स णेव उपज्जदे रागो** स्वसवेदनज्ञानी (स्वानुभूतिवाले) जीवको रागादि उदयरूप अध्यवसानों में बधनिमित्तरूप अथवा भोगनिमित्तरूप राग उत्पन्न ही नहीं होता है।

शका - किस प्रकार के अध्यवसानों में चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव को राग उत्पन्न नहीं होता है ?

समाधान - **ससारदेहविसएसु** निष्प्रयोजन बध के निमित्तों में-ससार के विषयों में अथवा भोगनिमित्तों में अथवा देह के विषयों में चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती स्वानुभुतिवाले जीव को राग उत्पन्न नहीं होता है।

इसका तात्पर्य यह है कि, यह जीव भोगनिमित्त थोडा ही पाप करता है। तुदुलमत्स्यके समान यह अज्ञानी-मिथ्यात्वी जीव निष्प्रयोजनरूप अपध्यान से वहुत पाप करता है। उसी प्रकार आगम में (र क ७८) अपध्यान का लक्षण कहा है कि, **बधबधादि** अर्थात् किसी प्रकार के द्वेष से अथवा राग से दूसरों के स्त्री-पुत्रादिक का वाधना, मार डालना, छेदना आदि का चितन करना, उसको जिनशासन में ज्ञानी लोगों ने **अपध्यान** कहा है। इस अपध्यान से कर्म का बध करता है। और भी जिनागम में कहा है कि **"सकल्पादि"** अर्थात् अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्पों का आश्रय करने से तेरा चित्त इच्छारूपी सागर में निमग्न रहता है उससे तेरा कोई भी कार्य (प्रयोजन) सिद्ध नहीं होता है, किन्तु पापों का ही वध होता है। **दौर्विध्यादि** अर्थात् दुर्भाग्य से भोगों के विषय में लालायित होकर तेरा चित्त जैसे दौड-धूप करता है वैसे ही यदि अपने परमात्मस्वभाव में लग जायेगा तो तेरे यह विकल्पमय ससार की विफलता प्रकट होगी (याने तेरा ससार नष्ट हो जायेगा)।

इसी प्रकार मूल आचारशास्त्र में लिखा है **"कखदि इत्यादि"** अर्थात् इन दुष्ट काम-भोगों की वासनाओं में फसा हुआ मनुष्य का मलिन चित्त नानाप्रकार की इच्छायें करता है, उससे भोगों को न भोगता हुआ भी अपने इस दुर्भाव के द्वारा कर्मवध करता है। ऐसा जानकर और अपध्यान का त्यागकर शुद्धात्म **स्वभाव का ध्यान करना चाहिये,** ऐसा भावार्थ है।।२१५।।

अव, मिथ्यात्व रागादिरूप अपध्यान मेरा परिग्रह नहीं है, इस तरह फिर से **भेदज्ञानशक्ति** और **वैराग्यशक्ति** को प्रकट करते हैं -

अथ किं तत् परमात्मपदमिति पृच्छति-

आदम्हि दव्वभावे अथिरे[1] मोत्तूण गिण्ह तव[2] णियद। (२०३)
थिरमेगमिम भाव उवलब्भत सहावेण ।।२१७।।

आदम्हि दव्वभावे अथिरे मोत्तूण आत्मद्रव्येऽधिकरणभूते, द्रव्यकर्माणि भावकर्माणि च यानि तिष्ठति तानि विनश्वराणि, इति विज्ञाय मुक्त्वा **गिण्ह** हे भव्य! गृहाण स्वीकुरु। कम् ? कर्मतापन्नम्। **तव णियद थिरमेगमिम भाव उवलब्भत सहावेण** भाव आत्मपदार्थम्। कथभूतम् ? तव सवधि स्वरूपम्। नियत निश्चितम्। पुनरपि कथभूतम् ? **थिर** स्थिर, अविनश्वरम्। **एक** असहायम्। **इम** प्रत्यक्षीभूतम्। पुनरपि किं विशिष्टम्? उपलभ्यमानमनुभूयमानम्। केन कृत्वा ? परमात्मसुखसवित्तिरूपस्वसवेदनज्ञानस्वभावेनेति।।२१७।।

गाथार्थ - **(जदि)** यदि **(परिग्गहो)** परिग्रह-परद्रव्य **(मज्झ)** मेरा हो **(तदो तु)** तब तो **(अहं)** मैं **(अजीवद)** अजीवत्व को **(गच्छेज्ज)** प्राप्त हो जाऊँगा **(जह्मा)** जिस कारण से **(अह)** मैं **(णादेव)** ज्ञाता स्वभाववाला ही हूँ **(तह्मा)** इस कारण **(परिग्गहो)** परिग्रह **(मज्झ ण)** मेरा नहीं है।

टीकार्थ - यदि सहज शुद्ध केवल ज्ञान-दर्शन स्वभाव वाले मेरा मिथ्यात्व रागादिक परद्रव्य रूप परिग्रह है तो मैं अजीवत्व-जडत्व को प्राप्त होता हूँ। लेकिन मैं अजीव नहीं हूँ, परमात्मज्ञान पदवाला हूँ, इसलिये परद्रव्य मेरा परिग्रह नहीं है, ऐसा भावार्थ है।।२१६।।

अब, वह परमात्मपद क्या है? ऐसा पूछते हैं, तब उसका उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(अथिरे दव्वभावे)** अनित्य द्रव्यभावरूप सभी भावों को **(मोत्तूण)** छोडकर **(आदम्हि)** आत्मा में **(तव)** तेरा **(णियद)** निश्चित स्वभाव**(थिरमेग)** स्थिर एक **(सहावेण)** स्वभाव से ही **(उवलब्भत)** ग्रहण करने योग्य **(इम)** इस प्रत्यक्ष अनुभवगोचर **(भाव)** चैतन्य स्वभाव को **(गिण्ह)** तू ग्रहण कर (अनुभव कर)।

टीकार्थ - आत्मद्रव्य के अधिकरणभूत में जो द्रव्य कर्म और भाव कर्म हैं वे नश्वर अनित्य हैं, ऐसा जानकर उन्हें छोडकर हे भव्य! अपने नियत आत्मस्वभाव को ग्रहण कर।

शका - वह नियत आत्मस्वभाव कैसा है?

समाधान - वह नियत आत्मस्वभाव स्थिर-अविनश्वर, एक-असहाय(स्वतत्र) प्रत्यक्षीभूत है।

शका - और भी क्या विशेषता है उसकी ?

समाधान - परमात्मसुख सवित्तिरूप स्वसवेदनज्ञान स्वभाव से प्रत्यक्ष उपलब्ध होनेवाला प्रत्यक्ष अनुभूति में आनेवाला वह अविनश्वर, नियत, स्थिर आत्मस्वभाव है।।२१७।।

अब, सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) परद्रव्य को ग्रहण नहीं करता है, इस भेदभावना को कहते हैं -

---

१ पाठान्तर - अपदे । २ पाठान्तर - तह ।

अथ ज्ञानी परद्रव्य न गृहणातीति भेदभावना प्रतिपादयति-

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इद हवदि दव्व। (२०७)
अप्पाणमप्पणो परिग्गह तु णियद वियाणतो ।।२१८।।

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्व मम इद हवदि दव्व परद्रव्य मम भवतीति नाम स्फुटमहो वा को ब्रूयात्? वुधो ज्ञानी, न कोऽपि। कि कुर्वन् ? **अप्पाणमप्पणो परिग्गह तु णियद वियाणतो** चिदानन्दैकस्वभाव-शुद्धात्मानमेव, आत्मन परिग्रह विजानन् नियत निश्चितमिति।।२१८।।

अथाय च मे निश्चय, देहरागादि परद्रव्य मम परिग्रहो न भवतीति भेदज्ञान निरूपयति-

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलय। (२०९)
जम्हा तम्हा गच्छदु तहावि ण परिग्गहो मज्झ ।।२१९।।

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलय छिद्यता वा द्विधा भवतु, भिद्यता वा छिद्रीभवतु, नीयता वा केनचित्। अथवा विप्रलय विनाश गच्छतु, एवमेव **जह्मा तह्मा गच्छदु तहावि ण परिग्गहो मज्झ** अन्यस्मात् यस्मात् तस्मात् कारणाद्वा गच्छतु तथापि शरीर मम परिग्रहो न भवति। कस्मात् ? इति चेत्, टकोत्कीर्णपरमानदज्ञायकैकस्वभावोऽह, यत कारणात् अय च मे निश्चय ।।२१९।।

गाथार्थ - **(अप्पाण)** अपनी आत्मा को ही **(णियद)** निश्चितरूप से **(अप्पणो)** अपना **(परिग्गह तु)** परिग्रह **(वियाणतो)** जानते-अनुभवते हुए **(को णाम बुहो)** कौन ज्ञानी पुरुष **(भणिज्ज)** कहेगा कि **(इद परदव्व)** यह परद्रव्य**(मम दव्व)** मेरा द्रव्य **(हवदि)** है।

टीकार्थ - कौन ज्ञानी पुरुष "परद्रव्य मेरा है," ऐसा कहेगा ? अर्थात् कोई भी ज्ञानी "यह परद्रव्य मेरा है," ऐसा नहीं कहेगा।

शका - क्या करनेवाला परद्रव्य को मेरा नहीं कहेगा ?

समाधान - नियत-चिदानद-एक-स्वभाव-शुद्धात्मा को ही अपना परिग्रह जाननेवाला परद्रव्य को अपना नहीं कहेगा।।२१८।।

अव, और यह मेरा निश्चय है कि देह रागादि परद्रव्य मेरा परिग्रह नहीं है। इस भेदज्ञान का कथन करते हैं-

गाथार्थ - **(छिज्जदु वा)** चाहे छिद जावो **(भिज्जदु वा)** चाहे भिद जावो **(णिज्जदु वा)** चाहे कोई ले जावो **(अहव)** अथवा **(विप्पलय जादु)** नष्ट हो जावो **(जम्हा तम्हा)** चाहे जिस कारण से **(गच्छदु)** चला जावो **(तहावि)** तथापि **(परिग्गहो)** परिग्रह **(मज्झ ण)** मेरा नहीं है।

टीकार्थ - चाहे शरीरादि छिद जावे, दो टुकडे हो जावे, चाहे यह भिद जावे याने नाना छेदवाला वन जावे, इसे कोई कहीं ले जावे अथवा नष्ट हो जावे। इस प्रकार ही दूसरे किसी कारण से कुछ भी हो जावे तथापि शरीर मेरा परिग्रह नहीं है क्योंकि मैं टकोत्कीर्ण परमानद ज्ञायक स्वाभाववाला हूँ। यह मेरा निश्चय है।।२१९।।

अथात्मसुखे सतोष दर्शयति-

एदम्हि रदो णिच्च सतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि। (२०६)
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह[1] उत्तम सोक्ख।।२२०।।

एदम्हि रदो णिच्च सतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि एदेण होहि तित्तो हे भव्य ! पचेंद्रियसुखनिवृत्ति कृत्वा निर्विकल्पयोगबलेन स्वाभाविकपरमात्मसुखे रतो भव, सतुष्टो भव, तृप्तो भव नित्य सर्वकालम् **तुह होहदि उत्तम सोक्ख** ततस्तस्मादात्मसुखानुभवनात् तवोत्तममक्षय मोक्षसुख भविष्यति।।२२०।।

अथ मतिश्रुतावधिमन पर्ययकेवलज्ञानाभेदरूप परमार्थसज्ञ मोक्षकारणभूत यत्परमात्मपद तत्समस्तहर्ष विषादादिविकल्पजालरहित **परमयोगाभ्यासादेवात्मानुभवति**, इति प्रतिपादयति -

आभिणिसुदोहिमणकेवल च त होदि एक्कमेव पद। (२०४)
सो एसो परमट्ठो ज लहिदुं णिव्वुदि जादि।।२२१।।

आत्मसुख में सतोष है, ऐसा दिखाते हैं-

गाथार्थ - हे भव्य जीव ! **(एदम्हि)** इस ज्ञान में ही तू **(णिच्च)** सदाकाल **(रदो)** तल्लीन होकर रह **(एदम्हि)** इस ज्ञान में ही तू **(णिच्च)** नित्य **(सतुट्ठो)** सतुष्ट **(होहि)** हो **(एदेण)** इस ज्ञान से ही तू **(तित्तो होहि)** तृप्त रह, इससे **(तुह)** तुझे **(उत्तम सोक्ख)** उत्तम सुख **(होहदि)** होगा।

टीकार्थ - हे भव्य ! पचेंद्रिय सुख से निवृत्त होकर निर्विकल्प योगवल से (स्वानुभूति के बल से) स्वाभाविक परमात्मसुख में नित्य रत रह, सतुष्ट रह, तृप्त हो। इस आत्मानुभव के सुख की अनुभूति से तुझे उत्तम अक्षय मोक्षसुख होगा।।२२०।।

अब, परमार्थरूप मोक्ष के कारणभूत जो परमात्मपद है, उसमें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान भेद नहीं हैं, वह परमात्मपद हर्ष-विषादादि सभी प्रकार के विकल्पजाल से रहित है। उस परम स्वभाव को यह आत्मा परमयोगाभ्यास (स्वानुभूति) से ही अनुभव करता है, ऐसा कहते हैं।

गाथार्थ - **(आभिणिसुदोहिमणकेवल च)** मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान **(त एक्कमेवपद होदि)** ये एक ज्ञान के ही भेद हैं, वे ज्ञान पद को ही प्राप्त हैं, सभी एक ज्ञान नाम से कहे जाते हैं **(सो एसो परमट्ठो)** सो यह शुद्धनय का विषय स्वरूप ज्ञान सामान्य है इसलिये यही परमार्थ है **(ज लहिदु)** जिसको पाकर आत्मा **(णिव्वुदिं)** मोक्ष पद को **(जादि)** प्राप्त होता है।

टीकार्थ - जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान के नाम से भेदरूप हैं तो भी वे अभेदवृत्ति से-निश्चयनय से एक ही पद हैं, किंतु जैसे मेघों के द्वारा आवरण होने से तारतम्य के भेद से सूरज के प्रकाश में भेद हो जाते हैं, वैसे ही मतिज्ञानावरणादि भेद कर्मवश से उत्पन्न हुए मतिश्रुतज्ञानादि भेद हैं। लोक प्रसिद्ध यह पाँच ज्ञान का अभेदरूप परमार्थ ज्ञानस्वभाव है। उस परमार्थ ज्ञान स्वभाव को प्राप्त कर (अनुभव कर) जीव निवृत्ति को (मुक्ति को-मोक्ष को) पाता है। यह भावार्थ है।

---

[1] पाठान्तर - तो

आभिणिसुदोहिमणकेवल च त होदि एक्कमेव पद मतिश्रुतावधिमन पर्ययकेवलज्ञानाभेदरूप यत्तन्निश्चयेन, एकमेव पद। पर कि तु यथादित्यस्य मेघावरणतारतम्यवशेन प्रकाशभेदा भवति। तथा मतिज्ञानावरणादिभेदकर्मवशेन मतिश्रुतज्ञानादिभेदभिन्न जातम्। **सो एसो परमट्ठो ज लहिदु णिव्वुदि जादि** स एष लोकप्रसिद्ध पचज्ञानाभेदरूप परमार्थ, य परमार्थ लब्ध्वा जीवो निर्वृति याति लभत इत्यर्थ। एव ज्ञानशक्तिवैराग्यशक्तिविशेषविवरणरूपेण सूत्रदशक गतम्।।२२१।।

अत ऊर्ध्वं गाथाष्टकपर्यंत तस्यैव परमात्मपदस्य प्रकाशको योऽसौ ज्ञानगुण, तस्य सामान्यविवरणकरोति। तद्यथा-

अथ मत्यादिपचज्ञानाभेदरूप साक्षान्मोक्षकारणभूत यत्परमात्मपद, तत्पद शुद्धात्मानुभूतिशून्य व्रततपश्चरणादि कायक्लेश कुर्वाणा अपि स्वसवेदनज्ञानगुणेन विना न लभते इति कथयति-

णाणगुणेण विहीणा एद तु पद बहूवि ण लहते। (२०५)
त गिण्ह सुपदमेदं[1] जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्ख।।२२२।।

णाणगुणेण विहीणा एद तु पद बहूवि ण लहते निर्विकारपरमात्मतत्त्वोपलब्धिलक्षणज्ञानगुणेन विहीना रहिता पुरुषा बहवोऽपि शुद्धात्मोपादेयसवित्तिरहित दुर्धरकायक्लेशादितपश्चरण कुर्वाणा अपि मत्यादिपचज्ञानाभेदरूप साक्षान्मोक्षकारण स्वसवेद्य शुद्धात्मसवित्तिलक्षणमिद पद न लभते। **त गिण्ह सुपदमेद जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्ख** हे भव्य! तत्पद गृहाण यदीच्छसि कर्मपरिमोक्षमिति।।२२२।।

इस प्रकार ज्ञानशक्ति और वैराग्यशक्ति इनका विशेष कथन करने वाली १० गाथायें पूर्ण हुई।।२२१।।

अब इसके आगे आठ गाथाओं तक उस ही परमात्म पद का प्रकाशक जो ज्ञानगुण है, उस ज्ञान गुण का सामान्य विवरण करते हैं। अब मत्यादि पॉच ज्ञान का अभेदरूप साक्षात् मोक्षकारणभूत जो परमात्मपद है, वह परमात्मपद शुद्धात्मानुभूतिशून्य व्रत-तपश्चरण आदि कायक्लेश करने से भी स्वसवेदनज्ञानगुण के बिना प्राप्त नहीं होता है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(णाणगुणेण विहीणा बहूवि)** ज्ञान गुण से रहित बहुत प्रकार के व्रत-तपश्चरणादिक करनेवाले लोग भी **(एद पद तु)** इस ज्ञानरूप **(स्वसवेदनज्ञानरूप)** पद को **(ण लहते)** प्राप्त नहीं करते हैं, इसलिये **(जदि)** यदि **(कम्मपरिमोक्ख)** तू कर्मो से मुक्त **(इच्छसि)** होना चाहता है तो **(त एद सुपद)** उस सुपदरूप ध्रुव ज्ञान स्वभाव को **(गिण्ह)** ग्रहण कर **(स्वभाव का अनुभव कर)**।

टीकार्थ - निर्विकार परमात्म तत्त्वोपलब्धि लक्षणवाले ज्ञानगुण से रहित बहुत प्रकार के पुरुष शुद्धात्मस्वभाव की अनुभूति से रहित दुर्धर कायक्लेशादि तपश्चरण करने से भी मत्यादि पाँच ज्ञान का अभेदरूप-साक्षात् मोक्षकारणभूत स्वानुभव करने के योग्य-शुद्धात्मस्वभाव की अनुभूति लक्षणवाला यह पद प्राप्त नहीं करते हैं। इसलिये हे भव्य! यदि तू कर्मो से मुक्त होना चाहता है तो यह सुपद याने अपने शुद्धात्मस्वभाव को ग्रहण कर।।२२२।।

---

[1] पाठान्तर - णियदमेद

अथ विशेषपरिग्रहत्यागरूपेण तमेव ज्ञानगुण विवृणोति-

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्मं। (२१०)
अपिरग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि।। २२३।।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्म अपरिग्रहो भणित। कोऽसौ ? अनिच्छ। तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य वहिर्द्रव्येष्विच्छा वाछा मोहो नास्ति। तेन कारणेन **स्वसवेदनज्ञानी** शुद्धोपयोगरूप निश्चय-धर्म विहाय शुभोपयोगरूप धर्मं पुण्य नेच्छति। **अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि** तत कारणात्पुण्यरूप-धर्मस्यापरिग्रह सन् पुण्यमिद मम स्वरूप न भवतीति ज्ञात्वा तद्रूपेणापरिणमन् अतन्मयो भवन् दर्पणे विम्वस्येव ज्ञायक एव भवति।। २२३।।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदि अधम्म। (२११)
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि।। २२४।।

अब, विशेष परिग्रह के त्यागरूप से उस ही ज्ञानगुण का वर्णन करते हैं-

गाथार्थ - **(अणिच्छो)** इच्छा न करने वाला जीव **(अपरिग्गहो)** परिग्रह से रहित है ऐसा **(भणिदो)** कहा गया है **(य)** और **(णाणी)** सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव) **(धम्म)** धर्म की - पुण्य की **(णिच्छदे)** इच्छा नहीं करता है **(तेण)** इसलिये **(धम्मस्स अपरिग्गहो सो)** धर्म के अपरिग्रहवाला वह सम्यग्ज्ञानी **(जाणगो दु)** ज्ञायक ही **(होदि)** है।

टीकार्थ - जिसको इच्छा नहीं है वह अपरिग्रहवाला है, ऐसा कहा गया है। जिसको वाह्य द्रव्य की वाछा-मोह नहीं है उसको परिग्रह नहीं है, इसलिये **स्वसवेदनज्ञानी** शुद्धोपयोगरूप निश्चयधर्म (स्वानुभव) को छोडकर शुभोपयोगरूप धर्म याने पुण्य की इच्छा नहीं करता है (मोक्ष या स्वानुभव की भी इच्छा नहीं है।) इस कारण से पुण्यरूप धर्म का (अथवा शुद्धोपयोगरूप अनित्य पर्याय का भी) अपरिग्रहवाला होकर "यह पुण्य मेरा स्वभाव नहीं है" यह जानकर उस रूप से परिणमन न करके (याने पर्याय के विषय में तन्मय न होकर) उसका ज्ञायक ही है, जैसे **दर्पण में प्रतिबिम्ब होते हुये भी (निश्चयनय से) दर्पण स्वच्छ ही है**।। २२३।।

गाथार्थ - **(अणिच्छो)** इच्छा न करने वाला जीव **(अपरिग्गहो)** परिग्रह से रहित है ऐसा **(भणिदो)** कहा गया है **(य)** और **(णाणी)** सम्यग्ज्ञानी **(अधम्म)** अधर्म की-पापकी **(णिच्छदि)** इच्छा नहीं करता है **(तेण)** इसलिये **(अधम्मस्स अपरिग्गहो सो)** अधर्म का अपरिग्रह वाला वह सम्यग्ज्ञानी **(जाणगो दु)** अधर्म का ज्ञायक ही **(होदि)** है।

टीकार्थ - जिसको बाह्य द्रव्य की वाछा नहीं है, उसको परिग्रह नहीं है, याने उसको अपरिग्रही कहते हैं। इसलिये **तत्त्वज्ञानी** (सम्यग्ज्ञानी) विषय-कषायरूप अधर्म की याने पाप की इच्छा नहीं करता है। इस ही कारण से विषय-कषायरूप अधर्म का अपरिग्रही होकर 'यह पाप मेरा स्वभाव नहीं है' ऐसा जानकर उस रूप से न परिणमन करते हुए उसका ज्ञायक ही है, जैसे **दर्पण में प्रतिबिम्ब होते हुये भी दर्पण स्वच्छ ही है।**

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदि अधम्म अपरिग्रहो भणित । स क ? अनिच्छ । तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य बहिर्द्रव्येपु इच्छा काक्षा नास्ति। तेन कारणेन **तत्त्वज्ञानी** विषयकषायरूपम-धर्म पाप नेच्छति। **अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि** तत एव कारणात् विषयकषाय-रूपस्याधर्मस्याऽपरिग्रह सन् पापमिद मम स्वरूप न भवतीति ज्ञात्वा तद्रूपेणापरिणमन् दर्पणे विम्बस्येव ज्ञायक एव भवति। एवमेव च अधर्मपदपरिर्वतनेन रागद्वेषमोहक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राण-रसनस्पर्शनसज्ञानि सप्तदशसूत्राणि व्याख्येयानि। तेनैव प्रकारेण शुभाशुभसकल्पविकल्परहितानतज्ञानादिगुणस्वरूप शुद्धात्मन प्रतिपक्षभूतानि शेषाण्यप्यसख्येयलोकप्रमितानि विभावपरिणामस्थानानि वर्जनीयानि।। २२४।।

धम्मच्छि अधम्मच्छी आयास सुत्तमगपुव्वेसु।
सगं च तहा णेय देवमणुअत्तिरियणेरइय।।२२५।।

अपरिग्रहो भणित । कोऽसौ ? अनिच्छ । तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य वहिर्द्रव्येपु इच्छा आकाक्षा नास्ति। तेन कारणेन **परमतत्त्वज्ञानी** चिदानन्दैकस्वभाव शुद्धात्मान विहाय धमाधर्माकाशाद्यगपूर्वगतश्रुतवाह्याभ्यतर-परिग्रहदेवमनुष्यतिर्यङ्नारकादिविभावपर्यायान्नेछति इति ज्ञेय ज्ञातव्यम्। तत कारणात्तद्विषये निष्परिग्रहो भूत्वा तद्रूपेणापरिणमन् सन् दर्पणे विम्बस्येव ज्ञायक एव भवति।। २२५।।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो असण च णिच्छदे णाणी। (२१२)
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि।। २२६।।

इसी तरह अधर्म पद का परिवर्तन करके राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शन इन १७ पदों से व्याख्या करनी चाहिए। उसी प्रकार से शुभाशुभ सकल्प-विकल्प रहित अनतज्ञानादि गुणस्वरूप शुद्धात्मस्वभाव के प्रतिपक्षभूत शेष सभी असख्यात लोकप्रमाण विभावपरिणामस्थान त्यागने योग्य हैं।। २२४।।

गाथार्थ - **(धम्मच्छि)** धर्मास्तिकाय, **(अधम्मच्छी)** अधर्मास्तिकाय, **(आयास)** आकाश, **(अगपुव्वेसु सुत्त)** ११ अग और १४ पूर्वगत सूत्र **(च)** और **(देवमणुअत्तिरियणेरइय)** देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारकादि पर्याय **(तहा)** तथा **(सग)** सब परिग्रह **(णेय)** ये सब ज्ञेय हैं, (सम्यग्ज्ञानी इन ज्ञेयों की इच्छा नहीं करता है)।

टीकार्थ - जिसको वाह्य द्रव्यों की आकाक्षा नहीं है उसको परिग्रह नहीं है याने उसको अपरिग्रही कहा गया है। इसलिये **परमतत्त्वज्ञानी** (स्वानुभूतिवाला चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव चिदानद-एक-स्वभाववाले शुद्धात्मा को छोडकर धर्म, अधर्म, आकाशादि, अगपूर्वगत श्रुतज्ञान, वाह्य-अभ्यतर परिग्रह और देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारकादि विभावपर्यायों की इच्छा नहीं करता है, ये सब ज्ञेय जानने योग्य हैं। इस कारण से उस विषय में अपरिग्रही होकर उन स्वरूप परिणमन न करनेवाला उनका ज्ञायक ही है, जैसे दर्पण में प्रतिविम्ब होते हुए भी निश्चयनय से दर्पण स्वच्छ ही है।। २२५।।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो असण च णिच्छदे णाणी अपरिग्रहो भणित । स क ? अनिच्छ । तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य वहिर्द्रव्येषु इच्छा मूर्च्छा ममत्व नास्ति। इच्छा त्वज्ञानमयो भाव स च ज्ञानिनो न सभवति। **अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि** तत एव कारणात् आत्मसुखे तृप्तो भूत्वा अशनविषये निष्परिग्रह सन् दर्पणे बिम्बस्येव अशनाद्याहारस्य वस्तुनो वस्तुरूपेण ज्ञायक एव भवति। न च रागरूपेण ग्राहक इति।। २२६।।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे पाण। (२१३)
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि[१]।।२२७।।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे पाण अपरिग्रहो भणित । कोऽसौ ? अनिच्छ । तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य वहिर्द्रव्येष्वाकाक्षा तृष्णा मोह इच्छा नास्ति। इच्छा त्वज्ञानमयो भाव स च ज्ञानिनो न सभवति। **अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि** तत कारणात् स्वाभाविकपरमानदसुखे तृप्तो भूत्वा विविधपानकविषये निष्परिग्रह सन् दर्पणे विम्वस्येव वस्तुनो वस्तुरूपेण ज्ञायक एव भवति, न च रागरूपेण ग्राहक इति।। २२७।। तथा चोक्त-

---

गाथार्थ - (**अणिच्छो**) इच्छा न कारनेवाला जीव (**अपरिग्गहो**) परिग्रह से रहित है ऐसा (**भणिदो**) कहा गया है (**य**) और (**णाणी**) सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) (**असण**) भोजन की (**णिच्छदे**) इच्छा नहीं करता है (**तेण**) इसीलिये (**असणस्स अपरिग्गहो सो**) भोजन के अपरिग्रहवाला वह सम्यग्ज्ञानी (**जाणगो दु**) ज्ञायक ही (**होदि**) है।

टीकार्थ - जिसको वाह्य द्रव्य में ममत्व मूर्च्छा (इच्छा) नहीं है उसको परिग्रह नहीं है ऐसा कहा गया है। **इच्छा अज्ञानमय भाव** है और वह ज्ञानी जीव को सभव नहीं है। इस ही कारण से आत्मसुख में तृप्त होकर भोजन के विषय में अपरिग्रही होकर वस्तुरूप से उसका ज्ञायक ही है, जैसे दर्पण में प्रतिविम्व होते हुये भी निश्चयनय से दर्पण स्वच्छ ही है। और सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) रागरूप से भोजनादि आहार का ग्राहक नहीं है।। २२६।।

गाथार्थ - (**अणिच्छो**) इच्छा न करने वाला जीव (**अपरिग्गहो**) परिग्रह से रहित है ऐसा (**भणिदो**) कहा गया है (**य**) और (**णाणी**) सम्यग्ज्ञानी (**चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव**) (**पाण**) जलादि पीने की (**णिच्छदे**) इच्छा नहीं करता है (**तेण**) इसलिये (**पाणस्स अपरिग्गहो सो**) पानी के अपरिग्रहवाला वह सम्यग्ज्ञानी (**जाणगो दु**) जलादि पान का ज्ञायक ही (**होदि**) है।

टीकार्थ - जिसको बाह्यद्रव्य में मूर्च्छा (इच्छा) नहीं है उसको परिग्रह नहीं हे, ऐसा कहा गया है। इच्छा अज्ञानमय भाव है और वह **सम्यग्ज्ञानी** (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव को नहीं होती है। इस ही कारण से स्वाभाविक परमानद सुख में तृप्त होकर विविधपानक के विषय में अपरिग्रही होकर पानक की वस्तु का वस्तुस्वरूप से ज्ञायक ही है। जैसे दर्पण में प्रतिविम्ब होते हुए भी निश्चयनय से दर्पण स्वच्छ ही है। और **सम्यग्ज्ञानी** (चतुर्थादिगुणस्थानवर्तीजीव) रागरूप से पानक का ग्राहक नहीं है।

---

[१] पाठान्तर - पाण च णिच्छदे णाणी

ण बलाउसाहणट्ठ ण सरीरस्य य चयट्ठतेजट्ठ। णाणट्ठ सजमट्ठ झाणट्ठ चेव भुजति।। १।।
अक्खामक्खणिमित्त इसिणो भुजति पाणधारणणिमित्त। पाणा धम्मणिमित्त धम्म हि चरंति मोक्खट्ठ।।२।। २२७।।

अथ परिग्रहत्यागव्याख्यानमुपसहरति -

इच्चादि[1] एदु विविहे सव्वे भावे य णिच्छदे णाणी। (२१४)
जाणगभावो णियदो णीरालबो य सव्वत्थ।।२२८।।

इच्चादि एदु विविहे सव्वे भावे य णिच्छदे णाणी इत्यादिकान् पुण्यपापाशनपानादिबहिर्भावान् सर्वान् सर्वत **परमात्मतत्त्वज्ञानी** नेच्छति। अनिच्छन् स कथभूतो भवति ? **जाणगभावो णियदो णीरालबो य सव्वत्थ** टकोत्कीर्णपरमानदज्ञायकैकस्वभाव एव भवति नियतो निश्चित । पुनश्च कथभूतो भवति ? जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायै कृतकारितानुमितैश्च वाह्याभ्यतरपरिग्रहरूपे चेतनाचेतनपरद्रव्ये सर्वत्र निरालबोऽपि, अनतज्ञानादिगुणस्वरूपे स्वस्वभावे पूर्णकलश इव सालवन एव तिष्ठतीति भावार्थ ।।२२८।

उसी तरह कहा भी है कि **'ण बलाउसाहणट्ठ'** इत्यादि अर्थात् वल बढाने के लिये, आयु बढाने के लिये सम्यग्ज्ञानी अन्नादि नहीं लेते हैं, शरीर को मोटा वनाने के लिये और शरीर का तेज बढाने के लिये सम्यग्ज्ञानी अन्नादि नहीं लेते हैं, तो **ज्ञानार्थ, सयमार्थ और ध्यान के लिये ही सम्यग्ज्ञानी आहारादि लेते** हैं।

'अक्खामक्खणिमित्त' इत्यादि अर्थात् जैसे गाडी चलने के लिये गाडी के अक्ष को वाग देते हैं वैसे ही प्राण धारण करने के लिये अन्नादि शरीर को देते हैं, धर्म धारण करने के लिये प्राण है, और मोक्ष के लिये धर्म का आचरण करते हैं।।२२७।।

अब, परिग्रहत्याग के व्याख्यान का उपसहार करते हैं-

गाथार्थ - **(इच्चादि एदु)** पुण्यपापअशनादि वाह्य भाव इत्यादिक **(विविहे)** नाना प्रकार के **(सव्वे भावे)** सब भावों को **(णाणी)** सम्यग्ज्ञानी **(णिच्छदे)** नहीं चाहता है **(सव्वत्थ)** सर्वत्र **(णियदो)** नियम से **(णीरालबो जाणगभावो दु)** निरालम्ब ज्ञायक भाव ही है।

टीकार्थ - **परमात्मतत्त्वज्ञानी** (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव सभी पुण्य-पाप अशन-पानादि वाह्यभावों को सर्वत नहीं चाहता है।

शका - वह अनिच्छक कैसे होता है ?

समाधान - वह **सम्यग्ज्ञानी** नियत, टकोत्कीर्ण, परमानद, ज्ञायक, एक स्वभाव वाला ही है और तीन लोक में और तीन काल में मन-वचन-काय से कृत-कारित-अनुमोदना के द्वारा वाह्यअभ्यातरपरिग्रह में चेतन अचेतन परद्रव्य में सर्वत्र निरालव है तथापि अनतज्ञानादि गुणवाले स्वस्वभाव में पूर्णकलश की तरह सालवन से ही रहता है। ऐसा भावार्थ है।। २२८।।

---

१ पाठान्तर - एमादि, इव्वादु

अथ ज्ञानी वर्तमानभाविभोगेषु वाछा न करोतीति कथयति-

उप्पण्णोदयभोगे वियोगबुद्धीय तस्स सो णिच्च। (२१९)
कखामणागदस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी।।२२९।।

उप्पण्णोदयभोगे वियोगबुद्धीय तस्स सो णिच्च उत्पन्नोदयभोगे वियोग बुध्दिश्च हेयबुन्द्रिर्भवति 'तस्य तस्मिन् भोगविषये षष्ठीसप्तम्योरभेद इति वचनात्' कोऽसौ निरीहवृत्तिर्भवति ? स्वसवेदनज्ञानी नित्य सर्वकाल। **कखामणागदस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी** स एव ज्ञानी, अनागतस्य निदानबधरूपभाविभोगोदयस्याकाक्षा न करोति।

किच विशेष । य एव भोगोपभोगादिचेतनाचेतनसमस्तपरद्रव्यनिरालवो भाव परिणाम स एव स्वसवेदनज्ञानगुणो भण्यते। तेन ज्ञानगुणावलवनेन य एव पुरुष ख्यातिपूजालाभभोगाकाक्षारूपनिदानवधादिविभावरहित सन् जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकाये कृतकारितानुमितैश्च विषयसुखानदवासनावासित चित्त मुक्त्वा शुद्धात्मभावनोत्थवीत-रागपरमानदसुखेन वासित रजित मूर्च्छित परिणत तन्मय तृप्त रत सतुष्ट चित्त कृत्वा वर्तते स एव मतिश्रुता-वधिमन पर्ययकेवलज्ञानाभेदरूप परमार्थशब्दाभिधेय साक्षान्मोक्षकारणभूत शुद्धात्मसवित्तिलक्षण परमागमभाषया वीतराग-धर्मध्यानशुक्लध्यानस्वरूप स्वसवेद्यशुद्धात्मपद परमसमरसीभावेन अनुभवति न चान्य । यादृश परमात्मपदमनुभवति तादृश परमात्मपदस्वरूप मोक्ष लभते। कस्मात् ? इति चेत्, उपादानकारणसदृश कार्यं भवति यत कारणात् इति। एव स्वसवेदनज्ञानगुण विना मत्यादिपचज्ञानविकल्परहितमखडपरमात्मपद न लभ्यते इति सक्षेपव्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्राष्टक गतम्।।२२९।।

अब, ज्ञानी वर्तमान के और भाविकाल के भोगों की वाछा नहीं करता है, ऐसा कथन करते हैं-

गाथार्थ - **(तस्स उप्पणोदयभोगे)** उस उत्पन्न हुये उदयभोग में **(णाणी)** ज्ञानी **(णिच्च)** नित्य **(वियोगबुध्दीय)** वियोगबुद्धि से प्रवर्तता है **(य)** और **(अणागदस्स उदयस्स)** अगामी काल में होनेवाले उदय की **(सो)** वह ज्ञानी **(कखा)** काक्षा **(ण कुव्वदे)** नहीं करता है, इसलिये अपरिग्रही है।

टीकार्थ - **उप्पण्णोदयभोगे वियोगबुध्दीय तस्स सो णिच्च** उत्पन्न हुए उदयभोग में ज्ञानी की नित्य वियोगबुद्धि और हेयबुद्धि है। (यहाँ गाथा में जो 'तस्स' शब्द है वह षष्ठी का एकवचन है जो कि 'उप्पणोदयभोगे' इस सप्तमी के एक वचनात्मक पद का विशेषण है किन्तु साधारण नियमानुसार विशेषण और विशेष्य में एक ही विभक्ति होनी चाहिए। श्री जयसेनाचार्यजी कहते हैं कि **षष्ठी और सप्तमी में कहीं-कहीं अभेद भी होता है।)**

शका - निरीहवृत्तिवाला कौन होता है ?

समाधान - स्वसवेदनज्ञानी सर्वकाल में निरीहवृत्तिवाला होता है। **कखामणादगस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी** वही ज्ञानी आगामी काल में उदय में आनेवाले निदानबधरूप भविष्यकालीन भोग की काक्षा नहीं करता है।

इसका और स्पष्टीकरण यह है कि-जो भोगोपभोगादि चेतनअचेतन सभी परद्रव्य में निरालवन भाव है उसे ही **स्वसवेदन ज्ञानगुण** कहा जाता है।

अथानतर तस्येव ज्ञानगुणस्य चतुर्दशगाथापर्यंत पुनरपि विशेषव्याख्यान करोति। तद्यथा-
ज्ञानी सर्वद्रव्येषु वीतरागत्वात्कर्मणा न लिप्यते सरागत्वादज्ञानी लिप्यते, इति प्रतिपादयति-

णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो। (२१८)
णो लिप्पदि रजएण[1] दु कद्दममज्झे जहा कणय।।२३०।।
अण्णाणी पुण रत्तो हि सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो। (२१९)
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा लोह।।२३१।।

इसलिये उस स्वसवेदन ज्ञानगुण के अवलवन से जो पुरुष ख्याति-पूजा-लाभ-भोगाकाक्षारूप निदानबध आदि विभाव भाव से रहित होकर तीनजगत में और तीनकाल में भी मन-वचन-काय से ओर कृत-कारित-अनुमोदना द्वारा विषयसुखानद वासनावासित चित्त को छोडकर शुद्धात्मानुभव से उत्पन्न वीतराग परमानद सुख की वासना से वासित-रजित-मूर्च्छित-परिणत-तन्मय-तृप्त-रत-सतुष्ट चित्त होकर, जो वर्तता है -

अध्यात्मभाषा से

वह सम्यग्ज्ञानी ही मति श्रुत अवधि मन पर्यय केवलज्ञान के अभेदरूप परमार्थ शब्द से कहे जानेवाले साक्षात् मोक्ष के कारण भूत शुद्धात्मसवित्ति लक्षणवाले स्वसवेद्य शुद्धात्मस्वभाव को परम समरसी भाव से अनुभवता है।

आगभाषा से

वह सम्यग्ज्ञानी ही वीतराग धर्मध्यान शुक्लध्यानस्वरूप स्वसवेद्य शुद्धात्मस्वभाव को परम समरसी भाव से अनुभवता है।

और अन्य कोई जीव (अज्ञानी जीव) अपने चैतन्यस्वभाव को नहीं अनुभवता है (याने मिथ्यात्व, सासादन, मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव चैतन्य स्वभाव को नही अनुभवता है।)

जिस प्रकार जो स्वचैतन्य स्वभाव को (परमात्मपद को) अनुभवता है, वह उसी प्रकार परमात्मपदस्वरूप मोक्ष को प्राप्त होता है। क्योंकि उपादान कारण के सदृश ही कार्य होता है।। २२९।।

इस प्रकार स्वसवेदनज्ञान गुण के (अपने चेतन्य स्वभाव की अनुभूति के) विना मत्यादि पॉच ज्ञानमय विकल्परहित अखड परमात्मपद प्राप्त नहीं होता है। इसका सक्षेप में कथन करने की मुख्यता से आठ गाथायें पूर्ण हुई।

इसके अनतर उस ही ज्ञान गुण का १४ गाथाओं तक फिर से विशेष व्याख्यान करते हैं। जैसे-ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) सर्व द्रव्यों में वीतरागपना से वर्तने से कर्मों से लिप्त नहीं होता है, और अज्ञानी (मिथ्यात्व, सासादान, मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव) सरागपना से वर्तने से कर्मों से लिप्त होता है, ऐसा कहते हैं-

गाथार्थ - (जहा) जैसे (कद्दममज्झे कणय णो लिप्पदि) कीचड में पडा हुआ सुवर्ण कीचड से लिप्त नही होता वैसे ही (सव्वदव्वेसु) सभी द्रव्यों में (रागप्पजहो णाणी) राग का त्याग किया हुआ ज्ञानी (कम्मज्झगदो दु) कर्मो के मध्य में रहते हुए भी (रजएण) कर्म रज से लिप्त नहीं होता हे।

(पुण दु) ओर (जहा) जैसे (कद्दममज्झे लोह लिप्पदि) कीचड में लोहे को काई लग जाती है वैसे ही (अण्णाणी) अज्ञानी (सव्वदव्वेसु) सभी द्रव्यों में (रत्तो) रागी होने से (कम्ममज्झगदो) कर्मों के मध्य में रहते हुए (कम्मरएण) कर्मरज से (लिप्पदि) लिप्त होता है।

---

[1] पाठान्तर - कम्मरएण

हर्षविषादादिविकल्पोपाधिरहित स्वसवेदनज्ञानी सर्वद्रव्येपु रागादिपरित्यागशीलो यत कारणात् तत कर्दम-मध्यगत कनकमिव कर्मरजसा न लिप्यते इति। अज्ञानी पुन स्वसवेदनज्ञानाभावात् सर्वपचेन्द्रियविपयादिपरद्रव्ये रक्त काक्षितो मूर्च्छितो मोहितो भवति यत कारणात्, तत कर्दममध्यलोहमिव कर्मरजसा वध्यते इति।।२३०,२३१।।

अथ सकलकर्मनिर्जरा नास्ति कथ मोक्षो भविष्यतीति प्रश्ने परिहारमाह-

णागफणीए मूल णागणीतोएण गब्भणागेण।
णाग होदि सुवण्ण धम्मत भच्छथवाएण।। २३२।।

नागफणी नामौपधी तस्या मूल। नागिनी हस्तिनी तस्यास्तोय मूत्र। गर्भनाग सिदूरद्रव्य। नाग सीसक। अनेन प्रकारेण पुण्योदये सति सुवर्णं भवति न च पुण्याभावे। कथभूत सन्? भस्त्रया धम्यमानमिति दृष्टात गाथा गता।।२३२।।

अथ दार्ष्टांतमाह -

कम्म हवेइ किट्ट रागादी कालिया अह विभाओ।
सम्मत्तणाणचरण परमोसहमिदि वियाणाहि।।२३३।।
झाण हवेइ अग्गी तवयरण भत्तली समक्खादो।
जीवो हवेइ लोह धमिदव्वो परमजोगीहि।।२३४।।

द्रव्यकर्म किट्टसज्ञ भवति रागादिविभावपरिणामा कालिकासज्ञा ज्ञातव्या सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रय भेदाभेदरूप परमौषध जानीहि इति।

टीकार्थ - जैसे कीचड में पडा हुआ सुवर्ण कीचड से लिप्त नहीं होता है, वैसे ही हर्षविषादादि विकल्प की उपाधि से रहित **स्वसवेदनज्ञानी** (याने स्वानुभूतिवाला चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव रागादि परित्यागशील होने से कर्म रज से लिप्त नहीं होता है। और अज्ञानी (मित्यात्व सासादान मिश्रगुणस्थानवर्ती) स्वसवेदन ज्ञान से याने स्वानुभूति से रहित होने से सभी पचेंद्रियविषयादि परद्रव्यों में आसक्त-मूर्च्छित अथवा मोहित होता है, इसलिये जेसे लोह को कीचड में काई लगती है, वैसे ही यह अज्ञानी जीव कर्म रज से लिप्त-वध्द होता है।।२३०, २३१।।

अव, **सकल कर्म की निर्जरा नहीं हो तो मोक्ष कैसे होगा ?** इस प्रश्न का उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - (**णागफणीए मूल**) नागफणी की जड (**णागणी तोएण**) हथिनी का मूत्र (**गब्भणागेण**) सिदूरद्रव्य-गर्भनाग (**णाग**) और सीसा धातु (**भच्छवाएण धम्मत**) इनको भस्त्रा (धोंकनी) से अग्नि पर तपाने पर (**सुवण्ण होदि**) सुवर्ण होता है।

टीकार्थ - नागफणी नामक औषधि की जड, हथिनी का मूत्र, सिदूरद्रव्य और सीसा इनको धोंकनी से अग्नि पर तपाने पर और पुण्योदय होने पर सुवर्ण होता है, और यदि पुण्य का अभाव होगा तो सुवर्ण नहीं होगा। यह दृष्टात गाथा पूर्ण हुई।।२३२।।

वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूप ध्यानमग्निर्भवति। द्वादशविधतपश्चरण भस्त्रा ज्ञातव्या। आसन्नभव्यजीवो लोह भवति। स च भव्यजीव पूर्वोक्तसम्यक्त्वाद्यौषधध्यानाग्निभ्या सयोग कृत्वा द्वादशविधतपश्चरणभस्त्रया परमयोगिभि धमितव्यो ध्यातव्य । इत्यनेन प्रकारेण यथा सुवर्ण भवति तथा मोक्षो भवतीति सदेहो न कर्तव्यो भट्टचार्वाकमतानुसारिभिरिति।। २३३,२३४।।

अथ ज्ञानिन शखदृष्टातेन वधाभाव दर्शयति-

भुजतस्सवि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे। (२२०)
सखस्स सेदभावो ण वि सक्कदि किण्हगो कादु।। २३५।।

तह णाणिस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे। (२२१)
भुजतस्स वि णाण ण सक्कमण्णाणद[1] णेदु।। २३६।।

जइया स एव सखो सेदसहाव सय पजहिदूण। (२२२)
गच्छेज्ज किण्हभाव तइया सुक्कत्तण पजहे।। २३७।।

जह सखो पोग्गलदो जइया सुक्कत्तण पजहिदूण।
गच्छेज्ज किण्हभाव तइया सुक्कत्तण पजहे।। २३८।।

तह णाणी वि हु जइया णाणसहाव सय पजहिदूण। (२२३)
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणद गच्छे।। २३९।।

अव दार्ष्टान्त कहते हैं-

गाथार्थ - **(अह)** अव **(कम्म)** कर्म **(किट्ट)** कीट **(हवेइ)** है **(रागादी कालिया विभावो)** रागादि विभाव परिणाम कालिमा है **(सम्मत्तणाणचरण)** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र **(परमोसह)** परम औषधि है **(इदि)** ऐसा **(वियाणाहि)** जानो।

(झाण) ध्यान **(अग्गी)** अग्नि **(हवेइ)** है **(तवयरण भत्तली)** तपश्चरण भस्त्रा है **(जीवो लोह हवेइ)** जीव लोह है। यह **(परमजोगीहि)** परम योगियों के द्वारा **(धमिदव्वो)** धमना चाहिये, **(समक्खादो)** ऐसा सम्यक्कथन है।

टीकार्थ - द्रव्यकर्म किट्ट है, रागादि विभावपरिणाम कालिमा है, ऐसा जानना चाहिये, भेदाभेद रत्नत्रयरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रत्रय परम औषधि है, ऐसा जानो। वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप (स्वानुभूति) **ध्यान ही अग्नि है।** वारह प्रकार का तपश्चरण धोंकनी (भस्त्रा) है, ऐसा जानना चाहिये। आसन्न भव्यजीव लोह है। और उस भव्यजीव का पूर्वोक्त सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप ओषधि और ध्यानाग्नि के साथ सयोग करके १२ प्रकार के तपश्चरणरूप धोंकनी से परमयोगियों के द्वारा उसका धमनरूप ध्यान करना योग्य है। इस प्रकार से जैसे सुवर्ण वन जाता हे वैसे मोक्ष होता है, इसमें भट्ट-चार्वाक मतानुसारियों के द्वारा सदेह करना योग्य नहीं है।।२३३, २३४।।

---

[1] पाठान्तर - वि सक्कदि रागद णेदुं

यथा सजीवस्य शखस्य श्वेतभाव कृष्णीकर्तुं न शक्यते। कि कुर्वाणस्यापि ? भुजानस्यापि। कानि? कर्मतापन्नानि सचित्ताचित्तमिश्राणि विविधद्रव्याणीति व्यतिरेकदृष्टातगाथा गता। तथा तेनैव प्रकारेण ज्ञानिनो जीवस्य वीतरागस्वसवेदनलक्षणभेदज्ञान रागत्वमज्ञानत्व नेतु न शक्यते। कस्मात् ? स्वभावस्यान्यथाकर्तुमशक्यत्वात्। कि कुर्वाणस्यापि ? भुजानस्यापि। कानि ? स्वकीयगुणस्थानावस्थायोग्यानि सचित्ताचित्तमिश्राणि विविधद्रव्याणि। तत कारणात् चिरतनबन्धकर्मनिर्जरैव भवति। नवतरस्य च सवर इति व्यतिरेकदार्ष्टातगाथा गता। अन्वयव्यतिरेकशब्देन सर्वत्र विधिनिषेधौ ज्ञातव्यौ इति।

यथा यदा स एव पूर्वोक्त सजीवशख कृष्णपरद्रव्यलेपवशात् अतरगस्वकीयोपादानपरिणामाधीन सन् श्वेतस्वभावत्व विहाय कृष्णभाव गच्छेत् तदा शुक्लत्व त्यजति। इत्यन्वयदृष्टातगाथा गता। तथैव च यथा निर्जीवशख कृष्णपरद्रव्यलेपवशात् अतरगोपादानपरिणामाधीन सन् श्वेतस्वभावत्व विहाय कृष्णभाव गच्छेत् तदा शुक्लत्व त्यजति। इति निर्जीवशखनिमित्त द्वितीयान्वयदृष्टातगाथा गता। तथा तेनैव प्रकारेण ज्ञानी जीवोऽपि हि स्फुट स्वकीयप्रज्ञापराधेन वीतरागज्ञानस्वभावत्व विहाय मिथ्यात्वरागाद्यज्ञान- भावेन परिणतो भवति तदा स्वस्वभावच्युत सन्नज्ञानत्व गच्छेत्। तस्य सवरपूर्विका निर्जरा नास्तीति भावार्थ इत्यन्वयदार्ष्टातगाथा गता।। २३५ से २३९।।

अब, शख के दृष्टात से ज्ञानी को (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती को) बध नहीं होता है, यह दिखाते हैं -

गाथार्थ - जैसे शख (विविहे) अनेक प्रकार के (सचित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे) सचित्त, अचित्त और मिश्रित द्रव्यों को (भुजतस्स वि) भक्षण करता है तो भी (सखस्स) उस शख का (सेदभावो) सफेदपना (किण्हगो कादु) काला करने को (ण वि सक्कदि) कोई भी समर्थ नहीं है।

(तह) उसी तरह (विविहे) अनेक प्रकार के (सचित्ताचित्तामिस्सिए) सचित्त, अचित्त और मिश्र (दव्वे) द्रव्यों को (भुजतस्स वि) भोगने वाले (णाणिस्स) ज्ञानी का (णाण वि) ज्ञान भी (अण्णाणद णेदु) अज्ञानपना करने को (ण सक्क) किसी की भी सामर्थ्य नहीं है।

लेकिन (जइया) जब (स एव सखो) वहीं शख (सय सेदसहाव पजहिदूण) अपने उस श्वेत स्वभाव को छोडकर (किण्हभाव) कृष्णभाव को (गच्छेज्ज) प्राप्त होता है (तइया) तब (सुक्कत्तण) सफेदपन को (पजहे) छोड देता है।

(जह) जैसे (पोग्गलदो सखो) पुद्गलमय शख (जइया) जिस समय (सुक्कत्तण पजहिदूण) सफेदपन को छोडकर (किण्हभाव) कृष्णभाव को (गच्छेज्ज) प्राप्त होता है (तइया) उस समय (सुक्कत्तण पजहे) श्वेतपना छोड देता है।

(तह) वैसे (जइया) जिस समय (णाणी वि) ज्ञानी भी (हु) निश्चय से (सय णाणसहाव) अपने उस ज्ञानस्वभाव को (पजहिऊण) छोडकर (अण्णाणेण) अज्ञान से (परिणदो) परिणत होता है (तइया) उसी समय (अण्णाणद) अज्ञानपने को (गच्छे) प्राप्त होता है।

टीकार्थ :- जैसे सजीव शख अनेक प्रकार के सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्यों को भक्षण करता है तो भी उस शख के सफेदपना को काला करने के लिए कोई समर्थ नहीं है। यह व्यतिरेक दृष्टातवाली गाथा का अर्थ है।

अथ सरागपरिणामेन बध, तथैव वीतरागपरिणामेन मोक्षो भवतीति दृष्टातदार्ष्टांताभ्या समर्थयति-

पुरिसो जह को वि इह वित्तिणिमित्त तु सेवदे राय। (२२४)
तो सो वि देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पादे।। २४०।।
एमेव जीवपुरिसो कम्मरय सेवदे सुहणिमित्त। (२२५)
तो सो वि देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पादे[1]।। २४१।।
जह पुण सो चिय पुरिसो[2] वित्तिणिमित्त ण सेवदे राय। (२२६)
तो सो ण देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पादे।। २४२।।
एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थ सेवदे ण कम्मरय। (२२७)
तो सो ण देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पादे।। २४३।।

उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानी जीव के वीतराग स्वसवेदन लक्षणवाले भेदज्ञान को रागमय और अज्ञानमय करने के लिए कोई समर्थ नहीं है, क्योंकि स्वभाव को अन्यथा करना किसी के लिये शक्य नहीं है।

शका - क्या करनेवाले को भी अन्यथा करना शक्य नहीं है ?

समाधान - (चतुर्थादि गुणस्थानवाले) स्वकीय गुणस्थान अवस्था के योग्य सचित्त, अचित्त, मिश्ररूप विविध द्रव्यों को करनेवाले को और भोगनेवाले को भी अपने स्वानुभूतिमय भेदज्ञान को अज्ञानमय करना किसी को भी शक्य नहीं है।

इस कारण से पहले बधे कर्मो की निर्जरा ही होती हे। और नवीन कर्मो का सवर होता है। यह व्यतिरेक दार्ष्टांत गाथा का अर्थ है। **अन्वय-व्यतिरेक शब्द से सर्वत्र विधि-निषेध जानना चाहिये।**

जिस समय वह ही पूर्वोक्त सजीव शख कृष्णरूप परद्रव्य के लेप के वश से अतरग स्वकीय उपादानरूप परिणाम के आधीन होकर स्वभावरूप सफेदपना को छोडकर कालेपन को प्राप्त होता है उस समय सफेदपना को छोड देता है। इस प्रकार सजीव शख का निमित्त लेकर कही हुई अन्वय दृष्टातरूप गाथा हुई।

उस ही प्रकार जैसे निर्जीव शख कृष्ण परद्रव्य के लेप के वश से अतरग उपादान परिणाम के आधीन होकर स्वभावरूप सफेदपना को छोडकर कालेपन को प्राप्त होता है तव सफेदपना छोड देता है। यह निर्जीव शख का निमित्तवाली दूसरी अन्वयदृष्टातरूप गाथा का अर्थ है।

उस ही प्रकार से ज्ञानी जीव भी निश्चय से स्वकीय प्रज्ञा के अपराध से वीतराग ज्ञानस्वभावत्व को छोडकर जव मिथ्यात्व रागादि अज्ञानभाव से परिणत होता है, तब स्वस्वभाव से च्युत होकर अज्ञानपना को प्राप्त होता है। उस अज्ञानी जीव के सवरपूर्वक निर्जरा नहीं है। ऐसा भावार्थ है। इस प्रकार अन्वयदार्ष्टांत गाथा समाप्त हुई।। २३५ से २३९।।

अव, **सरागपरिणाम से बध होता है और वीतराग परिणाम से मोक्ष होता है,** उसका दृष्टात-दार्ष्टांत से समर्थन करते हैं -

---

[1] पाठान्तर - तो सो वि कम्मरायो देदि सुहुप्पादगे भोगे। [2] पाठान्तर - सो चेव णरो

यथा कश्चित्पुरुष, वृत्तिनिमित्त राजान सेवते तत सोऽपि राजा तस्मै सेवकाय ददाति, कान् ? विविधसुखोत्पादकान् भोगान् इत्यज्ञानिर्जीवविषयेऽन्वयदृष्टातगाथा गता। एवमेवाज्ञानी जीवपुरुष शुद्धात्मोत्थसुखात्प्रच्युत सन्नुदयागत कर्मरज सेवते विषयसुखनिमित्त तत सोऽपि पूर्वोपार्जितपुण्यकर्म राजा ददाति, कान् ? विषयसुखोत्पादकान् भोगाकाक्षारूपान् शुद्धात्मभावाना विनाशकान् रागादिपरिणामान् इति।

अथवा द्वितीयव्याख्यानकोऽपि जीवोऽभिनवपुण्यकर्मनिमित्त भोगाकाक्षानिदानरूपेण शुभकर्मानुष्ठान करोति सोऽपि पापानुबधिपुण्यराजा कालातरे भोगान् ददाति। तेऽपि निदानबधेन प्राप्ता भोगा रावणादिवन्नारकादि दु खपरपरा प्रापयन्तीति भावार्थ । एवमज्ञानिजीव प्रत्यन्वयदृष्टानगाथा गता।

गाथार्थ - **(जह)** जिस प्रकार **(इह)** इस लोक में **(को वि पुरिसो)** कोई पुरुष **(वित्तिणिमित्त तु)** आजीविका के लिये **(राय)** राजा की **(सेवदे)** सेवा करता है **(तो)** तो **(सो वि राया)** वह राजा भी उसे **(सुहुप्पादे)** सुख देने के लिये **(विविहे)** नाना प्रकार के **(भोगे)** भोग **(देदि)** देता है।

(एमेव) इसी प्रकार **(जीव पुरिसो)** जीवपुरुष **(सुहणिमित्त)** सुख के लिए **(कम्मरय)** कर्मरज की **(सेवदे)** सेवा करता है **(तो)** तो **(सो कम्मो वि)** वह कर्म भी **(सुहुप्पादे)** सुख देनेवाले **(विविहे)** नाना प्रकार के **(भोगे)** भोग **(देदि)** देता है।

(पुण) पुन **(जह)** जैसे **(सो चिय पुरिसो)** वही पुरुष **(वित्तिणिमित्त)** आजीविका के लिए **(राय)** राजा की **(ण सेवदे)** सेवा नहीं करता है **(तो)** तो **(सो राया)** वह राजा **(सुहुप्पादे)** सुख देनेवाले **(विविहे)** नाना प्रकार के **(भोगे)** भोग **(ण देदि)** उसको नहीं देता है।

(एमेव) इसी प्रकार **(सम्मदिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि **(विसयत्थ)** विषयों के लिए **(कम्मरय)** कर्मरज का **(ण सेवदे)** सेवन नहीं करता है **(तो)** तो **(सो कम्मो)** वह कर्म उसे **(सुहुप्पादे)** सुख देनेवाले **(विविहे)** नाना प्रकार के **(भोगे)** भोगों को **(ण देदि)** नहीं देता है।

टीकार्थ - जैसे कोई पुरुष आजीविका के लिये राजा की सेवा करता है, इसलिये वह राजा भी उस पुरुष को (सेवक को) विविध सुखोत्पादक भोगों को देता है। यह अज्ञानी जीव के विषय में अन्वयदृष्टात गाथा का अर्थ है।

उसी प्रकार अज्ञानी जीव शुद्धात्मोत्थसुख से च्युत होकर उदयागत कर्मरज को विषय सुख के लिए सेवन करता है इसलिये पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मरूप राजा भी विषयसुखोत्पादक भोगाकाक्षा-निदानवाले और शुद्धात्मा के अनुभव का नाश करनेवाले रागादि परिणामों को देता है।

अथवा दूसरी पद्धति से व्याख्यान यह है कि, कोई जीव नूतन पुण्यकर्म के लिये भोगाकाक्षा निदानरूप से शुभकर्म का अनुष्ठान करता है, उसे पापानुबधी पुण्यरूप राजा भी कालातर में भोगों को देता है। और वे भी निदानबध से प्राप्त हुए भोग रावण के समान नारकादि की परपरारूपदु खमय ससार भ्रमण को प्राप्त कराते हैं। ऐसा इसका भावार्थ है। इस प्रकार अज्ञानी जीव के प्रति अन्वयदृष्टात गाथा पूर्ण हुई।

और जैसे वही पूर्वोक्त पुरुष आजीविका के लिये राजा की सेवा नहीं करता है। इसलिये वह राजा भी उस पुरुष को अनेक प्रकार के सुखोत्पादक भोगों को नहीं देता है। इस प्रकार ज्ञानी जीव के विषय में व्यतिरेक दृष्टातवाली गाथा का अर्थ समाप्त हुआ।

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं। (२३३)
सो उवगूहणगारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।। २४९।।

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माण शुद्धात्मभावनारूपपारमार्थिक सिद्धभक्तियुक्त मिथ्यात्व रागादिविभावधर्माणामुपगूहक प्रच्छादको विनाशक । **सो उवगूहणगारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टि उपगूहनकारी मतव्यो ज्ञातव्य । तस्य चानुपगूहनकृतो नास्ति वध किंतु पूर्वसचित कर्मणो निश्चित निर्जरैव भवति।। २४९।।

उम्मग्ग गच्छत सिवमग्गे जो ठवेदि अप्पाण[1]। (२३४)
सो ठिदिकरणेण जुदो[2] सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।२५०।।

उम्मग गच्छत सिवमग्गे जो ठवेदि अप्पाण य कर्ता मिथ्यात्वरागादि रूपमुन्मार्गम् गच्छत सतमात्मान परमयोगाभ्यासवलेन शिवमार्गे स्वशुद्धात्मभावनारूपे निश्चयमोक्षमार्गे निश्चल स्थापयति **सो ठिदिकरणेण जुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टि स्थितिकरणयुक्तो मतव्यो ज्ञातव्य । तस्य चास्थितिकरणकृतो नास्ति वध किंतु पूर्ववद्धकर्मणो निश्चित निर्जरैव भवति।।२५०।।

और उसको वहिर्विषय में मूढताकृत होने वाला वध नहीं है अथवा मिथ्यात्व-परसमय मूढताकृत होनेवाला वध नहीं है, किन्तु पूर्ववद्ध कर्मो की निश्चित निर्जरा ही होती है।।२४८।।

गाथार्थ - **(जो)** जो आत्मा **(सिद्धिभत्तिजुत्तो)** शुद्धात्मानुभव से युक्त है **(दु)** और **(सव्व धम्माण)** अन्य वस्तु के सव धर्मो का अथवा विभावधर्मो का **(उवगूहणगो)** नाश करनेवाला है अथवा **(सव्व धम्माण उवगूहणगो)** अपने सभी गुणधर्मो को गोपनेवाला-वृन्द्रि करनेवाला हे **(सो)** वह **(उवगूहणगारी)** उपगूहनकारी या उपवृहक **(सम्मादिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि **(मुणेदव्वो)** जानना चाहिये।

टीकार्थ - शुद्धात्मानुभववाली पारमार्थिक सिद्धभक्ति युक्त जो है, वह उपवृहक अर्थात् मिथ्यात्व रागादि विभाव धर्मो का नाश करनेवाला है। वह उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टि है ऐसा जानना चाहिये। उसको अनुपगूहन कृत वध नही है, किन्तु पूर्वसचित कर्मो की निश्चित निर्जरा ही होती है।।२४९।।

गाथार्थ - **(जो)** जो **(उम्मग्ग गच्छत)** उन्मार्ग पर जाते हुए **(अप्पाण)** अपने आत्मा को **(सिवमग्गे)** मोक्षमार्ग पर **(ठवेदि)** रखता है **(सो)** वह **(ठिदिकरणेण जुदो)** स्थितिकरण से युक्त **(सम्मादिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि **(मुणेदव्वो)** जानना चाहिये।

टीकार्थ - जो मिथ्यात्व रागादिरूप उन्मार्ग पर जाते हुए अपने आत्मा को परमयोगाभ्यास के (स्वानुभव के) वल से शिवमार्ग में (मोक्षमार्गमें) - स्वशुद्धात्म स्वभाव की अनुभूतिवाले निश्चय मोक्षमार्ग में निश्चल स्थापन करता है, वह स्थितिकरणयुक्त सम्यग्दृष्टि है, ऐसा जानना चाहिये। और उसको अस्थितिकरणकृत बध नहीं हैं, किन्तु पूर्ववद्ध कर्मो की निश्चित निर्जरा ही होती है।।२५०।।

---

१ पाठान्तर - सगपि मग्गे ठवेदि जो चेदा । २ पाठान्तर - सो ठिदि करणाजुत्तो ।

जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्हे साहूण मोक्खमग्गम्मि। (२३५)
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।२५१।।

जो कुणदि वच्छलत्त तिण्हे साहूण मोक्खमग्गमि य कर्ता मोक्षमार्गे स्थित्वा वत्सलत्व भक्तिं करोति, केषा ? त्रयाणा स्वकीयसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणा, कथभूताना ? साधूना मोक्षमार्गे साधकाना अथवा व्यवहारेण तदाधारभूतसाधूना। **सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टि वात्सल्यभावयुक्तो मतव्यो ज्ञातव्य। तस्य चावात्सल्यभावकृतो नास्ति वध, किंतु पूर्वसचितकर्मणो निर्जरैव भवति।।२५१।।

विज्जारहमारूढो मणोरहरएसु हणदि[1] जो चेदा।। (२३६)
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।२५२।।

गाथार्थ - **(जो)** जो आत्मा **(मोक्खमग्गम्मि)** मोक्षमार्ग में **(तिण्हे)** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र में अथवा तीनों **(साहूण)** साधकों के अथवा साधुओं के प्रति **(वच्छलत्त)** वात्सल्य **(कुणदि)** करता है **(सो)** वह **(वच्छलभावजुदो)** वात्सल्यभाव युक्त **(सम्मादिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि है, ऐसा **(मुणेदव्वो)** जानना चाहिये।

टीकार्थ - जो आत्मा मोक्षमार्ग में ठहरकर अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र की और व्यवहार से साधुओं की अथवा मोक्षमार्ग के साधकों की अथवा व्यवहार से उनके आधारभूत साधुओं की भक्ति करता है, वह सम्यग्दृष्टि वात्सल्यभावयुक्त है, ऐसा जानना चाहिये। उसको अवात्सल्यभावकृत वध नहीं होता है, किन्तु पूर्व सचित कर्मों की निश्चित निर्जरा ही होती है।।२५१।।

गाथार्थ - **(जो)** जो **(चेदा)** आत्मा **(विज्जारहमारूढो)** विद्यारूपी रथ पर आरूढ होकर **(मणोरहरएसु)** मनरूपी रथ के वेगों को (याने विकल्पों को) **(हणदि)** नष्ट करता है **(सो)** वह आत्मा **(जिणणाणपहावी)** जिनज्ञान-जिनवाणी-जिनेन्द्र के ज्ञान की प्रभावना करनेवाला **(सम्मादिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि है ऐसा **(मुणेदव्वो)** जानना चाहिये।

टीकार्थ - जो चेतयिता आत्मा स्वशुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि (स्वानुभूति) स्वरूप विद्यारथ पर आरूढ होकर ख्याति-पूजा-लाभ-भोगाकाक्षारूप निदानबधादि विभावपरिणामरूप द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भावमय पच प्रकार के ससारदु ख के कारणोंवाले शत्रुरूप मनोवेगों को-चित्त के कल्लोलों को-विकल्पों को स्वस्वभाव सारथि के बल से, दृढतर ध्यान की तलवार से (स्वानुभूति के बल से) नष्ट करता है, वह सम्यग्दृष्टि जिनज्ञान की प्रभावना करनेवाला है, ऐसा जानना चाहिये। उसको अप्रभावनाकृत वध नहीं है, किन्तु पूर्वसचित कर्मों की निश्चित निर्जरा ही होती है।

इस प्रकार सवरपूर्वक भावनिर्जरा के उपादानकारणभूत शुद्धात्मानुभवरूप शुद्धनय का आश्रय करके नि शकितादि आठ गुणों का व्याख्यान करने की मुख्यता से नौ गाथायें पूर्ण हुईं। यहाँ निश्चयनय की मुख्यता से नि शकितादि आठ गुणों का कथन हुआ।

---

१ पाठान्तर - मनोहरपहेसु भमदि जो चेदा।

विज्जारहमारूढो मणोरहरएसु हणदि जो चेदा यश्चेतयिता आत्मा स्वशुद्धात्मतत्त्वोपलब्धिस्वरूप विद्यारथमारूढ सन् ख्यातिपूजालाभभोगाकाक्षानिदानवधादिविभावपरिणामरूपान् द्रव्यक्षेत्रादिपचप्रकारससारदु खकारणान् शत्रून् मनोरथरयान् वेगाश्चित्तकल्लोलान् स्वस्वभावसारथिबलेन दृढतरध्यान खड्गेन हति। **सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टिर्जिनज्ञानप्रभावी मतव्यो ज्ञातव्य । तस्य चाप्रभावनाकृतो नास्ति वध , कितु पूर्वसचितकर्मणो निश्चित निर्जरैव भवति।।२५२।।

एव सवरपूर्विकाया भावनिर्जराया उपादानकारणभूताना शुद्धात्मभावनारूपाणा शुद्धनयमाश्रित्य निश्शकाद्यष्टगुणाना व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथानवक गतम्। इद तु निश्शकाद्यष्टगुणव्याख्यान निश्चयनयमुख्यत्वेन व्याख्यातम्। निश्चयरत्नत्रयसाधके व्यवहार रत्नत्रयेऽपि स्थितस्य सरागसम्यग्दृष्टेरप्यजनचौरादिकथारूपेण व्यवहारनयेन यथासभव योजनीय। निश्चय व्याख्याय पुनरपि किमर्थं व्यवहारनय व्याख्यानम् ? इति चेन्नैव। अग्निसुवर्णपाषाणयोरिव निश्चय व्यवहारनययो परस्परसाध्यसाधकभावदर्शनार्थमिति। तथा चोक्त-

जइ जिणसमइ पउजह ता मा ववहारणिच्छए मुचह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थ अण्णेण पुण तच्च।। इति

निश्चय रत्नत्रय के साधकरूप व्यवहार रत्नत्रय में रहनेवाले सराग सम्यकत्वी **अजनचोर** आदि की कथा व्यवहारनय से यथासभव समझ लेना चाहिए। (व्यवहारनय से कथन की हुई अजनचोरादिक की कथा अभूतार्थ हे क्योंकि वह व्यवहारनय का कथन है और निश्चयनय भूतार्थ है।)

शका - आपने निश्चयनय का व्याख्यान करने के वाद फिर व्यवहारनय का व्याख्यान किसलिए किया हे ? (अर्थात् वह कुछ अर्थ नहीं रखता है।)

समाधान - ऐसा नहीं कहना चाहिए। अर्थात् निश्चयन के कथन के वाद व्यवहारनय के व्याख्यान में कुछ अर्थ नहीं है, ऐसा नहीं हैं। यहॉ निश्चयनय का और व्यवहारनय का परस्पर सवध क्या है, यह दिखाने के लिये दोनों नयों का कथन किया है। निश्चयनय ही भूतार्थ है और व्यवहारनय अभूतार्थ है। शुद्धात्मानुभव ही उपादेय है। जैसे अग्नि और सुवर्णपाषाण (अशुद्ध सुवर्ण) इनका उपचार से परस्पर साध्य साधक सबध है अर्थात् व्यवहारनय से अशुद्ध सुवर्ण को अग्नि से तपाने से शुद्ध सुवर्ण होता है, ऐसा कहा जाता है। वैसे ही व्यवहारनय से (देखो गाथा न १२३ से १२५ ता वृ की टीका में) ऐसा कहा जाता है कि, व्यवहारनय साधक और निश्चयनय साध्य है। याने परस्पर साध्य-साधक भाव दिखाने के लिये दोनों नयों का कथन किया है। लेकिन स्वानुभूति के लिये निश्चयनय ही प्रयोजनवान है।

जेसे कहा गया है कि, **"जइ जिणसमइ पउजह"** इत्यादि अर्थात् यदि जिनागम में प्रवेश करना चाहते हो तो व्यवहारनय और निश्चयनय दोनों को मत छोडो। एक के (निश्चयनय के) बिना तीर्थ का नाश होगा और दूसरे (व्यवहारनय) के विना तत्व का नाश होगा।

किच - सवरपूर्विका निर्जरा या व्याख्याता सा सम्यग्दृष्टिर्जीवस्य शुद्धात्मसम्यक्श्रन्द्रान ज्ञानानुष्ठानरूपे मुख्यवृत्या निश्चयरत्नत्रये सति भवति, स च निश्चयरत्नत्रयलाभो, वीतरागधर्मध्यानशुक्लध्यानरूपे शुभाशुभ बहिर्द्रव्यनिरालबेन निर्विकल्पसमाधौ सति भवति, स च समाधिरतीवदुर्लभ । कस्मात् ? इति चेत्, एकेंद्रियविकलेंद्रिय पचेन्द्रियसज्ञिपर्याप्तमनुष्यदेशकुलरूपेद्रियपटुत्वनिर्व्याध्यायुष्कवरवुद्धिसद्धर्मश्रवणग्रहणधारणश्रद्धानसयम विषयसुखव्यावर्तनक्रोधादिकषायनिवर्तनतपोभावनासमाधिमरणानि परम्परादुर्लभानि यत । तदपि कस्मात् ? तत्प्रतिपक्षभूताना मिथ्यात्वविषयकषायख्यातिपूजालाभभोगाकाक्षारूपनिदानवधादिविभावपरिणामाना प्रवलत्वात् इति दुर्लभपरपरा ज्ञात्वा सर्वतात्पर्येण समाधौ प्रमादो न कर्तव्य । तदप्युक्त-

---

[**भावार्थ** - याने जिनागम को या द्रव्यों को समझ लेने के लिये द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय इन दोनों का उपयोग करना चाहिये। द्रव्यार्थिकनयको न मानोगे और अकेले पर्यायार्थिकनय को मानोगे तो पर्याय का भी अभाव होगा और द्रव्य का भी अभाव होगा। इससे प्रत्यक्ष से विरोध प्राप्त होगा।

और यदि द्रव्यार्थिकनय को मानोगे और पर्यायार्थिकनय को न मानोगे तो नित्यवस्तु का भी अभाव होने का प्रसग आयेगा और प्रत्यक्ष वस्तुस्थिति से विरोध प्राप्त होगा। इसलिये द्रव्य को आगमभाषा से समझने के लिये द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय इन दोनों नयों को मत छोडो। और इस आगमभापा को समझने के वाद अध्यात्म भाषा भी समझ लेना चाहिए क्योंकि पामार्थिक वस्तुस्वरूप समझने से शातता प्राप्त होगी। अष्टसहस्री पृष्ठ २७ पर कहा है कि,"**निर्विशेष हि सामान्य भवेच्छशविषाणवत्। सामान्य रहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि।।**" अर्थात् विशेष के विना सामान्य खरगोश के सींग के समान हे याने सामान्य का अभाव होगा और सामान्य के विना विशेष का अभाव होगा। तो शुद्धात्मानुभव प्राप्त करने के लिये एकाकार, अखड, अभेद, परमशुद्ध निश्चयनय के आलवन के विना 'तीर्थ का' याने मोक्षमार्ग का नाश होगा। अर्थात् शुद्धोपयोग के विना मोक्षमार्ग शुरु नहीं होता है, देखो - वारसाणुपेक्खा, गाथा ६४, कुदकुदभारती पृष्ठ ३१९ -

सुद्धुवजोगेण पुणो धम्म सुक्क च होदि जीवस्स।

तम्हा सवरहेदू झाणो त्ति विचितए णिच्च।।

अर्थात् शुद्धोपयोग से जीव के धर्मध्यान और शुक्लध्यान होते हैं इसलिये **ध्यान सवर का कारण है**, ऐसा निरतर विचार करना चाहिए।

और दूसरे को याने भेद को, उपचार को, पर्याय को, अनेक वर्णमाला वाले व्यवहारनय को, नहीं मानोगे तो द्रव्य का नाश होगा। पर्याय में होनेवाली अशुद्ध और शुद्ध अवस्था को नहीं मानोगे तो साध्य-द्रव्य का नाश होगा। याने वस्तु व्यवस्था न मानोगे तो आत्मिक शातता प्राप्त नहीं होगी। इसलिये नियचयनय न मानोगे तो पर्याय का भी लोप होगा और मोक्षमार्ग का याने तीर्थ का लोप होगा। इसलिये अध्यात्मभाषा से एकाकार अखड अभेद निश्चयनय ही भूतार्थ है और व्यवहारनय अभूतार्थ है।]

यथा स चैव पूर्वोक्तपुरुषो वृत्तिनिमित्त न सेवते राजानम्। तत सोऽपि राजा तस्मै न ददाति, कान् ? विविधान् सुखोत्पादकान् भोगान् इति ज्ञानिजीवविषये व्यतिरेकदृष्टातगाथा गता।

एवमेव च सम्यग्दृष्टिर्जीव पूर्वोपार्जितमुदयागत कर्मरज शुद्धात्मभावनोत्थवीतरागसुखानदात्प्रच्युतो भूत्वा विषयसुखार्थं, उपादेयवुद्ध्या न सेवते ततस्तदपि कर्म न ददाति, कान् ? विविधविषयसुखोत्पादकान् भोगाकाक्षारूपान् शुद्धात्मभावनाविनाशकान् रागादिपरिणामानिति।

अथवा द्वितीयव्याख्यान-कोऽपि सम्यग्दृष्टिर्जीवो निर्विकल्पसमाधेरभावात्, अशक्यानुष्ठानेन विषयकषायवचनार्थं यद्यपि व्रतशीलदानपूजादिशुभकर्मानुष्ठान करोति तथापि भोगाकाक्षारूपनिदानवधेन तत्पुण्यकर्मानुष्ठान न सेवते। तदपि पुण्यानुवधिपुण्यकर्म भवातरे तीर्थकरचक्रवर्तीवलदेवाद्यभ्युदयरूपेणोदयागतमपि पूर्वभवभावितभेदविज्ञानवासनावलेन शुद्धात्मभावनाविनाशकान् विषयसुखोत्पादकान् भोगाकाक्षानिदानरूपान् रागादिपरिणामान्न ददाति भरतेश्वरादीनामिव। इति सज्ञानिजीव प्रति व्यतिरेकदार्ष्टांगाथा गता। एव मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाभेदरूप **परमार्थशब्दवाच्य साक्षान्मोक्षकारणभूत** शुद्धात्मसवित्तिलक्षण स्वसवेद्य सवरपूर्विकाया निर्जराया उपादानकारण पूर्वं यद्व्याख्यात परमात्मपद, तत्पद येन निर्विकारस्वसवेदनलक्षण भेदविज्ञानगुणेन विना न लभ्यते। तस्यैव भेदविज्ञानगुणस्य पुनरपि विशेषव्याख्यानरूपेण चतुर्दशसूत्राणि गतानि।। २४० से २४३।।

और इस ही प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव पूर्व उपार्जित उदयागत कर्मरज को शुद्धात्मानुभव से उत्पन्न होनेवाले वीतरागसुखानद से च्युत होकर **विषयसुख के लिये उपादेय बुद्धि से सेवन नहीं करता है।** इसलिये वह कर्म भी उस सम्यग्दृष्टि को विविध विषयसुखोत्पादक भोगाकाक्षारूप और **शुद्धात्मानुभव का नाश करनेवाले रागादि परिणामों को नहीं देता है।**

अथवा दूसरी पद्धति से व्याख्यान यह है कि, कोई भी सम्यग्दृष्टि जीव (एवभूतनय की अपेक्षा से वुद्धिपूर्वक) निर्विकल्पसमाधि (याने शुद्धात्मानुभव) के अभाव से - अशक्य अनुष्ठान होने से विषय-कषाय से दूर रहने के लिये यद्यपि व्रत-शील-दान-पूजादि शुभकर्म का अनुष्ठान करता है तथापि भोगाकाक्षारूप-निदानवध से उस पुण्य कर्म का अनुष्ठान नहीं करता है।

और वह पुण्यानुवधी पुण्यकर्म भी भवातर में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वलदेवादि अभ्युदयरूप से उदय में आते हैं तो भी पूर्वभव में भावित जो **भेदविज्ञान की वासना** हे उसके (उस स्वानुभव के) बल से शुद्धात्मानुभव का नाश करने वाले विषयसुखोत्पादक भोगाकाक्षा-निदानरूप रागादि परिणामों को नहीं देता है, जैसे भरतचक्रवर्ती (अव्रत अवस्था में गृह में भी वैरागी थे याने अव्रत अवस्था में गृह में भी) रागी नहीं थे। इस तरह सम्यग्ज्ञानी जीव के प्रति व्यतिरेक दार्ष्टांत का कथन करने वाली गाथा पूर्ण हुई।

इस प्रकार मति-श्रुत-अवधि-मन पर्यय-केवलज्ञान का अभेदरूप, जो परमार्थ शव्द से वाच्य है, वह मोक्ष के कारणभूत ऐसे शुद्धात्मानुभव के लक्षणवाला स्वसवेद्य और सवरपूर्वक निर्जरा का उपादान कारणवाला जो पहले कहा गया परमात्मपद है, वह परमात्मपद जिस निर्विकार स्वसवेदनलक्षणवाले भेदविज्ञान गुण (पर्याय) के विना प्राप्त नहीं किया जाता है, उस ही भेदविज्ञान गुण (पर्याय) का फिर से विशेष व्याख्यान करने वाली **१४** गाथायें पूर्ण हुई।। २४० से २४३।।

इत उर्ध्वं निश्शकाद्यष्टगुणकथन गाथानवकपर्यंत व्याख्यान करोति। तत्र तावत् प्रथमगाथाया निजपरमात्मपदार्थभावनोत्पन्नसुखामृतरसास्वादतृप्ता सत सम्यग्दृष्टयो घोरोपसर्गेऽपि सप्तभयरहितत्त्वेन निर्विकारस्वानुभवस्वरूप स्वस्वभाव न त्यजन्तीति कथयति-

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्सका होंति णिब्भया तेण। (२२८)
सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्सका।।२४४।।

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्सका होंति सम्यग्दृष्टयो जीवा शुद्धबुद्धैकस्वभावनिर्दोषपरमात्माराधन कुर्वाणा सतो निश्शका भवति यस्मात् कारणात्। **णिब्भया तेण** तेन कारणेन निर्भया भवति। **सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा** यस्मादेव करणाद् इहलोक-परलोक-अत्राण-अगुप्ति-मरण-वेदना-आकस्मिकसज्ञितसप्तभय विप्रमुक्ता भवति। **तम्हा दु णिस्सका** तस्मादेव कारणात् घोरपरीषहोपसर्गे प्राप्तेऽपि निश्शका शुद्धात्मस्वरूपे निष्कपा सत शुद्धात्मभावनोत्थवीतरागसुखानदतृप्ताश्च परमात्मस्वरूपान्न प्रच्यवते पाडवादिवत्।।२४४।।

इसके आगे नव गाथा पर्यंत नि शकितादि आठ गुणों का वर्णन करते हैं। इसमें भी सबसे पहली गाथा में निज परमात्म पदार्थ के अनुभव में उत्पन्न होनेवाले सुखामृतरस के आस्वादन से तृप्त होने वाले सम्यग्दृष्टि जीव घोर उपसर्ग के आने पर भी सात भयों से रहित होने से निर्विकार स्वानुभवस्वरूप स्वभाव को नहीं छोड देते हैं, ऐसा कहते हैं-

गाथार्थ - (**सम्मादिट्ठी जीवा**) सम्यग्दृष्टि जीव (**णिस्सका**) नि शक (**होंति**) होते हैं (**तेण**) इसलिये (**णिब्भया**) निर्भय हैं (**जम्हा**) क्योंकि (**सत्तभयविप्पमुक्का**) सप्तभय से रहित हैं (**तम्हा**) इसलिये (**णिस्सका दु**) नि शक ही हैं।

टीकार्थ - सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव वाले निर्दोष परमात्मा की अराधना करनेवाले होने से नि शक हैं, इसलिये वे निर्भय हैं। जिस ही कारण से इसलोक का भय, परलोक का भय, अत्राण (अरक्षा) का भय, अगुप्ति भय, मरण भय, वेदना भय और आकस्मिक भय नाम के इन सात भयों से रहित होते हैं। इसलिये ही वे घोर परिषह व उपसर्ग आनेपर भी पाडवादि के समान नि शक होते हुए अपने शुद्धात्म स्वभाव में निष्कप रहकर और शुद्धात्मानुभव से उत्पन्न होनेवाले वीतराग सुखानद में तृप्त रहकर परमात्म स्वभाव से च्युत नहीं होते हैं।।२४४।।

अब, आगे कहते हैं कि, वीतराग सम्यग्दृष्टि के (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती के) निश्शकादि आठ गुण नवीन कर्मों का वध निवारण करते हैं, इस कारण से बध नहीं होता है किन्तु सवरपूर्वक निर्जरा ही होती है -

गाथार्थ - (**जो**) जो कोई(**कम्ममोहबाधकरे**) कर्मबध करनेवाला मोहभाव और सुख में बाधा करनेवाले (**चत्तारिवि**) मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग चार हैं (**ते पाए**) उन ४ पादों को (**छिददि**) छेदता है (**सो चेदा**) वह आत्मा (**णिस्सको सम्मादिट्ठी**) निश्शक सम्यग्दृष्टि (**मुणेदव्वो**) जानना चाहिये।

अथानतर वीतरागसम्यग्दृष्टेर्निश्शकाद्यष्टगुणा नवतरवध निवारयन्ति तत कारणाद्वधो नास्ति किंतु सवरपूर्विका निर्जरैव भवतीति प्रतिपादयति-

जो चत्तारि वि पाए छिददि ते कम्ममोहबाधकरे[1]। (२२९)
सो णिस्सको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।२४५।।

जो चत्तारि वि पाए छिददि ते कम्ममोहबाधकरे य कर्ता मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगलक्षणान् ससारवृक्षस्य मूलभूतान् निष्कर्मात्मतत्त्वविलक्षणत्वेन कर्मकरान् निर्मोहात्मद्रव्यपृथक्त्वेन मोहकरान् अव्यावाधसुखादि गुणलक्षणपरमात्मपदार्थभिन्नत्वेन वा वाधाकरारतान् आगमप्रसिद्धाश्चतुर पादान् शुद्धात्मभावनाविषये निश्शको भूत्वा स्वसवेदनज्ञान खड्गेन छिनत्ति। **सो णिस्सको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स चेतयिता आत्मा सम्यग्दृष्टिर्निश्शको मतव्य। तस्य तु शुद्धात्मभावना विषये शकाकृतो नास्ति वध, किंतु पूर्ववद्धकर्मणो निश्चित निर्जरैव भवति।।२४५।।

जो ण करेदि दु कख कम्मफलेसु तह य सव्वधम्मेसु। (२३०)
सो णिक्कखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।२४६।।

जो ण करेदि दु कख कम्मफलेसु तह य सव्वधम्मेसु य कर्ता शुद्धात्मभावनासजातपरमानद सुखे तृप्तो भूत्वा काक्षा वाछा न करोति। केषु ? पचेंद्रियविषयसुखभूतेषु कर्मफलेषु तथैव च समस्तवस्तुधर्मेषु स्वभावेषु,

---

टीकार्थ - जो मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग लक्षणवाले, ससार वृक्ष की जडवाले, निष्कर्म आत्मतत्त्व स्वभाव से विलक्षण वाले कर्मो को करनेवाले, निर्मोह आत्मद्रव्य से भिन्न रूप से रहनेवाले मोह भावों को करनेवाले अथवा अव्यावाधसुखादि गुणलक्षणवाले परमात्मपदार्थ से भिन्न होने के कारण वाधा करने वाले, उन आगम प्रसिद्ध मिथ्यात्त्वादि चार पादों को शुद्धात्मानुभव के विषय में नि शक होकर स्वसवेदन ज्ञानरूप तलवार से छेदता है, वह जाननेवाला आत्मा नि शक सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये। उसको शुद्धात्मानुभव के विषय में शकाकृत वध नहीं है, किन्तु पूर्ववद्धकर्मो की नियम से निर्जरा ही होती है।।२४५।।

गाथार्थ - **(जो)** जो **(चेदा)** आत्मा **(कम्मफलेसु)** कर्मो के फलों मे **(तह य)** तथा **(सव्वधम्मेसु)** सभी धर्मो में **(कख)** काक्षा-इच्छा **(ण करेदि)** नहीं करता है **(सो)** वह **(दु)** ही **(णिक्कखो)** नि काक्ष **(सम्मादिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि **(मुणेदव्वो)** जानना चाहिये।

टीकार्थ - जो शुद्धात्मनुभव से उत्पन्न होनेवाले परमानद सुख से तृप्त होकर पचेंद्रिय विषयसुखभूत कर्मो के फलों की और उसी प्रकार ही सभी वस्तुओं के धर्मो में या स्वभावों में अथवा विषयसुखको कारणभूत नानाप्रकार के पुण्यरूप धर्मो में अथवा इहलोक-परलोकाकाक्षारूप सभी मिथ्या-परसमय मतों में कथित कुधर्मो की वाछा-काक्षा नहीं करता है। वह जाननेवाला सम्यग्दृष्टि आत्मा ससार सुख में निष्काक्षित है, ऐसा जानना चाहिये। उसको विषयसुख की काक्षा से उत्पन्न होनेवाले वध नहीं होते हैं, किन्तु पूर्वसचित कर्मो की निर्जरा ही होती है।।२४६।।

---

[1] पाठान्तर - कम्मवधमोहकरे

अथवा विषयसुखकारणभूतेषु नानाप्रकारपुण्यरूपधर्मेषु, अथवा इहलोकपरलोकाकाक्षारूप समस्तपरसमयप्रणीत-कुधर्मेषु च। **सो णिक्कखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स चेतयिता आत्मा सम्यग्दृष्टि ससारसुखे निष्काक्षितो मतव्य। तस्य विपयसुखकाक्षाकृतो नास्ति वध, किंतु पूर्वसचित कर्मणो निर्जरैव भवति।।२४६।।

जो ण करोदि दुगुछ चेदा सव्वेसिमेव धम्माण। (२३१)
सो खलु णिव्विदिगिछो सम्मादिट्ठी-मुणेदव्वो।।२४७।।

जो ण करेदि दुगुछ चेदा सव्वेसिमेव धम्माण यश्चेतयिता आत्मा परमात्मतत्त्वभावनावलेन जुगुप्सा निन्दा दोष द्वेष विचिकित्सान्न करोति, केषा सवधित्वेन ? सर्वेषामेव वस्तुधर्माणा, स्वभावाना, दुर्गंधादिविषये वा। **सो खलु णिव्विदिगिछो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टि निर्विचिकित्स खलु स्फुट मतव्यो ज्ञातव्य। तस्य च परद्रव्यद्वेषनिमित्तो नास्ति वध, किंतु पूर्वसचित कर्मणो निर्जरैव भवति।।२४७।।

जो हवदि असम्मूढो चेदा सव्वेसु कम्मभावेसु[1]। (२३२)
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।२४८।।

जो हवदि असम्मूढो चेदा सव्वेसु कम्मभावेसु यश्चेतयिता आत्मा स्वकीयशुद्धात्मनि श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपेण निश्चयरत्नत्रयलक्षणभावनावलेन शुभाशुभकर्मजनितपरिणामरूपे वहिर्विषये सर्वथाऽसमूढो भवति। **सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स खलु स्फुट सम्यग्दृष्टिरमूढदृष्टिर्मन्तव्यो ज्ञातव्य। तस्य च वहिर्विषये मूढताकृतो नास्ति वध परसमयमूढताकृतो वा, किंतु पूर्ववद्धकर्मणो निश्चित निर्जरैव भवति।।२४८।।

गाथार्थ - **(जो चेदा)** जो आत्मा **(सव्वेसिमेव धम्माण)** सभी वस्तु के धर्मों में **(दुगुछ)** ग्लानि **(ण करेदि)** नहीं करता है **(सो)** उसको **(खलु)** वस्तुत **(णिव्विदिगिछो)** निर्विचिकित्सक **(सम्मादिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि **(मुणेदव्वो)** जानना चाहिये।

टीकार्थ - जो जाननेवाला आत्मा परमस्वभाव के अनुभव के वल से जुगुप्सा, निदा, दोष, द्वेष, अथवा विचिकित्सा नहीं करता है।

शका - किनके सवध में विचिकित्सा नहीं करता है ?

समाधान - सभी वस्तु के धर्मो की अथवा स्वभावों की वा दुर्गन्धादि विषय में ग्लानि नहीं करता है।

वह आत्मा निश्चय से निर्विचिकित्सक सम्यग्दृष्टि है ऐसा जानना चाहिये। और उसको परद्रव्य द्वेष निमित्तक वध नहीं होता है किन्तु पूर्वसचित कर्मो की निर्जरा ही होती है।।२४७।।

गाथार्थ - **(जो चेदा)** जो आत्मा **(सव्वेसु कम्मभावेसु)** सभी कर्मो के भावों में **(असमूढो)** मूढ नहीं होता है **(सो)** वह **(खलु)** निश्चय से **(अमूढदिट्ठी)** अमूढदृष्टि **(सम्मादिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि **(मुणेदव्वो)** मानना चाहिए।

टीकार्थ - जो चेतयिता आत्मा स्वकीय शुद्धात्मस्वभाव में श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप से निश्चय रत्नत्रय-लक्षणवाले स्वानुभव के वल से शुभाशुभ कर्मजनित परिणामस्वरूप वाह्य विषय में सर्वथा मूढ नहीं होता है वह निश्चित ही अमूढदृष्टि सम्यग्दृष्टि है, ऐसा जानना चाहिये।

---

[1] पाठान्तर - चेदा सद्दिट्टि सव्वभावेसु

चार्ट नं. ९
लब्धि और उपयोग

मिथ्यादृष्टि अवस्था में

श्रद्धा के दोनों पैर बाहर-पर की तरफ हैं याने श्रद्धा उपयोगरूप से-जाग्रतरूप से पर की तरफ है।
और
ज्ञान के दोनों पैर बाहर-पर की तरफ हैं याने ज्ञान उपयोगरूप से पर की तरफ है, सविकल्पज्ञान है।
और
चारित्र के दोनों पैर बाहर-पर की तरफ हैं याने चारित्र उपयोगरूप से अशुद्धोपयोग है। इसलिये मिथ्यात्वी के छ ही पैर वाहर हैं।

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति की अथवा सम्यक्त्वसहित निर्विकल्पज्ञान की अवस्था में

श्रद्धा के दोनों पैर 'निजध्रुवात्मा की' तरफ हैं याने श्रद्धा उपयोगरूप से-जाग्रतरूप से 'निजध्रुवात्मा की' तरफ है।
ओर
ज्ञान के दोनों पैर 'निजध्रुवात्मा' की तरफ हैं याने बुद्धिपूर्वक ज्ञान उपयोगरूप से 'निजध्रुवात्मा' की तरफ है। निर्विकल्पज्ञान है।
ओर
चारित्र के दोनों पैर 'निजध्रुवात्मा' की तरफ हैं याने चारित्र बुद्धिपूर्वक शुद्धोपयोग है, बुद्धिपूर्वक सम याने वीतराग है।
और

सम्यग्दर्शन सहित सविकल्पज्ञान की अवस्था में

श्रद्धा के दोनों पैर 'निजध्रुवात्मा की' तरफ हैं याने श्रद्धा उपयोगरूप से - जाग्रतरूप से 'निजध्रुवात्मा की' तरफ है।
और
ज्ञान का एक पैर 'निजध्रुवात्मा' की तरफ है याने स्वात्मानुभवज्ञान लब्धिरूपज्ञान है।
और
चारित्र का एक पैर 'निजध्रुवात्मा' की तरफ है याने परिणतिरूप (लब्धिरूप) वीतराग है, सम है।

ज्ञान का एक पैर 'पर' की तरफ है-उपयोगरूप ज्ञानोपयोग 'पर' की तरफ है याने बाहर है, सविकल्पज्ञान है।
और
चारित्र का एक पैर 'पर' की तरफ है याने अशुद्धोपयोग है, विषम है, कषाय परिणाम है।

बंध अधिकार

अथ प्रविशति बंध। तत्र **'जह णाम को वि पुरिसो'** इत्यादि गाथामादि कृत्वा पाठक्रमेण षट्पचाशद्गाथापर्यंत व्याख्यान करोति। तासु षट्पचाशद्गाथासु मध्ये प्रथमतस्तावद् बधस्वरूपसूचनमुख्यत्वेन गाथादशकम्। तदनतर निश्चयेन हिसाहिंसाव्रताव्रतद्वयस्य लक्षणकथनरूपेण **'जो मण्णदि हिसामि'** इत्यादि गाथासप्तकम्। तत पर वहिरगद्रव्यहिसा भवतु मा भवतु, निश्चयेन **हिसाध्यवसाय एव हिसेति** प्रतिपादनरूपेण **'जो मरदि'** इत्यादि गाथाषट्कम्। अथानतर निश्चयरत्नत्रयलक्षण यद् भेदविज्ञान तस्माद्विलक्षणानि यानि व्रताव्रतानि तद्व्याख्यानमुख्यत्वेन **'एवमलिए'** इत्यादि सूत्रभूतगाथाद्वयम्। तदनतर तस्यैव भावपुण्यपापरूपव्रताव्रतस्य शुभाशुभबधकारणभूतस्य परिणामव्याख्यानमुख्यत्वेन **'वत्थु पडुच्च'** इत्यादि गाथात्रयोदश। एव समुदायेन पचदश।

तदनतर **निश्चये स्थित्वा व्यवहारो निषेध्यत** इति कथनरूपेण **'ववहारणओ'** इत्यादि सूत्रषट्कम्। अत पर रागद्वेषरहितज्ञानिना प्राशुकान्नपानाद्याहारो बधकारण न भवति इति **पिडशुद्धि** व्याख्यानरूपेण **'आधाकम्मादीया'** इत्यादि सूत्रचतुष्टयम्। तदनतर क्रोधादिकषाया कर्मबधनिमित्त भवति, तेषा च चेतनाचेतनवहिर्द्रव्य निमित्त भवतीति प्रतिपादनरूपेण **'जह फलिहमणि विसुद्धो'** इत्यादि सूत्रपचकम्। तदनतरमप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यान च बधकारण भवति न पुन शुद्धात्मेति व्याख्यानमुख्यत्वेन **'अप्पडिकमण'** इत्यादि गाथात्रय चेति समुदायेन षट्पचाशद्गाथाभिरष्टातराधिकारे बधाधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा –

अव बध प्रवेश करता है। वहाँ **'जह णाम को वि पुरिसो'** इत्यादि गाथा से शुरु करके पाठक्रम से ५६ गाथापर्यंत कथन करते हैं। उन ५६ गाथाओं में पहले बध के स्वरूप की सूचना करने की मुख्यता से १० गाथायें हैं। तदनतर निश्चयनय से हिसा, अहिसा, व्रत, अव्रत इनका लक्षण कहने वाली **'जो मण्णदि हिसामि'** इत्यादि ७ गाथायें हैं। इसके आगे वहिरग द्रव्यहिसा हो या न हो, निश्चयनय से **हिसा का अध्यवसान भाव ही हिसा है**, इसका प्रतिपादन करनेवाली **'जो मरदि'** इत्यादि छह गाथायें हैं। इसके बाद निश्चयरत्नत्रय लक्षणवाला (स्वानुभववाला) जो भेदविज्ञान है उससे विलक्षणवाले जो व्रत-अव्रत हैं, इस कथन की मुख्यता से **'एवमलिए'** इत्यादि सूत्रभूत दो गाथायें हैं। तदनतर शुभाशुभ बध के कारणभूत उस ही भावपुण्य-पापरूप व्रताव्रत के परिणाम का कथन करने की मुख्यता से **'वत्थु पडुच्च'** इत्यादि १३ गाथायें हैं। इस प्रकार समुदाय से १५ गाथायें हैं।

तदनतर **निश्चय में ठहरकर** (स्वानुभव भूतार्थ होने से अथवा स्वानुभव की मुख्यता से) **व्यवहार का निषेध ही किया जाता है**, यह कथन करनेवाले **'ववहारणओ'** इत्यादि छह सूत्र हैं। इसके वाद, रागद्वेष रहित **ज्ञानियों को (स्वानुभूति वाले जीवों को) प्राशुक अन्नपान आदि आहार लेना बध का कारण नहीं है**, इस तरह पिडशुद्धि का कथन करनेवाली **'आधाकम्मादीया'** इत्यादि चार गाथायें हैं।

वहिरात्मजीवसवधिनो वधकारणभूतस्य शृङ्गारसहितपात्रस्थानीयस्य मिथ्याज्ञानस्य नाटकरूपेण प्रविशत सत शातरसपरिणत वीतरागसम्यक्त्वाविनाभूत भेदज्ञान प्रतिपेध करोतीति उपदिशति -

जह णाम को वि पुरिसो णेहब्भत्तो दु रेणुबहुलम्मि। (२३७) आ.ख्या.
ठाणम्मि ठाइदूण य करेदि सत्थेहि वायाम।। २५३।। ता.वृ.
छिददि भिददि य तहा तालीतलकयलिवसपिडीओ। (२३८)
सच्चित्ताचित्ताण करेदि दव्वाणमुवघाद।। २५४।।
उवघाद कुव्वतस्स तस्स णाणाविहेहि करणेहि। (२३९)
णिच्छयदो चितिज्ज हु कि पच्चयगो दु रयबधो।। २५५।।

तदनतर क्रोधादिकषाय (अध्यवसानभाव) कर्मवध के निमित्त हैं, और उन क्रोधादिकपायों (अध्यवसानभावों) को चेतन-अचेतन वाह्यद्रव्य निमित्त हैं, इसका प्रतिपादन करनेवाली 'जह फलिहमणि विसुद्धो' इत्यादि पॉच गाथायें हैं। तदनतर अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान वध का कारण है, और शुद्धात्मा (शुद्धात्मानुभव) वध का कारण नहीं है, इस कथन की मुख्यता से 'अप्पडिकमण' इत्यादि तीन गाथायें हैं। इस तरह समुदायरूप से ५६ गाथाओं के आठ अतरअधिकारों की वधाधिकार में यह समुदाय पातनिका है।

अव, बहिरात्मजीव (मिथ्यात्वी) के बध का कारणभूत मिथ्याज्ञान है, वह मिथ्याज्ञान शृगार सहित पात्र के समान नाटकरूप से प्रवेश कर रहा है, उसी समय शातरस से परिणत ऐसा जो वीतरागसम्यक्त्व के अविनाभूत रहनेवाला भेदज्ञान है, वह उस मिथ्याज्ञान का प्रतिपेध (विरोध) करता है, ऐसा उपदेश करते हैं -

गाथार्थ - (जह णाम) जिस प्रकार (को वि पुरिसो) कोई पुरुष (णेहब्भत्तो दु) तेल लगाकर (य) और (रेणुबहुलम्मि) वहुत धूलवाले (ठाणम्मि) स्थान में (ठाइदूण) रहकर (सत्थेहि) शस्त्रों से (वायाम) व्यायाम (करेदि) करता है।

(तहा) तथा (तालीतलकयलिवसपिडीओ) ताल, तमाल, केला और बास के पिड को (छिददि भिददि य) छेदता हे, भेदता है और (सच्चित्ताचित्ताण दव्वाण) सचित्त-अचित्त द्रव्यों का (उवघाद) उपघात (करेदि) करता है।

(णाणा विहेहि) अनेक प्रकार के (करणेहि) करणों के द्वारा (उवघाद) उपघात (कुव्वतस्स) करते हुए (तस्स) उस पुरुष के (रयबधो दु) धूलि का बध (हु) वास्तव में (कि पच्चयगो) किस कारण से होता हे (णिच्छयदो) निश्चय से यह (चितिज्ज) विचार करो।

(तम्हि णरे) उस मनुष्य के शरीर पर (सो जो दु णेहभावो) वह जो तेल की चिकनाहट है (तेण) उस कारण से (तस्स) उस मनुष्य को (रयबधो) धूलि का वध होता है। (सेसाहि) शेप (कायचेट्ठाहि) काय की चेष्टाओं से (ण) धूलि का वध नहीं होता है - यह (णिच्छयदो विण्णेय) निश्चय से जानना चाहिये।

(एव) इसी प्रकार (बहुविहासु) नाना प्रकार की (चिट्ठासु) चेष्टाओं में (वट्टतो) प्रवर्तमान (मिच्छादिट्ठी) मिथ्यादृष्टि जीव (उवओगे) उपयोग में (रागादी) रागादिभावों को (कुव्वतो) करता हुआ (रएण) कर्म रज से (लिप्पदि) लिप्त होता है।

जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबधो। (२४०)
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहि सेसाहि।।२५६।।
एव मिच्छादिट्ठी वट्टन्तो बहुविहासु चिट्ठासु। (२४१)
रायादी उवओगे कुव्वतो लिप्पदि रएण।।२५७।।

जह णाम को वि पुरिसो इत्यादि व्याख्यान क्रियते-यथा नाम स्फुटमहो वा कश्चित्पुरुष स्नेहाभ्यक्त सन् रजोबहुलस्थाने स्थित्वा शस्त्रैर्व्यायाममभ्यास श्रम करोति इति प्रथमगाथा गता।

छिनत्ति भिनत्ति च तथा। कान् ? तालतमालकदलीवशाशोकसज्ञान् वृक्षविशेषान् तत्सवधिसचित्ताचित्तद्रव्याणामुपघात च करोति इति द्वितीयगाथा गता। उपघात कुर्वाणस्य तस्य नानाविधैर्वैशाखरस्थानादिकरणविशेषैर्निश्चयतश्चिंत्यता विचार्यता कि प्रत्ययक कि निमित्तक तस्य रजोबध ? इति पूर्वपक्षरूपेण गाथात्रय गतम्।

अत्रोत्तर-य स्नेहभावस्तस्मिन्नरे स पूर्वोक्तस्तैलाभ्यगरूप तेन तस्य रजोवध इति निश्चयतो विज्ञेय न कायादिव्यापारचेष्टाभि शेषाभिरित्युत्तरगाथा। एव सूत्रचतुष्टयेन प्रश्नोत्तररूपेण दृष्टातो गत ।

अथ दार्ष्टान्तमाह- **एव मिच्छादिट्ठी वट्टतो बहुविहासु चेट्ठासु** एव पूर्वोक्तदृष्टातेन मिथ्यादृष्टिर्जीव विविधासु कायादिव्यापारचेष्टासु वर्तमान । **रागादी उवओगे कुव्वतो लिप्पदि रऐण** शुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुचरणरूपाणा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणामभावात् मिथ्यात्वरागाद्युपयोगान् परिणामान् कुर्वाण सन् कर्मरजसा लिप्यते वध्यत इत्यर्थ । एव यथा तैलम्रक्षितस्य रजोवधो भवति तथा मिथ्यात्वरागादिपरिणतस्य जीवस्य कर्मवधो भवति इति वधकारणतात्पर्यकथनरूपेण सूत्रपचक गतम्।।२५३ से २५७।।

टीकार्थ - जैसे कोई पुरुष अपने शरीर में तेल आदि पदार्थ लगाकर वहुत धूलिवाले स्थान में ठहरकर शस्त्रों से व्यायाम अथवा अभ्यास अथवा श्रम करता है। यह प्रथम गाथा का अर्थ है। वह पुरुष ताल, तमाल, केला, बॉस, अशोक आदि वृक्षों को छेदता है, भेदता है तथा उनसे सबध रखनेवाले सचित्त-अचित्त द्रव्यों का उपघात करता है। यह दूसरी गाथा का अर्थ हुआ। खुले मैदान में नानाविध शस्त्रों से उपघात करने वाले उस पुरुष को किस कारण से किस निमित्त से रजोबध होता है ? इसका निश्चिय से विचार करो, इस पूर्व पक्ष का कथन करनेवाली तीन गाथायें पूर्ण हुई। इसका उत्तर यह है कि, उस पुरुष के शरीर पर जो चिकनाहट है उससे धूलि का बध हुआ है, शरीर की क्रिया और शस्त्रादि शेषद्रव्यों के द्वारा धूलि का बध नहीं हुआ है, यह निश्चय से जानना चाहिये। इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप दृष्टात चार गाथाओं में पूर्ण हुआ। अब दार्ष्टान्त कहते हैं -

इस प्रकार पूर्वोक्त दृष्टात के समान मिथ्यादृष्टि जीव विविध शरीरादि क्रियाओं में प्रवर्तमान होने से उसको कर्मवध नहीं होता है, लेकिन शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप (अभेदरत्नत्रयरूप-स्वानुभूतिरूप) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अभाव से अपने उपयोग को मिथ्यात्वरागादि परिणामस्वरूप करने से वह कर्मो से लिप्त होता है।

इस प्रकार जैसे चिकनाहट से रजोबध (धूलिबध) होता है, वैसे मिथ्यात्व-रागादिपरिणत जीव को कर्मवध होता है। इस प्रकार कर्मबध का कारण कहने के तात्पर्य से पॉच गाथायें पूर्ण हुई।।२५३ से २५७।।

अथ गाथापचकेन वीतरागसम्यग्दृष्टिर्बंधाभाव दर्शयति -

जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वम्हि अवणिदे सते। (२४२)
रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहि वायाम।।२५८।।
छिंददि भिददि य तहा तालीतलकयलिवसपिडीओ। (२४३)
सच्चित्ताचित्ताण करेदि दव्वाणमुवघाद।।२५९।।
उवघाद कुव्वतस्स तस्स णाणाविहेहि करणेहि। (२४४)
णिच्छयदो चितिज्ज हु कि पच्चयगो ण रयबधो।।२६०।।
जो सो अणेहभावो तम्हि णरे तेण तस्सऽरयबधो।[1] (२४५)
णिच्छयदो विण्णेय ण कायचेट्ठाहि सेसाहि।।२६१।।
एव सम्मादिट्ठी वट्टतो बहुविहेसु जोगेसु। (२४६)
अकरतो उवओगे रागादि ण लिप्पदि रएण।।२६२।।

अव पाच गाथाओं द्वारा वीतराग सम्यग्दृष्टि (स्वानुभूति वाले चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव को वध का अभाव दिखाते हैं -

गाथार्थ - (जह) जिस प्रकार (पुण) पुन (सो चेव) वही (णरो) पुरुष (सव्वम्हिणेहे) सभी चिकनाहट के (अवणिदे सते) दूर किये जाने पर (रेणुबहुलम्मि) बहुत धूलिवाले (ठाणे) स्थान में (सत्थेहि) शस्त्रों से (वायाम) व्यायाम (करेदि) करता है।

(तहा य) और (तालीतलकयलिवसपिडीओ) ताल, तमाल, कदली, और वास के पिंड को (छिंददि भिददि य) छेदता है भेदता है और (सच्चित्ताचित्ताण दव्वाण) सचित्त-अचित्त द्रव्यों का (उवघाद) उपघात (करेदि) करता है।

(णाणाविहेहि) नाना प्रकार के (करणेहि) करणों के द्वारा (उवघाद) उपघात (कुव्वतस्स) करते हुए (तस्स) उस पुरुष के (हु) वास्तव में (कि पच्चयगो) किस कारण से (रयबधो ण) धूलि का वध नहीं होता है (णिच्छयदो) निश्चय से यह (चितिज्ज) विचार करो।

(तम्हि णरे) उस मनुष्य के शरीर पर (जो सो) वह जो (अणेहभावो) तेल की चिकनाहट नहीं है (तेण) उस कारण से (तस्स) उस मनुष्य को (अरयबधो) धूलि का वध नहीं होता है। (सेसाहि कायचेट्ठाहि) शेष काय की चेष्टाओं से (ण) धूलि का बध नहीं होता है यह (णिच्छयदो) निश्चय से (विण्णेय) जानना चाहिये।

(एव) इसी प्रकार (सम्मादिट्ठी) सम्यग्दृष्टि जीव (बहुविहेसु) नाना प्रकार के (जोगेसु) योगों में (वट्टतो) प्रवृत्ति करते हुए (उवओगे) उपयोग में (रागादी) रागादि भावों को (अकरतो) नहीं करता है, इसलिये वह (रएण) कर्मरज से (ण लिप्पदि) लिप्त नहीं होता है।

---

[1] पाठान्तर - जो मो दु णेह भावो तम्हि णरे तेण तस्स रयवधो

यथा स एव पूर्वोक्तो नर स्नेहे सर्वस्मिन्नपनीते सति धूलिबहुलस्थाने स्थित्वा शस्त्रैर्व्यायाममभ्यास श्रम करोतीति प्रथमगाथा गता।

छिनत्ति भिनत्ति च तथा, कान् ? तालतमालकदलीवशपिंडीसज्ञान् वृक्षविशेषान्। तत्सबधिसचित्ताचित्तद्रव्याणामुपघात च करोति इति द्वितीय गाथा गता।

उपघात कुर्वाणस्य तस्य नानाविधैर्वैशाखस्थानादिकरणविशेषै, निश्चयतश्चित्यताम् विचार्यताम् कि प्रत्ययक कि निमित्तक तस्य रजोबन्धो न भवति ? एव प्रश्नरूपेण गाथात्रय गतम्।

अत्रोत्तर- य स्नेहभावस्तस्मिन्नरे स पूर्वोक्ततस्तैलाभ्यगरूप तेन स तस्य रजोवन्ध इति निश्चयतो विज्ञेय। न कायादिव्यापारचेष्टाभि शेषाभि, तदभावात् तस्य बधो नास्तीत्यभिप्राय इत्युत्तरगाथा गता। एव सूत्रचतुष्टयेन प्रश्नोत्तररूपेण दृष्टातो गत ।

अथ दार्ष्टातमाह - **एव सम्मादिट्ठी वट्टतो बहुविहेसु जोगेसु** एव पूर्वोक्तदृष्टातेन सम्यग्दृष्टिर्जीव विविधयोगेषु नानाप्रकारमनोवचनकायव्यापारेषु वर्तमान । **अकरतो उवओगे रागादी** निर्मलात्मतत्त्वसम्यक्-श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाणा सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणा सद्भावात् रागाद्युपयोगान् परिणामानकुर्वाण सन्। **णेव बज्झदि रएण** कर्मरजसा न बध्यते। एव तैलम्रक्षणाभावे यथा रजोबधो न भवति तथा वीतरागसम्यग्दृष्टेर्जीवस्य रागाद्यभावात् बधो न भवति, इति बधाभावकारणतात्पर्यकथनरूपेण गाथापचक गतम्।

टीकार्थ - जैसे वह पूर्वोक्त पुरुष शरीर से सर्व चिकनाहट को दूर करके वहुत धूलिवाले स्थान में ठहरकर शस्त्रों से व्यायाम-श्रम करता है। यह प्रथम गाथा का अर्थ हुआ। वह पुरुष ताल, तमाल, केला, वास के पिड आदि को छेदता है, भेदता है, उस सबधी सचित्त, अचित्त द्रव्यों का उपघात करता है। यह दूसरी गाथा का अर्थ हुआ। खुले मैदान में नानाविध शस्त्रों से उपघात करनेवाले उस पुरुष को किस कारण से, किस निमित्त से रज का बध नहीं होता है ? यह निश्चय से विचार करो। इस प्रश्नरूप से तीन गाथायें पूर्ण हुई।

इस का उत्तर देते हैं कि - उस पुरुष के शरीर पर जो चिकनाहट पहले क्षण में थी उससे उसको धूलिबध होता था, शरीर की क्रिया से, शस्त्रों से धूलिबध नहीं होता था। यह निश्चय से जानना चाहिये। उस चिकनाहट का अभी अभाव होने से उसको अभी धूलिवध नहीं होता है, यह अभिप्राय है। इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप दृष्टान्त चार गाथाओं में पूर्ण हुआ। अब दार्ष्टान्त कहते हैं -

इस प्रकार पूर्वोक्त दृष्टात के समान सम्यग्दृष्टि जीव विविध योगों में- नानाप्रकार के मन-वचन-काय की क्रिया में प्रवृति करता है, तो भी निर्मल आत्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप (स्वानुभूतिरूप-अभेदरत्नत्रय रूप) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के सद्भाव से अपने उपयोग को मिथ्यात्व-रागादि परिणामस्वरूप न करने से कर्मो के द्वारा बाधा नहीं जाता है।

इस प्रकार जैसे चिकनाहट के अभाव से धूलि का वध नहीं होता है, वैसे **वीतराग सम्यग्दृष्टि** (स्वानुभूतिवाले-चतुर्थादि गुणस्थानवाले) जीव को रागादि का अभाव होने से बध नहीं होता है।

इस प्रकार वध के अभाव का कारण कहने का तात्पर्यरूप से पाँच गाथायें पूर्ण हुई।

कि च, यथात्र पातनिकाया भणित, सज्ञानिजीवस्य शातरसे स्वामित्वमज्ञानिनस्तु शृङ्गाराद्यष्टरसाना स्वामित्व, तथाध्यात्मविषये नाटकावतारप्रस्तावे नवरसाना स्वामित्व ज्ञातव्यम्। इति सूत्रदशकसमुदायेन प्रथमस्थल गतम् ।।२५८ से २६२।।

अथ वीतरागस्वभाव मुक्त्वा हिंस्यहिंसकभावेन परिणमनमज्ञानिजीवलक्षणम्। तद्विपरीत सज्ञानिलक्षणमिति प्रज्ञापयति -

जो मण्णदि हिसामि य हिसिज्जामि य परेहि सत्तेहि। (२४७)
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो।।२६३।।

जो मण्णदि हिसामि य हिसिज्जामि य परेहि सत्तेहि सो मूढो अण्णाणी यो मन्यते जीवानह हिनस्मि परै सत्वैरह हिस्ये इति च योऽसौ परिणाम स निश्चितमज्ञान स एव वध हेतु, स परिणामो यस्याम्ति स चाज्ञानी। **णाणी एत्तो दु विवरीदो** एतस्माद्विपरीतो यो जीवितमरणलाभालाभसुखदु खशत्रुमित्रनिदाप्रशसादिविकल्पविपये रागद्वेषरहितशुद्धात्मभावनासजातपरमानन्दसुखास्वादरूपे वा भेदज्ञाने रत स ज्ञानीत्यर्थ ।।२६३।।

अथ कथमयमध्यवसाय पुनरज्ञान ? इति चेत् -

आउक्खयेण मरण जीवाण जिणवरेहि पण्णत्त। (२४८)
आउ ण हरेसि तुम कह ते मरण कद तेसि।।२६४।।

और विशेष कहते हैं कि - यहाॅ पातनिका में कहा था कि यह नाटक है - तो यहाॅ सम्यग्ज्ञानी जीव का शातरस पर स्वामित्व है और अज्ञानी का शृगारादि आठ रसों पर स्वामित्व है, इस प्रकार इस अध्यात्म विषय में - अध्यात्म ग्रथ में - इस नाटक में नव रसों का स्वामित्व जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथमस्थल में १० सूत्रों का समुदाय पूर्ण हुआ।।२५८ से २६२।।

अब अपने वीतराग स्वभाव को (स्वानुभव को) छोडकर हिस्य-हिसक भाव से परिणमन करना अज्ञानी (मिथ्यात्व-सासादान-मिश्र गुणस्थानवर्ती) जीव का लक्षण है, उससे विपरीत (याने स्वस्वभाव में-स्वानुभव में रहना) सम्यज्ञानी (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) जीव का लक्षण है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(जो)** जो पुरुष ऐसा **(मण्णदि)** मानता है कि **(हिसामि)** मैं पर जीव को मारता हूॅ **(य)** और **(परेहि य सत्तेहि)** दूसरें जीवों के द्वारा अथवा शस्त्रों द्वारा **(हिसिज्जामि)** मैं मारा जाता हूॅ **(सो)** वह पुरुष **(मूढो अण्णाण्णी)** मोही, अज्ञानी है **(दु एत्तो)** लेकिन जो इससे **(विवरीदो)** विपरीत हे, वह **(णाणी)** ज्ञानी है।

टीकार्थ - जो मानता है कि 'मैं जीवों को मारता हूॅ, और दूसरे जीवों के द्वारा मैं मारा जाता हूॅ'। ऐसा जो परिणाम (याने मान्यता) है **वह निश्चित अज्ञान है, वह ही बध का कारण** है और वह परिणाम जिसका है, वह अज्ञानी है। इससे विपरीत जो जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दु ख, निदा-प्रशसा आदि विकल्प के विषय में रागद्वेष रहित है, अथवा शुद्धात्मभावभासना से उत्पन्न होनेवाले परमानन्द सुख के आस्वादरूप **भेदज्ञान में मग्न है वह ज्ञानी है।।२६३।।**

आउक्खयेण मरण जीवाण जिणवरेहि पण्णत्त। (२४९)
आउ ण हरति तुह कह ते मरण कद तेहि ।। 3

आउक्खयेण मरण जीवाण जिणवरेहि पण्णत्त आयु क्षयेण मरण जीवाना जिनवरै प्रज्ञप्त कथित। आउ ण हरेसि तुम कह ते मरण कद तेसि तेषामायु कर्म च न हरसि त्व तस्यायुष स्वोपभोगेनैव क्षीयमाणत्वात् कथ ते त्वया तेषा मरण कृतमिति।।२६४।।

जो मण्णदि जीवेमि य जीविज्जामि य परेहि सत्तेहि। (२५०)
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो।। 4
आऊदयेण जीवदि जीवो एव भणति सव्वण्हू। (२५१)
आउ च ण देसि तुम कह तए जीविद कद तेसि।।२६५।।
आऊदयेण जीवदि जीवो एव भणति सव्वण्हू। (२५२)
आउ च ण दिति तुह कह णु ते जीविद कद तेहि।। 5

यह अध्यवसाय ही अज्ञान कैसे है ? इसका उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(जीवाण)** जीवों का **(मरण)** मरण **(आउक्खेयण)** आयुकर्म के क्षय से होता है ऐसा **(जिणवरेहि)** जिनवर देवों ने **(पण्णत्त)** कहा है और **(तुम)** तू **(तेसि आउ)** उनकी आयु को **(ण हरेसि)** हरता नहीं है **(ते)** तो तूने **(मरण)** उनका मरण **(कह कद)** कैसे किया ?

(जीवाण) जीवों का **(मरण)** मरण **(आउक्खयेण)** आयुकर्म के क्षय से होता है ऐसा **(जिणवरेहि पण्णत्त)** जिनवरों ने कहा है **(ते)** वे दूसरे जीव **(तुह)** तेरा **(आउ)** आयुकर्म **(ण हरति)** नहीं हरते हैं तब **(तेहि)** उन्होंने **(मरण)** तेरा मरण **(कह कद)** कैसे किया ?

टीकार्थ - आयु के क्षय से जीवों का मरण होता है, ऐसा जिनवरों ने कहा हे, और उनका आयुकर्म तू नहीं हरता है, उनका आयुष्य उनके स्वय के भोगने से ही नष्ट होने से तूने उनका मरण कैसे किया? और उनके द्वारा तेरा मरण कैसे किया गया ?।।२६४।।

गाथार्थ - **(जो)** जो पुरुष **(मण्णदि)** ऐसा मानता है कि **(जीवेमि)** मैं परजीवों को जिलाता हूँ **(य)** और **(य परेहि सत्तेहि)** परजीव अथवा दूसरी वस्तुयें **(जीविज्जामि)** मुझे जिलाते हैं **(सो)** वह पुरुष **(मूढो)** मोही है **(अण्णाणी)** अज्ञानी है **(दु)** और जो **(एत्तो)** इससे **(विवरीदो)** विपरीत है वह **(णाणी)** ज्ञानी है।

(जीवो) जीव **(आउउदयेण)** आयुकर्म के उदय से **(जीवदि)** जीता है **(एव)** इस प्रकार **(सव्वण्हू)** सर्वज्ञदेव **(भणति)** कहते हैं **(तुम)** तू **(आउ च)** दूसरे को आयुकर्म **(ण देसि)** नहीं देता है तब **(तए)** तूने **(तेसि)** दूसरे जीवों को **(कह)** कैसे **(जीविद कद)** जीवित किया ?

(जीवो) जीव **(आउउदयेण)** आयुकर्म के उदय से **(जीवदि)** जीता है **(एव)** इस प्रकार **(सव्वण्हू)** सर्वज्ञदेव **(भणति)** कहते हैं परजीव **(तुह)** तुझे **(आउ)** आयुकर्म **(ण दिति)** नहीं देते हैं **(णु)** तव **(तेहि)** उन दूसरे जीवों ने **(ते)** तुझे **(जीविद)** जीवित **(कह)** कैसे **(कद)** किया ?

आऊदयेण जीवदि जीवो एव भणति सव्वण्हू आयुरुदयेन जीवति जीव एव भणति सर्वज्ञा । **आउ च ण देसि तुम कह तए जीविद कद तेसि** आयु कर्म च न ददासि त्व तेपा जीवाना तस्यायुप स्वकीय शुभाशुभपरिणामेनैव उपार्ज्यमाणत्वात्, कथ त्वया जीवित कृतम् ? न कथमपि।

किच, ज्ञानिना पुरुषेण स्वसवित्ति लक्षणत्रिगुणत्रिगुप्तिसमाधौ स्थातव्य तावत्। तदभावे चाशक्यानुष्ठानेन प्रमादेन अस्य मरण करोमि, अस्य जीवित करोमि, इति यदा विकल्पो भवति तदा मनसि चितयति अस्य शुभाशुभकर्मोदये सति, अह निमित्तमात्रमेव जात इति मत्वा मनसि रागद्वेप रूपोऽहकारो न कर्तव्य इति भावार्थ ।।२६५।।

अथ सुखदु खमपि निश्चयेन स्वकर्मोदयवशाद् भवति, इत्युपदिशति -

जो अप्पणा दु मण्णदि दु.क्खिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति। (२५३)
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो।।२६६।।

जो अप्पणा दु मण्णदि दु क्खिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति य कर्ता आत्मन सवधित्वेन मन्यते। किम्? दु खितसुखितान् सत्वान् करोम्यहम्। **सो मूढो अण्णणी णाणी एत्तो दु विवरीदो** यश्चाहमिनि परिणामो निश्चितमज्ञान स एव बधकारण स परिणामो यस्यास्ति स अज्ञानी वहिरात्मा एतस्माद्विपरीत परमोपेक्षासयम-भावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेभेदज्ञाने स्थितो ज्ञानीति।। २६६ ।।

टीकार्थ - आयुकर्म के उदय से जीव जीता है - ऐसा सर्वज्ञ देव कहते हैं, तो फिर तू उनको आयुकर्म नहीं देता है, क्योंकि उन जीवों का आयुष्य-अपने-अपने शुभाशुभ परिणामों से प्राप्त हुआ है, तो तूने उनको जीवित कैसे किया ? तूने किसी भी प्रकार से उनको जीवित नहीं किया हे। कुछ और - सम्यग्ज्ञानी जीव को स्वसवित्ति लक्षणवाले सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप त्रिगुप्ति समाधि में (स्वानुभव में) स्थिर रहना चाहिये। यदि प्रमाद से या अशक्ति के कारण (स्वानुभव में निरतर स्थिर नहीं रह सकता है अथवा स्वानुभव के अभाव में) जव विकल्प आता है कि मैं उसको मारता हूँ, मैं उसको जीवित करता हूँ, उस समय ज्ञानी विचार करता है कि, उसके शुभाशुभ कर्मोदय से वह जीव मरता है, वह जीव जीता है, मैं तो निमित्त मात्र (अकिचित्कर) ही था, ऐसा मानकर, जानकर, मन में रागद्वेषरूप अहकार नहीं करना चाहिये। ऐसा भावार्थ है।।२६५।।

अब, निश्चय से सुख-दु ख भी अपने कर्म के उदय के वश से होते हैं, ऐसा उपदेश करते हैं-

गाथार्थ - **(जो)** जो **(त्ति मण्णदि)** ऐसा मानता है कि **(अप्पणा दु)** मैं अपने द्वारा ही **(सत्ते)** दूसरें जीवों को **(दु क्खिद सुहिदे)** दु खी और सुखी **(करेमि)** करता हूं **(सो)** वह **(मूढो)** मोही है, **(अण्णाणी)** अज्ञानी है **(एत्तो दु)** इससे जो **(विवरीदो)** विपरीत है वह **(णाणी)** ज्ञानी है।

टीकार्थ - जो अपने सबध से जीवों को 'मैं दु खी-सुखी करता हूँ' ऐसा मानता है, वह जो अह याने 'मैं' रूप जो परिणाम है वह निश्चित ही अज्ञान है, **वह अज्ञान ही बध का कारण है,** वह परिणाम जिसको है वह अज्ञानी है, बहिरात्मा है। इससे विपरीत जो परम उपेक्षासयम भावना से परिणत अभेदरत्नत्रय लक्षण (स्वानुभव) रूप भेदज्ञान में रहता है, वह ज्ञानी है।।२६६।।

अथ परस्य सुखदु ख करोमीत्यध्यवसायक कथमज्ञानी जात ? इति चेत् -

कम्मणिमित्त सव्वे[१] दुक्खिदसुहिदा हवति जदि सत्ता[२]। (२५४)
कम्म च ण देसि तुम दुक्खिदसुहिदा कह कदा ते।।२६७।।
कम्मणिमित्त सव्वे[१] दुक्खिदसुहिदा हवति जदि सत्ता[२]। (२५६)
कम्म च ण देसि तुम[३] कह त सुहिदो कदो तेहि।।२६८।।
कम्मोदयेण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवति जदि सव्वे। (२५५)
कम्म च ण देसि तुम[३] कह त दुहिदो कदो तेहि[४]।।२६९।।

अब, दूसरे को मैं सुखी-दु खी करता हूँ, यह परिणाम करनेवाला (अध्यवसान भाव करनेवाला) **अज्ञानी कैसे होता है** ? उसका उत्तर कहते है -

गाथार्थ - **(जदि)** यदि **(कम्मणिमित्त)** कर्मोदय के निमित्त में **(सव्वे)** सभी **(सत्ता)** जीव **(दुक्खिदसुहिदा)** दु खी और सुखी **(हवति)** होते हैं **(च)** और **(तुम)** तू उनको **(कम्म)** कर्म तो **(ण देसि)** नहीं देता है तब **(ते)** वे जीव तेरे द्वारा **(दुक्खिदसुहिदा)** दु खी और सुखी **(कह)** कैसे **(कदा)** किये गये ?

(जदि) यदि **(कम्मणिमित्त)** कर्मोदय के निमित्त में **(सव्वे)** सभी **(सत्ता)** जीव **(दुक्खिदसुहिदा)** दु खी और सुखी **(हवति)** होते हैं **(च)** और **(तुम कम्म)** तुझको कर्म तो उनके द्वारा **(ण देसि)** नहीं दिया जाता है तो **(तेहि)** उनके द्वारा **(त)** तुझे **(सुहिदो)** सुखी **(कह कदो)** कैसे किया गया ?

(जदि) यदि **(कम्मोदयेण)** कर्मोदय से **(सव्वे)** सभी **(जीवा)** जीव **(दुक्खिदसुहिदा)** दु खी और सुखी **(हवति)** होते हैं **(च)** और **(तुम कम्म)** तुझे कर्म तो **(ण देसि)** उनके द्वारा नहीं दिया जाता है तो **(तेहि)** उनके द्वारा **(त)** तुझे **(दुहिदो)** दु खी **(कह कदो)** कैसे किया गया ?

टीकार्थ - यदि कर्मोदय के निमित्त में सभी जीव सुखी-दु खी होते हैं और तू तो उन्हें शुभाशुभ कर्म नहीं देता है तो **वे जीव तेरे द्वारा सुखी और दु खी कैसे किये गये** ? याने तेरे द्वारा वे जीव किसी भी प्रकार से सुखी-दु खी नहीं होते हैं।

यदि कर्मोदय के निमित्त में सभी जीव सुखी-दु खी होते हैं और वे तो तुझे शुभाशुभ कर्म नहीं देते हैं तो **उनके द्वारा तू सुखी कैसे किया गया** ? याने वे तुझे किसी भी प्रकार से सुखी नहीं कर सकते हैं।

यदि कर्मोदय से सभी जीव सुखी-दु खी होते हैं और वे तो तुझे शुभाशुभ कर्म नहीं देते हैं तो **उनके द्वारा तू दु खी कैसे किया गया** ? याने उनके द्वारा तुझे किसी भी प्रकार से दु खी नहीं किया जा सकता है।

इसका मतलब यह है कि, सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) जीव, **'मैं दूसरे जीव को सुख-दु ख देता हूँ'** ऐसा विकल्प नहीं करता है। और जब निर्विकल्प समाधि (स्वानुभूति के) अभाव में प्रमाद से (सम्यक्त्व सहित विकल्प की भूमिका में) **'मैं सुखी-दु खी करता हूँ'** ऐसा विकल्प होता है, तब मन में विचार करता है कि, उस जीव के अतरग पुण्य-पापोदय से वह जीव सुखी-दु खी हुआ है और मैं निमित्त मात्र (अकिचित्कर) ही हूँ, ऐसा मन में जानकर (मानकर) हर्ष-विषाद परिणाम से गर्व नहीं करता है।

---

१ पाठान्तर - कम्मोदयेण जीवा । २ सव्वे । ३ ण दिंति तुह । ४ कदोसि किह दुक्खिदो तेहिं ।

कम्मणिमित्त सव्वे दुक्खिदसुहिदा हवति जदि सत्ता यदि चेत् कर्मोदयनिमित्त सर्वे सत्त्वा जीवा सुखितदु खिता भवति। **कम्म च ण देसि तुम**[१] **दुक्खिदसुहिदा कह कदा ते** तर्हि शुभाशुभ कर्म च न ददासि त्व कथ ते जीवास्त्वया सुखितदु खिता कृता ? न कथमपि। **कम्मणिमित्त सव्वे दुक्खिदसुहिदा हवति जदि सत्ता** यदि चेत्कर्मोदयनिमित्त सर्वे जीवा सुखितदु खिता भवति। **कम्म च ण देसि तुम कह त सुहिदो कदो तेहि** तर्हि शुभाशुभ कर्म च न ददासि त्व न प्रयच्छसि तेभ्य कथ त्व सुखी कृतस्तै ? न कथमपि। **कम्मोदयेण जीवा दु खिदसुहिदा हवति जदि सव्वे** यदि चेत् कर्मोदयेन सर्वे जीवा दु खितसुखिता भवति। **कम्म च ण देसि तुम कह त दुहिदो कदो तेहि** तर्हि शुभाशुभ कर्म च न ददासि त्व न प्रयच्छसि तेभ्य कथ त्व दु खी कृतस्तै ? न कथमपि।

कि च, तत्त्वज्ञानी जीवस्तावत् 'अन्यस्मै परजीवाय सुखदु खे ददामि, इति विकल्प न करोति। यदा पुनर्निर्विकल्पसमाधेरभावे सति प्रमादेन सुखदु ख करोमीति विकल्पो भवति तदा मनसि चितयति अस्य जीवस्यात-रगपुण्यपापोदयो जात अह पुनर्निमित्तमात्रमेव इति ज्ञात्वा मनसि हर्षविषादपरिणामेन गर्वं न करोति इति। एव परजीवाना जीवितमरण सुखदु ख करोमिति व्याख्यानमुख्यतया गाथासप्तकेन द्वितीयस्थल गतम्।।२६७ से २६९।।

अथ परो जन परस्य निश्चयेन जीवितमरणसुखदु ख करोतीति योऽसौ मन्यते स वहिरात्मेति प्रतिपादयति-

> **जो मरदि जो य दुहिदो जायदि कम्मोदएण सो सव्वो। (२५७)**
> **तम्हा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा।।२७०।।**
> **जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि य कम्मोदएण खलु जीवो।**[१] **(२५८)**
> **तम्हा ण मारिदो दे**[२] **दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा।।२७१।।**

इस प्रकार मैं दूसरे जीवों का जीवन-मरण, सुख-दु ख करता हूँ, इत्यादि के व्याख्यान की मुख्यता से सात गाथाओं वाला दूसरा स्थल पूर्ण हुआ।।२६७ से २६९।।

अब, एक जीव निश्चय से दूसरे का जीवन-मरण सुख-दु ख करता हे, ऐसा जो मानता है, वह बहिरात्मा (मिथ्यात्व, सासादान, मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव) है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(जो)** जो **(मरदि)** मरता है **(य)** और **(जो)** जो **(दुहिदो)** दु खी होता है **(सो सव्वो)** वह सव **(कम्मोदयेण)** कर्म के उदय से **(जायदि)** होता है, **(तम्हा दु)** इसलिये **(मारिदो)** मैंने दूसरे को मार दिया **(च दुहाविदो)** और मैंने दूसरे को दु खी किया **(इदि)** ऐसा **(दे)** तेरा अभिप्राय **(ण हु मिच्छा)** क्या वास्तव में मिथ्या नहीं है ?

(जो जीवो) जो जीव **(ण मरदि)** नहीं मरता है **(य)** और **(ण दुहिदो)** जो दु खी नहीं होता है **(सो वि य)** वह भी **(खलु)** वास्तव में **(कम्मोदयेण)** कर्म के उदय से ही होता है **(तम्हा)** इसलिये **(ण मारिदो च दुहाविदो)** इसको मैंने नहीं मरने दिया और इसको मैंने दु खी नहीं होने दिया **(इदि)** ऐसा **(दे)** तेरा अभिप्राय **(ण हु मिच्छा)** क्या वास्तव में मिथ्या नहीं है ?

---

१ पाठान्तर - चेव खलु २ पाठान्तर - णो

जो मरदि जो य दुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो यो म्रियते यश्च दुखितो भवति स सर्वोऽपि कर्मोदयेन जायते। **तम्हा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा** तस्मात्कारणात् मया मारितो दुखी कृतश्चेति तवाभिप्रायोय न खलु मिथ्या ? कितु मिथ्यैव। **जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि य कम्मोदयेण खलु जीवो** यो न म्रियते यश्च दुखितो न भवति। कोऽसौ ? जीव खलु स्फुट स सर्वोऽपि कर्मोदयेनेव। **तम्हा ण मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा** तस्मात् कारणात् न मारितो मया न च दुखी कृतश्चेति तवाभिप्रायोऽय न खलु मिथ्या ? अपि तु मिथ्यैव। अनेनापध्यानेन स्वस्वभावाच्च्युतो भूत्वा कर्मैव वध्नातीति भावार्थ ।।२७०, २७१।।

अथ स एव पूर्वसूत्रद्वयोक्तो मिथ्याज्ञानभावो मिथ्यादृष्टेर्बंधकारण भवतीति कथयति -

एसा दु जा मदी दे दुःक्खिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति। (२५९)
एसा दे मूढमदी सुहासुह बधदे कम्म।।२७२।।

एसा दु जा मदी दे दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति एषा या मतिरत्ते तव दुखितसुखितान् करोम्यह सत्वान् **एसा दे मूढमदी सुहासुह बधदे कम्म** सैषा भवदीया मति हे मूढमते । स्वस्वभावच्युतस्य शुभाशुभ कर्म बध्नाति न किमप्यन्यत्कार्यमस्ति इति।।२७२।।

टीकार्थ - जो मरता है और जो दुखी होता है, वह सभी कर्मोदय से होता है। इस कारण से **"मैंने मारा और मैंने दुखी किया,"** ऐसा तेरा अभिप्राय क्या वास्तव में मिथ्या नहीं हे ? याने वह अभिप्राय मिथ्या ही है।

जो जीव मारा नहीं जाता और जो जीव दुखी नहीं किया जाता है वास्तव में वह सब भी कर्मोदय से ही होता है। इस कारण से **"मैंने उसे नहीं मरने दिया,** और **मैंने उसे दुखी नहीं होने दिया,"** ऐसा तेरा अभिप्राय क्या वास्तव में मिथ्या नहीं है ? याने इस प्रकार का तेरा अभिप्राय मिथ्या ही है और **इस अपध्यान के द्वारा स्वस्वभाव से (स्वानुभव से) च्युत होकर कर्म का बध ही होता है,** यह भावार्थ है।।२७०, २७१।।

अब, पूर्व की दो गाथाओं में कहा हुआ मिथ्याज्ञानभाव ही मिथ्यादृष्टि के बध का कारण है, ऐसा कहते हैं-

गाथार्थ - **(दे दु)** तेरी **(एसा जा मदी)** ऐसी जो बुद्धि **(त्ति)** है कि मै **(सत्ते)** जीवों को **(दुक्खिदसुहिदे)** दुखी-सुखी **(करेमि)** करता हूँ **(एसा दे)** यह तेरी **(मूढमदी)** मूढवुद्धि ही **(सुहासुह)** शुभ और अशुभ **(कम्म)** कर्मो को **(बधदे)** बाधती है।

टीकार्थ - हे मूढमते! **"मैं जीवों को सुखी-दुखी करता हूँ,"** ऐसी जो तेरी मति है, वह आपकी मति अपने स्वभाव से (स्वानुभव से) च्युत होने से शुभाशुभकर्म को वाधती है, और इसका कुछ भी दूसरा कार्य नहीं हे।।२७२।।

अब, निश्चयनय से **रागादि अध्यवसानभाव ही बध का कारण है,** ऐसा कथन करके उस ही अर्थ को दृढ करते हैं -

अथ निश्चयेन रागाद्यध्यवसानमेव वधहेतुर्भवति इति प्रतिपादनरूपेण तमेवार्थं दृढयति -

दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि ज एवमज्झवसिद ते। (२६०)
त पावबधग वा पुण्णस्स व बधग होदि।।२७३।।
मारेमि जीवावेमि य सत्ते ज एवमज्झवसिद ते। (२६१)
त पावबधग वा पुण्णस्स व बधग होदि।।२७४।।

दु खितसुखितान् सत्त्वान् करोम्यह कर्ता यदेवमध्यवसित रागद्यध्यवसान ते तव शुद्धात्म भावना च्युतस्य सत पापस्य वा पुण्यस्य वा तदेव वधकारण भवति न चान्यत् किमपि दु खादिक कर्तुमायाति। कस्मात् ? इति चेत्, तस्य सुखदु खपरिणामस्य जीवस्य स्वोपार्जितशुभाशुभकर्माधीनत्वात् इति। मारयामि जीवयामि सत्त्वान् यदेवमध्यवसित ते तव शुद्धात्मश्रद्धानज्ञानानुष्टानशून्यस्य सत पापस्य वा पुण्यस्य वा तदेव वधक भवति न चान्यत् किमपि कर्तुमायाति। कस्मात् ? इति चेत्, तस्य परजीवस्य जीवितमरणादे स्वोपार्जितकर्मोदयाधीनत्वात् इति।। २७३, २७४।।

गाथार्थ - मैं **(सत्ते)** जीवों को **(दुक्खिदसुहिदे)** दु खी ओर सुखी **(करेमि)** करता हूँ **(एव)** इस प्रकार का जो **(ते)** तेरा **(अज्झवसिद)** रागादि अध्यवसान है **(त)** वह अध्यवसान भाव **(पावबधग वा)** पाप का वध करनेवाला **(व पुण्णस्स बधग)** अथवा पुण्य का वध करनेवाला **(होदि)** होता है।

मैं **(सत्ते)** जीवों को **(मारेमि)** मारता हूँ **(य)** और **(जीवावेमि)** जिलाता हूँ **(एव ज)** इस प्रकार का जो **(ते)** तेरा **(अज्झवसिद)** रागादि अध्यवसानभाव है **(त)** वह अध्यवसानभाव **(पावबधग वा)** पाप का वध करनेवाला **(व पुण्णस्स बधग)** अथवा पुण्य का वन्ध करने वाला **(होदि)** होता हे।

टीकार्थ - **'मैं जीवों को दु खी सुखी करता हूँ'** इस प्रकार का जो तेरा अध्यवसित भाव याने रागादि अध्यवसानभाव है, वह शुद्धात्मानुभव से च्युत होने से पाप अथवा पुण्य के वध का कारण है, और अन्य दूसरा कुछ भी कारण दु खादिक करने के लिये समर्थ नहीं है, क्योंकि पर जीवों का सुखदु खरूप परिणमन उनके स्वउपार्जित शुभाशुभकर्म के अधीन है।

'मैं जीवों को मारता हूँ, मैं जीवों को जिलाता हूँ, इस प्रकार का जो तेरा अध्यवसित भाव है वह शुद्धात्मस्वभाव का श्रद्धान, ज्ञान, और अनुष्टान से रहित होने से वह अध्यवसान ही पाप अथवा पुण्य के बध का कारण है, और अन्य दूसरा कुछ भी नहीं कर सकता है, क्योंकि उस पर जीव का जीवनमरण उसके स्वउपार्जित कर्मोदय के आधीन है।। २७३, २७४।।

अब, इस प्रकार निश्चयनय से विचार किया जाय तो **हिसा का अध्यवसानभाव ही हिसा है,** ऐसा सिद्ध होता है, यह कहते हैं -

गाथार्थ - **(णिच्छयणयस्स)** निश्चयनय से **(सत्ते)** जीवों को **(मारेहि)** मारो **(व)** अथवा **(मा मारेहि)** न मारो **(जीवाण)** जीवों को **(अज्झवसिदेण)** अध्यवसान से ही **(बधो)** कर्मवध होता है, **(ऐसो बधसमासो)** यह वध का सक्षेप है।

अथैव निश्चयनयेन हिसाध्यवसाय एव हिसेत्यायात विचार्यमाण -

अज्झवसिदेण बधो सत्ते मारेहि मा व मारेहि।[1] (२६२)
एसो बधसमासो जीवाण णिच्छयणयस्स।।२७५।।

अज्झवसिदेण बधो सत्ते मारेहि मा व मारेहि अध्यवसितेन परिणामेन वधो भवति, सत्त्वान् मारयमा वा मारय। **एसो बधसमासो** एष प्रत्यक्षीभूतो बधसमास वधसक्षेप । तद्विपरीतेन निरुपाधिचिदानन्दैकलक्षणनिर्विकल्प-समाधिना मोक्षो भवतीति मोक्ष समास । केषा ? **जीवाण णिच्छयणयस्स** जीवाना निश्चयनयस्येति। एव जीवित-मरणसुखदु खानि परेषा करोमीत्यध्यवसाय एव बधकारण, प्राणव्यपरोपणादि व्यापारो भवतु मा भवतु वा। एव सर्व ज्ञात्वा रागाद्यपध्यान त्यजनीयमिति व्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रपट्केन तृतीयस्थल गतम्।।२७५।।

अथ हिसाध्यवसान पूर्वमुक्त तावत् इदानीं पुन असत्याद्यव्रताध्यबसानै पाप सत्याद्यध्यवसानैश्च पुण्यबधो भवतीत्याख्याति -

एवमलिए अदत्ते अबभचेरे परिग्गहे चेव। (२६३)
कीरदि अज्झवसाण ज तेण दु बज्झदे पाव।।२७६।।
तह वि य सच्चे दत्ते[2] बभे अपरिग्गहेत्तणे चेव। (२६४)
कीरदि अज्झवसाण ज तेण दु बज्झदे पुण्ण।।२७७।।

टीकार्थ - जीवों को मारो अथवा न मारो, अध्यवसित परिणाम याने अध्यवसान से कर्म बध होता है, यह प्रत्यक्षीभूत वध का सक्षेप है। उससे विपरीत निरुपाधि चिदानद एक लक्षणवाले निर्विकल्प समाधि से (स्वानुभव से) मोक्ष होता है, यह मोक्ष का सक्षेप है।

शका - किन को बध और मोक्ष होता है ?

समाधान - नियचयनय से **अध्यवसान भाव से ही जीवों को कर्मबध होता** है और निश्चयनय **से स्वानुभव से ही जीवों को मोक्ष होता** है।

इस प्रकार द्रव्यप्राणों की हिसा होवो अथवा न होवो 'मैं दूसरों के जीवन-मरण सुख-दु ख करता हूँ' यह **अध्यवसानभाव ही बध का कारण** है।

इस प्रकार सब जानकर रागादि अध्यवसान का त्याग करना चाहिये, इस कथन की मुख्यता से छ गाथाओं के द्वारा तीसरा स्थल पूर्ण हुआ।।२७५।।

अव, **अध्यवसान भाव ही हिसा है** यह पहले वताया है, अव यहाँ असत्यादि अव्रत अध्यवसान भावों से पापबध होता है और सत्यादि अध्यवसान भावों से पुण्यवध होता है, ऐसा कहते हैं -

---

[1] पाठान्तर - मारेउ मा व मारेउ । [2] तह य अचोज्जे सच्चे ।

एवमसत्ये चौर्येऽब्रह्मणि परिग्रहे चैव यत्क्रियतेऽध्यवसान तेन पाप वध्यते इति प्रथमगाथा गता। यश्चाचौर्ये सत्ये ब्रह्मचर्ये तथैवापरिग्रहत्वे यत्क्रियतेऽध्यवसान तेन पुण्य वध्यते इति व्रताव्रतविषये पुण्यपाप बधरूपेण सूत्रभूतगाथाद्वय गतम्।। २७६, २७७।।

अत परमिदमेव सूत्रद्वय परिणाममुख्यत्वेन त्रयोदश गाथाभिर्विवृणोति। तद्यथा -

बाह्य वस्तु रागादिपरिणामकारण परिणामस्तु बधकारणमित्यावेदयति -

वत्थु पडुच्च ज पुण अज्झवसाण तु होदि जीवाण। (२६५)
ण हि[1] वत्थुदो दु बधो, अज्झवसाणेण बधोत्ति।।२७८।।

वत्थु पडुच्च ज पुण अज्झवसाण तु होदि जीवाण वाह्यवस्तु चेतनाचेतन पचेंद्रियविषयभूत प्रतीत्य आश्रित्य जीवाना तत्प्रसिद्ध रागाद्यध्यवसान भवति। **ण हि वत्थुदो दु बधो** न हि वस्तुन सकाशाद्वधो भवति। तर्हि केन वध ? **अज्झवसाणेण बधोत्ति** वीतरागपरमात्मतत्त्वभिन्नेन रागाद्यध्यवसानेन वधो भवति। वस्तुन सकाशाद्बधो कथ न भवतीति चेत् ? अन्वयव्यतिरेकाभ्या व्यभिचारात्।

गाथार्थ - (एव) पहले हिंसा का अध्यवसान कहा था उसके समान (अलिए) असत्य में (अदत्ते) चोरी में (अबभचेरे) अब्रह्मचर्य में (चेव) और (परिग्गहे) परिग्रह में (ज) जो (अज्झवसाण) अध्यवसान (कीरदि) किया जाता है (तेण दु) उससे ही (पाव) पाप (बज्झदे) वन्ध होता है।

(तह वि य) और उसी प्रकार (सच्चे) सत्य में (दत्ते) अचौर्य में (वभे) ब्रह्मचर्य में (चेव) और (अपरिग्गहत्तणे) अपरिग्रह में (ज) जो (अज्झवसाण) अध्यवसान (कीरदि) किया जाता है (तेण दु) उससे ही (पुण्ण) पुण्य (बज्झदे) वध होता है।

टीकार्थ - इस प्रकार असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह में जो अध्यवसान भाव किया जाता है उससे पाप का बध होता है। यह प्रथम गाथा का अर्थ हुआ। और सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह में जो अध्यवसान भाव किया जाता है, उससे पुण्य का बध होता है। इस प्रकार अव्रत और व्रत इनके विषय में पाप और पुण्य का बध होता है, यह कथन करनेवाली दो गाथायें पूर्ण हुई।। २७६, २७७।।

अब इसके आगे परिणामों की मुख्यता से इन्हीं दो गाथाओं का १३ गाथाओं से विशेष वर्णन करते हैं। यहाँ कहते हैं कि, वाह्य वस्तु रागादि परिणामों के होने के लिए कारण है, और रागादि परिणाम बध का कारण है -

गाथार्थ - (पुण) और (वत्थु पडुच्च) वस्तु का अवलवन करके (जीवाण) जीवों के (ज अज्झवसाण) जो अध्यवसान (होदि) होता है (तु) तो भी (वत्थुदो) वस्तु से (ण हि बधो) बध नहीं होता है (दु) लेकिन वास्तव में (अज्झवसाणेण) अध्यवसान से ही (बधोत्ति) वध होता है।

---

[1] पाठान्तर - य

दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बधेमि तह विमोचेमि दु खितसुखितान् जीवान् करोमि, वध्नामि (वधयामि), तथा विमोचयामि। **जा एसा तुज्झ मदी णिरत्थया सा हु दे मिच्छा** या एपा तव मति सा निरर्थिका निष्प्रयोजना **हु** स्फुट। **दे** अहो तत कारणात् मिथ्या वितथा व्यलीका भवति। कस्मात् ? इति चेत्, भवदीयाध्यवसाने सत्यपि परजीवाना सातासातोदयाभावात् सुखदु खाभाव स्वकीयशुद्धाशुद्धाध्यवसानाभावात् बधो मोक्षाभावश्चेति।।२७९।।

अथ कस्मादध्यवसान स्वार्थक्रियाकारि न भवतीति चेत् -

अज्झवसाणणिमित्त जीवा बज्झति कम्मणा जदि हि। (२६७)
मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ते कि करोसि तुम।।२८०।।

अज्झवसाणणिमित्त जीवा बज्झति कम्मणा जदि हि मिथ्यात्वरागादिस्वकीयाध्यवसाननिमित्त कृत्वा ते जीवा नियचयेन कर्मणा वध्यन्ते इति चेत् ? **मुच्वति मोक्खमग्गे ठिदा य ते** शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुचरणरूपनिश्चयरत्नत्रयलक्षणे मोक्षमार्गे स्थिता पुनर्मुच्यते यदि चेत्ते जीवा। **कि करोसि तुम** तर्हि कि करोषि त्व हे दुरात्मन्! न किमपीति, त्वदीयाध्यवसान स्वार्थक्रियाकारि न भवति।।२८०।।

स्वकीय अशुद्ध शुद्धाध्यवसान का अभाव होने से वध और मोक्ष का अभाव होता है। (आपके अध्यवसानभाव करने पर भी यदि उन जीवों का अध्यवसानभाव न होने पर वे बद्ध नहीं होते हैं या मुक्त नहीं होते हैं और आपके अध्यवसान भाव न करने पर भी यदि उन जीवों का राग सहित अध्यवसानभाव है, तो वे बद्ध होते हैं या उन जीवों का वीतरागभाव है तो वे मुक्त होते हैं।)।।२७९।।

अब, **अध्यवसान स्वार्थक्रियाकारी क्यों नहीं है** ? इसका उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(जदि हि)** यदि वास्तव में **(अज्झवसाणणिमित्त)** अध्यवसान के निमित्त से **(जीवा)** जीव **(कम्मणा)** कर्मो से **(बज्झति)** बधते हैं **(य)** और **(मोक्खमग्गे)** मोक्षमार्ग में **(ठिदा)** स्थित **(ते)** वे **(मुच्वंति)** कर्मो से मुक्त होते हैं तो **(तुम)** तू **(कि करोसि)** क्या करता ? (अर्थात् तेरे अध्यवसान से दूसरे की कुछ भी अर्थक्रिया नहीं हुई।)

टीकार्थ - यदि अपने मिथ्यात्व-रागादि अध्यवसान को निमित्त करके वे जीव अशुद्ध निश्चयनय से भाव कर्मो से बाधे जाते हैं। और यदि शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप निश्चय रत्नत्रय लक्षणवाले मोक्षमार्ग में जो जीव स्थित हैं वे कर्मो से मुक्त होते हैं, तो फिर, हे दुरात्मन् ! तू उनका क्या कर सकता है? तू उन जीवों का कुछ भी नहीं कर सकता है। इसलिये तेरा अध्यवसान कुछ भी स्वार्थक्रियाकारी नहीं है।।२८०।।

अब, जीव स्वकीय पापोदय से दु खी होते हैं और तुम्हारे अध्यवसानभाव से वे दु खी नहीं होते हैं, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(जदि)** यदि **(सत्ता)** जीव **(कम्मेण)** अपने कर्मो से **(दुहिदा)** दु खी होते हैं **(तु)** तो मैं **(सत्ते)** जीवों को **(कायेण)** शरीर से **(दुक्खवेमिय)** दु खी करता हूँ **(एव)** इस प्रकार से तू **(ज मदि)** जो बुद्धि **(कुणसि)** करता है **(सव्वावि एस मिच्छा)** वह सब विकल्पमय बुद्धि भी मिथ्या है।

अथ दु खिता जीवा स्वकीयपापोदयेन भवति न च भवदीय परिणामेनेति -

कायेण दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु ज मदि कुणसि।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता।।२८१।।

वाचाए दुक्खवेमिय सत्ते एव तु ज मदि कुणसि।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता।।२८२।।

मणसाए दुक्खवेमिय सत्ते एव तु ज मदि कुणसि।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता।।२८३।।

सच्छेण दुक्खवेमिय सत्ते एव तु जं मदि कुणसि।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता।।२८४।।

कायेण इत्यादि स्वकीयपापोदयेन जीवा दु खिता भवति यदि चेत्? तेषा जीवाना स्वकीयपापकर्मोदयाभावे भवतो किमपि कर्तुं नायाति इति हेतो । मनोवचनकायै शस्त्रैश्च जीवान् दु खितान् करोमि इति रे दुरात्मन्! त्वदीया मतिर्मिथ्या ! पर किंतु स्वस्वभावच्युतो भूत्वा त्व पापमेव वध्नासि इति।।२८१ से २८४।।

अथ सुखिता अपि निश्चयेन स्वकीयशुभकर्मोदये सति भवतीति कथयति -

(जदि) यदि (सत्ता) जीव (कम्मेण) अपने कर्मो से (दुहिदा) दु खी होते हैं (तु) तो मैं (सत्ते) जीवों को (वाचाए) वचन से (दुक्खवेमिय) दु खी करता हूँ (एव) इस प्रकार से तू (ज मदि) जो वुद्धि-विकल्प (कुणसि) करता है (सव्वावि एस मिच्छा) वह सब बुद्धि भी मिथ्या है।

(जदि) यदि (सत्ता) जीव (कम्मेण) अपने कर्मों से (दुहिदा) दु खी होते हैं (तु) तो मैं (सत्ते) जीवों को (मणसाए) मन से (दुक्खवेमिय) दु खी करता हूँ (एव) इस प्रकार से तू (ज मदि) जो वुद्धि (कुणसि) करता है (सव्वावि एस मिच्छा) वह सव वुद्धि भी मिथ्या है।

(जदि) यदि (सत्ता) जीव (कम्मेण) अपने कर्मों से (दुहिदा) दु खी होते हैं (तु) तो मैं (सच्छेण) शस्त्रों से (सत्ते) जीवों को (दुक्खवेमिय) दु खी करता हूँ (एव) इस प्रकार से तू (ज मदि) जो वुद्धि (कुणसि) करता है (सव्वावि एस मिच्छा) वह सब बुद्धि भी मिथ्या है।

टीकार्थ - यदि जीव स्वकीय पापोदय से दु खी होते हैं तो उन जीवों के स्वकीय पापोदय के अभाव में आपको कुछ भी करने को नहीं आता है, यह कारण है। तो हे दुरात्मन्! 'मैं मन वचन काय से और शस्त्रों से जीवों को दु खी करता हूँ,' यह तेरी बुद्धि मिथ्या है। लेकिन तू स्वस्वभाव से (स्वानुभव से), च्युत होकर पाप को ही बाधता है।।२८१ से २८४।।

अब, अशुद्ध निश्चयनय से स्वकीय शुभकर्मोदय होने पर जीव सुखी होते हैं, ऐसा कहते हैं -

कायेण च वाचा वा मणेण सुहिदे करेमि सत्ते त्ति।
एव पि हवदि मिच्छा सुहिदा कम्मेण जदि सत्ता।।२८५।।

स्वकीयकर्मोदयेन जीवा यदि चेत् सुखिता भवति, न च त्वदीयपरिणामेन तर्हि मनोवचनकायैर्जीवान् सुखितानह करोमि इति भवदीया मतिर्मिथ्या। एव तवाध्यवसान स्वार्थक न भवति। पर किंतु निरुपरागपरमचिज्ज्योति स्वभावे स्वशुद्धात्मतत्त्वमश्रद्दधान, तथैवाजानन् अभावयश्च तेन शुभपरिणामेन पुण्यमेव वध्नाति इत्यर्थ।।२८५।।

अथ स्वस्वभावप्रतिपक्षभूतेन च रागाद्यध्यवसानेन मोहित सन्नय जीव समस्तमपि परद्रव्यमात्मनि नियोजयति इत्युपदिशति -

सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरइए। (२६८)
देवमणुये य सव्वे पुण्ण पाव च णेयविह।।२८६।।
धम्माधम्म च तहा जीवाजीवे अलोगलोग च। (२६९)
सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण अप्पाण।।२८७।।

गाथार्थ - (जदि) यदि (सत्ता) जीव (कम्मेण) अपने कर्मों से (सुहिदा) सुखी होते हैं (त्ति) तो फिर मैं (कायेण च वाचा वा मणेण) मन अथवा वचन अथवा काया से (सत्ते) जीवों को (सुहिदे) सुखी (करेमि) करता हूँ (एव पि मिच्छा) ऐसी वुद्धि भी मिथ्या (हवदि) है।

टीकार्थ - यदि जीव स्वकीय कर्मोदय से सुखी होते हैं, और तेरे परिणाम से सुखी नहीं होते हैं, तो फिर "मैं मन-वचन-काय के द्वारा जीवों को सुखी करता हूँ," यह आपकी मति मिथ्या है। इस प्रकार तेरा अध्यवसान स्वार्थक्रियाकारी नहीं है। किन्तु निरुपराग परम चेतन्य ज्योति स्वभावमय शुद्धात्मतत्त्व का श्रद्धान न होने से, वैसा ही ज्ञान न होने से और वैसा ही अनुभव न करने से उस शुभ परिणाम से पुण्य ही वाधता है।। २८५।।

अव, स्वस्वभाव से प्रतिपक्षभूत रागादि अध्यवसान से मोहित होकर यह जीव सभी परद्रव्यों को अपने आत्मा में (अपने स्वभावमय) मानता है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - (जीवो) जीव (अज्झवसाणेण) अध्यवसान से (तिरियणेरइए) तिर्यंच, नारक (य) और (देवमणुये) देव, मनुष्य (सव्वे) इन सव पर्यायरूप (च) और (णेयविह पुण्ण पाव) अनेक प्रकार के पुण्य पापों को अपने (करेदि) करता है।

(तहा च) और उसी प्रकार (जीवो) जीव (अज्झवसाणेण) अध्यवसान से (धम्माधम्म) धर्म-अधर्म (जीवाजीवे) जीव-अजीव (च अलोगलोग) अलोक और लोक (सव्वे) इन सभी को (अप्पाण) आत्मस्वरूप (करेदि) करता है।

टीकार्थ - उदयागत नरकगति आदि कर्म के वश से नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव, पाप और पुण्यरूप कर्मजनित भावों को अपने आत्म स्वभावरूप - आत्मा से सवधरूप मानता है।

उदयागतनरकगत्यादिकर्मवशेन नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवपापपुण्यरूपान् कर्मजनितभावान् आत्मान करोति आत्मन सवधात्करोति। निर्विकारपरमात्मतत्त्वज्ञानाद् भ्रष्ट सन् नारकोऽहमित्यादिरूपेण, उदयागतकर्मजनितविभावपरिणामान् आत्मनि योजयतीत्यर्थ । धर्माधर्मास्तिकायजीवाजीवलोकालोकज्ञेयपदार्थान् अध्यवसानेन तत्परिच्छित्तिविकल्पेनात्मान करोति, आत्मन सवधात् करोतीत्यभिप्राय ।

कि च, यथा घटाकारपरिणत ज्ञान घट इत्युपचारणोच्यते तथा धर्मास्तिकायादिज्ञेयपदार्थविषये धर्मोऽयमित्यादि योऽसौ परिच्छित्तिरूपो विकल्प सोऽप्युपचारेण धर्मास्तिकायादिर्भण्यते। कथ ? इति चेत्, धर्मास्तिकायादिविषयत्वात्। स्वस्वभावच्युतो भूत्वा यदा धर्मास्तिकायोयमित्यादिविकल्प करोति तदा तस्मिन् विकल्पे कृते सति धर्मास्तिकायादिरप्युपचारेण कृतो भवति इति।।२८६, २८७।।

अथ निश्चयेन परद्रव्याद्भिन्नोऽपि यस्य मोहस्य प्रभावात् आत्मान परद्रव्ये योजयति स मोहो येषा नास्ति त एव तपोधना इति प्रकाशयति -

एदाणि णत्थि जेसि अज्झवसाणाणि एवमादीणि। (२७०)
ते असुहेण सुहेण य कम्मेण मुणी ण लिप्पति।।२८८।।

एदाणि णत्थि जेसि अज्झवसाणाणि एवमादीणि एतान्येवमादीनि पूर्वोक्तानि शुभाशुभाध्यवसानानि कर्मबधनिमित्तभूतानि न सति येषा **ते असुहेण सुहेण य कम्मेण मुणी ण लिप्पति** त एव मुनीश्वरा शुभाशुभकर्मणा न लिप्यन्ते।

निर्विकार परमात्म तत्त्व के अनुभव से भ्रष्ट होकर "में नारकी हूँ," इत्यादिरूप से उदयागत कर्मजनित विभाव परिणामों को अपने आत्मा के स्वभाव में योजता (मानता) है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीव, अजीव, लोक, अलोक आदि ज्ञेयपदार्थो को और उनकी जानकारीरूप विकल्पों को अध्यवसान से अपने आत्म स्वभावमय मानता है। जैसे घटाकार परिणत ज्ञान को उपचार से 'घट' ऐसा कहते हैं, वेसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीव, अजीव, आकाश आदि ज्ञेयपदार्थो के विपय मे "यह धर्मद्रव्य है" इत्यादि ज्ञानरूप विकल्प को भी उपचार से धर्मास्तिकाय आदि कहते हैं, क्योंकि यह विकल्प धर्मास्तिकाय आदि को विषय करनेवाला है। स्वस्वभाव से (स्वानुभव से) च्युत होकर जव "यह धर्मास्तिकाय हे" इत्यादि विकल्प करता है, तव वह विकल्प करते समय उपचार से उनको धर्मास्तिकायादि ऐसा कहते हैं।।२८६,२८७।।

अव, निश्चयनय से आत्मा परद्रव्यों से भिन्न हे, तो भी जिस मोह के प्रभाव से आत्मा को परद्रव्य में योजता है (मानता है), वह **मोहभाव जिनको नहीं है वे ही तपोधन हैं,** ऐसा दिखाते हैं -

गाथार्थ - (**एदाणि**) ये पूर्व में कहे गये अध्यवसान (**एवमादीणि**) तथा इसी तरह के अन्य भी (**अज्झवसाणाणि**) अध्यवसान (**जेसि**) जिनके (**णत्थि**) नहीं हैं (**ते मुणी**) वे मुनि (**असुहेण**) अशुभ (**य**) और (**सुहेण**) शुभ (**कम्मेण**) कर्म से (**ण लिप्पति**) लिप्त नहीं होते हैं।

टीकार्थ - ये पहले बताये गये और इसी प्रकार के अन्य भी कर्मबध के निमित्तभूत शुभाशुभ अध्यवसानभाव जिनके नहीं हैं, वे ही मुनीश्वर शुभाशुभ कर्म से लिप्त नहीं होते हैं।

कि च विस्तर, शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप निश्चयरत्नत्रयलक्षण भेदविज्ञान यदा न भवति तदाह जीवान् हिनस्मीत्यादि हिसाध्यवसान, नारकोहमित्यादि कर्मोदयाध्यवसान, धर्मास्तिकायोयमित्यादि ज्ञेय पदार्थाध्यवसान च निर्विकल्पशुद्धात्मन सकाशाद्भिन्न न जानातीति। तदजानन् हिसाध्यवसानविकल्पेन सहात्मानमभेदेन श्रद्दधाति, जानाति, अनुचरति च ततो मिथ्यादृष्टिर्भवति मिथ्याज्ञानी भवति मिथ्याचारित्री भवति। तत कर्मबन्ध स्यात्। यदा पुन पूर्वोक्तभेदविज्ञान भवति तदा सम्यग्दृष्टिर्भवति सम्यग्ज्ञानी भवति सम्यक्चारित्री भवति तत कर्मबन्धो न भवतीति भावार्थ ।।२८८।।

कियत काल परभावानात्मनि योजयतीति चेत्,

जा सकप्पवियप्पो ता कम्म कुणदि असुहसुहजणय।
अप्पसरूवा रिद्धी जाव ण हियए परिप्फुरइ।।२८९।।

यावत्काल वहिर्विषये देहपुत्रकलत्रादौ ममेतिरूप सकल्प करोति अभ्यतरे हर्षविषादरूप विकल्प च करोति तावत्कालमनतज्ञानादिसमृद्धिरूपमात्मन हृदये न जानाति। यावत्कालमित्थभूत आत्मा हृदये न परिस्फुरति तावत्काल शुभाशुभजनक कर्म करोतीत्यर्थ ।।२८९।।

इसका स्पष्टीकरण यह है कि, शुद्धात्म सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप निश्चय रत्नत्रय लक्षण वाला भेदज्ञान जब नहीं होता है तब 'मैं जीवों को मारता हूँ' इत्यादि हिसात्मक अध्यवसान को, 'मैं नारकी हूँ' इत्यादि कर्मोदयजनित अध्यवसान को, और 'यह धर्मास्तिकाय है' इत्यादि ज्ञेयपदार्थ के अध्यवसान को निर्विकल्प स्वभावशुद्धात्मा से भिन्न नहीं जानता है। उसे न जाननेवाला हिसाध्यवसान आदि विकल्प के साथ अपने आत्मस्वभाव को अभेद करके श्रद्धान करता है, जानता हे, और आचरण करता है, इसलिये वह जीव मिथ्यादृष्टि है, मिथ्याज्ञानी है और मिथ्याचारित्री है। इसलिये उसे कर्मवध होता है। जव पूर्वोक्त हिसादि अध्यवसान को अपने आत्मस्वभाव से भिन्न जाननेवाला ऐसा भेदविज्ञान होता है, तव वह जीव (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी और सम्यक्चारित्रवाला होता है, इसलिये उस भेदज्ञानी को कर्मवध नहीं होता है, ऐसा भावार्थ है।।२८८।।

यह जीव परभावों को अपने आत्म स्वभाव में कब तक योजता (मानता) है ? इसका कथन करते हैं -

गाथार्थ - **(जा)** जब तक **(सकप्पवियप्पो)** सकल्प-विकल्प हैं तव तक **(अप्पसरूवारिद्धी)** आत्मस्वभावमय ऋद्धि (स्वात्मानुभूति) **(हियए)** हृदय में **(ण परिप्फुरइ)** प्रगट नहीं होती है **(जाव)** जव तक स्वानुभूति प्रकट नहीं होती है **(ता)** तब तक वह जीव **(असुहसुहजणय)** अशुभ शुभ जनक **(कम्म)** कर्म **(कुणदि)** करता है।

टीकार्थ - जव तक देह-पुत्र-कलत्र आदि बाह्यविषयों में "ये सव मेरे हैं" ऐसा ममत्वभावमय सकल्प करता है और अभ्यतर में (अतरग में) "हर्षविषादरूप" विकल्प करता है तव तक अनतज्ञानादि समृद्धिमय आत्मस्वभाव को हृदय में नहीं जानता है। जव तक इस प्रकार स्वात्मानुभव हृदय में प्रगट नहीं होता है, तव तक शुभाशुभजनक कर्म करता है।।२८९।।

अथाध्यवसानस्य नाममालामाह -

बुद्धी ववसाओवि य अज्झवसाण मदी य विण्णाण। (२७१)
एक्कट्ठमेव सव्व चित्त भावो य परिणामो।।२९०।।

बोधन वुद्धि, व्यवसन व्यवसाय, अध्यवसानमध्यवसाय, मनन पर्यालोचन मतिश्च, विज्ञायते अनेनेति विज्ञान, चितन चित्त, भवन भाव, परिणमन परिणाम, इति शब्दभेदेपि नार्थभेद, किंतु सर्वोऽपि समभिरूढनयापेक्षयाऽध्यवसानार्थम् एव। कथ ? इति चेत्, यथेंद्र शक्र पुरदर इति। एव व्रते पुण्य, अव्रतै पापमिति कथनेन सूत्रद्वय पूर्वमेव व्याख्यात तस्यैव सूत्रद्वयस्य विशेषविवरणार्थं वाह्य वस्तु रागाद्यध्यवसानकारण रागाद्यध्यवसान तु बधकारणमिति कथनमुख्यत्वेन त्रयोदशगाथा गता, इति समुदायेन पचदशसूत्रैश्च चतुर्थ स्थल समाप्तम्।।२९०।।

अत परमभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिरूपेण निश्चयनयेन विकल्पात्मकव्यवहारनयो हि वाध्यत इति कथनमुख्यत्वेन गाथाषट्कपर्यंत व्याख्यान करोति -

एव ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण। (२७२)
णिच्छयणयसल्लीणा[१] मुणिणो पावति णिव्वाण।।२९१।।

एव ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण एव पूर्वोक्त प्रकारेण परद्रव्याश्रितत्वाद् व्यवहारनय प्रतिषिद्ध इति जानीहि। केन कर्तृभूतेन ? शुद्धात्मद्रव्याश्रितनिश्चयनयेन। कस्मात् ? **णिच्छयणयसल्लीणा मुणिणो पावति णिव्वाण** निश्चयनयमालीना आश्रिता स्थिता सतो मुनयो निर्वाण लभते यत कारणादिति।

अव, अध्यवसान शब्द के पर्यायवाची नाम कहते हैं -

गाथार्थ - (**बुद्धी**) वुद्धि (**ववसाओ वि य**) व्यवसाय ओर (**अज्झवसाण**) अध्यवसान (**मदी**) मति (**य**) और (**विण्णाण**) विज्ञान (**चित्त**) चित्त (**भावो**) भाव (**य**) ओर (**परिणामो**) परिणाम (**सव्व**) ये सव (**एक्कट्ठमेव**) एकार्थ ही हैं, नाम भेद है, इनका अर्थ भिन्न नहीं है।

टीकार्थ - वोधन याने जाननमात्र सो **बुद्धि**, व्यवसन अर्थात् जाननेमात्र के रूप में क्रिया सो **व्यवसाय**, अध्यवसान याने समझ लेना सो **अध्यवसाय**, मनन अर्थात् पर्यालोचन करना सो **मति**, विज्ञान अर्थात् जिसके द्वारा विशेष को जाने सो **विज्ञान**, चिन्तन याने चितवन (स्मरण) करना वह **चित्त**, भवन याने चेतना का होना सो **भाव**, परिणमन याने चेतना का परिणमन सो **परिणाम**, इस प्रकार शव्दभेद है तो भी अर्थभेद नहीं हे। किन्तु समभिरूढनय की अपेक्षा से सभी शव्दों का अर्थ **अध्यवसान** ऐसा ही है। जेसे इद्र, शक्र, पुरदर एकार्थ वाचक हें।

इस प्रकार व्रतों से पुण्य, अव्रतों से पाप होता है-ऐसा जो पूर्व में दो गाथाओं के द्वारा कहा गया था, उन दोनों गाथाओं का ही विशेष विवरण करने के लिये वाह्यवस्तु रागादि अध्यवसान का कारण है और रागादि अध्यवसान वध का कारण है, इस कथन की मुख्यता से १३ गाथायें पूर्ण हुई। इस प्रकार समुदाय रूप से १५ गाथाओं के द्वारा चतुर्थ स्थल का कथन समाप्त हुआ।।२९०।।

---

[१] पाठान्तर - णिच्छयणयासिदा

किं च, यद्यपि प्राथमिकापेक्षया प्रारम्भप्रस्तावे सविकल्पावस्थाया निश्चयसाधकत्त्वाद् व्यवहारनय सप्रयोजनस्तथापि विशुद्धज्ञान दर्शनलक्षणे शुद्धात्मनि स्थिताना निष्प्रयोजन इति भावार्थ । कथ निष्प्रयोजन ? इति चेत्, कर्मभिरमुच्यमानेना-भव्येनाप्याश्रियमाणत्वात् ।। २९१ ।।

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतव जिणवरेहि पण्णत्त। (२७३)
कुव्वतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु ।।२९२।।

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतव जिणवरेहि पण्णत्त व्रतसमितिगुप्तिशीलतपश्चरणादिक जिनवरै प्रज्ञप्त कथित। **कुव्वतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठीओ** मदमिथ्यात्वमदकषायोदये सति कुर्वन्नप्यभव्यो जीवस्त्वज्ञानी भवति मिथ्यादृष्टिश्च भवति। कस्मात् ? इति चेत्, मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृत्युपशमक्षयोपशमक्षयाभावात् शुद्धात्मोपादेयश्रद्धाना-भावात् इति।।२९२।।

इसके आगे, अभेदरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिरूप निश्चयनय से विकल्पात्मक व्यवहारनय का निषेध किया जाता है, इस कथन की मुख्यता से छ गाथाओं तक व्याख्यान करते हैं -

गाथार्थ - (एव) इस प्रकार (**वदहारणओ**) व्यवहारनय (**णिच्छयणयेण**) निश्चयनय से (**पडिसिद्धो**) निषिद्ध (**जाण**) जानो और (**णिच्छयणयसल्लीणा**) निश्चयनय में लीन रहनेवाले (**मुणिणो**) मुनि (**णिव्वाण**) निर्वाण (**पावति**) प्राप्त करते हैं।

टीकार्थ - इस प्रकार जो पहले कहा गया है उससे परद्रव्य के आश्रित होने से व्यवहारनय निषिद्ध है, ऐसा जानो।

शका - किसके द्वारा व्यवहारनय निषिद्ध है ?

समाधान - स्वशुद्धात्मद्रव्य आश्रित निश्चयनय से परद्रव्य को आश्रय करनेवाला विकल्पात्मक व्यवहारनय निषिद्ध है।

शका - क्यों ?

समाधान - निश्चयनय में लीन रहनेवाले (निश्चयनय के विषय का आश्रय करनेवाले) मुनि निर्वाण प्राप्त करते हैं (और व्यवहारनय का आश्रय करने से विकल्प होता है इस कारण से निश्चयनय से व्यवहारनय का निषेध किया जाता है।)

और विशेष यह है कि, यद्यपि प्राथमिक अपेक्षा से याने (मिथ्यादृष्टि अथवा सविकल्प भूमिका की अपेक्षा से) प्रारभ की सविकल्प अवस्था में (शुद्ध द्रव्य का, द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान होने के लिये) निश्चय का साधक होने से व्यवहारनय सप्रयोजन है, तथापि विशुद्धज्ञानदर्शन लक्षणवाले शुद्धात्मा में स्थित होनेवाले को (स्वानुभव करने के लिये) व्यवहारनय निष्प्रयोजन है। ऐसा भावार्थ है।

शका - व्यवहारनय निष्प्रयोजन कैसे है ?

समाधान - कर्मों से बद्ध रहनेवाले अभव्य जीव के द्वारा भी व्यवहारनय का आश्रय किया जाता है। (लेकिन निश्चयनय का आश्रय न कर पाने से स्वशुद्धात्मानुभव नहीं होता है। इसलिये व्यवहारनय का आश्रय करनेवाले का मोक्षमार्ग शुरु नहीं होता है और उसे मोक्ष प्राप्त नहीं होता है)।। २९१ ।।

अथ तस्यैकादशागश्रुतज्ञानमस्ति कथमज्ञानी ? इति चेत् -

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीयेज्ज। (२७४)
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु।।२९३।।

मोक्ख असद्दहतो अभवियसत्तो दु जो अधीयेज्ज मोक्षमश्रद्दधान सन्नभव्यजीवो यद्यपि ख्यातिपूजालाभार्थमेकादशागश्रुताध्ययन कुर्यात्। **पाठो ण करेदि गुण** तथापि तस्य शास्त्रपाठ शुद्धात्मपरिज्ञानरूप गुण न करोति। कि कुर्वन्तस्तस्य ? **असद्दहंतस्स णाण तु** अश्रद्दधतोऽरोचमानस्य। किम् ? ज्ञानम्। कोऽर्थ ? शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण निर्विकल्पसमाधिना प्राप्य गम्य शुद्धात्मस्वरूपमिति। कस्मान्न श्रद्धत्ते ? दर्शनचारित्रमोहनीयोपशमक्षयोपशमक्षयाभावात्। तदपि कस्मात् ? अभव्यत्वादिति भावार्थ ।।२९३।।

गाथार्थ :- **(अभव्वो दु अण्णाणी)** अभव्य अथवा अज्ञानीभव्य-स्वानुभव रहित जीव **(वदसमिदीगुत्तीओ सीलतव)** व्रत, समिति, गुप्ति, शील और तपश्चरण को **(कुव्वतो वि)** करता हुआ भी **(मिच्छदिट्ठी)** मिथ्यादृष्टि रहता है ऐसा **(जिणवरेहि)** जिनवरों ने **(पण्णत्त)** कहा है।

टीकार्थ - मिथ्यात्व का मद उदय तथा कषाय का मद उदय होने पर जिनवरों के द्वारा कहे हुए व्रत, समिति, गुप्ति, शील, तपश्चरण आदि (व्यवहार) को करनेवाला अभव्यजीव अथवा भव्यजीव अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि ही रहता है।

शका - अभव्यजीव अथवा अज्ञानी भव्यजीव व्रतादिक का (व्यवहारनय का) आश्रय करते हुए भी मिथ्यादृष्टि क्यों रहता है ?

समाधान - आगमभाषा से	अध्यात्मभाषा से
अभव्यजीव अथवा अज्ञानी भव्यजीव व्यवहार का (व्रतादिक का) आश्रय करते हुए भी मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों का उपशम, क्षमोपशम, क्षय न होने से मिथ्यादृष्टि रहता है।	अभव्य जीव अथवा अज्ञानी भव्यजीव स्वशुद्धात्म स्वभाव उपादेय है ऐसा श्रद्धान (अर्थात् स्वशुद्धात्म स्वभाव का आश्रय) न करने से मिथ्यादृष्टि रहता है।।२९२।।

अब, अभव्यजीव को अथवा अज्ञानी भव्यजीव को ११ अग का श्रुतज्ञान होता है, तो वह अज्ञानी कैसे? उसका उत्तर कहते हैं -

गाथार्थ - **(जो)** जो **(अभवियसत्तो)** अभव्य जीव **(अधीयेज्ज)** शास्त्र का पाठ भी करता है **(तु)** किन्तु **(मोक्ख)** मोक्षस्वरूप अपने शुद्ध स्वभाव का **(असद्दहतो)** श्रद्धान अनुभव व प्रतीति नहीं करता है **(दु)** इसलिये **(णाण असद्दहतस्स)** ज्ञान का श्रद्धान नहीं करने वाले उस अभव्यजीव का अथवा अज्ञानी भव्यजीव का **(पाठो)** शास्त्र का अभ्यास **(गुण ण करेदि)** लाभदायक नहीं होता है अर्थात् उसको स्वानुभव नहीं होता है।

टीकार्थ - मोक्ष स्वरूप अपने शुद्ध स्वभाव का श्रद्धान न करनेवाला अभव्यजीव यद्यपि ख्याति, पूजा, लाभ आदि के लिये ११ अग श्रुत का अभ्यास करे तो भी उसका शास्त्राध्ययन शुद्धात्म परिज्ञान स्वरूप (स्वानुभव स्वरूप) गुण को नहीं करता है।

अथ तस्य पुण्यरूपधर्मादिश्रद्धानमस्तीति चेत् -

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि य। (२७५)
धम्मं भोगणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं।।२९४।।

सद्दहदि य श्रद्धत्ते च **पत्तेदि य** ज्ञानरूपेण प्रत्येति च प्रतीति परिच्छित्ति करोति **रोचेदि य** विशेषश्रद्धानरूपेण रोचते च। **तह पुणो वि फासेदि य** तथा पुन स्पृशति च अनुष्ठानरूपेण। कम् ? **धम्मं भोगणिमित्तं** अहमिद्रादि-पदवीकारणत्वादिति मत्वा भोगाकाक्षारूपेण पुण्यरूपधर्म। **ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं** न च कर्मक्षयनिमित्त, शुद्धात्मसवित्तिलक्षण निश्चयधर्ममिति।।२९४।।

शका - क्या करने से (अभव्य अथवा अज्ञानी भव्य) जीव को स्वानुभव प्राप्त नही होता ?

समाधान - अभव्यजीव (अथवा अज्ञानी भव्यजीव भी जब तक) अश्रद्धान करता है (याने स्वप्रतीति, स्वानुभूति नहीं करता है।)

शका - किसकी प्रतीति नहीं करता है ?

समाधान - ज्ञान की प्रतीति अथवा अनुभूति नही करता है।

शका - कौन से ज्ञान की प्रतीति अथवा अनुभूति नही करता है ?

समाधान - (अध्यात्म भाषा से) ज्ञान की प्रतीति (ज्ञान की अनुभूति) याने शुद्धात्म सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप निर्विकल्प समाधि से (स्वानुभव से) प्राप्य-गम्य होने वाले शुद्धात्म स्वभाव की प्रतीति न करने से ११ अग ९ पूर्व तक का शास्त्रअध्ययन कार्यकारी (लाभदायक) नही होता है।

शका - क्यों श्रद्धा नहीं करता है ?

समाधान - उस अध्ययन से दर्शनमोहनीय-चारित्रमोहनीय का उपशम, क्षयोपशम, क्षय नहीं करता है।

शका - क्यों ?

समाधान - अभव्यजीव होने से (अपने स्वभाव की प्रतीति करने का पुरुषार्थ कभी भी नहीं करने से) उसको शास्त्रअध्ययन का लाभ नहीं होता है। (उसी तरह भव्यजीव भी यदि शास्त्रअध्ययन करता है लेकिन अपने स्वभाव की प्रतीति अथवा अनुभूति करने का जब तक पुरुषार्थ नहीं करता है तब तक उस शास्त्र अध्ययन का लाभ नहीं होता है) ऐसा भावार्थ है।।२९३।।

अब, उस अभव्य को पुण्यरूपधर्म आदि का श्रद्धान है, तो उसको श्रद्धान नहीं है, ऐसा आपने कैसे कहा ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(सो)** वह जीव **(धम्मं)** धर्म का **(सद्दहदि य)** श्रद्धान भी करता है **(पत्तेदि य)** प्रतीति भी करता है और **(रोचेदि य)** रुचि करता है **(तह)** तथा **(फासेदि य)** स्पर्श-अनुष्ठान करता है **(पुणो वि)** तो भी वह **(भोगणिमित्तं)** ससारभोग-पचेंद्रिय के विषयभोग के लिये करता है, **(हु)** वास्तव में **(कम्मक्खयणिमित्तं)** कर्म का क्षय करने के लिये **(ण)** नहीं करता है।

अथ कीदृशौ तौ प्रतिषेध्यप्रतिषेधकौ व्यवहारनिश्चयनयाविति चेत् ?

आयारादी णाण जीवादी दसणं च विण्णेय। (२७६)
छज्जीवाण रक्खा[१] भणदि चरित्तं तु ववहारो।।२९५।।
आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दसण चरित्त च। (२७७)
आदा पच्चक्खाण आदा मे सवेरो जोगो।।२९६।।

टीकार्थ - वह जीव धर्म का श्रद्धान करता है ओर ज्ञानरूप से प्रतीति करता है - जानता है और विशेषरूप से श्रद्धानरूप रुचि भी करता है तथा अनुष्ठानरूप से स्पर्श भी करता है। उस धर्म से अहमिन्द्र इत्यादि पद प्राप्त होंगे, यह मानकर भोगाकाक्षारूप से पुण्यरूप धर्म का श्रद्धान, प्रतीति, रुचि और आचरण करता है, लेकिन वास्तव में आगमभाषा से कर्म के क्षय के लिये, अर्थात् अध्यात्मभाषा से शुद्धात्मानुभव वाले निश्चय धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रुचि, अनुभूति नहीं करता है। इसलिये उसको सच्ची निश्चय धर्म की श्रद्धा नहीं है।।२९४।।

अब व्यवहारनय प्रतिषेध्य और निश्चयनय प्रतिषेधक किस तरह है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं -

गाथार्थ .- **(आयारादी णाण)** आचारागादि शास्त्र का पढना ज्ञान है **(जीवादी दसण)** जीवादि नव पदार्थो का श्रद्धान दर्शन है **(च)** और **(छज्जीवाण)** छ काय के जीवों की **(रक्खा)** रक्षा **(चरित्त)** चारित्र है **(विण्णेय)** इस तरह के जानने को **(ववहारो भणदि)** व्यवहारनय कहते हैं।

(तु) लेकिन **(खु)** निश्चय से **(मज्झ आदा)** मेरा आत्मा ही **(णाण)** ज्ञान है **(मे आदा)** मेरा आत्मा ही **(दसण)** दर्शन है **(च चरित्त)** और मेरा आत्मा ही चारित्र हे **(आदा)** मेरा आत्मा ही **(पच्चक्खाण)** प्रत्याख्यान है **(मे आदा)** मेरा आत्मा ही **(सवरो जोगो)** सवर और योग है।

टीकार्थ - आचाराग, सूत्रकृताग आदि ११ अगरूप जो शब्द शास्त्र है (उसका जानना ज्ञान हे) वह ज्ञान का आश्रय होने के कारण व्यवहार से सम्यग्ज्ञान है। जीवादि नवपदार्थ श्रद्धान का विषय हे उनका सम्यक्त्व के लिये आश्रय करने से वे सम्यक्त्व को निमित्त हैं, इसलिये व्यवहार से (उपचार से) वह सम्यक्त्व है। और छह काय के जीवों की रक्षा करना चारित्र है, उस चारित्र का आश्रय करने से उस हेतु से वह आचरण व्यवहार से चारित्र है। इस तरह **इसमें पराश्रितपना होने से उसे व्यवहार मोक्षमार्ग (उपचार मोक्षमार्ग) कहा गया है।**

निश्चयनय से अपने स्वभावमय शुद्धात्मा का आश्रय करने से याने अपने स्वभावमय शुद्धात्मा को निमित्त करने से जो ज्ञान होता है वह शुद्धात्मा ही मेरा सम्यग्ज्ञान है। निश्चयनय से दर्शन में अपने स्वभावमय शुद्धात्मा का आश्रय होने से (दर्शन में अपने स्वभावमय शुद्धात्मा को निमित्त करने से) वह शुद्धात्मा ही सम्यग्दर्शन है। और निश्चयनय से चारित्र में अपने स्वभावमय शुद्धात्मा का आश्रय करने से (चारित्र में अपने स्वभावमय शुद्धात्मा को निमित्त करने से) वह शुद्धात्मा ही सम्यक्चारित्र है। निश्चयनय से प्रत्याख्यान में अपने स्वभावमय शुद्धात्मा का आश्रय करने से (याने रागादि परित्याग लक्षणरूप प्रत्याख्यान मे शुद्धात्मा कारण होने से) वह शुद्धात्मा ही प्रत्याख्यान है।

---

[१] पाठान्तर - छज्जीवणिकं च तहा

आयारादी णाणं आचारसूत्रकृतमित्यादि एकादशागशब्दशास्त्र ज्ञानस्याश्रयत्वात्कारणत्वाद् व्यवहारेण ज्ञान भवति। **जीवादी दसण च विण्णेय** जीवादिनवपदार्थ श्रद्धानविषय सम्यक्त्वाश्रयत्वान्निमित्तत्वाद् व्यवहारेण सम्यक्त्व भवति। **छज्जीवाण रक्खा भणदि चरित्त तु ववहारो** षट्जीवनिकायरक्षाचारित्राश्रयत्वात् हेतुत्वाद् व्यवहारेण चारित्र भवति। एव **पराश्रितत्वेन व्यवहारमोक्षमार्ग प्रोक्त इति। आदा खु मज्झ णाण** स्वशुद्धात्मा ज्ञानस्याश्रयत्वान्निमित्तत्वान्निश्चयनयेन मम सम्यग्ज्ञान भवति। **आदा मे दसण** शुद्धात्मा सम्यग्दर्शनस्याश्रयत्वात् कारणत्वात् निश्चयेन मम सम्यग्दर्शन भवति। **चरित्त च** शुद्धात्मा चारित्रस्याश्रयत्वाद्धेतुत्वात् निश्चयेन सम्यक्चारित्र भवति। **आदा पच्चक्खाण** शुद्धात्मारागादिपरित्यागलक्षणस्य प्रत्याख्यानस्याश्रयत्वात्कारणात्वात् निश्चयेन प्रत्याख्यान भवति। **आदा मे सवरो** शुद्धात्मा स्वरूपोपलब्धिबलेन हर्षविषादादिनिरोधलक्षणसवरस्याश्रयत्वान्निश्चयेन सवरो भवति। **जोगो** शुद्धात्मा शुभाशुभचितानिरोधलक्षणपरमध्यानशब्दवाच्ययोगस्याश्रयत्वाद्धेतुत्वात् परमयोगो भवतीति। **शुद्धात्माश्रितत्वेन निश्चय मोक्षमार्गो ज्ञातव्य** । एव व्यवहारनिश्चयमोक्षमार्गस्वरूप कथितम्।

स्वरूप (स्वानुभव की) उपलब्धि के बल से हर्ष-विषादादि निरोध लक्षणरूप सवर में अपने स्वभावमय शुद्धात्मा का आश्रय करने से निश्चयनय से शुद्धात्मा ही सवर है। शुद्धोपयोग के (स्वानुभव के) बल से शुभाशुभ चिता निरोध लक्षणरूप **परम ध्यान** शब्द से कहे जाने वाले योग में अपने स्वभावमय शुद्धात्मा का आश्रय करने से निश्चयनय से शुद्धात्मा ही परम योग है। इस तरह **वहाँ निज शुद्धात्म स्वभाव का आश्रय होने से इसको निश्चय मोक्षमार्ग जानना चाहिये।**

इस प्रकार व्यवहार मोक्षमार्ग का और निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप कहा गया है। वहाँ निश्चय प्रतिषेधक (निषेध करने वाला) है और व्यवहार प्रतिषेध्य (निषेध करने योग्य) है।

शका - निश्चय मोक्षमार्ग निषेध करने वाला (भूतार्थ) है और व्यवहार मोक्षमार्ग निषेध्य (अभूतार्थ) है, ऐसा क्यों ?

समाधान - निश्चय मोक्षमार्ग में रहनेवाले जीवों को नियम से मोक्ष होता है और व्यवहार मोक्षमार्ग में रहनेवाले जीवों को मोक्ष होगा अथवा नहीं होगा।

शका - ''व्यवहार मोक्षमार्ग वाले जीवों को मोक्ष होगा अथवा व्यवहार मोक्षमार्ग वालों को मोक्ष नहीं होगा,'' ऐसा क्यों ? निश्चयनय से ही मोक्षमार्ग कैसे होता है ?

समाधान - **आगम भाषा से**

१ यदि मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों का उपशम, क्षयोपशम, क्षय करता है तो उसको मोक्ष (मोक्षमार्ग) होता है।

२ और - यदि मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों का उपशम, क्षयोपशम, क्षय नहीं करता है तो मोक्ष (मोक्षमार्ग) नहीं होता है।

अध्यात्म भाषा से

१ यदि शुद्धात्म स्वभाव को उपादेय करके स्वानुभव करता है, तो उसको मोक्ष (मोक्षमार्ग) होता है।

२ और - यदि शुद्धात्म स्वभाव को उपादेय करके स्वानुभव नहीं करता है तो उसको मोक्ष (मोक्षमार्ग) नही होता है।

तत्रनिश्चय प्रतिषेधको भवति, व्यवहारस्तु प्रतिषेध्य इति। कस्मादिति चेत्, ? **निश्चयमोक्षमार्गे स्थिताना नियमेन मोक्षो भवति,** व्यवहार मोक्षमार्गे स्थिताना तु भवति न भवति च। कथ भवति न भवति ? इति चेत्, यदि मिथ्यात्वादि सप्तप्रकृत्युपशमक्षयोपशमक्षयात्सकाशाच्छुद्धात्मानमुपादेय कृत्वा वर्तते तदा मोक्षो भवति। यदि पुन सप्त प्रकृत्युपशमाद्यभावे शुद्धात्मानमुपादेय कृत्वा न वर्तते तदा मोक्षो न भवति। तदपि कस्मात् ? सप्तप्रकृत्युपशमाद्यभावे सति अनतज्ञानादिगुणस्वरूपमात्मानुपादेय कृत्वा न वर्तते न श्रद्धत्ते येन कारणात्। यस्तु तादृशमात्मानमुपादेय कृत्वा श्रद्धत्ते तस्य सप्तप्रकृत्युपशमादिक विद्यते स तु भव्यो भवति। यस्य पुन पूर्वोक्त शुद्धात्मा स्वरूपमुपादेय नास्ति, तस्य सप्तप्रकृत्युपशमादिक न विद्यते इति ज्ञातव्य मिथ्यादृष्टिरसौ। तेन कारणेनाभव्यजीवस्य मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृत्युपशमादिक कदाचिदपि न सभवति इति भावार्थ।

कि च, निर्विकल्पसमाधिरूपे निश्चये स्थित्वा व्यवहारस्त्याज्य, कि तु तस्या त्रिगुप्तावस्थाया व्यवहार स्वयमेव नास्तीति तात्पर्यार्थ। एव निश्चयनयेन व्यवहार प्रतिषिद्ध इति कथनरूपेण षट्सूत्रै पचम स्थल गतम्।। २९५, २९६।।

शका - वह भी क्यों ?

समाधान - व्यवहार मोक्षमार्ग में रहनेवाला जीव ११ अग का शास्त्र ज्ञान, नव पदार्थो की श्रद्धा और जीवों की रक्षा करने का चारित्र पालन करता है और -

आगमभाषा से	अध्यात्मभाषा से
१ यदि ७ प्रकृतियों का उपशम, क्षयोपशम, क्षय नहीं करता है तो मोक्षमार्ग नहीं होता है।	१ अनतज्ञानादि गुण स्वरूप स्वस्वभाव शुद्धात्मा का उपादेय करके स्वानुभव नहीं करता है, तो मोक्षमार्ग नही होता है।
२ इस तरह जो इन सात प्रकृतियों का उपशम या क्षयोपशम या क्षय करके सम्यक्त्व प्राप्त करता है, वह भव्य है।	२ इस तरह जो अपने स्वभाव शुद्धात्मा को उपादेय करके स्वानुभव करता है, वह भव्य है।
३ और जिसके सात प्रकृतियों का उपशम, क्षयोपशम, क्षय नहीं होता है, वह मिथ्यादृष्टि है (फिर वह भव्य हो तो भी मिथ्यादृष्टि है)	३ और जिसको स्वस्वभाव शुद्धात्मा उपादेय नहीं है (स्वानुभव नहीं करता है) वह मिथ्यादृष्टि है। (फिर वह भव्य हो तो भी मिथ्यादृष्टि है।)

इस कारण से अभव्य जीव के मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों का उपशमादिक कभी भी नहीं होता है (अभव्य जीव कभी भी स्वानुभव नहीं करता है)। ऐसा भावार्थ है।

इसलिये निर्विकल्प समाधि (स्वानुभूति) वाले निश्चय में रहकर व्यवहार त्यागने योग्य (अभूतार्थ) है। किन्तु त्रिगुप्ति अवस्था में (स्वानुभव में) व्यवहार (विकल्प) स्वयमेव नहीं रहता है, ऐसा तात्पर्यार्थ है।

इस प्रकार निश्चयनय से व्यवहारनय निषिद्ध है यह कथन करने वाली छह गाथाओं के द्वारा पचम स्थल पूर्ण हुआ।। २९५, २९६।।

अथाहारविषये सरसविरसमानापमानादिचितारूपरागद्वेषकारणाभावादाहारग्रहणकृतो ज्ञानिना वधो नास्ति, इति कथयति -

आधाकम्मादीया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा। (२८६)
कह ते कुव्वदि णाणी परदव्वगुणा हु जे णिच्चं।।२९७।।
आधाकम्मादीया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।
कहमणुमण्णदि अण्णेण कीरमाणा परस्स गुणा।।२९८।।

स्वय पाकेनोत्पन्न आहार अध कर्मशब्देनोच्यते तत्प्रभृति व्याख्यान करोति - अध कर्माद्या ये इमे दोषा, कथभूता ? शुद्धात्मन सकाशात्परस्याभिन्नस्याहाररूपपुद्गलद्रव्यस्य गुणा । पुनरपि कथभूता ? तस्यैवाहारपुद्गलस्य पचनपाचनादिक्रियारूपा । तान्निश्चयेन कथ करोति ज्ञानीति प्रथम गाथार्थ । अनुमोदयति वा कथमिति द्वितीय गाथार्थ । परेण गृहस्थेन क्रियमाणान्, न कथमपि। कस्मात् ? निर्विकल्पसमाधौ सति आहारविषये मनोवचनकायकृत-कारितानुमननाभावात्। इत्यध कर्मव्याख्यानरूपेण गाथाद्वय गतम्।। २९७, २९८।।

अब, आहार लेने के विषय में सरस-विरस, मान-अपमान आदि चितारूप राग-द्वेष के कारण का अभाव होने से आहार ग्रहण करते हुए भी सम्यग्ज्ञानियों को वध नहीं है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(आधाकम्मादीया)** अध कर्म आदि **(जे इमे)** जो ये **(पुग्गलदव्वस्स)** पुद्गल द्रव्य के **(दोसा)** दोष हैं **(ते)** उनको **(णाणी)** सम्यग्ज्ञानी **(कह)** कैसे **(कुव्वदि)** कर सकता है ? **(हु जे)** क्योंकि **(जे)** ये **(णिच्चं)** सदा ही **(परदव्वगुणा)** पुद्गल द्रव्य के परद्रव्य के गुण हैं।

(आधाकम्मादीया) अध कर्म आदि **(जे इमे दोसा)** जो ये दोष हैं वे **(अण्णेण)** दूसरे के द्वारा **(कीरमाणा)** किये हुए **(परस्स गुणा)** दूसरे के गुण हैं तो वह उनकी **(कहमणुमण्णदि)** अनुमोदना कैसे कर सकता है ?

टीकार्थ - स्वय अपने बनाने से सपन्न हुआ आहार 'अध कर्म' शब्द से कहा जाता है। ये अध कर्म आदि जो दोष हैं, वे शुद्धात्मा से भिन्न हैं और वे दोष पुद्गलमय आहार से अभिन्न हैं क्योंकि ये पुद्गल द्रव्य के गुण हैं, और उस ही पुद्गल द्रव्य की पकने-पकाने आदि क्रियारूप होते हैं, इसलिये निश्चयनय से सम्यग्ज्ञानी उन्हें कैसे कर सकता है ? यह प्रथम गाथा का अर्थ हुआ।

इस प्रकार गृहस्थ द्वारा किये हुए अध कर्मादि की सम्यग्ज्ञानी कैसे अनुमोदना कर सकता है ? याने सम्यग्ज्ञानी कृत, कारित, अनुमोदन किसी भी प्रकार से नहीं कर सकता है। क्योंकि निर्विकल्प समाधि में (स्वानुभव के समय में) आहार विषयक मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना का अभाव है। इस प्रकार अध कर्म का व्याख्यान करने वाली दो गाथायें पूर्ण हुई।। २९७, २९८।।

आहार ग्रहण करने से पहले उस पात्र को निमित्त करके जो कुछ अन्नपान सम्पन्न किया जाता है उसको औपदेशिक (औद्देशिक) दोष कहते हैं, उस औपदेशिक (औद्देशिक) दोष के साथ उसी अध कर्म दोष का फिर से दो गाथाओं द्वारा कथन करते हैं -

आहारग्रहणात्पूर्वम् तस्य पात्रस्य निमित्त यत्किमप्यशनपानादिक कृत तदौपदेशिक भण्यते तेनौपदेशिकेन सह तदेवाध कर्म पुनरपि गाथाद्वयेन कथ्यते -

आधाकम्म उद्देसिय च पोग्गलमय इम दव्व। (२८७)
कह त मम होदि कद जं णिच्चमचेदण वुत्तं।।२९९।।
आधाकम्म उद्देसिय च पोग्गलमय इम दव्व।
कह त मम कारविद ज णिच्चमचेदण वुत्त।।३००।।

अध कर्मौपदेशिक च पुद्गलमयमेदद् द्रव्य। कथम् तन्मम कारित यन्नित्यमचेतनमुक्तम्। यदिदमाहारकपुद्गल-द्रव्यमध कर्मरूपमौपदेशिक च चेतनशुद्धात्मद्रव्यपृथक्त्वेन नित्यमेवाचेतन भणित तत्कथ मया कृत भवति कारित वा कथ भवति ? न कथमपि। कस्माद्धेतो ? निश्चयरत्नत्रयलक्षणभेदज्ञाने सति आहारविपये मनोवचनकायकृतकारितानु-मननाभावात्। इत्यौपदेशिकव्याख्यानमुख्यत्वेन च गाथाद्वय गतम्। अयमत्राभिप्राय पश्चात्पूर्वसम्प्रतिकाले वा योग्याहारादिविषये मनोवचनकायकृतकारितानुमतरूपैर्नवभिर्विकल्पै शुद्धास्तेपा परकृताहारादिविपये वधो नास्ति। **यदि पुन परकीयपरिणामेन बधो भवति तर्हि क्वापिकाले निर्वाण नास्ति।** तथा चोक्त -

णवकोडिकम्मसुद्धो पच्छापुरदो य सपदियकाले।
परसुहदु.खणिमित्त बज्झदि जदि णत्थि णिव्वाणम्।।

एव ज्ञानिनामाहारग्रहणकृतो वधो नास्तीति व्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयेन षष्ठस्थल गतम्।।२९९,३००।।

गाथार्थ - **(इम)** यह **(आधाकम्म)** अध कर्म **(च उद्देसिय)** और औद्देशिक **(पोग्गलमय दव्व)** पुद्गलमय द्रव्य है **(ज)** जो **(णिच्च)** सदा ही **(अचेदण)** अचेतन **(वुत्त)** कहा गया है **(त)** वह **(मम कद)** मेरे द्वारा किया हुआ **(कह होदि)** कैसे हो सकता है ?

(इम) यह **(आधाकम्म च उद्देसिय)** अध कर्म और औद्देशिक **(पोग्गलमय दव्व)** पुद्गलमय द्रव्य है **(ज)** जो **(णिच्च)** सदा ही **(अचेदण)** अचेतन **(वुत्त)** कहा गया है **(त)** वह **(मम)** मेरे द्वारा **(कारविद)** कारित (कराया गया) भी **(कह)** कैसे हो सकता है ?

टीकार्थ - जो अध कर्मरूप और औद्देशिकरूप आहार पुद्गलमय द्रव्य है, वह चेतनमय शुद्धात्मा द्रव्य से भिन्न होने से वह नित्य ही अचेतन कहा गया है। वह मेरे द्वारा कृत, कारित कैसे हो सकता है ? याने वह आहार मेरे द्वारा कृत, कारित कभी भी नहीं है, क्योंकि निश्चयरत्नत्रय लक्षणरूप भेदज्ञान (स्वानुभूति) होने से आहार के विषय में मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदना इनका अभाव है। इस प्रकार औद्देशिक कथन की मुख्यता से दो गाथायें पूर्ण हुई।

इसका अभिप्राय यह है कि पूर्व, पश्चात् अथवा वर्तमान काल में योग्य आहार आदि के विषय में मन-वचन-काय, कृत-कारित और अनुमोदना इनके नव प्रकार के विकल्पों से रहित ऐसे जो शुद्ध (सम्यग्ज्ञानी) हैं उन सम्यग्ज्ञानी जीवों को परकृत आहारादि के विषय में बंध नहीं होता है। **और यदि परकीय परिणाम से बंध होता है तो किसी भी काल में निर्वाण नहीं हो सकता है।**

अथ रागाद्य किलकर्मवन्ध कारण भणिता, तेषा पुन कि कारणम् ? इति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह -

जह फलिहमणी सुद्धो ण सय परिणमदि रागमादीहि। (२७८)
राइज्जदि अण्णेहि दु सो रत्तादीहि दव्वेहि।।३०१।।
एव णाणी सुद्धो ण सय परिणमदि रागमादीहि। (२७९)
राइज्जदि अण्णेहि दु सो रागादीहि दोसेहि।।३०२।।

यथा स्फटिकमणिर्विशुद्धो वहिरूपाधि विना स्वय रागादिभावेन न परिणमति पश्चात् स एव रज्यते, कै? जपापुष्पादिवहिर्भूतान्यद्रव्यैरिति दृष्टातो गत। एवमनेन दृष्टातेन ज्ञानी शुद्धो भवन् स्वय निरूपाधिचिच्चमत्कारस्वभावेन कृत्वा जपापुष्पस्थानीयकर्मोदयरूपपरोपाधि विना रागादिविभावैर्न परिणमति पश्चात्सहजस्वच्छभावच्युत सन् स एव रज्यते। कै? अन्यै कर्मोदयनिमित्तै रागादिदोषै परिणामैरिति, तेन ज्ञायते कर्मोदयजनिता रागादयो न तु ज्ञानिजीवजनिता इति दार्ष्टान्तो गत।।३०१, ३०२।।

उसी प्रकार कहा गया है कि, **'णवकोडी'** आदि-अर्थात् पूर्व, पश्चात् और वर्तमान काल में मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदनारूप नव कोटी से जो शुद्ध है, ऐसा जीव यदि दूसरों के सुख-दु ख को निमित्त करके कर्मों से वधता है तो किसी को निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकता है। इस प्रकार ज्ञानियों को आहार ग्रहण करते हुए भी वध नहीं है, इस कथन की मुख्यता से ४ गाथाओं में यह छट्ठा स्थल पूर्ण हुआ।।२९९, ३००।।

अव, कर्मवध के कारण रागादि हैं, तो फिर उन रागादि भावों का क्या कारण है ? ऐसा प्रश्न पूछने पर उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - (**जह**) जैसे (**सुद्धो फलिहमणी**) शुद्ध स्वभाव वाली स्फटिकमणि (**रागमादीहि**) ललाई आदि रगरूप (**सय**) स्वय (**ण परिणमदि**) परिणत नहीं होती है (**दु**) परन्तु (**सो**) वह स्फटिकमणि (**अण्णेहि रत्तादीहि दव्वेहि**) दूसरे लाल, काले आदि द्रव्यों से (वर्णवाले द्रव्यों के सानिध्य में) (**राइज्जदि**) ललाई आदि रग स्वरूप परिणत होती है।

(**एव**) इसी प्रकार (**णाणी सुद्धो**) ज्ञानी शुद्ध है (**सो**) वह (**रागमादीहि**) रागादि भावों से (**सय**) स्वय (**ण परिणमदि**) नहीं परिणमता है (**दु**) लेकिन (**सो**) वह (**अण्णेहि रागादीहि दोसेहि**) अन्य रागादि दोषों से (**राइज्जदि**) रागादि विकारीभावमय किया जाता है।

टीकार्थ - जैसे स्फटिकमणि विशुद्ध है, वह वाह्य उपाधि के विना स्वय रागादिभाव से नहीं परिणमती है। वह जपापुष्प आदि वर्णवाले वाह्य द्रव्यों के द्वारा रगरूप परिणमन की जाती है। यह दृष्टात है।

इस दृष्टात के समान ज्ञानी शुद्ध होता हुआ स्वय उपाधि रहित चैतन्य चमत्कार स्वभाव के कारण जपापुष्प स्थानीय कर्मोदयरूप परोपाधि के विना रागादि विभावों के द्वारा स्वय परिणमन नहीं करता है। पश्चात् जीव सहज शुद्धस्वभाव से च्युत होकर अन्य कर्मोदय निमित्तजन्य रागादि दोषवाले परिणामों से विकारी किया जाता है (विकारी हो जाता है)।

इससे यह सिद्ध होता है कि, रागादि भाव कर्मोदय जनित हैं, ज्ञानी जीव जनित नहीं हैं। इस प्रकार यह दार्ष्टान्त पूर्ण हुआ।।३०१, ३०२।।

एव चिदानन्दैकलक्षण स्वस्वभाव जानन् ज्ञानी रागादीन्न करोति ततो नवतररागाद्युत्पत्तिकारण भूतकर्मणा कर्ता न भवतीति कथयति -

ण वि रागदोसमोह कुव्वदि णाणी कसायभाव वा। (२८०)
सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसि भावाण।।३०३।।

ण वि रागदोसमोह कुव्वदि णाणी कसायभाव वा ज्ञानी न करोति। कान् ? रागादिदोपरहित-शुद्धात्मस्वभावात्पृथग्भूतान् रागद्वेपमोहान् क्रोधादिकषायभाव वा। कथ न करोति ? **सय** स्वय शुद्धात्मभावेन कर्मोदय सहकारिकारण विना। कस्य सवधित्वेन ? **अप्पणो** आत्मन । **ण सो तेण कारगो तेसि भावाण** तेन कारणेन स तत्त्वज्ञानी तेषा रागादिभावाना कर्ता न भवतीति।।३०३।।

अज्ञानी जीव शुद्ध स्वभावमात्मानमजानन् रागादीन् करोति तत स भाविरागादिजनकनवतरकर्मणा कर्ता भवतीत्युपदिशति -

रायम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा। (२८१)
तेहि दु परिणममाणो[१] रागादी बधदि पुणो वि।।३०४।।

इस प्रकार चिदानद-एक लक्षणवाले अपने स्वभाव को जाननेवाला ज्ञानी रागादि विकारीभाव नहीं करता है। इसलिये वह ज्ञानी नूतन रागादि के उत्पत्ति के कारणभूत कर्मो का कर्ता नहीं होता है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - (**णाणी**) ज्ञानी (**रागदोसमोह**) राग-द्वेप-मोह को (**वा कसायभाव**) या कपायभाव को (**सय**) स्वय (**अप्पणो**) निजरूप (**ण वि कुव्वदि**) नही करता हे (**तेण**) इसलिये (**सो**) वह ज्ञानी (**तेसि भावाण**) उन रागादि भावों का (**कारगो ण**) कर्ता नही है।

टीकार्थ - रागादि दोष रहित शुद्धात्म स्वभाव से भिन्न जो राग-द्वेप-मोह अथवा क्रोधादि-कपाय भाव हैं उनको ज्ञानी नही करता हे।

शका - ज्ञानी रागादि कषाय भावों को कैसे नहीं करता हे ?

समाधान - ज्ञानी अपने आत्मा के स्वय-शुद्धात्म भाव से कर्मोदय के सहकारी कारण के विना कपाय भाव नहीं करता है।

इसलिये वह तत्त्वज्ञानी (सम्यग्ज्ञानी चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव उन रागादि भावों का कर्ता नहीं है।

(निगोद से लेकर सिद्धजीव तक के सभी जीवों का स्वभाव कपायरहित (विकार रहित) है। यह वचन शुद्ध निश्चयनय से हे। इसलिये सभी जीव शुद्ध निश्चयनय से स्वभाव दृष्टि से कषाय रहित हैं। इसको ज्ञानी जानता हे, इसलिये चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव कपाय भाव का कर्ता नही है।)।।३०३।।

अपने शुद्ध स्वभाव आत्मा को न जाननवाला अज्ञानी (मिथ्यात्व-सासादान-मिश्र गुणस्थानवर्ती) जीव रागादि विकारों भावों को करता है, इसलिये वह अज्ञानी भावि रागादि जनक नूतन कर्मो का कर्ता है, ऐसा दिखाते हैं -

---

[१] पाठान्तर - परिणमनो

रायम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा रागद्वेपकषायरूपे द्रव्यकर्मण्युदयागते सति स्वस्वभावच्युतस्य तदुदयनिमित्तेन ये जीवगतरागादिभावाः परिणामा भवति। **तेहि दु परिणममाणो रागादी बधदि पुणो वि** ते कृत्वा रागादिरहमित्यभेदेनाहमिति प्रत्ययेन कृत्वा परिणमन् सन् पुनरपि भाविरागादिपरिणामोत्पादकानि द्रव्यकर्माणि वध्नाति ततस्तेषा रागादीनामज्ञानी जीव कर्ता भवतीति।।३०४।।

तमेवार्थम् दृढयति -

रायम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा। (२८२)
तेहि दु[1] परिणमतो रागादी बधदे चेदा।।३०५।।

पूर्व गाथायामह रागादीत्यभेदेन परिणमन् सन् तानि रागादिभावोत्पादकानि नवतरद्रव्यकर्माणि वध्नातीत्युक्त। अत्र तु शुद्धात्मभावनारहितत्वेन मदीयो राग इति सवधेन परिणमन् सन् तानि नवतरद्रव्यकर्माणि वध्नाति, इति विशेष ।

गाथार्थ - **(रायम्हि य)** राग के होने पर **(दोसम्हि य)** द्वेष के होने पर, **(कसायकम्मेसु चेव)** और कषाय कर्मो के होने पर ही **(जे भावा)** जो रागादि भाव होते हें **(तेहि दु)** उनरूप **(परिणममाणो)** परिणमन करनेवाला अज्ञानी **(रागादी)** रागादि को **(पुणो वि)** बार-वार **(बधदि)** वॉधता है।

टीकार्थ - राग-द्वेष कषायरूप द्रव्यकर्मो के उदय होने पर उसी समय जीव अपने शुद्ध स्वभाव से च्युत होकर उस उदय के निमित्त मात्र से जीवगत रागादिभाव (विकारी परिणाम) होते हैं।

उन प्रत्ययों के द्वारा किए हुए **रागादिरूप मैं हूँ,** इस प्रकार की अभेद से प्रतीति करके परिणमन करनेवाला फिर से भावि रागादिरूप परिणामों के उत्पादक द्रव्य कर्मो को वाधता है, इसलिये उन रागादिकों का वह अज्ञानी (मिथ्यात्व-सासादान- मिश्र गुणस्थानवर्ती) जीव कर्ता होता है।।३०४।।

उस ही अर्थ को दृढ करते हैं -

गाथार्थ - **(रायम्हि य)** राग के होने पर, **(दोसम्हि य)** द्वेष के होने पर **(कसायकम्मेसु चेव)** और कषाय कर्मो के होने पर ही **(जे भावा)** जो रागादि परिणाम होते हैं **(तेहि दु)** उनरूप **(परिणमतो)** परिणमन करता हुआ **(चेदा)** आत्मा **(रागादी)** रागादिकों को **(बधदे)** वाधता है।

टीकार्थ - पूर्व गाथा में **"मैं रागादि हूँ,"** इस तरह अभेद से परिणमन करता हुआ रागादिभावों को उत्पन्न करनेवाले नूतन द्रव्य कर्मो को बाधता है, ऐसा कहा गया है। यहॉ शुद्धात्म भावना (स्वानुभव) से रहितपना से **"रागभाव मेरा है"** इस प्रकार राग के साथ सवध करता हुआ नूतन द्रव्यकर्मो को वाधता है। इसका विशेष यह है कि, जहा मोह-राग-द्वेष इनका कथन करते हैं वहॉ **मोह शब्द से दर्शन मोह है,** जो मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्व प्रकृति जनक है, ऐसा जानना चाहिये, और रागद्वेष शब्द से क्रोधादिकषायोत्पादक चारित्र मोह है, ऐसा जानना चाहिये। (पिछली गाथा में राग के प्रति एकत्व वुद्धि को और इस गाथा में राग के प्रति ममत्वबुद्धि को बध का कारण बताया है। यह विशेष वात है।)

---

[1] पाठान्तर - ते मम दु

किच विस्तर - यत्र मोहरागद्वेषा व्याख्यायते तत्र **मोह शब्देन दर्शनमोह., मिथ्यात्वादिजनक इति ज्ञातव्य,** रागद्वेषशब्देन तु क्रोधादिकषायोत्पादकश्चारित्रमोहो ज्ञातव्य । अत्राह शिष्य - मोहशब्देन तु मिथ्यात्वादिजनको दर्शनमोहो भवतु दोषो नास्ति, रागद्वेष शब्देन चारित्रमोह इति कथ भण्यते ? इति पूर्वपक्षे परिहार ददाति -

कषायवेदनीयाभिधानचारित्रमोहमध्ये क्रोधमानौ द्वेषागौ द्वेषोत्पादकत्वात्, मायालोभौ रागागौ रागजनकत्वात्, नोकषायवेदनीयसज्ञचारित्रमोहमध्ये स्त्रीपुन्नपुसकवेदत्रयहास्यरतय पचनोकषाया रागागा रागोत्पादकत्वात्, अरतिशोकभयजुगुप्सासज्ञा चत्वारो द्वेषागा द्वेषोत्पादकत्वात्, इत्यनेनाभिप्रायेण **मोहशब्देन दर्शनमोहो मिथ्यात्व भण्यते,** रागद्वेषशब्देन पुनश्चारित्रमोह इति सर्वत्र ज्ञातव्यम्। एव **कर्मबधकारण रागादय, रागादीना च कारण निश्चयेन कर्मोदयो, न च ज्ञानी जीव** इति व्याख्यानमुख्यत्वेन सप्तमस्थले गाथापचक गतम्।।३०५।।

शिष्य पूछता है कि - मोह शब्द से मिथ्यात्वादिजनक दर्शनमोह है यह ठीक है, इसमें दोष नहीं, लेकिन रागद्वेष शब्द से चारित्रमोह है, यह कैसे कहते हो ?

समाधान - कषाय वेदनीय नामक चारित्रमोह में क्रोध और मान ये दोनों द्वेष के अग हैं क्योंकि वे द्वेष के उत्पादक हैं, माया और लोभ ये राग के अग हैं क्योंकि वे राग के उत्पादक हैं। नोकषाय वेदनीय चारित्रमोह में स्त्री, पु, नपुसक ये तीन वेद और हास्य, रति मिलकर ये पाँच नोकषाय राग के अग हैं क्योंकि वे राग के उत्पादक हैं, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा ये चार नोकषाय द्वेष के अग हैं, क्योंकि वे द्वेष के उत्पादक हैं।

इस अभिप्राय से **मोह शब्द से मिथ्यात्व को दर्शनमोह कहते हैं,** और रागद्वेष शब्द से चारित्रमोह कहते हें, ऐसा सर्वत्र जानना चाहिये। इस प्रकार कर्मबध के कारण रागादि हैं और निश्चय से रागादिकों का कारण कर्मोदय है, ज्ञानी जीव रागादिकों का कारण नहीं है और ज्ञानी जीव कर्मवध का कारण नहीं है। इस कथन की मुख्यता से पॉच गाथायें सप्तमस्थल में पूर्ण हुई।

भावार्थ - स्वभाव से च्युत (स्वानुभव से च्युत मिथ्यात्व-सासादन-मिश्रगुणस्थानवर्ती) जीव **"मै रागी हूँ"** इस प्रकार अभेद मानकर परिणमन करते हैं, इसलिये रागभाव के और कर्म के कर्ता हैं। और स्वानुभव वाले चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव अपने स्वभाव को रागदि से भिन्न जानते हैं, इसलिये रागादि के और कर्म के कर्ता नहीं हैं।।३०५।।

अब, सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) जीव रागादि भावों का अकर्ता कैसे है? ऐसा प्रश्न पूछने पर उत्तर कहते हैं -

गाथार्थ - **(अप्पडिकमण)** अप्रतिक्रमण **(दुविह)** दो प्रकार का है **(तहेव)** उसी प्रकार **(अपच्चक्खाण)** अप्रत्याख्यान दो प्रकार का **(विण्णेय)** जानना चाहिये **(एदेणुवदेसेण दु)** इस उपदेश से **(चेदा)** आत्मा **(अकारगो)** अकारक **(वण्णिदो)** कहा गया है।

(अप्पडिकमण) अप्रतिक्रमण **(दव्वे भावे)** द्रव्य और भावरूप **(दुविह)** दो प्रकार का है **(अपच्चक्खाण पि)** अप्रत्याख्यान भी द्रव्य और भाव रूप दो प्रकार का है **(एदेणुवदेसेण दु)** इस उपदेश से **(चेदा)** आत्मा **(अकारगो)** अकारक **(वण्णिदो)** कहा गया है।

रायम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा रागद्वेषकषायरूपे द्रव्यकर्मण्युदयागते सति स्वस्वभावच्युतस्य तदुदयनिमित्तेन ये जीवगतरागादिभावाः परिणामा भवति। **तेहि दु परिणममाणो रागादी बधदि पुणो वि** ते कृत्वा रागादिरहमित्यभेदेनाहमिति प्रत्ययेन कृत्वा परिणमन् सन् पुनरपि भाविरागादिपरिणामोत्पादकानि द्रव्यकर्माणि वध्नाति ततस्तेषा रागादीनामज्ञानी जीव कर्ता भवतीति।।३०४।।

तमेवार्थम् दृढयति -

रायम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा। (२८२)
तेहि दु[1] परिणमतो रागादी बधदे चेदा।।३०५।।

पूर्व गाथायामह रागादीत्यभेदेन परिणमन् सन् तानि रागादिभावोत्पादकानि नवतरद्रव्यकर्माणि वध्नातीत्युक्त। अत्र तु शुद्धात्मभावनारहितत्वेन मदीयो राग इति सवधेन परिणमन् सन् तानि नवतरद्रव्यकर्माणि वध्नाति, इति विशेष ।

गाथार्थ - **(रायम्हि य)** राग के होने पर **(दोसम्हि य)** द्वेष के होने पर, **(कसायकम्मेसु चेव)** और कषाय कर्मो के होने पर ही **(जे भावा)** जो रागादि भाव होते हैं **(तेहि दु)** उनरूप **(परिणममाणो)** परिणमन करनेवाला अज्ञानी **(रागादी)** रागादि को **(पुणो वि)** वार-वार **(बधदि)** वॉधता है।

टीकार्थ - राग-द्वेष कषायरूप द्रव्यकर्मो के उदय होने पर उसी समय जीव अपने शुद्ध स्वभाव से च्युत होकर उस उदय के निमित्त मात्र से जीवगत रागादिभाव (विकारी परिणाम) होते हैं।

उन प्रत्ययों के द्वारा किए हुए **रागादिरूप मैं हूँ**, इस प्रकार की अभेद से प्रतीति करके परिणमन करनेवाला फिर से भावि रागादिरूप परिणामों के उत्पादक द्रव्य कर्मो को वाधता है, इसलिये उन रागादिकों का वह अज्ञानी (मिथ्यात्व-सासादान- मिश्र गुणस्थानवर्ती) जीव कर्ता होता है।।३०४।।

उस ही अर्थ को दृढ करते हैं -

गाथार्थ - **(रायम्हि य)** राग के होने पर, **(दोसम्हि य)** द्वेष के होने पर **(कसायकम्मेसु चेव)** और कषाय कर्मो के होने पर ही **(जे भावा)** जो रागादि परिणाम होते हैं **(तेहि दु)** उनरूप **(परिणमतो)** परिणमन करता हुआ **(चेदा)** आत्मा **(रागादी)** रागादिकों को **(बधदे)** वाधता है।

टीकार्थ - पूर्व गाथा में **"मैं रागादि हूँ,"** इस तरह अभेद से परिणमन करता हुआ रागादिभावों को उत्पन्न करनेवाले नूतन द्रव्य कर्मो को बाधता है, ऐसा कहा गया है। यहॉ शुद्धात्म भावना (स्वानुभव) से रहितपना से **"रागभाव मेरा है"** इस प्रकार राग के साथ सवध करता हुआ नूतन द्रव्यकर्मो को वाधता है। इसका विशेष यह है कि, जहा मोह-राग-द्वेष इनका कथन करते हैं वहॉ **मोह शब्द से दर्शन मोह** है, जो मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्व प्रकृति जनक है, ऐसा जानना चाहिये, और रागद्वेष शब्द से क्रोधादिकषायोत्पादक चारित्र मोह है, ऐसा जानना चाहिये। (पिछली गाथा में राग के प्रति एकत्व वुद्धि को और इस गाथा में राग के प्रति ममत्वबुद्धि को बध का कारण बताया है। यह विशेष वात है।)

---

[1] पाठान्तर - ते मम दु

किच विस्तर - यत्र मोहरागद्वेषा व्याख्यायते तत्र **मोह शब्देन दर्शनमोह, मिथ्यात्वादिजनक इति** ज्ञातव्य, रागद्वेषशब्देन तु क्रोधादिकषायोत्पादकश्चारित्रमोहो ज्ञातव्य । अत्राह शिष्य - मोहशब्देन तु मिथ्यात्वादिजनको दर्शनमोहो भवतु दोषो नास्ति, रागद्वेष शब्देन चारित्रमोह इति कथ भण्यते ? इति पूर्वपक्षे परिहार ददाति -

कषायवेदनीयाभिधानचारित्रमोहमध्ये क्रोधमानौ द्वेषागौ द्वेषोत्पादकत्वात्, मायालोभौ रागागौ रागजनकत्वात्, नोकषायवेदनीयसज्ञचारित्रमोहमध्ये स्त्रीपुन्नपुसकवेदत्रयहास्यरतय पचनोकषाया रागागा रागोत्पादकत्वात्, अरतिशोकभयजुगुप्सासज्ञा चत्वारो द्वेषागा द्वेषोत्पादकत्वात्, इत्यनेनाभिप्रायेण **मोहशब्देन दर्शनमोहो मिथ्यात्व भण्यते,** रागद्वेषशब्देन पुनश्चारित्रमोह इति सर्वत्र ज्ञातव्यम्। एव **कर्मबधकारण रागादय., रागादीना च कारण निश्चयेन कर्मोदयो, न च ज्ञानी जीव** इति व्याख्यानमुख्यत्वेन सप्तमस्थले गाथापचक गतम्।। ३०५।।

शिष्य पूछता है कि - मोह शब्द से मिथ्यात्वादिजनक दर्शनमोह है यह ठीक है, इसमें दोष नहीं, लेकिन रागद्वेष शब्द से चारित्रमोह है, यह कैसे कहते हो ?

समाधान - कषाय वेदनीय नामक चारित्रमोह में क्रोध और मान ये दोनों द्वेष के अग हैं क्योंकि वे द्वेष के उत्पादक हैं, माया और लोभ ये राग के अग हैं क्योंकि वे राग के उत्पादक हैं। नोकषाय वेदनीय चारित्रमोह में स्त्री, पु, नपुसक ये तीन वेद और हास्य, रति मिलकर ये पॉच नोकषाय राग के अग हैं क्योंकि वे राग के उत्पादक हैं, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा ये चार नोकषाय द्वेष के अग हैं, क्योंकि वे द्वेष के उत्पादक हैं।

इस अभिप्राय से **मोह शब्द से मिथ्यात्व को दर्शनमोह कहते हैं,** और रागद्वेष शब्द से चारित्रमोह कहते हैं, ऐसा सर्वत्र जानना चाहिये। इस प्रकार कर्मबध के कारण रागादि हैं और निश्चय से रागादिकों का कारण कर्मोदय है, ज्ञानी जीव रागादिकों का कारण नहीं है और ज्ञानी जीव कर्मवध का कारण नहीं है। इस कथन की मुख्यता से पॉच गाथायें सप्तमस्थल में पूर्ण हुई।

भावार्थ :- स्वभाव से च्युत (स्वानुभव से च्युत मिथ्यात्व-सासादन-मिश्रगुणस्थानवर्ती) जीव **"मै रागी हूँ"** इस प्रकार अभेद मानकर परिणमन करते हैं, इसलिये रागभाव के और कर्म के कर्ता हैं। और स्वानुभव वाले चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव अपने स्वभाव को रागदि से भिन्न जानते हैं, इसलिये रागादि के और कर्म के कर्ता नहीं हैं।। ३०५।।

अब, सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) जीव रागादि भावों का अकर्ता कैसे है? ऐसा प्रश्न पूछने पर उत्तर कहते हैं -

गाथार्थ :- **(अप्पडिकमण)** अप्रतिक्रमण **(दुविह)** दो प्रकार का है **(तहेव)** उसी प्रकार **(अपच्चक्खाण)** अप्रत्याख्यान दो प्रकार का **(विण्णेय)** जानना चाहिये **(एदेणुवदेसेण दु)** इस उपदेश से **(चेदा)** आत्मा **(अकारगो)** अकारक **(वण्णिदो)** कहा गया है।

(अप्पडिकमण) अप्रतिक्रमण **(दव्वे भावे)** द्रव्य और भावरूप **(दुविह)** दो प्रकार का है **(अपच्चक्खाण पि)** अप्रत्याख्यान भी द्रव्य और भाव रूप दो प्रकार का है **(एदेणुवदेसेण दु)** इस उपदेश से **(चेदा)** आत्मा **(अकारगो)** अकारक **(वण्णिदो)** कहा गया है।

अथ कथ सम्यग्ज्ञानी जीवो रागादीनामकारक इति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह -

अप्पडिकमण दुविह अपच्चक्खाण तहेव विण्णेय। (२८३)
एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा।।३०६।।
अप्पडिकमण दुविह दव्वे भावे अपच्चक्खाण पि। (२८४)
एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा।।३०७।।
जाव ण पच्चक्खाण अप्पडिकमण[1] च दव्वभावाण। (२८५)
कुव्वदि आदा ताव दु कत्ता सो होदि णादव्वो।।३०८।।

(जाव) जव तक (आदा) आत्मा (दव्वभावाण) द्रव्य और भावरूप (अप्पडिकमण) प्रतिक्रमण नहीं करता है (दु) ओर (पच्चक्खाण) द्रव्य और भावरूप प्रत्याख्यान भी (ण कुव्वदि) नही करता है (तावदु) तव तक (सो) वह आत्मा (कत्ता) कर्ता (होदि) होता है ऐसा (णादव्वो) जानना चाहिए।

टीकार्थ - पूर्वकाल में अनुभव किये हुए विषयों का अनुभव करनेरूप रागादि का स्मरण करना, सो अप्रतिक्रमण है, वह दो प्रकार का है। इसी प्रकार भविष्यकाल में होनेवाले रागादि के विषयों की आकाक्षारूप जो अप्रत्याख्यान है, वह भी उसी तरह दो प्रकार का है। इस प्रकार परमागम के उपदेश से ऐसा जाना जाता है कि, आत्मा दोनों प्रकार के अप्रतिक्रमण से रहित (याने सप्रतिक्रमण) है और दोनों प्रकार के अप्रत्याख्यान से रहित (याने प्रत्याख्यान सहित) होने से कर्मो का अकर्ता है।

द्रव्य अप्रतिक्रमण भाव अप्रतिक्रमण और द्रव्य अप्रत्याख्यान, भाव अप्रत्याख्यान इस तरह अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान दो-दो प्रकार का है। वह अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान ही वध का कारण है, ऐसा आगम का उपदेश है। उस उपदेश से ऐसा जाना जाता है कि, द्रव्य-भाव अप्रतिक्रमण से और द्रव्य-भाव अप्रत्याख्यान से परिणत जो जीव शुद्धात्म भाव-भावना से (स्वानुभव से) च्युत है वह अज्ञानी है, वह कर्मो का कारक (कर्त्ता) है। उससे विपरीतवाला याने द्रव्य-भाव प्रतिक्रमण से और द्रव्य-भाव प्रत्याख्यान से परिणत ऐसा चेतयिता ज्ञानी है, वह ज्ञानी कर्मो का अकर्ता है। इस अर्थ को ही दृढ करते हैं -

जव तक द्रव्य-भावरूप निर्विकार स्वसवित्ति लक्षणवाला (स्वानुभव) प्रत्याख्यान नहीं है और जव तक द्रव्य- भावरूप प्रतिक्रमण (स्वानुभव) नहीं है, तव तक आत्मा परमसमाधि का (स्वानुभव का) अभाव होने से वह अज्ञानी जीव कर्मो का कारक (कर्ता) है, ऐसा जानना चाहिये।

और विशेष कहते हैं कि, अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान वाला कर्मो का कर्ता है और ज्ञानी (सम्यग्ज्ञानी-चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव) कर्मों का कर्ता नहीं हे।

यदि जीव ही कर्ता है तो सर्वदा (अज्ञान अवस्था में और सम्यग्ज्ञान अवस्था में) ही कर्तृत्व का ही प्रसग आता है, क्योंकि जीव (सव ही प्रकार के) सदा ही (अज्ञान अवस्था में और सम्यग्ज्ञान अवस्था में) विद्यमान है। रागादि विकल्परूप अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान अनित्य हैं, और वे स्वस्थभाव से (स्वभाव से याने स्वानुभव से) च्युत होनेवाले जीवों के होते हैं (सभी जीवों के) सदा ही नहीं होते हैं।

---

[1] पाठान्तर - जाव अप्पडिकमणं अपच्चखाणं

अप्पडिकमणं दुविहं अपच्चक्खाणं तहेव विण्णेयं पूर्वानुभूतविषयानुभवरागादिस्मरणरूपमप्रतिक्रमणं द्विविधं, भाविरागादिविषयाकांक्षारूपमप्रत्याख्यानमपि तथैव द्विविधं विज्ञेयं। **एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा** एतेनोपदेशेन परमागमेन ज्ञायते। किं ज्ञायते ? चेतयितात्मा हि द्विप्रकाराप्रतिक्रमणेन द्विप्रकाराप्रत्याख्यानेन च रहितत्वात् कर्मणामकर्ता भवतीति। **अप्पडिकक्मणं दुविहं दव्वे भावे अपच्चक्खाणं पि** द्रव्यभावरूपेणाप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं च द्विविधं भवति। **एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा** तदेव बंधकारणमित्युपदेशः आगमः तेनोपदेशेन ज्ञायते, किं ज्ञायते ? द्रव्यभावरूपेणाप्रत्याख्यानेनाप्रतिक्रमणेन च परिणतः शुद्धात्मभावनाच्युतो योऽसावज्ञानी जीवः स कर्मणां कारकः। तद्विपरीतो ज्ञानी चेतयिता पुनरकारक इति। तमेवार्थम् दृढयति। **जाव ण पच्चक्खाणं** यावत्कालं द्रव्यभावरूपं, निर्विकारस्वसंवित्तिलक्षणं प्रत्याख्यानं नास्ति **अप्पडिकमणं तु दव्वभावाणं कुव्वदि** यावत्कालं द्रव्यभावरूपमप्रतिक्रमणं च करोति **आदा ताव दु कत्ता सो होदि णादव्वो** तावत्कालं परमसमाधेरभावात् स चाज्ञानी जीवः कर्मणां कारको भवतीति ज्ञातव्यः।

किं चाप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं च कर्मणां कर्तृ, न च ज्ञानी जीवः। यदि (स एव) जीवः कर्ता भवति तदा सर्वदैव कर्तृत्वमेव। कस्मात्? इति चेत्, जीवस्य सदैव विद्यमानत्वात् इति।

अप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं पुनरनित्यं रागादिविकल्परूपं, तच्च स्वस्थभावच्युतानां भवति न सर्वदैव। तेन किं सिद्धं ? यदा स्वस्थभावच्युतः सन् अप्रतिकमणाप्रत्यख्यानाभ्यां परिणमति तदा कर्मणां कारको भवति। स्वस्थभावे पुनरकारक इति भावार्थः। एवमज्ञानिजीवपरिणतिरूपमप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं च बंध कारणं, न च ज्ञानी जीवः इति व्याख्यानमुख्यत्वेनाष्टमं स्थले गाथात्रयं गतम्।

शंका - उससे क्या सिद्ध हुआ ?

समाधान - जब जीव स्वस्थभाव से (स्वानुभूति से) च्युत होकर अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यानमय परिणति करता है तब कर्मों का कर्ता है (कारक है)। और जब जीव स्वस्थभाव में (स्वानुभव में) रहता है तब कर्मों का अकर्ता (अकारक) है। यह भावार्थ है।

इस प्रकार अज्ञानी जीव की अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यानमय परिणति बंध का कारण है और सम्यग्ज्ञानी जीव की प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यानमय परिणति बंध का कारण नहीं है।

(शंका - क्या चतुर्थ गुणस्थानवर्ती) अव्रती सम्यक्त्वी जीव की प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यानमय परिणति है?

समाधान - चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अव्रती सम्यक्त्वी जीव स्वानुभव करता है इसलिये चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अव्रती सम्यक्त्वी जीव की प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यानमय परिणति है।)

इस कथन की मुख्यता से अष्टमस्थल में तीन गाथायें पूर्ण हुई।

अब निर्विकल्प समाधिरूप (स्वानुभूतिरूप) निश्चयप्रतिक्रमण निश्चयप्रत्याख्यान रहित जीवों का (मिथ्यात्व-सासादन-मिश्रगुणस्थानवर्ती जीवों का) जो बंध कहा गया है, वह त्यागने योग्य संपूर्ण नारकादि दुःख का कारण होने से हेय है। **उस बंध के नाश के लिये विशेष भावना कहते हैं -**

१) मैं सहज शुद्ध ज्ञानानंद एक स्वभाव वाला हूँ, २) मैं निर्विकल्प हूँ, ३) मैं उदासीन हूँ,

अथ निर्विकल्पसामाधिरूपनिश्चयप्रतिक्रमणनिश्चयप्रत्याख्यानरहिताना जीवाना योऽसौ वधो भणित स च हेयस्याशेषस्य नरकादिदु खस्य कारणत्वाद्धेय । तस्य वधस्य विनाशार्थम् विशेष भावनामाह - **सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभावोऽह, निर्विकल्पोऽह, उदासीनोऽह,** निरजननिजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धान- ज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसजातवीतरागसहजानदरूप सुखानुभूतिमात्रलक्षेणन स्वसवेदनज्ञानेन सवेद्यो गम्य प्राप्यो **भरितावस्थोऽह,** रागद्वेषमोहक्रोधमानमायालोभपचेद्रियविषयव्यापार मनोवचनकायव्यापार भावकर्म द्रव्यकर्मनोकर्मख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाक्षारूप निदानमायामिथ्याशल्यत्रयादि सर्वविभावपरिणामरहित **शून्योऽह,** जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायै कृतकारितानुमतैश्च शुद्धनिश्यचेन, तथा सर्वे जीवा इति निरतर भावना कर्तव्या ।।३०६, ३०७, ३०८।।

इति श्री जयसेनाचार्यकृताया समयसारव्याख्याया शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाया **तात्पर्यवृत्तौ** पूर्वोक्तक्रमेण **जह णाम को वि पुरिसो** इत्यादि मिथ्यादृष्टिसद्दृष्टिव्याख्यानरूपेण गाथादशक। निश्चयहिसाकथनरूपेण गाथासप्तक, निश्चयेन **रागादिविकल्प एव हिसेति** कथनरूपेण सूत्रषट्क, अव्रतव्रतानि पापपुण्यवधकारणानीत्यादि कथनेन गाथापचदश, **निश्चयनयेन स्थित्वा व्यवहारस्त्याज्य** इति मुख्यत्वेन गाथाषट्क, पिण्डशुद्धिमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टय, निश्चयनयेन रागादय कर्मोदयजनिता इति कथनमुख्यत्वेन सूत्रपचक, निश्चयनयेनाप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यान च वधकारणमिति प्रतिपादनरूपेण गाथात्रयमित्येव समुदायेन षट्पचाशद्गाथाभिरष्टभिरतराधिकारै अष्टमो बधाधिकार समाप्त ।।८।।

---

४) मैं निरजन निज शुद्धात्म सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप निश्चय रत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न वीतराग सहजानदरूप सुखानुभूतिमात्र लक्षणवाले स्वसवेदन ज्ञान से सवेद्य, गम्य, प्राप्य, भरित (सतृप्त) अवस्थावाला हूँ ,

५) मैं राग-द्वेष-मोह, क्रोध-मान-माया-लोभ, पचेंद्रियविषयव्यापार, मन-वचन-कायव्यापार, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म, ख्याति-पूजा-लाभ, दृष्ट-श्रुत-अनुभूत भोगाकाक्षारूप निदान-माया-मिथ्याशल्यत्रयादि सर्व विभाव परिणामों से रहित हूँ,

६) मैं सर्व विभाव परिणामों से शून्य हूँ,

तीन लोक और तीन काल में भी मन-वचन-काय से और कृत-कारित-अनुमोदन से और शुद्धनिश्चयनय से मैं तथा सभी जीव इसी तरह शुद्ध हैं, ऐसी भावना निरतर करनी चाहिये।। ३०६, ३०७, ३०८।।

इस प्रकार श्री जयसेनाचार्य द्वारा की हुई समयसार की टीका शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाली तात्पर्यवृत्ति में पूर्वोक्त क्रम से **'जह णाम कोवि पुरिसो'** इत्यादि मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि का कथन करनेवाली १० गाथायें, निश्चय हिसा का कथन करनेवाली ७ गाथायें, निश्चयनय से **रागादि विकल्प ही हिसा है** ऐसा कथन करनेवाली ६ गाथायें, व्रत-अव्रत पुण्य-पाप के बध के कारण हैं इत्यादि कथन करनेवाली १५ गाथायें, निश्चयनय में ठहरकर व्यवहार त्याज्य है इस कथन की मुख्यता से ६ गाथायें, पिडशुद्धि की मुख्यता से ४ गाथायें, निश्चयनय से रागादि कर्मोदयजनित है इस कथन की मुख्यता से ५ गाथायें और निश्चयनय से अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान वध के कारण हैं यह कथन करनेवाली तीन गाथायें हैं। इस तरह ५६ गाथाओं के समुदाय में, आठ अतराधिकारों के द्वारा आठवॉ बधाधिकार समाप्त हुआ।।८।।

卐 卐 卐 卐 卐

परिभाषाओं में न्याय

न्याय	प्रमाण-नयात्मक एव न्याय । प्रमाणैरर्थपरीक्षण न्याय ।
उद्देश	विवेक्तव्यनाममात्रकथनमुद्देश ।
लक्षण	परस्परव्यतिकरेसति येनाऽन्यत्वं लक्ष्यते तल्लक्षणम् ।
परीक्षा	विरुद्ध नानायुक्ति प्राबल्यदौर्बल्यावधारणाय प्रवर्तमानो विचार परीक्षा।
प्रमाता	प्रमातु ज्ञातृत्वमेव ।
प्रमाण	स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाणम् । प्रमितिक्रियाप्रति साधकतम प्रमाणम् ।
प्रमेय-निक्षेप	ज्ञानपर्यायस्य विषय प्रमेय । अर्थोज्ञानविषयभूत पदार्थ ।
प्रमिति-फल	अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्चफलम् । प्रमिति प्रमाणस्य फलम्।
प्रत्यक्ष	विशदप्रतिभास प्रत्यक्षम्। सर्वतो वैशद्य चात्ममात्र सापेक्षत्वात्।
विशद	ज्ञानावरणस्यक्षयाद्विशिष्टक्षयोपशमाद्वाशब्दानुमानाद्यसभवि यन्नैर्मल्यमनुभवसिद्धम् ।
परोक्ष	अविशद प्रतिभास परोक्षम् ।
अनुभव-प्रतीति	इदन्तोल्लेखिज्ञानमनुभव । प्रतीतिस्तत्तोल्लेखिन्यनुभूतविषया ।
धारणा	कालान्तराविस्मरणयोग्यतया तस्यैव ज्ञान धारणा।
स्मृति	तत्तोल्लेखिज्ञान स्मरणम्। तदित्याकारा प्रागनुभूतवस्तुविषया स्मृति ।
प्रत्यभिज्ञान	अनुभवस्मृतिहेतुक सकलनात्मक ज्ञान प्रत्यभिज्ञानम् ।
तर्क	उपलम्भानुपलम्भ निमित्त व्याप्तिज्ञानमूह ।
अनुमान	साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् ।
धर्मी-पक्ष	साध्यधर्माधारो धर्मी । प्रसिद्धोधर्मी ।
साध्य	इष्टमवाधितमसिद्ध साध्यम् । शक्यमभिप्रेतमप्रसिद्ध साध्यम्।
हेतु-साधन	साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतु । अन्यथानुपपत्युपलक्षितमेवलक्षणम् ।
अविनाभाव	सहक्रमभावनियमोऽविनाभाव ।
हेत्वाभास	हेतुलक्षणरहिता हेतुवदवभासमान हेत्वाभासा।
आगम	आप्तवाक्यनिबन्धन अर्थज्ञानमागम ।
आप्त	आप्त प्रत्यक्षप्रमितसकलार्थत्वे सति परमहितोपदेशक ।
निर्दोषत्व	आवरणरागादयोदोषास्तेभ्योनिष्क्रान्तत्व हि निर्दोषत्वम् ।
प्रामाण्य	प्रतिभातविषयाव्यभिचारित्वम् ।
प्रमाण का विषय	सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषय।
कार्य-कारणभाव	अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्य-कारण भाव ।
नय	प्रमाणगृहीतार्थैकदेशग्राही प्रमातुरभिप्रायविशेष ।
सप्तभगी	प्रश्नवशादेकत्रवस्तुन्यविरोधेन विधि-प्रतिषेधविकल्पना ।
प्रमाणसप्तभगी	एकधर्मप्रधानभावेन साकल्येन वस्तुन प्रतिपादकत्वात् ।
नय सप्तभगी	एकधर्मविशिष्टस्य एव वस्तुन प्रतिपादनात् ।
अर्थ	अर्थोऽनेकान्त ।
छल	वचनविघातोऽर्थविकल्पोपपत्याछलम्। सामान्यछल, वाक्छल,उपचारछल।

चार्ट न. १

चारों अनुयोगों का मिलान और आत्मानुभूति

श्रीसमयसार-श्रीजयसेनाचार्यजीकृत तात्पर्यवृत्ति गाथा न २६५-२६६ (आत्मख्याति गाथा न २७६-२७७) की टीका पर से -

व्यवहारमोक्षमार्ग याने व्यवहारसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र याने सरागसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र है।	मोक्ष नहीं है	मिथ्यात्वादि ७ प्रकृतियों का उपशम नहीं है। अथवा - मिथ्यात्वादि ७ प्रकृतियों का क्षयोपशम नहीं है। अथवा - मिथ्यात्वादि ७ प्रकृतियों का क्षय नहीं है।	निजशुद्धपारिणामिकभाव का आश्रय न करने से शुद्धात्मानुभूति नहीं है। याने मिथ्यात्वी है याने निश्चयसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र नहीं।
व्यवहारमोक्षमार्ग याने व्यवहारसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र याने सरागसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र है।	मोक्ष है	मिथ्यात्वादि ७ प्रकृतियों का उपशम है। अथवा - मिथ्यात्वादि ७ प्रकृतियों का क्षयोपशम है। अथवा - मिथ्यात्वादि ७ प्रकृतियों का क्षय है।	निजशुद्धपारिणामिकभाव का आश्रय करने से शुद्धात्मानुभूति है। याने वीतरागसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र है। निश्चयसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र है।
प्रथमानुयोग चरणानुयोग	करणानुयोग		द्रव्यानुयोग
आगमभाषा			अध्यात्मभाषा

श्री जयसेनाचार्यजी, (१) द्रव्यानुयोग का प्रथमानुयोग के साथ, (२) द्रव्यानुयोग का करणानुयोग के साथ, (३) द्रव्यानुयोग का चरणानुयोग के साथ, (४) द्रव्यानुयोग का न्यायग्रंथों के साथ तुलनात्मक विवेचन करते हैं, अध्यात्मन्याय भी दिखाते हैं।

मोक्ष अधिकार

तत्रैव सति पात्रस्थानीयशुद्धात्मन सकाशात्पृथग्भूत्वा शृंगारस्थानीयबधो निष्क्रात । अथ **प्रविशति मोक्ष ।** **जह णाम कोवि पुरिसो** इत्यादि गाथामादिं कृत्वा यथाक्रमेण द्वाविशतिगाथापर्यन्त मोक्षपदार्थव्याख्यान करोति। तत्रादौ मोक्षपदार्थस्य सक्षेपव्याख्यानरूपेण गाथासप्तक, तदनतर मोक्षकारणभूतभेदविज्ञानसक्षेपसूचनार्थम् **बधाण च सहाव** इत्यादि सूत्रचतुष्टय, अत पर तस्यैव भेदज्ञानस्य विशेषविवरणार्थम् **'पण्णाए घेत्तव्वो'** इत्यादि सूत्रपचक, तदनतर वीतरागचारित्रसहितस्य द्रव्यप्रतिक्रमणादिक विषकुभ सरागचारित्रस्यामृतकुभ इति युक्तिसूचनमुख्यत्वेन **'थेयादी अवराहे'** इत्यादि सूत्रषट्क कथयतीति द्वाविशतिगाथाभि स्थलचतुष्टये मोक्षाधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा -

विशिष्टभेदज्ञानावष्टभेन बधात्मनो पृथक्करण मोक्ष इति प्रतिपादयति -

जह णाम को वि पुरिसो बधणयम्हि चिरकालपडिबद्धो। (२८८) आ.ख्या.
तिव्व मदसहाव काल च वियाणदे तस्स।। ३०९।। ता.वृ.
जदि णवि कुव्वदि छेद ण मुच्चदे तेण बधणवसो स[1]। (२८९)
कालेण दु बहुगेण वि ण सो णरो पावदि विमोक्ख।।३१०।।
इय कम्मबधणाण पदेसपयडिट्ठिदीय अणुभाग। (२९०)
जाणतो वि ण मुचदि मुचदि सव्वे जदि विसुद्धो[2]।।३११।।

इस प्रकार वहाँ पात्रस्थानीय शुद्धात्मा से भिन्न होकर शृंगारस्थानीय वध निष्क्रात हो गया।

अब, **मोक्ष प्रवेश करता है -'जह णाम को वि पुरिसो'** इत्यादि गाथा से शुरु करके यथाक्रम से २२ गाथाओं तक मोक्षपदार्थ का कथन करते हैं। वहाँ पहले मोक्षपदार्थ का सक्षेपरूप से कथन ७ गाथाओं में है। तदनतर मोक्ष का कारणभूत भेदविज्ञान है उसका सक्षेप में कथन **'बधाण च सहाव'** इत्यादि ४ गाथाओं में है। इसक आगे उस ही भेदज्ञान का विशेष वर्णन करने के लिये **'पण्णाए घेत्तव्वो'** इत्यादि ५ गाथायें हैं। तदनतर वीतरागचारित्रवाले के (स्वानुभववाले के) द्रव्यप्रतिक्रमणादिक विषकुभ हैं और सरागचारित्रधारी के द्रव्यप्रतिक्रमणादिक अमृतकुभ हें, इस **युक्ति के कथन** की मुख्यता से **'थेयादी अवराहे'** इत्यादि छह गाथायें कही हैं। इस प्रकार २२ गाथाओं से ४ स्थलों में मोक्षाधिकार की समुदायपातनिका हे।

यहाँ, **विशिष्टभेदज्ञान के अवलबन से** (स्वानुभूति के वल से) **बध और आत्मा को भिन्न करना सो मोक्ष है**, ऐसा प्रतिपादन करते हैं -

---

[1] पाठान्तर - जइ णवि कुणइ च्छेद ण मुच्चए तेण कम्मवधेण । [2] मुचदि सव्वे जदि स वधे ।

जह णाम इत्यादि। यथा कश्चित्पुरुष बधने चिरकालबद्धस्तिष्ठति तस्य बधस्य तीव्रमदस्वभाव जानाति दिवसमासादिकाल च विजानाति इति प्रथमगाथा गता।

जानन्नपि यदि बधच्छेद न करोति तदा न मुच्यते तेन कर्मबधविशेषेणामुच्यमान सन् पुरुषो बहुतरकालेऽपि मोक्ष न लभते इति गाथाद्वयेन दृष्टातो गत ।

अथ **इय कम्मबधणाण पदेसपयडिट्ठिदीय अणुभाग जाणतो वि ण मुचदि** एव ज्ञानावरणादिमूलोत्तर-प्रकृतिभेदभिन्नकर्मबधनाना प्रदेश, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग च जानन्नपि कर्मणा न मुचति। **मुचदि सव्वे जदि विसुद्धो** यदा मिथ्यात्वरागादिरहितो भवति तदाऽनतज्ञानादिगुणात्मकपरमात्मस्वरूपे स्थित सर्वान्कर्मबधान् मुचति। अथवा पाठातर **मुचदि सव्वे जदि स बधे** मुच्यते कर्मणा यदि कि, छिज्जदि छिनत्ति। कान् ? सर्व कर्मबधान्। अनेन व्याख्यानेन ये प्रकृत्यादिबधपरिज्ञानमात्रेण सतुष्टास्ते प्रतिबोध्यते। कथ ? इति चेत्, बधपरिज्ञानमात्रेण **स्वरूपोपलब्धिरूपवीतरागचारित्ररहिताना** स्वर्गादिसुखनिमित्तभूत पुण्यबधो भवति न च मोक्ष इति दार्ष्टांतगाथा गता। एतेन व्याख्यानेन कर्मबधप्रपचरचनाविषये चितामात्रपरिज्ञानेन सतुष्टा निराक्रियते।। ३०९, ३१०, ३११।।

गाथार्थ - **(जह णाम)** जैसे **(बधणयम्हि)** बधन में **(चिरकालपडिबद्धो)** बहुत समय से बधा हुआ **(को वि पुरिसो)** कोई पुरुष **(तस्स)** उस बन्धन के **(तिव्व)** तीव्र **(मदसहाव)** मद स्वभाव को **(च काल)** और उसके काल को **(वियाणदे)** जानता है।

(जदि) यदि वह **(छेद ण वि कुव्वदि)** उस बधन को नहीं काटता है तो वह **(तेण)** उस बन्धन से **(ण मुच्चदे)** नहीं छूटता हे **(दु)** और **(बधणवसो स)** बन्धन के वश हुआ **(सो णरो)** वह मनुष्य **(बहुगेण वि कालेण)** बहुत काल में भी **(विमोक्ख ण पावदि)** छुटकारा प्राप्त नहीं करता है।

(इय) इसी प्रकार जीव **(कम्मबधणाण)** कर्मबधनों के **(पदेसपयडिट्ठिदीय अणुभाग)** प्रदेश, प्रकृति, स्थिति और अनुभाग को **(जाणतो वि)** जानता हुआ भी **(ण मुचदि)** कर्मबधन से नहीं छूटता है **(जदि)** यदि वह **(विसुद्धो)** शुद्ध है तो **(सव्वे मुचदि)** सब कर्मो से छूट जाता है।

टीकार्थ - जेसे कोई पुरुष बधन में चिरकाल से बद्ध है। उस बधन के तीव्र-मद स्वभाव को जानता है, और दिवस, मास आदि काल को जानता है। यह प्रथम गाथा का अर्थ हुआ। यह जानते हुए भी यदि वह बध का छेद नहीं करता है तब वह छूटता नहीं है। इसलिये कर्मबध के विशेष से (वश से) न छूटा हुआ पुरुष बहुत काल में भी मोक्ष नही पाता हे। इस तरह दोनों गाथाओं से दृष्टात का कथन हुआ। इस प्रकार ज्ञानावरणादि मूलोत्तर प्रकृतियों के भेदवाले कर्मबधनों के प्रदेश, प्रकृति, स्थिति, और अनुभाग को जानता हुआ भी वह उनसे नहीं छूटता है। और -

आगमभाषा से	अध्यात्मभाषा से
जब मिथ्यात्व रागादि रहित होता है तब सभी कर्मबधनों को छोडता है।	जब अनतज्ञानादि गुणात्मक परमात्म स्वभाव में स्थित होता है तब सभी कर्मबधनों को छोडता है।

अथवा दूसरे पाठ का अर्थ इस प्रकार है कि, यदि उन सभी कर्मबधनों को छेदता है, तो कर्मों से मुक्त होता है (छूटता है)।

जह बंधे चिंततो बंधणबद्धो ण पावदि विमोक्खं। (२९१)
तह बधे चिततो जीवो वि ण पावदि विमोक्ख।।३१२।।

जह बधे चिततो बधणबद्धो ण पावदि विमोक्ख यथा कश्चित्पुरुषो बधनबद्धो बध चितयमानो मोक्ष न लभते। **तह बधे चिततो जीवो वि ण पावदि विमोक्ख** तथा जीवोऽपि प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेश-बधाश्चितयमान स्वशुद्धात्मावाप्तिलक्षण मोक्ष न लभते।

कि च, समग्त शुभाशुभबहिर्द्रव्यालबनरहितचिदानन्दैकशुद्धात्मावलबनस्वरूपवीतरागधर्मध्यानशुक्लध्यानरहितो जीव बधप्रपचरचनाचितारूपसरागधर्मध्यानशुभोपयोगेन स्वर्गादिसुखकारणपुण्यबध लभते न च मोक्षमिति भावार्थ ।। ३१२।।

इस प्रकार के कथन से जो प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग आदि बध के परिज्ञानमात्र से (मालूमातमात्र से-जानकारी मात्र से) सतुष्ट होकर रहते हैं उनको सबोधन करते हैं।

शका - कैसे ?

समाधान - जो जीव प्रकृति, प्रदेश आदि बध के परिज्ञानमात्र से सतुष्ट हैं ऐसे स्वरूप उपलब्धि (स्वानुभूति) रूप वीतरागचारित्र रहितवालों को स्वर्गादिसुख का कारणभूत पुण्यबध होता है, मोक्ष नहीं होता है। यह दार्ष्टांत गाथा का अर्थ हुआ। इस कथन से कर्मबध के प्रपच की रचना के विषय का चितनमात्र करके उसके परिज्ञान से जो सतुष्ट होते हैं उनका निराकरण किया है (अर्थात् जो स्वानुभव नहीं करते हैं, वे मोक्षमार्गस्थ नहीं हैं)।।३०९, ३१०, ३११।।

गाथार्थ - (**जह**) जैसे (**बधणबद्धो**) बधन में पडा हुआ कोई पुरुष (**बधे**) बधनों का (**चिततो**) चितन करता हुआ (**विमोक्ख**) मोक्ष (**ण पावदि**) नहीं प्राप्त करता है (**तह**) वैसे ही (**बधे**) कर्म बधनों का (**चिततो**) मनन-चितन करता हुआ (**जीवो वि**) जीव भी (**विमोक्ख**) मोक्ष को (**ण पावदि**) नहीं पाता है।

टीकार्थ - जैसे बधन में बद्ध हुआ कोई पुरुष बध का चितन करता हुआ मोक्ष नहीं पाता है, वैसे ही जीव भी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बधों का मनन-चितन-चर्चा करता हुआ स्वशुद्धात्मा (स्वानुभव) की प्राप्तिलक्षणस्वरूप मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है।

इसका स्पष्टीकरण यह है कि, सभी शुभाशुभ बाह्यद्रव्य के अवलबन से रहित (याने परिपूर्ण स्वतत्र स्वभाव शुद्धात्मस्वरूप) चिदानद एक शुद्धात्मा का आलबन जिसमें है ऐसा वीतराग (स्वानुभवमय) धर्मध्यान शुक्लध्यान से रहित जीव बधप्रपचरचना के चितनस्वरूप सरागधर्मध्यानरूप शुभोपयोग से स्वर्गादिसुख के कारणरूप पुण्यबध को प्राप्त होता है, मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है। ऐसा भावार्थ है।

भावार्थ - जो कोई ऐसा मानते हैं कि, "शास्त्र के पठन-पाठन, कर्मबध के उदय, बध, उदीरणा आदि और प्रकृतिबध, स्थितिबध आदि प्रकार की चिता-चर्चा-मनन-चितन-चितवन आदि करके और बहिरग क्रिया करने से सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ और मोक्षमार्ग शुरु हुआ," उनके प्रति सबोधन करते हुए श्रीआचार्यदेव कहते हैं कि बध का चितन करने से शुभोपयोग होता है।

अथ करतर्हि मोक्षहेतुरिति प्रश्ने प्रत्युत्तर ददाति -

जह बधे छेत्तूण य बधणबद्धो य पावदि विमोक्खं। (२९२)
तह बधे छेत्तूण य जीवो सपावदि विमोक्ख।। ३१३।।
जह बधे भेत्तूण य बधणबद्धो य पावदि विमोक्ख।
तह बधे भेत्तूण य जीवो सपावदि विमोक्ख।। 6
जह बधे मुत्तूण य बधणबद्धो य पावदि विमोक्ख।
तह बधे मुत्तूण य जीवो सपावदि विमोक्ख।। 7

वह चितवन वाह्यद्रव्य का आलवन लेकर होता है, उससे विकल्प ही होते हैं, वह निर्विकल्पसमाधि (स्वानुभूति-शुद्धोपयोग) नहीं है, इसलिये मोक्षमार्ग शुरु नहीं होता है। इस वधन के विकल्प करते रहने से सम्यग्दर्शन-स्वानुभव प्राप्त नहीं होता है। याने स्वानुभव लेने से ही चतुर्थादिगुणस्थान प्रगट होते हैं। स्वानुभव से ही मोक्ष प्राप्त होता हे। स्वानुभव के समय अपने स्वभावशुद्ध, परिपूर्ण, स्वतत्र, चिदानदमय एक निज शुद्ध आत्मा का आलवन होने से वहाँ शुभाशुभभाव नहीं है इसलिये कर्मवध की सवरपूर्वक निर्जरा होती है - कर्मवध छूटते हैं।। ३१२।।

अव, तो फिर मोक्ष का कारण कौन सा है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - (जह) जैसे (बधणबद्धो) वधन से वधा हुआ कोई पुरुप (बधे छेत्तूण य) वधन को छेदकर, भेदकर, छोडकर (विमोक्ख) मोक्ष को (पावदि) पाता हे (तह य) वैसे ही (बधे छेत्तूण य) वधन को छेदकर, भेदकर, छोडकर (जीवो) जीव (विमोक्ख) मोक्ष को (सपावदि) अच्छी तरह प्राप्त करता है।

टीकार्थ - जेसे वधन से वधा हुआ कोई पुरुष रज्जुवध को या साकल वध को या काठ की बेडी के वध को याने किसी भी प्रकार के वधन में से किसी को छेदकर, किसी को भेदकर, किसी को छोडकर अपने **विशिष्ट ज्ञान और पुरुषार्थ के बल से मुक्त होता है।** उसी तरह जीव भी **वीतरागनिर्विकल्प स्वसवेदन ज्ञान (स्वानुभव) के शस्त्र से बध को छेदकर** या दो भेदकर, खोलकर, विदारणकर और छोडकर निजशुद्धात्म उपलव्धि (स्वानुभूति) स्वरूप मोक्ष प्राप्त करता है।

(शका -) शिष्य पूछता है कि - इस प्राभृतग्रथ में जो निर्विकल्प स्वसवेदनज्ञान कहा गया है वह घटित नहीं होता हे क्योंकि जैसे सत्ता के अवलोकनरूप चक्षु आदि के दर्शन को जैनमत में निर्विकल्प कहा है, वैसे ही वौद्धमत में ज्ञान को निर्विकल्प कहा गया है, परन्तु वह निर्विकल्प ज्ञान भी विकल्पजनक है। जैनमत में वह ज्ञान विकल्प का उत्पादक नहीं है, किन्तु स्वरूप से ही ज्ञान सविकल्प है तथा स्वपरप्रकाशक है ?

समाधान - जेनमत में (वास्तव में) ज्ञान को कथचित् सविकल्प और कथचित् निर्विकल्प कहा है। उसका स्पष्टीकरण यह है कि, - जैसे विषयानदरूप सरागस्वसवेदनज्ञान सरागसवित्ति (विकल्परूप) से सविकल्प है, तो

जह बधे छेत्तूण य बधणबद्धो य पावदि विमोक्ख तह बधे, छेत्तूण य जीवो सपावदि विमोक्ख यथा वधनवद्ध कश्चित्पुरुषो रज्जुवध शृङ्खलाबध काष्ठनिगलबध वा कमपि वध छित्त्वा कमपि भित्वा कमपि मुक्त्वा **स्वकीयविज्ञानपौरुषबलेन मोक्ष प्राप्नोति**। तथा जीवोऽपि **वीतरागनिर्विकल्पस्वसवेदनज्ञानायुधेन** बध छित्त्वा द्विधा कृत्वा, भित्त्वा विदार्य, मुक्त्वा छोटयित्वा च **निजशुद्धात्मोपलभस्वरूप मोक्ष प्राप्नोतीति**। अत्राह शिष्य - प्राभृतग्रथे यन्निर्विकल्पस्वसवेदनज्ञान भण्यते तन्न घटते। कस्मात् ? इति चेत्, तदुच्यते - सत्तावलोकनरूप चक्षुरादिदर्शन यथा जैनमते निर्विकल्प कथ्यते तथा बौद्धमते ज्ञान निर्विकल्प भण्यते, परतु तन्निर्विकल्पमपि विकल्पजनक भवति। जेनमते तु विकल्पस्योत्पादक भवत्येव न किंतु, स्वरूपेणैव सविकल्पमिति तथैव स्वपरप्रकाशक चेति।

तत्र परिहार - कथंचित्सविकल्पमपि च कथंचिन्निर्विकल्प च। तद्यथा - यथा विषयानदरूप सरागस्वसवेदनज्ञान सरागसवित्ति - विकल्परूपेण सविकल्पमपि शेषानीहितसूक्ष्मविकल्पाना सद्भावेऽपि सति तेषा मुख्यत्व नास्ति तेन कारणेन निर्विकल्पमपि भण्यते। तथापि स्वशुद्धात्मसवित्तिरूप वीतरागस्वसवेदनज्ञानमपि स्वसवित्त्याकारैकविकल्पेन सविकल्पमपि वहिर्विपयानीहितसूक्ष्मविकल्पाना सद्भावेऽपि सति तेषा मुख्यत्व नास्ति तेन कारणेन निर्विकल्पमपि भण्यते। यत एवेहापूर्वस्वसवित्त्याकारातर्मुखप्रतिभासेऽपि वहिर्विषयानीहितसूक्ष्मविकल्पा अपि सति तत एव कारणात् स्वपरप्रकाशक च सिद्ध इद निर्विकल्पसविकल्पस्य तथैव स्वपरप्रकाशकस्य च ज्ञानस्य च व्याख्यान **यथागमाध्यात्मतर्कशास्त्रानुसारेण विशेषेण व्याख्यायते तदा महान् विस्तारो भवति स चाध्यात्मशास्त्रत्वान्न कृत** । एव मोक्षपदार्थसक्षेपसूचनार्थं प्रथम गाथासप्तक गतम्।।३१३।।

अथ किमयमेव मोक्षमार्ग ? इति चेत् -

बधाणं च सहाव वियाणिदु अप्पणो सहाव च। (२९३)
बधेसु जो ण रज्जदि[1] सो कम्मविमोक्खणं कुणदि।।३१४।।

भी शेष अनिच्छित सूक्ष्म विकल्पों का सद्भाव होने पर भी उनकी मुख्यता नहीं है, इस कारण से उस विपयानदरूप स्वसवेदनज्ञान को निर्विकल्प भी कहा गया है। वैसे ही अपनी स्वभाव शुद्धात्मा की सवित्ति (स्वानुभूति) वाला वीतराग स्वसवेदनज्ञान भी स्वसवित्तिरूप (स्वभावशुद्धात्म) आकारवाला ज्ञान एक दृष्टि से सविकल्प भी है। वहाँ वाह्यविषयों के अनिच्छित (अवुद्धिपूर्वक) सूक्ष्म विकल्पों का सद्भाव भी होते हुए उन विकल्पों की मुख्यता नहीं है, इस कारण से अपनी स्वभाव शुद्धात्मा की अनुभूति निर्विकल्प कही गयी है।

और वुद्धिपूर्वक स्वसवित्ति आकार (स्वानुभव आकार) का जो अन्तर्मुख प्रतिभास होता है तो भी वहीं पर वाह्यविपयों के अनिच्छित (अवुद्धिपूर्वक) सूक्ष्म विकल्प भी होते हैं, उस ही कारण से ज्ञान स्व-पर प्रकाशक सिद्ध होता है। इसलिये यह निर्विकल्प और सविकल्प ज्ञान का तथा स्व-पर प्रकाशक ज्ञान का कथन स्पष्ट सिद्ध है। इस का आगम-आध्यात्म-तर्कशास्त्र के अनुसार विशेष व्याख्यान किया जावे तो महान विस्तार होता है। और यहाँ अध्यात्मशास्त्र होने से यह महान विस्तार से कथन नहीं किया गया है। इस प्रकार मोक्षपदार्थ के सक्षेप सूचन के लिये प्रथमस्थल में सात गाथायें पूर्ण हुई।।३१३।।

अव क्या यही मोक्षमार्ग है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं -

---

[1] पाठान्तर - विरज्जदि

बंधाण च सहाव वियाणिदु भाववधाना मिथ्यात्वरागादीना स्वभाव ज्ञात्वा, कथ ज्ञात्वा ? मिथ्यात्वस्वभावो हेयोपादेयतत्त्वविषये विपरीताभिनिवेशो भण्यते रागादीना च स्वभावः पचेंद्रियविषयेष्विष्टानिष्टपरिणाम इति। न केवल वधस्वभाव ज्ञात्वा। अप्पणो सहाव च अनतज्ञानादिस्वरूप: शुद्धात्मन स्वभाव च ज्ञात्वा। बधेसु जो ण रज्जदि द्रव्यवधहेतुभूतेपु मिथ्यात्वरागादिभाववधेपु निर्विकल्पसमाधिवलेन यो न रज्यते सो कम्मविमोक्खणं कुणदि स कर्मविमोक्षण करोति।।३१४।।

अथ केन कृत्वात्मवधो द्विधा भवति ? इति चेत् -

जीवो बधो य तहा छिज्जति सलक्खणेहि णियदेहि। (२९४)
पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा।।३१५।।

जीवो वधो य तहा छिज्जति सलक्खणेहि णियदेहि यथा जीवस्तथा वधश्चैतौ द्वौ छिद्यते पृथक् क्रियते, काभ्या कृत्वा ? स्वलक्षणरूपाभ्या निजकाभ्या **पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा** प्रज्ञाछेदनैकलक्षणेन भेदज्ञानेन छिन्नौ सतो नानात्वमापन्नौ इति। तथाहि-जीवस्य लक्षण शुद्धचैतन्य भण्यते, वधस्य लक्षण मिथ्यात्वरागादिक, ताभ्या पृथक् कृतौ। केन ? करणभूतेन प्रज्ञाछेदनकेन, शुद्धात्मानुभूतिलक्षणभेदज्ञानरूपा प्रज्ञैव छेत्र्येव छुरिका तया एवेत्यर्थ । छिन्नौ सतौ नानात्वमापन्नौ।।३१५।।

गाथार्थ - (वधाण सहाव च) वधों के स्वभाव को और (अप्पणो सहाव च) आत्मा के स्वभाव को (वियाणिदु) जानकर (जो) जो पुरुष (बधेसु) वधों में (ण रज्जदि) रममाण नहीं होता है (सो) वह (कम्मविमोक्खण कुणदि) कर्मों से मुक्त होता है।

टीकार्थ - भाववधवाले मिथ्यात्वरागादिकों के स्वभाव को जानकर, हेय-उपादेयतत्व के विषय में विपरीत अभिनिवेश मिथ्यात्व कहलाता है और पचेंद्रियों के विषयों में इष्ट, अनिष्ट भाव होना रागादिकों का स्वभाव हैं उनको जानकर, केवल वधस्वभाव को ही नहीं किन्तु शुद्ध आत्मा के अनतज्ञानादिस्वभाव को भी जानकर निर्विकल्पसमाधि (स्वानुभूति) के वल से द्रव्यवधहेतुभूत मिथ्यात्व-रागादि भाववधों में जो रजायमान नहीं होता है, वह कर्मों का नाश करता है।।३१४।।

अव, क्या करके आत्मा और वध को भिन्न-भिन्न करते हैं ? इसका उत्तर कहते हैं -

गाथार्थ - (जीवो) जीव (य) और (बधो) वध (णियदेहि सलक्खणेहि) निश्चित अपने-अपने लक्षणों के द्वारा (पण्णाछेदणएण) प्रज्ञारूपी छैनी से (तहा) इस तरह (छिज्जंति) पृथक् किये जाते हैं (दु) कि जिस तरह (छिण्णा णाणत्तमावण्णा) छेदे हुये वे नानापन को प्राप्त हो जाँय।

टीकार्थ - जीव तथा वध अपने-अपने निश्चित स्वभाव लक्षणों से पृथक् किये जाते हैं।

शका - किसके द्वारा आत्मा और वध भिन्न किये जाते हैं ?

समाधान - प्रज्ञारूपी छैनी है एक लक्षण जिसका ऐसे भेदज्ञान से छिन्न करते हुये जीव और बध नानापन को प्राप्त किये जाते हैं।

आत्मवधयोर्द्विधाकरणे किं साध्य ? इति चेत् -

जीवो बधो य तहा छिज्जति सलक्खणेहि णियदेहि। (२९५)
बधो छेदेदव्वो सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो।।३१६।।

जीवो बधो य तहा छिज्जति सलक्खणेहि णियदेहि जीववधौ द्वौ पूर्वोक्ताभ्या स्वलक्षणाभ्या निजकाभ्या छिद्येते पूर्ववत्। ततश्छेदानतर किं साध्यम् ? **बधो छेदेदव्वो** विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुचरणरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकभेदज्ञानछुरिकया मिथ्यात्वरागादिरूपो वधश्छेत्तव्य शुद्धात्मन सकाशात्पृथक्कर्तव्य। **सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो** वीतरागसहजपरमानदलक्षण सुखसमरसीभावेन शुद्धात्मा च गृहीतव्य इत्यभिप्राय।।३१६।।

इदमेवात्मवधयोर्द्विधाकरणे प्रयोजन यद्वधपरिहारेण शुद्धात्मोपादानमित्युपदिशति -

कह सो घिप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा। (२९६)
जह पण्णाए विभत्तो तह पण्णाएव घेत्तव्वो।।३१७।।

जीव का लक्षण शुद्धचैतन्य है, बध का लक्षण मिथ्यात्वरागादिक है। उनको प्रज्ञा छैनी रूप साधन से याने शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाले भेदज्ञान रूपी क्षेत्रीछुरिका से भिन्न-भिन्न करते हुये नानापना को प्राप्त किये जाते हैं।।३१५।।

आत्मा और वध दोनों को पृथक् करने में क्या साध्य करना चाहिये ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - (जीवो) जीव (य) और (बधो) बध इन दोनों को (णियदेहि सलक्खणेहि) निश्चित अपने-अपने लक्षणों से (तहा) इस तरह (छिज्जति) भिन्न करते हैं कि (बधो) वध (छेदेदव्वो) तो छिदकर भिन्न हो जाय (य) और (सुद्धो अप्पा घेत्तव्वो) शुद्ध आत्मा ग्रहण किया जाय।

टीकार्थ - जीव और वध पहले कहे अनुसार अपने-अपने लक्षणों से भिन्न किये जाते हैं।

शका - आत्मा और वध को भिन्न करने के वाद क्या साध्य करना चाहिये ?

समाधान - विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावरूप परमात्मतत्त्व का सम्यक्श्रद्धानज्ञानअनुचरणरूप निश्चयरत्नत्रयात्मक भेदज्ञान (स्वानुभूति) रूप छुरी से मिथ्यात्व-रागादिरूप वध छेदना चाहिए, वध को शुद्धात्मा से पृथक् करना चाहिये और सुखसमरसीभाव से (स्वानुभव से) वीतराग सहजपरमानद लक्षणवाला शुद्धात्मा ग्रहण करना चाहिये, यह अभिप्राय है।। ३१६।।

आत्मा और वध को पृथक् करने में प्रयोजन यह है कि, वध का त्याग करके शुद्धात्मा का ग्रहण करना चाहिये, इस प्रकार का उपदेश देते हैं -

गाथार्थ - शिष्य पूछता है कि (सो अप्पा) वह शुद्धात्मा (कह) कैसे (घिप्पदि) ग्रहण किया जाता है? आचार्य उत्तर देते हैं कि (सो दु अप्पा) वह शुद्ध आत्मा (पण्णाए) प्रज्ञा से ही (घिप्पदि) ग्रहण किया जाता है (जह) जैसे पहले (पण्णाए) प्रज्ञा से (विभत्तो) भिन्न किया था (तह) वैसे (पण्णाएव) प्रज्ञा से ही (घेत्तव्वो) ग्रहण करना चाहिये।

बंधाण च सहाव वियाणिदु भाववधाना मिथ्यात्वरागादीना स्वभाव ज्ञात्वा, कथ ज्ञात्वा ? **मिथ्यात्वस्वभावो हेयोपादेयतत्त्वविषये विपरीताभिनिवेशो भण्यते** रागादीना च **स्वभाव** पचेंद्रियविपयेष्विष्टानिष्टपरिणाम इति। न केवल वधस्वभाव ज्ञात्वा। **अप्पणो सहाव च** अनतज्ञानादिस्वरूप शुद्धात्मन स्वभाव च ज्ञात्वा। **बधेसु जो ण रज्जदि** द्रव्यवधहेतुभूतेषु मिथ्यात्वरागादिभाववधेपु निर्विकल्पसमाधिवलेन यो न रज्यते **सो कम्मविमोक्खण कुणदि** स कर्मविमोक्षण करोति।।३१४।।

अथ केन कृत्वात्मवधो द्विधा भवति ? इति चेत् -

जीवो बधो य तहा छिज्जति सलक्खणेहि णियदेहि। (२९४)
पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा।।३१५।।

जीवो बधो य तहा छिज्जति सलक्खणेहि णियदेहि यथा जीवस्तथा वधश्चैती द्वौ छिद्यते पृथक् क्रियते, काभ्या कृत्वा ? स्वलक्षणरूपाभ्या निजकाभ्या **पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा** प्रज्ञाछेदनैकलक्षणेन भेदज्ञानेन छिन्नौ सतो नानात्वमापन्नौ इति। तथाहि-जीवस्य **लक्षण शुद्धचैतन्य भण्यते, वधस्य लक्षण मिथ्यात्वरागादिक,** ताभ्या पृथक् कृतौ। केन ? करणभूतेन प्रज्ञाछेदनकेन, **शुद्धात्मानुभूतिलक्षणभेदज्ञानरूपा प्रज्ञैव** छेत्र्येव छुरिका तया एवेत्यर्थ । छिन्नौ सतौ नानात्वमापन्नौ।।३१५।।

गाथार्थ - **(वधाण सहाव च)** वधों के स्वभाव को और **(अप्पणो सहाव च)** आत्मा के स्वभाव को **(वियाणिदु)** जानकर **(जो)** जो पुरुष **(वधेसु)** वधों में **(ण रज्जदि)** रममाण नहीं होता है **(सो)** वह **(कम्मविमोक्खण कुणदि)** कर्मों से मुक्त होता है।

टीकार्थ - भाववधवाले मिथ्यात्वरागादिकों के स्वभाव को जानकर, **हेय-उपादेयतत्व के विषय में विपरीत अभिनिवेश मिथ्यात्व कहलाता है और पचेंद्रियों के विषयों में इष्ट, अनिष्ट भाव होना रागादिकों का स्वभाव हैं** उनको जानकर, केवल वधस्वभाव को ही नहीं किन्तु शुद्ध आत्मा के अनतज्ञानादिस्वभाव को भी जानकर निर्विकल्पसमाधि (स्वानुभूति) के वल से द्रव्यवधहेतुभूत मिथ्यात्व-रागादि **भाववधों में जो रजायमान नहीं होता है, वह कर्मों का नाश करता है**।।३१४।।

अव, क्या करके आत्मा और वध को भिन्न-भिन्न करते हैं ? इसका उत्तर कहते हैं -

गाथार्थ - **(जीवो)** जीव **(य)** और **(बधो)** वध **(णियदेहि सलक्खणेहि)** निश्चित अपने-अपने लक्षणों के द्वारा **(पण्णाछेदणएण)** प्रज्ञारूपी छैनी से **(तहा)** इस तरह **(छिज्जंति)** पृथक् किये जाते हैं **(दु)** कि जिस तरह **(छिण्णा णाणत्तमावण्णा)** छेदे हुये वे नानापन को प्राप्त हो जॉय।

टीकार्थ - जीव तथा वध अपने-अपने निश्चित स्वभाव लक्षणों से पृथक् किये जाते हैं।

शका - किसके द्वारा आत्मा और वध भिन्न किये जाते हैं ?

समाधान - प्रज्ञारूपी छैनी है एक लक्षण जिसका ऐसे भेदज्ञान से छिन्न करते हुये जीव और बध नानापन को प्राप्त किये जाते हैं।

आत्मबधयोर्द्विधाकरणे कि साध्य ? इति चेत् -

जीवो बधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहि णियदेहि। (२९५)
बधो छेदेदव्वो सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो।। ३१६।।

जीवो बधो य तहा छिज्जति सलक्खणेहि णियदेहि जीवबधौ द्वौ पूर्वोक्ताभ्या स्वलक्षणाभ्या निजकाभ्या छिद्येते पूर्ववत्। ततश्छेदानतर कि साध्यम् ? **बधो छेदेदव्वो** विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुचरणरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकभेदज्ञानछुरिकया मिथ्यात्वरागादिरूपो बधश्छेत्तव्य शुद्धात्मन सकाशात्पृथक्कर्तव्य । **सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो** वीतरागसहजपरमानदलक्षण सुखसमरसीभावेन शुद्धात्मा च गृहीतव्य इत्यभिप्राय ।।३१६।।

इदमेवात्मबधयोर्द्विधाकरणे प्रयोजन यद्बधपरिहारेण शुद्धात्मोपादानमित्युपदिशति -

कह सो घिप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा। (२९६)
जह पण्णाए विभत्तो तह पण्णाएव घेत्तव्वो।। ३१७।।

जीव का लक्षण शुद्धचैतन्य है, बध का लक्षण मिथ्यात्वरागादिक है। उनको प्रज्ञा छैनी रूप साधन से याने शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाले भेदज्ञान रूपी क्षेत्रीछुरिका से भिन्न-भिन्न करते हुये नानापना को प्राप्त किये जाते हैं।। ३१५।।

आत्मा और वध दोनों को पृथक् करने में क्या साध्य करना चाहिये ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(जीवो)** जीव **(य)** और **(बधो)** बध इन दोनों को **(णियदेहि सलक्खणेहि)** निश्चित अपने-अपने लक्षणों से **(तहा)** इस तरह **(छिज्जति)** भिन्न करते हैं कि **(बधो)** बध **(छेदेदव्वो)** तो छिदकर भिन्न हो जाय **(य)** और **(सुद्धो अप्पा घेत्तव्वो)** शुद्ध आत्मा ग्रहण किया जाय।

टीकार्थ - जीव और बध पहले कहे अनुसार अपने-अपने लक्षणों से भिन्न किये जाते हैं।

शका - आत्मा और बध को भिन्न करने के बाद क्या साध्य करना चाहिये ?

समाधान - विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावरूप परमात्मतत्त्व का सम्यक्श्रद्धानज्ञानअनुचरणरूप निश्चयरत्नत्रयात्मक भेदज्ञान (स्वानुभूति) रूप छुरी से मिथ्यात्व-रागादिरूप बध छेदना चाहिए, वध को शुद्धात्मा से पृथक् करना चाहिये ओर सुखसमरसीभाव से (स्वानुभव से) वीतराग सहजपरमानद लक्षणवाला शुद्धात्मा ग्रहण करना चाहिये, यह अभिप्राय है।। ३१६।।

आत्मा और वध को पृथक् करने में प्रयोजन यह है कि, **बध का त्याग करके शुद्धात्मा का ग्रहण** करना चाहिये, इस प्रकार का उपदेश देते हैं -

गाथार्थ - शिष्य पूछता है कि **(सो अप्पा)** वह शुद्धात्मा **(कह)** कैसे **(घिप्पदि)** ग्रहण किया जाता है? आचार्य उत्तर देते हैं कि **(सो दु अप्पा)** वह शुद्ध आत्मा **(पण्णाए)** प्रज्ञा से ही **(घिप्पदि)** ग्रहण किया जाता है **(जह)** जैसे पहले **(पण्णाए)** प्रज्ञा से **(विभत्तो)** भिन्न किया था **(तह)** वैसे **(पण्णाएव)** प्रज्ञा से ही **(घेत्तव्वो)** ग्रहण करना चाहिये।

कह सो घिप्पदि अप्पा कथ स गृह्यते आत्मा 'दृष्टिविषयो न भवत्यमूर्त्तत्वात्' इति प्रश्न ? **पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा** प्रज्ञया भेदज्ञानेन गृह्यते, इत्युत्तर। कथ ? इति चेत् **जह पण्णाए विभत्तो** यथा **पूर्वसूत्रे** प्रज्ञया विभक्त रागादिभ्य पृथक्कृत **तह पण्णाएव घेत्तव्वो** तथा प्रज्ञयैव भेदज्ञानेन गृहीतव्य । ननु केन शुद्धोऽयमात्मा गृहीतव्य ? प्रज्ञयैव शुद्धोऽयमात्मा गृहीतव्य शुद्धस्यात्मन स्वयमात्मान गृह्णतोऽपि विभजत इव प्रज्ञैककरणत्वात्। अतो यथा प्रज्ञया प्रविभक्तस्तथा प्रज्ञयैव गृहीतव्य निर्विकल्प समाधौ स्थित्वानुभवनीय इत्यर्थ । एव सामान्य भेदज्ञानमुख्यत्वेन द्वितीयस्थले गाथा चतुष्टय गतम्।।३१७।।

कथमात्मा प्रज्ञया गृहीतव्य इति चेत् -

पण्णाए घेत्तव्वो जो चेदा सो अह तु णिच्छयदो। (२९७)
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा।।३१८।।

पण्णाए घेत्तव्वो जो चेदा सो अह तु णिच्छयदो प्रज्ञया गृहीतव्यो यश्चेतयिता सोऽह तु निश्चयत। **अवसेसा जे भावे ते मज्झ परे त्ति णादव्वा** अवशेषा ये भावास्ते मम परे इति ज्ञातव्या ।

टीकार्थ - शका - आत्मा तो अमूर्त्त है, अत वह दृष्टि का विषय नहीं है, तो फिर उसको कैसे ग्रहण किया जा सकता है ?

समाधान - **भेदज्ञानरूप बुद्धि के द्वारा शुद्धात्मा को ग्रहण किया जाता है।**

शका - कैसे ?

समाधान - जैसे पहले सूत्र में कहा था कि, बुद्धि के द्वारा रागादि से आत्मा को पृथक् किया गया है, वेसे बुद्धि के द्वारा ही ग्रहण करना चाहिये।

शका - यह शुद्धात्मा किस साधन से ग्रहण करना चाहिये ?

समाधान - बुद्धि के द्वारा ही यह शुद्धात्मा ग्रहण करना चाहिये, शुद्धात्मा से स्वय शुद्धात्मा को ग्रहण किया जाता है जैसे बुद्धिरूपी एक साधन से भिन्न करते हें उसी प्रकार निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर ज्ञान से ही अनुभव करना चाहिये।

इसलिये जैसे प्रज्ञा से भिन्न किया वैसे प्रज्ञा से ही ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार सामान्य भेद ज्ञान की मुख्यता से दूसरे स्थल में चार गाथा हो गई।।३१७।।

फिर विशेष रूप से पूछते हैं कि आत्मा प्रज्ञा के द्वारा कैसे ग्रहण करना चाहिये ? इसका उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(णिच्छयदो)** निश्चय से **(जो चेदा)** जो चेतनस्वभाववाला आत्मा है **(सो दु)** वह **(अह)** मैं हूं। इस तरह **(पण्णाए)** बुद्धिपूर्वक **(घेत्तव्वो)** ग्रहण करना चाहिये **(तु)** और **(अवसेसा जे भावा)** अवशेष जो भाव हैं **(ते)** वे **(मज्झ परे त्ति)** मुझ से पर हैं ऐसा **(णादव्वा)** जानना चाहिये।

यो हि निश्चयत स्वलक्षणावलविन्या प्रज्ञया प्रविभक्तश्चेतयिता सोऽयमह, ये त्वमी अवशिष्टा अन्ये ग्वलक्षणलक्ष्या व्यवहियमाणा भावास्ते सर्वेऽपि चेतयितृत्वस्य व्यापकस्य व्याप्यत्वमनायातोऽत्यत मत्तो भिन्नास्ततोऽहमेव मयैव मह्यमेव मत्त एव मय्येव मामेव गृह्णामि, यत् किल गृह्णामि तच्चेतनेकक्रियत्वादात्मनश्चेतये एव, चेतयमान एव चेतये, चेतयमानेनैव चेतये, चेतयमानायैव चेतये, चेतयमानादेव चेतये, चेतयमाने एव चेतये, चेतयमानमेव चेतये। अथवा नचेतये, न चेतयमानश्चेतये, न चेतयमानेन चेतये, न चेतयमानाय चेतये, न चेतयमानाच्चेतये, न चेतयमाने चेतये, न चेतयमान चेतये, किंतु सर्वविशुद्धचिन्मात्रो भावोऽस्मि।

भित्वा सर्वमपि स्वलक्षणवलाद्भेत्तु हि यच्छक्यते चिन्मुद्राकितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चिदेवास्म्यह।

भिद्यते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि भिद्यता न भिदाग्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति।।' ३१८।।

टीकार्थ - निश्चय से अपने स्वभाव का अवलवन करने वाली वुद्धि के द्वारा जो प्रविभक्त किया हुआ परमसमरसीभाव से अनुभवनीय चैतन्यमय शुद्ध आत्मा है वह यह मैं (चैतन्य आत्मा हूँ)। और जो यह अवशेप दूसरे अपने लक्षण से लखे जाने वाले व्यवहियमाण मिथ्यात्वरागादि भाव हैं वे सव भी व्यापक चेतयितापन के व्याप्यत्व को प्राप्त नहीं होते हुए चेतन से शून्य-चेतन से रहित हैं, वे सव भाव मेरे से अत्यत भिन्न हैं - पररूप हैं। इसलिये मैं ही, मेरे द्वारा ही, मेरे लिये ही, मेरे से ही, मुझ में ही, और मुझको ही ग्रहण करता हूँ। जो मैं निश्चयत ग्रहण करता हूँ वह आत्मा की चेतना ही एक क्रिया है। उस क्रिया से मैं चेतता ही हूँ, चेतता हुआ ही चेतता हूँ, चेनते हुए के द्वारा ही चेतता हूँ, चेतते हुए के लिये ही चेतता हूँ, चेतते हुए से ही चेतता हूँ, चेतते हुए में ही चेतता हूँ, चेतते हुए को ही चेतता हूँ। अथवा न तो चेतता हूँ, न चेतता हुआ चेतता हूँ, न चेतते हुए के द्वारा चेतता हूँ, न चेतते हुए के लिये चेतता हूँ, न चेतते हुए से चेतता हूँ, न चेतते हुए में चेतता हूँ, न चेतते हुए को चेतता हूँ। किन्तु सर्व विशुद्ध चैतन्यमात्र भाव मैं हूँ।

श्री अमृतचद्राचार्य आत्मख्याति कलश न १८२ में लिखते हैं **"भित्वा सर्वमपि"** इत्यादि - अर्थात् ज्ञानी करता है कि, जो कुछ भी भेदा जा सकने योग्य है उस सवको निजलक्षण के वल से भेदकर चैतन्य चिन्ह से चिन्हित, विभागरहित महिमावाला **मैं शुद्ध चैतन्य ही हूँ।** यदि कर्ता, कम, करण, सप्रदान, अपादान, अधिकरण ये छह कारक और सत्व-असत्व, नित्यत्व-अनित्यत्व, एकत्व-अनेकत्व आदि धर्म और ज्ञान दर्शन आदि गुण ये भेदरूप हैं तो भेदरूप हों, परतु विशुद्ध समस्त विभावों से रहित एक तथा सव गुणपर्यायों मे व्यापक ऐसे चैतन्यभाव में तो कुछ भेद नहीं है।

भावार्थ - जिस प्रज्ञा के द्वारा आत्मा को वध से भिन्न किया था उस समय जो कुछ भी भेदा जा सकता था उस सव से, स्वलक्षण से, कारक से, धर्म से और गुण से भेद किया था। वहाँ अभिन्न (एक द्रव्य में) छह कारक लगाकर दिखाये हैं और वाद मे एक द्रव्य मे भी छह कारक लगाना, गुण धर्मादि के भेद करने का निषेध किया गया है। मैं शुद्ध चैतन्यमात्र भाव हूँ सो एक अभेद हूँ, द्रव्यदृष्टि से कर्ता-कर्म आदि षट्कारक का भी भेद मुझमें [illegible] । [illegible] स्वभाव शुद्ध परिपूर्ण अभेद आत्मा का [illegible] करना चाहिए।। ३१८।।

पण्णाए घेत्तव्वो जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयदो। (२९८)
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा।।३१९।।
पण्णाए घेत्तव्वो जो णादा सो अह तु णिच्छयदो। (२९९)
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा।।३२०।।
पण्णाए घेत्तव्वो उवलद्धो सो अह तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा[1]।। 8

प्रज्ञया गृहीतव्यो यो द्रष्टा सोऽह तु निश्चय, अवशेषा ये भावा ते मम परा इति ज्ञातव्या। प्रज्ञया गृहीतव्यो यो ज्ञाता सोऽह तु निश्चयत, अवशेषा ये भावा ते मम परा इति ज्ञातव्या। चेतनाया दर्शनज्ञानविकल्पानतिक्रमणाच्चेतयितृत्वमिव दृष्टृत्व ज्ञातृत्व चात्मन स्वलक्षणमेव। ततोऽह द्रष्टारमात्मान गृह्णामि।

गाथार्थ - (णिच्छयदो) निश्चय से (जो दट्ठा) जो देखने वाला आत्मा है (सो) वह (अह) मैं हूँ इस तरह (पण्णाए) बुद्धिपूर्वक (घेत्तव्वो) ग्रहण करना चाहिये (तु) और (अवसेसा) अवशेष (जे भावा) जो भाव हैं (ते) वे (मज्झ परे त्ति) मुझसे पर हैं ऐसा (णादव्वा) जानना चाहिये।

(णिच्छयदो) निश्चय से (जो णादा) जो ज्ञाता जाननेवाला आत्मा है (सो) वह (अह) मैं हूँ इस तरह (पण्णाए) बुद्धिपूर्वक (घेत्तव्वो) ग्रहण करना चाहिए (तु) और (अवसेसा) अवशेष (जे भावा) जो भाव हैं (ते) वे (मज्झ परे त्ति) मुझसे पर हैं ऐसा (णादव्वा) जानना चाहिये।

टीकार्थ - चेतना में दर्शनज्ञान के भेद का उल्लघन नहीं है। इस कारण चेतकत्व की तरह दर्शकपना व ज्ञातापना आत्मा का निजलक्षण ही है। इसलिये ऐसा अनुभव करना कि मैं देखनेवाले दर्शक आत्मा को ग्रहण करता हूँ, जो ग्रहण करता हूँ सो निश्चय से देखता ही हूँ, देखता हुआ ही देखता हूँ, देखते हुए के द्वारा ही देखता हूँ, देखते हुए के लिये ही देखता हूँ, देखते हुए से ही देखता हूँ, देखते हुए में ही देखता हूँ और देखते हुए को ही देखता हूँ। अथवा नहीं देखता, न देखते हुए को देखता हूँ, न देखते हुए के द्वारा देखता हूँ, न देखते हुए के लिये देखता हूँ, न देखते हुए से देखता हूँ, न देखते हुए में देखता हूँ, न देखते हुये को देखता हूँ किन्तु सर्व विशुद्ध एक दर्शनमात्र भाव मैं हूँ।

तथा उसी तरह ज्ञान पर लगाना। मैं जाननेवाले ज्ञाता आत्मा को ग्रहण करता हूँ, जो ग्रहण करता हूँ सो निश्चय से जानता ही हूँ, जानता हुआ ही जानता हूँ, जानते हुए के द्वारा ही जानता हूँ, जानते हुए के लिये ही जानता हूँ, जानता हुए से ही जानता हूँ, जानते हुए में ही जानता हूँ, जानते हुए को ही जानता हूँ। अथवा नहीं जानता, न जानते हुए को जानता हूँ न जानते हुए के द्वारा जानता हूँ, न जानते हुए के लिये जानता हूँ, न जानते हुए से जानता हूँ, न जानते हुए में जानता हूँ, न जानते हुए को जानता हूँ, किन्तु सर्वविशुद्ध एक जानन (क्रिया) मात्र भाव मैं हूँ।

---

1 ज्ञानोदय प्रकाशन, जबलपुर पृष्ठ - १८५

यत्किल गृहणामि तत्पश्याम्येव, पश्यन्नेव पश्यामि, पश्यतैव पश्यामि, पश्यते एव पश्यामि, पश्यतएव पश्यामि, पश्यत्येव पश्यामि, पश्यतमेव पश्यामि। अथवा न पश्यामि, न पश्यन् पश्यामि, न पश्यता पश्यामि, न पश्यते पश्यामि, न पश्यत पश्यामि, न पश्यति पश्यामि, न पश्यत पश्यामि,। किंतु सर्वविशुद्धो दृङ्मात्रो भावोऽस्मि।

अपि च ज्ञातारमात्मान गृहणामि यत्किल गृहणामि तज्जानाम्येव, जानन्नेव जानामि, जानतैव जानामि, जानते एव जानामि, जानत एव जानामि, जानत्येव जानामि, जानतमेव जानामि। अथवा न जानामि, न जानन् जानामि, न जानतैव जानामि, न जानते जानामि, न जानतो जानामि, न जानति जानामि, न जानत जानामि। किंतु सर्वविशुद्धो ज्ञप्तिमात्रो भावोऽस्मि।

ननु कथ चेतना दर्शनज्ञानविकल्पौ नातिक्रामति येन चेतयिता दृष्टा ज्ञाता च स्यात् ? उच्यते - चेतना तावत्प्रतिभासरूपा सा तु सर्वेषामेव वस्तूना सामान्य विशेषात्मकत्वाद् द्वैरूप्य नातिक्रामति। ये तु तस्या द्वे रूपे ते दर्शनज्ञाने, तत सा ते नातिक्रामति। यद्यतिक्रामति ? सामान्यविशेषातिक्रातत्वाच्चेतनैव न भवति। तदभावे द्वौ दोषौ स्वगुणोच्छेदाच्चेतनस्याचेतनतापत्ति, व्यापकाभावे व्याप्यस्य चेतनस्याभावो वा। ततस्तद्दोषभयाद्दर्शनज्ञानात्मिकैव चेतनाभ्युपगन्तव्या।

अद्वैतापि हि चेतना जगति चेद्दृग्ज्ञप्तिरूप त्यजेत्, ततसामान्यविशेषरूपविरहात्सास्तित्वमेव त्यजेत्। तत्त्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापकादात्मा चातमुपैति तेन नियत दृग्ज्ञप्तिरूपास्ति चित्।।[1]

इस तरह दर्शन और ज्ञान पर छह कारक लगा कर फिर अभेदरूप करने को कारक भेद का निषेधकर ज्ञाता-द्रष्टा मात्र अपना अनुभव करना चाहिये।

शका - चेतना दर्शन-ज्ञान भेदों को कैसे उल्लघन नहीं करती है कि जिससे आत्मा द्रष्टा-ज्ञाता हो जाता है ?

समाधान - पहले तो चेतना प्रतिभासरूप है, ऐसी चेतना दोरूपपने को उल्लघन नहीं करती क्योंकि **सभी वस्तुओं का सामान्य विशेषरूप स्वरूप है**। सो चेतना भी वस्तु है वह सामान्य विशेषरूप को कैसे उल्लघन करे नहीं करती। उसके दो रूप हैं वे दर्शन, ज्ञान हैं। इसलिये वह चेतना दर्शनज्ञान इन दोनों को उल्लघन नहीं करती। यदि इन दो स्वरूपों को उल्लघे तो सामान्यविशेषरूप के उल्लघनेपने से चेतना ही नहीं होती (रहती)। उस चेतना के अभाव से दो दोष आते हैं - एक तो **अपने गुण का उच्छेद** होने से चेतन को अचेतनपना की प्राप्ति आती है और दूसरे **व्यापक चेतन का अभाव** होने से व्याप्य जो चेतन आत्मा उसका अभाव होता है। इस कारण इन दोषों के भय से चेतना दर्शनज्ञानात्मक ही अगीकार करनी चाहिये।

श्री अमृतचद्राचार्य आत्मख्याति कलश न १८३ में कहते हैं कि - **"अद्वैतापि हि"** इत्यादि - अर्थात् **जगत में निश्चय से चेतना अद्वैत है,** तो भी जो दर्शनज्ञानरूप को छोडे तो सामान्य विशेषरूप के अभाव से वह चेतना अपने अस्तित्व को छोड दे और जब चेतना अपने अस्तित्व को छोड दे तो चेतन के (आत्मा को) जडपना हो जाय। तथा व्याप्य-आत्मा व्यापक-चेतना के विना अत को प्राप्त हो जाय, इसलिये चेतना नियम से दर्शनज्ञान स्वरूप ही है।

---

[1] आ ख्या कलश १८३

एकश्चितचिन्मय एव भावो भावा' परे ये किल ते परेषाम्।
ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एव भावो भावा परे सर्वत एव हेया.।।[1]

निश्चयत अवशेषा येरागादिभावा विभावपरिणामास्ते चिदानन्दैकभावस्य ममापेक्षया परा इति ज्ञातव्या। अत्राह शिष्य - चेतनाया ज्ञानदर्शनभेदौ न स्त, एकैव चेतना ततो ज्ञाता द्रष्टेति द्विधात्मा कथ घटते इति ? अत्र पूर्वपक्ष परिहार - सामान्यग्राहक दर्शन विशेषग्राहक ज्ञान। सामान्यविशेषात्मक च वस्तु। सामान्यविशेषात्मकत्वाभावे चेतनाया अभाव स्यात्। चेतनाया अभावे सति आत्मनो जडत्व, चेतनालक्षणस्य विशेषगुणस्याभावे सत्यभावो वा भवति। नचात्मनो जडत्व दृश्यते, न चाभाव। प्रत्यक्षविरोधात्। तत स्थित यद्यप्यभेदनयेनैकरूपा चेतना तथापि सामान्यविशेषविषयभेदेन दर्शनज्ञानरूपा भवतीत्यभिप्राय ।।३१९, ३२०।।

आत्मख्याति कलश न १८४ - "एकश्चितचिन्मय" इत्यादि - अर्थात् चैतन्य का तो एक चिन्मय ही भाव है। दूसरे जो भाव हैं, वे निश्चय से पर के भाव हैं। इसलिये एक चिन्मयभाव ही ग्रहण करने योग्य है और जो परभाव हैं वे सभी त्यागने योग्य हैं।

निश्चय से अवशेष जो रागादिभाव विभाव परिणाम हैं वे मेरे चिदानद एक भाव की अपेक्षा से पर हैं, ऐसा जानना चाहिये।

शका - शिष्य पूछता है कि चेतना के ज्ञान-दर्शन दो भेद नहीं हैं, चेतना एक ही है। इसलिये ज्ञाता-द्रष्टा ऐसा द्विधा आत्मा कैसे घटित होता है ? (यह बौद्ध का प्रश्न है।)

समाधान - सामान्य का ग्रहण करने वाला दर्शन है, विशेष का ग्रहण करने वाला ज्ञान है। और वस्तु सामान्यविशेषात्मक है। सामान्यविशेषात्मक के अभाव में चेतना का अभाव होता है। चेतना के अभाव में आत्मा जडत्व को प्राप्त होता है अथवा चेतना लक्षण विशेष गुण का अभाव होने पर आत्मा का (द्रव्य का) अभाव होने का प्रसग आता है। किन्तु आत्मा जडत्व को प्राप्त हुआ नहीं दिखाई देता है और आत्मा का अभाव भी नहीं होता है, क्योंकि (१) आत्मा को जड मानने में प्रत्यक्ष से विरोध आता है और (२) आत्मा का अभाव मानना भी प्रत्यक्ष से विरुद्ध है।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, यद्यपि अभेदनय से चेतना एक ही है, तथापि सामान्य-विशेषात्मक विषय की भेददृष्टि से दर्शन-ज्ञानरूप है, ऐसा अभिप्राय है।।३१९, ३२०।।

अव, शुन्द्रबुन्द्र एक स्वभाववाले परमात्मा का शुद्धचिद्रूप एक ही भाव है और उस आत्मा के रागादिक भाव नहीं हैं, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - (अप्पय) आत्मा को (सुद्ध) शुद्ध (जाणतो) जानते हुए (अनुभव करते हुए), (सव्वे भावे) शेष सब भावों को (परोदये) पर के सबध में उदय में आने वाले हैं ऐसा (णादु) जानकर (को णाम बुहो) कौन बुद्धिमान (मज्झमिण ति) "ये परभाव मेरे हैं," (य) ऐसा (वयण) वचन (भणिज्ज) कहेगा ?

---

[1] आ ख्या कलश १८४

अथ शुद्धबुद्धैकस्वभावस्य परमात्मन शुद्धचिद्रूप एक एव भाव, न च रागादय इत्याख्याति -

को णाम भणिज्ज बुहो णादु सव्वे परोदये' भावे। (३००)
मज्झमिण ति य वयण जाणतो अप्पय सुद्ध।।३२१।।

को णाम भणिज्ज बुहो को ब्रूयाद् ? बुधो ज्ञानी विवेकी नाम स्फुटमहो वा न कोऽपि। कि ब्रूयात् ? **मज्झमिण ति य वयण** ममेति वचन, कि कृत्वा ? पूर्वम् **णादु** निर्मलात्मानुभूतिलक्षणभेदज्ञानेन ज्ञात्वा। कान् ?

टीकार्थ - शका - कौन ज्ञानी विवेकी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) ऐसा कहेगा ?

समाधान - कोई सम्यग्ज्ञानी पुरुष ऐसा नहीं कहता है।

शका - क्या नहीं कहता है ?

समाधान - "ये परभाव मेरे हैं" ऐसा वचन कोई सम्यग्ज्ञानी नहीं कहता है।

शका - क्या करके नहीं कहता है ?

समाधान - निर्मल आत्मानुभूतिलक्षणवाले भेदज्ञान से सभी मिथ्यात्वरागादि विभाव भावों को **जानकर,** "ये परभाव मेरे हैं," ऐसा वचन नहीं कहता है।

शका - मिथ्यात्वरागादि विभाव भाव कैसे हैं ?

समाधान - अपने शुद्धात्मस्वभाव से भिन्न ऐसे **परकर्मोदय में प्रगट होनेवाले** ये मिथ्यात्वरागादि विभाव भाव हैं।

शका - क्या करनेवाला परभावों को अपने भाव नहीं कहता है ?

समाधान - परमसमरसीभाव से अपने आत्मस्वभाव को **अनुभव करनेवाला** मिथ्यात्वरागादिभावों को "ये परभाव मेरे हैं," ऐसा वचन नहीं कहता है।

शका - कैसा है आत्मस्वभाव ?

समाधान - शुद्ध याने भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मरहित ऐसा शुद्धात्मस्वभाव है।

शका - इस शुद्धात्मस्वभाव को क्या करके (किस साधन द्वारा) जानता है ?

समाधान - शुन्द्रात्मभावनापरिणत - अभेदरत्नत्रयलक्षण (स्वानुभव) वाले भेदज्ञान से अपने शुद्धात्मस्वभाव को जानता है। (उसे जानते हुए मिथ्यात्वरागादि भावों को "ये मेरे हैं" ऐसा वचन नहीं कहता है) । इस प्रकार विशेष भेदभावना के कथन की मुख्यता से तीसरे स्थल में पाच गाथायें पूर्ण हुई।।३२१।।

अव, मिथ्यात्वरागादि परभावों को स्वभाव में स्वीकार करने से जीव कर्मो से बाधा जाता है और वीतराग परमचैतन्य लक्षणवाले **स्व स्वभाव का स्वीकार करने से जीव कर्मों से मुक्त हो जाता है,** ऐसा कहते हैं -

---

' पाठान्तर - पराइए भावे

सव्वे परोदये भावे सर्वान् मिथ्यात्वरागादिभावान् विभावपरिणामान्। कथभूतान् ? परोदयान् शुद्धात्मन सकाशात् परेण कर्मोदयेन जनितान्। कि कुर्वन् सन् ? जाणतो अप्पय शुद्ध जानन् परमसमरसीभावेनानुभवन्। क ? आत्मान। कथभूत ? शुद्ध भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितम्। केन कृत्वा जानन् ? शुद्धात्मभावनापरिणताभेद-रत्नत्रयलक्षणेन भेदज्ञानेनेति। एव विशेषभेदभावनाव्याख्यानमुख्यत्वेन तृतीयस्थले सूत्रपचक गतम्।।३२१।।

अथ मिथ्यात्वरागादिपरभावस्वीकारेण बध्यते वीतरागपरमचैतन्यलक्षणस्वस्वभावस्वीकारेण मुच्यते जीव इति प्रकाशयति -

थेयादी अवराहे कुव्वदि जो सो ससकिदो होदि[1]। (३०१)
मा बज्झेऽह[2] केण वि चोरो त्ति जणम्हि वियरतो।।३२२।।
जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्सको दु जणवदे भमदि। (३०२)
ण वि तस्स बज्झिदु जे चिता उप्पज्जदि कया वि।।३२३।।
एव हि सावराहो बज्झामि अह तु सकिदो चेदा। (३०३)
जो पुण णिरावराहो[3] णिस्सकोऽह ण बज्झामि।।३२४।।

गाथार्थ - (जो) जो पुरुष (थेयादी अवराहे) चोरी आदि अपराधों को (कुव्वदि) करता है (सो) वह पुरुष (ससकिदो) सशकित (होदि) रहता है कि (जणम्हि) मनुष्यों के बीच (वियरतो) घूमते हुए (चोरो त्ति) "चोर है," ऐसा जानकर (केण वि) किसी के द्वारा भी (अह मा बज्झे) मैं बाध लिया न जाऊँ।

(जो) जो पुरुष (अवराहे) अपराध (ण कुणदि) नहीं करता है (सो दु) वह तो (जणवदे) देश में (णिस्सको) नि शक (भमदि) घूमता है क्योंकि (जे तस्स) जो उसके मन में (बज्झिदु चिता) बधने की चिता (कया वि) कभी भी (ण वि उप्पज्जदि) नहीं उत्पन्न होती।

(एव हि) इस प्रकार ही (सावराहो चेदा) अपराधी आत्मा (सकिदो) शकित रहता है कि (अह तु बज्झामि) मैं कर्मो से बधन को प्राप्त होऊगा (जो पुण णिरावराहो) और जो निरपराध है वह तो (णिस्सको) नि शक रहता हे कि (अह ण बज्झामि) मैं नहीं बधूगा।

टीकार्थ - जो पुरुष चोरी, परदारगमनादि अपराधों को करनेवाला है वह सशकित रहता है।

शका - किस प्रकार से वह शकित रहता है ?

समाधान - लोगों में घूमते हुए "मैं चोर हूँ" यह जानकर किसी कोतवाल आदि के द्वारा बाध न लिया जाऊँ। यह अन्वय दृष्टात गाथा का अर्थ हुआ।

जो कोई चोरी परदारगमनादि अपराध नहीं करता है वह नि शक होता हुआ लोक में घूमता है, अथवा उसे कभी भी चिता उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि वह निरपराध है।

---

१ पाठान्तर - उ सकिदो भमई । २ मा बज्झेज्ज । ३ णिरवराहो ।

थेयादी अवराहे कुव्वदि सो ससकिदो होदि य स्तेयपरदाराद्यपराधान् करोति स पुरुष सशकितो भवति। केन रूपेण ? **मा बज्झेऽह केण वि चोरो त्ति जणम्हि वियरतो** जने विचरन् माह वध्ये केनापि तलवरादिना। कि कृत्वा ? चौर इति मत्वा। इत्यन्वयदृष्टातगाथा गता। **जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्सको दु जणवदे भमदि** य स्तेयपरदाराद्यपराध न करोति स निश्शको जनपदे लोके भ्रमति। **ण वि तस्स बज्झिदु जे चिता उप्पज्जदि कयावि** तस्य चिता नोत्पद्यते कदाचिदपि **जे** अहो यस्मात्कारणात् वा निरपराध, केन रूपेण चिता नोत्पद्यते ? नाह वध्ये केनापि चौर इति मत्वा। एव व्यतिरेकदृष्टातगाथा गता।

एव हि सावराहो बज्झामि अह तु सकिदो चेदा यो रागादिपरद्रव्यग्रहण स्वीकार करोति स स्वस्थभावच्युत सन् सापराधो भवति। सापराधोऽत्र शकितो भवति। केन रूपेण ? वध्येऽह कर्मतापन्नो ज्ञानावरणादिकर्मणा। तत कर्मवधभीत प्रायश्चित्त प्रतिक्रमणरूप दड ददाति। **जो पुण णिरावराहो णिस्सकोऽह ण बज्झामि** यस्तु पुनर्निरपराधो भवति स तु दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाक्षारूपनिदानवधादिसमस्तविभावपरिणामरहितो भूत्वा निश्शको भवति। केन रूपेण ? इति चेत्, रागाद्यपराधरहितत्वात् नाह वध्ये केनापि कर्मणेति प्रतिक्रमणादिदड विनाप्यनतज्ञानादिरूप निर्दोपपरमात्मभावनयेव शुद्ध्यति इत्यन्वयव्यतिरेकदार्ष्टांतगाथा गता ।। ३२२ से ३२४ ।।

शका - निरपराधी को किस प्रकार की चिता उत्पन्न नहीं होती है ?

समाधान - "मुझे चोर मानकर मैं किसी के द्वारा वाध लिया जाता हूँ," यह चिता निरपराध पुरुष को उत्पन्न नहीं होती है। यह व्यतिरेक दृष्टात गाथापूर्ण हुई।

जो रागादि परद्रव्य को ग्रहण (स्वीकार) करता है वह स्वस्थभाव से (स्वानुभव से) च्युत होकर सापराधी (अपराधसहित) होता है। वह अपराधी यहॉ शकित है, क्योंकि ज्ञानावरणादि कर्मों से मैं बाध लिया जाऊगा। इसलिये कर्मवधनों के भय से प्रतिक्रमण प्रायश्चित्तरूप दड देता (भोगता) है। लेकिन जो निरपराध है वह दृष्ट-श्रुत-अनुभूत भोगाकाक्षारूप निदानबध आदि सभी विभाव भावों से रहित होने से नि शक है।

शका - किस प्रकार नि शक है ?

समाधान - रागादि अपराध भावों से रहित होने से मैं किसी भी कर्म से वाधा नहीं जाता हूँ। इसलिये वह प्रतिक्रमण आदिरूप दड विधान के विना भी अनतज्ञानादिमय निर्मलपरमात्मभावना से (अपने स्वभाव शुद्धात्मा की अनुभूति से) शुद्ध हो जाता है। यह अन्वय-व्यतिरेक दार्ष्टांत गाथा का अर्थ हुआ।। ३२२ से ३२४।।

अव, यह अपराध क्या हे ? ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - **(ससिद्धिराधसिद्धी)** ससिद्ध, राध, सिन्द्र, **(साधिदमाराधिद च)** साधित और आराधित **(एयट्ठो)** ये सव एकार्थ वाचक हैं। **(जो खलु चेदा)** जो आत्मा **(अवगदराधो)** राध से रहित हो - निजशुद्धात्मा की आराधना से गहित हे **(सो)** वह आत्मा **(अवराधो)** अपराध **(होदि)** है।

टीकार्थ - **ससध्दिराधसिध्दी साधिदमाराधिद च एयट्ठो** ये सभी एकार्थवाचक शब्द हैं।

सव्वे परोदये भावे सर्वान् मिथ्यात्वरागादिभावान् विभावपरिणामान्। कथभूतान् ? परोदयान् शुद्धात्मन सकाशात् परेण कर्मोदयेन जनितान्। कि कुर्वन् सन् ? **जाणतो अप्पय शुद्ध** जानन् परमसमरसीभावेनानुभवन्। क ? आत्मान। कथभूत ? शुद्ध भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितम्। केन कृत्वा जानन् ? शुद्धात्मभावनापरिणताभेद-रत्नत्रयलक्षणेन भेदज्ञानेनेति। एव विशेषभेदभावनाव्याख्यानमुख्यत्वेन तृतीयस्थले सूत्रपचक गतम्।।३२१।।

अथ मिथ्यात्वरागादिपरभावस्वीकारेण **बध्यते** वीतरागपरमचैतन्यलक्षणस्वस्वभावस्वीकारेण **मुच्यते** जीव इति प्रकाशयति -

थेयादी अवराहे कुव्वदि जो सो ससकिदो होदि[1]। (३०१)
मा बज्झेऽह[2] केण वि चोरो त्ति जणम्हि वियरतो।।३२२।।
जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्सको दु जणवदे भमदि। (३०२)
ण वि तस्स बज्झिदु जे चिता उप्पज्जदि कया वि।।३२३।।
एव हि सावराहो बज्झामि अह तु सकिदो चेदा। (३०३)
जो पुण णिरावराहो[3] णिस्सकोऽह ण बज्झामि।।३२४।।

गाथार्थ - **(जो)** जो पुरुष **(थेयादी अवराहे)** चोरी आदि अपराधों को **(कुव्वदि)** करता है **(सो)** वह पुरुष **(ससकिदो)** सशकित **(होदि)** रहता है कि **(जणम्हि)** मनुष्यों के बीच **(वियरतो)** घूमते हुए **(चोरो त्ति)** "चोर है," ऐसा जानकर **(केण वि)** किसी के द्वारा भी **(अह मा बज्झे)** मैं बाध लिया न जाऊँ।

(जो) जो पुरुप **(अवराहे)** अपराध **(ण कुणदि)** नहीं करता है **(सो दु)** वह तो **(जणवदे)** देश में **(णिस्सको)** नि शक **(भमदि)** घूमता है क्योंकि **(जे तस्स)** जो उसके मन में **(बज्झिदु चिता)** वधने की चिता **(कया वि)** कभी भी **(ण वि उप्पज्जदि)** नहीं उत्पन्न होती।

(एव हि) इस प्रकार ही **(सावराहो चेदा)** अपराधी आत्मा **(सकिदो)** शकित रहता है कि **(अह तु बज्झामि)** मैं कर्मो से वधन को प्राप्त होऊगा **(जो पुण णिरावराहो)** और जो निरपराध है वह तो **(णिस्सको)** नि शक रहता है कि **(अह ण बज्झामि)** मैं नहीं बधूगा।

टीकार्थ - जो पुरुष चोरी, परदारगमनादि अपराधों को करनेवाला है वह सशकित रहता है।

शका - किस प्रकार से वह शकित रहता है ?

समाधान - लोगों में घूमते हुए "मैं चोर हूँ" यह जानकर किसी कोतवाल आदि के द्वारा वाध न लिया जाऊँ। यह अन्वय दृष्टात गाथा का अर्थ हुआ।

जो कोई चोरी परदारगमनादि अपराध नहीं करता हे वह नि शक होता हुआ लोक में घूमता है, अथवा उसे कभी भी चिता उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि वह निरपराध है।

---

[1] पाठान्तर - उ सकिदो भमई। [2] मा वज्झेज्ज। [3] णिरवराहो।

थेयादी अवराहे कुव्वदि सो ससकिदो होदि य स्तेयपरदाराद्यपराधान् करोति स पुरुष सशकितो भवति। केन रूपेण ? **मा बज्झेऽह केण वि चोरो त्ति जणम्हि वियरतो** जने विचरन् माह वध्ये केनापि तलवरादिना। कि कृत्वा ? चौर इति मत्वा। इत्यन्वयदृष्टातगाथा गता। **जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्सको दु जणवदे भमदि** य स्तेयपरदाराद्यपराध न करोति स निश्शको जनपदे लोके भ्रमति। **ण वि तस्स बज्झिदु जे चिता उप्पज्जदि कयावि** तस्य चिता नोत्पद्यते कदाचिदपि **जे** अहो यस्मात्कारणात् वा निरपराध, केन रूपेण चिता नोत्पद्यते ? नाह वध्ये केनापि चोर इति मत्वा। एव व्यतिरेकदृष्टातगाथा गता।

एव हि सावराहो बज्झामि अह तु सकिदो चेदा यो रागादिपरद्रव्यग्रहण स्वीकार करोति स स्वस्थभावच्युत सन् सापराधो भवति। सापराधोऽत्र शकितो भवति। केन रूपेण ? वध्येऽह कर्मतापन्नो ज्ञानावरणादिकर्मणा। तत कर्मवधभीत प्रायश्चित्त प्रतिक्रमणरूप दड ददाति। **जो पुण णिरावराहो णिस्सकोऽह ण बज्झामि** यस्तु पुनर्निरपराधो भवति स तु दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाक्षारूपनिदानवधादिसमस्तविभावपरिणामरहितो भूत्वा निश्शको भवति। केन रूपेण ? इति चेत्, रागाद्यपराधरहितत्वात् नाह वध्ये केनापि कर्मणेति प्रतिक्रमणादिदड विनाप्यनतज्ञानादिरूप निर्दोषपरमात्मभावनयव शुद्ध्यति इत्यन्वयव्यतिरेकदार्ष्टांतगाथा गता ।।३२२ से ३२४ ।।

शका - निरपराधी को किस प्रकार की चिता उत्पन्न नहीं होती है ?

समाधान - "मुझे चोर मानकर मैं किसी के द्वारा वाध लिया जाता हूँ," यह चिता निरपराध पुरुष को उत्पन्न नहीं होती हे। यह व्यतिरेक दृष्टात गाथापूर्ण हुई।

जो रागादि परद्रव्य को ग्रहण (स्वीकार) करता है वह स्वस्थभाव से (स्वानुभव से) च्युत होकर सापराधी (अपराधसहित) होता है। वह अपराधी यहॉ शकित हे, क्योंकि ज्ञानावरणादि कर्मों से मैं बाध लिया जाऊगा। इसलिये कर्मवधनों के भय से प्रतिक्रमण प्रायश्चित्तरूप दड देता (भोगता) है। लेकिन जो निरपराध है वह दृष्ट-श्रुत-अनुभूत भोगाकाक्षारूप निदानबध आदि सभी विभाव भावों से रहित होने से नि शक है।

शका - किस प्रकार नि शक है ?

समाधान - रागादि अपराध भावों से रहित होने से मैं किसी भी कर्म से वाधा नहीं जाता हूँ। इसलिये वह प्रतिक्रमण आदिरूप दड विधान के बिना भी अनतज्ञानादिमय निर्मलपरमात्मभावना से (अपने स्वभाव शुद्धात्मा की अनुभूति से) शुद्ध हो जाता है। यह अन्वय-व्यतिरेक दार्ष्टांत गाथा का अर्थ हुआ।।३२२ से ३२४।।

अव, यह अपराध क्या है ? ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं -

गाथार्थ :- **(ससिद्धिराधसिद्धी)** ससिद्ध, राध, सिन्द्र, **(साधिदमाराधिद च)** साधित और आराधित **(एयट्ठो)** ये सव एकार्थ वाचक हैं। **(जो खलु चेदा)** जो आत्मा **(अवगदराधो)** राध से रहित हो - निजशुद्धात्मा की आराधना से रहित हे **(सो)** वह आत्मा **(अवराधो)** अपराध **(होदि)** है।

टीकार्थ - **ससध्दिराधसिध्दी साधिदमाराधिद च एयट्ठो** ये सभी एकार्थवाचक शव्द हैं।

अथ को हि नामायमपराध ? इति पृच्छति -

ससिद्धिराधसिद्धी साधिदमाराधिद च एयट्ठो। (३०४)
अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराधो ।।३२५।।

ससिद्धिराधसिद्धी साधिदमाराधिद च एयट्ठो कालत्रयवर्तिसमस्तमिथ्यात्वविषयकषायादिविभाव-परिणामरहितत्वेन निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा निजशुद्धात्माराधन सेवन राध इत्युच्यते, ससिद्धि सिद्धिरिति साधितमित्याराधित च तस्यैव राधशव्दस्य पर्यायनामानि। **अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराधो** अपगतो विनष्टो राध शुद्धात्माराधना यस्य पुरुषस्य स पुरुष एवाभेदेन भवत्यपराध। अथवा अपगतो विनष्टो राध शुद्धात्माराध शुद्धात्माराधना यस्य रागादिविभावपरिणामस्य स भवत्यपराध सहापराधेन वर्तते य स सापराध चेतयितात्मा तद्विपरीत त्रिगुप्तिसमाधिस्थो निरपराध इति।। ३२५ ।।

(नास्ति कथन)

तीन कालवर्ती सभी मिथ्यात्वविषयकषायादि-विभावपरिणामों से रहितपना से निजशुद्धात्मा का सेवन करने को राध, ससिद्धि, सिद्धि, साधित, आराधित ऐसा कहते हैं।

(अस्ति कथन)

निर्विकल्पसमाधि में ठहरकर निजस्वभाव शुद्धात्मा की आराधना-सेवन करने को राध, ससिद्धि सिद्धि साधित, आराधित ऐसा कहते हैं।

अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराधो जिस पुरुष का शुद्धात्मा का आराधन करना नष्ट हुआ है, उस पुरुष से अपराध पर्याय को अभेद करने से (याने अभेदोपचार करने से) वह पुरुष ही अपराधक-अपराधी है। अथवा अपगत है अर्थात नष्ट हो गई है राध अर्थात् शुद्धात्मा की आराधना जिसके, वह रागादि विभाव परिणाम ही अपराध है। उस अपराध से सहित पुरुष को सापराधी कहते हैं।

किन्तु इसके विपरीत जो आत्मा त्रिगुप्तिसमाधि (स्वानुभव) में रहता है वह निरपराध है।।३२५।।

अब, शिष्य कहता है कि, हे भगवन् ! शुद्धात्मा की आराधना का (स्वानुभव का) प्रयास करने से क्या प्रयोजन है, जब कि प्रतिक्रमणादि अनुष्ठान से ही आत्मा निरपराध होता है क्योंकि अपराधी के जो अप्रतिक्रमणादिक हैं वे दोष शब्द के वाच्य अपराध को नष्ट न करनेवाले होने से विषकुम्भस्वरूप कहे जाते हैं, लेकिन जो प्रतिक्रमणादि हैं वे दोष शब्द के वाच्य अपराध का नाश करनेवाले होने से अमृतकुभ कहे जाते हैं। इसी प्रकार चिरतन प्रायश्चित्तग्रथ में कहा है कि - अपडिकमण इत्यादि -

अर्थात् - अप्रतिक्रमण अप्रतिसरण, अपरिहार, अधारणा, अनिवृत्ति, अनिदा, अगर्हा और अशुद्धि ऐसे आठ प्रकार के लगे हुये दोषों का प्रायश्चित न करना वह तो विषकुभ है, और प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निदा, गर्हा और शुद्धि इस तरह आठ प्रकार से लगे हुये दोषों का प्रायश्चित करना वह अमृतकुभ है।

अथ हे भगवन् ! किमनेन शुद्धात्माराधनाप्रयासेन यत प्रतिक्रमणाद्यनुष्ठानेनैव निरपराधो भवत्यात्मा, कस्मात् ? इति चेत्, सापराधस्याप्रतिक्रमणादेर्दोषशब्दवाच्यापराधाविनाशकत्वेन विषकुभत्वे सति प्रतिक्रमणादेर्दोषशब्दवाच्यापराधविनाशकत्वेनामृतकुभत्वात् इति। तथा चोक्त चिरतनप्रायश्चित्तग्रथे -

"अपडिकमण अपडिसरण अप्पडिहारो अधारणा चेव। अणियत्ती य अणिदा अगरुहाऽसोहीय विसकुभो ।।१।।
पडिकमण पडिसरण पडिहरण धारणा णियत्ती य। णिदा गरुहा सोही अट्ठविहो अमयकुभो दु।।२।।"

अत्र पूर्वपक्षे परिहार -

पडिकमण पडिसरण पडिहरणं धारणा णियत्ती य। (३०६)
णिदा गरुहा सोही अट्ठविहो होदि विसकुभो।।३२६।।
अपडिकमणमपडिसरणमप्पडिहारो अधारणा चेव। (३०७)
अणियत्ती य अणिदाऽगरुहाऽसोही अमयकुभो ।।३२७।।

पडिकमणमित्यादि। **पडिकमण** प्रतिहरण कृतदोषनिराकरणम्। **पडिसरण** प्रतिसरण सम्यक्त्वादिगुणेषु प्रेरणम्। **पडिहरण** प्रतिहरण मिथ्यात्वरागादिदोषेषु निवारणम्। **धारणा** पचनमस्कारप्रभृतिमत्रप्रतिमादिबहिर्द्रव्यावलबनेन चित्तस्थिरीकरण धारणा। **णियत्ती य** वहिरगविषयकषायादीहागतचित्तस्य निवर्तन निवृत्ति ।

इस तरह पूर्वपक्ष का कथन (प्रश्न) करने पर उसका उत्तर देते हैं -

गाथार्थ - (**पडिकमण**) प्रतिक्रमण (**पडिसरण**) प्रतिसरण (**पडिहरण**) परिहार (**धारणा**) धारणा (**णियत्ती**) निवृत्ति (**णिदा**) निदा (**गरुहा**) गर्हा (**य**) और (**सोही**) शुद्धि (**अट्ठविहो**) यह आठ प्रकार का (**विसकुभो**) विषकुभ (**होदि**) है।

(**अपडिकमण**) अप्रतिक्रमण (**अपडिसरण**) अप्रतिसरण (**अप्परिहारो**) अपरिहार (**अधारणा**) अधारणा (**अणियत्ती**) अनिवृत्ति (**य**) और (**अणिदा**) अनिदा (**अगरुहा**) अगर्हा (**च**) और (**असोही**) अशुद्धि ये आठ (**अमयकुभो एव**) अमृतकुभ ही हैं।

टीकार्थ - **प्रतिक्रमण** - किये हुये दोषों का निराकरण करना।

प्रतिसरण - सम्यक्त्वादि गुणों में प्रेरणा करना।

प्रतिहरण - मिथ्यात्व रागादि दोषों का निवारण करना।

धारणा - पचनमस्कार प्रभृति मत्र प्रतिमा आदि वाह्य द्रव्य के आलबन से चित्त को स्थिर करना।

निवृत्ति - वाह्य विपयकषायादि ईहागत चित्त का निवर्तन करना - निवृत्ति करना।

निदा - आत्मसाक्षी से दोष प्रकट करना।

गर्हा - गुरु के समक्ष अपने दोष प्रकट करना।

शुद्धि - दोष होने पर विशुद्धि के लिये प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि करना।

णिंदा आत्मसाक्षिदोषप्रकटन निंदा। **गरुहा** गुरुसाक्षिदोषप्रकटन गर्हा। **सोही** दोषे सति प्रायश्चित्त गृहीत्वा विशुद्धिकारण शुद्धि । इत्यष्टविकल्परूपशुभोपयोगो यद्यपि मिथ्यात्वादिविषयकषायपरिणतिरूपाशुभोपयोगापेक्षया सविकल्पसरागचारित्रावस्थायाममृतकुभो भवति। तथापि रागद्वेषमोहख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाक्षारूपनिदान वधादिसमस्तपरद्रव्यालवनविभावपरिणामशून्या, चिदानन्दैकस्वभावविशुद्धात्मालवनभरितावस्था निर्विकल्पशुद्धोपयोग-लक्षणा, **अपडिकमण** इति गाथाकथितक्रमेण ज्ञानिजनाश्रितनिश्चयाप्रतिक्रमणादिरूपा तु या तृतीया भूमिस्तदपेक्षया वीतरागचारित्रस्थिताना पुरुषाणा विषकुभ एवेत्यर्थ ।

किच विशेष - अप्रतिक्रमण द्विविध भवति। ज्ञानिजनाश्रित, अज्ञानिजनाश्रित चेति। अज्ञानिजनाश्रित यदप्रतिक्रमण तद्विषयकषायपरिणतिरूप भवति। ज्ञानिजीवाश्रितमप्रतिक्रमण तु शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानलक्षण त्रिगुप्तिरूप। तच्च ज्ञानिजनाश्रितमप्रतिक्रमणम् सरागचारित्रलक्षणशुभोपयोगापेक्षया यद्यप्यप्रतिक्रमण भण्यते तथापि वीतरागचारित्रापेक्षया तदेव निश्चयप्रतिक्रमणम्। कस्मात् ? इति चेत्, समस्तशुभाशुभास्रवदोपनिराकरणरूपत्वादिति।

ये आठ विकल्परूप शुभोपयोग हैं। ये यद्यपि मिथ्यात्वादि विषयकषाय परिणतिरूप अशुभोपयोग की अपेक्षा से सविकल्प सरागचारित्र की अवस्था में अमृतकुभ हैं। तथापि राग-द्वेष-मोह, ख्याति-पूजा-लाभ, दृष्ट-श्रुत-अनुभूतभोगाकाक्षारूप निदानबधादि सभी परद्रव्य के आलबन वाले विभावपरिणाम से रहित ऐसे चिदानद-एक-स्वभाव-विशुद्ध आत्मा के आलबनवाले, भरित अवस्थावाले, निर्विकल्प शुद्धोपयोग (स्वानुभूति) लक्षणवाले "अपडिकमण" इत्यादि गाथाकथित क्रम से ज्ञानिजनाश्रित निश्चय अप्रतिक्रमणादिरूप जो तृतीय भूमि है, उसकी अपेक्षा से वीतरागचारित्रस्थित (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती स्वानुभूतिवाले) जनों को विषकुभ ही हैं। यह अर्थ है।

इसका विशेष स्पष्टीकरण यह है कि, अप्रतिक्रमण दो प्रकार का है - (१) ज्ञानीजनों के आश्रितवाला अप्रतिक्रमण, (२) अज्ञानी (मिथ्यात्वसासादानमिश्रगुणस्थानवर्ती) जनों के आश्रितवाला अप्रतिक्रमण। अज्ञानीजन के आश्रितवाला जो अप्रतिक्रमण है वह विषयकषाय परिणतिवाला अप्रतिक्रमण है, लेकिन सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव के आश्रितवाला अप्रतिक्रमण शुद्धात्म के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानलक्षणवाला स्वानुभूतिवाला त्रिगुप्तिरूप अप्रतिक्रमण है। सम्यग्ज्ञानी जीव के आश्रित वाला यह जो अप्रतिक्रमण है उसको सरागचारित्रलक्षण वाले (प्रतिक्रमणवाले) शुभोपयोग की अपेक्षा से यद्यपि अप्रतिक्रमण कहा जाता है तथापि वीतराग (स्वानुभव) चारित्र की अपेक्षा से **सम्यग्ज्ञानीजन के आश्रितवाला वह अप्रतिक्रमण ही निश्चयप्रतिक्रमण है।**

शका - क्यों ?

समाधान - क्योंकि स्वानुभव वाले अप्रतिक्रमण (निश्चयप्रतिक्रमण) में समस्त शुभ-अशुभ आस्रव-दोषों का निराकरण होता हे। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि वह स्वानुभव वाला अप्रतिक्रमण ही निश्चय प्रतिक्रमण है।

यह, व्यवहार प्रतिक्रमण की अपेक्षा से अप्रतिक्रमण शब्द के द्वारा कहा जाकर भी ज्ञानीजनों के लिये मोक्ष का कारण है, व्यवहार प्रतिक्रमण तो यदि शुद्धात्मा को उपादेय (स्वानुभव को उपादेय) करके उसी निश्चय प्रतिक्रमण का (स्वानुभव का उपचार से) साधक होने से, विषयकषायों से वचने के लिये करता है तो वह भी परपरा से (उपचार से) मोक्ष का कारण होता है, अन्यथा (याने शुद्धात्मानुभव को उपादेय न मानते हुये किया

तत स्थित तदेव निश्चयप्रतिक्रमणम्। व्यवहारप्रतिक्रमणापेक्षया, अप्रतिक्रमणशब्दवाच्य ज्ञानिजनस्य मोक्षकारण भवति। व्यवहारप्रतिक्रमण तु यदि शुद्धात्मानमुपादेय कृत्वा तस्यैव निश्चयप्रतिक्रमणस्य साधकभावेन विषयकषायवचनार्थं करोति तदपि परपरया मोक्षकारण भवति, अन्यथा स्वर्गादिसुखनिमित्तपुण्यकारणमेव। यत्पुनरज्ञानिजन-सबधिमिथ्यात्वविषयकषायपरिणतिरूपमप्रतिक्रमण तन्नरकादिदु खकारणमेव।

एव प्रतिक्रमणाद्यष्टविकल्परूप शुभोपयोगो यद्यपि सविकल्पावस्थायाममृतकुभो भवति तथापि सुखदु खादिसमता-लक्षणपरमोपेक्षारूपसयमापेक्षया विषकुभ एवेति व्याख्यानमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथाष्टक गतम्।। ३२६, ३२७।।

तत्रैव सति शृगाररहितपात्रवद्रागादिरहितशातरसपरिणतशुद्धात्मरूपेण मोक्षो निष्क्रात।

इति श्री **जयसेनाचार्य**कृताया समयसारव्याख्याया शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाया तात्पर्यवृत्तौ द्वाविशतिगाथाभिश्चतुर्भिरतराधिकारैर्नवमो **मोक्षाधिकार** समाप्त।। ९।।

हुआ) व्यवहार प्रतिक्रमण स्वर्गादिसुख के लिये पुण्य का कारण ही है (मोक्ष का कारण नहीं है), और जो अज्ञानी जीव का मिथ्यात्व विषयकषाय परिणतिवाला अप्रतिक्रमण है, वह अप्रतिक्रमण नरकादि दु ख का कारण ही है।

इस प्रकार प्रतिक्रमणादि आठ विकल्परूप (आठ भेदवाला) शुभोपयोग यद्यपि सविकल्प अवस्था में अमृतकुभ है, तथापि सुखदु खों में समतालक्षण वाले परमोपेक्षासयम (स्वानुभूति) की अपेक्षा से व्यवहार प्रतिक्रमण विषकुभ ही है, इस कथन की मुख्यता से चतुर्थस्थल में आठ गाथायें पूर्ण हुई।

वहाँ इस प्रकार शृगाररहित पात्र के समान रागादिरहित शातरस से परिणत शुद्धात्मरूप से मोक्ष निष्क्रात हो गया।। ३२६, ३२७।।

इस तरह श्री जयसेनाचार्यजी कृत शुद्धात्मानुभूतिलक्षण वाली समयसार की तात्पर्यवृत्ति टीका में २२ गाथाओं के द्वारा, चार अतर अधिकारों में यह नवम मोक्ष अधिकार समाप्त हुआ।।९।।

卐 卐 卐 卐 卐

"ज्ञेय वस्तु से ज्ञान की उत्पत्ति होती है," इस विपरीत मान्यता से परिग्रह सग्रह की इच्छा होती है।

-- अध्यात्म न्यायदीपिका पृ २६०

ज्ञानपोतस्वरूपाय नमः।

समुद्र अपार लगता है, उसमें तैरना कठिन लगता है, अत जलपर्यटक जहाज का सहारा लेते हैं। वीच धार में नाव डगमगाने लग जाय तो जी घवराता है। खेवटिया को सब कुछ न्योछावर करते हैं, मगर आयुकर्म न हो तो कोई वचानेवाला नहीं है। **किन्तु ज्ञानपोत याने ज्ञानरूपी जहाज शाश्वत है, इसका खेवटिया स्वय ही है। भवसागर अथाह है लेकिन ज्ञानपोत की शरण जाने से** कुछ फिक्र नहीं है। अपने ज्ञानपोत में वैठो वह कभी धोखा देनेवाला नहीं है। राग-द्वेष के बडे-वडे मगरमच्छ इस ज्ञानपोत को डुबोते नहीं, फोडते नहीं, ऐसा तैरनेवाला यानपात्र पहिचानो, अनुभव करो।

ज्ञानलक्ष्मीस्वरूपोऽहम्। शिवश्रीस्वरूपोहऽम्। चैतन्यकमलश्रीरूपोऽहम्।

चार्ट नं. ८

आगम भाषा और आध्यात्म भाषा का सम्यक्त्व द्योतक कोष्टक

क्रमाक	आगम भाषा (वस्तु में क्या क्या है और व्यवस्था कैसी है। यह आगम भाषा बताती है)		अध्यात्म भाषा वस्तु में से क्या ग्रहण करने योग्य है। यह अध्यात्म भाषा बताती है।	फल
क	द्रव्य	पर्याय	परमानद और शातता प्राप्ति के लिये स्वद्रव्य - एकत्वविभक्त निजात्मा का आश्रय करता है।	समीचीन है, क्योंकि आगमभाषा में स्यात्द्रव्य, स्यात्पर्याय परस्पर सापेक्ष है वह योग्य है और अध्यात्मभाषा योग्य है। सम्यक्त्वी है।
ख	द्रव्य	पर्याय	परमानद और शातता प्राप्ति के लिये पर्याय अथवा अन्यद्रव्य का आश्रय करता है।	असमीचीन है, क्योंकि अध्यात्मभाषा में भूल है। (व्यवहाराभासी) मिथ्यात्वी है
ग	द्रव्य	०	परमानद और शातता प्राप्ति के लिये स्वद्रव्य का आश्रय करता है।	असमीचीन है, क्योंकि आगमभाषा में भूल है। (निश्चयाभासी) मिथ्यात्वी है
घ	०	पर्याय	परमानद और शातता प्राप्ति के लिये पर्याय का आश्रय करता है।	असमीचीन है, क्योंकि आगमभाषा में और अध्यात्मभाषा में भूल है। (व्यवहाराभासी) मिथ्यात्वी है
च	द्रव्य	पर्याय	परमानद और शातता प्राप्ति के लिये पर्याय का आश्रय करता है।	असमीचीन है, क्योंकि अध्यात्मभाषा में भूल है। (उभयाभासी) मिथ्यात्वी है
छ	०	०	परमानद और शातता प्राप्ति के लिये स्वद्रव्य का आश्रय करता है।	असमीचीन है, क्योंकि आगमभाषा के बारे में अज्ञान है। मिथ्यात्वी है
ज	०	०	परमानद और शातता प्राप्ति के लिये पर्याय का आश्रय करता है।	असमीचीन है, क्योंकि आगमभाषा के बारे में अज्ञान है और आध्यात्म भाषा में भूल है। मिथ्यात्वी है
झ	पर्याय निरपेक्ष द्रव्य	द्रव्य निरपेक्ष पर्याय	परमानद और शातता प्राप्ति के लिये स्वद्रव्य का आश्रय करता है।	असमीचीन है, क्योंकि आगमभाषा में भूल है। मिथ्यात्वी है
ट	पर्याय निरपेक्ष द्रव्य	द्रव्य निरपेक्ष पर्याय	परमानद और शातता प्राप्ति के लिये पर्याय अथवा अन्यद्रव्य का आश्रय करता है।	असमीचीन है, क्योंकि आगमभाषा में और अध्यात्मभाषा में भूल है। मिथ्यात्वी है
ड	पर्याय निरपेक्ष द्रव्य	द्रव्य निरपेक्ष पर्याय	परमानद और शातता प्राप्ति के लिये निरपेक्ष स्वद्रव्य और पर्याय का आश्रय करता है।	असमीचीन है, क्योंकि आगमभाषा में और अध्यात्मभाषा में भूल है। मिथ्यात्वी है

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार

(मोक्षपदार्थ चूलिका)

(१)

अथ **प्रविशति सर्वविशुद्धज्ञानम्**। ससारपर्यायमाश्रित्याशुद्धोपादानरूपेणाशुद्धनिश्चयनयेन यद्यपि कर्तृत्वभोक्तृत्व-वधमोक्षादिपरिणामसहितो जीवस्तथापि सर्वविशुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धोपादानरूपेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन कर्तृत्वभोक्तृत्वबधमोक्षादिकारणभूतपरिणामशून्य एवेति। **'दविय ज उप्पज्जदि'** इत्यादि गाथामार्दि कृत्वा चतुर्दशगाथापर्यत **मोक्षपदार्थचूलिका व्याख्यान** करोति। तत्रादौ निश्चयेन कर्मकर्तृत्वाभावमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयम्। तदनतर शुद्धस्यापि यद्ज्ञानावरणादिप्रकृतिभि वधो भवति तदज्ञानस्य माहत्म्यमिति कथनार्थम् **'चेदा दु पयडियट्ठ'** इत्यादि प्राकृत श्लोकचतुष्टय। अत पर निश्चयेन भोक्तृत्वाभावज्ञापनार्थम् **'अण्णाणी कम्मफल'** इत्यादि सूत्रचतुष्टयम्। तदनतर मोक्षचूलिकोपसहाररूपेण **'ण वि कुव्वदि'** इत्यादि सूत्रद्वय कथयतीति मोक्षपदार्थचूलिकाया समुदायपातनिका।

अव, यहॉ **सर्वविशुद्धज्ञान** प्रवेश करता है। वहॉ ससारपर्याय का आश्रय लेकर अशुद्ध उपादानरूप से अशुद्धनिश्चयनय से यद्यपि कर्तृत्व, भोक्तृत्व, बध, मोक्षादि परिणाम सहित यह जीव है, तथापि सर्वविशुद्ध पारिणामिक परमभाव का ग्राहकवाले शुद्धउपादानरूप शुद्धद्रव्यार्थिकनय से कर्तृत्व, भोक्तृत्व, बध, मोक्षादि के कारणभूत परिणामों से रहित ही है।

'दविय ज उप्पज्जदि' इत्यादि गाथा से शुरु करके १४ गाथाओं तक **मोक्षपदार्थचूलिका** का कथन करते हैं। सबसे पहले निश्चयनय से कर्मकर्तृत्व के अभाव की मुख्यता से ४ गाथायें हैं। तदनतर शुद्धद्रव्यार्थिकनय से द्रव्य शुद्ध है तो भी उसके **जो ज्ञानावरणादि प्रकृतिबध होता है वह अज्ञान का माहात्म्य है,** ऐसा कथन करने के लिये **'चेदा दु पयडियट्ठ'** इत्यादि ४ गाथायें हैं। इसके आगे निश्चयनय से भोक्तृत्व का अभाव दिखाने के लिये **'अण्णाणी कम्मफल'** इत्यादि ४ गाथायें हैं। तदनतर मोक्षचूलिका का उपसहार करने के लिये **'ण वि कुव्वदि'** इत्यादि २ गाथायें कहते हैं। इस प्रकार यह मोक्षपदार्थचूलिका की समुदाय पातनिका है।

अथ निश्चयेन कर्मणा कर्ता न भवति इत्याख्याति -

दविय ज उप्पज्जदि गुणेहि त तेहि जाणसु अणण्ण। (३०८) आ.ख्या
जह कडयादीहि दु पज्जएहि कणय अणण्णमिह।।३२८।। ता वृ.
जीवस्साजीवस्स य जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते। (३०९)
त जीवमजीव वा तेहिमणण्ण वियाणाहि।।३२९।।
ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्ज ण तेण सो आदा। (३१०)
उप्पादेदि ण किचिवि कारणमवि तेण ण सो होदि।।३३०।।
कम्म पडुच्च कत्ता कत्तार तह पडुच्च कम्माणि। (३११)
उप्पज्जतो णियमा सिद्धी दु ण दिस्सदे अण्णा।।३३१।।

अव, निश्चयनय से जीव कर्मो का कर्ता नहीं है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(ज दविय)** जो द्रव्य **(गुणेहि)** जिन अपने गुणों से **(उप्पज्जदि)** उपजता है **(त)** वह **(तेहि)** उन गुणों से **(अणण्ण)** अन्य नहीं है याने अनन्य है ऐसा **(जाणसु)** जानो - द्रव्य उन गुणमय ही है। **(जह)** जैसे **(कणय)** सुवर्ण **(कडयादीहि)** अपने कटक-कडे आदि पर्यायों से **(इह)** लोक में **(अणण्ण दु)** अन्य नहीं हे - अनन्य ही है (कटकादि है वह सुवर्ण ही है)।

(य) उसी तरह **(जीवस्साजीवस्स)** जीव अजीव के **(जे परिणाामा दु)** जो परिणाम **(सुत्ते)** सूत्र में - आगम में **(देसिदा)** कहे हैं **(तेहि)** उन परिणामों से **(त जीवमजीव वा)** उस जीव और अजीव को **(अणण्ण)** अनन्य है ऐसा **(वियाणाहि)** जानना। परिणाम हैं वे द्रव्य ही हैं।

(जम्हा) जिस कारण **(सो आदा)** वह आत्मा **(कुदोचि वि)** किसी से भी **(ण उप्पण्णो)** उत्पन्न नहीं हुआ हे **(तेण)** इस से **(कज्ज ण)** वह किसी का किया हुआ कार्य नहीं है। **(किचि वि)** किसी अन्य को भी **(ण उप्पादेदि)** उत्पन्न नहीं करता है **(तेण)** इसलिये **(सो)** वह आत्मा **(कारणमवि)** किसी का कारण भी **(ण होदि)** नहीं है।

(णियमा) नियम से **(कम्म पडुच्च)** कर्म का आश्रय करके **(कत्ता)** कर्ता होता है **(तह)** तथा **(कत्तार पडुच्च)** कर्ता का आश्रय करके **(कम्माणि उप्पज्जते)** कर्म उत्पन्न होते हैं **(अण्णा सिद्धी दु)** और कर्ता-कर्म की अन्य कोई सिद्धि भी **(ण दिस्सदे)** नहीं देखी जाती।

टीकार्थ - लोक में जैसे सुवर्ण अपनी कटकादि पर्यायों से अनन्य अर्थात् अभिन्न है, वैसे द्रव्य भी जो परिणमन करता-उत्पन्न होता है वह द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्यायों से अभिन्न है, ऐसा जानो। यह प्रथम गाथा का अर्थ हुआ।

सूत्र में - परमागम में जीव और अजीव द्रव्यों के जो परिणाम-पर्याय कहे गये हैं, वे ऊपर के सुवर्ण के दृष्टान्त के समान उन पर्यायों के साथ यह जीव या अजीव द्रव्य अनन्य-अभिन्न ही है, ऐसा जानो। यह दूसरी गाथा का अर्थ हुआ।

यथा कनकमिह कटकादिपर्यायै सहानन्यदभिन्न भवति तथा द्रव्यमपि यदुत्पद्यते परिणमति। कै सह ? स्वकीयस्वकीयगुणै तद्द्रव्य तैर्गुणै सहानन्यदभिन्नमिति जानीहि इति प्रथमगाथा गता।

जीवस्साजीवस्स य जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते जीवस्य अजीवस्य च ये परिणामा पर्याया देशिता कथिता सूत्रे परमागमे तै सह तेनैव पूर्वोक्तसुवर्णदृष्टातेन तमेव जीवाजीवद्रव्यमनन्यदभिन्न विजानीहीति द्वितीयगाथा गता।

यस्माच्छुद्धनिश्चयनयेन नरनारकादिविभावपर्यायरूपेण कदाचिदपि नोत्पन्न कर्मणा न जनित तेन कारणेन कर्मनोकर्मापेक्षयात्मा कार्यं न भवति। न च तत्कर्मनोकर्मोपादानरूपेण किमप्युत्पादयति। तेन कारणेन कर्मनोकर्मणा कारणमपि न भवति, यत कर्मणा कर्ता मोचकश्च न भवति तत कारणाद् बधमोक्षयो शुद्धनिश्चयनयेन कर्ता न भवतीति तृतीयगाथा गता।

कम्म पडुच्च कत्ता कत्तार तह पडुच्च कम्माणि उप्पज्जते णियमा यत पूर्वं भणित सुवर्णद्रव्यस्य कुण्डलपरिणामेनैव सह जीवपुद्गलयो स्वपरिणामै सहैवानन्यत्वमभिन्नत्व। पुनश्चोक्त कर्मनोकर्मभ्या कर्तृभूताभ्या जीवो नोत्पाद्यते जीवश्च कर्मनोकर्मणा नोत्पादयति ततो ज्ञायते कर्म प्रतीत्योपचारेण जीव कर्मकर्ता। तथा कर्माणि चोत्पद्यते जीवकर्तारमाश्रित्योपचारेण नियमान्निश्चयात् सदेहो नास्ति।

जिस कारण से शुद्धनिश्चयनय से नर,नारक, तिर्यंच, देव आदि विभाव पर्यायोंरूप से जीव कदाचित् भी उत्पन्न नहीं होता है, कर्म से जीव (आत्मा) उत्पन्न नहीं हुआ है, इस कारण से कर्म-नोकर्म की अपेक्षा से आत्मा उस कर्म का कार्य नहीं है। और आत्मा उपादानरूप से परिणमन करके किसी भी कर्म-नोकर्म को उत्पन्न नहीं करता है, इस कारण से आत्मा कर्म-नोकर्मो का कारण भी नहीं है। जिस कारण से आत्मा कर्मों का कर्ता नहीं और आत्मा कर्मो का मोचक भी नहीं है, उसी कारण से आत्मा बध-मोक्ष का शुद्धनिश्चयनय से कर्ता नहीं है। यह तीसरी गाथा का अर्थ हुआ।

जैसा पहले कहा गया है कि, सुवर्णद्रव्य अपनी कुण्डलादि पर्यायों से अभिन्न है, जीव अपनी पर्यायों से अभिन्न हे और पुद्गल अपनी पर्यायों से अभिन्न है। और भी कहा गया कि, कर्मनोकर्म उपादानरूप से - कर्तापना से जीव उत्पन्न नहीं होता है। जीव के कर्तापना से कर्मनोकर्म भी उत्पन्न नहीं होते हैं। इससे जाना जाता है कि कर्म की प्रतीति करके उपचार से जीव कर्मों का कर्त्ता है। तथा जीव को कर्तारूप में आश्रय करके उपचार से कर्म उत्पन्न होते हैं। यह नियम है, इसमें सदेह नहीं है।

इस प्रकार परस्पर के निमित्तभाव को छोडकर शुद्ध उपादानरूप से - शुद्धनिश्चयनय से जीव के कर्मकर्तृत्व के विषय में सिद्धि नहा होती अर्थात् यह वात घटित नहीं होती (नहीं देखी जाती) है, तथा कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलों का कर्मत्व भी नहीं दखा जाता (नहा सिद्ध होता) है। इससे यह सिद्ध हुआ कि, शुद्धनिश्चयनय से जीव परिणामों का और कर्मनोकर्मरूप द्रव्यकर्म का अकर्ता है। यह चौथी गाथा का अर्थ हुआ।

इस प्रकार शुद्धनिश्चयनय से जीव भावकर्म का अकर्ता तथा द्रव्यकर्म का अकर्ता है, इस कथन की मुख्यता से प्रथमस्थल में चार गाथायें पूर्ण हुई।।३२८ से ३३१।।

सिद्धी दु ण दिस्सदे अण्णा अनेन प्रकारेण, अनेन कोऽर्थ ? परस्परनिमित्तभाव विहाय शुद्धोपादानरूपेण शुद्धनिश्चयेन जीवस्य कर्मकर्तृत्वविषये सिन्द्रिर्निष्पत्तिर्घटना न दृश्यते कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलाना च कर्मत्व न दृश्यते तत स्थित शुद्धनिश्चयेनाकर्ता जीव इति चतुर्थगाथा गता।

एव निश्चयेन जीव कर्मणा कर्ता न भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथाचतुष्टय गतम्।।३२८ से ३३१।।

अथ शुद्धस्यात्मनो ज्ञानावरणादिप्रकृतिभिर्यद् वधो भवति तदज्ञानस्य माहात्म्यमिति प्रज्ञापयति -

चेदा दु पयडियट्ठ उप्पज्जदि विणस्सदि। (३१२)
पयडी वि चेदयट्ठ उप्पज्जदि विणस्सदि।।३३२।।
एव बधो य दोण्ह पि अण्णोण्णपच्चया हवे। (३१३)
अप्पणो पयडीए य ससारो तेण जायदे।।३३३।।

चेदा आत्मा स्वस्थभावच्युत सन् प्रकृतिनिमित्त कर्मोदयनिमित्तमुत्पद्यते। विनश्यति च विभावपरिणामे पर्याये। प्रकृतिरपि चेतयितृकार्यं जीवसवधिरागादिपरिणामनिमित्त ज्ञानावरणादिकर्मपर्याये उत्पद्यते विनश्यति च। एव पूर्वोक्तप्रकारेण वधो जायते द्वयो-स्वस्थभावच्युतस्यात्मन कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलपिडरूपाया ज्ञानावरणादिप्रकृतेश्च। कथभूतयोर्द्वयो ? अन्योन्यप्रत्यययो, परस्परनिमित्तकारणभूतयो। एव रागाद्यज्ञानभावेन वधो भवति तेन च वधेन ससारो जायते. न च स्वस्वरूपत इत्युक्त भवति।।३३२, ३३३।।

अव, (शुद्धनिश्चयनय से) आत्मा शुद्ध ही है तो भी उसको ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के द्वारा जो **वध होता है वह अज्ञान का माहात्म्य है,** ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(चेदा दु)** चेतनेवाला आत्मा ससार अवस्था में तो **(पयडियट्ठ)** ज्ञानावरणादि कर्म की प्रकृतियों के निमित्त से **(उप्पज्जदि)** उत्पन्न होता है **(विणस्सदि)** तथा विनाश को प्राप्त होता है और **(पयडी वि)** प्रकृति भी **(चेदयट्ठ)** उस चेतनेवाले आत्मा के निमित्त से **(उप्पज्जदि)** उत्पन्न होती है **(विणस्सदि)** तथा विनाश को प्राप्त होती है। आत्मा के परिणामों के निमित्त से उसी तरह परिणमती है।

(एव) इस तरह **(दोण्ह पि)** दोनों **(अप्पणो य पयडीए)** आत्मा और प्रकृति के **(अण्णोण्णपच्चया)** परस्पर निमित्त से **(बधो)** वध होता है **(य तेण)** और उस वध से **(ससारो जायदे)** ससार उत्पन्न होता है।

टीकार्थ - स्वस्थभाव से च्युत होता हुआ आत्मा प्रकृति को अर्थात् कर्मोदय को निमित्त करके विभावपरिणामों से उत्पन्न होता है और विनाश को प्राप्त होता है। प्रकृति भी चैतन्यमय कार्य करनेवाले जीवसवधि रागादि विभावपरिणामों को निमित्त करके ज्ञानावरणादि कर्मपर्यायों के द्वारा उत्पन्न होती है और विनाश को प्राप्त होती है। इस पूर्वोक्त प्रकार से स्वस्थभाव से च्युतवाले आत्मा का और कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलपिडरूप ज्ञानावरण आदि प्रकृतियों का-इन दोनों का अन्योन्य प्रत्ययरूप से एक दूसरे में निमित्त कारणवालों का वध होता है।

अथ यावत्काल शुद्धात्मसवित्तिच्युत सन् प्रकृत्यर्थम् प्रकृत्युदयरूप रागादिक न मुचति तावत्कालमज्ञानी स्यात् तदभावे ज्ञानी च भवतीत्युपदिशति -

जा एस पयडीयट्ठ चेदा णेव विमुचदे[१]। (३१४)
अयाणगो हवे ताव मिच्छादिट्ठी असजदो।।३३४।।
जदा विमुञ्चदे चेदा कम्मफ्फलमणतय। (३१५)
तदा विमुत्तो हवदि जाणगो पस्सगो मुणी।।३३५।।

यावत्कालमेष चेतयिता जीव, चिदानन्दैकस्वभावपरमात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभवरूपाणा सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणामभावात्प्रकृत्यर्थम् रागादिकर्मोदयरूप न मुचति, तावत्काल रागादिरूपमात्मान श्रद्दधाति जानात्यनुभवति च ततो मिथ्यादृष्टिर्भवति, अज्ञानी भवति, असयतश्च भवति, तथाभूत सन् मोक्ष न लभते। यदा पुनरयमेव चेतयिता मिथ्यात्वरागादिरूप कर्मफल शक्तिरूपेणानत विशेषेण सर्वप्रकारेण मुचति तदा शुद्धबुद्धैकस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्-श्रद्धानज्ञानानुभवरूपाणा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणा सद्भावात् लाभानुमिथ्यात्वरागादिभ्यो भिन्नमात्मान श्रद्दधाति जानात्यनुभवति च। तत सम्यग्दृष्टिर्भवति, ज्ञानी भवति, सयतो मुनिश्च भवति। तथाभूत सन् विशेषेण द्रव्यभावगतमूलोत्तरप्रकृतिविनाशेन मुक्तो भवतीति। एव यद्यप्यात्मा शुद्धनिश्चयेन कर्ता न भवति तथाप्यनादिकर्म-वधवशान्मिथ्यात्वरागाद्यज्ञानभावेन कर्म बध्नातीति अज्ञानसामर्थ्यज्ञापनार्थम् द्वितीयस्थले सूत्रचतुष्टय गतम्।।३३४, ३३५।।

इस प्रकार रागादि अज्ञानभाव से बध होता है, उस वध से ससार परिभ्रमण - दु ख होता है और अपने स्वस्वभाव से बध नहीं होता है - ससार नहीं होता है, ऐसा कहा गया है।। ३३२, ३३३।।

अव, जव तक शुद्धात्मानुभव से च्युत होनेवाला जीव प्रकृत्यर्थ याने प्रकृति के उदय के समय होनेवाले रागादिकों को नहीं छोडता है, तब तक अज्ञानी है और उसके अभाव में याने शुद्धात्मानुभव से च्युत न होनेवाला जीव ज्ञानी है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(जा)** जव तक **(एस चेदा)** यह आत्मा **(पयडीयट्ठ)** प्रकृत्यर्थ ज्ञेयार्थ परिणमन को - प्रकृति के निमित्त में विभावमय उपजना-विनशना **(णेव विमुचदे)** नहीं छोडता है **(ताव)** तव तक **(अयाणगो)** अज्ञानी **(मिच्छादिट्ठी)** मिथ्यादृष्टि **(असजदो)** असयमी **(हवे)** होता है।

(जदा) जव **(चेदा)** आत्मा **(अणतय कम्मफल)** अनत कर्मफल को **(विमुञ्चदे)** छोड देता है **(तदा)** तव **(विमुत्तो)** वध से मुक्त हुआ **(जाणगो पस्सगो)** ज्ञाता-द्रष्टा **(मुणी)** मुनि **(हवदि)** होता है।

टीकार्थ - जव तक यह चैतन्यमय जीव चिदानद-एक-स्वभाव-परमात्मतत्व का सम्यक् श्रद्धान ज्ञानानुभवरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का (स्वानुभूति का) अभाव होने से प्रकृत्यर्थ-कर्मोदय में उत्पन्न होनेवाले रागादिभावों को नहीं छोडता है, तव तक रागादिमय आत्मा की (आत्मा का स्वभाव रागादिमय मानकर उसकी) श्रद्धा करता है, जानता है और अनुभवता है इसलिये मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी है और असयमी है, ऐसा होने से वह जीव मोक्ष को नहीं पाता है।

१- पाठान्तर - चेदगो ण विमुचदि

अथ शुद्धनिश्चयनयेन कर्मफलभोक्तृत्व जीवस्वभावो न भवति, कस्मात् ? अज्ञानस्वभावत्वात्, इति कथयति -

अण्णाणी कम्मफल पयडिसहावट्ठिदो दु वेदेदि। (३१६)
णाणी पुण कम्मफल जाणदि उदिद ण वेदेदि।।३३६।।

अण्णाणी कम्मफल पयडिसहावट्ठिदो दु वेदेदि विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकभेदज्ञानस्याभावादज्ञानी जीव उदयागतकर्मप्रकृतिस्वभावे सुखदु खस्वरूपे स्थित्वा हर्षविषादाभ्या तन्मयो भूत्वा कर्मफल वेदयत्यनुभवति। **णाणी पुण कम्मफल जाणदि उदिद ण वेदेदि** ज्ञानी पुन तन्मयो भूत्वा पूर्वोक्तभेदज्ञानसद्भावात् वीतरागसहजपरमानदरूपसुखरसास्वादेन परमसमरसीभावेन परिणत सन् कर्मफलमुदित वस्तुस्वरूपेण जानात्येव न च हर्षविषादाभ्या तन्मयो भूत्वा वेदयतीति।।३३६।।

और जव वह ही आत्मा शक्तिरूप से अनत भेदवाले मिथ्यात्व-रागादिरूप कर्मफलों को सर्वप्रकार से छोड देता है तव शुन्द्रवुद्ध-एक-स्वभावमय-आत्मतत्त्व का सम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुभवस्वरूप (स्वानुभव स्वरूप) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का सद्भाव होने से (स्वानुभव का लाभ होने से) मिथ्यात्व-रागादि से भिन्न आत्मा का श्रन्द्रान करता है, जानता हे, और अनुभव करता है, इसलिये सम्यग्दृष्टि है, ज्ञानी है और सयत है (इसलिये चतुर्थादि गुणस्थान में चारित्र है) और मुनि होता है। ऐसा होकर विशेप प्रकार से द्रव्यभावगत मूलोत्तर प्रकृति का नाश होने से मुक्त होता है।

इस प्रकार यद्यपि आत्मा शुद्धनिश्चयनय से कर्ता नहीं है तथापि अनादिकर्मवध के वश होने से (होकर) मिथ्यात्व-रागादि-अज्ञानभाव से कर्म वाधता है। इस तरह अज्ञान का सामर्थ्य दिखाने के लिये द्वितीय स्थल में चार गाथायें पूर्ण हुई।।३३४, २३५।।

अव, शुद्धनिश्चयनय से कर्मफलभोक्तृत्व जीव का स्वभाव नहीं है, क्योंकि कर्मफलभोक्तृत्व अज्ञानस्वभाव है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - (**अण्णाणी**) अज्ञानी (**कम्मफल**) कर्म के फल को (**पयडिसहावट्ठिदो**) प्रकृति के स्वभाव में ठहरा हुआ (**वेदेदि**) भोगता है (**पुण**) और (**णाणी**) सम्यग्ज्ञानी (**उदिद**) उदय में आये हुये (**कम्मफल**) कर्म के फल को (**जाणदि**) जानता है, (**दु ण वेदेदि**) लेकिन भोगता नहीं है।

टीकार्थ - विशुन्द्र ज्ञान-दर्शनस्वभाव आत्मतत्त्व का सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानवाले अभेदरत्नत्रयात्मक (स्वानुभव वाले) भेदज्ञान के अभाव से अज्ञानी (मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र गुणस्थानवर्ती) जीव उदयागत कर्मप्रकृति स्वभाववाले सुख-दु ख में ठहरकर हर्ष-विषादों के साथ तन्मय होकर कर्मफल का अनुभव करता (भोगता) है, और सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) जीव तन्मय होकर भी पूर्वोक्त (स्वानुभव वाले) भेदज्ञान के सद्भाव से वीतराग सहज परमानदरूप सुखरस के आस्वाद से, परम समरसीभाव से परिणत होकर उदय में आये हुये कर्मफल को वस्तुस्वरूप से जानता ही है, लेकिन हर्ष-विषादमयता से तन्मय होकर नहीं भोगता (अनुभवता) है।।३३६।।

अथाज्ञानी जीव सापराध सशकित सन् कर्मफल तन्मयो भूत्वा वेदयति, यस्तु 'निरपराधो ज्ञानी स कर्मोदये सति किं करोति ? इति कथयति -

जो पुण णिरावराधो चेदा णिस्संकिदो दु सो होदि। (३०५)
आराहणाइ णिच्च वट्टदि अहमिदि वियाणंतो।।३३७।।

जो पुण णिरावराधो चेदा णिस्सकिदो दु सो होदि यस्तु चेतयिता ज्ञानी जीव स निरपराध सन् परमात्माराधनविपये नि शको भवति। नि शको भूत्वा किं करोति ? **आराहणाइ णिच्च वट्टदि अहमिदि वियाणतो** निर्दोषपरमात्माराधनारूपया निश्चयाराधनया नित्य सर्वकाल वर्तते। किं कुर्वन् ? अनतज्ञानादिरूपोऽहमिति निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा शुद्धात्मान सम्यग्जानन् परमसमरसीभावेन चानुभवति इति।।३३७।।

अज्ञानी कर्मणा नियमेन वेदको भवतीति दर्शयति -

ण मुयदि पयडिमभव्वो सुट्ठु वि अज्झाइदूण सत्थाणि। (३१७)
गुडदुद्धपि पिबता ण पण्णया णिव्विसा होंति।।३३८।।

अब, अज्ञानी (मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र गुणस्थानवर्ती) जीव सापराधी, सशकित होकर कर्मफल को तन्मय होकर भोगता है, लेकिन जो निरपराधी ज्ञानी (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) है वह ज्ञानी जीव कर्मों के उदय के समय में क्या करता है ? इसका उत्तर कहते हैं -

गाथार्थ - **(जो पुण)** जो **(चेदा)** आत्मा **(णिरावराधो)** निरपराध है **(सो दु)** वह **(णिस्सकिदो)** शकारहित-नि शक **(होदि)** है **(अह इदि)** "मैं शुद्धात्मा हूँ" ऐसा **(वियाणतो)** जानता हुआ **(आराहणाइ)** आराधना से **(णिच्च)** नित्य **(वट्टदि)** वर्तता है।

टीकार्थ - जो चैतन्यमय ज्ञानी जीव है वह निरपराध होकर (निरपराधी होने से) परमात्मा की आराधना के विषय में नि शक है।

शका - वह ज्ञानी नि शक होकर क्या करता है ?

समाधान - "मैं अनतज्ञानादिरूप हूँ" इस तरह निर्विकल्पसमाधि में (स्वानुभव में) स्थित होकर शुद्धात्मा को सम्यक्रूप से जानता हुआ परमसमरसीभाव से अनुभव करता है। इस प्रकार वह निर्दोष परमात्मा की आराधना से (स्वानुभव से-निश्चय आराधना से-अपने स्वभाव की आराधना से) नित्य वर्तता है।।३३७।।

अज्ञानी जीव नियम से कर्मों का वेदक (भोक्ता) ही है, यह दिखाते हैं -

गाथार्थ - **(अभव्वो)** अभव्य **(सत्थाणि)** शास्त्रों को **(सुट्ठु)** अच्छीतरह **(अज्झाइदूण वि)** पढकर भी **(पयाडें)** प्रकृति के स्वभाव को **(ण मुयदि)** नहीं छोडता है। जैसे **(पण्णया)** सर्प **(गुडदुद्ध)** गुडसहित दूध को **(पिबता पि)** पीते हुए भी **(णिव्विसा)** विष रहित **(ण होंति)** नहीं होते।

यथा पन्नगा सर्पा शर्करासहित दुग्ध पिबतोऽपि निर्विपा न भवति तथाऽज्ञानी जीवो मिथ्यात्वरागादिरूप कर्मप्रकृत्युदयस्वभाव न मुचति। कि कृत्वापि ? अधीत्यापि। कानि ? शास्त्राणि। कथ ? सुट्ठुवि सुष्ट्वपि। कस्मान्न मुचति ? वीतरागस्वसवेदनज्ञानाभावात् कर्मोदये सति मिथ्यात्वरागादीना तन्मयो भवति यत कारणात् इति।।३३८।।

ज्ञानी कर्मणा नियमेन निश्चयेन वेदको न भवतीति दर्शयति -

णिव्वेदसमावण्णो णाणी कम्मप्फल वियाणादि। (३१८)
महुर कडुय बहुविहमवेदगो तेण पण्णत्तो[१]।।३३९।।

णिव्वेदसमावण्णो णाणी कम्मफल वियाणादि परमतत्त्वज्ञानी जीव ससारशरीरभोगरूपत्रिविधवैराग्यसपन्नो भूत्वा शुभाशुभकर्मफलमुदयागत वस्तुस्वरूपेण विशेषेण निर्विकारस्वशुद्धात्मनो भिन्नत्वेन जानाति। कथभूत जानाति? **महुर कडुय बहुविहमवेदगो तेण पण्णत्तो** अशुभकर्मफल निवकाजीरविषहालाहलरूपेण कटुक जानाति। शुभकर्मफल बहुविध गुडखाडशर्करामृतरूपेण मधुर जानाति। न च शुद्धात्मोत्थसहजपरमानन्दरूपमतींद्रियसुख विहाय पचेन्द्रियसुखे परिणमति तेन कारणेन ज्ञानी वेदको भोक्ता न भवतीति नियम। एव ज्ञानी शुद्धनिश्चयेन शुभाशुभकर्म फलभोक्ता न भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन तृतीयस्थले सूत्रचतुष्टय गतम्।।३३९।।

टीकार्थ - जैसे साप शक्कर सहित दूध पीते हुये भी विष रहित नहीं होते हैं, वैसे ही अज्ञानी जीव शास्त्रों को अच्छी तरह पढकर भी मिथ्यात्व-रागादिरूप कर्मप्रकृति के उदय स्वभाव को नहीं छोडता है।

शका - अज्ञानी (मिथ्यादृष्टि) जीव मिथ्यात्व-रागादि भाव को क्यों नहीं छोडता है ?

समाधान - वीतराग स्वसवेदनज्ञान (स्वानुभव के) अभाव से कर्मोदय के समय मिथ्यात्व-रागादि भावों के साथ तन्मय होता है, इसलिये अज्ञानी जीव मिथ्यात्व-रागादि भावों को नहीं छोडता है।।३३८।।

सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) जीव कर्मों का नियम से शुद्धनिश्चयनय से वेदक (भोक्ता) नहीं है, यह दिखाते हैं -

गाथार्थ - **(णाणी)** ज्ञानी **(णिव्वेदसमावण्णो)** वैराग्य को प्राप्त हुआ **(महुर कडुय बहुविह कम्मप्फल)** मधुर तथा कडुवा इत्यादि बहुविध कर्मफल को **(वियाणादि)** जानता ही है **(तेण अवेदगो)** इसलिये अवेदक है **(पण्णत्तो)** ऐसा जिनेन्द्रदेव ने बताया है।

टीकार्थ - **परमतत्त्वज्ञानी** स्वानुभूतिवाला (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) जीव ससार-शरीर-भोगरूप त्रिविधवैराग्य से सपन्न होकर वस्तुस्वरूप वाले भेदविज्ञान से उदयागत शुभाशुभकर्मफल को निर्विकार स्वशुद्धात्मा से भिन्नपना से जानता है।

शका - किस प्रकार के कर्मफल को जानता है ?

समाधान - अशुभकर्मफल को निब-काजीर-विष-हालाहल रूप से कडुवा जानता है। बहुविध शुभकर्मफल को गुड-खाड-शर्करा-अमृतरूप से मधुर जानता है।

---

[१] पाठान्तर - तेण सो होदि

अथ निरुपरागशुद्धात्मानुभूतिलक्षणभेदज्ञानी कर्म न करोति न च वेदयति इति प्रकाशयति -

ण वि कुव्वदि ण वि वेददि णाणी कम्माइ बहुप्पयाराइ। (३१९)
जाणदि पुण कम्मफल बध पुण्ण च पावं च ।।३४०।।

ण वि कुव्वदि ण वि वेददि णाणी कम्माइ बहुप्पयाराइ त्रिगुप्तिगुप्तत्वबलेन ख्यातिपूजालाभदृष्ट-श्रुतानुभूतभोगाकाक्षारूपनिदानबधादिसमस्तपरद्रव्यालबनशून्येनानतज्ञानदर्शनसुखवीर्यस्वरूपेण सालबने भरितावस्थे निर्विकल्पसमाधौ स्थितो ज्ञानी कर्माणि बहुप्रकाराणि ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नानि निश्चयनयेन न करोति न च तन्मयो भूत्वा वेदयत्यनुभवति। तर्हि कि करोति ? **जाणदि पुण कम्मफल बध पुण्ण च पाव च** परमात्मभावनोत्थसुखे तृप्तो भूत्वा वस्तुस्वरूपेण जानात्येव। कि जानाति ? सुखदु खस्वरूपकर्मफल प्रकृतिबधादि भेदभिन्न पुन कर्मबध, सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्ररूप पुण्य, अतोऽन्यदसद्वेद्यादिरूप पाप चेति।। ३४०।।

और शुद्धात्मोत्थ सहज परमानदवाले अतींद्रिय आनद को छोडकर पचेंद्रियसुख में परिणमन नहीं करता है, इस कारण से सम्यग्ज्ञानी - चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव कर्मफल का भोक्ता नहीं है, ऐसा नियम है।

इस प्रकार शुद्धनिश्चयनय से सम्यग्ज्ञानी शुभाशुभ कर्म के फल का भोक्ता नहीं है, इस कथन की मुख्यता से तृतीयस्थल में चार गाथायें पूर्ण हुई।। ३३९।।

अब, निरुपराग शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाला **भेदज्ञानी** (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) जीव कर्म को नहीं करता है और कर्म को नहीं भोगता है, ऐसा बताते हैं -

गाथार्थ - **(णाणी)** सम्यग्ज्ञानी **(बहुप्पयाराइ)** बहुत प्रकार के **(कम्माइ)** कर्मो को **(ण वि कुव्वदि)** न तो कर्ता है **(ण वि वेददि)** और न भोगता है **(पुण)** परन्तु **(बध)** कर्म के बध को **(च)** और **(कम्मफल)** कर्म के फल को **(पुण्ण च पाव)** पुण्य और पापों को **(जाणदि)** जानता ही है।

टीकार्थ - **सम्यग्ज्ञानी** (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) जीव त्रिगुप्तिगुप्तत्व के वल से (स्वानुभव के बल से) ख्याति-पूजा-लाभ-दृष्ट-श्रुत-अनुभूत भोगाकाक्षारूप निदानबधादि सभी परद्रव्य के आलबन से शून्य अर्थात् अनतज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यस्वभाव के आलबन से भरित अवस्थावाले निर्विकल्प समाधि में (स्वानुभव में) स्थित है। वह ज्ञानी नाना प्रकार के ज्ञानावरणादि मूलोत्तर प्रकृति भेद भिन्नवाले कर्मबधों को निश्चयनय से नहीं करता है और तन्मय होकर नहीं भोगता है।

शका - तो सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) जीव क्या करता है ?

समाधान - सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) जीव परमात्मभावना से (स्वानुभव से) उत्पन्न हुये सुख से तृप्त होकर वस्तुस्वरूप से जानता ही है।

शका - क्या जानता है ?

समाधान - सुखदु खस्वरूप कर्म के फल को, प्रकृतिबधादि के भेद से अनेक प्रकार होनेवाले कर्मो के बध को, तथा सातावेदनीय, शुभआयु, शुभनाम, शुभगोत्ररूप पुण्य को व इससे अन्य विपरीत असातावेदनीय आदिरूप पाप को भी जानता है।। ३४०।।

अथ तमेव कर्तृत्वभोक्तृत्वाभाव विशेषेण समर्थयति -

दिट्ठी सयपि[१] णाण अकारय तह अवेदय चेव। (३२०)
जाणदि य बधमोक्ख कम्मुदय णिज्जर चेव।।३४१।।

दिट्ठी सयपि णाण अकारय तह अवेदय चेव यथा दृष्टि कर्त्री दृश्यमग्निरूप वस्तुसधुक्षण पुरुषवन्न करोति तथैव च तप्ताय पिडवदनुभवरूपेण न वेदयति। तथा शुद्धज्ञानमप्यभेदेन शुद्धज्ञानपरिणतजीवो वा स्वय शुद्धोपादानरूपेण न करोति न च वेदयति। अथवा पाठातर **दिट्ठी खयपि णाण** तस्य व्याख्यान न केवल दृष्टि क्षायिकज्ञानमपि निश्चयेन कर्मणामकारक तथैवावेदकमपि। तथाभूत सन् कि करोति ? **जाणदि य बधमोक्ख** जानाति च। कौ ? बधमोक्षौ। न केवल बधमोक्षौ **कम्मुदय णिज्जरं चेव** शुभाशुभरूप कर्मोदय सविपाकाविपाकरूपेण सकामाकामरूपेण वा द्विधा निर्जरा चैव जानाति इति।

अब, उसी कर्तृत्व के अभाव का और भोक्तृत्व के अभाव का विशेषरूप से समर्थन करते हैं -

गाथार्थ - (दिट्ठी) जैसे नेत्र (दृश्यपदार्थ को देखता है लेकिन पदार्थ का कर्ता भोक्ता नहीं है), (तहएव) उसी प्रकार (णाण सयपि) ज्ञान स्वय भी (अकारय) अकारक (अवेदय च) तथा अवेदक है (य) और (बधमोक्ख) बधमोक्ष (कम्मुदय) कर्मोदय (णिज्जर च) तथा निर्जरा को (जाणदि एव) जानता ही है।

टीकार्थ - जैसे नेत्र अग्निरूप दृश्य वस्तु को देखता है लेकिन प्रज्वलित करनेवाले आदमी के समान वह उस अग्नि को जलाने का कर्ता नहीं है, तथा जैसे तप्तलोहपिड के समान वह उस अग्नि को अनुभवरूप से वेदता नहीं (भोक्ता नहीं) है। वैसे ही शुद्धज्ञान भी अथवा अभेद से शुद्धज्ञानपरिणत हुआ जीव स्वय शुद्धउपादानरूप से न कर्ता है, न भोक्ता है। अथवा पाठातर से-केवल दृष्टि ही नहीं किन्तु क्षायिकज्ञान भी निश्चय से कर्म का अकारक है तथा अभोक्ता भी है।

शका - ऐसा होता हुआ जीव क्या करता है ?

समाधान - बधमोक्ष को जानता है। केवल बधमोक्ष को जानता है ऐसा नहीं तो, शुभाशुभरूप कर्मोदय को तथा सविपाक-अविपाक रूप से अथवा सकाम-अकामरूप से दोनों प्रकार की निर्जरा को भी जानता है।

इस तरह सर्वविशुद्ध-पारिणामिक-परमभावग्राहक शुद्ध उपादानभूत शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से जीव कर्तृत्व से रहित, भोक्तृत्व से रहित, बधमोक्षादि कारण-और-परिणाम से रहित है। ऐसा सूचित किया है।

इस प्रकार समुदाय पातनिका में कहा गया है। पश्चात् चार गाथाओं के द्वारा जीव के अकर्तृत्व गुण के व्याख्यान की मुख्यता से सामान्य कथन किया है। फिर चार गाथाओं से शुद्ध को भी जो प्रकृतियों से बध होता है वह अज्ञान का माहात्म्य है, इस तरह अज्ञान की सामर्थ्य का कथनरूप से विशेष विवरण किया है। फिर चार गाथाओं से जीव के अभोक्तृत्व गुण के व्याख्यान की मुख्यता से कथन किया है। उसके बाद शुद्धनिश्चय से कर्तृत्व, बध, मोक्षादिक के कारण व परिणाम वर्जनरूप जो व्याख्यान १२ गाथाओं द्वारा किया है उसके ही उपसहार रूप से दो गाथायें समाप्त हो गई।।१३४।।

---

१ पाठान्तर - दिट्ठी जहेव णाण, दिट्ठी खयंपि णाणं ।

एव सर्वविशुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धोपादानभूतेन शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन कर्तृत्वभोक्तृत्वबधमोक्षादि-कारणपरिणामशून्यो जीव इति सूचितम्। समुदाय पातनिकाया, पश्चाद्गाथाचतुष्टयेन जीवस्याकर्तृत्वगुणव्याख्यानमुख्यत्वेन सामान्यविवरण कृत। पुनरपि गाथाचतुष्टयेन शुद्धस्यापि यत्प्रकृतिभिर्वन्धो भवति तदज्ञानस्य महात्म्यमित्यज्ञान-सामर्थ्यकथनरूपेण विशेषविवरण कृतम्। पुनश्च गाथाचतुष्टयेन जीवस्याभोक्तृत्वगुणव्याख्यान मुख्यत्वेन व्याख्यान कृतम्। तदनतर शुद्धनिश्चयेन तस्यैव कर्तृत्वबधमोक्षादिककारणपरिणामवर्जनरूपस्य द्वादशगाथाव्याख्यानस्योपसहाररूपेण गाथाद्वय गतम्।। ३४१ ।।

इति समयसारव्याख्याया शुद्धात्मानुभूतिलक्षणााया तात्पर्यवृत्तौ मोक्षाधिकारसबधिनी चतुर्दशगाथाभिश्चतुर्भिरत-राधिकारै चूलिका समाप्ता। अथवा द्वितीयव्याख्यानेनात्र मोक्षाधिकार समाप्त ।

किं च विशेप-औपशामिकादिपचभावाना मध्ये केन भावेन मोक्षो भवतीति विचार्यते। तत्रौपशमिक-क्षायोपशमिकक्षायिकोदयिकभावचतुष्टय पर्यायरूप भवति शुद्धपारिणामिकस्तु द्रव्यरूप इति। तच्च परस्परसापेक्ष द्रव्यपर्यायद्वयमात्मपदार्थो भण्यते। तत्र तावज्जीवत्वभव्यत्वाभव्यत्वत्रिविधपारिणामिकभावमध्ये शुद्धजीवत्व शक्तिलक्षण यत्पारिणामिकत्व तच्छुद्धद्रव्यार्थिकनयाश्रितत्वान्निरावरण शुद्धपारिणामिकभावसज्ञ ज्ञातव्य तत्तु बधमोक्षपर्यायपरिणति रहितम्। यत्पुनर्दशप्राणरूप जीवत्व भव्याभव्यत्वद्वय च तत्पर्यायार्थिकनयाश्रितत्वादशुद्धपारिणामिकभावसज्ञमिति।

इस प्रकार समयसार की व्याख्या करनेवाली, शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाली तात्पर्यवृत्ति में मोक्षाधिकार सवधी १४ गाथाओं से, चार अतराधिकारों से चूलिका समाप्त हुई। अथवा दूसरी पद्धति से यहाँ मोक्षाधिकार समाप्त हुआ।

यहाँ कुछ विशेप विचार किया जाता है -

शका - औपशामिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, औदयिक और पारिणामिक इन पाच भावों में से किस भाव से मोक्ष होता है ? यह विचार करते हैं -

समाधान - यहाँ औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षयिक ओर औदयिक ये चार भाव पर्यायरूप हैं, लेकिन शुद्धपारिणामिकभाव द्रव्यरूप है। वह, परस्पर सापेक्ष द्रव्यपर्याय द्वयरूप आत्मा पदार्थ है। वहाँ जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व इन तीन प्रकार के पारिणामिकभावों में **शुद्धजीवत्व शक्तिलक्षण** जो पारिणामिकभाव है वह शुद्धद्रव्यार्थिकनय के आश्रित होने से **निरावरण** है, उसकी **"शुद्ध पारिणामिकभाव"** यह सज्ञा है ऐसा जानना चाहिये, वह शुद्धपारिणामिकभाव वध-मोक्ष पर्यायपरिणति से रहित है। जो दसप्राणरूप जीवत्व और भव्यत्वअभव्यत्वद्वय है, ये पर्यायार्थिकनय के आश्रित होने से **'अशुद्ध पारिणामिकभाव'** नाम वाले हैं।

शका - वे (जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व) अशुद्ध केसे हैं ?

समाधान - ससारी जीवों में शुद्धनय से दशप्राणरूप जीवत्व और भव्यत्वअभव्यत्वद्वय इनका अभाव होने से जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व ये अशुद्ध (अशुद्धनय का विषय) हैं, लेकिन सिद्धों में तो सर्वथा ही याने द्रव्यार्थिकनय से (शुद्धनय से) और पर्यायार्थिकनय से (व्यवहारनय से) दशप्राणरूप जीवत्व और भव्यत्वअभव्यत्वद्वय इनका अभाव होने से जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व ये अशुद्ध (अशुद्धनय का विषय) हैं।

कथमशुद्धमिति चेत्? संसारिणा शुद्धनयेन सिद्धाना तु सर्वथैव दशप्राणरूपजीवत्वभव्याभव्यत्वद्वयाभावादिति। तस्य त्रयस्य मध्ये भव्यत्वलक्षणपारिणामिकस्य तु यथासंभव सम्यक्त्वादिजीवगुणघातक देशघातिसर्वघातिसंज्ञ मोहादिकर्मसामान्य पर्यायार्थिकनयेन प्रच्छादक भवति इति विज्ञेयम्। तत्र च यदा कालादिलब्धिवशेन भव्यत्व-शक्तेर्व्यक्तिर्भवति तदाय जीव सहजशुद्धपारिणामिकभाव लक्षणनिजपरमात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणपर्यायरूपेण परिणमति। तच्च परिणमनमागमभाषयौपशमिकक्षायोपशमिकक्षायिक भावत्रय भण्यते। अध्यात्मभाषया पुन शुद्धात्माभिमुखपरिणाम शुद्धोपयोग इत्यादि पर्यायसंज्ञा लभते। स च पर्याय शुद्धपारिणामिकभावलक्षण-शुद्धात्मद्रव्यात्कथचिद्भिन्न । कस्मात् ? भावनारूपत्वात्। शुद्धपारिणामिकस्तु भावनारूपो न भवति। यद्येकातेनाशुद्धपारिणामिकादभिन्नो भवति तदास्य भावनारूपस्य मोक्षकारणभूतस्य मोक्षप्रस्तावे विनाशे जाते सति शुद्धपारिणामिकभावस्यापि विनाश प्राप्नोति, न च तथा।

उन तीनों में, (याने जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व इन तीनों में) भव्यत्व लक्षणवाला पारिणामिक भाव का तो यथासभव पर्यायार्थिकनय से सम्यक्त्वादि जीव के गुणों का घात करनेवाला देशघाति व सर्वघाति संज्ञावाला मोहादि कर्मसामान्य प्रच्छादक (आवरण करने वाला) है, ऐसा जानना चाहिये, और वहाँ जब कालादि लब्धि के वश से भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति (प्रगट) होती है, तब यह जीव सहज शुद्ध पारिणामिकभावलक्षण निजपरमात्मद्रव्य के सम्यक-श्रद्धान ज्ञानाअनुचरणरूपपर्याय से परिणमता है।

आगमभाषा	अध्यात्मभाषा
उस परिणमन को आगमभाषा से (व्यवहारनय से) औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व इस प्रकार तीन भाव कहे जाते हैं।	उस परिणमन को अध्यात्मभाषा से (निश्चयनय से) शुद्धात्माभिमुख परिणाम (याने जो चेतनोपयोग परमशुद्ध पारिणामिकभाव की तरफ उपयोग लगाकर या परमशुद्ध पारिणामिकभाव को विषय बनाकर जो शुद्धात्मानुभव परिणाम प्रगट होता है) शुद्धोपयोग, निर्विकल्प स्वसवेदन, समाधि, निश्चयसम्यक्त्व, अभेदरत्नत्रय इत्यादि पर्यायवाची नामों से (संज्ञाओं से) कहा जाता है।

वह पर्याय शुद्धपारिणामिकभावलक्षण शुद्धात्मद्रव्य से कथचित् भिन्न है।

शका - वह शुद्धोपयोग (स्वानुभूति) पर्याय शुद्ध परम पारिणामिकभाव लक्षणवाले द्रव्य से कैसे भिन्न है?

समाधान - वह शुद्धोपयोग भावनारूप (स्वानुभूति वा समाधि अथवा निर्विकल्पस्वसवेदन) पर्याय होने से अनित्य है इसलिये शुद्ध परम पारिणामिकभाव लक्षणवाले द्रव्य से वह पर्याय कथचित् भिन्न है। शुद्धपारिणामिकभाव ध्रुव अथवा नित्य है। शुद्धपारिणामिकभाव भावनारूप (पर्यायरूप) नहीं होता है। यदि एकात से अशुद्धपारिणामिक से (पर्याय से) शुद्धपारिणामिकभाव (ध्रुव) अभिन्न है ऐसा माना जाय तो, मोक्षपर्याय प्रगट होते ही वह मोक्षकारणभूत भावना रूप (स्वानुभूति पर्याय) का नाश होता है और भव्यत्व-अशुद्धपारिणामिकभाव का भी नाश

तत स्थित-शुद्धपारिणामिकभावविषये या भावना तद्रूप यदौपशमिकादिभावत्रय तत्समस्तरागादिरहितत्वेन शुद्धोपादानकारणात्वान्मोक्षकारण भवति, न च शुद्धपारिणामिक। यस्तु शक्तिरूपो मोक्ष स शुद्धपारिणामिके पूर्वमेव तिष्ठति। अय तु व्यक्तिरूपमोक्षविचारो वर्तते। तथा चोक्त सिद्धाते-**'निष्क्रिय शुद्धपारिणामिक'**।

निष्क्रिय इति कोऽर्थ ? वधकारणभूता या क्रिया रागादिपरिणति, तद्रूपो न भवति। मोक्षकारणभूता च क्रिया शुद्धभावनापरिणतिस्तद्रूपश्च न भवति। ततो ज्ञायते **शुद्धपारिणामिकभावो ध्येयरूपो भवति ध्यानरूपो न भवति**। कस्मात् ? ध्यानस्य विनश्वरत्वात्। तथा योगींद्रदेवरप्युक्त -

ण वि उप्पजज्इ ण वि मरइ बधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थे जोइया जिणवरु एउँ भणेइ[1]।

होता है, उसी तरह शुद्धपारिणामिकभाव का भी नाश हो जायेगा, लेकिन शुद्धपारिणामिकभाव का नाश तो नहीं होता हे (क्योंकि शुद्धपारिणामिकभाव ध्रुव होने से उस शुद्धपारिणामिकभाव का नाश नहीं होता है)।

इसलिये यह सिद्ध (निश्चित) हुआ कि,

अध्यात्मभाषा	आगमभाषा
शुद्ध पारिणामिक भाव के विषय की जो भावना (भावभासना अथवा स्वानुभूति पर्याय) तद्रूप (स्वभावरूप परिणति) होती है, वह पर्याय समस्त रागादिरहितपने से - शुद्ध उपादानरूप कारण होने से मोक्ष का कारण है।	जो औपशमिक सम्यक्त्व या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व या क्षायिक सम्यक्त्वभाव है (सम्यक्त्व भाव) वह भाव मोक्ष का कारण है।

शुद्धपारिणामिकभाव अपरिणामी होने से मोक्ष का कारण नहीं है।

जो शक्तिरूप मोक्ष है वह शुद्धपारिणामिक में पहले ही स्थित है लेकिन यह व्यक्तिरूप (प्रगटरूप) मोक्ष का विचार चल रहा है। इसी तरह सिद्धात ग्रथ में कहा है कि, **'निष्क्रिय शुद्धपारिणामिक'** याने शुद्धपारिणामिक भाव निष्क्रिय है।

शका - यहाँ शुद्धपारिणामिक भाव को **निष्क्रिय** ऐसा किस अर्थ से कहा है ?

समाधान - वध के कारणभूत जो क्रिया-रागादिपरिणति है वह शुद्धपारिणामिकभाव के साथ तादात्म्यरूप नहीं होता है। और (उसी तरह) मोक्ष के कारणभूत जो क्रिया याने शुद्धभावनापरिणति (शुद्धात्मानुभूति पर्याय) है वह भी शुद्धपारिणामिकभाव के साथ तादात्म्यरूप नहीं होती है (क्योंकि शुद्धात्मानुभृति पर्याय अनित्य है)।

इसलिये यह जाना जाता है कि, शुद्धपारिणामिकभाव ध्येयरूप (ध्यान करने के लिये योग्य विपय) है, ध्यानरूप (ध्यानपर्याय अथवा स्वानुभूतिपर्याय) नहीं है।

---

१ [illegible] ६८।

किंच विवक्षितैकदेशशुद्धनयाश्रितेयं भावना निर्विकारस्वसंवेदनलक्षणभेदक्षायोपशमिकज्ञानत्वेन यद्यप्येकदेशव्यक्तिरूपा भवति तथापि **ध्याता पुरुषः यदेव सकलनिरावरणमखंडैकप्रत्यक्षप्रतिभासमयमविनश्वरं शुद्धपारिणामिकपरमभावलक्षणं निजपरमात्मद्रव्यं तदेवाहमिति भावयति** न च खंडज्ञानरूपमिति भावार्थः। इदं तु व्याख्यानं परस्परसापेक्षागमाध्यात्मनयद्वयाभिप्रायस्याविरोधेनैव कथितं सिध्यतीति ज्ञातव्यं विवेकिभिः।

शंका - शुद्धपारिणामिकभाव ध्यानरूप (स्वानुभूतिपर्याय रूप) क्यों नहीं होता है ?

समाधान - ध्यानपर्याय (स्वानुभूतिपर्याय) विनाश होनेवाली होने से, शुद्धपारिणामिकभाव ध्यानरूप (स्वानुभूतिपर्यायरूप) नहीं होता है। उसी तरह परमात्मप्रकाश में गाथा ६८ में श्री योगींदुदेव कहते हैं कि,

"ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ। जिउ परमत्थे जोइया, जिणवर एउँ भणेइ"।।६८।।

अर्थात् - हे योगी ! परमार्थ से (शुद्धनिश्चयनय से) यह जीव न उपजता (जन्मता) है, न मरता है, न बंधता है, न मोक्ष प्राप्त करता है, ऐसा श्री जिनवर भगवान कहते हैं।

और विशेष कहते हैं कि, विवक्षित एकदेशशुद्धनय के आश्रित यह भावना (भावभासना अथवा स्वानुभूति) निर्विकार स्वसंवेदनलक्षण क्षायोपशमिकज्ञान रूप होने से यद्यपि एकदेश व्यक्तिरूप (प्रकटरूप) है तो भी ध्याता पुरुष ऐसा भाता है -

"जो सकलनिरावरण अखंड-एक-प्रत्यक्षप्रतिभासमय अविनश्वरशुद्धपारिणामिक परमभाव लक्षणवाला निजपरमात्मद्रव्य है वही मैं हूँ," ऐसी भावभासना (अनुभूति) करता है, किन्तु खंडज्ञानरूप मैं नहीं हूँ। ऐसा भावार्थ है।

यह सब कथन आगम का अभिप्राय और अध्यात्म का अभिप्राय तथा दोनों नयों में परस्पर सापेक्षता है, विरोध ही नहीं है, यह सिद्ध करने के लिये किया है, ऐसा विवेकी लोगों को जानना चाहिये।

भावार्थ - इस विवेचन से श्री जयसेनाचार्य जी ने यह दिखाया है कि, शुद्धोपयोग से (स्वानुभूति से अथवा निर्विकल्पसमाधि से) ही चतुर्थादि गुणस्थान प्रगट होते हैं। उस शुद्धोपयोग को निश्चयसम्यक्त्व, अथवा अभेदरत्नत्रय आदि कहा जाता है।

यहाँ ध्यान, ध्याता और ध्येय का सूक्ष्म विवेचन किया है। पर्याय एक समयवर्ती होती है। ध्यानपर्याय भी एक समयवर्ती है। ध्यानपर्याय भी अनित्य है। ध्यान का विषय (स्वानुभूति में जो विषय है वह विषय) परमशुद्ध-पारिणामिकभाव निजात्मद्रव्य है। परमशुद्धपारिणामिकभाव नित्य है। परमशुद्धपारिणामिकभाव अपरिणामी है। भेदरत्नत्रय अथवा खंडज्ञान स्वानुभूति का विषय नहीं है।

卐 卐 卐 卐 卐

चार्ट नं. १०

ज्ञान के प्रामाण्य की उत्पत्ति

ज्ञानपर्याय-सम्यग्ज्ञान | विषय

(यह मैं एकत्वविभक्तनिजध्रुव - चिदानदात्मा हूँ।) (यह मेरा ज्ञान सच्चा ही है।)

'घ' अविभागप्रतिच्छेदों का समूह

क्षणिकउपादानज्ञानपर्याय - सामान्यसामग्री

'ख' अविभागप्रतिच्छेदों का समूह

क्षणिकउपादानज्ञानपर्याय - विशेषसामग्री प्रामाण्य

एकत्वविभक्त निजध्रुव चिदानदात्मा
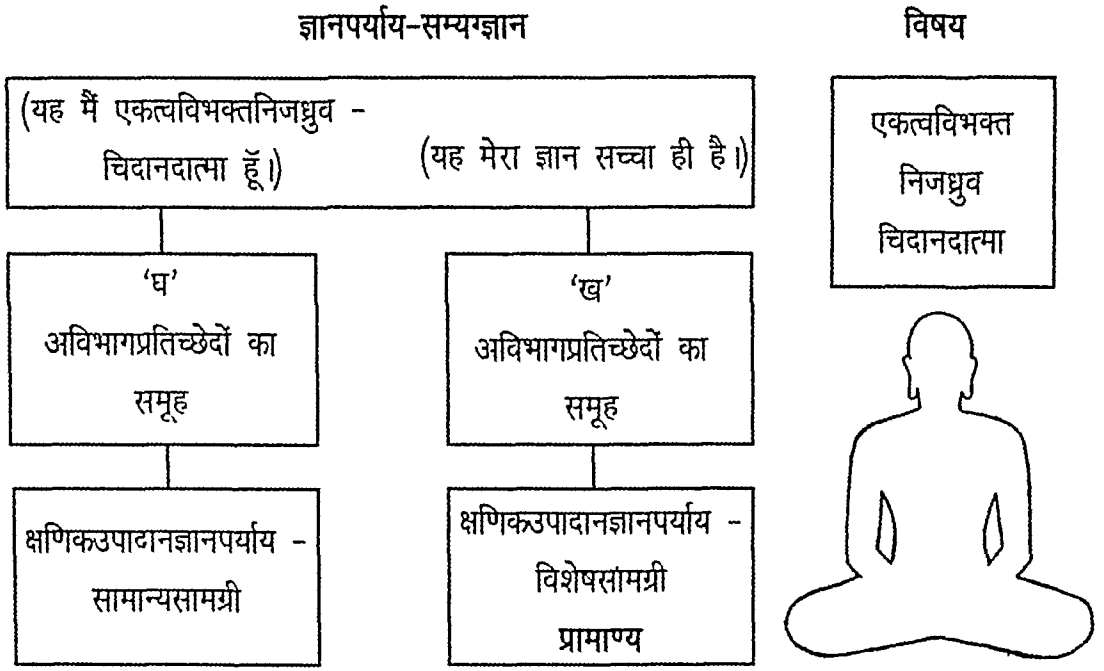
यहाँ 'घ' से 'ख' अन्य है, इसलिये प्रामाण्य की उत्पत्ति परत है।
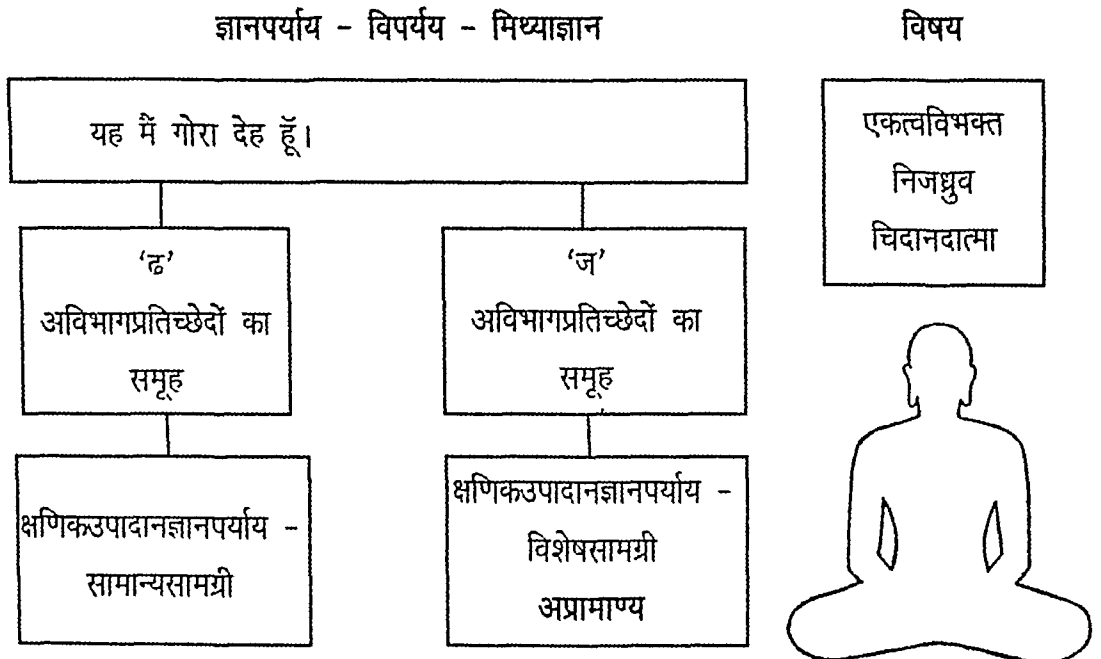
यहाँ 'ढ' से 'ज' अन्य है, इसलिये अप्रामाण्य की उत्पत्ति परत है।

चार्ट न. ५

ज्ञान के प्रामाण्य की ज्ञप्ति

अभ्यस्त विषय में स्वत (अर्थात् उस ही क्षण में) होती है।

अनभ्यस्त विषय में परत (अर्थात् उस क्षण से अन्य क्षण में) होती है।
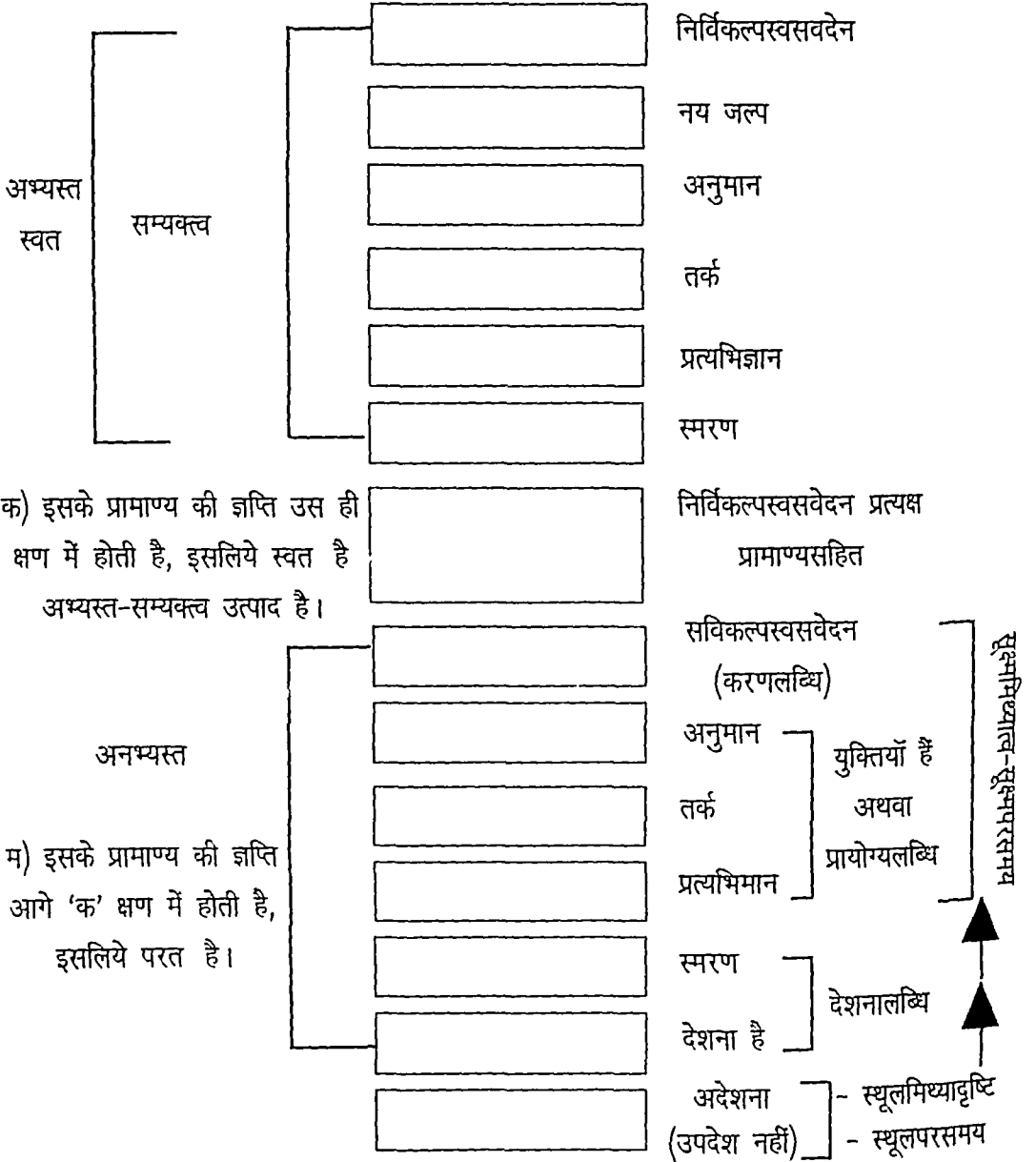
सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार

(समयसार चूलिका)

(२)

अत पर जीवादिनवाधिकारेषु जीवस्य कर्तृत्वभोक्तृत्वादिस्वरूप यथास्थान निश्चयव्यवहारनयविभागेन सामान्येन यत्पूर्वम् सूचित, तस्यैव विशेषविवरणार्थं **'लोगस्स कुणदि विण्हू'** इत्यादि गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण षडधिकनवतिगाथापर्यंत चूलिकाव्याख्यान करोति। चूलिकाशब्दस्यार्थ कथ्यते, तथाहि - विशेषव्याख्यान, उक्तानुक्तव्याख्यान, उक्तानुक्तसकीर्णव्याख्यान चेति त्रिधा चूलिकाशब्दस्यार्थो ज्ञातव्य । तत्र षण्णवतिगाथासु मध्ये विष्णोर्देवादिपर्यायकर्तृत्वनिराकरणमुख्यत्वेन **'लोगस्स कुणदि विण्हू'** इत्यादि गाथासप्तक च भवति। तदनतर अन्य कर्ता, भुक्ते चान्य इत्येकातनिषेधरूपेण बौद्धमतानुसारिशिष्यसबोधनार्थम् **'केहि दु पज्जयेहि'** इत्यादि सूत्रचतुष्टय। अत पर साख्यमतानुसारिशिष्य प्रति एकातेन जीवस्य भावमिथ्यात्वाकर्तृत्वनिराकरणार्थम् **'मिच्छत्ता जदि पयडी'** इत्यादि सूत्रपचकम्। तत पर ज्ञानाज्ञानसुखदु खादिभावान् कर्मैवैकातेन करोति न चात्मेति पुनरपि साख्यमतनिराकरणार्थम् **'कम्मेहि अण्णाणी दु'** इत्यादि त्रयोदशसूत्राणि।

इसके आगे जीवादि नौ अधिकारों में जीव के कर्तापन, भोक्तापन आदि के स्वरूप का यथास्थान निश्चयनय और व्यवहारनय के विभाग द्वारा सामान्य से जो पूर्व में कहा गया है, उसका ही विशेष वर्णन करने के लिये **'लोगस्स कुणदि विण्हू'** इत्यादि गाथा से शुरु करके पाठक्रम से ९६ गाथाओं तक चूलिका का व्याख्यान करते हैं। चूलिका शब्द का अर्थ कहते हैं (१) विशेष व्याख्यान, (२) कहे हुये और न कहे हुये का व्याख्यान तथा (३) कहा हुआ और न कहा हुआ से मिश्रित व्याख्यान, इस तरह तीन प्रकार से व्याख्यान करना यह चूलिका शब्द का अर्थ जानना चाहिये।

वहॉ ९६ गाथाओं में पहले सात गाथाओं में **देवादि पर्यायों का विष्णु कर्ता नहीं है;** इसकी मुख्यता से **'लोगस्स कुणदि विण्हू'** इत्यादि ७ गाथायें हैं। **इसके बाद अन्यकर्ता है;** और अन्य भोक्ता है इस प्रकार के एकात का निषेध करते हुये बौद्धमत के अनुसार मान्यतावाले शिष्यों को सबोधन करने के लिये **'केहि दु पज्जयेहि'** इत्यादि ४ गाथायें हैं। इसके आगे एकात से जीव के **भावमिथ्यात्व का अकर्तृत्व** माननेवाले साख्यमतानुसारी शिष्य के मत का निराकरण करने के लिये **'मिच्छत्ता जदि पयडी'** इत्यादि ५ गाथायें हैं। इसके आगे **ज्ञान-अज्ञान सुख-दु खादि भावों को एकात से कर्म ही करते** हैं और उनको आत्मा नहीं करता, ऐसी मान्यतावाले साख्यमतानुसारी शिष्य के मत का निराकरण करने के लिये **'कम्मेहि दु अण्णाणी'** इत्यादि १३ गाथायें हैं।

अथानतर कोऽपि प्राथमिकशिष्य शव्दादिपचेन्द्रियविपयाणा विनाश कर्तुं वाछति किनु मनसि स्थितस्य विपयानुरागस्य घात करोमीति विशेपविवेक न जानाति तस्य सवोधनार्थम् 'दसणणाणचारित्त' इत्यादि सूत्रसप्तकम्। तदनतर यथा सुवर्णकारादिशिल्पी कुडलादि कर्म हरतकुट्टकाद्युपकरणै करोति तत्फन मृल्यादिकं भुक्ते च तथापि तन्मयो न भवति। तथा जीवोऽपि द्रव्यकर्म करोति भुक्ते च तथापि तन्मयो न भवतीत्यादिप्रतिपादनरूपेण 'जह सिप्पियो दु' इत्यादि गाथासप्तकम्। तत पर यद्यपि श्वेतमृत्तिका व्यवहारेण कुड्यादिक श्वेत करोति तथापि निश्चयेन तन्मयो न भवति। तथा जीवोऽपि व्यवहारेण ज्ञेयभृत च (द्रव्यमृत च) द्रव्यमेव जानाति पश्यति परिहरति श्रद्धाति च तथापि निश्चयेन तन्मयो न भवति इति ब्रह्माद्वैतमतानुसारिशिष्य सवोधनार्थम् 'जह सेडिया' इत्यादि सूत्रदशकम्।

तत पर शुद्धात्मभावनारूपनिश्चयप्रतिक्रमण - निश्चयप्रत्याख्यान - निश्चयालोचना निश्चयचारित्रव्याख्यान-मुख्यत्वेन 'कम्म ज पुव्वकद' इत्यादि सूत्रचतुष्टयम्। तदनतर रागद्वेपोत्पत्ति विपयेऽज्ञानरूपस्वकीयवुद्धिरूपदोप एव कारण न चाचेतनशव्दादिविपया इति कथनार्थं 'णिदिद सथुद वयणाणि' इत्यादि गाथादशकम्। अत पर उदयागत कर्म वेदयमानो मदीयमिद मया कृत च मन्यते स्वस्थभावशृन्य सुखितो दु खितश्च भवति य स पुनरप्यष्टविध कर्म दु खवीज वध्नातीति प्रतिपादनमुख्यत्वेन 'वेदतो कम्मफल' इत्यादि गाथात्रयम्।

इसके वाद कोई प्राथमिक शिष्य शव्द आदि पचेंद्रियों के विपयों को नष्ट करना चाहता है लेकिन मन में स्थितरहने वाले विषयानुराग का घात करना चाहिये, ऐसे भेदज्ञान को नहीं जानता है, उसको सवोधन करने के लिये 'दसणणाणचरित्त' इत्यादि ७ गाथायें हैं। तदनतर जैसे स्वर्णकारादि शिल्पकार हथोडे आदि उपकरणों के द्वारा कुण्डल आदि वनाता है, उनसे जो फल मिलता है, उन मृल्य आदि को भोगता है किन्तु सुवर्णादि से तन्मय नहीं होता है, वैसे जीव भी द्रव्यकर्म करता है और उसको भोगता है तथापि उनसे तन्मय नहीं होता है, इत्यादि का प्रतिपादन करने वाली 'जह सिप्पियो दु' इत्यादि ७ गाथायें हैं। उसके आगे व्रह्माद्वैतमतानुसारी शिष्य को सवोधन करने के लिये 'जह सेडिया' इत्यादि १० गाथायें हैं। (उसमें कहते हैं कि, यद्यपि सफेद मिट्टी भीत आदि को सफेद करती है तथापि निश्चयनय से वह उससे तन्मय नहीं होती है, वैसे जाव भी व्यवहारनय से ज्ञेयमृत द्रव्य को जानता है, देखता है, दूर करता है, और श्रद्धा करता है तथापि निश्चयनय से उससे तन्मय नही होता है)।

इसके आगे शुद्धात्मभावनावाला निश्चयप्रतिक्रमण, निश्चयप्रत्याख्यान, निश्चयआलोचना और निश्चयचारित्र इनका कथन करने की मुख्यता से 'कम्म ज पुव्वकद' इत्यादि ४ गाथायें हैं। तदनतर रागद्वेष की उत्पत्ति के विषय में अज्ञानरूप अपना बुद्धिरूप दोष ही कारण है और अचेतन शव्दादिविषय रागद्वेष की उत्पत्ति के कारण नहीं हैं, इस कथन के लिये 'णिदिद सथुदि वयणाणि' इत्यादि १० गाथायें हैं। इसके आगे उदयागत कर्म को भोगनेवाला जो मानता है कि "यह मेरा है, यह मैंने किया है", और जो स्वस्थभाव से शून्य होकर सुखी और दु खी होता है वह फिर से दु ख के वीज वाले आठे प्रकार के कर्म वाधता है, यह कथन करने की मुख्यता से 'वेदतो कम्मफल' इत्यादि तीन गाथायें हैं।

तदनतर आचारसूत्रकृतादि द्रव्यश्रुतेन्द्रियविषयद्रव्यकर्म धर्माधर्माकाशकाला शुद्धनिश्चयेन रागादयोऽपि शुद्धजीवस्वरूप न भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन **'सत्थ णाण ण हवदि'** इत्यादि पचदश सूत्राणि। तत पर यस्य शुद्धनयस्याभिप्रायेणात्मा मूर्तिरहितस्तस्याभिप्रायेण कर्मनोकर्माहाररहित इति व्याख्यानरूपेण **'अत्ता जस्स अमुत्तो'** इत्यादि गाथात्रयम्। तदनतर देहाश्रितद्रव्यलिग निर्विकल्पसमाधिलक्षणभावलिगरहितयतीना मुक्तिकारण न भवति भावलिगसहिताना पुन सहकारिकारण भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन **'पाखडी लिगाणि य'** इत्यादि सूत्रसप्तकम्। पुनश्च समयप्राभृताध्ययनफलकथनरूपेण ग्रथसमाप्त्यर्थम् **'जो समयपाहुडमिण'** इत्यादि सूत्रमेक कथयतीति त्रयोदशभिरतराधिकारै समयसारचूलिकाधिकारे समुदायपातनिका।

इदानीं त्रयोदशाधिकाराणा यथाक्रमेण विशेषव्याख्यान क्रियते। तद्यथा - अथ एकातेनात्मान कर्तार ये मन्यते तेषामज्ञानिजनवन्मोक्षो नास्तीत्युपदिशति -

लोगस्स कुणदि विण्हू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते। (३२१) आ.ख्या.
समणाण पि य अप्पा जदि कुव्वदि छव्विहे काए।। ३४२।। ता.वृ.

इसके वाद आचाराग, सूत्रकृताग आदि द्रव्यश्रुत, इद्रियो के विषय, द्रव्यकर्म, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, कालद्रव्य और **रागादिविभाव ये सब भी शुद्धनिश्चयनय से शुद्धजीवस्वरूप नहीं हैं,** इस कथन की मुख्यता से **'सत्थ णाण ण हवदि'** इत्यादि १५ गाथायें हैं। इसके वाद जिस शुद्धनय के अभिप्राय से आत्मा अमूर्त्त हे उसी शुद्धनय के अभिप्राय से आत्मा कर्म-नोकर्मरहित है, इस कथन की मुख्यता से **'अत्ता जस्स अमुत्तो'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। उसके वाद निर्विकल्पसमाधि लक्षणवाले **भावलिग से रहित यतियों का देहाश्रित द्रव्यलिग मोक्ष का कारण नहीं** है और भावलिगसहित यतियों का द्रव्यलिग सहकारी कारण है, इस कथन की मुख्यता से **'पाखडी लिगाणि य'** इत्यादि ७ गाथायें हैं। इसके आगे इस समयप्राभृतग्रथ के अध्ययन का फल कहते हुए इस ग्रथ को समाप्त करने के लिये **'जो समयपाहुडमिण'** इत्यादि एक गाथा है। इस प्रकार १३ अतर अधिकारों से समयसार की चूलिका अधिकार की यह समुदायपातनिका है।

अव १३ अधिकारों का यथाक्रम से विशेष व्याख्यान किया जाता है। हॉ, **जो एकात से आत्मा को कर्ता मानते हैं उनको अज्ञानीजन की तरह मोक्ष नहीं है,** ऐसा उपदेश देते हैं

गाथार्थ - **(लोगस्स)** लौकिकजनों के मतानुसार **(विण्हू)** विष्णु **(सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते)** देव, नारक, तिर्यंच, मनुष्य प्राणियों को **(कुणदि)** करता है **(य)** और इसी तरह **(जदि)** यदि **(समणाण पि)** मुनियों के मत में भी **(अप्पा)** आत्मा **(छव्विहे काए)** छह काय के जीवों को **(कुव्वदि)** करता हे।

तो **(लोगसमणाणमेव)** लोक और यतियों के मत में **(सिद्धत पडि)** सिद्धात की दृष्टि से **(विसेसो)** भेद **(ण दिस्सदि)** नहीं दिखता है। **(लोगस्स)** लोक के मत में **(विण्हू)** विष्णु **(कुणदि)** करता है **(समणाण)** यतियों के मत में **(अप्पओ)** आत्मा **(कुणदि)** करता है।

(एव) इस तरह **(सदेवमणुआसुरे लोगे)** देव, मनुष्य और असुर लोग **(णिच्च कुव्वताणं)** नित्य करते-कर्ता हुए **(समणलोयाण दोण्हपि)** यति और लोग इन दोनों में से **(कोवि)** कोई भी **(मोक्खो)** मुक्त हुआ **(ण दीसदि)** नहीं दिखता है।

लोगसमणाणमेव सिद्धत पडि ण दिस्सदि विसेसो। (३२२)
लोगस्स कुणदि विण्हू समणाण अप्पओ कुणदि।।३४३।।
एव ण कोवि मोक्खो दीसदि दोण्ह पि समणलोयाण। (३२३)
णिच्च कुव्वताण सदेव मणुआसुरे लोगे।।३४४।।

लोगस्स कुणदि विण्हू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते लोकस्य मते विष्णु करोति। कान् ? सुरनारकतिर्यङ्मानुषान् सत्वान्। **समणाण पि य अप्पा जदि कुव्वदि छव्विहे काए** श्रमणाना मते पुनरात्मा करोति यदि चेत्। कान् ? षट्जीवनिकायानिति। **लोगसमणाणमेव सिद्धत पडि ण दिस्सदि विसेसो** एव पूर्वोक्तप्रकारेण सिद्धात प्रति, आगम प्रति न दृश्यते कोऽपि विशेष । कयो सवधी ? लोकश्रमणयो, कस्मात् ? इति चेत्, **लोगस्स कुणदि विण्हू समणाण (पि) अप्पओ कुणदि** लोकमते विष्णुनामा कोऽपि परकल्पितपुरुषविशेष करोति। श्रमणाना मते पुनरात्मा करोति, तत्र विष्णुसज्ञा श्रमणमते चात्मसज्ञा, नास्ति विप्रतिपत्तिर्न चार्थे। **एव ण कोवि मोक्खो दीसदि दोण्ह पि समणलोयाण** एव कर्तृत्वे सति को दोष ? मोक्ष कोऽपि न दृश्यते। कयो ? लोकश्रमणयो । किंविशिष्टयो ? **णिच्च कुव्वताण सदेव मणुयासुरे लोगे** नित्य सर्वकाल कर्मम् कुर्वन्तो । क्व ? लोके। कथभूते? देवमनुष्यासुरसहिते।

किच - रागद्वेषमोहरूपेण परिणमनमेव कर्तृत्वमुच्यते। तत्र रागद्वेषमोहपरिणमने सति शुद्धस्वभावात्मतत्त्व सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गाच्च्यवन भवति ततश्च मोक्षो न भवतीति भावार्थ । एव पूर्वपक्षरूपेण गाथात्रय गतम्।।३४२, ३४३, ३४४।।

टीकार्थ - लोकिक जनों के मत में देव, नारक, तिर्यंच और मनुष्य प्राणियों को विष्णु करता है और इसी तरह यदि श्रमणों के मत में भी आत्मा छहकाय के जीवों को करता है, तो लोगों के और श्रमणों के मत में सिद्धात की दृष्टि से भेद-अन्तर नहीं दीखता है, क्योंकि लोगों के मत में विष्णु नाम का कोई परिकल्पित पुरुष विशेष कर्ता है और श्रमणों के मत में आत्मा कर्ता है। वहाँ विष्णु सज्ञा है और श्रमणों के मत में आत्मा सज्ञा है। विष्णु और आत्मा सज्ञा में अर्थ से भेद नहीं, प्रतीति में भेद नहीं, नाम भेद है।

शका - **इस प्रकार कर्तृत्व मानने में क्या दोष है ?**

समाधान - इस जगत में नित्य कर्मकर्तृत्व माननेवाले देव, मनुष्य, असुर सहित श्रमण इनमें से कोई भी मुक्त हुआ दिखाई नहीं देता है।

इसका स्पष्टीकरण यह है कि, **राग-द्वेष-मोहमय परिणमन करना ही कर्तृत्व कहलाता है।**

वहाँ राग-द्वेष-मोहमय परिणमन करते समय शुद्धस्वभावात्मतत्त्व का सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप निश्चयरत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग से च्यवन (दूर होना) होता है। इसलिये मोक्ष नहीं होता है, यह भावार्थ है।

इस प्रकार पूर्वपक्ष का (पूर्वपक्ष और उसके सक्षेपरूप उत्तर का) कथन करने वाली तीन गाथायें पूर्ण हुई।।३४२, ३४३, ३४४।।

अथोत्तर निश्चयेनात्मन पुद्गलद्रव्येण सह कर्तृकर्मसबधो नास्ति कथ कर्ता भविष्यतीति कथयति-

ववहारभासिदेण दु परदव्वं मम भणति विदिदच्छा। (३२४)
जाणति णिच्छयेण दु ण य इह परमाणुमित्त मम किचि।।३४५।।
जह को वि णरो जपदि अम्हाण गामविसयणपुररट्ठ[1]। (३२५)
ण य होंति ताणि तस्स दु भणदि य मोहेण सो अप्पा।।३४६।।
एमेव मिच्छदिट्ठी णाणी णिस्ससय हवदि एसो। (३२६)
जो परदव्व मम इदि जाणतो अप्पय कुणदि।।३४७।।
तम्हा ण ममेत्ति णच्चा दोण्ह वि एदाण कत्तिववसाओ। (३२७)
परदव्वे जाणतो जाणिज्जो दिट्ठिरहिदाण।।३४८।।

अब पूर्वपक्ष के उत्तर में (विशेष) कथन करते हैं कि, **निश्चयनय से आत्मा का पुद्गलद्रव्य के साथ कर्ता-कर्म सबध नहीं है** तब आत्मा कैसे कर्ता होगा ?

गाथार्थ - (**विदिदच्छा**) ज्ञानी जन (**ववहारभासिदेण**) व्यवहारनय से (**परदव्व**) परद्रव्य (**मम**) मेरा है ऐसा (**भणति**) कहते हैं (**दु**) तो भी (**णिच्छयेण**) निश्चयनय से (**जाणति दु**) जानते हैं कि (**इह**) इस जगत में (**परमाणुमित्त मम किचि य**) परमाणुमात्र भी कोई मेरा (**ण**) नहीं है।

(**जह**) जैसे (**को वि णरो**) कोई मनुष्य (**जपदि दु**) कहता है कि यह (**अम्हाण**) हमारा (**गामविसयणयपुररट्ठ**) ग्राम, जनपद, नगर और राष्ट्र है (**दु**) कितु (**ताणि**) वे ग्रामादिक (**तस्स**) उसके (**ण य होंति**) नहीं हैं (**य**) और (**सो अप्पा**) वह आत्मा (**मोहेण भणदि**) मोह से ऐसा कहता है।

(**एमेव**) इसी प्रकार (**जो णाणी**) जो जीव (**परदव्व मम**) परद्रव्य मेरा है (**इदि जाणतो**) ऐसा अनुभवता हुआ (**अप्पय**) परद्रव्य को आत्मस्वरूप (**कुणदि**) करता है (**एसो**) वह जीव (**णिस्ससय**) नि सशय (**मिच्छदिट्ठी**) मिथ्यादृष्टि (**हवदि**) होता है।

(**तम्हा**) इस कारण से (**ण ममेत्ति**) ये परद्रव्य मेरे नहीं हैं यह (**णच्चा**) जानकर (**एदाण दोण्ह वि**) लोक और श्रमण इन दोनों के (**परदव्वे**) परद्रव्य में (**कत्तिववसाओ**) कर्तृत्व के व्यवसाय को (**जाणतो**) जानते हुये (**जाणिज्जो**) समझो कि यह व्यवसाय (**दिट्ठिरहिदाण**) सम्यग्दृष्टिरहितवालों का - मिथ्यादृष्टियों का है।

टीकार्थ - **ज्ञानी-तत्ववेदी** व्यवहारनय से कहते हैं कि, परद्रव्य मेरा है किन्तु निश्चयनय से जानते हैं कि, इस जगत का परमाणु मात्र भी परद्रव्य मेरा नहीं है। जैसे कोई पुरुष कहता है कि, ग्राम, जनपद, नगर, देश और राष्ट्र हमारा है लेकिन वे ग्राम, नगर आदि उसके नहीं हैं, तो भी वह मोह से ग्रामादिक को 'मेरे हैं' ऐसा कहता है। यह दृष्टात है। अव दार्ष्टांत कहते हैं - इस प्रकार पूर्वोक्त दृष्टात से आत्मा व्यवहारमूढ होकर यदि परद्रव्य को अपना निजस्वरूप कहता है तव मिथ्यात्व को प्राप्त होकर मिथ्यादृष्टि होता है यह निश्चित है, इसमें सदेह नहीं करना चाहिये।

---

[1] पाठान्तर - णयररट्ठ

ववहारभासिदेण दु परदव्व मम भणति विदिदच्छा परद्रव्य मम भणति। के ते ? विदितार्था - ज्ञातार्था तत्त्ववेदिन । केन कृत्वा भणति ? व्यवहारभापितेन व्यवहारनयेन। **जाणति णिच्छयेण दु ण य इह परमाणुमित्त मम किंचि** निश्चयेन पुनर्जाननि। कि ? न चेह परद्रव्य परमाणुमात्रमपि ममेति। **जह कोवि णरो जपदि अम्हाण गामविसयणपुरट्ठ** यथा नाम स्फुटमहो वा कश्चित्पुरुपो जल्पति। कि जल्पति ? वृत्यावृतो ग्राम देशाभिधानो विषय, नगराभिधान पुर देशैकदेशसज्ञ राष्ट्रमस्माकमिति। **ण य होंति ताणि तस्स दु भणदि य मोहेण सो अप्पा** न च तानि तस्य भवति राजकीयनगरादीनि तथाप्यसौ मोहेन ब्रूते मदीय ग्रामादिकमिति दृष्टात । अथ दार्ष्टांत एव पूर्वोक्तदृष्टातेन ज्ञानी व्यवहारमूढो भूत्वा यदि परद्रव्यमात्मीय भणति तदा मिथ्यात्व प्राप्त सन् मिथ्यादृष्टिर्भवति निस्सशय निश्चितम्। सदेहो न कर्तव्य इति।

तम्हा इत्यादि। **तम्हा** तस्मात् परकीयग्रामादिदृष्टातेन स्वानुभूतिभावनाच्युत सन् योऽसौ परद्रव्य व्यवहारेणात्मीय करोति स मिथ्यादृष्टिर्भवतीति भणित पूर्वम्। तम्मात्कारणाज्ज्ञायते **दोण्ह वि एदाण कत्तिववसाओ** परद्रव्ये तयो पूर्वोक्तलौकिकजैनयो आत्मा परद्रव्य करोतीत्यनेन रूपेण योऽसौ परद्रव्यविपये कर्तृत्वव्यवसाय । कि कृत्वा ? पूर्वम् **ण ममेति णच्चा** निर्विकारस्वपरपरिच्छित्तिज्ञानेन परद्रव्य मम सबधि न भवति इति ज्ञात्वा।

इसलिये परकीय ग्रामादि के दृष्टात से जो आत्मा स्वानुभूति से च्युत होकर व्यवहार से कहे हुये "परद्रव्य मेरे हैं," इनको अपना निजस्वरूप मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा पहले कहा गया है।

इस कारण से जाना जाता है कि, परद्रव्य के बारे में पूर्वोक्त लौकिक लोग और व्यवहारमोहित जैनलोग इन दोनों के मत में आत्मा परद्रव्य का कर्ता है।

इस प्रकार से परद्रव्य में जो कर्तृत्वभावना है, कोई तीसरा तटस्थ पुरुष निर्विकार स्वपरपरिच्छित्तिरूप ज्ञान से परद्रव्य मेरा सबधी नहीं है इसको जानकर, लौकिकलोग और जैन लोगों का परद्रव्य के बारे में होने वाले उस कर्तृत्व के अध्यवसाय को जानो।

शका - वह उस अध्यवसाय को कैसा जानता है ?

समाधान - वीतराग सम्यक्त्ववाली जो निश्चयदृष्टि है, उस **निश्चयदृष्टि से रहितवालों** का यह **अध्यवसायभाव है,** ऐसा सम्यग्ज्ञानी जानता है।

शका - ज्ञानी होकर व्यवहार से परद्रव्य को निजस्वरूप कहने वाला अज्ञानी कैसे होता है ?

समाधान - जैसे म्लेच्छों को समझाने के लिये म्लेच्छभाषा का ही उपयोग किया जाता है वैसे प्राथमिक जीवों को सबोधन करने के लिये उस काल में ही व्यवहारनय का अनुसरण करना चाहिये। लेकिन प्राथमिक जीवो के प्रतिबोधनकाल को छोडकर अन्य काल में भी यदि कोई ज्ञानी जीव कतकफल के समान आत्मा को शुद्ध करनेवाले शुद्धनय से च्युत होकर यदि परद्रव्य को अपना निजस्वरूप मानता है, तो उस समय ही वह मिथ्यादृष्टि होता है।

जाणंतो जाणिज्जो दिट्ठिरहिदाण इम लौकिकजैनयो परद्रव्ये कर्तृत्वव्यवसाय अन्य कोऽपि तृतीयतटस्थ पुरुषो जानन् सन् जानीयात्। स कथभूत जानीयात् ? वीतरागसम्यक्त्वसज्ञा या तु निश्चयदृष्टिस्तद्रहिताना व्यवसायोऽयमिति। ज्ञानी भूत्वा व्यवहारेण परद्रव्यमात्मीय वदन् सन् कथमज्ञानी भवतीति चेत् ? व्यवहारो हि म्लेच्छाना म्लेच्छभाषेव प्राथमिकजनसबोधनार्थं काल एवानुसर्तव्य प्राथमिकजनप्रतिबोधनकाल विहाय कतकफलवदात्मशुद्धिकारकात् शुद्धनयाच्च्युतो भूत्वा यदि परद्रव्यमात्मीय करोति तदा मिथ्यादृष्टिर्भवति।

कि च विशेष - लोकाना मते विष्णु करोतीति यदुक्त पूर्वम् तल्लोकव्यवहारापेक्षया भणितम्। न चानादिभूतस्य देवमनुष्यादिभृतलोकस्य विष्णुर्वा ब्रह्मा वा महेश्वरो वा कोऽपि कर्तास्ति। कथमिति चेत् ? सर्वोऽपि लोकस्तावदेकेंद्रियादिर्जीवैर्भृतस्तिष्ठति। तेषा च जीवाना निश्चयनयेन विष्णुपर्यायेण ब्रह्मपर्यायेण महेश्वरपर्यायेण जिनपर्यायेण च परिणमनशक्तिरस्ति तेन कारणेनात्मैव विष्णु, आत्मेव ब्रह्मा, आत्मैव महेश्वर, आत्मैव जिन। तदपि कथमिति चेत् ?

कोऽपि जीव पूर्वम् मनुष्यभवे जिनरूप गृहीत्वा भोगाकाक्षानिदानबधेन पापानुबधि पुण्य कृत्वा स्वर्गे समुत्पद्य तस्मादागत्य मनुष्यभवे त्रिखडाधिपतिरर्द्धचक्रवर्ती भवति तस्य विष्णुसज्ञा न चापर कोऽपि लोकस्य कर्ता विष्णुरस्ति इति।

तथा चापर कोऽपि जीवो जिनदीक्षा गृहीत्वा रत्नत्रयाराधनया पापानुबधिपुण्योपार्जन कृत्वा विद्यानुवादसज्ञ दशमपूर्वम् पठित्वा चारित्रमोहोदयेन तपश्चरणच्युतो भूत्वा हुण्डावसर्पिणीकालप्रभावेन विद्याबलेन लोकस्याह कर्तेत्यादि चमत्कारमुत्पाद्य मूढजनाना विस्मय कृत्वा महेश्वरो भवति न सर्वावसर्पिणीषु।

इसका स्पष्टीकरण यह है कि, लोगों के मत में विष्णु करता है ऐसा जो पहले कहा गया वह लोकव्यवहार की अपेक्षा से कहा गया है, किन्तु अनादिस्वरूप इस देव-मनुष्यादि प्राणियों से भरे हुये लोक का विष्णु अथवा ब्रह्मा अथवा महेश्वर अथवा अन्य कोई भी कर्ता नहीं है। क्योंकि सब लोक ही एकेंद्रियादि जीवों से भरा हुआ है। और उन जीवों की निश्चयनय से विष्णुपर्यायरूप, ब्रह्मापर्यायरूप, महेश्वरपर्यायरूप और जिनपर्यायरूप परिणमन करने की शक्ति है, इस कारण से आत्मा ही विष्णु है, आत्मा ही ब्रह्मा है, आत्मा ही महेश्वर है, और आत्मा ही जिन है।

शका - वह भी कैसे ?

समाधान - कोई जीव पूर्व मनुष्यभव में जिनरूप (मुनिव्रत) ग्रहण करके भोगाकाक्षानिदानबध से पापानुबंधिपुण्य करके स्वर्ग में उत्पन्न हुआ, वहाँ से मनुष्यभव में आकर तीन खडों का अधिपति- अर्द्धचक्रवर्ती होता है, उसको विष्णु सज्ञा है, अन्य दूसरा कोई लोक का कर्ता विष्णु नहीं है।

उसी तरह अन्य दूसरा कोई जीव जिनदीक्षा ग्रहण करके रत्नत्रय की आराधना से पापानुबंधिपुण्य प्राप्त करके विद्यानुवादनामवाले दशवें पूर्व तक पढकर चारित्रमोह के उदय से तपश्चरण से भ्रष्ट होकर **हुण्डावसर्पिणी काल के प्रभाव से,** विद्या के बल से **"लोक का मैं कर्ता हूँ"** इत्यादि चमत्कार प्रगट करके मूढ-अज्ञानी लोगों को आश्चर्य पैदा करके **महेश्वर** होता है।

सा च हुण्डावसर्पिणीसख्यातीतोत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु गतासु समुपयाति। तथा चोक्त -

सखातीदवसप्पिणि गयासु हुण्डावसप्पिणी एइ। परसमयह उप्पत्ती तहि जिणवर एव पभणेइ।।१।।

न चान्य कोऽपि जगत्कर्त्ता महेश्वराभिधान पुरुषविशेषोऽस्ति इति।

तथा चापर कोऽपि पुरुषो विशिष्टतपश्चरण कृत्वा पश्चात्तपप्रभावेन स्त्रीविषयनिमित्त चतुर्मुखो भवति तस्य ब्रम्हा सज्ञा। न चान्य कोऽपि जगत कर्ता व्यापकैकरूपो ब्रह्माभिधानोऽस्ति।

तथैवापर कोऽपि दर्शनविशुद्धिविनयसपन्नतेत्यादि षोडशभावना कृत्वा देवेंद्रादिविनिर्मितपचमहाकल्याणपूजायोग्य तीर्थकरपुण्य समुपार्ज्यम् जिनेश्वराभिधानो वीतरागसर्वज्ञो भवतीति वस्तुस्वरूप ज्ञातव्यम्। एव यद्येकातेन कर्ता भवति तदा मोक्षाभाव इति विष्णुदृष्टातेन गाथात्रयेण पूर्वपक्ष कृत्वा गाथाचतुष्टयेन परिहारव्याख्यानमिति प्रथमस्थले सूत्रसप्तक गतम्।।३४५ से ३४८।।

अथ द्रव्यार्थिकनयेन य एव कर्म करोति स एव भुक्ते। पर्यायार्थिकनयेन पुनरन्य करोत्यन्यो भुक्ते इति च योऽसौ मन्यते स सम्यग्दृष्टिर्भवति इति प्रतिपादयति -

केहिचि दु पज्जयेहि विणस्सदे णेव केहिचि दु जीवो। (३४५)
जम्हा तम्हा कुव्वदि सो वा अण्णो व णेयतो।।३४९।।
केहिचि दु पज्जयेहि विणस्सदे णेव केहिचि दु जीवो। (३४६)
जम्हा तम्हा वेददि सो वा अण्णो व णेयतो ।।३५०।।

यह सभी अवसर्पिणी कालों में नहीं होता है, किन्तु हुण्डावसर्पिणी में होता है जो कि असख्यात उत्सर्पिणी और असख्यात अवसर्पिणी कालों के वीत जाने पर ही आया करता है। जैसा कि कहा गया है - "सखातीदवसप्पिणी" इत्यादि, अर्थात् - **असख्यात अवसर्पिणी कालों के बीत जाने पर एक हुण्डावसर्पिणी काल आता है, जिसमें जैनेतर मतों की भी उत्पत्ति होती है ऐसा जिनेंद्र देव कहते हैं।** अन्य और कोई जगत का कर्ता महेश्वर नामवाला पुरुषविशेष नहीं है।

इसी तरह अन्य कोई जीव विशिष्ट तपश्चरण करने के वाद तप के प्रभाव से स्त्रीविषयक निमित्त पाकर चतुर्मुख होता है उसको **ब्रह्मा** सज्ञा है। और अन्य कोई जगत को करनेवाला व्यापक एकरूपवाला ब्रह्मा नाम का कोई कर्ता नहीं है।

इसी प्रकार अन्य कोई दर्शनविशुद्धि, विनयसपन्नता आदि १६ भावनाओं को करके देवेंद्रादि के द्वारा विनिर्मित पचमहाकल्याणपूजायोग्य तीर्थङ्कर पुण्य को प्राप्त कर **जिनेश्वर** नामवाला वीतराग सर्वज्ञ होता है। ऐसा वस्तुस्वरूप जानना चाहिये।

इस प्रकार यदि एकात से आत्मा को कर्ता मान लिया जाय तो मोक्ष का अभाव ठहरता है। इसी तरह विष्णु के दृष्टात के द्वारा तीन गाथाओं में पूर्वपक्ष करके उसका परिहार चार गाथाओं के द्वारा किया गया है। इस तरह कथन करनेवाली ७ गाथायें प्रथमस्थल में पूर्ण हुई।।३४५ से ३४८।।

केहिचिदु पज्जयेहि विणस्सदे णेव केहिचि दु जीवो कैश्चित्पर्यायै पर्यायार्थिकनयविभागैर्देव-मनुष्यादिरूपैर्विनश्यति जीव । न नश्यति कैश्चिद्द्रव्यार्थिकनयविभागै ।**जम्हा** यस्मादेव नित्यानित्यस्वभाव जीवस्वरूप **तम्हा** तस्मात्कारणात्। **कुव्वदि सो वा** द्रव्यार्थिकनयेन स एव कर्म करोति। स एव क ? इति चेत्, यो भुक्ते। **अण्णो** वा पर्यायार्थिकनयेन पुनरन्यो वा। **णेयतो** न चैकातोऽस्ति। एव कर्तृत्वमुख्यत्वेन प्रथमगाथा गता।

केहिचि दु पज्जयेहि विणस्सदे णेव केहिचि दु जीवो कैश्चित् पर्यायै पर्यायार्थिकनयविभागै देवमनुष्यादिरूपैर्विनश्यति जीव न नश्यति कैश्चिद्द्रव्यार्थिकनयविभागै । **जम्हा** यस्मादेव नित्यानित्यस्वभाव जीवस्वरूपम्। **तम्हा** तस्मात्कारणात्।**वेददि सो वा** निजशुद्धात्मभावनोत्थसुखामृतरसास्वादमलभमान स एव कर्मफल वेदयत्यनुभवति। स एव क ? इति चेत्, येन पूर्वकृत कर्म। **अण्णो वा** पर्यायार्थिकनयेन पुनरन्यो वा। **णेयतो** न चैकातोऽस्ति। एव भोक्तृत्वमुख्यत्वेन द्वितीयगाथा गता।

कि च, येन मनुष्यभवे शुभाशुभ कर्म कृत स एव जीवो द्रव्यार्थिकनयेन देवलोके नरके वा भुक्ते पर्यायार्थिकनयेन पुनस्तद्भवापेक्षया बालकाले कृत यौवनादिपर्यायान्तरे भुक्ते। अति सक्षेपेण अतर्मुहूर्तान्तरे च भुक्ते। भवातरापेक्षया तु मनुष्यपर्यायेण कृत देवादिपर्यायेण भुक्ते इति भावार्थ । एव गाथाद्वयेनानेकातव्यवस्थापनारूपेण स्वपक्षसिद्धि कृता।। ३४९, ३५०।।

अब द्रव्यार्थिकनय से जो ही करता है वह ही भोगता है। और पर्यायार्थिकनय से अन्य करता है और अन्य ही भोगता हे, इस प्रकार जो मानता है, वह सम्यग्दृष्टि हे ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - (**जम्हा**) जिस कारण (**जीवो**) जीव (**केहिचि दु पज्जयेहि**) कितनी ही पर्यायों से (**विणस्सदे**) नष्ट होता है (**केहिचि दु**) और कितनी ही पर्यायों से (**णेव**) नष्ट नहीं होता है (**तम्हा**) इसलिये (**सो वा अण्णो व कुव्वदि**) वह ही करता है अथवा अन्य करता है (**णेयतो**) एकात नहीं हे (स्याद्वाद है)।

(**जम्हा**) जिस कारण (**जीवो**) जीव (**केहिचि दु पज्जयेहि**) कितनी ही पर्यायों से (**विणस्सदे**) नष्ट होता हे (**केहिचि दु**) कितनी ही पर्यायों से (**णेव**) नष्ट नहीं होता (**तम्हा**) इसलिये (**सो वा अण्णो व वेददि**) वह जीव भोगता है अथवा अन्य भोगता है (**णेयतो**) एकात नहीं हे (स्याद्वाद है)।

टीकार्थ - पर्यायार्थिक नयविभाग से देव-मनुष्यादिरूप कितनी ही पर्यायों से जीव नष्ट होता है, और द्रव्यार्थिक नयविभाग से कितनी ही पर्यायों से जीव नष्ट नहीं होता है, जिस कारण से जीव का स्वरूप नित्यानित्य स्वभाववाला है। इसलिये द्रव्यार्थिकनय से जो ही कर्म भोगता है, वह ही करता है। और पर्यायार्थिकनय से एक कर्म करता है, दूसरा भोगता है, इसमें एकात नहीं है। इस प्रकार कर्तृत्व की मुख्यता से प्रथम गाथा पूर्ण हुई।

पर्यायार्थिक नयविभागों से देव-मनुष्यादिरूप कितनी ही पर्यायों से जीव नष्ट होता है, और द्रव्यार्थिक नयविभागों से कितनी ही पर्यायों से जीव नष्ट नहीं होता है। जिस कारण से जीव का स्वरूप नित्यानित्य स्वभाव वाला है, इसलिये जिसको निजशुद्धात्मभावना से (स्वानुभव से) उत्पन्न सुखामृतरस का स्वाद प्राप्त नहीं होता है, वह ही कर्मफल को अनुभवता (भोगता) है।

अथैकातेन य एव करोति स एव भुक्ते, अथवान्य करोत्यन्यो भुक्ते इति यो वदति स मिथ्यादृष्टिरित्युपदिशति-

जो चेव कुणदि सो चेव[1] वेदगो जस्स एस सिद्धतो। (३४७)
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो।। ३५१ ।।
अण्णो करेदि अण्णो परिभुजदि जस्स एस सिद्धतो। (३४८)
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो।। ३५२ ।।

जो चेव कुणदि सो चेव वेदगो जस्स एस सिद्धतो य एव जीव शुभाशुभ कर्म करोति स एव चैकातेन भुक्ते न पुनरन्य यस्यैष सिद्धात आगम ।**सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो** स जीवो मिथ्यादृष्टिरनार्हतो ज्ञातव्य । कथ मिथ्यादृष्टि ? इति चेत्, यदैकातेन नित्यकूटस्थोऽपरिणामी टकोत्कीर्ण साख्यमतवत् तदा येन *मनुष्यभवेन नरकगतियोग्य पापकर्मकृत स्वर्गगतियोग्य पुण्यकर्मकृत तस्य जीवस्य नरके स्वर्गे वा गमन न प्राप्नोति।*

याने जिसने पहले कर्म किये थे वही जीव कर्मफल को अनुभवता (भोगता) है। और पर्यायार्थिकनय से एक कर्म करता है, अन्य कर्म का फल भोगता है, इसमें एकात नहीं है। इस प्रकार भोक्तृत्व की मुख्यता से दूसरी गाथा पूर्ण हुई।

इसका स्पष्टीकरण यह है कि, द्रव्यार्थिकनय से जो जीव मनुष्यभव में शुभाशुभ कर्म करता है वह ही जीव स्वर्ग में अथवा नरकादि में उस कर्म का फल भोगता है। और पर्यायार्थिकनय से उस ही भव की अपेक्षा से बालकाल में किये हुये कर्म का फल यौवनादि अन्य पर्याय में भोगता है। और अति सक्षेप से कहा जाय तो अतर्मुहूर्त के बाद भोगता है। किन्तु भवातर की अपेक्षा से मनुष्यपर्याय में किया हुआ कर्म देवादिपर्याय में भोगता है। यह भावार्थ है।

इस तरह अनेकात की व्यवस्थापनारूप से स्वपक्ष की सिद्धि करनेवाली दो गाथायें पूर्ण हुई।। ३४९, ३५० ।।

अब एकात से जो करता है वही भोगता है अथवा एकात से अन्य करता है और दूसरा अन्य भोगता है, इस तरह जो एकात से कहता है वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(जो चेव कुणदि)** जो जीव करता है **(सो चेव वेदको)** वह ही भोगता है **(जस्स)** जिसका **(एस सिद्धतो)** ऐसा एकात से सिद्धात है **(सो जीवो)** वह जीव **(मिच्छादिट्ठी)** मिथ्यादृष्टि **(अणारिहदो)** अर्हत के मत को न मानने वाला **(णादव्वो)** जानना चाहिये।

(अण्णो करेदि) कोई अन्य करता है **(अण्णो परिभुजदि)** कोई अन्य भोगता है **(जस्स)** जिसका **(एस सिद्धतो)** ऐसा एकात से सिद्धात है **(सो जीवो)** वह जीव **(मिच्छादिट्ठी)** मिथ्यादृष्टि **(अणारिहदो)** अर्हत के मत को न मानने वाला है **(णादव्वो)** ऐसा जानना चाहिये।

टीकार्थ - जिसका एकात से ऐसा सिद्धात है कि जो शुभ या अशुभ कर्म करता है वही उसके फल को भोगता है और दूसरा नहीं, वह जीव मिथ्यादृष्टि, अर्हत के मत को न माननेवाला है ऐसा जानना चाहिये।

---

[1] पाठान्तर - जो चेव कुणदि सो चिय ण वेदए ।

तथा शुद्धात्मानुष्ठानेन मोक्षश्च कुत ? नित्यैकातत्वादिति **अण्णो करेदि अण्णो परिभुजदि जस्स एस सिद्धतो** अन्य करोति कर्म भुक्ते चान्य, यद्यैकातेन ब्रूते। **सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो** तदा येन मनुष्यभवे पुण्यकर्म कृत पापकर्म कृत मोक्षार्थमू शुद्धात्मभावनानुष्ठान च, तस्य पुण्यकर्मणो देवलोकेऽन्य कोऽपि भोक्ता प्राप्नोति न च स जीव। नरकेऽपि तथैव। केवलज्ञानादिव्यक्तिरूप मोक्ष चान्य कोऽपि लभते। ततश्च पुण्यपापमोक्षानुष्ठान वृथेति बौद्धमतदूषण, इति गाथाद्वयेन नित्यैकातक्षणिकैकातमत निराकृतम्। एव द्वितीयस्थले सूत्रचतुष्टय गतम्।। ३५१, ३५२।।

अथ यद्यपि शुद्धनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावत्वात् कर्मणामकर्ता जीवस्तथाप्यशुद्धनयेन रागादिभावकर्मणा स एव कर्ता न च पुद्गल इत्याख्याति। अथ गाथापचकेन प्रत्येक गाथापूर्वार्द्धेन साख्यमतानुसारिशिष्य प्रति पूर्वपक्ष उत्तरार्द्धेन परिहार इति ज्ञातव्य -

मिच्छत्ता जदि पयडी मिच्छादिट्ठी करेदि अप्पाण। (३२८)
तम्हा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्तो।। ३५३।।
सम्मत्ता जदि पयडी सम्मादिट्ठी करेदि अप्पाणं।
तम्हा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्तो।। ३५४।।

शका - वह मिथ्यादृष्टि क्यों है ?

समाधान - यदि साख्यमत के समान एकात से जीव को नित्य कूटस्थ टकोत्कीर्ण अपरिणामी माना जाय तो जिस जीव ने मनुष्यभव में नरकगतियोग्य पापकर्म अथवा स्वर्गगतियोग्य पुण्यकर्म किया उस जीव का नरक में अथवा स्वर्ग में गमन नहीं होगा। उसी तरह नित्य एकात मानने से शुद्धात्मानुष्ठान से मोक्ष भी कैसे होगा ? अन्य (एक) कर्म करता है और अन्य (दूसरा) उस कर्म का फल भोगता है, ऐसा यदि एकात से कहता है तब जिसने मनुष्यभव में पुण्यकर्म किया अथवा पापकर्म किया अथवा मोक्ष के लिये शुद्धात्मभावना का अनुष्ठान किया उसके पुण्यकर्म का फल देवलोक में अन्य दूसरा कोई भोगेगा, वह ही जीव नहीं भोग सकता है। उसी तरह पापकर्म का फल नरक में अन्य दूसरा कोई भोगेगा, वह ही जीव नहीं भोग सकता है, और अन्य दूसरा कोई केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप मोक्ष को प्राप्त करेगा। इसलिये पुण्य-पाप-मोक्ष का अनुष्ठान वृथा ठहरेगा। इस तरह बौद्धमत को दूषण दिया है।

इस तरह इन दो गाथाओं के द्वारा नित्य एकात और क्षणिक एकात मत का निराकरण किया है। इस तरह द्वितीयस्थल में चार गाथायें पूर्ण हुई।। ३५१, ३५२।।

अब, यद्यपि शुद्धनिश्चयनय से शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभाव होने से जीव कर्मो का अकर्ता है तथापि अशुद्धनिश्चयनय से रागादि भावकर्मों का वह ही जीव कर्ता है, और पुद्गलद्रव्य जीव के रागादि भावकर्मों का कर्ता नहीं है, ऐसा कहते हैं। यहाँ पॉच गाथाओं में से प्रत्येक गाथा के पूर्वार्द्ध में साख्यमतानुसारि शिष्य का पूर्वपक्ष और प्रत्येक गाथा के उत्तरार्द्ध में उसका परिहार है, ऐसा जानना चाहिये -

अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्त। (३२९)
तम्हा पुग्गलदव्व मिच्छादिट्ठी ण पुण जीवो।।३५५।।
अह जीवो पयडी विय[१] पुग्गलदव्व कुणति मिच्छत्त। (३३०)
तम्हा दोवि कद त दोण्हि वि भुजंति तस्स फल।।३५६।।
अह ण पयडी ण जीवो पुग्गलदव्व करेदि मिच्छत्त। (३३१)
तम्हा पुग्गलदव्व मिच्छत्त त तु ण हु मिच्छा।।३५७।।

मिच्छत्ता जदि पयडी मिच्छादिट्ठी करेदि अप्पाण द्रव्यमिथ्यात्वप्रकृति कर्त्री यद्यात्मान स्वयमपरिणामिन हठान्मिथ्यादृष्टि करोति। तम्हा अचेदणादे पयडी णणु कारगो पत्तो तस्मात्कारणादचेतना तु या द्रव्यमिथ्यात्वप्रकृति सा तव मते नन्वहो भावमिथ्यात्वस्य कर्त्री प्राप्ता जीवश्चैकातेनाकर्ता प्राप्त। ततश्च कर्मवधाभाव, कर्मवधाभावे ससाराभाव। स च प्रत्यक्षविरोध।

गाथार्थ - (जदि) यदि (मिच्छत्ता पयडी) मोहनीयकर्म की मिथ्यात्वप्रकृति (अप्पाण) आत्मा को (मिच्छादिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (करेदि) करती है (तम्हा) तो इस मान्यता से (दे) तेरे मतानुसार (अचेदणा पयडी) अचेतन प्रकृति (णणु) निश्चय ही (कारगो पत्तो) मिथ्यात्वभाव की कर्ता हो गयी, किन्तु ऐसा नहीं वन सकता।

(जदि) यदि (सम्मत्ता पयडी) मोहनीय कर्म की सम्यक्त्वप्रकृति (अप्पाण) आत्मा को (सम्मादिट्ठी) सम्यग्दृष्टि (करेदि) करती है (तम्हा) तो इस मान्यता से (दे) तेरे मत के अनुसार (अचेदणा पयडी) अचेतन प्रकृति (णणु) निश्चय से (कारगो पत्तो) सम्यक्त्व भाव की कर्ता हो जाय, किन्तु ऐसा भी नहीं वन सकता।

(अहवा) अथवा (एसो जीवो) यह जीव (पुग्गलदव्वस्स) पुद्‌गलद्रव्य के (मिच्छत्त) मिथ्यात्व को (कुणदि) करता है (तम्हा) तो ऐसा मानने से (पुग्गलदव्व) पुद्‌गलद्रव्य (मिच्छादिट्ठी) मिथ्यादृष्टि सिद्ध हुआ (ण पुण जीवो) और जीव मिथ्यादृष्टि नहीं ठहरा, किन्तु ऐसा भी नहा वन सकता।

(अह) अथवा (जीवो) जीव (य) तथा (पयडी वि) प्रकृति भी (पुग्गलदव्व) पुद्‌गलद्रव्य को (मिच्छत्त) मिथ्यात्वरूप (कुणति) करते हैं (तम्हा) तो ऐसा मानने से (दोवि कदत) दोनों के द्वारा किये हुये (तस्स फल) मिथ्यात्व फल को (दोण्हि वि) वे दोनों भी (भुजति) भोगेंगे, किन्तु ऐसा भी नहा वन सकता।

(अह) अथवा (ण पयडी) न तो प्रकृति ही और (ण जीवो) न जीव ही (पुग्गलदव्व) पुद्‌गलद्रव्य को (मिच्छत्त) मिथ्यात्वरूप (करेदि) करता है (तम्हा) तो ऐसा मानने से (पुग्गलदव्व) पुद्‌गलद्रव्य को (मिच्छत्त) मिथ्यात्वभाव का प्रसग आयेगा (त तु ण हु मिच्छा) क्या वह वास्तव में मिथ्या नहीं है ?

टीकार्थ - यदि स्वय परिणमन न करने वाले आत्मा को द्रव्यमिथ्यात्व प्रकृति हठ से मिथ्यादृष्टि करती है, तब हे जीव। (निश्चयाभासी अथवा साख्यमतानुसागी जो) तेरे मत से तो अचेतन द्रव्यमिथ्यात्व नाम की प्रकृति है वह ही भावमिथ्यात्व की कर्त्री हो गयी। जीव तो फिर सर्वथा अकर्ता ही होगा। इसलिये जीव को कर्मवध का अभाव होगा, और कर्मवध के अभाव में ससार का अभाव होगा और यह तो प्रत्यक्ष से विरुद्ध है।

---

१ पाठान्तर - अह जीवो पयडी तह।

सम्मत्ता जदि पयडी सम्मादिट्ठी करेदि अप्पाण सम्यक्त्वप्रकृति कर्त्री यद्यात्मान स्वयमपरिणामिन सम्यग्दृष्टि करोति। **तम्हा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्तो** तस्मात्कारणात् अचेतना प्रकृति । **दे** तव मते नन्वहो कर्त्री प्राप्ता जीवश्चैकातेन सम्यक्त्वपरिणामस्याकर्तेति ततश्च वेदकसम्यक्त्वाभावो, वेदकसम्यक्त्वाभावे क्षायिकसम्यक्त्वाभाव ततश्च मोक्षाभाव । स च प्रत्यक्षविरोध आगमविरोधश्च।

अत्राह शिष्य - प्रकृतिस्तावत्कर्मविशेष स च सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयरूपस्य त्रिविधदर्शनमोहस्य सम्यक्त्वाख्य प्रथमविकल्प स च कर्मविशेष कथ सम्यक्त्व भवति ? सम्यक्त्व तु निर्विकारसदानन्दैकलक्षणपरमात्मतत्त्वादिश्रद्धानरूपो मोक्षवीजहेतुर्भव्यजीवपरिणाम इति। परिहारमाह-सम्यक्त्वप्रकृतिस्तु कर्मविशेषो भवति तथापि यथा निर्विषीकृत विष मरण न करोति तथा शुद्धात्माभिमुखपरिणामेन मत्रस्थानीयविशुद्धिविशेषमात्रेण, विनाशितमिथ्यात्वशक्ति सन् क्षायोपशमिकादिलब्धिपचकजनितप्रथमौपशमिकसम्यक्त्वानतरोत्पन्नवेदकसम्यक्त्वस्वभाव तत्त्वार्थश्रद्धानरूप जीवपरिणाम न हति तेन कारणेनोपचारेण सम्यक्त्वहेतुत्वात्कर्मविशेषोऽपि सम्यक्त्व भण्यते स च तीर्थकरनामकर्मवत् परपरया मुक्तिकारण भवतीति नास्ति विरोध ।

यदि स्वय अपरिणमन करनेवाले आत्मा को सम्यक्त्वप्रकृति कर्त्री होकर सम्यग्दृष्टि करती है तब हे भव्य! यह अचेतन प्रकृति कर्त्री हो गयी, और एकात से जीव सम्यक्त्व परिणाम का अकर्ता हो गया, और इससे वेदकसम्यक्त्व का अभाव हो जायेगा, और वेदकसम्यक्त्व के अभाव में क्षायिक सम्यक्त्व का अभाव हो जायेगा, ओर इससे मोक्ष के अभाव का प्रसग आता है। वह प्रत्यक्ष से विरुद्ध है और आगम से भी विरुद्ध है।

शका - शिष्य पूछता है - सम्यक्त्वप्रकृति तो कर्म का भेद है जो कि सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व के भेद से ३ प्रकार के होनेवाले दर्शनमोहनीय का प्रथम भेद है। वह सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता हे ? क्योंकि सम्यक्त्व तो भव्यजीव का निर्विकार सदानद एकलक्षण वाले परमात्मतत्त्व आदि का श्रद्धानरूप परिणाम है और मोक्षवीजहेतू है ?

समाधान - यद्यपि सम्यक्त्वप्रकृति कर्म का भेद है तथापि निर्विष किया हुआ विष जैसे मारने वाला नहीं होता है वैसे ही मत्रस्थानीय विशुद्धिविशेष -

अध्यात्मभाषा से

शुद्धात्मा के अभिमुख पारिणाम के द्वारा मिथ्यात्वशक्ति का नाश होकर प्रथमोपशम सम्यक्त्व के वाद होनेवाला वेदक सम्यक्त्व होता है, जीव के उस परिणाम का सम्यक्त्वप्रकृति घात नहीं करती है।

आगमभाषा से

क्षायोपशमिकादि पॉचलब्धिजनित प्रथमोपशम सम्यक्त्व के बाद होनेवाला वेदकसम्यक्त्व उत्पन्न होता है, उस स्वभाव तत्वार्थ श्रद्धानरूप जीव परिणाम का वेदकसम्यक्त्व प्रकृति घात नहीं करती है। इसलिये उपचार से सम्यक्त्व का हेतु होने से कर्मविशेष है तो भी सम्यक्त्व कहा जाता है और वह नामकर्म की तीर्थकर प्रकृति की तरह परपरा से मुक्ति का कारण है इसमें विरोध नहीं है।

अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्य कुणदि मिच्छत्त अथवा पूर्वदूषणभयादेष प्रत्यक्षीभूतो जीव , द्रव्यकर्मरूपस्य पुद्गलद्रव्यस्य शुद्धात्मतत्त्वादिषु विपरीताभिनिवेशजनक भावमिथ्यात्व करोति, न पुन स्वय भावमिथ्यात्वरूपेण परिणमति इति मतम्। **तम्हा पुग्गलदव्व मिच्छादिट्ठी ण पुण जीवो** तर्हिएकातेन पुद्गलद्रव्य मिथ्यादृष्टिर्न पुनर्जीव । कर्मवध तस्यैव, ससारोऽपि तस्यैव, न च जीवस्य। स च प्रत्यक्षविरोध इति।

अह जीवो पयडी विय पुग्गलदव्व कुणति मिच्छत्त अथ पूर्वदूपणभयाज्जीव प्रकृतिरपि पुद्गलद्रव्य कर्मतापन्न भावमिथ्यात्व कुरुत इति मत। **तम्हा दोवि कदत** तस्मात्कारणाज्जीवपुद्गलाभ्यामुपादानकारणभूताभ्या कृत तन्मिथ्यात्व। **दोण्हिवि भुजति तस्स फल** तर्हि द्वौ जीवपुद्गलौ तस्य फल भुजाते ततश्चाचेतनाया प्रकृतेरपि भोक्तृत्व प्राप्त स च प्रत्यक्षविरोध इति। **अह ण पयडी ण जीवो पुग्गलदव्व करेदि मिच्छत्त** अथ मत न प्रकृति करोति न च जीव एव एकातेन। कि ? पुद्गलद्रव्य कर्मतापन्न। कथभूत न करोति ? मिथ्यात्व भावमिथ्यात्वरूपम्। **तम्हा पुग्गलदव्व मिच्छत्त त तु ण हु मिच्छा** तर्हि यदुक्त पूर्वसूत्रे '**अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्त**' तद्वचन तु पुन हु स्फुट। कि मिथ्या न भवति ? अपि तु भवत्येव।

किच, यद्यपि शुद्धनिश्चयेन शुद्धो जीवस्तथापि पर्यायार्थिकनयेन कथचित्परिणामित्वे सत्यनादिकर्मोदय-वशाद्रागाद्युपाधिपरिणाम गृह्णाति स्फटिकवत्। यदि पुनरेकातेनापरिणामी भवति तदोपाधिपरिणामो न घटते।

अथवा यदि पूर्वोक्त दूषण के भय से यह प्रत्यक्षीभूत जीव द्रव्यकर्मरूप पुद्गलद्रव्य के शुद्धात्म-तत्त्वादिक में विपरीत अभिनिवेश पैदा करनेवाले भावमिथ्यात्व को करता है, लेकिन स्वय भावमिथ्यात्वरूप परिणमन नहीं करता है, ऐसा माना जाय तो फिर एकात से वह पुद्गलद्रव्य ही मिथ्यादृष्टि होगा और जीव मिथ्यादृष्टि नहीं होगा। पुद्गल द्रव्यकर्म में ही द्रव्यकर्म का बध होगा और द्रव्यकर्म का ही ससार होगा और जीव को कर्मवध और ससार-दु ख नहीं होगा। और यह तो प्रत्यक्ष से विरुद्ध है।

अव पूर्व दृपण के भय से जीव और प्रकृति दोनों भी पुद्गल द्रव्य कर्म को भावमिथ्यात्वरूप करते हैं, ऐसा माना जाय तो इस कारण से उपादान कारणभूत उन जीव और पुद्गल दोनों के द्वारा वह भावमिथ्यात्व किया है ऐसा होगा। तो फिर उस मिथ्यात्व के फल को जीव और पुद्गल दानों भी भोगें, इससे अचेतनमय प्रकृति को भी भोक्तापना प्राप्त होगा। और वह तो प्रत्यक्ष से विरुद्ध है।

यदि ऐसा माना जाय कि एकात से न तो प्रकृति ही करती है और न अकेला जीव ही इस द्रव्य कर्म को भावमिथ्यात्वरूप करता है, तो फिर जो पहले सूत्र में '**अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्त**' वह वचन निश्चितरूप से क्या मिथ्या नहीं है ? अपितु मिथ्या ही है।

इसका स्पर्ष्टीकरण यह है कि यद्यपि शुद्धनिश्चयनय से जीव शुद्ध है तथापि पर्यायार्थिकनय से कथंचित् परिणामीपना होने से, अनादि से कर्मोदय के वश होने से स्फटिक पाषाण के समान रागादि विभाव परिणाम को ग्रहण करता है। यदि एकान्त से पर्यायार्थिकनय से जीव अपरिणामी है तो विभाव परिणाम घटित नहीं होता।

जपापुष्पोपाधिपरिणमनशक्तौ सत्या स्फटिके जपापुष्पमुपाधि जनयति न च काष्टादौ। कस्मादिति चेत्? तदुपाधिपरिणमनशक्त्यभावात् इति। एव यदि द्रव्यमिथ्यात्वप्रकृति कर्त्री एकातेन यदि भावमिथ्यात्व करोति तदा जीवो भावमिथ्यात्वस्य कर्ता न भवति। भावमिथ्यात्वाभावे कर्मणो बधाभाव ततश्च ससाराभाव स च प्रत्यक्षविरोध । इत्यादि व्याख्यानरूपेण तृतीयस्थले गाथापचक गतम्।।३५३ से ३५७।।

अथ ज्ञानाज्ञानसुखदु खादिकर्मैकातेन कर्मैव करोति न चात्मेति साख्यमतानुसारिणो वदति तान्प्रति पुनरपि नयविभागेनात्मन कथचित्कर्तृत्व व्यवस्थापयति - तत्र त्रयोदशगाथासु मध्ये कर्मैवैकातेन कर्तृ भवति इति कथनमुख्यत्वेन **'कम्मेहि दु अण्णाणी'** इत्यादि सूत्रचतुष्टयम्। तत पर साख्यमतेऽप्येव भणितमास्ते - इति सवाददर्शनार्थम् ब्रह्मचर्यस्थापनमुख्यत्वेन **'पुरुसित्थियाहिलासी'** इत्यादि गाथाद्वयम्। अहिसास्थापनमुख्यत्वेन **'जम्हा घादेदि पर'** इत्यादि गाथाद्वयम्। प्रकृतेरेव कर्तृत्व न चात्मन इत्येकातनिराकरणार्थम् तस्यैव गाथाचतुष्टयस्यैव दूषणोपसहाररूपेण **'एव सखुवदेस'** इत्यादि गाथैका इति सूत्रपचकसमुदायेन द्वितीयमतरस्थलम्। तदनतर आत्मा कर्म न करोति कर्मजनितभावाश्च कित्वात्मान करोतीत्येकगाथाया पूर्वपक्षो गाथात्रयेण परिहार इति समुदायेन **'अहवा मण्णसि मज्झ'** इत्यादि सूत्रचतुष्टय। एव चतुरतराधिकारे स्थलत्रयेण समुदायपातनिका तद्यथा -

---

स्फटिक पाषाण में जपापुष्प की उपाधिरूप परिणमन करने की शक्ति होने से स्फटिक में जपापुष्प के सांनिध्य में उपाधि उत्पन्न होती है, लेकिन काष्ठादिक में उस ही जपापुष्प के सानिध्य में उपाधि उत्पन्न नहीं होती है, क्योंकि काष्ठादिक में उस उपाधिरूप परिणमन करने की शक्ति नहीं है। इस प्रकार यदि द्रव्यमिथ्यात्व प्रकृति कर्त्री बनकर एकात से भावमिथ्यात्व को करती है, तब जीव भावमिथ्यात्व का कर्ता नहीं होता है। भावमिथ्यात्व के अभाव में कर्मो के बध का अभाव होगा और इससे जीव के ससार के अभाव का प्रसग आयेगा। और वह तो प्रत्यक्ष से विरुद्ध है। इत्यादि का कथन करनेवाली तीसरे स्थल में पाच गाथायें पूर्ण हुई।।३५३ से ३५७।।

अब, ज्ञान-अज्ञान सुख-दु ख आदि कर्म को एकात से कर्म ही करता है, आत्मा नहीं करता है, ऐसा साख्यमतवाले कहते हैं। उन्हीं के प्रति नयविभाग से यह सिद्ध करते हैं कि यह जीव कथचित् कर्ता है। यहाँ १३ गाथाओं में से **'कम्मेहि दु अण्णाणी'** इत्यादि पाठक्रम से ४ गाथाओं में कर्म ही एकात से कर्ता है, इस कथन की मुख्यता है। इसके आगे साख्यमत में भी ऐसा कहा गया है, इस प्रकार सवाद बताते हुए ब्रह्मचर्य की स्थापना की मुख्यता से **'पुरुसित्थियाहिलासी'** इत्यादि दो गाथायें हैं। अहिसा की स्थापना की मुख्यता से **'जम्हा घादेदि पर'** इत्यादि दो गाथायें हैं। प्रकृति ही कर्ता है, आत्मा कर्ता नहीं है, इस एकात का निराकरण करने के लिये उस ही ४ गाथाओं के ही दिखाये हुए दूषण का ही कथन करनेवाली उपसहाररूप **'एवं संखुवदेसं'** इत्यादि एक गाथा है। इस तरह द्वितीय स्थल में यह समुदायरूप ५ गाथायें हैं। तदनतर आत्मा कर्म नहीं करता है और आत्मा कर्मजनित भावों का कर्ता नहीं है, कितु आत्मा आत्मा को करता है, इस तरह एक गाथा में पूर्व पक्ष और ३ गाथाओं से उसका परिहार किया है। इस तरह समुदायरूप **'अहवा मण्णसि मज्झ'** इत्यादि ४ गाथायें हैं। इस प्रकार चौथे अतरअधिकार में ३ स्थलों से यह समुदाय पातनिका है।

कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जदि णाणी तहेव कम्मेहि। (३३२)
कम्मेहि सुवाविज्जदि जग्गाविज्जदि तहेव कम्मेहि।।३५८।।
कम्मेहि सुहाविज्जदि दुक्खाविज्जदि तहेव कम्मेहि। (३३३)
कम्मेहि य मिच्छत्त णिज्जदि णिज्जदि असजम चेव।।३५९।।
कम्मेहि भमाडिज्जदि उड्ढमहो चावि तिरियलोय च। (३३४)
कम्मेहि चेव किज्जदि सुहासुह जेत्तिय किचि।।३६०।।
जम्हा कम्म कुव्वदि कम्म देदि हरदि त्ति ज किचि। (३३५)
तम्हा उ सव्वजीवा अकारगा होंति आवण्णा।।३६१।।
पुरिसित्थियाहिलासी इत्थीकम्म च पुरिसमहिलसदि। (३३६)
एसा आयरियपरपरागदा एरिसी दु सुदी।।३६२।।

गाथार्थ - जीव (कम्मेहि दु) कर्मों से (अण्णाणी) अज्ञानी (किज्जदि) किया जाता है (तहेव) उसी प्रकार (कम्मेहि) कर्मों से (णाणी) ज्ञानी होता है (कम्मेहि) कर्मों से (सुवाविज्जदि) सुलाया जाता है (तहेव) उसी प्रकार (कम्मेहि) कर्मों से (जग्गाविज्जदि) जगाया जाता है।

(कम्मेहि) कर्मों से (सुहाविज्जदि) सुखी किया जाता हे (तहेव) उसी प्रकार (कम्मेहि) कर्मों से (दुक्खाविज्जदि) दु खी किया जाता है (य) और (कम्मेहि) कर्मों से (मिच्छत्त) मिथ्यात्व को (णिज्जदि) प्राप्त किया जाता है। (चेव) तथा (असजम) असयम को (णिज्जदि) प्राप्त किया जाता है।

(कम्मेहि) कर्मों से (उड्ढमहो चावि तिरियलोय य भमाडिज्जदि) जीव उर्ध्वलोक, तथा अधोलोक ओर तिर्यग्लोक में भ्रमाया जाता है (च कम्मेहि एव) और कर्मो से ही (जित्तिय किचि सुहासुह किज्जदि) जो कुछ शुभाशुभ है वह किया जाता है।

(जम्हा) क्योंकि (कम्म) कर्म (कुव्वदि) करता है (कम्म) कर्म (देदि) देता है (त्ति ज किचि) इस प्रकार जो कुछ है उसे कर्म ही (हरदि) हरता है (तम्हा उ) इसलिये (सव्वजीवा) सभी जीव (अकारगा आवण्णा होंति) अकर्ता सिद्ध होते हैं।

(पुरिसित्थियाहिलासी) पुरुष वेदकर्म स्त्री की अभिलापा करता है (च) और (इत्थीकम्म) स्त्री वेदकर्म (पुरिसमहिलसदि) पुरुष की अभिलाषा करता है (एसा आयरियपरपरागदा) यह आचार्य परपरा से आई हुई (एरिसी दु सुदी) ऐसी श्रुति है।

(तम्हा) इस मान्यतानुसार (तुम्हमुवदेसे) तुम्हारे उपदेश में-मत में (को वि जीवो) कोई भी जीव (अबभचारी) अब्रह्मचारी (ण) नहीं है (जम्हा) क्योंकि (कम्म चेव हि) कर्म ही (कम्म अहिलसदि) कर्म को चाहता है (इदि भणिय) ऐसा कहा है।

(जम्हा) क्योंकि (पर घादेदि) दूसरे को मारता है (य) और (परेण घादिज्जदे) पर के द्वारा मारा जाता है (सा पयडी) वह प्रकृति ही है (एदेणच्छेण किर) इसी अर्थ में (परघादणामे त्ति भण्णदि) परघात नामा प्रकृति हे ऐसा कहोगे।

तम्हा ण को वि जीवो अबंभचारी दु तुम्हमुवदेसे[1]। (३३७)
जम्हा कम्म चेव हि कम्म अहिलसदि इदि भणिय[2]।।३६३।।
जम्हा घादेदि पर परेण घादिज्जदे य सा पयडी। (३३८)
एदेणच्छेण दु किर भण्णदि परघादणामे त्ति।।३६४।।
तम्हा ण को वि जीवो वघादगो अत्थि तुम्ह उवदेसे। (३३९)
जम्हा कम्म चेव हि कम्म घादेदि इदि भणिय[2]।।३६५।।
एवं सखुवदेस जे दु परूविति एरिस समणा। (३४०)
तेसि पयडी कुव्वदि अप्पा य अकारगा सव्वे ।।३६६।।
अहवा मण्णसि मज्झ अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणदि। (३४१)
एसो मिच्छसहावो तुम्ह एव मुणंतस्स।। ३६७।।
अप्पा णिच्चाऽसखेज्जपदेसो देसिदो दु समयम्मि। (३४२)
ण वि सो सक्कदि तत्तो हीणो अहिओ व कादु जे।।३६८।।

(तम्हा) इस कारण से (तुम्ह उवदेसे) तुम्हारे उपदेश में-मत में (को वि जीवो) कोई भी जीव (वघादगो) उपघात करने वाला (ण अत्थि) नहीं है (जम्हा) क्योंकि (कम्म चेव हि) कर्म ही निश्चय से (कम्म घादेदि) कर्म को मारता है (इति भणिय) ऐसा कहा है।

(एव दु) इस प्रकार (जे समणा) जो श्रमण (एरिस सखुवदेस) ऐसा साख्यमत का उपदेश (परूविति) प्ररूपण करते हैं। (तेसि) उनके मत में (पयडी) प्रकृति ही (कुव्वदि) करती है (य) और (सव्वे अप्पा) जीव सब (अकारगा) अकारक हैं ऐसा सिद्ध होता है।

(अहवा) अथवा (मण्णसि) ऐसा मानो कि (मज्झ अप्पा) मेरा आत्मा (अप्पणो अप्पाण) अपने आत्मा को (कुणदि) करता है (एव मुणतस्स तुम्ह) ऐसा मानने वाला तेरा (एसो मिच्छसहावो) यह मिथ्यात्व भाव है।

क्योंकि (समयम्मि दु) परमागम में (अप्पा) आत्मा (णिच्चा असखेज्जपदेसो) नित्य असख्यात प्रदेशवाला (देसिदो) कहा गया है (जे सो) जो वह आत्मा (तत्तो हीणो व अहिओ) उससे हीन अथवा अधिक (कादु ण वि सक्कदि) नहीं किया जा सकता है।

(वित्थरदो) विस्तार की अपेक्षा (जीवस्स जीवरूव) जीव का जीवरूप (हि) निश्चय से (लोगमित्त) लोकमात्र (जाण) जानो (तत्तो) उससे (सो) आत्मा (कि हीणो व अहिओ दव्व कद भणसि) हीन अथवा अधिक द्रव्यमय किया ऐसा तू कैसे कहता है ?

(अह) अथवा (जाणगो दु भावो) ज्ञायकभाव तो (णाणसहावेण) ज्ञानस्वभाव से (अत्थि) स्थित है (देदि मद) तेरा ऐसा मत है (तु) तो (तम्हा) इससे (अप्पा सय) आत्मा स्वय (अप्पणो अप्पय) अपने आत्मा को (णवि कुणदि) नहीं करता है (सम्मतमेव) यह सिद्ध हुआ।

---

१ पाठान्तर - अम्ह उवदेसे । २ ज भणिदं ।

जीवस्स जीवरूव वित्थरदो जाण लोगमित्त हि। (३४३)
तत्तो सो किं हीणो अहिओ व कद भणसि[1] दव्व।।३६९।।
अह जाणगो दु भावो णाणसहावेण अत्थि दे दि मद। (३४४)
तम्हा णवि अप्पा अप्पय तु सयमप्पणो कुणदि।।३७०।।

कर्मभिरज्ञानी क्रियते जीव एकातेन तथैव च ज्ञानी क्रियते कर्मभि । स्वाप निद्रा नीयते जागरण तथैवेति प्रथमगाथा गता। कर्मभि सुखीक्रियते दु खीक्रियते तथैव च कर्मभि । कर्मभिश्च मिथ्यात्व नीयते तथैवासयम चेवैकातेन द्वितीयगाथा गता। कर्मभिश्चैवोर्ध्वाधस्तिर्यग्लोक च भ्राम्यते कर्मभिश्चैव क्रियते शुभाशुभ यदन्यदपि किचिदिति तृतीयगाथा गता।

यस्मादेव भणित कर्मेव करोति कर्मेव ददाति कर्मेव हरति यत्किचिच्छुभाशुभ तस्मादेकातेन सर्वे जीवा अकारका प्राप्ता, ततश्च कर्माभाव कर्माभावे ससाराभाव स च प्रत्यक्षविरोध - इति कर्मेकातकर्तृत्वदूषणमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टय गतम्। कर्मेव करोत्येकातेनेति पूर्वोक्तमर्थं श्रीकुदकुदाचार्यदेव साख्यमतसवाद दर्शयित्वा पुनरपि समर्थयति। वय ब्रूमो द्वेषेणैव न। भवदीयमतेऽपि भणितमास्ते पुवेदाख्य कर्म कर्तृ स्त्रीवेदकर्माभिलाप करोति, स्त्रीवेदाख्य कर्म पुवेदकर्माभिलषत्येकातेन, न च जीव । **एवमाचार्यपरपराया समागता श्रुतिरीदृशी।**

टीकार्थ - एकात से यह जीव कर्मो के द्वारा अज्ञानी किया जाता है, उसी प्रकार कर्मो से ही ज्ञानी किया जाता है, कर्मो से निद्रालु वना लिया जाता है, ओर कर्मो से जागरूक किया जाता है। यह प्रथम गाथा का अर्थ हुआ। एकात से कर्मो से सुखी किया जाता है, वैसे कर्मो से ही दु खी किया जाता है और एकात से कर्मों से मिथ्यात्वी किया जाता है और कर्मों से असयत हो जाता है। यह दूसरी गाथा का अर्थ हुआ। एकात से कर्मो से ही उर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक में भ्रमाया जाता है और जो कुछ भी शुभाशुभ किया जाता हे, वह कर्मो से ही होता है। यह तीसरी गाथा का अर्थ हुआ।

इसलिये ही कहा जाता है कि जो कुछ शुभाशुभ है वह कर्म ही करता है, कर्म ही देता है, कर्म ही हरण कर लेता है। इसलिये एकात से सभी जीव अकर्ता सिद्ध हो जाते हैं। और इसलिए कर्म के अभाव का प्रसग आता है, कर्म का अभाव होने से ससार के अभाव का प्रसग आता है और वह तो प्रत्यक्ष से विरुद्ध है। इस तरह कर्म के एकात कर्तृत्व के दूषण की मुख्यता से कथन करने वाली ४ गाथायें पूर्ण हुई।

"एकात से कर्म ही करते हैं," इस पूर्वोक्त अर्थ को श्रीकुदकुदाचार्यदेव साख्यमत के सवाद को दिखाकर और भी समर्थन करते हैं। हमारा यह कथन द्वेपभाव से नहीं है। आपके मत में भी कहा है कि, एकात से पुवेद कहा जानेवाला कर्म स्त्री वेद कर्म की अभिलाषा करता हे, स्त्रीवेद कहा जाने वाला कर्म पुवेदकर्म की अभिलाष करता हे, और जीव ऐसी अभिलाषा नहीं करता हे। इस प्रकार आचार्य परपरा से आयी हुई ऐसी ही श्रुति है।

---

[1] पाठान्तर - अहिओ य कह कुणदि दव्वं ।

श्रुति कोऽर्थ ? आगमो भवता साख्यानामिति प्रथमगाथा गता। तथा सति कि दूषण चेति ? एव न कोऽपि जीवोऽस्त्यब्रह्मचारी युष्माकमुपदेशे किंतु यथा शुद्धनिश्चयेन सर्वे जीवा ब्रह्मचारिणो भवति तथैकातेनाशुद्धनिश्चयेनापि ब्रह्मचारिण एव यस्मात्पुवेदाख्य कर्म स्त्रीवेदाख्य कर्माभिलषति न च जीव इत्युक्त पूर्वं स च प्रत्यक्षविरोध । इत्यब्रह्मकथनरूपेण गाथाद्वय गतम्। यस्मात्कारणात् पर कर्मस्वरूप प्रकृति कर्त्री हति परेण कर्मणा सा प्रकृतिरपि हन्यते न च जीव । एतेनार्थेन किल जैनमते परघातनामकर्मेति भण्यते। पर किंतु जैनमते जीवो हिसाभावेन परिणमति परघातनाम सहकारिकारण भवति इति नास्ति विरोध इति प्रथमगाथा गता।

तस्मात्कि दूषण ? शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन तावदपरिणामी हिसापरिणामरहितो जीवो जैनागमे कथित, कथ ? इति चेत्, **'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'** इति वचनात्, व्यवहारेण तु परिणामीति। भवदीयमते पुनर्यथा शुद्धनयेन तथाऽशुद्धनयेनाप्युपघातको हिंसक कोऽपि नास्ति। कस्मात् ? इति चेत्, यस्मादेकातेन कर्म चैव हि स्फुटमन्यत् कर्मम् हति, न चात्मेति पूर्वसूत्रे भणितमिति। एव हिसाविचारमुख्यत्वेन गाथाद्वय गतम्।

शका - श्रुति याने क्या ?

समाधान - **श्रुति याने आप साख्यलोगों का आगम**। यह प्रथम गाथा का अर्थ हुआ।

शका - इस प्रकार के मत में क्या दोष है ?

समाधान - इस प्रकार आपके मत में (तुम्हारे साख्यमत में) कोई भी जीव अब्रह्मचारी नहीं ठहरता हे। किन्तु जैसे शुद्धनिश्चयनय से सभी जीव ब्रह्मचारी हैं उसी एकात से अशुद्धनिश्चयनय से भी सभी जीव ब्रह्मचारी ही हैं क्योंकि पुवेदाख्यकर्म स्त्रीवेदाख्यकर्म की अभिलाषा करता है, जीव कुछ भी अभिलाषा नहीं करता है, ऐसा आपका पूर्व कथन हे और वह तो प्रत्यक्ष से विरुद्ध है। इस प्रकार अब्रह्मचर्य का कथन करने वाली दो गाथायें हुई।

जिस कारण से प्रकृति अन्य के कर्म का नाश करती है और किसी दूसरे के कर्म के द्वारा उस प्रकृति का भी नाश किया जाता है, और जीव किसी को नहीं मारता है तथा दूसरों के द्वारा जीव का भी नाश नहीं किया जाता है। इस ही अर्थ से निश्चित जैनमत में परघात नामकर्म ऐसा कहा जाता है। लेकिन जैनमत में जीव हिसाभाव से परिणमन करता है तो उस समय परघात नामकर्म सहकारी कारण है इसमें विरोध नहीं, यह प्रथम गाथा का अर्थ हुआ।

शका - इससे क्या दोष आता है ?

समाधान - शुद्ध परिणामिक परमभाव ग्राहकवाले शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से जीव अपरिणामी है, हिसा परिणाम से रहित है, ऐसा जैन आगम में कहा गया है। कैसे ? कहोगे तो **'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'** ऐसा आगम वचन है। लेकिन व्यवहारनय से जीव परिणामी है, (हिसा करने वाला जीव हिसाभाव से परिणत है।)

आपके मत में (तुम्हारे साख्य मत में) जैसे शुद्धनय सें कोई भी जीव हिसक नहीं है वैसे अशुद्धनय से भी कोई भी जीव हिसक-उपघात करने वाला नहीं है। क्योंकि एकात से कर्म ही अन्य कर्म का नाश करता हे, आत्मा किसी का नाश नहीं करता है, इस तरह पहले सूत्र में कहा गया है। इस प्रकार हिसा के विचार की मुख्यता से कथन करनेवाली दो गाथायें पूर्ण हुई।

अप्पा णिच्चाऽसखेज्जपदेसो देसिदो दु समयम्मि आत्मा द्रव्यार्थिकनयेन नित्यस्तथा चासख्यातप्रदेशो देशित समये परमागमे तस्यात्मन शुद्धचैतन्यान्वयलक्षणद्रव्यत्व तथैवासख्यातप्रदेशत्व च पूर्वमेव तिष्ठति। **ण वि सो सक्कदि तत्तो हीणो अहियो व कादु जे** तद्द्रव्य प्रदेशत्व च तत्प्रमाणादधिक हीन वा कर्तुम् नायाति इति हेतोरात्मा आत्मान करोतीति वचन मिथ्येति। अथ मत असख्यातमान जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन बहुभेद तिष्ठति। तेन कारणेन जघन्यमध्यमोत्कृष्ट रूपेणासख्यातप्रदेशत्व जीव करोति, तदपि न घटते यस्मात्कारणात्। **जीवस्स जीवरूव वित्थरदो जाण लोकमित्त हि** जीवस्य जीवरूप प्रादेशापेक्षया विस्तरतो महामत्स्यकाले लोकपूरणकाले वा अथवा जघन्यत सूक्ष्मनिगोदकाले नानाप्रकारमध्यमावगाहशरीरग्रहणकाले वा प्रदीपवद्विस्तारोपसहारवशेन लोकमात्र-प्रदेशमेव जानीहि हि स्फुट। **तत्तो सो कि हीणो अहिओ व कद भणसि दव्व** तस्माल्लोकमात्रप्रदेशप्रमाणात्स जीव कि हीनोऽधिको वा कृतो येन त्व भणसि आत्मद्रव्य कृत किंतु नैवेति। **अह जाणगो दु भावो णाणसहावेण अत्थि देदि मद** अथ हे शिष्य। ज्ञायको भाव पदार्थ आत्मा ज्ञानरूपेण पूर्वमेवास्तीति मत सम्मतमेव। **तम्हा ण वि अप्पा अप्पय तु सयमप्पणो कुणदि** यस्मान्निर्मलानन्दैकज्ञानस्वभावशुद्धात्मा पूर्वमेवास्ति तस्मादात्मा कर्ता आत्मान कर्मतापन्न स्वयमेवात्मना कृत्वा नैव करोतीत्येक दूषण। द्वितीय च निर्विकारपरमतत्त्वज्ञानी तु कर्ता न भवतीति पूर्वमेव भणितमास्ते। एव पूर्वपक्षपरिहाररूपेण तृतीयातरस्थले गाथाचतुष्टय गतम्।

यदि तू कहेगा कि 'असख्यात के परिमाण में जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट आदि बहुत भेद हैं, इस कारण से जीव जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट रूप से असख्यातप्रदेशत्व को करता है' तो वह मान्यता भी घटित नहीं होती है, क्योंकि जीव का जो जीवरूप है वह प्रदेशों की अपेक्षा से जब विस्तार को प्राप्त हो जाता है, तब महामत्स्य के काल में या लोकपूरणकाल में अथवा जघन्यरूप से सूक्ष्म निगोदिया के शरीर के काल में या नाना प्रकार के मध्यम अवगाहना वाले शरीरों के ग्रहण के काल में दीपक के प्रकाश के समान विस्तार और उपसहार के वश से भी लोकमात्र (असख्यातप्रदेशमात्र) प्रदेशवाला ही रहता है, ऐसा निश्चित जानो। ऐसी दशा में जीव लोकमात्र प्रदेश के परिमाण से भी हीन या अधिक किया जा सकता है क्या, जिससे कि तू आत्मद्रव्य को किया गया हुआ कहता है ? किन्तु आत्मा तो कभी हीन या अधिक नहीं होता, लोकप्रमाण प्रदेशवाला ही रहता है।

हे शिष्य ! ज्ञायक भाव अर्थात् पदार्थ जो आत्मा है वह ज्ञानरूप से पहले से (सदा से) ही है, ऐसा हमारा मत है। क्योंकि निर्मल आनद एक ज्ञान स्वभाववाला शुद्धात्मा पहले से ही है, **"इसलिये आत्मा स्वय ही अपने द्वारा आत्मा को करता है"** यह एक दोष है, क्योंकि आत्मा ऐसा करता ही नहीं है। और **"निर्विकार परमतत्त्वज्ञानी को कर्ता मानना"** यह दूसरा दोष है, क्योंकि परमतत्त्वज्ञानी तो कर्ता नहीं होता है, ऐसा पहले ही कहा गया है।

इस प्रकार पूर्व पक्ष का परिहार करनेवाले तृतीय अतरस्थल में ४ गाथायें पूर्ण हुई।

शका - **जीव से प्राण भिन्न हैं अथवा अभिन्न हैं ?** यदि जीव से प्राण अभिन्न हैं तो जैसे जीव का नाश नहीं होता है, वैसे प्राणों का भी नाश नहीं होता है तो हिसा कैसे ? यदि जीव से प्राण भिन्न हैं तो फिर जीव के प्राणों का घात होने पर भी जीव का क्या बिगाड हुआ ? वहाँ भी हिसा नहीं है।

कश्चिदाह जीवात्प्राणा भिन्ना अभिन्ना वा ? यद्यभिन्नास्तदा यथा जीवस्य विनाशो नास्ति तथा प्राणानामपि विनाशो नास्ति कथ हिसा ? अथ भिन्नास्तर्हि जीवस्य प्राणघातेऽपि किमायात ? तत्रापि हिसा नास्तीति। तन्न, कायादिप्राणै सह कथचिद् भेदाभेद । कथ ? इति चेत्, तप्ताय पिंडवद्वर्तमानकाले पृथक्त्व कर्तुम् नायाति तेन कारणेन व्यवहारेणाभेद । निश्चयेन पुनर्मरणकाले कायादिप्राणा जीवेन सहैव न गच्छति तेन कारणेन भेद । यद्येकातेन भेदो भवति तर्हि यथा परकीये काये छिद्यमाने भिद्यमानेऽपि दु ख न भवति तथा स्वकीयेकायेऽपि दु ख न प्राप्नोति। न च तथा, प्रत्यक्ष विरोधात्। ननु तथापि व्यवहारेण हिसा जाता न तु निश्चयेनेति ? सत्यमुक्त भवता व्यवहारेण हिसा तथा पापमपि नारकादिदु खमपि व्यवहारेणेत्यस्माक सम्मतमेव। तन्नारकादिदु ख भवतामिष्ट चेत्तर्हि हिसा कुरुत। भीतिरस्ति ? इति चेत्, तर्हि त्यज्यतामिति। तत स्थितमेतत् एकातेन साख्यमतवदकर्ता न भवति कि तर्हि ? रागादिविकल्परहितसमाधिलक्षणभेदज्ञानकाले कर्मण कर्ता न भवति शेषकाले कर्तेति व्याख्यान-मुख्यतयातरस्थलत्रयेण चतुर्थस्थले त्रयोदश सूत्राणि गतानि।।३५८ से ३७०।।

समाधान - ऐसी बात नहीं है। क्योंकि कायादिरूप प्राणों के साथ जीव का कथचित् भेद है और कथचित् अभेद है।

शका - प्राणों के साथ जीव का कथचित् भेद और कथंचित् अभेद कैसे है ?

समाधान - जैसे ताप्तायमान लोहे के गोले में उसी समय अग्नि को पृथक् नहीं किया जा सकता है, उसी प्रकार वर्तमान काल में कायादि प्राणों को जीव से पृथक् नहीं किया जा सकता है, इसलिये व्यवहारनय से कायादि प्राणों का जीव के साथ अभेद है। किन्तु निश्चयनय से मरणकाल में कायादि प्राण जीव के साथ नहीं जाते हैं, इस कारण से प्राणों के साथ जीव का भेद भी है। यदि एकात से भेद ही माना जाय तो फिर जैसे दूसरे के शरीर के छिन्न-भिन्न होने पर भी अपने को दु ख नहीं होता है वैसे अपने शरीर के छिन्न-भिन्न होने पर भी दु ख नहीं प्राप्त होगा। किन्तु ऐसा तो नहीं है क्योंकि इसमें तो प्रत्यक्ष से विरोध आता है।

शका - तथापि यह हिसा तो व्यवहार से हुई, लेकिन निश्चय से तो हिंसा नहीं हुई ?

समाधान - आपकी यह बात सत्य है, व्यवहार से हिंसा होती है तथा पाप भी और नारकादि दुःख भी व्यवहार से होते हैं। यह बात हमको मान्य ही है। वे नारकादि दु ख तुम्हें इष्ट हैं तो हिंसा करो और यदि नारकादिक दु ख से तुम्हें डर लगता है तो हिंसा करना छोडो।

इससे यह सिद्ध हुआ कि, **साख्यमत के समान जैनमत में आत्मा एकात से अकर्ता नहीं है,** किन्तु रागादि विकल्परहित समाधि (स्वानुभूति) लक्षणवाले **भेदज्ञान के काल में आत्मा कर्मों का कर्ता नहीं है,** अवशेष **काल में कर्मो का कर्ता है।** इस प्रकार के कथन की मुख्यता से इस चौथे स्थल में तीन अतरस्थलों के द्वारा १३ गाथायें पूर्ण हुई।।३५८ से ३७०।।

अथ यावत्काल निजशुद्धात्मानमात्मात्वेन न जानाति, पचेंद्रियविषयादिक परद्रव्य च परत्वेन न जानात्यय जीवस्तावत्काल रागद्वेषाभ्या परिणमतीति (आवेदयति)। अथवा बहिरगपचेन्द्रियविषयत्यागसहकारित्वेनाविक्षिप्तचित्त-भावनोत्पन्ननिर्विकारसुखामृतरसास्वादबलेन विषयकर्मकायाना विघात करोम्यहमित्यजानन् स्वसवित्तिरहितकायक्लेशेनात्मान दमयति। तस्य भेदज्ञानार्थम् सिद्धान्त प्रयच्छति -

दंसणणाणचरित्त किंचि वि णत्थि दु अचेदणे विसए। (३६६)
तम्हा कि घादयदे चेदयिदा तेसु विसएसु।। ३७१।।
दसणणाणचरित्त किंचि वि णत्थि दु अचेदणे कम्मे। (३६७)
तम्हा कि घादयदे चेदयिदा तम्मि कम्मम्हि।। ३७२।।
दसणणाचरित्त किंचि वि णत्थि दु अचेदणे काये। (३६८)
तम्हा कि घादयदे चेदयिदा तेसु कायेसु।। ३७३।।
णाणस्स दसणस्स य भणिदो घादो तहा चरित्तस्स। (३६९)
ण वि तम्हि को वि पुग्गलदव्वे घादो दु णिद्दिदट्ठो।। ३७४।।

अब, जव तक अपने शुद्धात्मा को आत्मत्व से (यह आत्मा मैं हूँ) नहीं जानता है और पाचों इद्रियों के विषय आदि परकीय द्रव्य को अपने से भिन्न पररूप से नहीं जानता है तब तक जीव राग-द्वेष रूप से परिणमन करता है। अथवा बाहर के पचेंद्रिय विषय के त्याग की सहायता से शात चित्त की भावना से उत्पन्न होने वाले निर्विकार सुखमय अमृतरसास्वाद के बल से "मैं विषय, कर्म, शरीरों-कार्यों, का घात करता हूँ" यह न जाननेवाला स्वसवित्ति से (स्वानुभूति से) रहित कायक्लेश से आत्मा का दमन करता है, उसको **भेदज्ञान होने के लिये सिद्धांत कहते हैं -**

गाथार्थ - **(दसणणाणचरित्त)** दर्शन-ज्ञान-चारित्र **(अचेदणे विसए दु)** अचेतन विषय में तो **(किचि वि)** कुछ भी **(णत्थि)** नहीं हैं **(तम्हा)** इसलिए **(चेदयिदा)** आत्मा **(तेसु विसएसु)** उन विषयों में **(कि घादयदे)** क्या घात करेगा ?

(दसणणाणचरित्त) दर्शन-ज्ञान-चारित्र **(अचेदणे कम्मे दु)** अचेतन कर्म में तो **(किचि वि णत्थि)** कुछ भी नहीं हैं **(तम्हा)** इसलिये **(तेसु कायेसु)** उन कार्यों में **(चेदयिदा)** आत्मा **(कि घादयदे)** क्या घात करेगा ?

(दसणणाणचरित्त) दर्शन-ज्ञान-चारित्र **(अचेदणे काये दु)** अचेतन काय में तो **(किचि वि णत्थि)** कुछ भी नहीं हैं **(तम्हा)** इसलिये **(तेसु कायेसु)** उन कार्यों में **(चेदयिदा)** आत्मा **(कि घादयदे)** क्या घात करेगा ?

(णाणस्स) ज्ञान का **(य दसणस्स)** और दर्शन का **(तहा चरित्तस्स)** तथा चारित्र का **(घादो)** घात **(भणिदो)** कहा है **(तम्हि पुग्गलदव्वे दु)** उस पुद्‌गल द्रव्य में तो **(को वि घादो)** कुछ भी घात **(ण वि णिद्दिदट्ठो)** निर्दिष्ट नहीं किया है।

कश्चिदाह जीवात्प्राणा भिन्ना अभिन्ना वा ? यद्यभिन्नास्तदा यथा जीवस्य विनाशो नास्ति तथा प्राणानामपि विनाशो नास्ति कथ हिसा ? अथ भिन्नास्तर्हि जीवस्य प्राणघातेऽपि किमायात ? तत्रापि हिसा नास्तीति। तन्न, कायादिप्राणै सह कथचिद् भेदाभेद । कथ ? इति चेत्, तप्ताय पिडवद्वर्तमानकाले पृथक्त्व कर्तुम् नायाति तेन कारणेन व्यवहारेणाभेद । निश्चयेन पुनर्मरणकाले कायादिप्राणा जीवेन सहैव न गच्छति तेन कारणेन भेद। यद्येकातेन भेदो भवति तर्हि यथा परकीये काये छिद्यमाने भिद्यमानेऽपि दु ख न भवति तथा स्वकीयेकायेऽपि दु ख न प्राप्नोति। न च तथा, प्रत्यक्ष विरोधात्। ननु तथापि व्यवहारेण हिसा जाता न तु निश्चयेनेति ? सत्यमुक्त भवता व्यवहारेण हिंसा तथा पापमपि नारकादिदु खमपि व्यवहारेणेत्यस्माक सम्मतमेव। तन्नारकादिदु ख भवतामिष्ट चेत्तर्हि हिसा कुरुत। भीतिररस्ति ? इति चेत्, तर्हि त्यज्यतामिति। तत स्थितमेतत् एकातेन साख्यमतवदकर्ता न भवति किं तर्हि ? रागादिविकल्परहितसमाधिलक्षणभेदज्ञानकाले कर्मण कर्ता न भवति शेषकाले कर्तेति व्याख्यान-मुख्यतयातरस्थलत्रयेण चतुर्थस्थले त्रयोदश सूत्राणि गतानि।। ३५८ से ३७०।।

समाधान - ऐसी बात नहीं है। क्योंकि कायादिरूप प्राणों के साथ जीव का कथचित् भेद है और कथंचित् अभेद है।

शका - प्राणों के साथ जीव का कथचित् भेद और कथचित् अभेद कैसे है ?

समाधान - जैसे ताप्तायमान लोहे के गोले में उसी समय अग्नि को पृथक् नहीं किया जा सकता है, उसी प्रकार वर्तमान काल में कायादि प्राणों को जीव से पृथक् नहीं किया जा सकता है, इसलिये व्यवहारनय से कायादि प्राणों का जीव के साथ अभेद है। किन्तु निश्चयनय से मरणकाल में कायादि प्राण जीव के साथ नहीं जाते हैं, इस कारण से प्राणों के साथ जीव का भेद भी है। यदि एकात से भेद ही माना जाय तो फिर जैसे दूसरे के शरीर के छिन्न-भिन्न होने पर भी अपने को दु ख नहीं होता है वैसे अपने शरीर के छिन्न-भिन्न होने पर भी दु ख नहीं प्राप्त होगा। किन्तु ऐसा तो नहीं है क्योंकि इसमें तो प्रत्यक्ष से विरोध आता है।

शका - तथापि यह हिसा तो व्यवहार से हुई, लेकिन निश्चय से तो हिंसा नहीं हुई ?

समाधान - आपकी यह बात सत्य है, व्यवहार से हिसा होती है तथा पाप भी और नारकादि दु ख भी व्यवहार से होते हैं। यह बात हमको मान्य ही है। वे नारकादि दु ख तुम्हें इष्ट हैं तो हिंसा करो और यदि नारकादिक दु ख से तुम्हें डर लगता है तो हिसा करना छोडो।

इससे यह सिद्ध हुआ कि, **साख्यमत के समान जैनमत में आत्मा एकात से अकर्ता नहीं है,** किन्तु रागादि विकल्परहित समाधि (स्वानुभूति) लक्षणवाले **भेदज्ञान के काल में आत्मा कर्मों का कर्ता नहीं है, अवशेष काल में कर्मो का कर्ता है।** इस प्रकार के कथन की मुख्यता से इस चौथे स्थल में तीन अतरस्थलों के द्वारा १३ गाथायें पूर्ण हुई।। ३५८ से ३७०।।

अथ यावत्काल निजशुद्धात्मानमात्मात्वेन न जानाति, पचेंद्रियविषयादिक परद्रव्य च परत्वेन न जानात्यय जीवस्तावत्काल रागद्वेषाभ्या परिणमतीति (आवेदयति)। अथवा बहिरगपचेन्द्रियविषयत्यागसहकारित्वेनाविक्षिप्तचित्त-भावनोत्पन्ननिर्विकारसुखामृतरसास्वादबलेन विषयकर्मकायाना विघात करोम्यहमित्यजानन् स्वसवित्तिरहितकायक्लेशेनात्मान दमयति। तस्य भेदज्ञानार्थम् सिद्धान्त प्रयच्छति -

दसणणाणचरित्त किंचि वि णत्थि दु अचेदणे विसए। (३६६)
तम्हा कि घादयदे चेदयिदा तेसु विसएसु।। ३७१।।
दसणणाणचरित्त किचि वि णत्थि दु अचेदणे कम्मे। (३६७)
तम्हा कि घादयदे चेदयिदा तम्मि कम्मम्हि।। ३७२।।
दसणणाचरित्त किंचि वि णत्थि दु अचेदणे काये। (३६८)
तम्हा कि घादयदे चेदयिदा तेसु कायेसु।। ३७३।।
णाणस्स दसणस्स य भणिदो घादो तहा चरित्तस्स। (३६९)
ण वि तम्हि को वि पुग्गलदव्वे घादो दु णिद्दिट्ठो।। ३७४।।

अब, जब तक अपने शुद्धात्मा को आत्मत्व से (यह आत्मा मैं हूँ) नहीं जानता है और पाचों इद्रियों के विषय आदि परकीय द्रव्य को अपने से भिन्न पररूप से नहीं जानता है तब तक जीव राग-द्वेष रूप से परिणमन करता है। अथवा बाहर के पचेंद्रिय विषय के त्याग की सहायता से शात चित्त की भावना से उत्पन्न होने वाले निर्विकार सुखमय अमृतरसास्वाद के बल से "मैं विषय, कर्म, शरीरों-कार्यो, का घात करता हूँ" यह न जाननेवाला स्वसवित्ति से (स्वानुभूति से) रहित कायक्लेश से आत्मा का दमन करता है, उसको **भेदज्ञान होने के लिये सिद्धात** कहते हैं -

गाथार्थ - (**दसणणाणचरित्त**) दर्शन-ज्ञान-चारित्र (**अचेदणे विसए दु**) अचेतन विषय में तो (**किंचि वि**) कुछ भी (**णत्थि**) नहीं हैं (**तम्हा**) इसलिए (**चेदयिदा**) आत्मा (**तेसु विसएसु**) उन विषयों में (**कि घादयदे**) क्या घात करेगा ?

(**दसणणाणचरित्त**) दर्शन-ज्ञान-चारित्र (**अचेदणे कम्मे दु**) अचेतन कर्म में तो (**किचि वि णत्थि**) कुछ भी नहीं हैं (**तम्हा**) इसलिये (**तेसु कायेसु**) उन कायों में (**चेदयिदा**) आत्मा (**कि घादयदे**) क्या घात करेगा ?

(**दसणणाणचरित्त**) दर्शन-ज्ञान-चारित्र (**अचेदणे काये दु**) अचेतन काय में तो (**किचि वि णत्थि**) कुछ भी नहीं हैं (**तम्हा**) इसलिये (**तेसु कायेसु**) उन कायों में (**चेदयिदा**) आत्मा (**कि घादयदे**) क्या घात करेगा ?

(**णाणस्स**) ज्ञान का (**य दसणस्स**) और दर्शन का (**तहा चरित्तस्स**) तथा चारित्र का (**घादो**) घात (**भणिदो**) कहा है (**तम्हि पुग्गलदव्वे दु**) उस पुद्गल द्रव्य में तो (**को वि घादो**) कुछ भी घात (**ण वि णिद्दिट्ठो**) निर्दिष्ट नहीं किया है।

जीवस्स जे गुणा केई णत्थि ते खलु परेसु दव्वेसु। (३७०)
तम्हा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसएसु।। ३७५।।
रागो दोसो मोहो जीवस्स दु जे अणण्णपरिणामा। (३७१)
एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादी।। ३७६।।

दर्शनज्ञानचारित्र किमपि नास्ति। केषु ? शब्दादिपचेंद्रियविपयेषु ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मसु औदारिकादिपचकायेषु। कथभूतेषु तेषु ? अचेतनेषु। तस्मात्कि घातयते चेतयिता आत्मा तेषु जडस्वरूपविपयकर्म कायेपु? न किमपि।

किच, शब्दादिपचेंद्रियविषयाभिलाषरूपो ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मवधकारणभूत कायममत्वरूपश्च योऽसौ मिथ्यात्व-रागादिपरिणामो मनसि तिष्ठति तस्य घात कर्तव्य, ते च शब्दादयो रागादीना वहिरग कारण भूतास्त्याज्या इति भावार्थ।

तस्यैव पूर्वोक्तगाथात्रयस्य विशेष विवरण करोति। तद्यथा-**णाणस्स दसणस्स य भणिदो घादो तहा चरित्तस्स** शब्दादिपचेंद्रियाभिलाषारूपेण कायममत्वरूपेण वा ज्ञानावरणादिकर्मवधनिमित्तमनतानुवध्यादिरागद्वेषरूप यन्मनसि मिथ्याज्ञान तिष्ठति तस्य मिथ्याज्ञानस्य निर्विकल्पसमाधिप्रहरणेन सर्वज्ञैर्घातो भणित न केवल मिथ्याज्ञानस्य मिथ्यादर्शनस्य च। तथैव मिथ्यात्वचारित्रस्य च। **ण वि तम्हि कोवि पुग्गलदव्वे घादो दु णिद्दिट्ठो** न च तत्राचेतने शब्दादिविषयकर्मकायरूपे पुद्गलद्रव्ये कोऽपि घातो निर्दिष्ट।

(जे केई) जो कुछ **(जीवस्स गुणा)** जीव के गुण हैं **(ते)** वे **(खलु)** निश्चय से **(परेसु दव्वेसु)** परद्रव्यों में **(णत्थि)** नहीं हैं **(तम्हा)** इसलिये **(सम्मादिट्ठिस्स)** सम्यग्दृष्टि को **(विसएसु)** विषयों में **(रागो दु)** राग ही **(णत्थि)** नहीं है।

(दु) लेकिन **(जे रागो दोसो मोहो)** जो राग, द्वेष, मोह हैं वे **(जीवस्स)** जीव के **(दु)** ही **(अणण्णपरिणामा)** अनन्य परिणाम हैं **(एदेण कारणेण)** इसी कारण से **(रागादी)** रागादि **(सद्दादिसु)** शब्दादिकों में **(णत्थि)** नहीं हैं।

टीकार्थ - अचेतन शब्दादि पचेंद्रिय विषयों में, ज्ञानवरणादि द्रव्य कर्मो में, औदारिकादि पाच शरीरों में दर्शन, ज्ञान, चारित्र कुछ भी नहीं हैं। इसलिये चेतन आत्मा उन अचेतन द्रव्यों में, विषयों में, कर्मो में, शरीरों में क्या घात करता हे? याने **चेतन आत्मा उन अचेतन द्रव्यों का कुछ भी घात नहीं कर सकता है।**

इसका विशेप कथन यह है कि, शब्दादि पचेंद्रियों के विषयों की अभिलाषारूप, और ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म वध के कारणभूत शरीर का ममत्वरूप, जो मिथ्यात्व रागादि परिणाम मन में है उसका घात करना कर्तव्य है, और वे शब्दादिक रागादिभावों के बहिरग कारणभूत होने से त्याज्य हैं। यह भावार्थ है।

ऊपर कही तीन गाथाओं का विशेष विवरण करते हैं - शब्दादि पाचों इंद्रियों के विषयों की अभिलाषारूप से और शरीर के साथ ममत्वरूप से होनेवाला अनतानुवधि आदि राग-द्वेषरूप जो मिथ्याज्ञान है, वह ज्ञानावरणादि कर्मो के वध का निमित्त कारण है। **वही मिथ्याज्ञान जो मन में रहता है उस मिथ्याज्ञान का निर्विकल्प समाधिरूप हथियार से घात करना चाहिये** ऐसा सर्वज्ञ देव ने कहा है। केवल मिथ्याज्ञान का ही घात करना है ऐसा नहीं, तो मिथ्यादर्शन का भी घात करना चाहिये। मिथ्याचारित्र का भी घात करना चाहिये। वहाँ अचेतन शब्दादि विषय, द्रव्यकर्म और शरीररूप इन पुद्गल द्रव्यों में कुछ भी घात करना निर्दिष्ट नहीं किया गया है।

कि च, यथा घटाधारभूते प्रदीपे हते सति घटो हतो न भवति तथा रागादिनिमित्तभूते शब्दादिपचेंद्रियविषये हतेऽपि सति मनसि गता रागादयो हता न भवति न चान्यस्य घाते कृते सत्यन्स्य घातो भवति। कस्मात् ? अति प्रसगादिति भाव । **जीवस्स जे गुणा केई णत्थि ते खलु परेसु दव्वेसु** यस्माज्जीवस्य ये केचन सम्यक्त्वादयो गुणास्ते परेषु परद्रव्येषु शब्दादिविषयेषु न सति खलु स्फुट। **तम्हा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसयेसु** तस्मात्कारणान्निर्विषयस्वशुद्धात्मभावनोत्थसुखतृप्तस्य सम्यग्दृष्टेर्विषयेषु रागो नास्तीति। **रागो दोसो मोहो जीवस्स दु जे अणण्ण परिणामा** रागद्वेषमोहा यस्मादज्ञानिजीवस्याशुद्धनिश्चयेनाभिन्नपरिणामा । **एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादी** तेन कारणेन शब्दादिमनोज्ञामनोज्ञपचेंद्रियविषयेष्वचेतनेषु यद्यप्यज्ञानी जीवो भ्रातिज्ञानेन शब्दादिषु गगादीन् कल्पयत्यारोपयति तथापि शब्दादिषु रागादयो न सति। कस्मात् ? शब्दादीनामचेतनत्वात्। तत स्थित तावदेव रागद्वेषद्वयमुदयते बहिरात्मनो यावन्मनसि त्रिगुप्तिरूप स्वसवेदनज्ञान नास्ति। इति गाथाषट्क गतम्।। ३७१ से ३७६।।

एवमेतदायाति शब्दादींद्रियविषया अचेतनाश्चेतन रागाद्युत्पत्तौ निश्चयेन कारण न भवति -

अण्णदविएण अण्णदवियस्स णो कीरदे गुणविघादो[1] ।(३७२)
तम्हा दु सव्वदव्वा उप्पज्जते सहावेण।। ३७७।।

इसका स्पष्टीकरण यह है कि, जैसे घडे के आधार से रहनेवाले प्रदीप का नाश होने पर घडे का नाश नहीं होता है, वैसे रागादि को निमित्त मात्र होनेवाले शब्दादि पचेंद्रिय विषयों का घात होने पर भी मन में रहनेवाले रागादिकों का घात नहीं होता है क्योंकि **अन्य का घात करने पर अन्य का (अन्य दूसरे किसी का) घात नहीं होता है, ऐसा न्याय है,** अन्यथा फिर अतिप्रसगदोष आता है, कोई भी व्यवस्था नहीं बनती। क्योंकि जीव के जो सम्यक्त्व आदि गुण हैं वे शब्दादि-विषय-परद्रव्यों में नहीं हैं, यह स्पष्ट है।

इसलिये निर्विपय स्वशुद्धात्म भावना से उत्पन्न होनेवाले, सुखमय तृप्तिवाले सम्यग्दृष्टि (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव को विषयों में राग नहीं हे। जिस कारण से अशुद्ध निश्चयनय से अज्ञानी जीव के राग-द्वेष-मोह अनन्य परिणाम हैं, इस कारण से अचेतन शब्दादि मनोज्ञ-अमनोज्ञ पचेद्रिय विषयों में यद्यपि अज्ञानी जीव भ्रातिज्ञान से (मिथ्याज्ञान से) रागादिकों की कल्पना आरोपित करता है, तथापि शब्दादिकों में रागादि नहीं है क्योंकि शब्दादिकों को अचेतनपना है।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, जब तक बहिरात्मा के मन में (मिथ्यात्व, सासादन, मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव के चित्त में) त्रिगुप्तिरूप **स्वसवेदन ज्ञान (स्वानुभूति) नहीं है तब तक राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं।**

इस तरह ६ गाथाओं का अर्थ पूर्ण हुआ।। ३७१ से ३७६।।

इस पूर्वोक्त छह गाथाओं के कथन से यह सिद्ध हुआ कि, शब्दादि-इद्रिय-विषय अचेतन हैं, वे चेतनरूप गगादिकों की उत्पत्ति में निश्चय से कारण नहीं हैं -

गाथार्थ - **(अण्णदविएण)** अन्य द्रव्य से **(अण्णदवियस्स)** अन्य द्रव्य के **(गुणविघादो)** गुणों का विघात **(णो कीरदे)** नहीं किया जाता है **(तम्हा)** इसलिये **(दु)** तो **(सव्वदव्वा)** सभी द्रव्य **(सहावेण)** अपने-अपने स्वभाव से **(उप्पज्जते)** उत्पन्न होते हैं, परिणमन करते हैं।

---

[1] पाठान्तर - गुणुग्घादो ।

अण्णदविएण अण्णदवियस्स णो कीरदे गुणविघादो अन्यद्रव्येण वहिरगनिमित्तभूतेन कुभकारादिनाऽन्य-द्रव्यस्योपादानरूपस्य मृत्तिकादेर्न क्रियते। स क ? चेतनस्याचेतनरूपेण, अचेतनस्य चेतनरूपेण वा चेतनाचेतनगुणघातो विनाशो न क्रियते यस्मात्। **तम्हा दु सव्वदव्वा उप्पज्जते सहावेण** तस्मात्कारणान्मृत्तिकादि सर्वद्रव्याणि कर्तृणि घटादिरूपेण जायमानानि स्वकीयोपादानकारणेन मृत्तिकादिरूपेण जायते न च कुभकारादि वहिरगनिमित्तरूपेण। करमात् ? इति चेत्, **उपादानकारणसदृश कार्यम् भवतीति** यस्मात्। तेन कि सिद्ध ? यद्यपि पचेंद्रियविषयरूपेण शव्दादीना वहिरगनिमित्तभूतेनाज्ञानिजीवस्य रागादयो जायते तथापि जीवस्वरूपा एव चेतना न पुन शव्दादिरूपा अचेतना भवतीति भावार्थ। एव कोऽपि प्राथमिकशिष्यश्चित्तस्थानुरागादीन्न जानाति वहिरगशव्दादिविषयाणा रागादिनिमित्ताना घात करोमीति निर्विकल्पसमाधिलक्षणभेदज्ञानाभावाच्चिंतयति तस्य सवोधनार्थम् पूर्वमूगाथाषट्केन सह सूत्र सप्तक गतम्।। ३७७।।

अथ व्यवहारेण कर्तृकर्मणोर्भेद, निश्चयेन पुनर्यदेव कर्तृ तदेव कर्मेत्युपदिशति -

जह सिप्पिओ दु कम्म कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि। (३४९)
तह जीवो वि य कम्म कुव्वदि ण य तम्मओ होदि।। ३७८।।

टीकार्थ - कुभकारादि वहिरग निमित्तवाले अन्य द्रव्य से उपादानरूप मिट्टी के अचेतन गुण का नाश नहीं किया जाता क्योंकि चेतन के चेतनगुण का अचेतन से अथवा अचेतन के अचेतनगुण का चेतन से नाश नहीं किया जाता है।

इसलिये मिट्टी आदि सब द्रव्य जो घट आदि के रूप में उपजते हैं वे सव मृत्तिका आदि रूप अपने-अपने उपादान कारण के रूप में उत्पन्न होते हैं, वहिरग निमित्तकारण कुभकारादि के रूप में नहीं उत्पन्न होते हैं, क्योंकि **उपादान कारण के सदृश ही कार्य होता है,** ऐसा अटल सिद्धात है।

शका - उससे क्या सिद्ध हुआ ?

समाधान - यद्यपि पचेंद्रिय विषयरूप शव्दादिकों के वहिरग निमित्त मात्र से अज्ञानी जीव के रागादि उत्पन्न होते हैं तथापि वे रागादि चेतनमय जीव स्वरूप ही हैं, वे रागादि शव्दादिरूप अचेतन नहीं हैं। यह भावार्थ है।

इस प्रकार कोई प्राथमिक शिष्य अपने चित्त में रहनेवाले रागादिकों को नहीं जानता है, किन्तु "उन रागादिभावों को निमित्तमात्र होनेवाले वहिरग शव्दादि विषयों का मैं घात करता हूँ," इस तरह निर्विकल्प समाधि (स्वानुभूति) लक्षणवाले भेदज्ञान के अभाव में चितन करता है, उसको समझाने के लिये पूर्व की ६ गाथाओं के साथ यह सातवीं गाथा कही है।। ३७७।।

अव, व्यवहार से कर्ता और कर्म का भेद है लेकिन निश्चयनय से जो ही कर्ता है वह ही कर्म है, ऐसा उपदेश करते हैं -

गाथार्थ - (जह) जैसे (सिप्पिओ दु) शिल्पी-सुनार आदि कारीगर (कम्म) आभूषणादिक कर्म को (कुव्वदि) करता है (दु) परन्तु (सो) वह (तम्मओ ण य होदि) आभूषणादिकों से तन्मय नहीं होता है (तह) वैसे (जीवो वि य) जीव भी (कम्म) ज्ञानावरणादि कर्म को (कुव्वदि) करता है (य) तो भी (ण तम्मओ होदि) तन्मय नहीं होता।

जह सिप्पिओ दु करणेहि कुव्वदि ण सो दु तम्मओ होदि। (३५०)
तह जीवो करणेहि कुव्वदि ण य तम्मओ होदि।। ३७९।।
जह सिप्पिओ दु करणाणि गिण्हदि ण सो दु तम्मओ होदि। (३५१)
तह जीवो करणाणि दु गिण्हदि ण य तम्मओ होदि।। ३८०।।
जह सिप्पि दु कम्मफल भुंजदि ण य सो दु तम्मओ होदि। (३५२)
तह जीवो कम्मफल भुजदि ण य तम्मओ होदि।। ३८१।।
एव ववहारस्स दु वत्तव्व दसण समासेण। (३५३)
सुणु णिच्छयस्स वयण परिणामकद तु ज होदि।। ३८२।।
जह सिप्पिओ दु चेट्ठ कुव्वदि हवदि य तहा अणण्णो सो । (३५४)
तह जीवो वि य कम्म कुव्वदि हवदि य अणण्णो सो ।। ३८३।।
जह चेट्ठ कुव्वतो दु सिप्पिओ णिच्च दुक्खिदो होदि। (३५५)
तत्तो सिया[१] अणण्णो तह चेट्ठतो दुही जीवो।। ३८४।।

(जह) जैसे (सिप्पिओ दु) कारीगर-शिल्पी (करणेहि) हथौडा आदि करणों से (कुव्वदि) कर्म करता है (दु) परन्तु (सो) वह (तम्मओ ण होदि) उनसे तन्मय नहीं होता। (तह) वैसे (जीवो) जीव (करणेहि) मन-वचन-काय आदि करणों से (कुव्वदि) कर्म को करता है (य) तो भी (तम्मओ ण होदि) उनसे तन्मय नहीं होता।

(जह) जैसे (सिप्पिओ दु) शिल्पी (करणाणि) करणों को (गिण्हदि) ग्रहण करता है (दु) तो भी (सो) वह (तम्मओ ण होदि) उनसे तन्मय नहीं होता है। (तह) उसी तरह (जीवो) जीव (करणाणि गिण्हदि) मन वचन कायरूप करणों को ग्रहण करता है (दु य) तो भी (तम्मओ ण होइ) उनसे तन्मय नहीं होता।

(जह) जैसे (सिप्पिओ दु) शिल्पी (कम्मफल) आभूषणादिक कर्मो के फल को (भुजदि) भोगता है (दु य) तो भी (सो) वह उनसे (तम्मओ ण होदि) तन्मय नहीं होता। (तह) वैसे (जीवो) जीव (कम्मफल) सुख-दु ख आदि कर्मफल को (भुजदि) भोगता हे (य) लेकिन (तम्मओ ण होदि) उनसे तन्मय नहीं होता।

(एव दु) इस तरह से तो (ववहारस्स दसण) व्यवहार का मत (समासेण) सक्षेप से (वत्तव्व) कहने योग्य हे (दु) और (ज) जो (णिच्छयस्स) निश्चयनय का (वयण) वचन है वह (परिणामकद) अपने परिणामों से किया हुआ (होदि) होता हे (सुणु) उसको सुनो।

(जह) जैसे (सिप्पिओ) शिल्पी (चेट्ठ) अपने परिणामरूप चेष्टा (कुव्वदि) करता हे (य) और (सो) वह (तहा अणण्णो हवदि) उस चेष्टा रूप भावकर्म से अनन्य-तन्मय है। (तह) वैसे (जीवो वि य) जीव भी (कम्म) अपने परिणामरूप चेष्टारूप कर्म को (कुव्वदि) करता है। (य) और (सो) वह (अणण्णो हवदि) उस भाव कर्म से अनन्य-तन्मय हे।

(जह) जैसे (सिप्पिओ) शिल्पी (चेट्ठ कुव्वतो) चेष्टा करता हुआ (णिच्च) नित्य (दुक्खिदो) दु खी (होदि) होता है (तत्तो सिया) उस दु ख से (अणण्णो सेय) अनन्य-तन्मय है (तह) वैसे (जीवो) जीव (चेट्ठतो दुही) चेष्टा करता हुआ दु खी होता है।

---

[१] पाठान्तर - तत्तो सेय ।

यथा लोके शिल्पी तु सुवर्णकारादि सुवर्णकुडलादि कर्म करोति, कै कृत्वा ? हस्तकुट्टकादि करणैरुपकरणै। हस्तकुट्टकाद्युपकरणानि च हस्तेन गृह्णाति, तथापि तै सुवर्णकुडलादिकर्महस्तकुट्टकादि करणैरुपकरणै सह तन्मयो न भवति। तथैवाज्ञानी जीवोऽपि निष्क्रियवीतरागस्वसवेदनज्ञानच्युत सन् ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्माणि करोति। कै कृत्वा ? मनोवचनकायव्यापाररूपै कर्मोत्पादककरणैरुपकरणै तथैव च कर्मोदयवशान्मनोवचनकाय व्यापाररूपाणि कर्मोत्पादककरणान्युपकरणानि सश्लेषरूपेण व्यवहारनयेन गृह्णाति तथापि ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्ममनोवचनकायव्यापार-रूपकर्मोत्पादकोपकरणै सह टकोत्कीर्णज्ञायकत्वेन भिन्नत्वात्तन्मयो न भवति। तथैव च स एव शिल्पी सुवर्णकारादि सुवर्णकुडलादिकर्मणि कृते सति यत्किमप्यशनपानादिना मूल्य लभते भुक्ते च तथापि तेनाशनपानादिना सह तन्मयो न भवति। तथा जीवोऽपि शुभाशुभकर्मफल बहिरगेष्टानिष्टाशनपानादिरूप निजशुद्धात्मभावनोत्थमनोहरानद-सुखास्वादमलभमानो भुक्ते न च तन्मयो भवति।

टीकार्थ - जैसे लोक में सुनार आदि कारीगर सुवर्ण के कुडलादि आभूषणादि को वनाता है। किनसे वनाता है ? हथौडे आदि उपकरणों के द्वारा वनाता है। उन हथौडे आदि उपकरणों को अपने हाथ से ग्रहण करता है तो भी उन सोने के कुडलादि आभूषणों और उपकरणों से वह तन्मय नहीं होता है। उसी प्रकार अज्ञानी (मिथ्यात्व-सासादन मिश्र-गुणस्थानवर्ती) जीव भी निष्क्रिय वीतराग स्वसवेदनज्ञान से च्युत होकर ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म को करता है। किनसे करता है ? कर्मो को उत्पन्न करनेवाले मन-वचन-काय व्यापाररूप उपकरणों से करता हे। व्यवहारनय से कर्मोदय के वश से कर्मोत्पादक मन-वचन-काय व्यापाररूप उपकरणों को सश्लेशरूप से ग्रहण करता है, तथापि ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मवाले मन-वचन-काय व्यापाररूप कर्मोत्पादक उपकरणों के साथ तन्मय नहीं होता है क्योंकि वे सभी उपकरण टकोत्कीर्ण ज्ञायकस्वभाव से भिन्न हैं।

जैसे वह ही सुनार आदि कारीगर सुवर्ण के कुडल आदि वन जाने पर जो कुछ भी आहारपानादि मूल्य प्राप्त करता है और उसे भोगता है, तो भी वह उस अन्नपानादिक के साथ तन्मय नहीं होता है, वैसे ही निजशुद्धात्मभावना से उत्पन्न होनेवाला मनोहर सुख आस्वाद जिसको प्राप्त नहीं होता है ऐसा मिथ्यात्व-सासादन मिश्र-गुणस्थानवर्ती जीव वहिरग इष्ट-अनिष्ट अन्नपानादि शुभाशुभ कर्मफल को भोगता है तो भी उनसे तन्मय नहीं होता है। हे शिष्य! इस पूर्वोक्त रीति से चार गाथाओं से द्रव्यकर्म के कर्तापना-भोक्तापनारूप जो व्यवहारनय है उसके दृष्टात का सक्षेप से कथन करना योग्य हे।

इसके आगे कहे जाने वाले अशुद्ध निश्चयनय के कथन को यानें रागादि विकल्प से उत्पन्न किये हुए परिणाम को सुनो। जैसे सुवर्णकार आदि कारीगर "मैं इस-इस प्रकार सुवर्ण के कुडल आदि करता हूँ," इसी प्रकार मन में चेष्टा करता है, उस चेष्टा के साथ वह अनन्य-तन्मय होता है। वैसे ही केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप कार्यसमयसार का जो निर्विकल्प समाधिरूप कारणसमयसार वाला साधक है उसका अभाव होने से अशुद्धनिश्चयनय वाले अशुद्ध उपादान से अज्ञानी (मिथ्यात्व-सासादन मिश्र-गुणस्थानवर्ती) जीव मिथ्यात्व रागादिरूप भावकर्म को करता है और उस भावकर्म के साथ अनन्य-तन्मय है। इस प्रकार भावकर्म-कर्तृत्व का कथन करनेवाली गाथा का अर्थ हुआ।

एव ववहारस्स दु वत्तव्व दसण समासेण एव पूर्वोक्तप्रकारेण गाथाचतुष्टयेन द्रव्यकर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वरूपस्य व्यवहारयस्य दर्शन निदर्शन दृष्टात उदाहरण हे शिष्य! वक्तव्य व्याख्येय कथनीय समासेन सक्षेपेण। **सुणु णिच्छयस्स वयण परिणामकद तु ज हवदि** इद त्वग्रे वक्ष्यमाण निश्चयस्य वचन व्याख्यान शृणु, यत् कथभूत? परिणामकृत रागादिविकल्पेन निष्पादितमिति। **जह सिप्पिओ दु चेट्ठ कुव्वदि हवदि य तहा अणण्णो सो** यथा सुवर्णकारादिशिल्पी कुडलादिकमेवमेव करोमीति मनसि चेष्टा करोति इति तया चेष्टया सह भवति चानन्यस्तन्मय । **तह जीवोवि य कम्म कुव्वदि हवदि य अणण्णो सो** तथैवाज्ञानी जीव केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्य योऽसौ साधको निर्विकल्पसमाधिरूप कारणसमयसारस्तस्याभावे सत्यशुद्धनिश्चयनयेन अशुद्धोपादानरूपेण मिथ्यात्वरागादिरूप भावकर्मम् करोति तेन भावकर्मणा सह भवति चानन्य इति भावकर्मकर्तृत्व गाथा गता।

जह चेट्ठ कुव्वतो दु सिप्पिओ णिच्च दु क्खिदो होदि यथा स एव शिल्पी कुडलादिकमेवमेव करोमीति मनसि चेष्टा कुर्वाण सन् चित्तखेदेन नित्य दु खितो भवति। न केवल दु खित । **तत्तो सिया अणण्णो** तस्माद् दु खविकल्पादनुभवरूपेणानन्यश्च स स्यात्। **तह चेट्ठन्तो दुही जीवो** तथैवाज्ञानिजीवोऽपि विशुद्धज्ञानदर्शनादि-व्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्य साधको योऽसौ निश्चयरत्नत्रयात्मककारणसमयसार तस्यालाभे सुखदु खभोक्तृत्वकाले हर्षविषादरूपा चेष्टा कुर्वाण सन्मनसि दु खितो भवति इति। तया हर्षविषादचेष्टया सह अशुद्धनिश्चयेनाशुद्धोपादान-रूपेणानन्यश्च भवति इति। एव पूर्वोक्तप्रकारेणाज्ञानिजीवो निर्विकल्पस्वसवेदनज्ञानात् च्युतो भूत्वा सुवर्णकारादिदृष्टातेन व्यवहारनयेन द्रव्यकर्म करोति भुक्ते च। तथैवाशुद्धनिश्चयेन भावकर्म चेति व्याख्यानमुख्यत्वेन षष्ठस्थले गाथा सप्तक गतम्।। ३७८ से ३८४।।

जैसे **"मैं इस-इस प्रकार कुडलादिक करता हूँ,"** इस प्रकार मन में चेष्टा करनेवाला वह ही कारीगर चित्तखेद से (आकुलता से) नित्य दु खी होता है, केवल दु खी ही नहीं होता है, तो वह उस दु ख विकल्प से अनुभवरूप से अनन्य-तन्मय होता है। वैसे ही विशुद्धज्ञान-दर्शनादि व्यक्तिरूप कार्यसमयसार का साधक जो निर्विकल्प समाधि-निश्चय रत्नत्रयात्मक कारणसमयसार है, उसके प्राप्त नहीं होने से सुख-दु ख के भोक्तृत्वकाल में हर्ष-विषादरूप चेष्टा करनेवाला अज्ञानी (मिथ्यात्व-सासादन मिश्र-गुणस्थानवर्ती) जीव मन में दु खी होता है। और अशुद्धनिश्चयनय वाले अशुद्ध उपादानरूप से उस हर्ष-विषाद चेष्टा के साथ अनन्य-तन्मय है।

इस पूर्वोक्त प्रकार से अज्ञानीजीव निर्विकल्प स्वसवेदनज्ञान से च्युत होकर सुनार आदि कारीगर के दृष्टात के समान व्यवहारनय से द्रव्यकर्म करता है और भोगता है, उसी प्रकार अशुद्ध निश्चयनय से **भावकर्म करता और भोगता है**। इस कथन की मुख्यता से छट्ठे स्थल में सात गाथायें पूर्ण हुई।। ३७८ से ३८४।।

अब, ज्ञान ज्ञेय वस्तु को जनता है तथापि निश्चयनय से उससे तन्मय नहीं होता, जैसे सफेद मिट्टी दीवाल को सफेद करती है तो भी श्वेत मिट्टी दीवाल से तन्मय नहीं होती है। इस प्रकार निश्चयनय की मुख्यता से ५ गाथायें हैं। इसके आगे जैसे व्यवहारनय से श्वेत मिट्टी दीवाल को सफेद करती है ऐसा व्यवहार होता है, वैसे ही ज्ञान ज्ञेयवस्तु को व्यहारनय से जानता है, ऐसा व्यवहार है। इस तरह व्यवहार की मुख्यता से ५ गाथायें हैं। इस प्रकार दोनों मिलाकर १० गाथायें हैं। जैसे -

अथ ज्ञान ज्ञेय वस्तु जानाति तथापि धवलकुड्ये श्वेतमृत्तिकावन्निश्चयेन तन्मय न भवति इति निश्चयमुख्यत्वेन गाथा पचकम्। तथैव च श्वेत मृत्तिका कुड्य श्वेत करोतीति व्यवह्रियते तथैव च ज्ञान ज्ञेय वस्तु जानात्येव व्यवहारोऽस्तीति व्यवहारमुख्यत्वेन गाथा पचकम्। एव समुदायेन दशकम्। तद्यथा -

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि। (३५६)
तह जाणगो दु ण परस्स जाणगो जाणगो सो दु।।३८५।।
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि। (३५७)
तह पासगो दु ण परस्स पासगो पासगो सो दु।।३८६।।
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि। (३५८)
तह सजदो दु ण परस्स सजदो सजदो सो दु।।३८७।।
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि। (३५९)
तह दसण दु ण परस्स दसण दसण त तु।।३८८।।
एव तु णिच्छयणयस्स भासिद णाणदसणचरित्ते। (३६०)
सुणु ववहारणयस्स य वत्तव्व से समासेण।।३८९।।

गाथार्थ - (जह) जेसे (सेडिया दु) सफेदी करनेवाली कलई-खडिया मिट्टी तो (परस्स) परकी-दीवाल आदि की (ण) नहीं है (सेडिया) सफेदी तो (सा य सेडिया होदि) स्वय सफेदी ही है। (तह) उसी प्रकार (जाणगो दु) ज्ञायक आत्मा तो (परस्स) परद्रव्य का (ण) नहीं हे (जाणगो सो दु जाणगो) ज्ञायक आत्मा तो स्वय ज्ञायक ही है।

(जह) जैसे (सेडिया दु) सफेदी-खडिया मिट्टी तो (परस्स) परकी-दीवाल आदि की (ण) नहीं है (सेडिया) सफेदी तो (सा य सेडिया होदि) स्वय सफेदी ही है। (तह) वैसे (पासगो दु) देखनेवाला आत्मा (परस्स ण) पर का नहीं है (पासगो सो दु पासगो) दर्शक तो स्वय दर्शक ही है।

(जह) जैसे (सोडिया दु) सफेदी तो (परस्स ण) परकी-दीवाल आदि की नहीं है (सेडिया) सफेदी तो (सा य सेडिया होदि) स्वय सफेदी ही है। (तह) वैसे (सजदो) सयममय आत्मा (परस्स ण) परद्रव्य का नहीं हे (सजदो सो दु सजदो) सयत तो स्वय सयत ही है।

(जह) जेसे (सेडिया दु) सफेदी तो (परस्स ण) परकी-दीवाल आदि की नहीं है (सेडिया) सफेदी तो (सा य सेडिया होदि) स्वय सफेदी ही है। (तह) वैसे (दसण दु) श्रद्धान (परस्स ण) पर पदार्थ का नहीं है (दसण त तु दसण) श्रद्धान तो स्वय श्रद्धान ही है।

(एव तु) इस प्रकार (णाणदसणचरित्ते) ज्ञान-दर्शन-चारित्र में (णिच्छयणयस्स) निश्चयनय का (भासिद) कथन है (से य) और उस सबध में (समासेण ववहारणयस्स वत्तव्व सुणु) सक्षेप से व्यवहारनय का कथन सुनो।

(जह) जैसे (सेडिया) सफेदी-खड़िया (अप्पणो सहावेण हु) अपने स्वभाव से ही (परदव्व) परद्रव्य-दीवाल आदि को (सेडदि) सफेद करती है। (तह) उसी प्रकार (णादा वि) ज्ञाता आत्मा भी (सएण भावेण) अपने स्वभाव से (परदव्व) परद्रव्य को (जाणदि) जानता हे।

जह परदव्व सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण। (३६१)
तह परदव्व जाणदि णादा वि सएण भावेण।। ३९०।।
जह परदव्व सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण। (३६२)
तह परदव्व पस्सदि जीवो वि सएण भावेण।। ३९१।।
जह परदव्व सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण। (३६३)
तह परदव्व विजहदि णादा वि सएण भावेण।। ३९२।।
जह परदव्व सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण। (३६४)
तह परदव्व सद्दहदि सम्मादिट्ठी सहावेण।। ३९३।।
एव ववहारस्स दु विणिच्छओ णाणदसणचरित्ते। (३६५)
भणिदो अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णादव्वो।। ३९४।।

(जह) जैसे (सेडिया) सफेदी-खडिया (अप्पणो सहावेण हु) अपने स्वभाव से ही (परदव्व) परद्रव्य-दीवाल आदि को (सेडदि) सफेद करती है। (तह) उसी प्रकार (जीवो वि) जीव भी (सएण भावेण) अपने स्वभाव से (परदव्व) परद्रव्य को (पस्सदि) देखता है।

(जह) जैसे (सेडिया) सफेदी-खडिया (अप्पणो सहावेण हु) अपने स्वभाव से ही (परदव्व) परद्रव्य-दीवाल आदि को (सेडदि) सफेद करती है। (तह) उसी प्रकार (णादा वि) ज्ञाता आत्मा भी (सएण भावेण) अपने स्वभाव से (परदव्व) परद्रव्य को (विजहदि) त्यागता है।

(जह) जैसे (सेडिया) सफेदी-खडिया (अप्पणो सहावेण हु) अपने स्वभाव से ही (परदव्व) परद्रव्य-दीवाल आदि को (सेडदि) सफेद करती है। (तह) उसी प्रकार (सम्मादिट्ठी) सम्यग्दृष्टि (सहावेण) अपने स्वभाव से (परदव्व) परद्रव्य का (सद्दहदि) श्रद्धान करता है।

(एव दु) इस प्रकार (णाणदसणचरित्ते) ज्ञान, दर्शन और चारित्र में (ववहारस्स) व्यवहारनय का (विणिच्छओ) निर्णय (भणिदो) कहा है (अण्णेसु पज्जएसु वि) अन्य पर्यायों में भी (एमेव णादव्वो) ऐसा ही जानना चाहिये।

टीकार्थ - जेसे लोक में सफेद खडिया मिट्टी निश्चयनय से परद्रव्य-दीवालादि की नहीं होती है-दीवाल के साथ तन्मय नही होती है, बाह्य भाग पर ही रहती है, ऐसा भावार्थ है।

शका - फिर क्या होता है ?

समाधान - सफेद खडिया तो सफेद खडिया ही है अर्थात् सफेद खडिया अपने स्वस्वरूप में रहती हे। उस सफेद खडिया मिट्टी के दृष्टात के समान निश्चयनय से ज्ञानमय आत्मा घटपटादि ज्ञेय पदार्थ का ज्ञायक नहीं होता अर्थात् उन ज्ञेय पदार्थो से तन्मय नहीं होता है।

शका - तो क्या होता हे ?

समाधान - ज्ञायक तो ज्ञायक ही रहता है, अर्थात् ज्ञायक अपने स्वस्वरूप में रहता है।

यथा लोके श्वेतिका श्वेतमृत्तिका खटिका परद्रव्यस्य कुड्यादेर्निश्चयेन श्वेतमृत्तिका न भवति तन्मयो न भवति वहिर्भागे तिष्ठतीत्यर्थ । तर्हि किं भवति ? श्वेतिका श्वेतिकैव स्वस्वरूपे तिष्ठतीत्यर्थ । तथा श्वेतमृत्तिका दृष्टातेन ज्ञानात्मा घटपटादिज्ञेयपदार्थस्य निश्चयेन ज्ञायको न भवति तन्मयो न भवतीत्यर्थ । तर्हि किं भवति? ज्ञायको ज्ञायक एव स्वस्वरूपे तिष्ठतीत्यर्थ । एव ब्रह्माद्वैतवादिवत्-ज्ञान ज्ञेयरूपेण न परिणमति-इति कथन मुख्यत्वेन गाथा गता।

तथा तेनैव च श्वेतमृत्तिकादृष्टातेन दर्शक आत्मा दृश्यस्य घटादिपदार्थस्य निश्चयेन दर्शको न भवति, तन्मयो न भवतीत्यर्थ । तर्हि किं भवति ? दर्शको दर्शक एव स्वस्वरूपेण तिष्ठतीत्यर्थ । एव सत्तावलोकनदर्शन दृश्यपदार्थरूपेण न परिणमतीति कथनमुख्यत्वेन गाथा गता। तथा तेनैव श्वेतमृत्तिका दृष्टातेन सयत आत्मा त्याज्यस्य परिग्रहादे परद्रव्यस्य निश्चयेन त्याजको न भवति, तन्मयो न भवतीत्यर्थ । तर्हि किं भवति? सयत सयत एव निर्विकारनिजमनोहरानदलक्षणस्वस्वरूपे तिष्ठतीत्यर्थ । एव वीतरागचारित्र मुख्यत्वेन गाथा गता। तथैव च तेनैव श्वेतमृत्तिकादृष्टातेन तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन श्रद्धेयस्य वहिर्भूत जीवादिपदार्थस्य निश्चयनयेन श्रद्धानकारक न भवति, तन्मय न भवतीत्यर्थ ।

इस तरह ब्रह्म-अद्वैतवादियों के समान **ज्ञान ज्ञेय के रूप से परिणमन नहीं करता है,** इस कथन की मुख्यता से प्रथम गाथा पूर्ण हुई।

इसी प्रकार उस ही सफेद खडिया मिट्टी के दृष्टात के समान निश्चयनय से दर्शक आत्मा घट, वस्त्र आदि दृश्य पदार्थ का दर्शक नहीं है अर्थात् उन पदार्थों के साथ तन्मय नहीं है।

शका - तो क्या होता है ?

समाधान - **दर्शक तो दर्शक ही रहता है, अर्थात् दर्शक अपने स्वस्वरूप में रहता है।**

इस प्रकार सत्तावालोकन दर्शन (दर्शनोपयोग-निराकारोपयोग) दृश्यमान पदार्थ के रूप से परिणमन नहीं करता है, इस कथन की मुख्यता से दूसरी गाथा हुई।

इस प्रकार उस ही सफेद खडिया मिट्टी के दृष्टात के समान निश्चयनय से सयत आत्मा त्याग करने योग्य परिग्रहादि परद्रव्यों का त्याजक-त्यागी नहीं है अर्थात् उन पदार्थों के (त्याग के) साथ तन्मय नहीं है।

शका - तो क्या होता है ?

समाधान - **सयत तो सयत ही है, अर्थात् सयत निर्विकार निज मनोहरआनद लक्षणवाले स्वस्वरूप में रहता है।**

इस प्रकार वीतराग (स्वानुभव-शुद्धोपयोग) चारित्र की मुख्यता से तीसरी गाथा पूर्ण हुई।

इस प्रकार उस ही सफेद खडिया मिट्टी के दृष्टात के समान निश्चयनय से तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन बाह्य जीवादि श्रद्धेय पदार्थ का श्रद्धान कारक नहीं है अर्थात् जीवादि श्रद्धेय पदार्थों के साथ तन्मय नहीं है।

तर्हि कि भवति ? सम्यग्दर्शन सम्यग्दर्शनमेव स्वस्वरूपे तिष्ठतीत्यर्थ। एव तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण सम्यग्दर्शनमुख्यत्वेन गाथा गता। **एव तु णिच्छयणयस्स भासिद णाणदसणचरित्ते** एव पूर्वोक्तगाथाचतुष्टयेन भाषित व्याख्यान कृतम्। कस्य सबधित्वेन ? निश्चयनयस्य। क्व विषये ? ज्ञानदर्शनचारित्रे। **सुणु ववहारणयस्स य वत्तव्व** इदानीं हे शिष्य ! शृणु समाकर्णय। कि ? वक्तव्य व्याख्यानम्। कस्य सबधित्वेन ? व्यवहारनयस्य। कस्य सबंधिव्यवहार? **से** तस्य पूर्वोक्तज्ञानदर्शनचारित्रस्य। केन ? **समासेण** सक्षेपेण। इति निश्चयनयेन व्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रपचक गतम्।

अथ व्यवहार कथ्यते - यथा येन प्रकारेण लोके परद्रव्य कुड्यादिक व्यवहरनयेन श्वेतयते श्वेत करोति न च कुड्यादि परद्रव्येण सह तन्मयी भवति। का कर्त्री ? श्वेतिका श्वेतमृत्तिका खटिका। केन कृत्वा श्वेत करोति? स्वकीयश्वेतभावेन। तथा तेन श्वेतमृत्तिका दृष्टातेन परद्रव्य घटादिक ज्ञेय वस्तु व्यवहारेण जानाति न च परद्रव्येण सह तन्मयो भवति। कोऽसौ कर्ता ? ज्ञातात्मा। केन जानाति ? स्वकीयज्ञानभावेनेति प्रथम गाथा गता।

शका - तो क्या होता है ?

समाधान - **सम्यग्दर्शन तो सम्यग्दर्शन ही है, अर्थात् सम्यग्दर्शन अपने स्वस्वरूप में रहता है।**

इस प्रकार तत्वार्थश्रद्धान लक्षणवाले सम्यग्दर्शन की मुख्यता से चौथी गाथा पूर्ण हुई।

इस प्रकार पूर्वोक्त ४ गाथाओं से ज्ञान, दर्शन, और चारित्र के विषय में निश्चयनय से कथन किया गया। अव हे शिष्य ! उन ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय में व्यवहारनय का सक्षेप से कथन सुनो। इस तरह निश्चयनय के व्याख्यान की मुख्यता से ५ गाथायें पूर्ण हुई।

अब व्यवहारनय का कथन किया जाता है -

जैसे लोक में जिस प्रकार से सफेद-खडिया परद्रव्य दीवाल आदि मिट्टी को व्यवहारनय से सफेद करती है और वह सफेद खडिया मिट्टी दीवाल आदि परद्रव्य के साथ तन्मय नहीं होती है।

शका - वह किस साधन से सफेद करती है ?

समाधान - वह सफेद खडिया मिट्टी अपने श्वेत स्वभाव से परद्रव्य को सफेद करती है।

उस सफेद खडिया मिट्टी के दृष्टात के समान ज्ञाताआत्मा परद्रव्य घट वस्त्र आदि ज्ञेयपदार्थ को व्यवहारनय से जानता है, किन्तु वह ज्ञाताआत्मा उस परद्रव्यरूप ज्ञेयपदार्थ के साथ तन्मय नहीं होता है।

शका - वह ज्ञाताआत्मा किस साधन से जानता है ?

समाधान - **वह ज्ञाताआत्मा अपने ज्ञानभाव से ज्ञेय पदार्थ को जानता है।** यह प्रथम गाथा का अर्थ हुआ।

तथा उस ही सफेद खडिया मिट्टी के दृष्टात के समान ज्ञाताआत्मा व्यवहारनय से घटादिक दृश्य परद्रव्य को देखता है,किन्तु उन दृश्य परद्रव्य के साथ तन्मय नहीं होता है।

शका - वह ज्ञाताआत्मा किस साधन से देखता है ?

तथैव च तेनैव श्वेतमृत्तिकादृष्टातेन घटादिक दृश्य परद्रव्य व्यवहारेण पश्यति न च परद्रव्येण सह तन्मयो भवति। कोऽसौ ? ज्ञातात्मा। केन पश्यति ? स्वकीयदर्शनभावेनेति द्वितीय गाथा गता। तथैव च तेनैव श्वेत मृत्तिकादृष्टातेन परिग्रहादिक प द्रव्य व्यवहारेण विरमति त्यजति न च परद्रव्येण सह तन्मयो भवति। स क कर्ता? ज्ञातात्मा। केन कृत्वा त्यजति ? स्वकीयनिर्विकल्पसमाधिपरिणामेनेति तृतीय गाथा गता। तथैव च तेनैव श्वेतमृत्तिकादृष्टातेन जीवादिक परद्रव्य व्यवहारेण श्रद्दधाति न च परद्रव्येण सह तन्मयो भवति। स क कर्ता? सम्यग्दृष्टि । केन कृत्वा ? स्वकीयश्रद्धानपरिणामेनेति चतुर्थ गाथा गता।

एसो ववहारस्स दु विणिच्छियो णाणदसणचरित्ते भणिदो भणित कथित । कोऽसौ कर्मतापन्न ? एष प्रत्यक्षीभूत पूर्वोक्त गाथाचतुष्टयेन निर्दिष्टो विनिश्चय व्यवहारानुयायी निश्चय इत्यर्थ । कस्य सबधी ? व्यवहारनयस्य। क्व विषये ? ज्ञानदर्शन चारित्रत्रये। **अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णादव्वो** इदमोदनादिक मया भुक्त, इदमहिविषकटाकादिक त्यक्त, इद गृहादिक कृत च, तत्सर्वम् व्यवहारेण। निश्चयेन पुन स्वकीयरागादिपरिणाम एव कृतो भुक्तश्च। एवमित्याद्यन्येष्वपि पर्यायेषु निश्चयव्यवहारनयविभागो ज्ञातव्य इति।

समाधान - **वह ज्ञाताआत्मा अपने दर्शन (निराकारोपयोग) भाव से परद्रव्य को देखता है।** यह दूसरी गाथा पूर्ण हुई।

तथा उस ही सफेद खडिया मिट्टी के दृष्टात के समान ज्ञाताआत्मा व्यवहारनय से परिग्रहादिक परद्रव्य को त्यागता है, किन्तु उन परद्रव्यों के साथ तन्मय नहीं होता है।

शका - वह कैसे त्यागता है ?

समाधान - **ज्ञाताआत्मा अपने निर्विकल्प समाधि (स्वानुभूति) परिणाम से परद्रव्य को त्यागता है।** यह तीसरी गाथा का अर्थ हुआ।

तथा उस ही सफेद खडिया मिट्टी के दृष्टात के समान सम्यग्दृष्टि (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) जीव व्यवहारनय से जीवादिक परद्रव्य का श्रद्धान करता है, किन्तु उन जीवादिक परद्रव्यों के साथ तन्मय नहीं होता है।

शका - वह कैसे श्रद्धान करता है ?

समाधान - **वह सम्यग्दृष्टि अपने श्रद्धान परिणाम से श्रद्धान करता है।** यह चौथी गाथा का अर्थ हुआ।

इस तरह पूर्वोक्त चार गाथाओं से निर्दिष्ट ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय में यह प्रत्यक्षीभूत व्यवहारनय का निर्णय-विनिश्चय कहा गया है। वह व्यवहारानुयायी का निश्चय है।

इस तरह यह भात मेरे द्वारा खाया गया, यह साप का विष-कटकादिक का त्याग मेरे द्वारा किया गया, यह घर-मकान आदि मेरे द्वारा बनाया गया, इत्यादि सब कथन व्यवहारनय का है। **और निश्चयनय से तो इन पदार्थों के बारे में अपने रागादि परिणाम ही अपने द्वारा किये गये हैं और भोगे गये हैं।**

इसी प्रकार अन्य पर्यायों में भी निश्चयनय का और व्यवहारनय का नयविभाग जानना चाहिये। इसका विशेष स्पष्टीकरण -

किंच, यदि व्यवहारेण परद्रव्यं जानाति तर्हि निश्चयेन सर्वज्ञो न भवतीति पूर्वपक्षे परिहारमाह - यथा स्वकीयसुखादिकं तन्मयो भूत्वा जानाति तथा बहिर्द्रव्यं न जानाति तेन कारणेन व्यवहार । यदि पुन परकीयसुखादिकमात्मसुखादिवत्तन्मयो भूत्वा जानाति तर्हि यथा स्वकीयसुख सवेदने सुखी भवति तथा परकीय सुखदु खसवेदनकाले सुखीदु खी च प्राप्नोति न च तथा। यद्यपि स्वकीय सुखसवेदनापेक्षया निश्चय परकीयसुखसवेदनापेक्षया व्यवहारस्तथापि छद्मस्थजनापेक्षया सोऽपि निश्चय एवेति।

ननु सौगतोऽपि ब्रूते व्यवहारेण सर्वज्ञ तस्य किमिति दूषण दीयते भवद्भिरिति? तत्र परिहारमाहसौगतादिमते यथा निश्चयापेक्षया व्यवहारो मृषा, तथा व्यवहाररूपेणापि व्यवहारो न सत्य इति, जेनमते पुनर्व्यवहारनयो यद्यपिनिश्चयापेक्षया मृषा तथापि व्यवहाररूपेण सत्य इति। यदि पुनर्लोकव्यवहाररूपेणापि सत्यो न भवति तर्हि सर्वोऽपि लोकव्यवहारो मिथ्या भवति तथा सत्यतिप्रसग । **एवमात्मा व्यवहारेण परद्रव्य जानाति पश्यति निश्चयेन पुन स्वद्रव्यमेवेति।** तत एतदायाति ग्रामारामादि सर्वम् खल्विद ब्रह्म ज्ञेयवस्तु किमपि नास्ति यद् ब्रह्माद्वैतवादिनो वदति तन्निषिद्ध।

शका - **यदि व्यवहारनय से परद्रव्य को जानता है तो फिर निश्चयनय से सर्वज्ञ नहीं है** (सर्वज्ञता काल्पनिक है) ?

समाधान - जेसे आत्मा अपने सुख-दु खादिक को तन्मय होकर जानता है वैसे वाह्य परद्रव्य को तन्मय होकर नहीं जानता है, इसलिये उस जानने को व्यवहार कहते हैं। यदि दूसरे के सुखादिक को भी यह आत्मा अपने सुखादि के समान तन्मय होकर जानता है तो फिर जैसे अपने स्वकीय सवेदन में सुखी होता है उसी तरह दूसरे के सुख-दु ख के सवेदन काल में भी सुखी-दु खी होने का प्रसग आयेगा, लेकिन वैसा नहीं है। यद्यपि सर्वज्ञ का ज्ञान स्वकीय सुख सवेदन की अपेक्षा तो निश्चय है और परकीय सुख सवेदन की अपेक्षा से वह व्यवहार है तथापि छद्मस्थ की अपेक्षा से दूसरे के सुख को जाननेवाला सर्वज्ञ का ज्ञान भी निश्चय ही याने वास्तविक ही है - (सर्वज्ञता काल्पनिक नहीं है)

शका - बौद्धमत के अनुयायी भी कहते है कि, सौगत भगवान व्यवहार से सर्वज्ञ है तो फिर आप उनको क्यों दूषण देते हो ?

समाधान - सौगतादिमत में जैसे निश्चयनय की अपेक्षा से व्यवहार असत्य है, उसी तरह व्यवहारनय की अपेक्षा से भी व्यवहार सत्य नहीं है। **जैनमत में यद्यपि निश्चयनय की अपेक्षा से व्यवहारनय असत्य है तथापि व्यवहारनय की अपेक्षा से व्यवहारनय सत्य है।** और यदि लोकव्यवहार की अपेक्षा से भी व्यवहार सत्य नहीं हे, तो फिर सव लोकव्यवहार भी मिथ्या ठहरेगा, और वैसा होने से-मानने से अतिप्रसग दोष आता है।

इसलिये आत्मा व्यवहारनय से परद्रव्य को जानता है, देखता है और निश्चयनय से स्वद्रव्य को ही जानता है, देखता है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि - ग्राम, वगीचा आदि सव ही ब्रह्म स्वरूप है, ब्रह्म के सिवाय कुछ भी ज्ञेय वस्तु नही हे, ऐसा जो ब्रह्म-अद्वैतवादी कहते हैं, वह निषिद्ध है।

यद्यपि सौगतो वदति ज्ञानमेव घटपटादिज्ञेयाकारेण परिणमति न च ज्ञानाद्भिन्न ज्ञेय किमप्यस्ति तदपि निराकृत। कथ ? इति चेत्, यदि ज्ञान ज्ञेयरूपेण परिणमिति तदा ज्ञानाभाव प्राप्नोति यदि वा ज्ञेय ज्ञानरूपेण परिणमति तदा ज्ञेयाभावस्तथा सत्युभयशून्यत्व, स च प्रत्यक्ष विरोध। एव निश्चयव्यवहारव्याख्यानमुख्यतया समुदायेन सप्तमस्थले सूत्रदशक गतम्।।३८५ से ३९४।।

अथ निश्चयप्रतिक्रमण-निश्चयप्रत्याख्यान-निश्चयालोचनपरिणतस्तपोधनएवाभेदेन निश्चयचारित्र भवतीत्युपदिशति -

कम्म ज पुव्वकद सुहासुहमणेयवित्थरविसेस। (३८३)
तत्तो णियत्तदे अप्पय तु जो सो पडिक्कमण।। ३९५।।
कम्म ज सुहमसुहं जम्हि य भावम्हि वज्झदि भविस्स। (३८४)
तत्तो णियत्तदे जो सो पच्चक्खाण हवदि चेदा।। ३९६।।

यद्यपि सौगत कहता है कि, 'ज्ञान ही घट, वस्त्र आदि ज्ञेयों के आकार से परिणत होता है और ज्ञान से भिन्न कुछ भी ज्ञेय नहीं है,' उस सौगत मत का भी निराकरण किया गया।

शका - कैसे ?

समाधान - यदि ज्ञान ज्ञेयरूप से परिणमन करता है, तो ज्ञान के अभाव का प्रसग आता है। अथवा यदि ज्ञेय ज्ञानरूप से परिणमन करता है, तो ज्ञेय के अभाव का प्रसग आता है। ऐसा होने पर ज्ञान और ज्ञेय दोनों के अभाव का प्रसग आता है। और वह तो प्रत्यक्ष से विरूद्ध है।

इस प्रकार निश्चयनय के और व्यवहारनय के कथन की मुख्यता से सप्तम स्थल में समुदायरूप से १० गाथायें पूर्ण हुई।।३८५ से ३९४।।

अव, निश्चय प्रतिक्रमण, निश्चय प्रत्याख्यान और निश्चय आलोचना से परिणत हुआ स्वय तपोधन ही अभेदनय से (निश्चयनय से) निश्चय चारित्र है, ऐसा कथन करते हैं -

गाथार्थ - **(पुव्वकद)** अतीत काल में किये हुए **(ज)** जो **(सुहासुह)** शुभ अशुभ **(अणेयवित्थरविसेस)** ज्ञानावरण आदि अनेक प्रकार विस्तार विशेष रूप **(कम्म)** कर्म हैं **(तत्तो)** उनसे **(जो तु)** जो चेतयिता **(अप्पय)** अपने को **(णियत्तदे)** निवृत्त करता है **(सो)** वह आत्मा **(पडिक्कमण)** प्रतिक्रमण है।

(य) और **(ज भविस्स)** जो आगामी काल में **(सुहमसुह)** शुभ तथा अशुभ **(कम्म)** कर्म **(जम्हि भावम्हि)** जिस भाव के होने पर **(वज्झदि)** वधता है **(तत्तो)** उस भाव से **(जो चेदा)** जो ज्ञानी **(णियत्तदे)** निवृत्त होता है **(सो)** वह आत्मा **(पच्चक्खाण हवदि)** प्रत्याख्यान है।

ज सुहमसुहमुदिण्णं संपडि य अणेय वित्थरविसेस। (३८५)
त दोस जो वेददि[१] सो खलु आलोयण चेदा।। ३९७।।
णिच्च पच्चक्खाण कुव्वदि णिच्च पि जो पडिक्कमदि। (३८६)
णिच्च आलोचेदि य सो हु चरित्त हवदि चेदा।। ३९८।।

णियत्तदे अप्पय तु जो इहलोकपरलोकाकाक्षारूपख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाक्षा लक्षण निदानवधादि समस्तपरद्रव्यालबनोत्पन्नशुभाशुभसकल्पविकल्परहिते शून्ये विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्व-सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभवनरूपाभेदरत्नत्रयात्मके निर्विकल्पपरमसमाधिसमुत्पन्न वीतराग सहज-परमानद-स्वभाव-सुख -रसास्वाद-समरसीभाव-परिणामेन सालबने भरितावस्थे केवलज्ञानाद्यनतचतुष्टय व्यक्तिरूपस्य कायसमयसारस्योत्पादके कारणसमयसारे स्थित्वा य कर्ता, आत्मान कर्मतापन्न निवर्तयति। कस्मात्सकाशात् ? **कम्म ज पुव्वकद सुहासुहमणेयवित्थरविसेस तत्तो** शुभाशुभमूलोत्तरप्रकृतिभेदेनानेकविस्तर विस्तीर्णम् पूर्वकृत यत्कर्म तस्मात् **सो पडिक्कमण** स पुरुष एवाभेदनयेन निश्चय प्रतिक्रमण भवतीत्यर्थ ।

(**य**) और (**ज सपडि**) जो वर्तमान काल में (**सुहमसुह**) शुभ अशुभ कर्म (**अणेयवित्थरविसेस**) अनेक प्रकार ज्ञानावरण आदि विस्तार रूप विशेषों को लिये हुए (**उदिण्ण**) उदय आया है (**त दोस**) उस दोष को (**जो चेदा**) जो ज्ञानी (**चेददि**) जानकर उसका स्वामीपना, कर्तापना छोडता है (**सो खलु**) वह आत्मा निश्चय से (**आलोयण**) आलोचना स्वरूप है।

(**य**) इस तरह (**जो**) जो (**चेदा**) आत्मा (**णिच्च पडिक्कमदि**) नित्य प्रतिक्रमण करता है, (**णिच्च पच्चक्खाण**) नित्य प्रत्याख्यान करता है (**पि**) और (**णिच्च आलोचेदि**) नित्य आलोचना करता है (**सो हु**) वह आत्मा वास्तव में (**चरित्त हवदि**) चारित्र स्वरूप है।

टीकार्थ - जो आत्मा, इसलोक ओर परलोक की आकाक्षामय ख्याति, पूजा, लाभ, दृष्ट, श्रुत और अनुभूत भोगों की आकाक्षारूप निदान बधादि समस्त परद्रव्य के आलबन से उत्पन्न होनेवाले शुभाशुभ सकल्प-विकल्प से रहित (शून्य) विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाववाले आत्मतत्त्व की सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव रूप अभेद रत्नत्रयमय निर्विकल्प परम समाधि से उत्पन्न होनेवाले वीतराग-सहज-परमानद-स्वभाव-सुख रसास्वाद-समरसीभाव परिणाम के आलबन से भरितावस्था में केवलज्ञानादि अनत चतुष्टय की व्यक्तिरूप कार्यसमयसार को उत्पन्न करनेवाले कारणसमयसार में स्थिर होकर आत्मा को दूर करता है।

शका - आत्मा को किससे दूर करता है ?

समाधान - जो आत्मा को शुभाशुभ मूलोत्तर प्रकृति के भेद से अनेक विस्ताररूप विस्तीर्ण **पूर्वकृत कर्मों** से दूर करता है। वह पुरुष ही अभेदनय से निश्चय प्रतिक्रमण स्वरूप होता है।

जो अनतज्ञानादि स्वरूप - आत्मद्रव्य के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञानानुभूति स्वरूप-अभेदरत्नत्रय लक्षण वाले परम सामायिक में (स्वानुभव में) स्थिर होकर आत्मा को दूर करता है।

---

[१] पाठान्तर - चेददि, चेयइ ।

णियत्तदे जो अनतज्ञानादिस्वरूपात्मद्रव्य सम्यक्‌श्रद्धानज्ञानानुभूतिस्वरूपाभेदरत्नत्रयलक्षणे परमसामायिके स्थित्वा य कर्ता आत्मान निवर्तयति। कस्मात्सकाशात्? **कम्म ज सुहमसुह जम्हि य भावम्हि वज्झदि भविस्स तत्तो** शुभाशुभानेकविस्तरविस्तीर्ण भविष्यत्कर्म यस्मिन्मिथ्यात्वरागादिपरिणामे सति वध्यते तस्मात्। **सो पच्चक्खाण हवे चेदा** स एव गुणविशिष्टस्तपोधन एवाभेदनयेन निश्चयप्रत्याख्यान भवतीति विज्ञेय।

जो वेददि नित्यानन्दैकस्वभाव-शुद्धात्म-सम्यक्-श्रद्धान-ज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मके सुख-दु ख जीवित-मरणादिविपये सर्वोपेक्षासयमे स्थित्वा य कर्ता वेदयत्यनुभवति जानाति। कि जानाति ? **ज** यत्कर्म **त** तत्। केन रूपेण ? **दोस** दोषोय मम स्वरूप न भवति। कथभूत कर्म ? **उदिण्ण** उदयागत पुनरपि कथभूत ? **सुहमसुह** शुभाशुभ। पुनश्च कि रूपम्? **अणेयवित्थरविसेस** मूलोत्तरप्रकृतिभेदेनानेकविस्तरविस्तीर्ण **सपडिय** सप्रतिकाले खलु स्फुट **सो आलोयण चेदा** स चेतयिता पुरुष एवाभेदनयेन निश्चयालोचन भवतीति ज्ञातव्यम्।

शका - किससे दूर करता है ?

समाधान - जिन मिथ्यात्व रागादि परिणाम से बाधा जाता है उन शुभाशुभ अनेक विस्तार विस्तीर्ण ऐसे **भविष्य में होनेवाले कर्मों से** आत्मा को दूर करता है।

इस प्रकार से वह गुणविशिष्ट तपोधन ही अभेदनय से निश्चय प्रत्याख्यान स्वरूप है ऐसा जानो।

नित्यानन्दैकस्वभाव शुद्धात्म सम्यक् श्रद्धान-ज्ञानानुष्ठानरूप अभेद रत्नत्रयात्मक में याने सुख-दु ख, जीवित-मरणादि विषय में, सव उपेक्षा सयम में स्थिर रहकर जो अनुभवता है-जानता है।

शका - क्या जानता है ?

समाधान - स्वानुभव में रहकर कर्म को जानता है।

शका - कर्म को किस रूप से जानता है ?

समाधान - ये कर्म दोषमय हैं, ये मेरा स्वरूप (स्वभाव) नहीं हैं, इस प्रकार कर्म को जानता है।

शका - कैसे हैं वे कर्म ?

समाधान - **वर्तमानकाल में उदय में आनेवाले** मूलोत्तर प्रकृति के भेद से अनेक प्रकार के वे शुभाशुभ कर्म हैं। वे दोषमय हैं, वे मेरा स्वरूप नहीं हैं। ऐसा जो जानता है वह आत्मा ही अभेदनय से निश्चय आलोचना स्वरूप है, ऐसा जानना चाहिए।

निश्चय रत्नत्रय लक्षणवाले शुद्धात्मस्वभाव में स्थिर रहकर जो आत्मा पूर्वोक्त निश्चय प्रत्याख्यान-निश्चयप्रतिक्रमण-निश्चयआलोचना-इनका अनुष्ठान नित्य करता है वह ही अभेदनय से निश्चयचारित्र स्वरूप है। क्योंकि **'शुद्धात्म स्वरूपे चरण चारित्रम्'**[1] ऐसा वचन है (याने स्वशुद्धात्म स्वभाव का अनुभव करना ही चारित्र है, ऐसा वचन हे)।

इस प्रकार निश्चयप्रतिक्रमण-निश्चयप्रत्याख्यान-निश्चयआलोचनारूप चारित्र के कथनरूप से अष्टमस्थल में ४ गाथायें पूर्ण हुई।

---

[1] प्रवचनसार गाथा ७ ता वृ

णिच्च पच्चक्खाण कुव्वदि णिच्च पि जो दु पडिक्कमदि णिच्च आलोचेदि य निश्चयरत्नत्रयलक्षणे शुद्धात्मस्वरूपे स्थित्वा य कर्ता पूर्वोक्तनिश्चयप्रत्याख्यानप्रतिक्रमणालोचनानुष्ठानानि नित्य सर्वकाल करोति। **सो हु चरित्त हवदि चेदा** स चेतयिता पुरुप एवाभेदनयेन निश्चयचारित्र भवति। कस्मात् ? इति चेत्, शुद्धात्मस्वरूपे चरण चारित्रमिति वचनात्। एव निश्चय प्रतिक्रमणप्रत्याख्यानालोचनाचारित्रव्याख्यानरूपेणाष्टमस्थले गाथाचतुष्टय गतम्।।३९५ से ३९८,।।

अथेन्द्रिय मनोविषयेषु रागद्वेषौ मिथ्याज्ञानपरिणत एव जीव करोतीत्याख्याति -

णिदिदसथुदवयणाणि पोग्गला परिणमति बहुगाणि। (३७३)
ताणि सुणिदूण रूसदि तूसदि य अह पुणो भणिदो।। ३९९।।
पोग्गलदव्व सद्दत्तपरिणद तस्स जदि गुणो अण्णो। (३७४)
तम्हा ण तुम भणिदो किचि वि कि रूससि अबुद्धो।।४००।।
असुहो सुहो व सद्दो ण तं भणदि सुणसु म ति सो चेव। (३७५)
ण य एदि विणिग्गहिदु सोदविसयमागद सद्द।।४०१।।
असुह सुह च रूव ण त भणदि पिच्छ म ति सो चेव। (३७६)
ण य एदि विणिग्गहिदु चक्खुविसयमागद रूव।।४०२।।
असुहो सुहो व गधो ण त भणदि जिग्घ मं ति सो चेव। (३७७)
ण य एदि विणिग्गहिदु घाणविसयमागद गध।।४०३।।

भावार्थ - चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अव्रती सम्यग्दृष्टि से सिद्ध तक के जीवों की स्वानुभूति जाति अपेक्षा से समान होने से निश्चयप्रतिक्रमण निश्चयप्रत्याख्यान निश्चयआलोचना वाला चारित्र चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अव्रती सम्यग्दृष्टि से ही शुरु होता है। मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव को स्वानुभूति नहीं होने से निश्चयप्रतिक्रमण निश्चयप्रत्याख्यान निश्चयआलोचना वाला चारित्र नहीं है।।३९५ से ३९८।।

अव, मिथ्याज्ञान में परिणमन करनेवाला जीव ही इद्रिय और मन के विषयों में रागद्वेष करता है, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(बहुगाणि)** वहुत प्रकार के **(णिदिदसथुदवयणाणि)** निदा ओर स्तुति के वचन हैं **(पोग्गला परिणमति)** पुद्गल उनरूप परिणमते हैं **(ताणि)** उनको **(सुणिदूण)** सुनकर **(अह भणिदो)** यह अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि 'मुझको कहा है' **(पुणो)** इसलिये **(रूसदि)** ऐसा मानकर रोस (गुस्सा) करता है **(य)** और **(तूसदि)** सतुष्ट होता है।

(पोग्गलदव्व) पुद्गल द्रव्य **(सद्दत्तपरिणद)** शब्दरूप परिणत हुआ है **(तस्स गुणो)** उसका गुण **(जदि अण्णो)** यदि तुझसे अन्य हे **(तम्हा)** तो फिर **(तुम किचि वि ण भणिओ)** तुझको तो कुछ भी नहीं कहा, तो **(अबुद्धो)** तू अज्ञानी होकर **(कि रूससि)** क्यों रोष करता है ?

असुहो सुहो व रसो ण त भणदि रसय म ति सो चेव। (३७८)
ण य एदि विणिग्गहिदु रसणविसयमागद तु रस।। ४०४।।
असुहो सुहो व फासो ण त भणदि फुससु म ति सो चेव। (३७९)
ण य एदि विणिग्गहिदु कायविसयमागद फास।। ४०५।।
असुहो सुहो व गुणो ण त भणदि बुज्झ म ति सो चेव। (३८०)
ण य एदि विणिग्गहिदु बुद्धिविसयमागद तु गुण।। ४०६।।
असुह सुह व दव्व ण त भणदि बुज्झ म ति सो चेव। (३८१)
ण य एदि विणिग्गहिदु बुद्धिविसयमागद दव्व।। ४०७।।
एय तु जाणिदूण[१] य उवसम णेव गच्छदे मूढो। (३८२)
णिग्गहमणा परस्स य सय च बुद्धि सिवमपत्तो।। ४०८।।

(असुहो सुहो व) अशुभ अथवा शुभ (सद्दो) शब्द (त ण भणदि ति) तुझको ऐसा नहीं कहता कि (म सुणसु) मुझको सुन (य) और (सोदविसयमागद) श्रोत्र इद्रिय के विषय में आये हुए (सद्द) शब्द के (विणिग्गहिदु) ग्रहण करने को (सो चेव) वह आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड (ण एदि) नहीं जाता है।

(असुह सुह च) शुभ और अशुभ (रूव) रूप (त ण भणदि ति) तुझको ऐसा नहीं कहता कि (म पिच्छ) मुझको देख (य) ओर (सो चेव) वह आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड (चक्खुविसयमागद) चक्षु इद्रिय के विषय में आये हुए (रूव) रूप को (विणिग्गहिदु) ग्रहण करने के लिये (ण एदि) नहीं जाता है।

(असुहो सुहो व) अशुभ अथवा शुभ (गधो) गध (त ण भणदि ति) तुझको ऐसा नहीं कहता कि (म जिग्घ) मुझे तू सूघ (य सो चेव) और आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड (घाणविसयमागद गध) घ्राणेंद्रिय के विषय में आये हुए गध को (विणिग्गहिदु) ग्रहण करने के लिए (ण एदि) नहीं जाता है।

(असुहो सुहो व) अशुभ अथवा शुभ (रसो) रस (त) तुझको (ति) ऐसा (ण भणदि) नहीं कहता कि (म रसय) तू मुझको चख-आस्वाद कर (य) और (सो चेव) वह आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड (रसणविसयमागद तु रस) रसना इद्रिय के विषय में आये हुए रस को (विणिग्गहिदु) ग्रहण करने के लिए (ण एदि) नहीं जाता है।

(असुहो सुहो व) अशुभ अथवा शुभ (फासो) स्पर्श (त) तुझको (ति ण भणदि) ऐसा नहीं कहता कि (म फुससु) तू मुझको स्पर्श कर (य) और (सो चेव) वह आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड (कायविसयमागद फास) स्पर्श इद्रिय के विषय में आये हुए स्पर्श को (विणिग्गहिदु) ग्रहण करने के लिये (ण एदि) नहीं जाता है।

---

[१] पाठान्तर - जाणिदव्वस्स ।

रूसदि तूसदि य एकेंद्रियविकलेंद्रियादिदुर्लभपरपराक्रमेणातीतानतकाले दृष्टश्रुतानुभूतमिथ्यात्वविषय-कषायादिविभावपरिणामाधीनतया अत्यतदुर्लभेन कथचित्कालादिलब्धिवशेन मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतीना तथैव चारित्रमोहनीयस्य चोपशमक्षयोपशमक्षये सति षड्द्रव्यपचास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थादि श्रद्धानज्ञानरागद्वेषपरिहाररूपेण भेदरत्नत्रयात्मक-व्यवहारमोक्षमार्गसज्ञेनव्यवहारकारणसमयसारेण साध्येन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरण-रूपाभेदरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिरूपेणानतकेवलज्ञानादिचतुष्टयव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्योत्पादकेन निश्चयकारणसमयसारेण विना खल्वज्ञानिजीवो रुष्यति तुष्यति च। कि कृत्वा ? **सुणिदूण** श्रुत्वा। पुन पश्चात् केन रूपेण ? **अह भणिदो** अनेनाह भणित इति। कानि श्रुत्वा ? **णिदिदसथुदवयणाणि** निदितसस्तुतवचनानि ताणि तानि। किविशिष्टानि ?

(असुहो सुहो व) अशुभ अथवा शुभ **(गुणो)** गुण **(त)** तुझको **(ति ण भणदि)** ऐसा नहीं कहता है कि **(म बुज्झ)** तू मुझको जान **(य)** और **(सो चेव)** वह आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड **(बुद्धिविसयमागद तु गुण)** बुद्धि के विषय में आये हुए गुण को **(विणिग्गहिदु)** ग्रहण करने के लिये **(ण एदि)** नहीं जाता है।

(असुह सुह व) अशुभ अथवा शुभ **(दव्व)** द्रव्य **(त)** तुझको **(ति ण भणदि)** ऐसा नहीं कहता है कि **(म बुज्झ)** तू मुझको जान **(य)** और **(सो चेव)** वह आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड **(बुद्धिविसयमागद)** बुद्धि के विषय में आये हुए **(दव्व)** द्रव्य को **(विणिग्गहिदु)** ग्रहण करने के लिये **(ण एदि)** नहीं जाता है।

(मूढो) मूढ जीव **(एय तु जाणिदूण)** ऐसा जानकर भी **(उवसम णेव गच्छदे)** उपशम भाव को नहीं प्राप्त होता **(य)** और **(परस्स)** पर के **(णिग्गहमणा)** ग्रहण करने का मन करता है **(च)** क्योंकि **(सय बुद्धि सिवमपत्तो)** आप कल्याणरूप बुद्धि जो सम्यग्ज्ञान उसको प्राप्त नहीं हुआ है।

टीकार्थ :- आगमभाषा से

एकेंद्रिय विकलेंद्रिय आदि की उत्तरोत्तर दुर्लभ परपरा के क्रम से भूतकाल के अनतकाल में देखे, सुने और अनुभव किये हुए मिथ्यात्व-विषय-कषायादिरूप विभाव परिणाम की आधीनता से जो अत्यत दुर्लभ है और जो कथचित् कालादि लब्धि के वश से मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों का तथा चारित्रमोहनीय का उपशम, क्षयोपशम और क्षय होने पर षड्द्रव्य, पचास्तिकाय, साततत्त्व, नवपदार्थ आदि का श्रद्धान, ज्ञान और रागद्वेष का परिहार रूप भेदरत्नत्रयात्मक व्यवहार मोक्षमार्ग की सज्ञा वाले व्यवहार कारणसमयसार से साध्यरूप अनत केवलज्ञानादि चतुष्टय की व्यक्तिरूप कार्यसमयसार के बिना अज्ञानी जीव रोष करता है और सतुष्ट होता है याने रागद्वेष करता है।

अध्यात्मभाषा से

विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान-ज्ञानानुचरणरूप अभेदरत्न-त्रयात्मक निर्विकल्प समाधि से साध्यरूप कार्य समयसार को उत्पन्न करनेवाले निश्चय कारण समयसार के बिना निश्चय से अज्ञानी जीव रोष करता है और सतुष्ट होता है याने रागद्वेष करता है - विकल्प करता है।

पोग्गला परिणमति बहुगाणि भाषावर्गणायोग्यपुद्गला कर्तारो यानि कर्मतापन्नानि बहुविधानि परिणमति। ज्ञानी पुनर्व्यवहारमोक्षमार्गम्-निश्चयमोक्षमार्गभूत पूर्वोक्तद्विविधकारणसमयसार ज्ञात्वा बहिरगेष्टानिष्ट विषये रागद्वेषौ न करोतीति भावार्थ ।

पुग्गलदव्व सद्दत्तपरिणद भाषावर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्य कर्तृ म्रियस्वेति जीवत्वमितिरूपेण निदितसस्तुत-शव्दरूपत्वपरिणत **तस्स जदि गुणो अण्णो** तस्य पुद्गल द्रव्यस्य शुद्धात्मस्वरूपाद्यदि गुणोऽन्यो भिन्नो जडरूप तर्हि जीवस्य किमायात ? न किमपि। तस्यैवाज्ञानिजीवस्य पूर्वोक्तव्यवहारकारणसमयसार-निश्चयकारणसमयसाररहितस्य सवोधन क्रियते। कथ ? इति चेत्, यस्मान्निदितसस्तुतवचनेन पुद्गला परिणमति **तम्हा ण तुम भणिदो किचिवि** तस्मात्कारणात्त्व न भणित किचिदपि **कि रूससि अवुद्धो** कि रूष्यसे अबुध बहिरात्मन्निति। स चैवाज्ञानिजीवो व्यवहारनिश्चयकारणसमयसाराभ्या रहित पुनरपि सबोध्यते।

हे आज्ञानिन्! शब्द-रूप-गध-रस स्पर्शरूपा मनोज्ञामनोज्ञपचेंद्रियविषया कर्तार, त्वा कर्मतापन्न किमपि न भणति। कि न भणति? हे देवदत्त! मा कर्मतापन्न श्रृणु, मा पश्य, मा जिघ्र, मा स्वादय, मा स्पृशेति। पुनरप्यज्ञानी ब्रूते एते शब्दादय कर्तारो मा किमपि न भणति, पर कितु मदीयश्रोत्रादि विषयस्थानेषु समागच्छंति ?

शका - अज्ञानी जीव क्या करके रागद्वेष करता है ?

समाधान - भाषा वर्गणायोग्य पुद्गल द्रव्य से बने हुए नाना प्रकार के निदा और स्तुति के वचनों को सुनकर अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि, **"इसने मुझको कहा है,"** इससे अज्ञानी रागद्वेष करता है।

और सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव) पूर्वोक्त व्यवहार मोक्षमार्ग और निश्चय मोक्षमार्गभूत द्विविध कारणसमयसार को जानकर वहिरग इष्ट-अनिष्ट विषयों में रागद्वेष नहीं करता है, यह भावार्थ है।

'मर जावो या जीते रहो,' इत्यादि प्रकार के निदा और स्तुति को लिए हुए जो भाषावर्गगणा योग्य पुद्गल द्रव्य है, उस पुद्गल द्रव्य का गुण धर्म यदि शुद्धात्म के स्वरूप से पृथक्रूप है, जडरूप है तो फिर उससे जीव को क्या हानि-लाभ है ? कुछ भी नहीं। इस प्रकार कहकर फिर भी पूर्वोक्त व्यवहार कारणसमयसार और निश्चय कारणसमयसार इन दोनों से रहित जो अज्ञानी जीव है उसको ही सबोधन कर कहते हैं।

शका - क्या सवोधन करते हैं ?

समाधान - हे अवुध ! हे बहिरात्मन् ! जो निदा और स्तुतिरूप में परिणत हुए शब्द-भाषावर्गणा-पुद्गल स्कध हैं, उन पुद्गल स्कधों ने तुमसे कुछ भी नहीं कहा है। तो फिर तू क्यों रोष करता है ? तथा व्यवहार कारणसमयसार से ओर निश्चय कारणसमयसार से-इन दोनों से रहितवाले उस ही अज्ञानी जीव को फिर से सवोधन करते हैं कि हे अज्ञानिन् ! शव्द, रूप, गध, रस और स्पर्श इन स्वरूप मनोज्ञ या अमोनज्ञ ऐसे जो पॉचों इद्रियों के विषय हैं वे सव तो तुम्हें कुछ भी नहीं कहते हैं कि, हे देवदत्त ! तू मुझे सुन, तू मुझे देख, तृ मुझे सूघ, तू मुझे चख, तू मुझे स्पर्श कर।

शका - इस पर अज्ञानी जीव कहता है कि, यद्यपि ये शव्दादि तो मुझे कुछ भी नहीं कहते किन्तु ये शव्दादि मेरे श्रोत्र आदि इद्रियों के विषय स्थानों में आ जाते हैं ?

आचार्या उत्तरमाहु - हे मूढ ! न चायाति विनिर्गृहीतु एते शब्दादिपचेंद्रियविषया । कथभूता सत ? श्रोत्रेंद्रियादि स्वकीयस्वकीयविषयभावमागच्छत । कस्मात् ? इति चेत्, वस्तु स्वभावादिति। यस्तु परमतत्त्वज्ञानी जीव स पूर्वोक्त व्यवहारनिश्चयकारणसमयसाराभ्या बाह्याभ्यतर रत्नत्रयलक्षणाभ्या सहित सन् मनोज्ञामनोज्ञशब्दादि-विषयेषु समागतेषु रागद्वेषौ न करोति, किंतु स्वस्थभावेन शुद्धात्मस्वरूपमनुभवतीति भावार्थ । यथा पचेंद्रियविषये मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियसकल्पवशेन रागद्वेषौ करोत्यज्ञानी जीव, तथा परकीयगुण परिच्छेद्यरूपे परद्रव्यपरिच्छेद्यरूपे च मनोविषयेऽपि रागद्वेषौ करोति तस्याज्ञानिजीवस्य पुनरपि सबोधन क्रियते तद्यथा-परकीयगुण शुभोऽशुभो वा चेतनोऽचेतनो वा। द्रव्यमपि परकीय कर्तृत्व। कर्मतापन्न न भणति हे मनोबुद्धे ! हे अज्ञानिजनचित्त ! मा कर्मतापन्न बुधस्व जानीहि। अज्ञानी वदति - एव न ब्रूते किंतु मदीयमनसि परकीयगुणो द्रव्य वा परिच्छित्तिसकल्परूपेण स्फुरति प्रतिभाति। तत्रोत्तर दीयेते-स चैव परकीयगुण परकीयद्रव्य वा मनोबुद्धिविषयमागत विनिर्गृहीतु नायाति। कस्मात् ? ज्ञेयज्ञायकसबधस्य निषेधयितुमशक्यत्वात् इति हेतो -**यद्रागद्वेषकरण तदज्ञान**। यस्तु ज्ञानी स पुन पूर्वोक्तव्यवहारनिश्चयकारणसमयसार जानन् हर्षविषादौ न करोतीति भावार्थ ।

समाधान - आचार्य उत्तर देते हैं कि, हे मूढ ! ये शब्दादि पचेंद्रिय विषय आपको ग्रहण करने के लिये नहीं आते हैं। क्योंकि श्रोत्रिंद्रिय आदि के विषयों का (शब्दादिकों का) वस्तु स्वभाव ही ऐसा है कि अपनी अपनी श्रोत्र आदि इद्रियों के विषयभाव को प्राप्त हो जानेवाले हैं। लेकिन जो **परमतत्त्वज्ञानी**-स्वानुभूतिवाला (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती) जीव है वह पूर्वोक्त व्यवहार कारणसमयसार याने बाह्यरत्नत्रय लक्षण और निश्चय कारणसमयसार याने अभ्यातररत्नत्रय अभेदरत्नत्रय लक्षण इन दोनों से सहित होने से समागत मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दादि विषयों में रागद्वेष नहीं करता है, किन्तु स्वस्थभाव से स्वशुद्धात्म स्वभाव को अनुभवता है, ऐसा भावार्थ है।

जैसे पचेंद्रिय विषय में मनोज्ञ-अमनोज्ञ इद्रिय सकल्प के वश से अज्ञानी जीव रागद्वेष करता है, वैसे ही अज्ञानी जीव परकीय गुण को जानते समय और परकीय द्रव्य को जानते समय मन के विषय में भी रागद्वेष करता है।

उस अज्ञानी जीव को फिर से सबोधन करते हैं कि-शुभ अथवा अशुभ, चेतन अथवा अचेतन परकीय गुण तथा परकीय द्रव्य तुझे नहीं कहता है कि, हे मनोबुद्धे ! हे अज्ञानीजनचित्त ! मुझे जानो

इस पर वह **अज्ञानी** कहता है कि, ऐसा तो वह (द्रव्य अथवा गुण) नहीं कहता है, लेकिन मेरे मन में परकीय गुण अथवा परकीय द्रव्य जानकारी के सकल्प के रूप से प्रस्फुरित होता है-प्रतिभासता है। उसको श्री आचार्यजी उत्तर देते हैं कि, मन-बुद्धि के विषय में आनेवाला वह परकीय गुण अथवा द्रव्य आप को ग्रहण करने के लिये नहीं आता हे क्योंकि ज्ञेय-ज्ञायकसबध को दूर नहीं किया जा सकता है। (इसलिये वे ज्ञेय याने द्रव्य, गुण, पर्याय ज्ञेयाकाररूप से ज्ञान में आ जाते हैं। उसमें कुछ दोष नहीं है।) लेकिन तू **जो रागद्वेष करता है वह तेरा अज्ञान है।**

और जो ज्ञानी है वह पूर्वोक्त व्यवहार निश्चय कारणसमयसार को जाननेवाला होने से उनमें (द्रव्य, गुण और पर्याय में) हर्षविषाद नहीं करता है, ऐसा भावार्थ है।

एव तु एव पूर्वोक्त प्रकारेण मनोज्ञामनोज्ञशब्दादिपचेंद्रियविषयस्य परकीयगुणद्रव्यरूपस्य मनोविषयस्य वा, कथभूतस्य ? **जाणिदव्वस्स** ज्ञातद्रव्यस्य पचेंद्रियमनोविषयभूतस्येत्यर्थ । तस्य पूर्वोक्तप्रकारेण स्वरूप ज्ञात्वापि। **उवसम णेव गच्छदे मूढो** उपशम नैव गच्छति मूढो बहिरात्मा स्वयम्। कथभूत ? **णिग्गहमणा** निग्रहमना निवारण बुद्धि । कस्य सबधित्वेन ? **परस्स य** परस्य पचेंद्रियमनोविषयस्य। कथभूतस्य ? परकीयशब्दादिगुणद्रव्यरूपस्य। पुनरपि कथभूतस्य ? स्वकीयविषयमागतस्य प्राप्तस्य। पुनरपि कि रूपश्चाज्ञानी जीव ? **सय च बुद्धि सिवमपत्तो** स्वय च शुद्धात्मसवित्तिरूपा बुद्धिमप्राप्त । वीतरागसहजपरमानदरूप शिवशब्दवाच्य सुख चाप्राप्त इति।

कि च, यथायस्कातोपलाकृष्टा सूची स्वस्थानात्प्रच्युत्यायस्कातोपलपाषाणसमीप गच्छति तथा शब्दादयश्चित्तक्षोभरूप विकृतिकरणार्थम् जीव समीप न गच्छति। जीवोऽपि तत्समीप न गच्छति निश्चयत किंतु स्वस्थाने स्वस्वरूपेणैव तिष्ठति। एव वस्तुस्वभावे सत्यपि यदज्ञानी जीव उदासीनभाव मुक्त्वा रागद्वेषौ करोति तदज्ञानमिति। हे भगवन्! पूर्व बधाधिकारे भणित **"एव णाणी सुद्धो ण सय परिणमदि रायमादीहि। राइज्जदि अण्णेहि दु सो रत्तादि एहि भावेहि"**।। ता वृ ३०२।। इत्यादि रागादीनामकर्ता ज्ञानी, परद्रव्यजनिता रागादय इत्युक्त।

इस प्रकार जानने योग्य पचेंद्रिय, विषय मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दादि तथा मन के विषय जो परकीय गुण और द्रव्य, उन मन और इंद्रियों के विषय को जानकर भी मूढ बहिरात्मा जीव स्वय उपशम भाव को प्राप्त नहीं होता है (शात नहीं रहता है)। वह तो अपने जानने में आये हुए परकीय शब्दादि, गुण या द्रव्यरूप उन पचेंद्रिय और मन के विषयभूत वस्तु का निग्रह-निवारण करना चाहता है, क्योंकि स्वय शुद्धात्मानुभवरूप बुद्धि को प्राप्त नहीं होता है और वीतराग सहज परमानदरूप तथा शिव शब्द से कहे जानेवाले सुख को प्राप्त नहीं होता है।

विशेष स्पष्टीकरण यह है कि, जैसे चुम्बक पाषाण से खेंची हुई लोह सुई अपने स्थान से च्युत होकर चुम्बक पाषाण के समीप आती है वैसे शब्दादि चित्त में क्षोभरूप विकृति करने के लिये जीव के समीप नहीं आते हैं। और निश्चय से जीव भी उनके पास नहीं जाता है किंतु स्वस्थान में स्वस्वभाव से ही रहता है। इस प्रकार का वस्तु का स्वभाव होते हुए भी **जो अज्ञानी जीव उदासीन भाव को छोडकर रागद्वेष करता है वह अज्ञान ही है।**

शका - "हे भगवन् ! इसके पहले बधाधिकार में कहा है कि **'एव णाणी सुद्धो ण स्वय परिणमदि रागमादीहि। रागिज्जदि अण्णेहि दु सो रागादि एहि भावेहि'**।। अर्थात् इस प्रकार ज्ञानी शुद्ध है क्योंकि वह रागादि भावों से स्वय परिणमन नहीं करता है, लेकिन वह अन्य रागादि भावों से (दोषों से) रागादि विकारभावमय किया जाता है।" इसलिये ज्ञानी (आत्मा) रागादिकों का अकर्ता है और रागादि परद्रव्य से उत्पन्न होते हैं, ऐसा कहा गया है। लेकिन यहाँ "स्वकीय बुद्धि दोष से उत्पन्न होनेवाले रागादिभाव हैं, परकीय शब्दादि पचेंद्रिय विषयों का दोष नहीं है," ऐसा कहते हो, तो इसमें पूर्वापर विरोध आता है ?

समाधान - **वहाँ बधाधिकार के व्याख्यान में ज्ञानी जीव की मुख्यता है** और सम्यग्ज्ञानी तो रागादि भावों से परिणमन नहीं करता है, इसलिये रागादिभाव परद्रव्यजनित हैं, ऐसा कहा है।

---

१ समयसार गाथा ३०२ ता वृ

अत्र तु स्वकीयवुद्धिदोषजनिता रागादय परेषा शव्दादिपचेंद्रियविषयाणा दूपण नास्तीति पूर्वापर विरोध ? अत्रोत्तरमाह-तत्र वधाधिकारव्याख्याने ज्ञानिजीवस्य मुख्यता ज्ञानी तु रागादिभिर्न परिणमति तेन कारणेन परद्रव्यजनिता भणिता । अत्र चाज्ञानिजीवस्य मुख्यता स चाज्ञानी जीव स्वकीयवुद्धिदोषेण परद्रव्यनिमित्तमात्रमाश्रित्य रागादिभि परिणमिति, तेन कारणेन परेषा शव्दादिपचेंद्रियविषयाणा दूषण नास्तीति भणित । तत कारणात् पूर्वापरविरोधो नास्ति इति। एव निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गभूत निश्चयकारणसमयसारव्यवहारकारणसमयसारद्वयमजानन् सन्नज्ञानी जीव स्वकीय बुद्धिदोषेण रागादिभि परिणमिति। परेषा शव्ददीना दूपण नास्तीति व्याख्यानमुख्यत्वेन नवमस्थले गाथा दशक गतम्।। ३९९ से ४०८ ।।

अथ मिथ्यात्वरागादिपरिणतजीवस्याज्ञानचेतना केवलज्ञानादिगुणप्रच्छाटक कर्मवध जनयतीति प्रतिपादयति-

वेदतो कम्मफल अप्पाण कुणदि जो दु कम्मफल। (३८७)
सो त पुणो वि बधदि बीय दुक्खस्स अट्ठविह।।४०९।।
वेदतो कम्मफल मए कद मुणदि जो दु कम्मफल। (३८८)
सो त पुणो वि बधदि बीय दुक्खस्स अट्ठविह।।४१०।।
वेदतो कम्मफल सुहिदो दुहिदो य हवदि जो चेदा। (३८९)
सो त पुणो वि बधदि बीय दुक्खस्स अट्ठविह।।४११।।

और यहॉ **अज्ञानी जीव की मुख्यता है**, वह अज्ञानी जीव अपने बुद्रि दोष से परद्रव्य को निमित्त मात्र आश्रय करके रागादि से परिणमन करता है इस कारण से परकीय शव्दादि पचेंद्रिय विषयों का दोप नहीं है, ऐसा कहा गया है। डसलिये इसमें पूर्वापर विरोध नहीं है।

इस प्रकार निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गभूत निश्चय कारणसमयसार और व्यवहार कारणसमयसार इन दोनों को न जाननेवाला होकर अज्ञानी जीव स्वकीय बुद्धि दोष से रागादि भावरूप से परिणमन करता है, इसमें परकीय शव्दादिकों का दोष नहीं है, इस प्रकार के कथन की मुख्यता से नवम स्थल में १० गाथायें पूर्ण हुई।

भावार्थ - जो कहते हैं कि, हमारे पास व्यवहार मोक्षमार्गभूत रत्नत्रय है लेकिन स्वानुभूतिवालाअभ्यतर अभेद रत्नत्रयवाला निश्चय कारणसमयसार नहीं है, तो ऐसा कहनेवाला मिथ्यात्वी है।। ३९९ से ४०८।।

अव, मिथ्यात्व रागादि परिणत जीव के अज्ञान चेतना होती है, वह केवलज्ञानादिगुण को प्रच्छादन करनेवाली कर्मवध को उत्पन्न करती है, यह कहते हैं -

गाथार्थ - **(जो दु)** जो आत्मा **(कम्मफल वेदतो)** कर्म के फल को अनुभव करता हुआ **(कम्मफल अप्पाण कुणदि)** कर्मफल को निजरूप ही करता है **(सो)** वह **(पुणोवि)** फिर भी **(दुक्खस्स बीय)** दुःख का वीज **(अट्ठविह त)** ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्म को **(बधदि)** वाधता है।

ज्ञानाज्ञानभेदेन चेतना तावद्द्विविधा भवति। इय तावदज्ञानचेतना गाथात्रयेण कथ्यते- उदयागत शुभाशुभकर्म वेदयन्ननुभवन् सन्नज्ञानिजीव स्वस्थभावाद् भ्रष्टो भूत्वा मदीय कर्मेति भणति। मया कृत कर्मेति च यो भणति। स जीव पुनरपि तदष्टविधकर्म बध्नाति। कथंभूत ? बीज कारण। कस्य ? दु खस्य। इति गाथाद्वयेनाज्ञानरूपा कर्मचेतना व्याख्याता। कर्मचेतना कोऽर्थ ? इति चेत्, मदीय कर्म मया कृत कर्मेत्याद्यज्ञानभावेनेच्छापूर्वकमिष्टानिष्टरूपेण निरुपरागशुद्धात्मानुभूतिच्युतस्य मनोवचनकायव्यापारकरण यत् सा बधकारणभूता कर्मचेतना भण्यते।

उदयागत कर्मफल वेदयन् शुद्धात्मस्वरूपचेतयमानो मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयनिमित्तेन य सुखितो दु खितो वा भवति स जीव पुनरपि तदष्टविध कर्मम् बध्नाति। कथभूत ? बीज कारण।

कस्य ? दु खस्य। इत्येकगाथया कर्मफलचेतना व्याख्याता। कर्मफल चेतना कोऽर्थ ? इति चेत् । स्वस्थभावरहितेनाज्ञानभावेन यथासभव व्यक्ताव्यक्तस्वभावेनेच्छापूर्वकमिष्टानिष्टविकल्परूपेण हर्षविषादमय सुखदु खानुभव यत्, सा बधकारणभूता कर्मफलचेतना भण्यते। इय कर्मचेतना कर्मफलचेतना च त्रिरूपापि त्याज्या बधकारणत्वादिति।

(जो दु) जो आत्मा (कम्मफल वेदतो) कर्म के फल को अनुभव करता हुआ (कम्मफल मए कद मुणदि) उस कर्मफल को मैंने किया है ऐसा मानता है (सो) वह (पुणो वि) फिर भी (दुक्खस्स बीय) दु ख का बीज (अट्ठविह त) ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्म को (बधदि) बाधता है।

(जो चेदा) जो आत्मा (कम्मफल वेदतो) कर्म के फल को अनुभव करता हुआ (सुहिदो य दुहिदो) सुखी और दु खी (हवदि) होता है (सो) वह आत्मा (पुणो वि) फिर भी (दुक्खस्स बीय) दु ख का बीज (अट्ठविह त) ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्म को (बधदि) बाधता है।

टीकार्थ - ज्ञान और अज्ञान के भेद से चेतना दो प्रकार की याने ज्ञानचेतना और अज्ञान चेतना है। (ज्ञानचेतना-चतुर्थ गुणस्थान से सिद्ध तक और अज्ञानचेतना-मिथ्यात्व-सासादन मिश्र-गुणस्थानवर्ती जीव की होती है।)

यहाँ पर तीन गाथाओं के द्वारा अज्ञानचेतना का वर्णन किया जाता है-उदय में आये हुए शुभ या अशुभ कर्म को भोगता हुआ यह अज्ञानी जीव स्वस्थभाव से भ्रष्ट होकर 'यह मेरा कर्म है,' ऐसा कहता है। "मैंने यह कर्म किया है," ऐसा जो कहता है वह जीव फिर भी आठ प्रकार के कर्म को बाधता है।

शका - कैसा है वह कर्म ?

समाधान - दु ख का बीज कारण है।

इस प्रकार दो गाथाओं के द्वारा अज्ञानरूप कर्मचेतना का व्याख्यान किया है।

शका - कर्मचेतना का क्या अर्थ है ?

समाधान - "यह मेरा कर्म है, मेरा किया हुआ यह कर्म है," इस प्रकार अज्ञान भाव के द्वारा वीतरागमय शुद्धात्मानुभूति से च्युत हुए जीव का जो इच्छापूर्वक इष्ट-अनिष्ट भाव से मन, वचन और काय की चेष्टा करना है, वह बधकारणभूत कर्मचेतना कहलाती है।

तत्र तयोर्द्वयो कर्मचेतना कर्मफलचेतनयोर्मध्ये पूर्वम् तावन्निश्चयप्रतिक्रमण- निश्चयप्रत्याख्यान -निश्चयालोचना स्वरूप यत्पूर्वम् व्याख्यात तत्र स्थित्वा शुद्धज्ञानचेतनाबलेन कर्मचेतनासन्यासभावना नाटयति। कर्मचेतनात्यागभावना कर्मवधविनाशार्थम् करोतीत्यर्थ ।

तद्यथा-यदहमकार्षम् यदहमचीकर यदह कुर्वन्तमप्यन्य प्राणिन समन्वज्ञासिपम्। केन ? मनसा वाचा कायेन तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति पड्सयोगेनैकभग । यदहमकार्षम् यदहमचीकर यदहकुर्वन्तमप्यन्य प्राणिन समन्वज्ञासिपम्। केन ? मनसा वाचा तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति पचसयोगेन, एकैकापनयने भगत्रय भवति। सयोगेनेत्याद्यक्षसचारेणैकोन-पचाशद्भङ्गा भवतीति टीकाभिप्राय । अथवा त एव सुखोपायेन कथ्यते। कथ ? इति चेत्, कृत कारितमनुमतमिति प्रत्येक भगत्रय भवति। कृतकारितद्वय कृतानुमतद्वय कारितानुमतद्वयमिति द्विसयोगेन च भगत्रय जातम्। कृतकारितानुमतत्रयमिति त्रिसयोगेनैको भग इति सप्तभगी। तथैव च मनसा वाचा कायेनेति प्रत्येक भगत्रय भवति। मनोवचनद्वय मन कायद्वय वचनकायद्वयमिति द्विसयोगेन भगत्रय जातम्। मनोवचनकायत्रयमिति च त्रिसयोगेनैको भग इयमपि सप्तभगी। कृत मनसा सह, कृत वाचा सह, कृत कायेन सह, कृत मनोवचनद्वयेन सह, कृत मन कायद्वयेन सह, कृत वचनकायद्वयेन सह, कृत मनोवचनकायत्रयेण सहेति कृते निरुद्धे विवक्षिते सप्तभगी जाता यथा। तथा कारितेऽपि, तथा अनुमतेऽपि, तथा कृतकारितद्वयेऽपि, तथा कृतानुमतद्वयेऽपि, तथा कारितानुमत द्वयेऽपि, तथा कृतकारितानुमतत्रये चेति प्रत्येकमनेन क्रमेण सप्तभगी योजनीया। एव-एकोनपचाशद्भगा भवतीति प्रतिक्रमणकल्प समाप्त ।

उदय में आये हुए कर्मफल को अनुभव करनेवाला याने शुद्धात्मानुभव न करनेवाला जो जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ इद्रियों के विपय को निमित्तमात्र करके सुखी अथवा दु खी होता है, वह जीव फिर भी उन आठ प्रकार के कर्मो को वाधता है।

शका - वे कर्म कैसे हैं ?

समाधान - वे कर्म दु ख का वीज कारण हैं।

इस प्रकार तीसरी गाथा से कर्मफल चेतना का व्याख्यान किया है।

शका - कर्मफल चेतना का क्या अर्थ है ?

समाधान - स्वस्थभाव से रहित (शुद्धात्मानुभव से रहित) अज्ञानभाव से-अज्ञानचेतना से यथा सभव व्यक्ताव्यक्त स्वभाव से इच्छापूर्वक किये जानेवाले इष्टानिष्ट विकल्परूप से हर्षविषादमय सुख-दु ख का अनुभव करनेवाली जो अज्ञानचेतना है, वह बध का कारणवाली कर्मफलचेतना कहलाती है।

यह कर्मचेतना और कर्मफलचेतना दोनों भी बध का कारण होने से त्याज्य है। वहाँ कर्मचेतना और कर्मफलचेतना इन दोनों में पहले तो निश्चयप्रतिक्रमण, निश्चयप्रत्याख्यान, निश्चय आलोचना इनका जो स्वरूप पूर्व में कहा था उसमें रहकर शुद्धज्ञानचेतना के बल से कर्मचेतना के सन्यास की भावना को नचाते हैं-करते हैं। अर्थात् कर्म के बध का नाश करने के लिये कर्मचेतना के त्याग की भावना को करते हैं।

इदानीं प्रत्याख्यानकल्प कथ्यते-तथाहि-यदह करिष्यामि, यदह कारयिष्यामि, यदह कुर्वन्तमप्यन्य प्राणिन समनुज्ञास्यामि। केन ? मनसा वाचा कायेन तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति पूर्ववत् षट्सयोगेनैको भग । यथा यदह करिष्यामि यदह कारयिष्यामि यदह कुर्वन्तमप्यन्य प्राणिन समनुज्ञास्यामि। केन ? मनसा वाचा चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति पूर्ववदेकैकापनयनेन पचसयोगेन भगत्रय भवति। एव पूर्वोक्तक्रमेण-एकोनपचाशद्भगा ज्ञातव्या । इति प्रत्याख्यानकल्प समाप्त ।

जैसे मन से, वचन से, और काय से मैंने जो पहले (भूतकाल में) किया, मैंने पहले किसी से करवाया, करते हुये को अच्छा माना, वह सब मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो जाय, इस प्रकार यह छहों के सयोगरूप पहला भग हुआ। मन से और वचन से जो मैंने किया, किसी से करवाया, और किसी करते हुए को अच्छा माना, वह सब मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होओ, इस प्रकार यह पाँच सयोग का एक भग हुआ।

एक-एक को कम करने से तीन भग पांच सयोगी होंगे। इस प्रकार सयोग करने पर अक्ष सचार के द्वारा ४९ भग हो जाते हैं, यही टीकाकार के कहने का अभिप्राय है। (जैसा कि श्री अमृतचन्द्राचार्यजी ने आत्मख्याति टीका में बताया है।) अथवा वे भग ही सरल रूप से बनाये जा सकते हैं। कैसे ? तो-कृत, कारित और अनुमोदन इस प्रकार प्रत्येक तीन-तीन भग हुए, फिर कृत कारित ये दोनों, कृत अनुमोदन ये दोनों, कारित अनुमोदन ये दोनों, इस प्रकार दो-दो के सयोग से तीन भग हो गये और कृत कारित अनुमोदन इन तीनों के सयोग से एक भग हुआ। इस प्रकार सब मिलकर एक सप्तभगी हुई।

उसी प्रकार मन से, वचन से, काय से प्रत्येक को लेकर तीन भग हुए। फिर मन और वचन ये दो, मन और काय ये दो, वचन व काय ये दो, इस प्रकार दो के सयोग से तीन भग हुए। मन, वचन और काय इन तीनों के सयोग से एक भग हुआ। इस प्रकार यह दूसरी सप्तभगी हुई।

मन के साथ करना, वचन के साथ करना, और काय के साथ करना, मन और वचन दोनों के साथ करना, मन और काय दोनों के साथ करना, वचन और काय दोनों के साथ करना, और मन वचन काय इन तीनों के साथ करना इस प्रकार कृत के निरुद्ध विवक्षित में तीसरी सप्तभगी हुई।

जिस प्रकार कृत की सप्तभगी वतलाई उसी प्रकार कारित पर भी, अनुमोदना पर भी, तथा कृत कारित इन दोनों पर भी, कृत अनुमोदना इन दोनों पर भी, कारित अनुमोदना इन दोनों पर भी, तथा कृत कारित और अनुमोदना इन तीनों पर भी, ऐसे प्रत्येक की इस क्रम से सप्तभगी लगा लेना चाहिये, इस प्रकार ये सब ७ सप्तभगी मिलकर ४९ भग होते हैं। यह प्रतिक्रमण कल्प समाप्त हुआ।

अव, प्रत्याख्यान कल्प का वर्णन करते हैं-मन से, वचन से, काय से जो मैं (भविष्य काल में) करूँगा, जो मैं कराऊगा, करते हुए किसी अन्य को अच्छा मानूँगा, मेरे ये दुष्कृत्य मिथ्या हो जायें। यह छहों के सयोगरूप पहले के अनुसार एक पहला भग हुआ। इसी प्रकार मन से और वचन से मैं करूगा, मैं कराऊँगा और करते हुए किसी अन्य को मैं अच्छा मानूँगा, मेरे ये दुष्कृत्य मिथ्या होवें। यह पचसयोगी भग भी पहले कहे अनुसार एक-एक को कम कर देने पर तीन प्रकार का होता है। इसी प्रकार कहे अनुसार इसको कर लेने से ४९ भग हो जाते हैं ऐसा जानना चाहिए। यह प्रत्याख्यान कल्प समाप्त हुआ।

इदानीमालोचनाकल्प कथ्यते। तद्यथा-यदह करोमि यदह कारयामि यदह कुर्वन्तमप्यन्य प्राणिन समनुजानामि। केन ? मनसा वाचा कायेनेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति पूर्ववत् षट्सयोगेनैकभग । तथा यदहं करोमि यदह कारयामि यदह कुर्वन्तमप्यन्य प्राणिन समनुजानामि। केन ? मनसा वाचेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमितिएकैकापनयनेन पचसयोगेन भगत्रय भवति। एव पूर्वोक्तप्रकारेण एकोनपचाद्भगा ज्ञातव्या । इत्यालोचनाकल्प समाप्त । कल्प पर्वपरिच्छेदोऽधिकारोऽध्याय प्रकरणमित्याद्येकार्था ज्ञातव्या । एव निश्चयप्रतिक्रमण-निश्चय प्रत्याख्यान-निश्चयालोचना-प्रकारेण शुद्धज्ञानचेतनाभावनारूपेण गाथाद्वयव्याख्यानेन कर्मचेतनासन्यासभावना समाप्ता।

इदानीं शुद्धज्ञानचेतनाभावनाबलेन कर्मफलचेतनासन्यासभावना नाटयति करोतीत्यर्थ । तद्यथा-नाह मतिज्ञानावरणीय कर्मफल भुजे। तर्हि कि करोमि ? शुद्धचैतन्य स्वभावमात्मानमेव सचेतये। सम्यगनुभवे इत्यर्थ । नाह श्रुतज्ञानावरणीय कर्मफल भुजे। तर्हि कि करोमि ? शुद्धचैतन्य स्वाभावमात्मानमेव सचेतये। नाहमवधि-ज्ञानावरणीय कर्मफल भुजे। तर्हि कि करोमि ? शुद्ध चैतन्य स्वभावमात्मानमेव सचेतये। नाह मन पर्ययज्ञानावरणीयकर्मफल भुजे। तर्हि कि करोमि ? शुद्धचैतन्यस्वाभावमात्मानमेव सचेतये। नाह केवलज्ञानावरणीयकर्मफल भुजे। तर्हि कि करोमि ? शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानमेव सचेतये। इति पचप्रकारज्ञानावरणीय-रूपेण कर्मफलचेतनासन्यासभावना व्याख्याता।

अव, आलोचना कल्प का वर्णन करते हैं-वर्तमान काल में मन से, वचन से, काय से जो मैं करता हूँ, कराता हूँ, करते हुए किसी अन्य को अच्छा मानता हूँ, मेरे ये दुष्कृत्य मिथ्या हो जायें। यह पहले के समान छहों के सयोगरूप पहला भग हुआ। इसी प्रकार मन से और वचन से जो मैं करता हूँ, मैं कराता हूँ, और करते हुए किसी अन्य जीव को मैं अच्छा मानता हूँ, मेरे ये दुष्कृत्य मिथ्या हो जायें। इस प्रकार पूर्वोक्त क्रम से एक-एक को कम करने पर पॉच सयोगी तीन भग होते हैं। इस प्रकार पहले कहे अनुसार ४९ भग होते हैं, ऐसा जानना चाहिये। यह आलोचना कल्प समाप्त हुआ। **कला, पर्व, अधिकार, अध्याय, परिच्छेद, प्रकरण इत्यादि सब एकार्थ नाम हैं,** ऐसा जानना चाहिये।

इस प्रकार निश्चयप्रतिक्रमण निश्चयप्रत्याख्यान निश्चयआलोचना वाली शुद्धज्ञानचेतना भावना से दो गाथाओं में कर्मचेतना के सन्यास की भावना समाप्त हुई।

अव, शुद्धज्ञानचेतना की भावना के बल से कर्मफलचेतना के सन्यास (-त्याग) की भावना को नचाते हैं - करते हैं, जैसे कि - मतिज्ञानावरण कर्म के फल को मैं नहीं भोगता हूँ। तो फिर क्या करता हूँ ? मैं तो स्वशुद्ध चैतन्यस्वभावमय आत्मा का ही सम्यक् अनुभव करता हूँ। श्रुतज्ञानावरण कर्म के फल को मैं नहीं भोगता हूँ। तो फिर क्या करता हूँ ? मैं तो स्वशुद्ध चैतन्यस्वभावमय आत्मा का ही सम्यक् अनुभव करता हूँ। अवधिज्ञानावरण कर्म के फल को मैं नहीं भोगता हूँ। तो फिर क्या करता हूँ ? मे तो स्वशुद्ध चैतन्य स्वभावमय आत्मा का ही सम्यक् अनुभव करता हूँ। मन पर्ययज्ञानावरण कर्म के फल को मैं नहीं भोगता हूँ। तो फिर क्या करता हूँ? मैं तो स्वशुद्धचेतन्यस्वभावमय आत्मा का ही सम्यक् अनुभव करता हूँ। केवलज्ञानावरण कर्म के फल को में नहीं भोगता हूँ। तो फिर क्या करता हूँ ? मैं तो स्व शुद्धचैतन्य स्वभावमय आत्मा का ही सम्यक् अनुभव करता हूँ। इस प्रकार पॉच प्रकार के ज्ञानावरण कर्म के रूप से कर्मफल सन्यास की भावना की जाती है, इस का कथन हुआ।

नाह चक्षुर्दर्शनावरणीय फल भुजे। तर्हि कि करोमि ? शुद्धचैतन्य स्वभावमात्मानमेव सचेतये। एव टीकाकथितक्रमेण-

पण णव दु अट्ठवीसा चउ तिय णउदीय दुण्णि पचेव।
वावण्णहीण वियसय पयडिविणासेण होंति ते सिद्धा।।

इमा गाथामाश्रित्य अष्टचत्वारिंशदधिकशतप्रमितोत्तर प्रकृतीना कर्मफलसन्यासभावना नाटयित्वा, कर्तव्येत्यर्थ ।

किच, जगतत्रयकालत्रयसबधि मनोवचनकाय-कृतकारितानुमत-ख्यातिपूजालाभ-दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाक्षारूप निदानवधादि समस्तपरद्रव्यालवनोत्पन्न शुभाशुभसकल्पविकल्परहितेन शून्येन चिदानन्दैकस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्-श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिसजातवीतरागसहजपरमानदरूपसुखरसास्वादपरमसमरसी-भावानुभवसालवनेन भरितावस्थेन केवलज्ञानाद्यनतचतुष्टयव्यक्तिरूपस्य साक्षादुपादेयभूतस्य कार्यसमयसारस्योत्पादकेन निश्चयकारणसमयसाररूपेण शुद्धज्ञानचेतनाभावनावष्टभेन कृत्वा कर्मचेतनासन्यासभावना कर्मफलचेतनासन्यासभावना च मोक्षार्थिना पुरुषेण कर्तव्येति भावार्थ । एव गाथाद्वय कर्मचेतनासन्यासभावनामुख्यत्वेन, गाथैका कर्मफलचेतनासन्यास-भावनामुख्यत्वेनेति दशमस्थले गाथात्रय गतम् ।।४०९, ४१०, ४११।।

चक्षुदर्शनावरण कर्म के फल को मैं नहीं भोगता हूँ। तो फिर क्या करता हूँ ? मै तो स्वशुद्ध चैतन्य स्वभावमय आत्मा का ही सम्यक् अनुभव करता हूँ। इस प्रकार आत्मख्याति टीका में बताये हुए क्रम के अनुसार "पण णव दु इत्यादि," अर्थात् ५ ज्ञानावरण कर्म की, ९ दर्शनावरण की, २ वेदनीय की, २८ मोहनीय की, ४ आयु की, ९३ नाम की, २ गोत्र की, और ५ अतराय की इस प्रकार सब ५२ कम २०० अर्थात् १४८ कर्म प्रकृतियाँ हुई। इन सब प्रकृतियों का नाशकर सिद्ध होते है। इस गाथा का आशय लेकर १४८ सख्या वाली उत्तर कर्म की प्रकृतियों के फल के त्याग की भावना करने योग्य है।

इस का विशेष स्पष्टीकरण यह है कि, तीनलोक और तीनकाल से सबध रखनेवाले जो मन, वचन, काय तथा कृत, कारित और अनुमोदना तथा ख्याति, पूजा, लाभ तथा देखे, सुने और अनुभव किये हुए भोगों की अकाक्षारूप निदानबधादि सब परद्रव्य के आलबन से उत्पन्न होनेवाले शुभ-अशुभ सकल्प-विकल्परहित अर्थात् चिदानद-एक-स्वभाव-शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धानज्ञानानुचरण अभेदरत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न होनेवाले वीतराग-सहज-परमानदमय सुखरस के आस्वादवाले परमसमरसीभाव के अनुभव के अवलबन से भरितअवस्थावाले, केवलज्ञानादि अनतचतुष्टय के व्यक्तिरूप साक्षात् उपादेयभूत कार्यसमयसार को उत्पन्न करने वाले, निश्चयकारणसमयसार वाले शुद्धज्ञानचेतना की भावना का अवलबन करके कर्मचेतना की सन्यास भावना और कर्मफलचेतना की सन्यास भावना मुमुक्षु पुरुष द्वारा की जानी चाहिये, यह भावार्थ है।

इस प्रकार दो गाथाओं में कर्मचेतना के सन्यास की भावना की मुख्यता से कथन है और एक गाथा में कर्मफलचेतना के सन्यास की भावना की मुख्यता से कथन है, इस तरह दशमस्थल में तीन गाथायें पूर्ण हुई।। ४०९, ४१०, ४११।।

अथेदानीं व्यावहारिक जीवादिनवपदार्थेभ्यो भिन्नमपि टकोत्कीर्णज्ञायकैकपारमार्थिकपदार्थसज्ञ गद्यपद्यादिविचित्र-रचनारचितशास्त्रै शब्दादिपचेंद्रियविषयप्रभृतिपरद्रव्यैश्च शून्यमपि रागादि विकल्पोपाधिरहित सदानन्दैकलक्षण सुखामृतरसास्वादेन भरितावस्थ परमात्मतत्त्व प्रकाशयति -

सत्थ णाण ण हवदि जम्हा सत्थ ण याणदे किचि। (३९०)
तम्हा अण्ण णाण अण्णं सत्थ जिणा विति।।४१२।।
सद्दो णाण ण हवदि जम्हा सद्दो ण याणदे किचि। (३९१)
तम्हा अण्ण णाण अण्ण सद्द जिणा विति।।४१३।।
रूव णाण ण हवदि जम्हा रूव ण याणदे किचि। (३९२)
तम्हा अण्ण णाण अण्ण रूव जिणा विति।।४१४।।
वण्णो णाण ण हवदि जह्मा वण्णो ण याणदे किचि। (३९३)
तह्मा अण्ण णाण अण्ण वण्ण जिणा विति।।४१५।।

अव यहाँ जो व्यावहारिक जीवादि **नवपदार्थों से भिन्न** है तो भी टकोत्कीर्ण ज्ञायक एक **पारमार्थिक पदार्थ** नामवाला है, तथा गद्यपद्यादि विचित्र रचना रचित शास्त्रों से और शब्दादि पचेंद्रिय विषय प्रभृति **परद्रव्यों से शून्य** है तो भी रागादिविकल्पों की उपाधि से रहित सदानद एक लक्षण सुखामृत रसास्वाद से **भरित अवस्थावाला परमात्म तत्त्व है;** उस परमात्म तत्त्व को प्रगट करते हैं -

गाथार्थ - **(सत्थ)** शास्त्र **(णाण)** ज्ञान **(ण हवदि)** नहीं है **(जम्हा)** क्योंकि **(सत्थ किचि ण याणदे)** शास्त्र कुछ नहीं जानता है याने शास्त्र जड है **(तम्हा)** इसलिये **(णाण अण्ण)** ज्ञान अन्य है **(सत्थ अण्ण)** शास्त्र अन्य है, ऐसा **(जिणा विति)** जिनेन्द्र भगवान कहते हैं।

(सद्दो) शव्द **(णाण ण हवदि)** ज्ञान नहीं है **(जम्हा)** क्योंकि **(सद्दो किचि ण याणदे)** शब्द कुछ नहीं जानता है याने जड है **(तम्हा)** इसलिये **(णाण अण्ण)** ज्ञान अन्य है, **(सद्द अण्ण)** शब्द अन्य है ऐसा **(जिणा विति)** जिनेन्द्र भगवान कहते हैं।

(रूव) रूप **(णाण ण हवदि)** ज्ञान नहीं है **(जम्हा)** क्योंकि **(रूव किचि ण याणदे)** रूप कुछ नहीं जानता है **(तम्हा)** इसलिये **(णाण अण्ण)** ज्ञान अन्य है **(रूव अण्ण)** रूप अन्य है ऐसा **(जिणा विति)** जिनेन्द्र भगवान कहते है।

(वण्णो णाण ण हवदि) वर्ण ज्ञान नहीं है **(जम्हा)** क्योंकि **(वण्णो किचि ण याणदे)** वर्ण कुछ जानता नहीं है **(तम्हा)** इसलिये **(णाण अण्ण)** ज्ञान अन्य है **(वण्ण अण्ण)** वर्ण अन्य है ऐसा **(जिणा विति)** जिनेन्द्र देव कहते हैं।

गधो णाण ण हवदि जम्हा गधो ण याणदे किचि। (३९४)
तम्हा अण्ण णाण अण्ण गध जिणा विति।। ४१६।।
ण रसो दु हवदि णाण जम्हा दु रसो ण याणदे किचि। (३९५)
तम्हा अण्ण णाण रस य अण्ण जिणा विति।।४१७।।
फासो ण हवदि णाण जम्हा फासो ण याणदे किचि। (३९६)
तम्हा अण्ण णाण अण्ण फास जिणा विति।।४१८।।
कम्म णाण ण हवदि जम्हा कम्म ण याणदे किचि। (३९७)
तम्हा अण्ण णाण अण्ण कम्म जिणा विति।।४१९।।
धम्मो णाण ण हवदि जम्हा धम्मो ण याणदे किचि। (३९८)
तम्हा अण्ण णाण अण्ण धम्म जिणा विति।।४२०।।
णाणमधम्मो ण हवदि जम्हाऽधम्मो ण याणदे किचि। (३९९)
तम्हा अण्ण णाण अण्णमधम्म जिणा विति।। ४२१ ।।

(गधो) गध (णाण ण इवदि) ज्ञान नहीं है (जम्हा) क्योंकि (गधो किचि ण याणदे) गध कुछ नहीं जानता है (तम्हा) इसलिये (णाण अण्ण) ज्ञान अन्य है (गध अण्ण) गध अन्य है, ऐसा (जिणा विंति) जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

(रसो दु णाण ण हवदि) रस तो ज्ञान नहीं है (तम्हा) क्योंकि (रसो दु किचि ण याणदे) रस तो कुछ नहीं जानता है (तम्हा) इसलिये (णाण अण्ण य) ज्ञान अन्य है ओर (रस अण्ण) रस अन्य है, ऐसा (जिणा विति) जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

(फासो) स्पर्श (णाण ण हवदि) ज्ञान नहीं है (जम्हा) क्योंकि (फासो किचि ण याणदे) स्पर्श कुछ नहीं जानता है (तम्हा) इसलिये (णाण अण्ण) ज्ञान अन्य है (फास अण्ण) स्पर्श अन्य है ऐसा (जिणा विति) जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

(कम्म) कम (णाण ण हवदि) ज्ञान नहीं है (जम्हा) क्योंकि (कम्म किचि ण याणदे) कर्म कुछ नहीं जानता है (तम्हा) इसलिये (णाण अण्ण) ज्ञान अन्य है (कम्म अण्ण) कर्म अन्य है ऐसा (जिणा विति) जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

(धम्मो) धर्मास्तिकाय (णाण ण हवदि) ज्ञान नहीं है (जम्हा) क्योंकि (धम्मो किचि ण याणदे) धर्मद्रव्य कुछ नहीं जानता है (तम्हा) इसलिये (णाण अण्ण) ज्ञान अन्य है (धम्म अण्ण) धर्मद्रव्य अन्य है ऐसा (जिणा विति) जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

(अधम्मो) अधर्मद्रव्य (णाण ण हवदि) ज्ञान नहीं है (जम्हा) क्योंकि (अधम्मो किचि ण याणदे) अधर्मद्रव्य कुछ नहीं जानता है (तम्हा) इसलिये (णाण अण्ण) ज्ञान अन्य है (अधम्म अण्ण) अधर्मद्रव्य अन्य है ऐसा (जिणा विति) जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

कालो णाण ण हवदि जम्हा कालो ण याणदे किंचि। (४००)
तम्हा अण्ण णाणं अण्ण काल जिणा विंति।।४२२।।
आयासं पि ण णाण जम्हाऽऽयास ण याणदे किंचि। (४०१)
तम्हाऽऽयास अण्णं अण्ण णाण जिणा विंति।।४२३।।
णज्झवसाण णाण अज्झवसाण अचेदण जम्हा। (४०२)
तम्हा अण्ण णाण अज्झवसाण तहा अण्ण।।४२४।।
जम्हा जाणदि णिच्च तम्हा जीवो दु जाणगो णाणी। (४०३)
णाण च जाणयादो अव्वदिरित्त मुणेदव्व।।४२५।।
णाण सम्मादिट्ठि दु सजम सुत्तमगपुव्वगद। (४०४)
धम्माधम्म च तहा पव्वज्ज अब्भुवति बुहा।।४२६।।

(कालो) कालद्रव्य (णाण ण हवदि) ज्ञान नहीं है (जम्हा) क्योंकि (कालो किंचि ण याणदे) काल द्रव्य कुछ नहीं जानता है (तम्हा) इसलिये (णाण अण्ण) ज्ञान अन्य है (काल अण्ण) कालद्रव्य अन्य है ऐसा (जिणा विंति) जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

(आयास पि णाण ण) आकाश द्रव्य भी ज्ञान नहीं है (जम्हा) क्योंकि (आयास किंचि ण याणदे) आकाशद्रव्य कुछ नहीं जानता है (तम्हा) इसलिये (णाण अण्ण) ज्ञान अन्य है (आयास अण्ण) आकाश द्रव्य अन्य है ऐसा (जिणा विंति) जिनेन्द्र भगवान कहते हैं।

(णज्झवसाण णाण) अध्यवसान ज्ञान नहीं है (जम्हा) क्योंकि (अज्झवसाण अचेदण) अध्यवसान अचेतन है (तम्हा) इसलिये (णाण अण्ण) ज्ञान अन्य है (अज्झवसाण अण्ण तहा) तथा अध्यवसान अन्य है ऐसा जिनेन्द्र भगवान कहते हैं।

(जम्हा) क्योंकि (जीवो) जीव (णिच्च) नित्य (जाणदि) जानता है (तम्हा) इसलिये (जाणगो जीवो दु) ज्ञायक जीव ही (णाणी) ज्ञानी है (च) और (णाण) ज्ञान (जाणयादो) ज्ञायक से (अव्वदिरित्त) अभिन्न है ऐसा (मुणेदव्व) जानना चाहिये।

(बुहा) ज्ञानीजन-गणधरदेव-जिनेंद्र देव (णाण दु) ज्ञान को ही (सम्मादिट्ठि) सम्यग्दृष्टि (सजम) सयम (अगपुव्वगद सुत्त) अगपूर्वगत सूत्र (धम्माधम्म च) धर्म और अधर्म (तहा) तथा (पव्वज्ज) दीक्षा (अब्भुवति) मानते हैं।

टीकार्थ - आत्मख्याति - श्रुत (शास्त्र) ज्ञान नहीं है क्योंकि श्रुत अचेतन हे इसलिये ज्ञान में और श्रुत में व्यतिरेक-भिन्नता है। शब्द ज्ञान नहीं है क्योंकि शब्द पुद्गल की पर्याय है-अचेतन है इसलिये ज्ञान में और शब्द में भिन्नता है।

आत्मख्यातिटीका :- न **श्रुत** ज्ञान-अचेतनत्वात् ततो ज्ञानश्रुतयोर्व्यतिरेक । न **शब्दो** ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञान शब्दयोर्व्यतिरेक । न **रूप** ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानरूपयोर्व्यतिरेक । न **वर्णो** ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानवर्णयोर्व्यतिरेक । न **गधो** ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानगधयोर्व्यतिरेक । न **रसो** ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानरसोर्व्यतिरेक । न **स्पर्शो** ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानस्पर्शोयोर्व्यतिरेक । न **कर्म** ज्ञानमअचेलनत्वात् ततो ज्ञानकर्मणोर्व्यतिरेक । न **धर्मो** ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानधर्मयोर्व्यतिरेक । **नाधर्मो** ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाधर्मयोर्व्यतिरेक । न **कालो** ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानकालयोर्व्यतिरेक । **नाकाश** ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाकाशयोर्व्यतिरेक । **नाध्यवसान** ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाध्यवसानयोर्व्यतिरेक । इत्येव ज्ञानस्य सर्वैरेव परद्रव्यै सह व्यतिरेक निश्चयसाधितो द्रष्टव्य ।

अथ जीव एवैको ज्ञान चेतनत्वात् ततो ज्ञानजीवयोरेवाव्यतिरेक । न च जीवस्य स्वय ज्ञानत्वात् ततो व्यतिरेक कश्चनापि शकनीय । एव तु सति ज्ञानमेव सम्यग्दृष्टि, ज्ञानमेव सयम, ज्ञानमेवागपूर्वरूप सूत्र, ज्ञानमेव धर्माधर्मौ, ज्ञानमेव प्रव्रज्येति ज्ञानस्य जीवपर्यायैरपि सहाव्यतिरेको निश्चयसाधितो द्रष्टव्य ।

अथैव सर्वपरद्रव्यव्यतिरेकेण सर्वदर्शनादिजीवस्वभावाव्यतिरेकेण चातिव्याप्तिमव्याप्तिम् च परिहरमाण-मनादिविभ्रममूल धर्माधर्मरूप परसमयमुद्वम्य स्वयमेव प्रव्रज्यारूपमासाद्य दर्शनज्ञानचारित्रस्थितिस्वरूप स्वसमयमवाप्य मोक्षमार्गमात्मन्येव परिणत कृत्वा समवाप्तसपूर्णविज्ञानघनस्वभाव हानोपादानशून्य साक्षात् समयसारभूत परमार्थरूप शुद्धज्ञानमेकमेवावस्थित द्रष्टव्यम् ।

रूप ज्ञान नहीं है क्योंकि रूप-मूर्तिकत्व पुद्गल का गुण है-अचेतन है इसलिये रूप में और ज्ञान में भिन्नता है। **वर्ण** ज्ञान नहीं हैं क्योंकि वर्ण पुद्गल का गुण है-अचेतन है इसलिये वर्ण में और ज्ञान में भिन्नता है। **गध** ज्ञान नहीं है क्योंकि गध पुद्गल का गुण है अचेतन है इसलिए गध और ज्ञान में भिन्नता है। **रस** ज्ञान नहीं है क्योंकि रस अचेतन है इसलिये रस में और ज्ञान में भिन्नता है। **स्पर्श** ज्ञान नहीं है क्योंकि स्पर्श अचेतन है इसलिये स्पर्श में और ज्ञान में भिन्नता है।

धर्मद्रव्य ज्ञान नहीं है क्योंकि धर्मद्रव्य अचेतन है, इसलिये धर्मद्रव्य में और ज्ञान में भिन्नता है। **अधर्मद्रव्य** ज्ञान नहीं है क्योंकि अधर्मद्रव्य अचेतन है, इसलिये अधर्मद्रव्य में और ज्ञान में भिन्नता है। **कालद्रव्य** ज्ञान नहीं है क्योंकि कालद्रव्य अचेतन है, इसलिये कालद्रव्य में और ज्ञान में भिन्नता है। **आकाशद्रव्य** ज्ञान नहीं है क्योंकि आकाशद्रव्य अचेतन है, इसलिये आकाशद्रव्य में और ज्ञान में भिन्नता है। **अध्यवसान** ज्ञान नहीं है क्योंकि अध्यवसान अचेतन है, इसलिये अध्यवसान में और ज्ञान में भिन्नता है। इस प्रकार ज्ञान का सब ही परद्रव्यों के साथ व्यतिरेक है, वह निश्चय साधित (सिद्ध हुआ) देखना चाहिये।

अब, **जीव ही एक ज्ञान है** क्योंकि जीव चेतन है, इसलिये जीव में और ज्ञान में ही अव्यतिरेक-अभेद है। जीव का स्वय ज्ञानपना होने से जीव और ज्ञान में कुछ भी व्यतिरेक भेद शकनीय नहीं है।

इस प्रकार ज्ञान ही सम्यग्दृष्टि है, ज्ञान ही सयम है, ज्ञान ही अगपूर्वरूप सूत्र है, ज्ञान ही धर्माधर्म है, ज्ञान ही दीक्षा है। **ज्ञान का जीव पर्यायों के साथ भी अभेद है वह निश्चयसाधित देखना चाहिये।**

अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियत बिभ्रत्पृथग्वस्तुता मादानोज्झनशून्यमेतदमल ज्ञान तथावस्थित।
मध्याद्यतविभागमुक्त सहजस्फारप्रभाभासुर. शुद्धज्ञानघनो यथाऽस्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति।।[1]
उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथात्तमादेयमशेषतस्तत्। यदात्मन' सहृतसर्वशक्ते पूर्णस्य सधारणमात्मनीह।।[2]

तात्पर्यवृत्ति[3] - गद्यपद्यादिग्रन्थ रचनारूप **शास्त्र,** श्रवणेन्द्रियविषय **शब्द,** **रूप**शब्देनाभिधेया वाच्या स्पर्शरसगन्धवर्णवती या मूर्ति कृष्णनीलरक्तपीतश्वेतपचभेदभिन्नो **वर्ण,** सुरभिदुरभिरूपो **गन्ध**। कटुकतिक्तकषायाम्ल-मधुरभेदभिन्नो **रस**। शीतोष्णस्निग्धरूक्षगुरुलघुमृदुकठिनभेदभिन्न **स्पर्शः**। ज्ञानावरणाद्यष्टमूलप्रकृतिभेदोऽष्टा-धिकचत्वारिंशदधिकशतसख्योत्तरप्रकृतिभेदभिन्न **कर्म।** **धर्मास्तिकायोऽधर्मास्तिकायकालाकाशसज्ञानि** ज्ञेयद्रव्याणि च। तान्येतानि सर्वाणि पूर्वोक्तानि शास्त्रादीनि ज्ञान न सभवति। कस्मात् ? अचेतनत्वात्। यस्मादचेतनानि तस्मात् ज्ञानमन्यत् एतान्यन्यानीति जिना वदन्ति जानन्ति ब्रुवन्ति कथयन्ति वा।

अब, इस प्रकार सब परद्रव्यों के साथ तो व्यतिरेक होने से तथा सब दर्शनादि जीवस्वभावों के साथ अभेद होने से अतिव्याप्ति और अव्याप्ति दोष को दूर करता हुआ, अनादिविभ्रम मूल धर्माधर्मरूप परसमय को दूर करके स्वय ही प्रव्रज्यारूप (निश्चय चारित्र) को प्राप्त करके, दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थिति स्वरूप स्वसमय को व्यापकर आत्मा में ही मोक्षमार्ग के परिणाम करके जिसने सपूर्ण विज्ञानघन स्वभाव को प्राप्त किया है ऐसा त्याग-ग्रहण से रहित साक्षात् समयसारभूत परमार्थरूप शुद्ध एक ज्ञान ही अवस्थित हुआ, ऐसा देखना (अर्थात् **प्रत्यक्ष स्वसवेदन-अनुभव करना**) चाहिये।

आत्मख्याति कलश - २३५ का अर्थ - यह ज्ञान उस तरह अवस्थित हुआ है जैसे इसकी महिमा निरतर उदित रहे, प्रतिपक्षी कर्म न रहे, अन्य परद्रव्यों से भिन्न अवस्थित हुआ है, अपने में ही निश्चित है, पृथक् वस्तुत्व धारण करता हुआ है अर्थात् वस्तु का स्वरूप सामान्य विशेषात्मक है, सो ज्ञान ने भी सामान्य विशेषात्मकपने को धारण कर रक्खा है, ग्रहण त्याग से रहित है, रागादिक मल से रहित है, और इसकी महिमा नित्य उदयरूप ठहर रही है, आदि, मध्य, अत जो भेद हैं उनसे रहित स्वाभाविक विस्ताररूप हुए प्रकाशकर दैदीप्यमान है और शुद्धज्ञान का समूह है। ऐसी जिसकी महिमा सदा उदयमान है, उस तरह ठहरा हुआ है।

आत्मख्याति कलश २३६ का अर्थ - जिसने सब शक्तियॉ समेट ली हैं, ऐसे पूर्ण स्वरूप आत्मा का आत्मा में ही धारण करना वही तो छोडने योग्य छोडा और जो ग्रहण करने योग्य था सो सब ग्रहण कर लिया।

तात्पर्यवृत्ति - गद्य-पद्यादि ग्रन्थ रचनारूप **शास्त्र,** कर्णेन्द्रिय का विषयभूत शब्द, **रूप** शब्द के द्वारा वाच्य स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण वाली मूर्ति, कृष्ण-नील-लाल-पीत और शुक्ल इन पॉच भेदवाला **वर्ण,** सुगन्ध-दुर्गन्ध के भेद से दो प्रकार की **गन्ध,** कडुवा, चिरपरा, कषायला, खट्टा और मधुर भेदवाला **रस,** शीत-उष्ण, स्निग्ध-रूक्ष, गुरु-लघु, मृदु और कठोर भेदवाला **स्पर्श;** ज्ञानावरणादि आठ मूल प्रकृतियों तथा एक सौ अडतालीस उत्तर प्रकृतियों के भेदवाला **कर्म,** धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल और आकाश नामक ज्ञेय द्रव्य। ये सब पूर्व में कहे गये शास्त्रादिक ज्ञान नहीं हो सकते क्योंकि अचेतन हैं। जिस कारण ये अचेतन हैं उस कारण ज्ञान भिन्न है और ये भिन्न हैं ऐसा जिनेन्द्र भगवान् जानते हैं अथवा कहते हैं।

---

१ आ ख्या कलश २३५ २ आ ख्या कलश २३६ ३ समयसार, ज्ञानोदय प्रकाशन, जवलपुर पृष्ठ - ३६०

शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धोपादानरूपेण रागादिविकल्परूपाण्यध्यवसानान्यपि ज्ञान न भवन्ति। कस्मात्? अचेतनत्वात्। तस्मादन्यत्ज्ञानमध्यवसान चान्यदिति जिना वदन्ति। तर्हि कि ज्ञानमिति चेत् ? **जम्हा जाणदि णिच्च** यस्मात् जानाति ज्ञेय वस्तु नित्य सर्वकालम्। **तम्हा जीवो दु जाणगो णाणी** तस्मात् जानातीति ज्ञायक ज्ञानमस्यास्तीतिज्ञानी। कोऽसौ ? जीव। **णाण च जाणयादो अव्वदिरित्त मुणेदव्व** ज्ञान पुन ज्ञायकात् जीवात् सज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेन यद्यपि भिन्न तथापि निश्चयेनाभिन्नमग्नेरुष्णगुणवदिति। कि चापवादव्याख्यान-**अब्भुवति** अभ्युपगच्छन्ति मन्यन्ते। कि ? कर्तार। **बुहा** बुधा पण्डिता। किम् ? कर्मतापन्नम्। **णाण** ज्ञानभेदेनात्मस्वरूपम्। कि कि ज्ञान मन्यन्ते ? **सम्मादिट्ठि** सम्यग्दृष्टिरभेदेनसम्यक्त्व जीवगुणलक्षणम्। **सजम** बहिरङ्गेन्द्रियप्राणसयमबलेन शुद्धात्मानुभूतिलक्षण भावसयमम्। **सुत्तमगपुव्वगद** अङ्गपूर्वविषये शुद्धात्मादिपरिच्छित्तिरूप भावश्रुतम्। **धम्माधम्म च तहा** भावपुण्यपापस्वरूप च तथा। **पव्वज्ज** रागादीच्छानिरोधलक्षण स्वरूपप्रतपनस्वभावम्।

तपश्चरण च यत् केन नयेन एतत्सर्वम् ज्ञान मन्यते ? इति चेत्, मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायपर्यन्त-स्वकीयस्वकीयगुणस्थानयोग्य शुभाशुभशुद्धोपयोगाविनाभूत विवक्षिताशुद्धनिश्चयनयेनाशुद्धोपादानरूपेणेति।

शका - शुद्धउपादानरूप शुद्धनिश्चयनय से रागादि विकल्परूप अध्यवसानभाव भी ज्ञान नहीं हैं। ऐसा किस कारण से ?

समाधान - शुद्धउपादानरूप शुद्धनिश्चयनय से रागादि विकल्परूप अध्यवसानभाव भी ज्ञान नहीं हैं, कारण कि ये अचेतन हैं अर्थात् अचेतन कर्म के निमित्त से होने के कारण शुद्ध चेतनरूप नहीं हैं। इसलिये ज्ञान अन्य है और अध्यवसानभाव अन्य हैं - ऐसा जिनेन्द्र देव कहते हैं।

शका - तो फिर ज्ञान क्या है ?

समाधान - जो सदा ज्ञेयरूप वस्तु को जानता है वह ज्ञान है। इसलिए ऐसा जो जानता है वह ज्ञायक है तथा जिसका वह ज्ञान है वह जीव ज्ञानी है। यह जो ज्ञानी है वह ज्ञानमय जीव है।

यह ज्ञान यद्यपि जीव से अव्यतिरिक्त-अभिन्न है तथा सज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि के भेद से भिन्न है, तथापि जिस प्रकार निश्चय से अग्नि उष्णस्पर्श से अभिन्न है उसी प्रकार जीव भी ज्ञानगुण से अभिन्न है।

इसके सिवाय अपवाद-विशेष व्याख्यान यह है कि पण्डित ज्ञानीजन कर्म के कारण होने वाले ज्ञान के भेदरूप ज्ञान को आत्मस्वरूप मानते हैं।

शका - वे किस-किस को ज्ञान मानते हैं ?

समाधान - सम्यग्दृष्टि याने अभेदनय से जीव के गुण लक्षण स्वरूप **सम्यग्दर्शन** को, इन्द्रियसयम तथा प्राणिसयमरूप वाह्यसयम के बल से प्रकट शुद्धात्मानुभूति लक्षण वाले **भावसयम** को, अङ्गपूर्व ज्ञान के वल से प्रकट शुद्धात्मादि की परिच्छित्तिरूप **भावश्रुत** को, **भावपुण्य**-पाप के स्वरूप को तथा रागादिरूप इच्छा के निरोध रूप लक्षण से युक्त स्वरूपप्रतपन स्वभाव को-स्वरूप की लीनतारूप **प्रव्रज्या** को निश्चय से आत्मस्वरूप याने ज्ञान मानते हैं।

शका - **जो तपश्चरण आदि हैं उन सब को किस नय से ज्ञान माना जाता है ?**

समाधान - मिथ्यादृष्ट्यादि क्षीणकषायपर्यन्त अपने-अपने गुणस्थान योग्य, शुभ अथवा अशुभ अथवा शुद्ध उपयोग के साथ अविनाभाव है वह विवक्षित अशुद्ध उपादानरूप अशुद्ध निश्चयनय से उन सब को ज्ञान माना जाता है।

तत स्थित शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धोपादानरूपेण जीवादिव्यावहारिकनवपदार्थेभ्यो भिन्नमादिमध्यातमुक्तमेकमखडप्रतिभासमय निजनिरजनसहजशुद्धपरमसमयसाराभिधान सर्वप्रकारोपादेयभूत शुद्धज्ञानस्वभाव शुद्धात्मतत्त्वमेव श्रद्धेय ज्ञेय ध्यातव्यमिति। एव व्यावहारिकनवपदार्थमध्ये भूतार्थनयेन शुद्धजीव एक एव वास्तव स्थित इति व्याख्यानमुख्यत्वेन एकादशस्थले पचदशगाथा गता।

किच - मत्यादिसज्ञानपचक पर्यायरूप तिष्ठति शुद्धपारिणामिक भावस्तु द्रव्यरूप। जीवपदार्थो हि न च केवल द्रव्य, न च पर्याय, किंतु परस्पर सापेक्ष द्रव्यपर्यायधर्माधर्माधारभूतो धर्मी। तत्रेदानीं **केनज्ञानेन मोक्षो भवतीति विचार्यते** - केवलज्ञान तावत्फलभूतमग्रे भविष्यति। अवधिमन पर्ययज्ञानद्वय च **'रूपिष्ववधे। तदनतभागे मन पर्ययस्य'** इति वचनात् मूर्तविषयत्वादेव मूर्त मोक्षकारण न भवति।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, शुद्धपारिणामक परमभाव ग्राहकवाले, शुद्धउपादानवाले शुद्धद्रव्यार्थिकनय से जो जीवादि व्यावहारिक पदार्थों से भिन्न है, वह आदि-मध्य-अत से रहित एक-अखड-प्रतिभासमय निजनिरजन-सहज-शुद्ध-परम-समयसार नामवाला है, सर्वप्रकार से उपादेयभूत है, शुद्धज्ञान स्वभाव हे, शुद्धात्मतत्त्व है, वह ही श्रद्धा करने योग्य है, जानने योग्य है और **उसका ही ध्यान करना चाहिये**।

इस प्रकार व्यावहारिक (जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, वध, सवर,निर्जरा और मोक्ष इन) नव पदार्थो में भूतार्थनय से एक ही शुद्धजीव वास्तविक स्थित है। (ऐसा ही समयसार गाथा १५ में कहा है - **भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवाय पुण्णपाव च। आसवसवरणिज्जरबधो मोक्खो य सम्मत्त।।**) इस कथन की मुख्यता से ग्यारहवें स्थल में १५ गाथायें पूर्ण हुई।

कुछ और - इसका विशेष स्पष्टीकरण यह है कि मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय, और केवलज्ञान ये पॉच ज्ञान पर्यायरूप हैं। शुद्धपारिणामिक भाव द्रव्यरूप है। जीवपदार्थ केवल द्रव्य नहीं है, और केवल पर्याय नहीं है, किंतु परस्पर सापेक्ष द्रव्यपर्याय धर्माधर्म के आधारभूत धर्मी है।

भावार्थ - द्रव्य-पर्यायरूप वस्तु नित्यानित्य है, उसमें स्वभावभूत पारिणामिकभाव धर्मरूप है और ओदायिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक ये भाव अधर्मरूप हैं, अथवा द्रव्यस्वभाव का आश्रय करने से आकुलता नष्ट होती हे इसलिये धर्म है ओर पर्याय का आश्रय करने से आकुलता-दु ख होता है इसलिये अधर्म हैं, अथवा द्रव्यपर्यायरूप याने नित्यानित्यात्मकवाले धर्म के साथ आधर्म याने अनतधर्म हैं इन सव धर्मो का आधारभूत धर्मी-याने द्रव्य हे।

यहॉ इनमें से किस ज्ञान से याने **किस ज्ञान का अवलबन लेने से मोक्ष होता है ?** इसका विचार किया जाता है -

केवलज्ञान पर्यायरूप फल आगे भविष्य में होगा। अवधि तथा मन पर्यय ये दो ज्ञान हैं - उनके वारे में **'रूपिष्ववधे। तदनतभागे मन पर्ययस्य'** इस प्रकार आगम का वचन है। अवधिज्ञान ओर मन पर्ययज्ञान इन दोनों का मूर्त्तिक ही विपय होने से मूर्त्तविषय को जानते हैं, इसलिये अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान मोक्ष का कारण नहीं हैं।

---

[1] तत्वार्थसूत्र - अध्याय १ सूत्र - २७, २८

तत सामर्थ्यादेव बहिर्विषयमतिज्ञानश्रुतज्ञानसज्ञविकल्परहितत्वेन स्वशुद्धात्माभिमुखपरिच्छित्तिलक्षण **निश्चयनिर्विकल्पभावरूपमानसमतिज्ञानश्रुतज्ञानसज्ञ पचेंद्रियाविषयत्वेनातींद्रिय** शुद्धपारिणामिकभावविषये तु या भावना तद्रूप निर्विकारस्वसवेदनशब्दवाच्य ससारिणा क्षायिकज्ञानाभावात् **क्षायोपशमिकमपि विशिष्टभेदज्ञान मुक्तिकारण भवति।** कस्मात् ? इति चेत्, समस्तमिथ्यात्वरागादिविकल्पोपाधिरहितस्वशुद्धात्मभावनोत्थपरमाल्हादैकलक्षण सुखामृतरसास्वादैकाकार परमसमरसीभावपरिणामेन कार्यभूतस्यानतज्ञानसुखादिरूपस्य मोक्षफलस्य विवक्षितैकशुद्धनिश्चय-नयेन शुद्धोपादानकारणत्वादिति। तथा चोक्त -

भेदविज्ञानत सिद्धा सिद्धा ये किल केचन। अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन[१] ।।४१२ से ४२६।।

इसलिये सामर्थ्य से ही यह बात सिद्ध हुई कि, बाह्यविषयक मतिज्ञान-श्रुतज्ञान के विकल्पों से रहितपना से जो ज्ञान अपने स्वभाव शुद्धात्मा के अभिमुख परिच्छित्ति लक्षणवाले (अपने स्वभाव शुद्धात्मा को जाननेवाले) निश्चयनिर्विकल्प भावरूप मानस मतिज्ञान-श्रुतज्ञान नामवाले हैं, वे दोनों पचेन्द्रियों के विषयों को न जानने से अतींद्रिय ज्ञान हैं, ओर शुद्धपारिणामिक भाव को विषय करनेवाली जो भावना (ज्ञान) है, शुद्धपरिणामिकभाव के साथ तन्मय (तद्रूप) होने से उसको निर्विकार स्वसवेदन (स्वानुभूति) शव्द से कहते हैं, ससारी जीवों को क्षायिकज्ञान का अभाव होने से वह निर्विकार स्वसवेदनवाला क्षायोपशमिकज्ञान भी विशिष्ट भेदज्ञानवाला है, वह ज्ञान मुक्ति का कारण है।

शका - ससारी जीवों का निर्विकार स्वसवेदन (स्वानुभूति) वाला मतिश्रुतज्ञानजनित क्षायोपशमिकज्ञान भी मुक्ति का कारण क्यों है ?

समाधान - आगमभाषा से समस्त मिथ्यात्व रागादि विकल्पों की उपाधि से रहित परिणाम से कार्यभूत अनतज्ञान-सुखादिवाले मोक्षफल के विवक्षित एक शुद्ध निश्चयनय से शुद्धउपादान का कारण होने से क्षायोपशमिकवाला सम्यक्मति-श्रुतज्ञान (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव का ज्ञान) मुक्ति का कारण है अर्थात् अध्यात्मभाषा से स्वशुद्धात्म भावना से (स्वानुभव से) उत्पन्न होनेवाले, परमाल्हाद एक लक्षणवाले सुखामृत रसास्वाद एकाकार परमसमरसीभाव से कार्यभूत अनताज्ञानसुखादि वाले मोक्षफल के विवक्षित एक निश्चयनय से शुद्ध उपादान का कारण होने से क्षायोपशमिकवाला **सम्यक्मति-श्रुतज्ञान (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव का स्वानुभव ज्ञान) मुक्ति का कारण है।**

आत्मख्याति कलश - १३१ में श्री अमृतचद्राचार्य कहते हैं कि "भेदविज्ञानत" इत्यादि अर्थात् जो कोई सिद्ध हुए हैं वे इस भेदविज्ञान से ही हुए हैं और जो कर्म से बधे हुए हैं वे इसी भेदविज्ञान के अभाव में बंधे हुए हैं।

भावार्थ - श्रीजयसेनाचार्यजी आगमभाषा और अध्यात्मभाषा का मिलान दिखाते हुए कहते हैं कि, **स्वानुभूति से ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है,** याने स्वानुभूति होती है तो ही दर्शनमोहनीय की प्रकृतियों का उपशम-क्षयोपशम होता है, स्वानुभूति नहीं होती तो मिथ्यादृष्टि है, वह चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती नहीं है।। ४१२ से४२६।।

---

[१] आ ख्या कलश १३१

अत परमेव सति शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मतत्त्वस्य देह एव नास्ति कथमाहारो भविष्यतीत्युपदिशति -

अत्ता जस्स अमुत्तो ण हु सो आहारगो हवदि एव। (४०५)
आहारो खलु मुत्तो जम्हा सो पुग्गलमओ दु।। ४२७।।
ण वि सक्कदि घेत्तु जे ण मुचिदु चेव ज पर दव्व[१]। (४०६)
सो को वि य तस्स गुणो पाउग्गिय विस्ससो वा वि।।४२८।।
तम्हा दु जो विसुद्धो चेदा सो णेव गिण्हदे किचि। (४०७)
णेव विमुंचदि किचि वि जीवाजीवाण दव्वाणं।। ४२९।।

अत्ता जस्स अमुत्तो आत्मा यस्य शुद्धनयस्याभिप्रायेण मूर्तो न भवति **ण हु सो आहारगो हवदि एव** स एवममूर्तत्वे सति हु स्फुट तस्य शुद्धनयस्याभिप्रायेणाहारको न भवति। **आहारो खलु मुत्तो** आहार । कथभूत ? खलु स्फुट मूर्त । **जम्हा सो पुग्गलमओ दु** यस्मात् स नोकर्माद्याहार पुद्गलमय ।

जबकि शुद्ध-वुद्ध-एक स्वभाववाले परमात्मतत्व को देह ही नहीं है, तब उसको आहार कैसे होगा ? यह वतलाते हैं -

गाथार्थ - **(एव)** इस प्रकार **(जस्स अत्ता अमुत्तो)** जिसका आत्मा अमूर्तिक है **(सो हु)** वह निश्चय से **(आहारगो ण हवदि)** आहारक नहीं है **(जम्हा)** क्योंकि **(आहारो खलु मुत्तो)** आहार निश्चय से मूर्तिक है **(सो दु पुग्गलमओ)** वह तो पुद्गलमय है।

(ज पर दव्व) जो परद्रव्य है **(जे घेत्तु चेव मुचिदु वि ण सक्कदि)** वह ग्रहण भी नहीं किया जा सकता और वह छोडा भी नहीं जा सकता **(सो कोवि य तस्स गुणो)** वह कोई ऐसा ही आत्मा का गुण **(पाउग्गिय वा वि विस्ससो)** प्रायोगिक तथा वैस्रसिक है।

(तम्हा दु) इसलिये **(जो विसुद्धो चेदा)** जो विशुद्ध आत्मा है **(सो)** वह **(जीवाजीवाण दव्वाण)** जीव-अजीव परद्रव्य में से **(किचि णेव गिण्हदे)** किसी को भी न तो ग्रहण ही करता है **(किंचि वि णेव विमुचदि)** और न किसी को भी छोडता है।

टीकार्थ - जिस शुद्धनय के अभिप्राय से आत्मा मूर्त्त नहीं है - याने अमूर्त्त है, इस प्रकार आत्मा अमूर्त्त होने से उस शुद्धनय के अभिप्राय से आहारक नहीं है। आहार तो स्पष्ट रूप से मूर्त्त है (मूर्त्तिक है) क्योंकि वह नोकर्म आदि आहार पुद्गलमय है। वह कोई उस आत्मा का प्रायोगिक और वैस्रसिक गुण है। **प्रायोगिक याने कर्म सयोग जनित और वैस्रसिक याने स्वभावमय।**

शका - उस गुण से आत्मा क्या करता है ?

समाधान - उससे आत्मा आहारादिक परद्रव्य को ग्रहण नहीं कर सकता और छोड नहीं सकता।

---

[१] पाठान्तर - विमोत्तु ज च ज परद्दव्वं, मुचदे चेव, विमोत्तु चेव

सो कोवि य तस्स गुणो स कोऽपि तस्य गुणोऽस्त्यात्मन । कथ ? **पाउग्गिय विस्ससो वावि** प्रायोगिको वैस्रसिकश्चेति। प्रायोगिक कर्मसयोग जनित । वैस्रसिक स्वभावज । येन गुणेन कि करोति ? **ण वि सक्कदि घेत्तु जे ण मुचिदु चेव ज पर दव्व** परद्रव्यमाहारादिक ग्रहीतु मोक्तु च न शक्नोति।

अहो हे भगवन् ! कर्मजनितप्रायोगिकगुणेन आहार गृहणन्तरते च कथमनाहारका भवति इति ? हे शिष्य! भद्रमुक्त त्वया पर कितु निश्चयेन तन्मयो न भवति स व्यवहारनय । इद तु निश्चय व्याख्यानमिति। **तम्हा दु जो विशुद्धो चेदा** यस्मान्निश्चयनयेनानाहारक तस्मात्कारणात् यस्तु विशेषेण शुद्धो रागादिरहितश्चेतयितात्मा। **सो णेव गिण्हदे किचि णेव विमुचदि किचिवि जीवाजीवाण दव्वाण** कर्माहार-नोकर्माहार-कवलाहार-लेप्याहार-ओजआहार-मानसाहाररूपेण जीवाजीवद्रव्याणा मध्ये सचित्ताचित्ताहार नैव किचिद् गृह्णाति न मुचति। तत कारणान्नोकर्माहारमय शरीर जीवस्वरूप न भवति। शरीराभावे **शरीरमय द्रव्यलिगमपि जीवस्वरूप न भवति** इति। एव **निश्चयेन जीवस्याहारो नास्ति**, इति व्याख्यानमुख्यत्वेन द्वादशस्थले गाथात्रय गतम्।।४२७,४२८,४२९।।

अथैव विशुन्द्रज्ञानदर्शनस्वभावस्य परमात्मनो नोकर्माहाराद्यभावे सत्याहारमय देहो नास्ति। देहाभावे **देहमय द्रव्यलिग निश्चयेन मुक्तिकारण न भवतीति** प्रतिपादयति -

पाखडीलिगाणि य गिहिलिगाणि य बहुप्पयाराणि। (४०८)
घित्तु वदति मूढा लिगमिण मोक्खमग्गो त्ति।।४३०।।

शका - हे भगवन् ! कर्मजनित प्रायोगिक गुण से आहार को ग्रहण किया जाता है, तो वे अनाहारक कैसे होते हैं ?

समाधान - हे शिष्य ! आपने जो कहा है सो ठीक ही कहा है, किन्तु निश्चयनय से आत्मा उस आहार के साथ तन्मय नहीं है, वह व्यवहारनय है। लेकिन यह तो निश्चयनय का कथन है, क्योंकि निश्चयनय से आत्मा अनाहारक है। इस कारण से जो विशेष से रागादि रहित चैतन्य आत्मा शुद्ध है वह कर्माहार, नोकर्माहार, कवलाहार, लेप्याहार ओजआहार, मानसआहाररूप से जीव-अजीव द्रव्यों में से सचित्ताचित्त आहार को कुछ भी ग्रहण नहीं करता है और कुछ भी नहीं छोडता है। **इसलिये नोकर्म आहारमय शरीर जीव का स्वरूप नहीं है। शरीर के अभाव में शरीरमय द्रव्यलिग भी जीव का स्वरूप नहीं है।**

इस प्रकार निश्चयनय से जीव के आहार नहीं है, इस कथन की मुख्यता से वारहवें स्थल में तीन गाथायें पूर्ण हुई।।४२७, ४२८, ४२९।।

अव, इस प्रकार विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभाववाले परमात्मा को नोकर्मआहारादि का अभाव होने से आहारमय देह नहीं है। निश्चयनय से देह का अभाव होने **से देहमय द्रव्यलिग मुक्ति का कारण नहीं है,** ऐसा प्रतिपादन करते हैं -

गाथार्थ - **(पाखडीलिगाणि)** पाखडी लिग (मुनि लिग) **(य)** और **(गिहिलिगाणि य)** गृहस्थलिग ऐसे **(बहुप्पयाराणि)** वहुत प्रकार के बाह्य लिग हैं उनको **(घित्तु)** ग्रहण करके **(मूढा त्ति वदति)** अज्ञानी लोग ऐसा कहते हैं कि **(इण लिग)** यह लिग ही **(मोक्खमग्गो)** मोक्षमार्ग है।

ण दु होदि मोक्खमग्गो लिग ज देहणिम्ममा अरिहा। (४०९)
लिगं मुइत्तु दसणणाणचरित्ताणि सेवते।।४३१।।

पाखडीलिगानि गृहस्थलिगानि च बहुप्रकाराणि गृहीत्वा वदति मूढा । कि वदति ? इद द्रव्यमयलिगमेव मुक्तिकारणम्। कथभृता सता ? रागादि विकल्पोपाधिरहित परमसमाधिरूप भावलिगमजानत । **ण दु होदि मोक्खमग्गो लिग** भावलिग रहित द्रव्यलिग केवल मोक्षमार्गो न भवति। कस्मात् ? इति चेत्, ज यस्मात्कारणात् **देहणिम्ममा अरिहा** अर्हन्तो भगवतो देह निर्ममा सत । कि कुर्वन्ति ? **लिग मुइत्तु** लिगाधार यच्छशरीर तस्य शरीरस्य यन्ममत्व तन्मनोवचनकायैर्मुक्त्वा। पश्चात् **दसणणाणचरित्ताणि सेवते** चिदानन्दैकस्वभावशुद्धात्मतत्त्व विषये यानि श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाणि सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि तानि सेवते भावयतीत्यर्थ ।।४३०, ४३१।।

अथैतदेव व्याख्यान विशेषेण दृढयति -

ण वि एस मोक्खमग्गो पाखडीगिहिमयाणि लिगाणि। (४१०)
दसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्ग जिणा वेंति।।४३२।।

आचार्य कहते हैं कि **(लिग)** लिग **(मोक्खमग्गो ण होदि)** मोक्ष का मार्ग नहीं है **(ज)** क्योंकि **(अरिहा दु)** अर्हन्त देव भी **(देहणिम्ममा)** देह से निर्ममत्व हुए **(लिगि मुइत्तु)** लिग को छोडकर **(दसणणाणचरित्ताणि सेवते)** दर्शन-ज्ञान-चारित्र का ही सेवन करते हैं।

टीकार्थ - रागादि विकल्पों की उपाधि से रहित परम समाधिरूप भावलिग का न अनुभव करते हुए (न जानते हुए) बहुत प्रकार के पाखडीलिग और गृहस्थलिगों को धारण करके अज्ञानी लोग कहते हैं कि, **"यह द्रव्यमयलिग ही मुक्ति का कारण है"**। तो आचार्य देव कहते हैं कि, **"भावलिग रहित (स्वानुभव रहित) केवल द्रव्यलिग मोक्षमार्ग नहीं है"**। क्योंकि अर्हन्त भगवान देह से निर्ममत्व होकर, लिग का आधार जो शरीर हे, उसके ममत्व को मन वचन काय से छोडकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का सेवन करते हैं अर्थात् चिदानन्दैक ग्वभाव शुद्धात्मतत्त्व के विषय में जो श्रद्धानज्ञानानुचरण है, उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अनुभव करते हैं (सेवन करते हैं)।। ४३०, ४३१।।

अव इसी कथन को फिर विशेषरूप से दृढ करते हैं -

गाथार्थ - **(पाखडीगिहिमयाणि लिगाणि)** पाखडी (मुनिलिग) और गृहस्थलिग **(एस)** यह **(मोक्खमग्गो)** मोक्षमार्ग **(ण वि)** ही नहीं है **(दसणणाणचरित्ताणि)** दर्शन-ज्ञान-चारित्र **(मोक्खमग्ग)** मोक्षमार्ग है **(जिणा वेंति)** ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

टीकार्थ - यह मोक्षमार्ग ही नहीं है।

शका - यह कोन मोक्षमार्ग नहीं है ?

ण वि एस मोक्खमग्गो न चैष मोक्षमार्ग। एष क ? **पाखडीगिहिमयाणि लिगाणि** निर्विकल्प समाधिरूप भावलिगान्निरपेक्षाणि रहितानि यानि पाखडिगृहिमयानि द्रव्यलिगानि। कथभूतानि ? निर्ग्रन्थकौपीनग्रहणरूपाणि वहिरगाकारचिन्हानि। तर्हि को मोक्षमार्ग ? इति चेत्, **दसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्ग जिणा वेंति** शुद्धवुद्धैकस्वभाव एव परमात्मतत्त्वश्रन्द्वानज्ञानानुभूतिरूपाणि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गम् जिना वदति कथयंति।।४३२।।

यत एव -

तम्हा जहित्तु लिगे सागारणगारिएहि वा गहिदे। (४११)
दसणणाणचरित्ते अप्पाण जुज मोक्खपहे।।४३३।।

तम्हा जहित्तु लिगे सागारणगारिएहि वा गहिदे यस्मात्कारणत् पूर्वोक्तप्रकारेण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गम् जिना प्रतिपादयति तस्मात्त्यक्त्वा। कानि ? निर्विकारस्वसवेदनरूपभावलिगरहितानि सागारानगारवर्गे समूहै गृहीतानि वहिरगाकारद्रव्यलिगानि। पश्चात् कि कुरु ? **दसणणाचरित्ते अप्पाण जुज मोक्खपहे** हे भव्य! आत्मान योजय सवध कुरुष्व। क्व ? केवल ज्ञानाद्यनतचतुष्टयस्वरूपशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेद रत्नत्रयलक्षणे मोक्षपथे मोक्षमार्गे।।४३३।।

समाधान - निर्विकल्प समाधिवाले भावलिग से निरपेक्ष याने स्वानुभृति से रहित जो निर्ग्रन्थ मुनि, ऐलक, क्षुल्लक और जिनानुयायी मानकर जिनेन्द्रदेव-गुरु-शास्त्र की वदना-पृजादि करनेवाले अव्रती गृहस्थ वाह्याकार चिन्हवाले हैं, वे द्रव्यलिग मोक्षमार्ग नहीं हैं। (वे वाह्य चिन्हवाले मुनि, ऐलक, क्षुल्लक, आदि मोक्षमार्गस्थ नहीं है।)

शका - तो फिर मोक्षमार्ग कौन है ?

समाधान - शुद्ध-वुद्ध एक-स्वभाव ही परमात्मतत्व है, उसका श्रन्द्रान-ज्ञानानुभूतिवाला सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्र मोक्षमार्ग है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

भावार्थ - जिसने कभी वस्तु स्वरूप जानकर स्वानुभूति नहीं ली, लेकिन जिनेन्द्र भगवान कथित देव-गुरु-शास्त्र का वदन, पूजा, व्रत, महाव्रत पालन करते हैं, वे मोक्षमार्गस्थ नहीं हैं। वहिरग आकार, वाह्यचिन्ह, अव्रत और व्रत मोक्षमार्ग नहीं है। **वस्तु स्वरूप जानकर स्वानुभव करना ही मोक्षमार्ग है।** वह ही परमात्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-चारित्रवाला मोक्षमार्ग हे।। ४३२।।

जिससे इस प्रकार आचार्यदेव कहते हैं -

गाथार्थ - **(तम्हा)** इस कारण **(सागारणगारिएहि वा)** गृहस्थों के अथवा मुनियों के **(गहिदे लिगे)** ग्रहण किये गये लिगों को **(जहित्तु)** मोक्षमार्ग मानना छोडकर **(अप्पाण)** अपने आत्मा को **(दसणणाणचरित्ते)** दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वरूप **(मोक्खपहे)** मोक्षमार्ग में **(जुज)** युक्त करो।

टीकार्थ - पृर्वोक्त प्रकार से जिस कारण से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही मोक्षमार्ग है, ऐसा जिनेंद्रदेव कहते हैं, इसलिये निर्विकार स्वसवेदनवाले (स्वानुभूतिवाले) भावलिग से रहित रहनेवाले (अव्रती गृहस्थ से लेकर मुनि तक का समूह) जो वहिरग आकारवाला द्रव्यलिग ग्रहण करके मोक्षमार्ग मानते हैं, उस मान्यता को छोडकर हे भव्य ! केवलज्ञानादि अनतचतुष्टय स्वभाववाले स्वशुद्धात्मा के सम्यक् श्रन्द्रानज्ञानानुष्ठानरूप अभेदरत्नत्रय लक्षणवाले (स्वानुभृतिवाले) मोक्षमार्ग में आत्मा का सवध करो (जोडो)।

अथ निश्चयरत्नत्रयात्मक शुद्धात्मानुभूतिलक्षणो मोक्षमार्गो मोक्षार्थिना पुरुषेण सेवितव्य इत्युपदिशति -

मोक्खपहे अप्पाण ठवेहि चेदयहि झायहि त चेव। (४१२)
तत्थेव विहर णिच्च मा विहरसु अण्णदव्वेसु।।४३४।।

मोक्खपहे अप्पाण ठहेवि हे भव्य! आत्मान स्थापय। क्व विषये ? शुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्-श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयस्वरूपे मोक्षपथे। **चेदयहि** तमेव मोक्षपथ चेतस्व परमसमरसीभावेन अनुभवस्व। **झायहि त चेव** तमेव ध्याय निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा भावय। **तत्थेव विहर णिच्च** तत्रैव विहर वर्तना परिणति कुरु। नित्य सर्वकाल। **मा विहरसु अण्णदव्वेसु** दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाक्षारूपनिदानवधादिपरद्रव्यालबनोत्पन्न-शुभाशुभसकल्पविकल्पेषु मा विहार्षी, मा गच्छ, मा परिणति कुर्विति।। ४३४।।

अथ सहजशुद्ध परमात्मानुभूतिलक्षणभावलिगरहिता ये द्रव्यलिगे ममता कुर्वन्ति तेऽद्यापि समयसार न जानतीति प्रकाशयति -

पाखडीलिगेसु व गिहिलिगेसु व बहुप्पयारेसु। (४१३)
कुव्वति जे ममत्ति तेहि ण णाद समयसार।। ४३५।।

भावार्थ - यहाँ द्रव्यलिग को छुडाकर दर्शन, ज्ञान ओर चारित्र में लगाने का वचन हे। सो यह सामान्य परमार्थ वचन हे। मुनि और अव्रती गृहस्थ की क्रिया को छोडने का उपदेश है याने जो केवल द्रव्यलिग-बाह्यक्रिया को ही मोक्षमार्ग जानकर भेष धारण करते हैं, उनके द्रव्यलिग का-बाह्यक्रिया का **पक्ष छुडाया** है कि भेषमात्र से मोक्ष नहीं है, परमार्थरूप मोक्षमार्ग आत्मा का दर्शनज्ञानचारित्ररूप परिणाम ही है।।४३३।।

अव, मोक्ष की भावना करनेवाले (अव्रती और व्रती) जीव के द्वारा निश्चय रत्नत्रयात्मक शुद्धात्मानुभूतिवाले मोक्षमार्ग का सेवन करना चाहिये, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ - **(मोक्खपहे)** मोक्षमार्ग में **(अप्पाण)** अपने आत्मा को **(ठवेहि)** स्थापन कर **(त चेव चेदयहि झायहि)** उसी का अनुभव कर और उस ही का ध्यान कर **(तत्थेव)** वहीं पर **(णिच्च)** नित्य **(विहर)** विहार कर **(अण्णदव्वेसु मा विहरसु)** अन्य द्रव्यों में विहार मत कर।

टीकार्थ - हे भव्य ! शुद्ध दर्शन-ज्ञान स्वभावमय आत्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप अभेदरत्नत्रय स्वरूप (स्वानुभवमय) मोक्षमार्ग में आत्मा को स्थापन कर। **उस ही मोक्षपथ का परम समरसीभाव से अनुभव करो और उसका ही ध्यान करो, निर्विकल्प समाधि में स्थिर रहकर उसकी ही अनुभूति-भावभासना करो।** वहाँ पर ही नित्य विहार करो-आचरण करो। और दृष्टश्रुतअनुभूत भोगाकाक्षारूप निदानवध आदि परद्रव्य के आलवन से उत्पन्न होनेवाले शुभ-अशुभ सकल्प-विकल्पों में विहार मत कर, मत जा, परिणति मत कर।। ४३४।।

अव सहज शुद्र परमात्मअनुभूति लक्षणवाले भावलिग से रहित जो जीव द्रव्यलिग में-वाह्य चिन्हों में ममता करते हैं वे अद्यापि समयसार को नहीं जानते हैं (याने मिथ्यादृष्टि हैं), ऐसा प्रगट करते हैं -

पाखंडीलिंगेसु व गिहिलिंगेसु व बहुप्पयारेसु कुव्वंति जे ममत्तिं वीतरागस्वसंवेदनज्ञानलक्षणभावलिंगरहितेषु निर्ग्रन्थरूपपाखंडिद्रव्यलिंगेषु कौपीनचिह्नगृहस्थद्रव्यलिंगेषु बहुप्रकारेषु ये ममतां कुर्वन्ति। तेहिं ण णादं समयसारं जगत्त्रयकालत्रयवर्तिख्यातिपूजालाभमिथ्यात्वकामक्रोधादिसमस्तपरद्रव्यालंबनसमुत्पन्न शुभाशुभसंकल्पविकल्परहितं शून्यं चिदानन्दैकस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्न वीतरागसहजापूर्व- परमाह्लादरूपसुखरसानुभव परमसमरसीभावपरिणामस्तदालंबनेन पूर्णकलशवद्भरितावस्थः केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयव्यक्ति- रूपस्य साक्षादुपादेयभूतस्य कार्यसमयसारस्योत्पादको योऽसौ निश्चयकारणसमयसारः स तु तैर्न ज्ञात इति।।४३५।।

अथ निर्विकारशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणभावलिंगसहितं निर्ग्रन्थलिंगं कौपीनग्रहणरूपबहुभेदसहितं गृहिलिंगं चेति द्वयमपि मोक्षमार्गे व्यवहारनयो मन्यते। निश्चयनयस्तु सर्वद्रव्यलिंगानि न मन्यते इत्याख्याति -

---

गाथार्थ - (जे) जो जीव (पाखंडीलिंगेसु व) पाखंडीलिंगों में-मुनियों के लिंगों में अथवा (बहुप्पयारेसु गिहिलिंगेसु व) बहुत प्रकार के गृहस्थ लिंगों में याने अव्रती से ऐलक तक के लिंगों में (ममत्ति) ममता (कुव्वंति) करते हैं (तेहि) उन अव्रती से मुनि तक के सभी बाह्यलिंग धारण करनेवालों के द्वारा (समयसार) समयसार (ण णाद) नहीं जाना गया है।

टीकार्थ - जो जीव वीतराग स्वसंवेदनज्ञान लक्षणवाले भावलिंग से रहितवाले (स्वानुभव से रहितवाले), निर्ग्रन्थरूप पाखण्डी (पापों का खंडन करनेवाले) बाह्य मुनिलिंगों में और ऐलक-क्षुल्लक से अव्रती गृहस्थ तक के बहुत प्रकार के बाह्यलिंगों में ममता करते हैं (यानी द्रव्यलिंग में ही संवर, निर्जरा और मोक्ष मानते हैं) वे निश्चय कारणसमयसार को नहीं जानते।

शंका - वह निश्चय कारणसमयसार कैसा है ?

समाधान - तीनलोक और तीनकाल में होनेवाले ख्याति, पूजा, लाभ, मिथ्यात्व, काम, क्रोध आदि समस्त परद्रव्यों के आलंबन से उत्पन्न होनेवाले शुभाशुभ संकल्प-विकल्पों से रहित अर्थात् चिदानंद एक स्वभावमय शुद्धात्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न होनेवाले वीतराग सहज अपूर्व परमआह्लादरूप सुखरस का अनुभव करना वही हुआ परमसमरसी भाव और उसके आलंबन से पूर्णकलश के समान भरा पूरा है और केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय की प्रकटतारूप साक्षात् उपादेयभूत कार्यसमयसार का उत्पादक है ऐसा निश्चय कारणसमयसार है।

उस निश्चय कारणसमयसार को वे (बाह्यलिंगों में ममता रखनेवाले) नहीं जानते हैं। (इसलिये वे मिथ्यादृष्टि हैं-मोक्षमार्गस्थ नहीं हैं-इस कारण से वे चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती भी नहीं हैं)।।४३५।।

अब, निर्विकार शुद्धात्मानुभव लक्षणवाले भावलिंगसहित निर्ग्रन्थ यतिलिंग है और स्वानुभव सहित अव्रती-गृहस्थ से स्वानुभवसहित ऐलक तक के बहुभेद सहित गृहस्थलिंग हैं। इन दोनों को (याने निर्ग्रन्थ मुनि लिंग को और गृहस्थलिंगों को) व्यवहारनय मोक्षमार्ग मानता है, लेकिन निश्चयनय भावलिंगी निर्ग्रन्थमुनि का बाह्यलिंग, स्वानुभूति सहित अव्रती के बाह्यलिंग से स्वानुभूति सहित ऐलक तक के बाह्यलिंग, और भावलिंग रहित मुनि का बाह्यलिंग और स्वानुभूति रहित अव्रती से लगाकर स्वानुभूति रहित ऐलक तक के बाह्यलिंग जो हैं - इन सब बाह्य (द्रव्य) लिंगों को मोक्षमार्ग नहीं मानता है (याने निश्चयनय स्वानुभूति को ही मोक्षमार्ग मानता है)। ऐसा कहते हैं -

ववहारिओ पुण णओ दोण्णि वि लिगाणि भणदि मोक्खपहे। (४१४)
णिच्छयणओ दु णेच्छदि[1] मोक्खपहे सव्वलिगाणि।। ४३६।।

ववहारिओ पुण णओ दोण्णि वि लिगाणि भणदि मोक्खपहे व्यावहारिकनयो द्वे लिगे मोक्षपथे मन्यते। केन कृत्वा ? निर्विकारस्वसवित्तिलक्षणभावलिगस्य बहिरगसहकारिकारणत्वेनेति। **णिच्छयणओ दु णेच्छदि मोक्खपहे सव्वलिगाणि** निश्चयनयस्तु निर्विकल्पसमाधिरूपत्रिगुप्तिगुप्तबलेन अह निर्ग्रन्थलिगी, कौपीनधारकोऽहमित्यादि मनसि सर्वद्रव्यलिगविकल्प रागादिविकल्पवन्नेच्छति। कस्मात् ? स्वयमेव निर्विकल्प समाधिस्वभावत्वात् इति।

किच, अहो शिष्य। **'पाखडीलिगाणि य'** इत्यादि गाथासप्तकेन द्रव्यलिग निषिद्धमेवेति त्व मा जानाहि किंतु निश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधिरूप भावलिगरहिताना यतीना सबोधन कृतम्। कथम् ? इति चेत्, अहो तपोधना ! द्रव्यलिगमात्रेण सतोष मा कुरुत किंतु द्रव्यलिगाधारेण निश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिरूप भावना कुरुत।

गाथार्थ - (**ववहारिओ णओ पुण**) व्यवहारनय तो (**दोण्णि लिगाणि वि**) इन दोनों लिगों को भी (**मोक्खपहे**) मोक्षमार्ग (**भणदि**) कहता है (**दु**) लेकिन (**णिच्छयणओ**) निश्चयनय (**सव्वलिगाणि**) सभी लिगों को (**मोक्खपहे**) मोक्षमार्ग (**णेच्छदि**) नहीं मानता।

टीकार्थ - निर्विकार स्वानुभूति लक्षणवाले भावलिग का वहिरग सहकारिकारणपना होने से मुनि और गृहस्थ इन दोनों लिगों को व्यवहारनय मोक्षमार्ग मानता/कहता है, लेकिन निश्चयनय निर्विकल्प समाधिवाले त्रिगुप्तिगुप्तवल से (स्वानुभूति से) "मैं निर्ग्रन्थ मुनि हूँ, मैं ऐलक हूँ, मैं अव्रती गृहस्थ हूँ," इत्यादि मन में रागादि विकल्प के समान **सभी द्रव्यलिग विकल्पों को मोक्षमार्ग नहीं कहता है।**

शका - निश्चयनय सभी लिगों को मोक्षमार्ग क्यों नहीं कहता है ?

समाधान - स्वयमेव निर्विकल्प समाधि (स्वानुभूति) मय स्वभाव होने से निश्चयनय सभी लिगों को मोक्षमार्ग नहीं कहता है।

इसका स्पर्ष्टीकरण यह है कि, हे शिष्य ! तू **'पाखडीलिगाणि य'** इत्यादि सात गाथाओं से द्रव्यलिग को निपिद्ध ही नहीं जानना, किन्तु निश्चय रत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि (स्वानुभूति) वाले भावलिग रहित यतियों को सबोधन किया गया है कि, "हे तपोधन! द्रव्यलिग मात्र से (बाह्यचिन्ह मात्र से) सतोष मत करना, किन्तु द्रव्यलिग के आधार से निश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधिरूप भावना (स्वानुभूति) करना चाहिए।

शका - यह आपकी कल्पना है कि यहाँ द्रव्यलिग का निषेध नहीं किया गया है लेकिन इस ग्रथ में स्पष्टरूप से **'ण य होदि मोक्खमग्गो लिगमित्यादि'** ऐसा लिखा हुआ है, जिसका अर्थ यह होता है कि द्रव्यलिग मोक्षमार्ग नहीं है इत्यादि ?

---

[1] पाठान्तर - ण इच्छदि

पाखडीलिगेसु व गिहिलिगेसु व बहुप्पयारेसु कुव्वति जे ममत्तिं वीतरागस्वसवेदनज्ञानलक्षण भावलिगरहितेषु निर्ग्रन्थरूपपाखडिद्रव्यलिगेषु कौपीनचिन्हादिगृहस्थद्रव्यलिगेषु बहुप्रकारेषु ये ममता कुर्वन्ति। तेहि ण णाद समयसार जगत्त्रयकालत्रयवर्तिख्यातिपूजालाभमिथ्यात्वकामक्रोधादिसमस्तपरद्रव्यालवनसमुत्पन्न शुभाशुभसकल्पविकल्परहित शून्य चिदानन्दैकस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसजात वीतरागसहजापूर्व-परमाल्हादरूपसुखरसानुभव परमसमरसीभावपरिणामेन सालवन पूर्णकलशवद्भरितावस्थ केवलज्ञानाद्यनतचतुष्टयव्यक्ति-रूपस्य साक्षादुपादेयभूतस्य कार्यसमयसारस्योत्पादको योऽसौ निश्चयकारणसमयसार स खलु तैर्न ज्ञात इति।। ४३५।।

अथ निर्विकारशुद्धात्मसवित्तिलक्षणभावलिगसहित निर्ग्रन्थयतिलिग कौपीनकरणादिबहुभेदसहित गृहिलिग चेति द्वयमपि मोक्षमार्गे व्यवहारनयो मन्यते। निश्चयनयस्तु सर्वद्रव्यलिगानि न मन्यत इत्याख्याति -

---

गाथार्थ - (जे) जो जीव (पाखडीलिगेसु व) पाखडीलिगों में-मुनियों के लिगों में अथवा (बहुप्पयारेसु गिहिलिगेसु व) बहुत प्रकार के गृहस्थ लिगों में याने अव्रती से ऐलक तक के लिगों में (ममत्ति) ममता (कुव्वंति) करते हैं (तेहि) उन अव्रती से मुनि तक के सभी बाह्यलिग धारण करनेवालों के द्वारा (समयसार) समयसार (ण णाद) नहीं जाना गया है।

टीकार्थ :- जो जीव वीतराग स्वसवेदनज्ञान लक्षणवाले भावलिग से रहितवाले (स्वानुभव से रहितवाले), निर्ग्रन्थरूप पाखण्डी (पापों का खडन करनेवाले) बाह्य मुनिलिगों में और ऐलक-क्षुल्लक से अव्रती गृहस्थ तक के बहुत प्रकार के बाह्यलिगों में ममता करते हैं (याने द्रव्यलिग से ही सवर, निर्जरा और मोक्ष मानते हैं) वे निश्चय कारणसमयसार को नहीं जानते।

शका - वह निश्चय कारणसमयसार कैसा है ?

समाधान - तीनलोक और तीनकाल में होनेवाले ख्याति, पूजा, लाभ, मिथ्यात्व, काम, क्रोध आदि समस्त परद्रव्यों के आलबन से उत्पन्न होनवाले शुभाशुभ सकल्प-विकल्पों से रहित अर्थात् चिदानद एक स्वभावमय शुद्धात्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न होनेवाले वीतराग सहज अपूर्व परमआल्हादरूप सुखरस का अनुभव करना वही हुआ परमसमरसी भाव और उसके आलबन से पूर्णकलश के समान भरा पूरा है और केवलज्ञानादि अनत चतुष्टय की प्रकटतारूप साक्षात् उपादेयभूत कार्यसमयसार का उत्पादक है ऐसा निश्चय कारणसमयसार है।

उस निश्चय कारणसमयसार को वे (बाह्यलिगों में ममता रखनेवाले) नहीं जानते हैं। (इसलिये वे मिथ्यादृष्टि हैं-मोक्षमार्गस्थ नहीं हैं-इस कारण से वे चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती भी नहीं हैं।)।।४३५।।

अब, निर्विकार शुद्धात्मानुभव लक्षणवाले भावलिगसहित निर्ग्रन्थ यतिलिग है और स्वानुभव सहित अव्रती-गृहस्थ से स्वानुभवसहित ऐलक तक के बहुभेद सहित गृहस्थलिग हैं। इन दोनों को (याने निर्ग्रन्थ मुनि लिग को और गृहस्थलिगों को) व्यवहारनय मोक्षमार्ग मानता है, लेकिन निश्चयनय भावलिगी निर्ग्रन्थमुनि का बाह्यलिग, स्वानुभूति सहित अव्रती के बाह्यलिग से स्वानुभूति सहित ऐलक तक के बाह्यलिग, और भावलिग रहित मुनि का बाह्यलिग और स्वानुभूति रहित अव्रती से लगाकर स्वानुभूति रहित ऐलक तक के बाह्यलिग जो हैं - इन सब बाह्य (द्रव्य) लिगों को मोक्षमार्ग नहीं मानता है (याने निश्चयनय स्वानुभूति को ही मोक्षमार्ग मानता है)। ऐसा कहते हैं -

ववहारिओ पुण णओ दोण्णि वि लिगाणि भणदि मोक्खपहे। (४१४)
णिच्छयणओ दु णेच्छदि[1] मोक्खपहे सव्वलिगाणि।। ४३६।।

ववहारिओ पुण णओ दोण्णि वि लिगाणि भणदि मोक्खपहे व्यावहारिकनयो द्वे लिगे मोक्षपथे मन्यते। केन कृत्वा ? निर्विकारस्वसवित्तिलक्षणभावलिगस्य बहिरगसहकारिकारणत्वेनेति। **णिच्छयणओ दु णेच्छदि मोक्खपहे सव्वलिगाणि** निश्चयनयस्तु निर्विकल्पसमाधिरूपत्रिगुप्तिगुप्तबलेन अह निर्ग्रन्थलिगी, कौपीनधारकोऽहमित्यादि मनसि सर्वद्रव्यलिगविकल्प रागादिविकल्पवन्नेच्छति। कस्मात् ? स्वयमेव निर्विकल्प समाधिस्वभावत्वात् इति।

किच, अहो शिष्य। **'पाखडीलिगाणि य'** इत्यादि गाथासप्तकेन द्रव्यलिग निषिद्धमेवेति त्व मा जानाहि किंतु निश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधिरूप भावलिगरहिताना यतीना सबोधन कृतम्। कथम् ? इति चेत्, अहो तपोधना ! द्रव्यलिगमात्रेण सतोष मा कुरुत किंतु द्रव्यलिगाधारेण निश्चयरत्नत्रंयात्मक निर्विकल्पसमाधिरूप भावना कुरुत।

गाथार्थ - **(ववहारिओ णओ पुण)** व्यवहारनय तो **(दोण्णि लिगाणि वि)** इन दोनों लिगों को भी **(मोक्खपहे)** मोक्षमार्ग **(भणदि)** कहता है **(दु)** लेकिन **(णिच्छयणओ)** निश्चयनय **(सव्वलिगाणि)** सभी लिगों को **(मोक्खपहे)** मोक्षमार्ग **(णेच्छदि)** नहीं मानता।

टीकार्थ - निर्विकार स्वानुभूति लक्षणवाले भावलिग का बहिरग सहकारिकारणपना होने से मुनि और गृहस्थ इन दोनों लिगों को व्यवहारनय मोक्षमार्ग मानता/कहता है, लेकिन निश्चयनय निर्विकल्प समाधिवाले त्रिगुप्तिगुप्तवल से (स्वानुभूति से) "मैं निर्ग्रन्थ मुनि हूँ, मैं ऐलक हूँ, मैं अव्रती गृहस्थ हूँ," इत्यादि मन में रागादि विकल्प के समान **सभी द्रव्यलिग विकल्पों को मोक्षमार्ग नहीं कहता है।**

शका - निश्चयनय सभी लिगों को मोक्षमार्ग क्यों नहीं कहता है ?

समाधान - स्वयमेव निर्विकल्प समाधि (स्वानुभूति) मय स्वभाव होने से निश्चयनय सभी लिगों को मोक्षमार्ग नहीं कहता हे।

इसका स्पर्ष्टीकरण यह है कि, हे शिष्य ! तू **'पाखडीलिगाणि य'** इत्यादि सात गाथाओं से द्रव्यलिग को निषिद्ध ही नहीं जानना, किन्तु निश्चय रत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि (स्वानुभूति) वाले भावलिग रहित यतियों को सबोधन किया गया है कि, "हे तपोधन! द्रव्यलिग मात्र से (बाह्यचिन्ह मात्र से) सतोष मत करना, किन्तु द्रव्यलिग के आधार से निश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधिरूप भावना (स्वानुभूति) करना चाहिए।

शका - यह आपकी कल्पना है कि यहाँ द्रव्यलिग का निषेध नहीं किया गया है लेकिन इस ग्रथ में स्पष्टरूप से **'ण य होदि मोक्खमग्गो लिगमित्यादि'** ऐसा लिखा हुआ है, जिसका अर्थ यह होता है कि द्रव्यलिग मोक्षमार्ग नहीं है इत्यादि ?

---

[1] पाठान्तर - ण इच्छदि

ननु भवदीयकल्पनेय द्रव्यलिंगनिषेधो न कृत इति अत्र ग्रंथे पुनर्लिखितमास्ते '**ण य होदि मोक्खमग्गो लिंग इत्यादि**' ? नैव, **ण य होदि मोक्खमग्गो लिंगमित्यादि** वचनेन भावलिंगरहित द्रव्यलिंग निषिद्ध, न च भावलिंगसहित। कथ ? इति चेत्, द्रव्यलिंगाधारभूतो योऽसौ देहस्तस्य ममत्व निषिद्ध। न च द्रव्यलिंग निषिद्ध। केन रूपेण ? इति चेत्, पूर्वम् दीक्षाकाले सर्वसंगपरित्याग एव कृतो न च देहत्याग। कस्मात्? देहाधारेण ध्यानज्ञानानुष्ठान भवति इति हेतो। न च देहस्य पृथक्त्व कर्तुमायाति शेषपरिग्रहवदिति **वीतरागध्यानकाले पुनर्मदीयो देहोऽह लिंगीत्यादिविकल्पो व्यवहारेणापि न कर्तव्य**। देहनिर्ममत्व कृत कथ ज्ञायते? इति चेत्, ज **देहणिम्ममा अरिहा दसणणाणचरित्ताणि सेवते** इत्यादि वचनेनेति।

समाधान - ऐसा नहीं है। '**ण य होदि मोक्खमग्गो लिंग**' इत्यादि (गा ४३१)वचन से भावलिंग (स्वानुभूति) रहित द्रव्यलिंग निषिद्ध है और भावलिंग सहित (स्वानुभूति सहित) द्रव्यलिंग (बाह्यचिन्ह) निषिद्ध नहीं है।

शका - स्वानुभूति रहित द्रव्यलिंग-बाह्यचिन्ह निषिद्ध कैसे ? और भावलिंग (स्वानुभूति) सहित बाह्यचिन्ह-द्रव्यलिंग कैसे निषिद्ध नहीं है ?

समाधान - द्रव्यलिंग का आधारवाला जो देह है उस देह का ममत्व निषिद्ध है और स्वानुभूति सहित वाला द्रव्यलिंग निषिद्ध नहीं है।

शका - किस तरह से ?

समाधान - पहले जब दीक्षा ली गयी उस समय सपूर्ण परिग्रह का त्याग ही किया था, तब वहाँ देह का त्याग नहीं किया था (याने देह को छेदकर-तोडकर-भेदकर त्याग नहीं किया था)। क्योंकि देह के **आधार से ध्यान और ज्ञान का अनुष्ठान होता है।** और शेष परिग्रह के समान देह को पृथक् नहीं किया जा सकता है। और वीतराग ध्यानकाल में **याने स्वानुभूतिकाल में "यह मेरा देह है, मैं लिंगी (अव्रती गृहस्थ अथवा व्रती गृहस्थ अथवा मुनि) हूँ," इत्यादि विकल्प व्यवहार के द्वारा भी करना योग्य नहीं है।**

शका - इस कथन से देह का ममत्व छुडाया है यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान - '**ज देहणिम्ममा अरिहा लिंगमुइत्तु दसणणाणचरित्ताणि सेवते**' इत्यादि इसी ग्रथ (गाथा ४३१) का वचन है, इससे जाना जाता है कि देह का ममत्त्व छुडाया है। क्योंकि शालितदुल के ऊपर बाह्यतुष जब तक लगा रहता है तब तक अतरगतुष को नहीं छुडाया जा सकता। जब अतरग तुष का त्याग होता है तब उसके बाह्यतुष का त्याग अवश्य होता है। इस न्याय से जहाँ सर्वसग अर्थात् सर्व परिग्रह के त्यागस्वरूप बाह्य द्रव्यलिंग होता है वहाँ भावलिंग होता भी है और नहीं भी होता, कोई एक नियम नहीं है। लेकिन अतरग भावलिंग जहॉ होता है वहॉ सब परिग्रह के त्यागरूप बाह्यलिंग-द्रव्यलिंग अवश्य होता ही है, ऐसा नियम है।

शका - हे भगवन् ! जहॉ भावलिंग होता है वहाँ बाह्यलिंग-द्रव्यलिंग भी होता ही है ऐसा नियम नहीं है क्योंकि '**साहारणासाहारणेत्यादि**' आगम वचन है ?

न हि शालितदुलस्य वहिरगतुषे विद्यमाने सत्यभ्यतरतुपस्य त्याग कर्तुमायाति। अभ्यतरतुषत्यागे सति बहिरगतुषत्यागो नियमेन भवत्येव। अनेन न्यायेन सर्वसगपरित्यागरूपे बहिरग द्रव्यलिगे सति भावलिग भवति, न भवति वा नियमो नास्ति, अभ्यतरे तु भावलिगे सति सर्वसगपरित्यागरूप द्रव्यलिग भवत्येवेति। हे भगवन्! भावलिगे सति बहिरगे द्रव्यलिग भवतीति नियमो नास्ति **साहारणासाहारणेत्यादि** वचनादिति ? परिहारमाह -

कोऽपि तपोधनो ध्यानारूढस्तिष्ठति तस्य केनापि दुष्टभावेन वस्त्रवेष्टन कृत। आभरणादिक वा कृत तथाप्यसौ निर्ग्रन्थ एव। कस्मात् ? इति चेत्, बुद्धिपूर्वकममत्वाभावात् **पाडवादिवत्**। येऽपि घटिकाद्वयेन मोक्ष गता **भरतचक्रवर्त्यादयस्तेऽपि** निर्ग्रन्थरूपेणैव। पर किंतु तेषा परिग्रहत्याग लोका न जानति स्तोककालत्वादिति भावार्थ। एव भावलिगरहिताना द्रव्यलिगमात्र मोक्षकारण न भवति। भावलिगसहिताना पुन सहकारिकारण भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन त्रयोदशस्थले गाथा सप्तकम् गतम्।

अत्राह शिष्य - केवलज्ञान शुद्ध छद्मस्थज्ञान पुनरशुद्ध शुद्धस्य केवलज्ञानस्य कारण न भवति। कस्मात्? इति चेत्, **सुद्ध तु वियाणतो सुद्धमेवप्पय लहदि जीवो** इति वचनात्, इति [१] नैव, छद्मस्थज्ञानस्य कथचिच्छुद्धाशुद्धत्व। तद्यथा-यद्यपि केवलज्ञानापेक्षया शुद्ध न भवति तथापि मिथ्यात्वरागादिरहितत्वेन वीतरागसम्यक्त्वचारित्रसहितत्वेन च शुद्ध। अभेदनयेन पुन छद्मस्थाना सवधि भेदज्ञानमात्मस्वरूपमेव तत कारणात्तेनैकदेशव्यक्तिरूपेणापि सकलव्यक्तिरूप केवलज्ञान जायते नास्ति दोष।

समाधान - कोई तपस्वी ध्यानारूढ है-ध्यान में है। उसको किसी ने भी दुष्टभाव से वस्त्र लपेट दिया अथवा आभूषण आदि पहना दिये, तो भी वह तपस्वी निर्ग्रन्थ ही है। क्योंकि पाण्डवादि के समान उसके वुद्धिपूर्वक ममत्व का अभाव है। तथा भरत चक्रवर्ती आदि भी दो घडी काल में ही मुक्त हो गये हैं, वे भी निर्ग्रन्थरूप धारण करके ही मुक्त हुए हैं। लेकिन उनके परिग्रह के त्याग का काल अल्प होने से साधारण लोग उनके परिग्रह के त्याग को नहीं जानते हैं, ऐसा भावार्थ है।

इस प्रकार भावलिग रहितवालों को केवल द्रव्यलिग मोक्ष का कारण नहीं है। और भावलिग सहितवालों को द्रव्यलिग वाह्य सहकारी कारण है, इस कथन की मुख्यता से तेरहवें स्थल में ७ गाथायें हो गई।

यहाँ शिष्य फिर पूछता है-केवलज्ञान शुद्ध है, और छद्मस्थ का ज्ञान अशुद्ध है, वह छद्मस्थों का अशुद्ध ज्ञान शुद्ध केवलज्ञान का कारण नहीं होता है, क्योंकि **'सुद्ध तु वियाणतो सुद्धमेवप्पय लहदि जीवो''** ऐसा इस समयसार में वचन आया है अर्थात् शुद्ध को जाननेवाला ही आत्मा शुद्ध बनता है ?

समाधान - छद्मस्थ जीव का ज्ञान केवलज्ञान का कारण नहीं है, ऐसा नहीं है। छद्मस्थ का ज्ञान कथचित् शुद्ध है, कथचित् अशुद्ध है। जैसे-यद्यपि केवलज्ञान की अपेक्षा से छद्मस्थ का ज्ञान शुद्ध नहीं है, तथापि **चतुर्थ आदि गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ का ज्ञान मिथ्यात्वरागादि रहित होने से और वीतरागसम्क्त्वचारित्र (स्वानुभूति) सहित होने से शुद्ध है।** अभेदनय से वह छद्मस्थ सवधित भेदज्ञान आत्म स्वरूप ही होता है (स्वानुभूति स्वरूप ही होता है), इसलिये एकदेश व्यक्तिरूप उस ज्ञान के द्वारा सकलादेश व्यक्तिरूप केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है, इसमें कुछ दोष नहीं है।

---

[१] समयसार गाथा १९८ ता वृ

अथ मत सावरणत्वात्क्षायोपशमिकत्वाद्वा शुद्ध न भवति तर्हि मोक्षोऽपि नास्ति। कस्मात् ? छद्मस्थाना ज्ञान यद्यप्येकदेशेन निरावरण तथापि केवलज्ञानापेक्षया नियमेन सावरणमेव क्षायोपशमिकमेवेति।

अथाभिप्राय पारिणामिकभावशुद्ध तेन मोक्षो भविष्यति तदपि न घटते। कस्मात् ? इति चेत्, केवलज्ञानात्पूर्वम् पारिणामिकभावस्य शक्तिमात्रेण शुद्धत्व न व्यक्तिरूपेणेति। तथाहि-जीवत्वभव्यत्वाभव्यत्वरूपेण त्रिविधो हि पारिणामिक। तत्र तावदभव्यत्व मुक्तिकारण न भवति। यत्पुनर्जीवत्वभव्यत्वद्वय तस्य द्वयस्य तु यदाय जीवो दर्शनचारित्रमोहनीयोपशम-क्षयोपशमक्षयलाभेन वीतरागसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयेण परिणमति तदा शुद्धत्व। तच्च शुद्धत्व औपशमिक-क्षायोपशमिकक्षायिकभावत्रयस्य सवधिमुख्यवृत्त्या, पारिणामिकस्य पुनर्गौणत्वेनेति। तत्र शुद्धपरिणामिकस्य वधमोक्षस्य कारणरहितत्व पचास्तिकायेऽनेन श्लोकेन भणितमास्ते -

"मोक्ष कुर्वन्ति मिश्रौपशमिक क्षायिकाभिधा। वधमौदयिको भावो निष्क्रिय पारिणामिक'।।१।।"

तत एव स्थित निर्विकल्पशुद्धात्मपरिच्छित्तिलक्षण वीतरागसम्यक्त्वचारित्राविनाभूतमभेदनयेन तदेव शुद्धात्मशव्दवाच्य क्षायोपशमिकमपि भावश्रुतज्ञान मोक्षकारण भवतीति। शुद्धपारिणामिकभाव पुनरेकदेशव्यक्तिलक्षणाया कथचिद्भेदाभेदरूपस्य द्रव्यपर्यायात्मकस्य जीवपदार्थस्य शुद्धभावनावस्थाया ध्येयभूतद्रव्यरूपेण तिष्ठति न च ध्यानपर्यायरूपेण, कस्मात् ? ध्यानस्य विनश्वरत्वात् इति।।४३६।।

इस पर भी यदि आपका ऐसा अभिप्राय हो कि, 'छद्मस्थ का ज्ञान आवरण सहित होने से अथवा क्षायोपशमिक होने से शुद्ध नहीं है', तो फिर मोक्ष भी नहीं होगा क्योंकि छद्मस्थ का ज्ञान यद्यपि एकदेश से निरावरण है तथापि केवलज्ञान की अपेक्षा से नियम से आवरण सहित ही है क्षायोपशमिकवाला ही है।

इस पर यदि आप ऐसा कहेंगे कि छद्मस्थ के पास पारिणामिकभाव शुद्ध है उससे मोक्ष होगा। तो यह भी आपका कहना ठीक नहीं बैठता क्योंकि केवलज्ञान पर्याय प्रकट होने के पहले तो पारिणामिकभाव का शक्तिरूप से शुद्धत्व है, लेकिन व्यक्तिरूप से नहीं है। देखो, पारिणामिकभाव जीवत्व, भव्यत्व, और अभव्यत्व रूप से तीन प्रकार का है। वहाँ अभव्यत्व तो मुक्ति का कारण नहीं है, और जीवत्व भव्यत्व इन दोनों का शुद्धपना तब होता है जब कि यह जीव आगम भाषा से दर्शनमोहनीय व चारित्रमोहनीय के उपशम, क्षयोपशम और क्षय को (क्रम से) प्राप्त करेगा अर्थात् अध्यात्मभाषा से वीतराग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय से परिणमन (स्वानुभूति) करेगा। और वह शुद्धत्व भी -

आगम भाषा से	अध्यात्म भाषा से
औपशमिक, क्षयोपशमिक और क्षायिक तीन पर्याय की मुख्यता से वह शुद्धत्व है।	स्वानुभूतिमय अभेदरत्नत्रय की पर्याय की मुख्यता से वह शुद्धत्व है।

और पारिणामिक भाव का गौणत्व है, क्योंकि शुद्धपरिणामक भाव तो वध-मोक्ष का कारण नहीं है। देखो पचास्तिकाय में 'मोक्ष कुर्वन्ति' इत्यादि कहा गया है अर्थात् जीव के उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, औदायिक और पारिणामिक भाव हैं, उनमें औदायिकभाव वध करनेवाला है। औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव मोक्ष के कारण हैं, पारिणामिक भाव निष्क्रिय है।

अथेद शुद्धात्मतत्त्व निर्विकारस्वसंवेदनप्रत्यक्षेण भावयन्नात्मा परमाक्षयसुख प्राप्नोतीत्युपदिशति, - श्री कुंदकुंदाचार्यदेवा समयसार ग्रंथ समाप्ति कुर्वन्त फल दर्शयति। तद्यथा -

जो समयपाहुडमिण पठिदूण य अत्थतच्चदो णादु। (४१५)
अत्थे ठाहिदि चेदा सो पावदि उत्तम सोक्खं।।४३७।।

जो समयपाहुणमिण पठिदूणय य कर्ता समयप्राभृताख्यमिद शास्त्र पूर्वम् पठित्वा न केवल पठित्वा अत्यतच्चदो णादु ज्ञात्वा च। कस्मात् ? ग्रथार्थत, न केवल ग्रन्थार्थत ? तत्त्वतो भावपूर्वेण अत्थे ठाहिदि पश्चादुपादेयरूपे शुद्धात्मलक्षणेऽर्थे निर्विकल्पसमाधौ स्थास्यति। चेदा सो पावदि उत्तम सोक्ख स चेतयितात्मा भाविकाले प्राप्नोति लभते। किं लभते? वीतरागसहजापूर्वपरमाल्हादरूप -

"आत्मोपादानसिद्ध स्वयमतिशयवद्वीतवाध विशालम्।
वृद्धिह्रासव्यपेत विषयविरहित नि प्रतिद्वदभावम्।
अन्यद्रव्यानपेक्ष निरुपमममित शाश्वत सर्वकालम्।
उत्कृष्टानतसार परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम्"। इति

इससे यह सिद्ध हुआ कि निर्विकल्प शुद्धात्म परिच्छित्ति लक्षणवाला (स्वानुभूतिवाला) वीतराग सम्यक्त्व चारित्र के अविनाभूत है, उसको ही अभेदनय से शुद्धात्मा-स्वानुभूति-स्वानुभव शब्द से कहते हैं, ऐसा क्षायोपशमिकज्ञान भी भावश्रुतज्ञान है, वह मोक्ष का कारण है। और एकदेश व्यक्ति लक्षण में कथंचित भेदाभेदरूप द्रव्यपर्यायात्मक जीव पदार्थ के शुद्ध भावना की (स्वानुभूति की) अवस्था में (चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीवों की स्वानुभूति की अवस्था में) शुद्ध पारिणामिकभाव ध्येयभूत द्रव्य (ध्यान करने योग्य विषय) है और शुद्धपारिणामिकभाव ध्यानपर्यायरूप नहीं है क्योंकि ध्यान की पर्याय विनश्वर (अनित्य) है।।४३६।।

अब, इस शुद्धात्मतत्त्व को निर्विकार स्वसंवेदन प्रत्यक्ष के द्वारा भावभासित होनेवाला (अनुभव में आनेवाला) आत्मा परम अक्षय सुख को प्राप्त करता है, ऐसा कहते हैं-अथवा श्री कुंदकुंदाचार्यदेव इस समयसार ग्रंथ को समाप्त करते हुए इसके फल को दिखाते है -

गाथार्थ :- (जो चेदा) जो आत्मा (इण समयपाहुड पठिदूण य) इस समय प्राभृत को पढ़कर (अत्थतच्चदो णादु) अर्थ से और तत्व से-भाव से-अनुभव से जानकर (अत्थे ठाहिदि) इसके अर्थ में ठहरेगा (सो) वह आत्मा (उत्तम सोक्ख) उत्तम सुख को (पावदि) पाता है।

अत्राह शिष्य - हे भगवन् ! अतींद्रियसुख निरतर व्याख्यात भवद्भिरतच्च जनैर्नज्ञायते ? भगवानाह-कोऽपि देवदत्त स्त्रीसेवनाप्रभृतिपचेंद्रियविषयव्यापाररहितप्रस्तावे निर्व्याकुलचित्त तिष्ठति, स केनापि पृष्ट भो देवदत्त ! सुखेन तिष्ठसि त्वमिति ? तेनोक्त सुखमस्तीति तत्सुखमतींद्रिय। कस्मात् ? इति चेत्, सासारिकसुख पचेन्द्रिय प्रभव। यत्पुनरतीन्द्रिय सुख तत्पचेन्द्रिय विषयव्यापाराभावेऽपि दृष्ट यत इद तावत्सामान्येनातींद्रियसुखमुपलभ्यते। यत्पुन पचेंद्रियमनोभवसमस्तविकल्पजालरहिताना समाधिस्थपरमयोगिना स्वसवेदनगम्यमतींद्रियसुख तद्विशेषेणेति। यच्च मुक्तात्मनामतींद्रियसुख तदनुमानगम्यमागमगम्य च। तथाहि-मुक्तानामिन्द्रियविषयव्यापाराभावेऽपि अतींद्रियसुखमस्तीति पक्ष । कस्मात् ? इति चेत्, इदानीं तेन विषयव्यापारातीतनिर्विकल्पसमाधिरतपरममुनींद्राणा स्वसवेद्यात्मसुखोपलब्धिरिति हेतु । एव पक्षहेतुरूपेण द्वयगमनुमान ज्ञातव्यम्।

"आत्मोपादानसिद्ध स्वयमतिशयवद्वीतबाध विशाल" इत्यादि अर्थात् वह आत्मा सिद्ध सुख प्राप्त करता है। वह परमसुख अपने आत्मा से ही उत्पन्न होता है, स्वय अतिशय सहित है, सब बाधाओं से रहित है, विशाल है, उससे अच्छा सुख दूसरा कोई नहीं है, हानि और वृद्धि से रहित है, विषयों की वासना से रहित है, प्रतिद्वन्दता के भाव से रहित है, अन्य द्रव्यों की अपेक्षा रखनेवाला नहीं है (स्वतत्र है), अनुपम है, अनत है, शाश्वत है, सर्वकाल रहनेवाला है, उत्कृष्ट है, अनतसारवाला है।

अब शिष्य पृछता है - हे भगवन् ! आपने निरतर अतींद्रिय सुख की बात कही लेकिन लोग उसको नहीं जानते हैं ?

आचार्यदेव उत्तर देते हैं-कोई देवदत्त स्त्रीसेवन आदि पचेंद्रिय के विषयसुख के व्यापार से रहित अवस्था मे निराकुल चित्त से बैठा है, उसको किसी ने आकर पूछा कि "हे देवदत्त! सुख से तो हो ?," इस पर वह उत्तर देता है कि "सुख से हूँ।" तो यह सुख अतींद्रिय सुख है क्योंकि सासारिकसुख विषयों के सेवन से पैदा होता हे और यहाँ पचेंद्रियों के विषयों के व्यापार का अभाव होते हुए भी सुख दीख रहा है वह सामान्य से अतींद्रियसुख है। पचेंद्रिय और मन इन से उत्पन्न होनेवाले सभी विकल्पजालों से रहितवालों को याने समाधिस्थ होनेवाले परमयोगियों को जो स्वसवेदनगम्य अतींद्रियसुख है वह विशेष है। वह जाति अपेक्षा से अतींद्रिय है तो भी विशदता की अपेक्षा से विशेष है। मुक्त आत्मा को होनेवाला जो अतींद्रियसुख है वह अनुमानगम्य और आगमगम्य भी है।

मुक्त आत्मा को इद्रिय विषय व्यापार के अभाव में भी अतींद्रियसुख है - यह पक्ष है। क्योंकि अभी वर्तमान काल में विषयव्यापार से रहितवाले अर्थात् निर्विकल्प समाधि में (स्वानुभूति में) रत रहनेवाले भावलिगी मुनियों को स्वसवेद्य आत्मसुख की (स्वानुभूति के सुख की) उपलब्धि है - यह हेतु है। इस प्रकार पक्ष और हेतु ये दोनों अनुमान के अग है, ऐसा जानना चाहिये।

आगम में तो (सिद्धभक्ति के ७ वें श्लोक में) यह स्पष्ट है कि, "आत्मोपादानसिद्ध" इत्यादि वचन है। इसलिये (वर्तमान काल में चतुर्थ, पचम ओर सप्तम गुणस्थान में भी) अतींद्रियसुख में-स्वानुभवजन्य सुख के विषय में सदेह नहीं करना चाहिये।

आगमे तु प्रसिद्धमेवात्मोपादान सिद्धमित्यादि वचनेन। अत कारणात् अतींद्रिय सुखे सदेहो न कर्तव्य इति। उक्त च -

यद्देवमनुजा सर्वे सौख्यमक्षार्थसभवम्। निर्विशति निराबाधम् सर्वाक्षप्रीणनक्षमम्।। १।।
सर्वेणातीतकालेन यच्च भुक्त महर्द्धिकम्। भाविनो ये च भोक्ष्यति स्वादिष्ट स्वातरजकम्।।२।।
अनतगुणिन तस्मादत्यक्ष स्वस्वभावजम्। एकस्मिन् समये भुक्ते तत्सुख परमेश्वर ।। ३।।

एव पूर्वोक्तप्रकारेण **विष्णुकर्तृत्वनिराकरणमुख्यत्वेन** गाथासप्तकम्। तदनतरमन्य करोति अन्यो भुक्ते-इति **बौद्धमतैकातनिराकरणमुख्यत्वेन** गाथाचतुष्टयम्। तत परमात्मारागादिभावकर्म न करोति इति **साख्यमत** निराकरण-रूपेण सूत्रपचकम्। तत पर कर्मैव सुखादिक करोति न चात्मेति पुनरपि **साख्यमतैकात** निराकरणमुख्यत्वेन गाथात्रयोदशकम्। तदनतर चित्तस्थरागस्य घात कर्तव्य-इत्यजानन्वहिरगशब्दादिविपयाणा घात करोमीति योऽसौ चितयति तत्सबोधनार्थम् गाथासप्तकम्। तदनतर द्रव्यकर्म व्यवहारेण करोति भावकर्म निश्चयेन करोतीति मुख्यत्वेन गाथासप्तकम्। तत पर **ज्ञान ज्ञेयरूपेण न परिणमति इति** कथनरूपेण सूत्रदशकम्।

तदनतर शुद्धात्मोपलब्धिरूप निश्चयप्रतिक्रमण निश्चयप्रत्याख्यान निश्चयालोचना चारित्रव्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयम्। तदनतर पचेंद्रियमनोविपयनिरोधकथनरूपेण सूत्रदशकम्।

कहा भी है कि, **'यद्देवमनुजा' सर्वे सौख्यमक्षार्थसभव'** इत्यादि अर्थात्-वर्तमान में जो देव और मनुष्य हैं वे सब निरर्गलरूप से अपनी सभी इद्रियों को प्रसन्न करनेवाला इद्रियजन्य और ऋद्धि आदि से प्राप्त हुए सुख को भोग रहे हैं और पहले भूतकाल में देव और मनुष्यों ने जो महर्द्धिक सुख भोगा है तथा आगे होनेवाले देव और मनुष्य इद्रियजन्य स्वादिष्ट और मनोरजक सुख को भोगेंगे उस समस्त सुख से भी अतींद्रियजन्य अपने स्वभाव से उत्पन्न होनेवाला **अनतगुणा सुख परमेश्वर सिद्ध भगवान एक समय में भोगते हैं।**

इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से **विष्णु के कर्तृत्व** का निराकरण करने की मुख्यता से ७ गाथायें हैं। तदनतर अन्य करता है और अन्य भोगता है इस प्रकार के **एकात बौद्धमत** का निराकरण करने की मुख्यता से ४ गाथायें हैं। इसके आगे परमात्मा रागादिभावकर्म का कर्ता नहीं है, इस **साख्यमत** का निराकरण करनेवाली ५ गाथायें है। इसके आगे कर्म ही सुखी आदि करता है, आत्मा कुछ नहीं करता हे इस **एकात साख्यमत** का भी निराकरण करने की मुख्यता से १३ गाथायें है। इसके आगे चितस्थराग का घात करने के कर्तव्य को न जाननेवाला **"बहिरग शब्दादि विषयों का घात मैं करता हूँ,"** ऐसा जो चितन करता है उसको सबोधन करने के लिए ७ गाथायें हैं। इसके बाद **व्यवहारनय से द्रव्यकर्म करता है, निश्चयनय से भावकर्म करता है** इस कथन की मुख्यता से ७ गाथायें हैं। इसके **आगे ज्ञान ज्ञेयरूप से परिणमन नहीं करता है** ऐसा कथन करनेवाली १० गाथायें हैं।

इसके आगे शुद्धात्मानुभूतिरूप निश्चयप्रतिक्रमण, निश्चयप्रत्याख्यान, निश्चयआलोचना, चारित्र के व्याख्यान की मुख्यता से ४ गाथायें हैं। इसके आगे पचेंद्रिय और मन इनके विपय का निरोध करने का कथन करनेवाली १० गाथायें हैं।

तदनतर कर्मचेतना कर्मफलचेतनाविनाशनिरूपणमुख्यत्वेन गाथात्रयम्। तत पर शास्त्रेंद्रियविपयादिक ज्ञान न भवतीति प्रतिपादनरूपेण गाथापचदशकम्। तत पर शुद्धात्मा कर्मनोकर्माहारादिक निश्चयेन न गृहणाति इति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयम्। तदनतर शुद्धात्मभावनारूप भावलिगनिरपेक्ष द्रव्यलिग मुक्तिकारण न भवतीति प्रतिपादनमुख्यत्वेन गाथा सप्तकम्। तदनतर सुखरूपफलदर्शनमुख्यत्वेन सूत्रमेकम्।। ४३७।।

इति **श्रीजयसेनाचार्यकृताया समयसारव्याख्याया शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाया तात्पर्यवृत्तौ समुदायेन पडधिकनवतिगाथाभिस्त्रयोदशाधिकारे समयसारचूलिकाभिधानो सर्वविशुद्धज्ञाननामा दशमोऽधिकार समाप्त ।।१०।।**

इसके आगे कर्मचेतना व कर्मफलचेतना के नाश करने का निरूपण करने की मुख्यता से ३ गाथायें हैं। इसके आगे शास्त्र और इद्रिय विपयादिक ज्ञान नहीं हैं इसका कथन करनेवाली १५ गाथायें हैं। इसके आगे शुद्धात्मा निश्चयनय से कर्म-नोकर्म-आहारादिक को ग्रहण नहीं करता है, इस कथन की मुख्यता से ३ गाथायें हैं। इसके आगे शुद्धात्मभावनारूप भावलिग से रहित द्रव्यलिग मुक्ति का कारण नहीं है, इस कथन की मुख्यता से ७ गाथायें हैं। इसके आगे सुखरूप फल दिखाने की मुख्यता से १ गाथा है।।४३७।।

इस प्रकार इस समयसार ग्रथ की जयसेनाचार्यजी कृत शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाली तात्पर्यवृत्ति में ९६ गाथाओं से और १३ अतर अधिकारवाली समयसार चूलिका नामक सर्वविशुद्धज्ञान नाम का १० वाँ अधिकार पूर्ण हुआ।।१०।।

卐 卐 卐 卐 卐

ज्ञानप्रतोलिकास्वरूपाय नमः।

लोकिक में कहीं भी जाना हो तो खुलने का और वद होने का समय ज्ञात करना पडता है। वाजार वद हो तो सब्जी नहीं खरीद सकते हैं। कपडा, वर्तन, धान, सोना, गाडी आदि जिस किसी भी वस्तु का प्रयोजन होने पर उसकी जानकारी वरावर करते हैं, उसमें कुछ भूल हो जाय तो खाली हाथ लोटना पडता है।

यथार्थ ज्ञान के लिए उत्साह ही जागृत नहीं हुआ। **मोक्षपुरी याने शिवपुरी अर्थात् आनदपुरी का द्वार उद्घाटित करने के लिए भेदविज्ञान की चावी है। विवेकी इसका आविष्कार करते हैं।** ज्ञानी अवबोध-सौध में रहता है। उसमें अनन्तगुणों के अनत वातायन अर्थात् खिडकियाँ हैं। वहाँ हमेशा चैतन्य के उपवन से अनन्तगुण वाटिकाओं में खिले हुए सुमनों पर टकराकर सुरभि वहती है। यह चैतन्यप्राण को जिलानेवाली सुरभि/वायु कभी दूषित नहीं होती है। परमब्रह्म की वार्ता हमेशा गुजित रहती है। आनद की भेरी जयनाद करती है। यह महल ज्ञान की प्रतोलिका से अर्थात् दरवाजा से हमेशा सुसरक्षित है। अन्य का इसमें प्रवेश असभव है। अकारण वैद्यस्वरूप अरिहत भगवान भाव रोगों का इलाज (चिकित्सा) करके आनद का प्रीतिभोज कराने के लिए ज्ञान की प्रतोलिका दर्शाते हैं। भगवान स्वय प्रतोलिका में प्रवेश कर चुके हैं, उनसे हमें भी आदर्श पाठ मिलता है। अत ज्ञान के आविष्कारकस्वरूप हे भगवन्! आपको बार-बार नमस्कार है।

चार्ट नं. १९

द्रव्य-गुण-पर्याय और सप्तभंगी
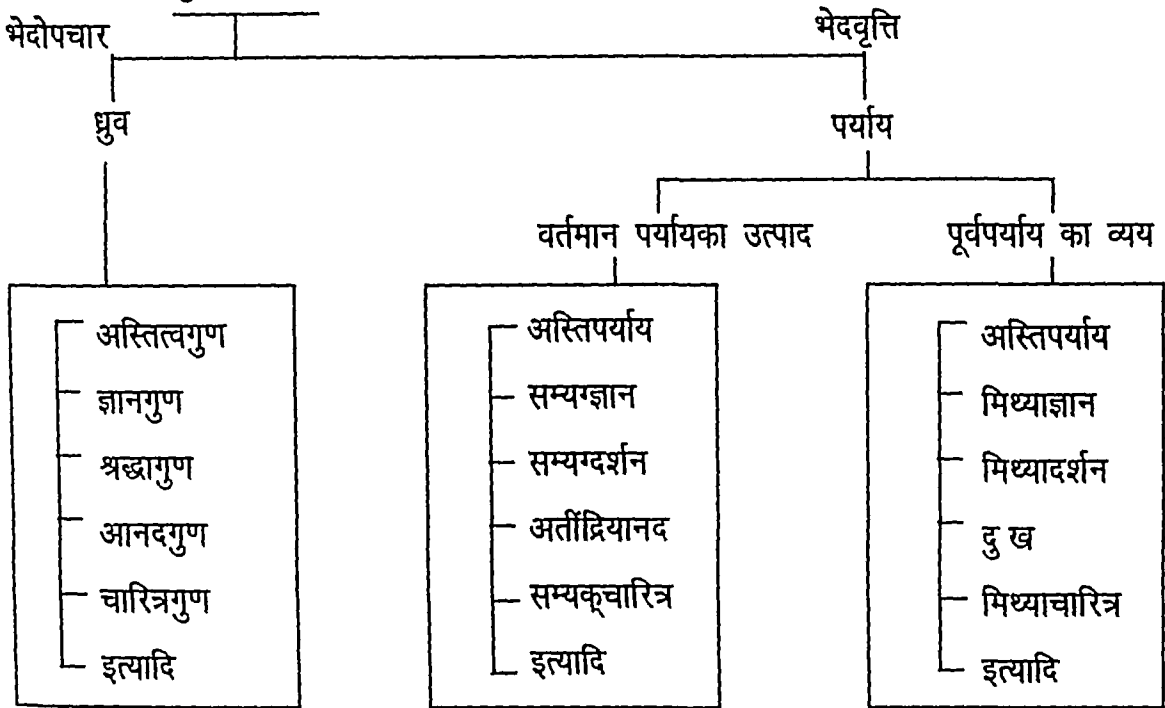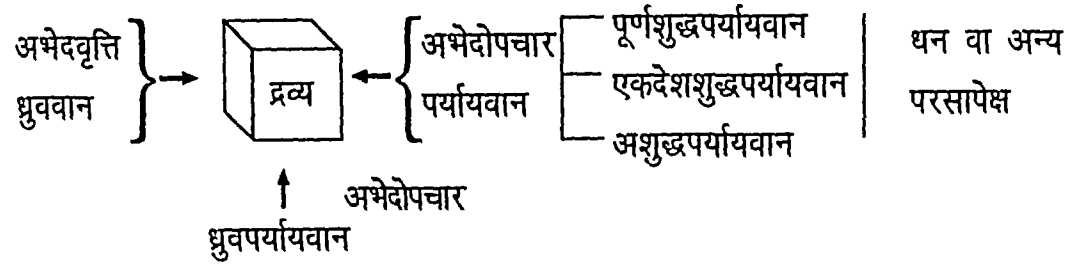
चार्ट न. ११

सम्यक्त्व के साथ बाह्य क्रिया व अन्तरग श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र का मिलान

बाह्य चारित्र	श्रद्धा	ज्ञान	अतरग चारित्र
मंदिर में है	सम्यग्दर्शन	जय भगवान का विचार है	शुभ
मंदिर में है	सम्यग्दर्शन क्षयोपशम	मैं शाश्वत शुद्धज्ञानानंदी हूँ	शुद्ध
मंदिर में है	मिथ्यादर्शन	देवदर्शन का विचार है	शुभ
गृहकार्य कर रहा है	मिथ्यादर्शन (सादि)	गृहकार्य का विचार है	अशुभ
दूरदर्शन देख रहा है	मिथ्यादर्शन	अन्नदान देने का विचार है	शुभ
दूरदर्शन देख रहा है	मिथ्यादर्शन	भोगों का विचार है	अशुभ
दुकान में है	मिथ्यादर्शन	सेवा करने का विचार है	शुभ
दुकान में है	मिथ्यादर्शन (सादि)	धन का विचार है	अशुभ
दुकान में है	सम्यग्दर्शन	जय भगवान बोल रहा है	शुभ
दुकान में कार्य कर रहा है	सम्यग्दर्शन प्रथमोपशम	मैं एक शुद्ध ज्ञानानंदात्मा हूँ	शुद्ध
दुकान में मित्र से चर्चा	मिथ्यादर्शन	तत्वज्ञान का विचार है	शुभ
दुकान में है	मिथ्यादर्शन	धन का विचार है	अशुभ
अन्नदान दे रहा है	मिथ्यादर्शन	अन्नदान का विचार है	शुभ
घर में नाश्ता कर रहा है	मिथ्यादर्शन (सादि)	देह अर्थात् आत्मा है	अशुभ
मंदिर में है	सम्यग्दर्शन	जय भगवान बोल रहा है	शुभ
मंदिर में है	सम्यग्दर्शन प्रथमोपशम	मैं एक शुद्ध ज्ञानानंदी हूँ	शुद्ध
मंदिर में है	सूक्ष्म मिथ्यात्व	तत्व का विचार है	शुभ
मंदिर में है	मिथ्यात्व	धन का विचार है	अशुभ
मंदिर में देव दर्शन	मिथ्यादर्शन	देव दर्शन का विचार है	शुभ
गृहकार्य कर रहा है ↑	मिथ्यादर्शन अनादि ↑	गृहकार्य का विचार है	अशुभ ↑

गृहस्थ की मिथ्यात्व व सम्यक्त्व अवस्था में बाह्यचारित्र और अतरग श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र का दिग्दर्शन

नीचे से ऊपर की ओर पढ़ें। **A**

| सरल रेखा - शुद्ध भाव
≷ नागमोडी रेखा - शुभ भाव
≷ नागमोडी रेखा - अशुभ भाव

बाह्य चारित्र	श्रद्धा	ज्ञान	अतरग चारित्र
घर में वैठा है	सम्यग्दर्शन	भजन का विचार है	शुभ
घर में वैठा हे	सम्यग्दर्शन	मैं एक शुद्ध ज्ञायक हूँ	शुद्ध
भजन गा रहा है	सम्यग्दर्शन	मैं अकेला आया हूँ	शुभ
गायन कर रहा हे	सम्यग्दर्शन	सिनेमा सगीत का विचार हे	अशुभ
स्वाध्याय कर रहा है	सम्यग्दर्शन	तत्वज्ञान का विचार हे	शुभ
दूरदर्शन देख रहा है	सम्यग्दर्शन	मैं एक शाश्वत ज्ञानानदी हूँ	शुद्ध
दूरदर्शन देख रहा हे	सम्यग्दर्शन	दुष्काल पीडितों की मदद करूँ	शुभ
दूरदर्शन देख रहा हे	सम्यग्दर्शन	विवाह का विचार है	अशुभ
दुकान में वैठा है	सम्यग्दर्शन	तत्वज्ञान का प्रचार हो	शुभ
दुकान में वैठा है	सम्यग्दर्शन	मैं एक ध्रुव ज्ञायक हूँ	शुद्ध
दुकान में वैठा हे	सम्यग्दर्शन	दान देने का विचार हे	शुभ
दुकान में वेठा है	सम्यग्दर्शन	उद्योग का विचार है	अशुभ
घर में वेठा है	सम्यग्दर्शन	पर्याय नाशवान का विचार है	शुभ
घर में वैठा है	सम्यग्दर्शन	मैं शाश्वत ज्ञानानदमय हूँ	शुद्ध
मुर्दे के पास वेठा हे	सम्यग्दर्शन	सर्वज्ञ ने जेसा देखा वैसा हुआ	शुभ
वधु वियोग से शोक में है	सम्यग्दर्शन	वधु वियोग का विचार है	अशुभ
अन्नदान कर रहा हे	सम्यग्दर्शन	अन्नदान का विचार है	शुभ
भूमि खोद रहा है	सम्यग्दर्शन	भूमि खोदने का विचार है	अशुभ
स्वाध्याय में वैठा है	सम्यग्दर्शन	जय भगवान का विचार है	शुभ
स्वाध्याय में वेठा हे	सम्यग्दर्शन क्षयोपशम	मैं शाश्वत ज्ञानानदी हूँ	शुद्ध
↑ स्वाध्याय कर रहा हे	मिथ्यादर्शन (सादि)	तत्व का विचार है	शुभ ↑
↑ गृह कार्य कर रहा हे	↑ मिथ्यादर्शन (सादि) ↑	गृह कार्य का विचार है	अशुभ ↑

गृहस्थ की मिथ्यात्व व सम्यक्त्व अवस्था में बाह्यचारित्र और अतरग श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र का दिग्दर्शन

| सरल रेखा - शुद्ध भाव

⌇ नागमोडी रेखा - शुभ भाव

⌇ नागमोडी रेखा - अशुभ भाव

नीचे से ऊपर की ओर पढें।

B

चेतन-अचेतन द्रव्य, ससार व ससार के कारण तथा मोक्ष व मोक्ष के कारण के सबंध में विभिन्न मतों की मान्यतायें

विषय	सम्यक् - वस्तुविज्ञान	बौद्ध	साख्य	नैयायिक
तत्त्व-पदार्थ	साततत्त्व/नव-पदार्थ जीव अजीव आस्रव - पुण्यास्रव पापास्रव बध - पुण्यबध पापबध सवर, निर्जरा, मोक्ष इनको मानते हैं।	१) दु ख के कारण २) दु ख समुदय ३) दु ख का निरोध ४) मार्ग (दु खों का क्षय करना) इनको मानते हैं। दु ख के प्रकार - १) शारीरिक २) मानसिक ३) आगुतक ४) सहज समुदय के प्रकार - १) अविद्या २) तृष्णा	२५ तत्त्व हैं। १) पुरुप २) प्रकृति ३) प्रकृति से महान, महान से बुद्धि-अहकार (पाच तन्मात्रा इद्रियॉ) सोलहगण - स्पर्शादि पाच बुद्धि इद्रियॉ, पादु, उपस्थ वाणी, हस्त, पाद ये पाच कर्मेन्द्रियॉ, पाचभूत स्पर्श, रस, गध, रूप, शब्द।	सोलह पदार्थ (तत्त्व) हैं। प्रमाण १७ हैं। प्रमेय १२ हैं। सशय ३ हैं। प्रयोजन २ हैं। दृष्टान्त ७ हैं। सिद्धान्त ४ हैं। अवयव, तर्क, निर्णय, वाद २, जल्प १, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, आदि निग्रहस्थान हैं।
ससार	अनादिअनिधन स्वय सिद्ध है	निर्णय नहीं है	ईश्वर ने वनाया है	ईश्वर ने बनाया है
ससार के कारण	मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र	अविद्या से रागादि सस्कारों का होना	अधर्म, अज्ञान, अहकार	मिथ्याज्ञान
मोक्ष	मान्य है	मान्य नहीं	मान्य नहीं	मान्य नहीं
सर्वज्ञ	मान्य है	मान्य नहीं	मान्य नहीं	मान्य नहीं
मोक्ष के कारण	सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र	तत्व ज्ञान होना अविद्या का अभाव	प्रकृति और पुरुष में भेद ज्ञान होना	दुर्गुणों का अभाव मिथ्याज्ञान का अभाव

स्याद्वाद अधिकार

(परिशिष्ट)

अत्र स्याद्वादसिद्ध्यर्थम् वस्तुतत्त्वव्यवस्थिति ।
उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चित्यते।।

चित्यते विचार्यते कथ्यते **मनाक्** सक्षेपेण **भूय** पुनरपि। काऽसौ ? **वस्तुतत्त्वव्यवस्थिति** ? वस्तुतत्त्वस्य वस्तुस्वरूपस्य व्यवस्थितिर्व्याख्या। किमर्थम् ? **स्याद्वादशुद्ध्यर्थम्**[1] स्याद्वादनिश्चयार्थम्। अत्र समयसारव्याख्याने समाप्तिप्रस्तावे न केवल वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिश्चिन्त्यते, उपायोपेयभावश्च। **उपायो** मोक्षमार्ग **उपेयो** मोक्ष इति। अत पर **स्याद्वादशब्दार्थ** क ? - इति प्रश्ने सत्याचार्या उत्तरमाह - **स्यात्कथचित् विवक्षितप्रकारेणानेकातरूपेण वदन वादो जल्प कथन प्रतिपादमिति स्याद्वाद** स च स्याद्वादो भगवतोऽर्हत शासनमित्यथ । तच्च भगवत शासन कि करोति ? सर्वम् वस्तु, अनेकातात्मकमित्यनुशास्ति।

अव, यहॉ फिर से स्याद्वाद की सिद्धि के लिये वस्तुतत्त्व की व्यवस्थिति ओर उपायभाव तथा उपेयभाव इनका सक्षेप में विचार किया जाता है। वस्तुतत्त्व याने वस्तुस्वरूप है। व्यवस्थिति याने व्याख्या।

शका - किसलिये ?

समाधान - स्याद्वाद शुद्धि के लिये। स्याद्वाद निश्चय के लिये। यहॉ समयसार व्याख्यान में समाप्ति प्रस्ताव से केवल वस्तुतत्त्व व्यवस्थिति का विचार किया जाता है, और उपाय तथा उपेय का विचार करते हैं। उपाय याने मोक्षमार्ग और उपेय याने मोक्ष। ऐसे अर्थ हैं।

शका - स्याद्वाद शब्द का क्या अर्थ है ?

समाधान - 'स्यात्' अर्थात् कथचित्, विवक्षित प्रकार से, अपनी विवक्षा को लिये हुये अनेकात रूप से कथन करना। और वाद याने जल्प करना, कथन करना, प्रतिपादन करना। इस तरह स्याद्वाद शब्द का अर्थ अर्हंतभगवान के शासन में है। यह अर्हंतभगवान का स्याद्वाद शासन है।

शका - और वह भगवान का शासन क्या करता हे ?

समाधान - यह भगवान का शासन सब वस्तुओं को अनेकातात्मक वतलाता है।

---

[1] पाठान्तर - किमर्थम् ? स्याद्वाद सिद्ध्यर्थम् स्याद्वाद निश्चयार्थम्।

अनेकात इति कोऽर्थ ? इति चेत्, एकवस्तुनि वस्तुत्वनिष्पादक अस्तित्वनास्तित्वद्वयादिस्वरूप परस्परविरुद्ध-सापेक्षशक्तिद्वय यत्तस्य प्रतिपादन स्यादनेकातो भण्यते। स चानेकात कि करोति ? ज्ञानमात्रो योऽसौ भावो जीवपदार्थ शुद्धात्मा स तदतद्रूप एकानेकात्मक सदसदात्मको नित्यानित्यादिस्वभावात्मको भवतीति कथयति।

तथाहि - ज्ञानरूपेण तद्रूपो भवति। ज्ञेयरूपेणातद्रूपो भवति। द्रव्यार्थिकनयेनैक । पर्यायार्थिकनयेनानेक । स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयेन सद्रूप । परद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयेनासद्रूप । द्रव्यार्थिकनयेन नित्य । पर्यायार्थिक-नयेनानित्य । पर्यायार्थिकनयेन भेदात्मक द्रव्यार्थिकनयेयनाभेदात्मको भवतीत्याद्यनेकधर्मात्मक इति। तदेव स्याद्वादस्वरूप तु समतभद्राचार्यदेवेरपि भणितमास्ते -

सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नया । सर्वथेति प्रदुष्यति पुष्यति स्यादितीह ते।।१।।

सर्वथा नियमत्यागी यथा दृष्टमपेक्षक । स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषा ।।२।।

शका - अनेकात का क्या अर्थ है ?

समाधान - एक ही वस्तु में वस्तुत्व को निष्पन्न करनेवाली अस्तित्व और नास्तित्व इस तरह दो परस्पर विरुद्ध सापेक्ष शक्तियों का जो प्रतिपादन-कथन है, उसको अनेकात कहते हैं।

शका - और वह अनेकात क्या करता है।

समाधान - वह अनेकात यह कहता है कि, ज्ञानमात्र जो भाव है अर्थात् जीव पदार्थ है, शुद्धात्मा है वह तत्रूप-अतत्रूप, एकमय-अनेकमय, सत्मय-असत्मय, नित्य-अनित्यस्वभावात्मक है। जैसे - यह आत्मा ज्ञानरूप से तद्रूप है (बाह्य) ज्ञेयरूप से अतद्रूप है। द्रव्यार्थिकनय से एक है, पर्यायार्थिकनय से अनेक है। स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावचतुष्टय से सद्रूप है, परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावचतुष्टय से असद्रूप है। द्रव्यार्थिकनय से नित्य है, पर्ययार्थिकनय से अनित्य है। पर्यायार्थिकनय से भेदात्मक है, द्रव्यार्थिकनय से अभेदात्मक है। इत्यादि अनेक-धर्मात्मक यह आत्मा है।

और उस ही स्याद्वादस्वरूप को **श्रीसमतभद्राचार्य देव** के द्वारा भी कहा गया है कि -

सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नया । सर्वथेति प्रदुष्यति पुष्यंति स्यादितीह ते।।१।।

अर्थ - परस्परविरुद्ध नयों के युगल इस तरह होते हैं कि (१) सत्-असत् (२) एक-अनेक (३) नित्य-अनित्य (४) वक्तव्य-अवक्तव्य इत्यादि। इनको यदि सवथा एकात दृष्टि से मानेंगे तो ये एक दूसरे के विरुद्ध होकर दूषित बनते हैं और यदि स्यात् अर्थात् कथचित् रूप से इन्हें स्वीकार करने पर ये एक दूसरे के पोषक बनते हैं।

सर्वथा नियमत्यागी यथा दृष्टमपेक्षक । स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्यैषामात्मविद्विषाम्।।२।।

अर्थ - हे भगवन् ! 'स्यात्' शब्द आपके न्याय में है जो कि सर्वथा एकान्त का त्यागी है जैसा कि प्रत्यक्ष देखने में आता है। यह 'स्यात्' शब्द अपने आपका भी विगाड करने वाले ऐसे अन्य लोगों के यहाँ नहीं है।

अनेकातोप्यनेकान्त प्रमाणनयसाधनं। अनेकात प्रमाणात्ते तदेकातोऽर्पितान्नयात्।। ३।।

धर्मिणोऽनतरूपत्व धर्माणा न कथचन। अनेकातोप्यनेकात इति जैनमत तत ।। ४।।

एव कथचिच्छब्देन वाचकस्यानेकातात्मकवस्तुप्रतिपादकस्य स्याच्छब्दस्यार्थ सक्षेपेण ज्ञातव्य । तत्रैवमनेकात व्याख्यानेन ज्ञानमात्रभावो जीवपदार्थ एकानेकात्मको जात । तस्मिन्नेकानेकात्मके जाते सति ज्ञानमात्रभावस्य जीवपदार्थस्य नयविभागेन भेदाभेदरत्नत्रयात्मक निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गद्वयरूपेणोपायभूत साधकरूप घटते। मोक्षरूपेण पुनरुपेयभूत साध्यरूप च घटत इति ज्ञातव्यम्। अथ प्राभृताध्यात्मशब्दयोरर्थ कथ्यते। तद्यथा -

यथा कोऽपि देवदत्तो राजदर्शनार्थम् किचित्सारभूत वस्तु राज्ञे ददाति तत्प्राभृत भण्यते। तथा परमात्माराधक पुरुपस्य निर्दोषिपरमात्मराजदर्शनार्थमिदमपि शास्त्र प्राभृतम्। कस्मात् ? सारभूतत्वात् इति प्राभृतशब्दस्यार्थ । गगादिपरद्रव्यनिरालबनत्वेन निजशुद्धात्मनि विशुन्द्राधारभृतेऽनुष्ठानमध्यात्मम्।

अनेकातोप्यनेकान्त प्रमाणनयसाधन । अनेकात प्रमाणात्ते तदेकातोऽर्पितान्नयात्।। ३।।

अर्थ - हे भगवन् ! यद्यपि आपका मत अनेकातात्मक है तो भी वह अनेकात भी एकात से नहीं है, किन्तु वहाँ भी कथचित् एकात ओर कथचित् अनेकात है, जो कि प्रमाण ओर नय साधन द्वारा सिद्ध कर लिया जाता हे, अर्थात् आपके यहाँ प्रमाण के द्वारा तो प्रत्येक वस्तु अनेकात रूप हे किन्तु अपेक्षित नय के द्वारा देखी गई जो वस्तु नित्य है वह उस नय से नित्य ही है, और दूसरे नय से वही द्रव्य अनित्य है, वह उस अपेक्षा से अनित्य ही है, नित्य नहीं है।

(जैसे - द्रव्यदृष्टि से आत्मा नित्य ही है अनित्य नहीं है, और पर्यायदृष्टि से आत्मा अनित्य ही है नित्य नहीं है। इसलिये आत्मा नित्यानित्यात्मक है।)

धर्मिणोऽनतरूपत्व धर्माणा न कथचन। अनेकातोप्यनेकात इति जैनमत तत ।।४।।

अर्थ - धर्मी में अनतरूपत्व है, किन्तु प्रत्येक धर्म पृथक्-पृथक एक-एक है। इसलिये अनेकात में भी अनेकातपना है, यह जेनमत हे।

इस प्रकार कथचित् शब्द का वाचक 'स्यात्' शब्द हे, जो अनेकातात्मक वस्तु का प्रतिपादन करने वाला है यह सक्षेप में कहा गया है, ऐसा समझ लेना चाहिये। इस प्रकार अनेकात के व्याख्यान से ज्ञानमात्र स्वभाववाला जीवपदार्थ भी एकानेकातात्मक सिद्ध हुआ। उस एकानेकातात्मक की सिद्धि होने पर ज्ञानमात्र भाववाले जीवपदार्थ का नयविभाग से भेदाभेदरत्नत्रयात्मक निश्चयव्यवहार मोक्षमार्गरूप से उपायभूत साधकरूप घटता है ओर मोक्षरूप से उपेयभूत साध्यरूप घटता हे। ऐसा जानना चाहिये।

अव इस प्राभृतशब्द का ओर अध्यात्मशब्द का अर्थ कहा जाता है - जैसे कोई देवदत्त नाम का पुरुष राजा के दर्शन के लिये जाता है तो उस राजा को कुछ सारभृत वस्तु (भेंट में) देता हे, उसको प्राभृत कहा जाता है। वेसे ही परमात्मा का आराधक पुरुष है उसको निर्दोष परमात्मराजा के दर्शन के लिये यह शास्त्र भी प्राभृत है क्योंकि यह सारभूत है। इस प्रकार प्राभृतशब्द का अर्थ है। **रागादि परद्रव्यों के आलबन से रहित अपने स्वभावशुद्धात्मावाले विशुद्धआधारभूत में अनुष्ठान करना ही अध्यात्म है।**

इद प्राभृतशास्त्र ज्ञात्वा किं कर्तव्यम् ? **सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभावोऽहं, निर्विकल्पोऽहं, उदासीनोऽहं,** निजनिरजनशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिसजातवीतरागसहजानदरूप सुखानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसवेदनेन सवेद्यो गम्य प्राप्यो **भरितावस्थोऽहं**। रागद्वेषमोहक्रोधमानमायालोभपचेंद्रियविषयव्यापार मनोवचनकायव्यापारभावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्म ख्यातिपूजालाभ दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाक्षारूपनिदानमायामिथ्याशल्यत्रयादिसर्व विभावपरिणामरहित **शून्योऽहं**। जगत्त्रयेऽपि कालत्रयेऽपि मनोवचनकाये कृतकारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयेन तथा सर्वजीवा । इति निरन्तर भावना कर्तव्या। इति स्याद्वादोऽधिकार ।

अत्र ग्रथे प्रचुरेण पदाना सन्धिर्न कृता। वाक्यानि च भिन्नभिन्नानि कृतानि सुखबोधार्थम्। तेनकारणेन लिग-वचन-क्रिया-कारक-सन्धि-समास-विशेष्य-विशेषण-वाक्यसमाप्त्यादिक दूषण न ग्राह्य विवेकिभि । शुद्धात्मादितत्त्व-प्रतिपादनविषये यदज्ञानात् किंचिद्विस्मृत तदपि क्षमितव्यमिति।

जयउ रिसि पउमणदी जेण महातच्चपाहुडसेलो। बुद्धि सिरेणुद्धरिओ समप्पिओ भव्वलोयस्स।।१।

शका - इस प्राभृतशास्त्र को जानकर क्या करना चाहिये ?

समाधान - ऐसी निरतर भावना करनी चाहिये कि,

(१) **मैं सहजशुद्धज्ञानानदस्वभावमय हूँ,** (२) **मैं निर्विकल्प हूँ,** (३) **मैं उदासीन हूँ,**

(४) मैं निजनिरजन शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूप निश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिसजात वीतरागसहजानदरूप सुखानुभूतिमात्र लक्षणवाले स्वसवेदन से सवेद्य, गम्य, प्राप्य **भरितावस्थवाला हूँ,**

(५) मैं रागद्वेषमोह क्रोधमानमायालोभ पचेंद्रियविषयव्यापारमनवचनकायव्यापार भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्म ख्यातिपूजालाभ दृष्टश्रुतानुभूत भोगाकाक्षारूप निदानमायामिथ्यात्वशल्यत्रयादि **सर्व विभावपरिणामों से (शून्य) रहित हूँ,**

(६) तीनों जगत में भी तथा तीनों कालों में भी मनवचनकाय के द्वारा और कृतकारितानुमोदना के द्वारा शुद्धनिश्चयनय से सभी जीव शुद्ध हैं, **मैं भी शुद्ध हूँ,**।

यह स्याद्वाद अधिकार समाप्त हुआ।

यहाँ इस ग्रथ में लोगों को सरलता से (सुलभता से) ज्ञान प्राप्त हो जाय इसलिये प्राय पदों की सधि नहीं की गयी है और वाक्य भी भिन्न-भिन्न रक्खे गये हैं इसलिये विवेकी लोगों को यहाँ पर लिग, वचन, क्रिया, कारक, सधि, समास, विशेष्य, विशेषण और वाक्य परिसमाप्ति आदि विषय के दोष दीख पडे तो उनको ग्रहण नहीं करना चाहिये (उन दोषों की तरफ ध्यान नहीं देना चाहिये)। तथा शुद्धात्मादितत्त्वों के प्रतिपादन के विषय में यदि अज्ञान से कुछ विस्मरण हुआ हो तो क्षमा कर देने योग्य है।

श्री जयसेनाचार्य जी ने जो अतिम **जयउ** इत्यादिमगलाचरण किया है उसका अर्थ -

जिन महाऋषि पद्मनदी ने अपने बुद्धिरूपी सिर से महातत्त्वपाहुड अर्थात समयपाहुडरूप पर्वत को उठाकर भव्यजीवों के लिये अर्पण कर दिया **वे पद्मनदी महर्षि जयवत रहो**।।१।।

ज अल्लीणा जीवा तरति ससारसायरमणत। त सव्वजीवसरण णदउ जिणसासण सुइर।।२।।

यश्चाभ्यस्यति सश्रृणोति पठति प्रख्यापयत्यादरात्।
तात्पर्याख्यमिद स्वरूपरसिकै सवर्णित प्राभृतम्।
शश्वद्रूपमल विचित्रसकल ज्ञानात्मक केवलम्।
सप्राप्याग्रपदेऽपि मुक्तिललनारक्त सदा वर्तते।।३।।

इति श्री कुदकुदेवाचार्यविरचितसमयसारप्राभृताभिधानग्रथस्य सवधिनी श्री जयसेनाचार्यकृता दशाधिकारेऽकोनचत्वारिशदधिकगाथाशतचतुष्टयेन तात्पर्यवृत्ति समाप्ता।।

जिसका आश्रय लेकर भव्यजीव अनत ससारसागर को पार कर जाते हैं वह सव जीवों के लिये शरणभूत हो रहनेवाला जिनशासन चिरकाल तक जयवत रहे।।२।।

आत्मरस के रसिकों के द्वारा वर्णन किया हुआ यह तात्पर्य नाम का प्राभृत शास्त्र है, इसको जो कोई आदरपूर्वक सुनेगा, पढेगा, अभ्यास करेगा और इसकी प्रभावना करेगा वह जीव सदा निर्दोष रहनेवाला अद्भुत सकलज्ञानस्वरूप केवलज्ञान को प्राप्त करके उसके आगे सदा के लिये मुक्तिरूपी ललना-मोक्षलक्ष्मी में आसक्त रहेगा (लीन रहेगा)।।३।।

इस प्रकार श्री कुदकुदाचार्य देव के द्वारा रचे गये समयसार प्राभृत नामक ग्रथ की चार सौ उनतालीस गाथायें हैं। उसकी श्री जयसेनाचार्य के द्वारा वनायी हुई दस अधिकारवाली यह तात्पर्यवृत्ति नामक टीका है, इसका हिंदी भावानुवाद समाप्त हुआ।

卐 卐 卐 卐 卐

- चेतो चेतन -

चेतो चेतन निज में आओ, अतरआत्मा वुला रही है -।। टेक।।
जग में अपना कोई नहीं है, तू तो ज्ञानानदमयी है।
एक वार अपने में आजा, अपनी खवर क्यों भुला दई है ।।१।।
तन धन जन यह कुछ नहीं तेरे, मोह में पडकर कहता है मेरे।
जिनवाणी को उर में धर ले, समता में तुझे सुला रही है ।।२।।
निश्चय से तू सिद्ध प्रभु सम, कर्मोदय से धारे है तन।
स्याद्वाद के इस झूले में, जिनवाणी माँ झुला रही है ।।३।।
मोह, राग और द्वेष को छोडो, निज स्वभाव से नाता जोडो।
व्रह्मानद जल्दी तुम चेतो, मृत्यु पखा डुला रही है ।।४।।

जैनमत और अन्य मतों में मानी गई वस्तु व्यवस्था

विषय	सम्यक्-वस्तुविज्ञान	बौद्ध	साख्य	नैयायिक	वैशेषिक	मीमासक	वेदान्ती	चार्वाक
द्रव्यादि वस्तु व्यवस्था	वस्तु सत् है। सत यानी उत्पाद व्यय ध्रुव युक्त है। गुणपर्यायवान् द्रव्य है। **जीवद्रव्य** - ज्ञान, दर्शन, आनद, श्रद्धा, चारित्र वाले अनत हैं। **पुद्गलद्रव्य** - स्पर्श, रस गंध, वर्ण वाले अनतानत हैं। **धर्मद्रव्य** - गति हेतुवाला एक है। **अधर्मद्रव्य** - स्थिति हेतुवाला एक है। **आकाशद्रव्य** - अवगाहन हेतुवाला एक है। **कालाणुद्रव्य** - वर्तना हेतुवाले असख्यात हैं।	वस्तु सत है। सत् यानी उत्पाद व्यय वाली क्षणिक है, ध्रुव रहित है। धर्माधर्म काल मानते नहीं। ध्रुव आत्मा-जीव मानते नहीं। आत्मा क्षणिक है। रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार और विज्ञान इन पाँच स्कधों के समुदाय को ' आत्मा मानते हैं।	वस्तु सत है। सत् यानी उत्पाद व्यय- रहित ध्रुव है। धर्म अधर्म द्रव्य मानते नही। प्रकृति प्रधान को मानते हैं। प्रधान-प्रकृति को नित्यानित्यात्मक मानते हैं। पुरुष को जीव आत्मा मानते है। जीव अनत प्रदेशी सर्वगत, अमूर्त, सूक्ष्म है। प्रत्येक जीव अनतप्रदेशी, सवव्यापी चेतन है लेकिन ज्ञान गुण रहित है। दर्शन गुण सहित है। कूटस्थ, नित्य, अकर्ता, निर्गुण, भोक्ता मानते हैं	वस्तु सत है। सत् यानी नित्य मानते हैं। प्रमेय के १२ भेद हैं - आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दु:ख और अपवर्ग ये १२ हैं।	वस्तु सत् है। द्रव्य और गुण इनमें प्रदेश भेद है, पृथक्-पृथक् मानते हैं। समवाय सबध मानते हैं। पदार्थ ७ हैं। द्रव्य ९ हैं। गुण २४ हैं। सामान्य २ हैं। विशेष अनत हैं केवल नित्य द्रव्य में रहता है। समवाय - १ है। अभाव ४ हैं। **द्रव्य** - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, और मन ये ९ द्रव्य हैं।	वस्तु सत् है। सत् नित्य है। **प्रभाकर-पदार्थ** - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, परतन्त्रता, शक्ति, सादृश्य सख्या **भाट्ट (१)** - पाँच पदार्थ- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, अभाव **भाट्ट (२)** - द्रव्य ११ हैं, वैशेषिक मत में माने हुये ९ द्रव्य और अधकार और शब्द मानते हैं। शब्द नित्य है। अभाव प्रमाणवाद वेद - अपौरुषेयवाद, परोक्षज्ञानवाद, ये मानते हैं। जीव अचेतन है।	एक ब्रह्म ही सत् है। अन्य सब माया है यानी अन्य वस्तु कुछ नहीं है।	वस्तु सत है। भूत चतुष्टय है। १) पृथ्वी २) जल ३) अग्नि और ४) वायु हैं। आधुनिक, (भौतिक विज्ञान) मत में भी ये चार वस्तु मानते हैं।

प्रमाणज्ञान के सबध में विभिन्न मतों की मान्यताये

विषय	सम्यक् - वस्तुविज्ञान	बौद्ध	साख्य	नैयायिक	वैशेषिक	मीमासक	वेदान्ती	चार्वाक
प्रमाण ज्ञान	सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। स्वपरावभासी ज्ञान प्रमाण है। स्वअपूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाण है। साकार - स्व और अर्थ का विकल्प करना उसको साकार कहते हैं।	अविसवादि ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। कल्पना अपोढ (विचाररहित अर्थात् व्यवसाय रहित) अभ्रान्त ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाणज्ञान कहते हैं। और अनुमानज्ञान को अप्रमाण कहते हैं।	इद्रियों की विषयाकार परिणतिरूप वृत्ति को प्रमाण मानते हैं। ज्ञान अचेतन है क्योंकि प्रकृति की यह ज्ञान पर्याय है। इद्रियवृत्ति को प्रमाण का साधकतम साधन (करण) मानते हैं।	कारक साकल्य मानते हैं। ज्ञान को ज्ञानान्तरसे वेद्य मानते हैं। प्रमाकरण प्रमाण है। समवाय को मानते हैं। सन्निकर्ष को साधन मानते हैं।	सन्निकर्ष मानते हैं। सन्निकर्ष के भेद १) सयोग २) सयुक्त समवाय ३) सयुक्त समवेत ४) समवाय ५) समवेत समवाय ६) विशेपण विशेष्यभाव है। योगी प्रत्यक्ष धारावाहिक ज्ञान को मानते है। **महेश्वर** को प्रमाण मानते हैं।	ज्ञान को परोक्ष मानते हैं। ज्ञान अर्थ को जानता है किन्तु स्वय को जानता नही। ज्ञातृव्यव्यापार को प्रमाण मानते हैं। आत्मा अचेतन है। **भाट्ट** - अनधिगत तथाभूतार्थ निश्चायक ज्ञान को प्रमाण मानते हैं।	ज्ञान को प्रमाण नहीं मानते किन्तु जिन कारणों से ज्ञान उत्पन्न होता है, उन कारणों को प्रमाण मानते हैं। और ज्ञान को प्रमाण का फल मानते हैं।	प्रत्यक्षज्ञान प्रमाण है। ज्ञान की उत्पत्ति भूतचतुष्टय (पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि) से मानते हैं।

जैनमत और अन्य मतों में मानी गई वस्तु व्यवस्था

विषय	सम्यक्-वस्तुविज्ञान	बौद्ध	साख्य	नैयायिक	वैशेषिक	मीमासक	वेदान्ती	चार्वाक
द्रव्यादि वस्तु व्यवस्था	वस्तु सत् है। सत् नाना उत्पाद व्यय ध्रुव युक्त है। गुणपर्यायवान् द्रव्य है। **जीवद्रव्य** - ज्ञान, दर्शन, आनन्द, श्रद्धा, चारित्र वाले अनंत हैं। **पुद्गलद्रव्य** - स्पर्श, रस, गंध, वर्ण वाले अनंतानंत हैं। **धर्मद्रव्य** - गति हेतुवाला एक है। **अधर्मद्रव्य** - स्थिति हेतुवाला एक है। **आकाशद्रव्य** - अवागाहन हेतुवाला एक है। **कालाणुद्रव्य** - वर्तना हेतुवाले असख्यात हैं।	वस्तु सत् है। सत् नाना उत्पाद व्यय वाली क्षणिक है, ध्रुव रहित है। धर्माधर्म काल मानते नहीं। ध्रुव आत्मा-जीव मानते नहीं। आत्मा क्षणिक है। रूप, वेदना, सज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन पाँच स्कंधों के समुदाय को आत्मा मानते हैं।	वस्तु सत् है। सत् नाना उत्पाद व्यय- रहित ध्रुव है। धर्म अधर्म द्रव्य मानते नहीं। प्रकृति प्रधान को मानते हैं। प्रधान-प्रकृति को नित्यानित्यात्मक मानते हैं। पुरुष को जीव आत्मा मानते हैं। जीव अनंत प्रदेशी सर्वगत, अमूर्त, सूक्ष्म है। प्रत्येक जीव अनंतप्रदेशी, सर्वव्यापी चेतन है लेकिन ज्ञान गुण रहित है। दर्शन गुण सहित है। कूटस्थ, नित्य, अकर्ता, निर्गुण, भोक्ता मानते हैं	वस्तु सत् है। सत् नाना नित्य मानते हैं। प्रमेय के १२ भेद हैं - आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख और अपवर्ग ये १२ हैं।	वस्तु सत् है। द्रव्य और गुण इनमें प्रदेश भेद है, पृथक्-पृथक मानते हैं। समवाय सबध मानते हैं। पदार्थ ७ हैं। द्रव्य ९ हैं। गुण २४ हैं। सामान्य २ हैं। विशेष अनंत हैं केवल नित्य द्रव्य में रहता है। समवाय - १ है। अभाव ४ हैं। **द्रव्य** - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, और मन ये ९ द्रव्य हैं।	वस्तु सत् है। नाना नित्य है। **प्रभाकर-पदार्थ** - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, परतन्त्रता, शक्ति, सादृश्य सख्या **भाट्ट (१)** - पाँच पदार्थ- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, अभाव **भाट्ट (२)** - द्रव्य ११ हैं, वैशेषिक मत में माने हुये ९ द्रव्य और अधकार और शब्द मानते हैं। शब्द नित्य है। अभाव प्रमाणवाद वेद - अपौरुषेयवाद, परोक्षज्ञानवाद, ये मानते हैं। जीव अचेतन है।	एक ब्रह्म ही सत् है। अन्य सब माया है यानी अन्य वस्तु कुछ नहीं है।	वस्तु सत् है। भूत चतुष्टय है। १) पृथ्वी २) जल ३) अग्नि और ४) वायु हैं। आधुनिक, (भौतिक विज्ञान) मत में भी ये चार वस्तु मानते हैं।

हेतु (साधन) के संबंध में विभिन्न मतों की मान्यतायें

विषय	सम्यक् - वस्तुविज्ञान	वौद्ध	साख्य	नैयायिक	वैशेषिक
हेतु	'अन्यथानुपपत्ति' को हेतु का लक्षण मानते हैं। हेतु का साध्य के साथ अविनाभावसवध दो प्रकार का है - १) सहभाव २) क्रमभाव सवध हेतु के भेद - १) उपलब्धि - (1) विरुद्ध (2) अविरुद्ध २) अनुपलब्धि - (1) विरुद्ध (2) अविरुद्ध	१) पक्षधर्मत्व २) सपक्षसत्व और ३) विपक्ष से व्यावृत्ति इन तीन को हेतु का लक्षण मानते हैं। हेतु के भेद - १) स्वभाव २) कार्य ३) अनुपलब्धि (१) विरुद्ध अनुपलब्धि (२) विरुद्ध कार्योपलब्धि (३) कारण अनुपलब्धि (४) स्वभाव अनुपलब्धि	हेतु के भेद - १) मात्रा २) मात्रिक ३) कार्य विरोधी (प्रकृति विरोधी के दर्शन से उस के विरोधी का अनुमान) ४) सहचारी ५) स्वस्वामी ६) वध्यघात ७) सयोग	१) पक्षधर्मत्व २) सपक्षसत्त्व ३) विपक्ष से व्यावृत्ति ४) अवाधितविपय ५) असत्प्रतिपक्ष (1) केवल अन्वयी (2) केवलव्यतिरेकी (3) अन्वय व्यतिरेकी हेतु के भेद - १) कारण २) कार्य ३) सयोगी ४) समवायी ५) विरोधी	हेतु के भेद- १) कारण २) कार्य ३) सयोग ४) समवायी ५) विरोधी भूत, अभूत भूताभूत

अनुमानज्ञानादि के सबध में विभिन्न मतों की मान्यतायें

विषय	सम्यक वस्तुव्यवस्था	बौद्ध	साख्य	नैयायिक	वैशेषिक	मीमासक	वेदान्ती	चार्वाक
अनुमान ज्ञान	लिग दर्शनादि की अपेक्षा है। साधन (लिग) (ज्ञान) से साध्य का ज्ञान होना अनुमान ज्ञान है। अनुमान के भेद - १) स्वार्थ (ज्ञानात्मक) और २) परार्थ (वचनात्मक)	अनुमान मान्य है। परार्थ अनुमान में कोई पक्ष, हेतु और दृष्टान्त ये अवयव मानते हैं कोई परार्थ अनुमान में हेतु और दृष्टान्त ये अवयव मानते हैं।	अनुमान मान्य है। अनुमान के भेद - १) पूर्ववत् २) शेषवत् ३) सामान्य से दृष्टि। परार्थ अनुमान के अवयव- १) पक्ष, २) हेतु और ३) दृष्टान्त मानते हैं।	अनुमान मान्य है। परार्थ अनुमान के अवयव -१) पक्ष, २) हेतु, ३) दृष्टान्त, ४) उपनय, ५) निगमन कोई ये पाच और कोई १) जिज्ञासा २) सशय ३) शक्यप्राप्ति ४) प्रयोजन ५) सशयव्युदास ६) पूर्ववत् शेषवत् इनको भी मानते हैं।	अनुमान मान्य है। परार्थ अनुमान के अवयव - १) प्रतिज्ञा २) अपदेश ३) निदर्शन दृष्टान्त ४) अनुसन्धान, और ५) प्रत्याम्नाय मानते हैं।	अनुमान मान्य है। कोई परार्थ अनुमान में प्रतिज्ञा, हेतु और दृष्टान्त ये अवयव मानते हैं। कोई परार्थ अनुमान में प्रतिज्ञा हेतु, दृष्टान्त और उपनय ये चार अवयव मानते हैं।	अनुमान मान्य है।	अनुमान मान्य नहीं है।
स्मृतिज्ञान प्रत्यभिज्ञान तर्कज्ञान नयज्ञान	मान्य है	मान्य नहीं	मान्य नहीं	मान्य नहीं	मान्य नहीं	मान्य नहीं	मान्य नहीं	मान्य नहीं

हेतु (साधन) के सबंध में विभिन्न मतों की मान्यतायें

विषय	सम्यक् - वस्तुविज्ञान	बौद्ध	साख्य	नैयायिक	वैशेषिक
हेतु	'अन्यथानुपपत्ति' को हेतु का लक्षण मानते हैं। हेतु का साध्य के साथ अविनाभावसवध दो प्रकार का हे - १) सहभाव २) क्रमभाव सवध हेतु के भेद - १) उपलब्धि - (1) विरुद्ध (2) अविरुद्ध २) अनुपलब्धि - (1) विरुद्ध (2) अविरुद्ध	१) पक्षधर्मत्व २) सपक्षसत्व और ३) विपक्ष से व्यावृत्ति इन तीन को हेतु का लक्षण मानते हैं। हेतु के भेद - १) स्वभाव २) कार्य ३) अनुपलब्धि (१) विरुद्ध अनुपलब्धि (२) विरुद्ध कार्योपलब्धि (३) कारण अनुपलब्धि (४) स्वभाव अनुपलब्धि	हेतु के भेद - १) मात्रा २) मात्रिक ३) कार्य विरोधी (प्रकृति विरोधी के दर्शन से उस के विरोधी का अनुमान) ४) सहचारी ५) स्वस्वामी ६) वध्यघात ७) सयोग	१) पक्षधर्मत्व २) सपक्षसत्त्व ३) विपक्ष से व्यावृत्ति ४) अवाधितविपय ५) असतूप्रतिपक्ष (1) केवल अन्वयी (2) केवलव्यतिरेकी (3) अन्वय व्यतिरेकी हेतु के भेद - १) कारण २) कार्य ३) सयोगी ४) समवायी ५) विरोधी	हेतु के भेद- १) कारण २) कार्य ३) सयोग ४) समवायी ५) विरोधी भूत, अभूत भृताभृत

गाथा क्रमाक मिलान सूची

ता वृत्ति गाथा क्र	आ ख्या गाथा क्र	ता वृत्ति गाथा क्र	आ ख्या गाथा क्र	ता वृत्ति गाथा क्र	आ ख्या गाथा क्र	ता वृत्ति गाथा क्र	आ ख्या गाथा क्र
१	१	३१	२६	६१	५६	९१	८५
२	२	३२	२७	६२	५७	९२	८६
३	३	३३	२८	६३	५८	९३	०
४	४	३४	२९	६४	५९	९४	८७
५	५	३५	३०	६५	६०	९५	८८
६	६	३६	३१	६६	६१	९६	८९
७	७	३७	३२	६७	६२	९७	९०
८	८	३८	३३	६८	६३	९८	९१
९	९	३९	३४	६९	६४	९९	९२
१०	१०	४०	३५	७०	६५	१००	९३
११	०	४१	३६	७१	६६	१०१	९४
१२	०	४२	३७	७२	६७	१०२	९५
१३	११	४३	३८	७३	६८	१०३	९६
१४	१२	४४	३९	७४	६९	१०४	९७
१५	१३	४५	४०	७५	७०	१०५	९८
१६	१४	४६	४१	७६	७१	१०६	९९
१७	१५	४७	४२	७७	७२	१०७	१००
१८	०	४८	४३	७८	७३	१०८	१०१
१९	१६	४९	४४	७९	७४	१०९	१०२
२०	१७	५०	४५	८०	७५	११०	१०३
२१	१८	५१	४६	८१	०	१११	१०४
२२	१९	५२	४७	८२	७६	११२	१०५
२३	०	५३	४८	८३	७७	११३	१०६
२४	०	५४	४९	८४	७८	११४	१०७
२५	२०	५५	५०	८५	७९	११५	१०८
२६	२१	५६	५१	८६	८०	११६	१०९
२७	२२	५७	५२	८७	८१	११७	११०
२८	२३	५८	५३	८८	८२	११८	१११
२९	२४	५९	५४	८९	८३	११९	११२
३०	२५	६०	५५	९०	८४	१२०	११३

गाथा क्रमांक मिलान सूची

ता वृत्ति गाथा क्र	आ ख्या गाथा क्र	ता वृत्ति गाथा क्र	आ ख्या गाथा क्र	ता वृत्ति गाथा क्र	आ ख्या गाथा क्र	ता वृत्ति गाथा क्र	आ ख्या गाथा क्र
१२१	११४	१४९	१४१	१७९	१७१	२०९	०
१२२	११५	१५०	१४२	१८०	१७२	२१०	२००
१२३	११६	१५१	१४३	१८१	१७३	२११	१९८
१२४	११७	१५२	१४४	१८२	१७४	२१२	२०१
१२५	११८	१५३	१४५	१८३	१७५	२१३	२०२
1	११९	१५४	१४६	१८४	१७६	२१४	२१६
2	१२०	१५५	१४७	१८५	१७७	२१५	२१७
१२६	१२१	१५६	१४८	१८६	१७८	२१६	२०८
१२७	१२२	१५७	१४९	१८७	१७९	२१७	२०३
१२८	१२३	१५८	१५०	१८८	१८०	२१८	२०७
१२९	१२४	१५९	१५१	१८९	१८१	२१९	२०९
१३०	१२५	१६०	१५२	१९०	१८२	२२०	२०६
१३१	०	१६१	१५३	१९१	१८३	२२१	२०४
१३२	०	१६२	१५४	१९२	१८४	२२२	२०५
१३३	०	१६३	१५५	१९३	१८५	२२३	२१०
१३४	१२६	१६४	१५६	१९४	१८६	२२४	२११
१३५	१२७	१६५	१५७	१९५	१८७	२२५	०
१३६	१२८	१६६	१५८	१९६	१८८	२२६	२१२
१३७	१२९	१६७	१५९	१९७	१८९	२२७	२१३
१३८	१३०	१६८	१६०	१९८	०	२२८	२१४
१३९	१३१	१६९	१६१	१९९	०	२२९	२१५
१४०	१३२	१७०	१६२	२००	१९०	२३०	२१८
१४१	१३३	१७१	१६३	२०१	१९१	२३१	२१९
१४२	१३४	१७२	१६४	२०२	१९२	२३२	०
१४३	१३५	१७३	१६५	२०३	१९३	२३३	०
१४४	१३६	१७४	१६६	२०४	१९४	२३४	०
१४५	१३७	१७५	१६७	२०५	१९५	२३५	२२०
१४६	१३८	१७६	१६८	२०६	१९६	२३६	२२१
१४७	१३९	१७७	१६९	२०७	१९७	२३७	२२२
१४८	१४०	१७८	१७०	२०८	१९९	२३८	०

गाथा क्रमांक मिलान सूची

ता वृत्ति गाथा क्र	आ ख्या गाथा क्र	ता वृत्ति गाथा क्र	आ ख्या गाथा क्र	ता वृत्ति गाथा क्र	आ. ख्या गाथा क्र	ता वृत्ति गाथा क्र	आ ख्या गाथा क्र
३५३	३२८	३८३	३५४	४१३	३९१	४२६	४०४
३५४	०	३८४	३५५	४१४	३९२	४२७	४०५
३५५	३२९	३८५	३५६	४१५	३९३	४२८	४०६
३५६	३३०	३८६	३५७	४१६	३९४	४२९	४०७
३५७	३३१	३८७	३५८	४१७	३९५	४३०	४०८
३५८	३३२	३८८	३५९	४१८	३९६	४३१	४०९
३५९	३३३	३८९	३६०	४१९	३९७	४३२	४१०
३६०	३३४	३९०	३६१	४२०	३९८	४३३	४११
३६१	३३५	३९१	३६२	४२१	३९९	४३४	४१२
३६२	३३६	३९२	३६३	४२२	४००	४३५	४१३
३६३	३३७	३९३	३६४	४२३	४०१	४३६	४१४
३६४	३३८	३९४	३६५	४२४	४०२	४३७	४१५
३६५	३३९	३९५	३८३	४२५	४०३		
३६६	३४०	३९६	३८४				
३६७	३४१	३९७	३८५				
३६८	३४२	३९८	३८६				
३६९	३४३	३९९	३७३				
३७०	३४४	४००	३७४				
३७१	३६६	४०१	३७५				
३७२	३६७	४०२	३७६				
३७३	३६८	४०३	३७७				
३७४	३६९	४०४	३७८				
३७५	३७०	४०५	३७९				
३७६	३७१	४०६	३८०				
३७७	३७२	४०७	३८१				
३७८	३४९	४०८	३८२				
३७९	३५०	४०९	३८७				
३८०	३५१	४१०	३८८				
३८१	३५२	४११	३८९				
३८२	३५३	४१२	३९०				

नोट

१ जिन आत्मख्याति की गाथाओं के आगे ० लिखा है वे ३० गाथायें आ ख्या में नहीं हैं, किन्तु ता वृ में हैं।

२ जिन तात्पर्यवृत्ति की गाथाओं के आगे 1, 2, 3, 4, 5 लिखा है, वे ५ गाथायें ता वृ में नहीं हैं, किन्तु आ ख्या में हैं।

३ जिन गाथाओं के आगे 6,7,8 लिखा है, वे ३ गाथायें आ ख्या में नहीं हैं किन्तु किसी-किसी ता वृ में मिलती हैं।

– सपादक

अकारादि क्रम से समयपाहुड गाथा सूची

	आत्मख्याति	तात्पर्यवृत्ति
	गा क्र	गा. क्र.
परमप्पाणमकुव्वी	९३	१००
परमाणुमित्तय पि हु	२०१	२१२
पाखडीलिगाणि य	४०८	४३०
पाखडीलिगेसु व	४१३	४३५
पुग्गलकम्म कोहो	१२३	१२८
पुग्गलकम्म मिच्छ	८८	९५
पुग्गलकम्म कोहो	१९९	२०८
पुग्गलकम्मणिमित्त	०	९३
पुढवीपिडसमाणा	१६९	१७७
पुरिसो जह को वि	२२४	२४०
पुरिसित्थियाहिलासी	३३६	३६२
पोग्गलदव्व सद्दत्तपरिणय	३७४	४००
फ		
फासो ण हवदि णाण	३९६	४१८
ब		
वधाण च सहाव	२९३	३१४
वधुवभोगणिमित्त	२१७	२१५
वुद्धी ववसाओवि य	२७१	२९०
भ		
भावो रागादिजुदो	१६७	१७५
भुजतस्स वि विविहे	२२०	२३५
भूदत्थेणाभिगदा	१३	१५
म		
मज्झ परिग्गहो जदि	२०८	२१६
मणसाए दुक्खवेमिय	०	२८३
मारेमि जीवामेमिय य	२६१	२७४

	आत्मख्याति	तात्पर्यवृत्ति
	गा क्र	गा क्र
मिच्छत्तस्स दु उदओ	१३२	१४०
मिच्छत्त अविरमण	१६४	१७२
मिच्छत्त जदि पयडी	३२८	३५३
मिच्छत्त पुण दुविह	८७	९४
मोक्ख असद्दहतो	२७४	२९३
मोक्खपहे अप्पाण	४१२	४३४
मोत्तूण णिच्छयट्ठ	१५६	१६४
मोहणकम्मस्सुदया	६८	७३
र		
रत्तो वधदि कम्म	१५०	१५८
रागो दोसो मोहो जीवस्सेव	३७१	३७६
रारो दोसो मोहो य	१७७	१८५
रायह्मि य दोसह्मि य	२८१	३०४
रायह्मि य दोसह्मि य	२८२	३०५
राया हु णिग्गदो त्ति य	४७	५२
रूव णाण ण हवदि	३९२	४१४
ल		
लोगसमणाणमेव	३२२	३४३
लोगस्स कुणदि विण्हु	३२१	३४२
व		
वदित्तु सव्वसिद्धे	१	१
वण्णो णाण ण हवदि	३९३	४१५
वत्थस्स सेदभावो	१५७	१६५
वत्थस्स सेदभावो	१५८	१६६
वत्थस्स सेदभावो	१५९	१६७
वत्थु पडुच्च ज पुण	२६५	२७८

समयसार

पृ	लाईन	अशुध्द	शुध्द
22	18	अनुपरचित	अनुपचरित
22	22	नैगमादि सातनय	
4	21	आननद	आनन्द
5	11	व्राङ्मय	वाङ्मय
5	14	सम्पादन	सम्पादन
6	27	अनुपत्ति	अनुपपत्ति
7	3	गाथाओंमे	गाथाओके
8	3	महराज	महाराज
10	11	भवलिगी	भावलिंगी
12	5	सम्यदर्शन	सम्यग्दर्शन
12	18	ध्यान	ज्ञान
12	21	अटक	भटक
12	27	करने योग्य कही	करने के योग्य
15	8	पर+म	पर + मा
30	28	आध्यात्म	अध्यात्म
63	24	भवसाधन	भावसाधन
67	5	प्रगभाव	प्रागभाव
67	15	पर्यांये	पर्यायें
68	10	निशचित	निश्चित
68	10	अनुपत्ति	अनुपपत्ति
70	3	वहुआयामी	वहुआयामी
70	13	शुध्दध्येत्वात	शुध्दध्येयत्वात्
71	18	कहलती	कहलाती
73	10	साधकतमत्वेन	
75	33	स्वाभावसिध्द	स्वभावसिध्द
82	22	जीवप्रत्ययों	प्रत्ययो
12	15	णैव	णेव
12	7	सुददाण	सुदणाण
19	10	उत्कृष्ट	उत्कृष्ट काल अतर्मुहुर्त है।
21	12	अस्पष्ट	अस्पष्ट (क)
21	13	अस्पष्ट	अस्पष्ट (ख)
21	3	पयार्य	पर्याय
22	25	द्रव्य जानना।	द्रव्य जानना, कथन
22	26	व्दारा	गुण के व्दारा
26	8	शुध्दत्मोपलब्धि	शुध्दात्मोपलब्धि
27	3	दसण	दसण
29	3	निस्तरङ्ोत्तरङ्	निस्तरङ्गोत्तरङ्ग
30	5	अवध्द	अवध्द
30	7	सुर्णवत्	सुवर्णवत्
30	8	कथ	कथ
32	25	चरित्रे	चरित्ते
33	17	मुख्यत्वा	मुख्यता
33	23	णचि	णिच
34	18	तय	तह
37	16	हेदि	होदि
40	13	परमाऽत्माराधक	परमात्माऽऽराधक
43	9	णिच्छयस्य	णिच्छयस्स
49	25	तीर्थकर	तीर्थंकर
52	5	समयस्य	समयस्स
54	28	सध्दो	सुध्दो
58	29	करनेवाले	कहनेवाले
63	16	बतालाते	बतलाते
64	25	ववहोरण	ववहारेण
74	24	वण्णादि	वण्णादि
79	4	परिहारह	परिहार
80	18	७ भावकर्म ७	८ भावकर्म,८
85	12	वधो	बधो
86	4	क्रोधाद्यास्रवण	क्रोधाद्यास्रवाणा
86	17	बध का	वध का

पृ	लाईन	अशुध्द	शुध्द
88	22	जीवणिवध्दा	जीवनिबध्दा
93	23	व्दारा	व्दारा पुद्‌गलद्रव्य
93	24	प्रकार का	प्रकार का (वन जाता है अथवा हो जाता है ।
94	18	उदयागत	उदयागत
95	2	विशिष्ट	विंशिष्ट
97	5	परिणमदि	परिणमति
99	26	उसी तरह	और वह ही
100	22	अनेविध	अनेकविध
102	16	उपादन	उपादान
102	3	विदिरित्तो	वदिरित्तो
105	11	दविह	दुविह
106	20	उवगोस्य	उवगोस्स
106	20	मोहजत्तस्य	मोहजुत्तस्स
106	20	अविरद	अविरदि
110	5	मुण्णोहऽमिति	मुण्णोऽहमिति
111	16	होदी	होदी सो
115	3	कत्तित	कत्तित्त
182	21	निजात्मात्मोत्थ	निजात्मोत्थ
120	4	उन पर्यायो का	--
120	8	दृष्टा	द्रष्टा
123	13	नहीं करता है	नहीं करता है और अन्य द्रव्य भी उस द्रव्य में सक्रमण नहीं करता है ।
130	7	कुर्वनति	कुर्वन्ति
132	26	मिथ्त्यात्वादि	मिथ्यात्वादि
133	5	परणिमनाभावे	परिणिमनाभावे
145	20	परिणत	अपरिणत
147	26	अण्णाण	अण्णाणो
149	16	अण्णाणिणो	अणाणिणो
154	3	व्दयोरागित्व	व्दयो रागित्व
156	2	शुध्दव्द्रयार्थिकनयेन	शुध्दद्रव्यार्थिकनयेन
159	2	इत्यव	इत्येव
159	10	णविर	णवरि
159	13	छद्यस्य	छद्मस्य
162	3	शास्त्त	शास्त्र
165	22	उपाशम	उपशम
165	2	व्दिपदीभूय	व्दिपदीभूत
168	8	देव	देवा
169	4	तत्सर्ग	तत्ससर्ग
170	4	कर्माणि	कर्मणि
172	23	अण्णणि	अण्णाणि
173	1	भवतीती	भवतीति
175	25	सम्मत	सम्मत्त
176	19	यतियोका	का
177	23	सम्मत	सम्मत्त
181	14	श्रध्दान	ज्ञान
181	25	पदार्थो को जाननेवाला	अर्थज्ञान (तात्पर्य)
183	13	वहुविहभेदा	वहुविहभेया
187	15	उपर	ऊपर
188	22	वज्झदे	वज्झदे
189	24	सासादान	सासादन
190	23	अनेकविध	भेदभिन्न अनेकविध
193	15	दृष्टा	द्रष्टा
193	27	सम्यदृष्टि	सम्यग्दृष्टि
194	9	रागदिभावस्रव	रागादिभावास्रव
196	23	णात्थि	णत्थि
197	9	स्यान्युथा	स्यान्यथा
198	3	पूर्वार्ध्द	पूर्वार्ध

पृ	लाईन	अशुध्द	शुध्द
200	20	वध्दा	वध्दा
201	4	शुध्दत्मा	शुध्दात्मा
202	29	विसुस्सु	विस्सुसु
203	1	मित्यात्व	मिथ्यात्व
203	7	क्रियतेति	क्रियेतेति
203	8	दृष्तातेन	दृष्टातेन
205	4	मित्यात्व	मिथ्यात्व
205	2	नहित	रहित
206	7	निर्विकल्प	निर्विकार
207	1	शुध्दत्मान	शुध्दात्मान
207	17	अशुध्द असुध्द	असुध्द असुध्द
207	13	सुध्द	सुध्द
208	9	(सु) पुण्य	(सु) पुण्ण
208	16	झायादि	झायदि
208	25	दसण	दसण
210	4	यौऽसौ	योऽसौ
210	16	विविदच्छो	विदिदच्छो
208	10	कर्मो से घिरे हुए	कर्मपणे को प्राप्त हुए
208	24	कर्मो से घिरे हुए	कर्मपणे को प्राप्त हुए
198	11	गुणस्थानवाला सराग	गुणस्थानवाला
198	21	सरागचारित्र प्रगट	सराग सम्यक्त्व प्रगट
213	13	तत्वरुप	तत्व
213	15	पुद्गलेगत	पुद्गलगत
215	22	इरस्मि ॥१६॥ मोक्षा	इरम्मि ॥१६॥ मोक्ष
218	3	सम्मदिट्ठी	सम्मदिट्ठी
219	3	अथ	अह
219	17	सासादान	सासादन
219	29	होकर नही।	होकर
223	3	अहेमक्को	अहमेक्को
227	12	ठीक नही है।	ठीक नही है। चतुर्थपचम गुणस्थानवर्तीजीव सम्यग्दृष्टी (शुध्दात्मानुभूतीवाले) हैं क्योकि
227	21	चतुर्थ	चतुर्थपचम
235	10	अनिच्छ	अनिच्छ
235	11	धमाधर्मा	धर्माधर्मा
235	12	त्रेछति	त्रेच्छति
239	12	आगभाषा	आगमभाषा
239	24	सासादान	सासादन
239	27	कम्मज्झगदो	कम्मज्झगदो
240	18	मित्यात्व सासादान	मिथ्यात्व, सासादन
243	14	द्रव्यों को करनेवाले को और	द्रव्यों को
247	23	शुध्दात्मनुभव	शुध्दात्मानुभव
248	4	करोदि	करेदि
249	4	सम्मादिट्टी	सम्मादिट्ठी
249	14	सिध्दी	सिध्द
251	2	भोगाकाक्षा	भोगाकाक्षारुप
251	18	निश्चयन	निश्चयनय
251	2	द्रव्ये	द्रव्य
252	14	पामार्थिक	पारमार्थिक
252	26	नियचयनय	निश्चयनय
253	1	लब्धा	लब्ध्वा
253	20	बोधि	बोधि
260	20	सासादान	सासादन
260	21	सम्यज्ञानी	सम्यग्ज्ञानी
261	25	आउउदयेण	आऊदयेण
261	28	आउउदयेण	आऊदयेण
262	12	अणणी	अण्णाणी
264	20	सासादान	सासादन
267	13	अपरिग्गहे	अपरिग्गह
267	19	नियचयनय	निश्चयनय
270	7	मुचति	मुचति
270	9	नियचयेन	निश्चयेन
281	5	मात्मानुपादेय	मात्मानमुपादेय
281	7	शुध्दात्मा	शुध्दात्म
282	9	करोति	करोतीति
289	14	भावच्यतु	भावच्युत
289	14	प्रत्यख्यानाभ्या	प्रत्याख्यानाभ्या
289	4	अप्पडिकक्मण	अप्पडिकमण
290	1	सामाधि	समाधि
290	2	नरकादि	नारकादि
297	15	प्रथम	प्रथमस्थळे
303	8	दृष्टा	द्रष्टा
304	5	पूर्वपक्ष	पूर्वपक्षे
307	28	ससध्दि	ससिध्दि
310	19	सासादान	सासादन
311	6	गाथाष्टक	गाथापट्क
314	9	उप्पज्ञतो	उप्पज्ञते
325	7	उप्पजज्इ	उप्पज्जइ
330	27	सथुदि	सथुद
330	29	आठे	आठ
334	3	पुनजनिति	पुनर्जानाति
334	4	णपुरट्ठ	णपुररट्ठ
347	25	परिणामिक	पारिणामिक
349	6	लोकमित्त	लोगमित्त
350	14	तासायमान	ताम्रायमान
351	1	मात्वेन	मत्वेन
352	19	ज्ञानवरणादि	ज्ञानावरणादि
353	2	सत्यन्स्य	सत्यन्यस्य
357	26	जनता है	जानता है
358	2	तथैव	यथैव
363	26	ठहरेगाा	ठहरेगा
364	2	परिणमिति	परिणमति
365	19	ओर	और
366	4	तापोधन	तपोधन
368	19	विणिग्गहिदु	विणिग्गहिदु
369	9	त	त
370	26	अमोनज्ञ	अमनोज्ञ
371	16	अभ्यातर	अभ्यतर
371	13	श्रोत्रिंदिय	श्रोत्रेन्द्रिय
372	12	पचेन्द्रिय	पचेन्द्रिय के
373	21	रत्नत्रय	भेदरत्नत्रय
377	4	एकोनपचाद्	एकोनपचाशद्
378	4	नाटयित्वा	नाटयित्वा
380	29	जिणा	जिणा
382	4	ज्ञानस्पशो	ज्ञानस्पर्श
386	21	अनताज्ञान	अनतज्ञान
389	13	लिंगि	लिंग
390	8	यस्मात कारणत्	यस्मात्कारणात
391	4	ठहेवि	ठवेहि
391	5	चेतस्व	चेतयस्व
391	4	शुध्द	विशुध्द
395	4	वहिरगे	वहिरग
322	29	१३४	३४१
397	6	अत्थतच्च्दो	अत्थतच्चदो
397	9	बीतबाध	वीतबाध
400	2	कर्माहारदिक	कर्माहारादिक
404	14	आगुतक	आगतुक
406	26	नात्यैपा	नान्यैपा
408	29	पद्मनदी	पद्मनदी
410	19	अधर्मद्रव्यस्थिति	अधर्मद्रव्यस्थिति
412	9	दृष्टि	दृष्ट
418	15	३६६	३३६
419	5	------	उववाद कुव्वतस्स
419	5	------	२३१ - २५५
419	24	२९८	१९८
425	14	रागे	रागो
428	33	ध्याआ	ध्याओ

उस गोम्मटेश भगवान को, करता शत-शत बार नमन

सम्यग्दर्शन-ज्ञान समान, है जिन के दोनो नयन,
धवल आत्मसम है जिनका, वह उज्जवल पावन वदन।
स्वानुभूति-सी शोभितनासा, ज्यों विकसित चम्पक सुमन,
उस गोम्मटेश भगवान को, करता शत-शत बार नमन।।1।।
मुखमण्डल है समयसार-सा, जैसे मनभावन गगन,
स्वस्थ कपोल गोल दो ज्यों, नय निश्चय-व्यवहार कथन।
सुदीर्घ दोलित करणमय, कैवल्यम लोक बिम्बवन,
गजसुण्डबाहु गोम्मटेश को, करता शत-शत बार नमन।। 2।।
दिव्यध्वनिद्वार-सम ग्रीवा, यह छवि अति पावन परम,
हिमगिरि-सम स्कध विशाल, भवि-भावन भवभीति हरन।
मध्यभाग 'ध्रुव अचल अनूपम', दर्शनीय अति मनभावन,
उस गोम्मट आकर्षक छवि को, करता शत-शत बार नमन।।3।
विध्यगिरि-सम प्रतिभासित, उन्नत है भूभाल भवन,
हृदय सिहासन भविजन के, राजित बाहुबलि चरण।
तीनलोक को तृप्तिदायक, पूर्णचन्द्र-सम सुधा सुमन,
उस गोम्मट की पूर्ण छवि को, करता शत-शत बार नमन।। 4।।
समकित की सुगन्ध से महकित, असख्यप्रदेशी आभरण,
भव्यों के मन पुलकित करता, वह पुनीत-पावन स्मरण।
देवेन्द्र-वृन्द मनो मे वसता, एक-विभक्त निज-वैभवन,
उस शुद्धोऽह गोम्मटेश को, करता शत-शत बार नमन।। 5।।
पूर्ण दिगम्बर रहित अडम्बर, अनादि मिथ्यामति दहन,
धर्म धुरन्धर शुद्ध निरम्बर, सत्यधर्म की मणिधरण।
विषय-विषधर तो दूर से ही, थरथरा कर रहे कम्पन,
उस धर्म छवि गोम्मटेश को, करता शत-शत बार नमन।। 6।।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनद का, करते नित ही अनुभवन,
इन्द्रिय-सुख से रहित स्वय, दोष अठारह किये हनन।
नि शल्यभाव वैराग्यभरित, घातिकर्म कर पूर्ण क्षपन,
उस पूर्णोऽह गोम्मटेश को, करता शत-शत बार नमन।। 7।।
उपाधि-परिग्रहो से विरत, मिथ्या-कषाये कर दलन,
पूर्ण पवित्र ध्यान धारणकर, निज स्वरूप में हुए मगन।
चैतन्यामृत आहार किया, वर्ष एक रह अन-अशन,
उस गोम्मटेश भगवान को, करता शत-शत बार नमन।। 8।।

\- मन्नूलाल जैन

आत्मानुभव की प्रमाणता

१ अनुभव के समय में जब आपने निज ध्रुव शुद्धात्मा को प्रामाण्यसहित प्रत्यक्षज्ञान से जाना था, तब आपको बुद्धिपूर्वक अन्य किसी परवस्तु की इच्छा,चाह,आसक्ति,मोह, राग या द्वेष भाव नहीं था। कोई विकल्परूप चितन नहीं कर रहे थे, किसी की निन्दा आदि रूप अशुभभाव नहीं कर रहे थे, किसी का स्तवन आदि रूप शुभभाव नहीं कर रहे थे। पारिशेष न्याय से आपको शुद्धभाव-शुद्धोपयोग ही हुआ था।

२ अनुभव के समय मे जब आपने निज ध्रुव शुद्धात्मा को प्रामाण्यसहित प्रत्यक्षज्ञान से जाना है, तब उसी समय में आपको सम्यक्आनद मिल रहा था, सम परिणाम था, वीतराग परिणाम था, मोह-क्षोभरहित परिणाम था,आपको किसी भी पर द्रव्य-गुण-पर्याय के सबध में कोई कर्तृत्वभाव नहीं था, निज द्रव्य-गुण-पर्याय के सबध में भी कोई कर्तृत्वभाव नहीं था, पचेंद्रियो तथा उनके विषयो के सबध में कोई कर्तृत्व या भोक्तृत्वभाव नहीं था, देव-गुरु-शास्त्र-आप्त-आगम-पदार्थ के सबध में कोई कर्तृत्व-भोक्तृत्व-ममत्व-एकत्व-स्वामित्व-ज्ञातृत्व के विकल्परूप परिणाम नहीं था। आपका उपयोग केवल निजध्रुवशुद्धात्मा को मात्र जान रहा था कि यह शुद्धचिदानन्द आत्मा मैं हूँ। आप नयपक्षातीत, विकल्पातीत हो ही गये थे।

३ उस अनुभव के समय मे आप अपनी प्रमाणात्मक प्रत्यक्ष मति-श्रुतज्ञान पर्याय के द्वारा निजध्रुव शुद्धात्मा-अनत गुणो के अखण्ड अभेदपिण्ड को जान रहे थे, यह भी जान रहे थे कि मैं अपनी आत्मा को जान रहा हूँ। उस काल में अतींद्रिय आनद को भी जान रहे थे, समताभाव को भी जान रहे थे, यह भी जान रहे थे कि उस समय मे कोई विकल्प नहीं हो रहा है, यह भी जान रहे थे कि कोई राग-द्वेष नहीं हो रहा है, यह भी जान रहे थे कि कोई हेय-ज्ञेय-उपादेय सबधी,भक्ष्य-अभक्ष्य सबधी,परिग्रहादि सयोग सबधी,इसभव-परभव सबधी कोई भाव नहीं हो रहा है, यह भी जान रहे थे कि कोई प्रमाण-नय-निक्षेप का विकल्प नहीं हो रहा है। इससे सिद्ध हुआ कि आप आत्मानुभूति ही ले रहे थे।

ध्यान मे बैठा करने को जब, सप्तप्रकृति का उच्छेद।
ज्ञान की पर्याय मे हो गये, दो भेद अविभागी प्रतिच्छेद ॥
एक भावप्रमेय-स्वप्रमेय, दूसरा बाह्य-अर्थ-पर प्रमेय ।
पर्याय बन गई ज्ञायक वहाँ, ज्ञायक बन गया उसका ज्ञेय ॥१॥

ज्ञान की पर्याय को 'स्व' में रखा,ध्रुव को रखा 'अर्थ' प्रमेय 'पर' मे।
अनुभूति हुई अनुपम, अतीन्द्रिय, गुण सभी प्रत्यक्ष आनद में रमें।
कर लिया शुद्ध स्वभाव सिद्ध मैंने, प्रत्यक्ष निजश्रुतप्रमाण में।
जिनवाणी रस पी गया भरकर, समयसार न्याय प्रत्यक्ष श्रुतप्रमाण में ॥२॥

विषय-साधन-फल का निर्णय हुआ, प्रत्यक्ष निज श्रुत-प्रमाण मे।
पाया पारिणामिक परमभाव को, प्रमिति-प्रमाता-प्रमेय-प्रमाण में ॥
आया शुद्ध निश्चयनय का विषय, ध्रुव-ध्येय-ध्याता-ध्यान मे॥
गाने लगा अब गीत भी ज्ञायक, ज्ञप्ति-ज्ञेय-ज्ञाता-ज्ञान में ॥३॥

तत्क्षण दृश्यते शुद्ध चिच्चमत्कारलक्षणम् ।
निर्विकल्पसमुत्पन्न ज्ञानमेव सुधारसम् ॥१०॥ परमानदस्तोत्र, आ अकलकदेव

लाख बात की बात, यही निश्चय उर लाओ ।
तोरि सकल जग दन्द-फन्द, निज आतम ध्याओ॥ छहढाला ४/९